जैनागम सारांश

भाग २

उपदेश एवं कथा शास्त्र

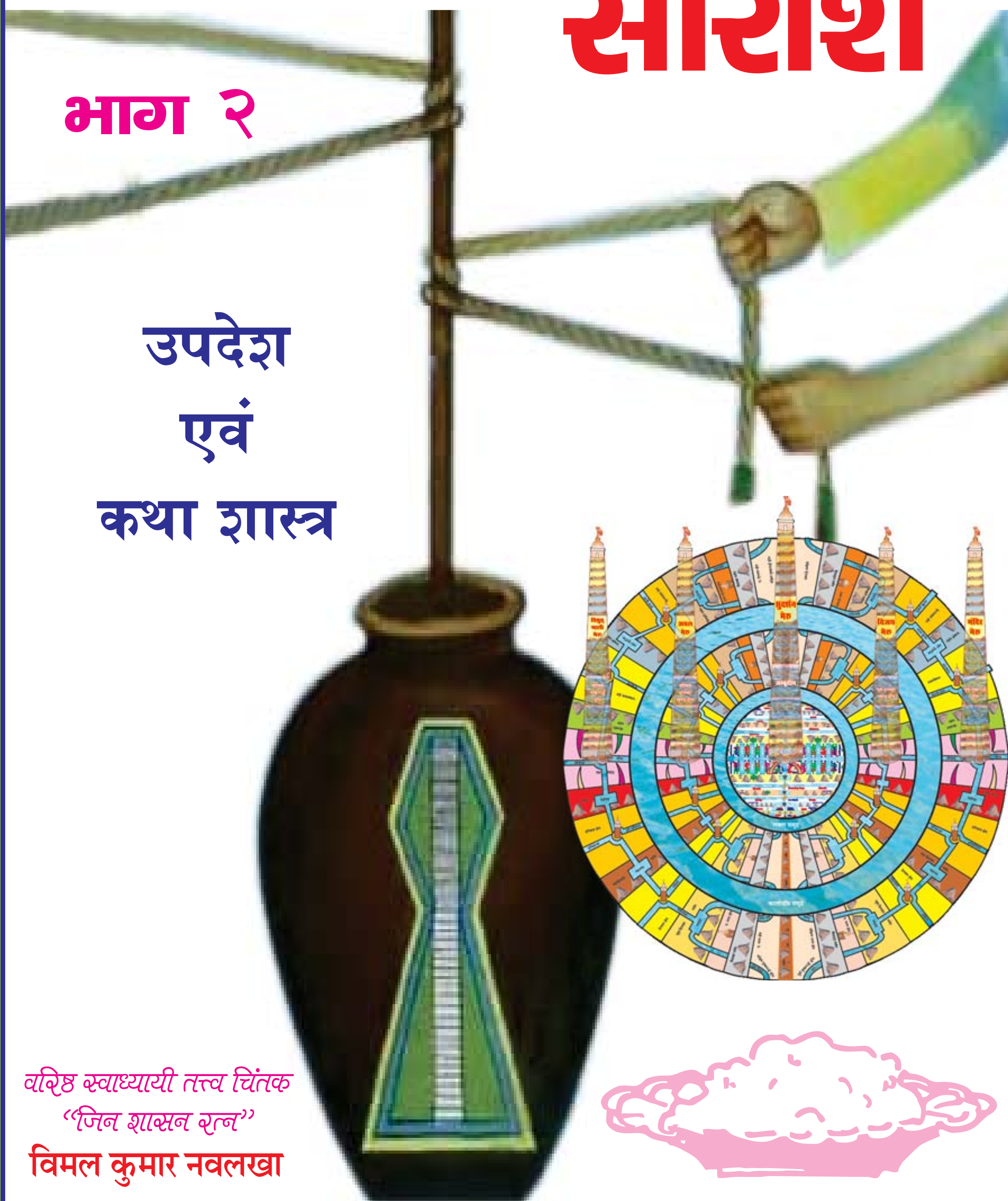

वरिष्ठ स्वाध्यायी तत्त्व चिंतक
"जिन शासन रत्न"
विमल कुमार नवलखा

जैनागम सारांश

32 जैन आगमों का हिन्दी में (चित्र एवं चार्ट सहित)

(भाग-2 उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग)

प्रेरणा पुंज

*गणाधिपति महास्थविर विद्वद्वर्य **श्री शान्तिमुनिजी म.सा.***

*शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, **आचार्यप्रवर श्री विजयराजजी म.सा.***

की 50वीं दीक्षा जयंति (स्वर्ण जयंति) वर्ष के पावन शुभअवसर पर

मार्गदर्शक

आगम ज्ञाता विद्वद्वर्या बहिन साध्वी युगल

*महासती **श्री शीलप्रभाजी म.सा.*** **की 31वें दीक्षा वर्ष उपलब्धि एवं**

*महासती श्री **सत्यप्रभाजी म.सा.*** **की 25वीं दीक्षा जयंति (रजत जयंति) वर्ष के शुभअवसर पर**

लेखक एवं संपादक

विमल कुमार नवलखा (जगपुरावाला)

29-30-31, चिराग रेसिडेन्सी, कीम (पूर्व)

जिला-सूरत (गुज.)

मो. : 9426883605 e-mail : vimalnavlakha54@gmail.com

प्रकाशक

नवकार इन्टरनेशनल (नवलखा ग्रुप)

एक्सपोर्ट हाउस, अहमदाबाद (गुज.)

पुस्तक	-	जैन आगम सारांश
		(भाग-2) उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग
संप्रेरक	-	गणाधिपति महास्थविर विद्वद्वर्य **श्री शान्तिमुनिजी म.सा.**
		शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, **आचार्यप्रवर श्री विजयराजजी म.सा.**
प्रेरणा एवं मार्गदर्शक	-	बहिन साध्वी युगल **श्री शीलप्रभाजी म.सा. एवं श्री सत्यप्रभाजी म.सा.**
लेखक	-	विमल कुमार नवलखा
प्रकाशक	-	नवकार इन्टरनेशनल (नवलखा ग्रुप)
पुस्तक प्राप्ति	-	विमल कुमार नवलखा
		29-30-31, चिराग रेसीडेंसी, कीम (पूर्व), सूरत (गुज.)
मुद्रक	-	स्वदेशी ऑफसेट, उदयपुर (राज.)-313001
		E-mail : swadeshioffset@gmail.com
		Mo. : 09784845675
मूल्य	-	ज्ञानार्जन

शुभ–आशंषा

– आचार्य श्री विजय गुरूदेव

वचनों का सार प्रवचन है, प्रवचनों का सार आगम है, आगमों का सार क्या है ? इस सवाल के जवाब में गुरू फरमाते हैं–अनुभव सम्मत आचरण ही आगमों का सार है, आगम दूध की तरह होते हैं, दूध के हर अंश में मलाई है मगर वह दूध के अंश जितनी ही है। जब सम्पूर्ण दूध को मथते है तो दूध के सारे अंशों से मलाई का हिस्सा निकलता है मगर जितना दूध है उतनी मलाई नहीं होती, उस मलाई में दूध का सारा भाग आ जाता है वैसे आगमों का सार आचरण है। उस आचरण में आगम का सम्पूर्ण सार आ जाता है, बस अपना आचरण आगम सम्मत हो और अनुभव सम्मत हो, उस आचरण को आगम सम्मत बनाने के लिए विद्वान्, श्रुत आराधक भाई विमल जी नवलखा वर्षों से प्रयत्नशील है। समय–समय पर आप अपनी प्रतिभा से आगमों के सारांश को प्रस्तुत करते रहे हैं। आप हमारे संघ की साध्वीरत्ना महासती श्री शीलप्रभा जी म.सा., महासती श्री सत्यप्रभा जी म.सा. के सांसारिक अग्रज भ्राता है। महासतीद्वय भी प्रतिभाशाली है और प्रवचनों व लेखन के माध्यम से साहित्यश्री की अभिवृद्धि में सतत पुरूषार्थरत रहती है।

श्रीमान् नवलखा सा. अपनी योग्यता व प्रतिभा से शासन सेवा में समर्पित रहे यही अंतरंग आशा व अभिलाषा है।

अनुमोदना

अनन्तकाल से जीव जड़ के संयोग को अपनत्व समझकर मोहपाश में बंधकर, चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। पुण्य से बंधन में वह देव एवं मनुष्य गति में तथा पापाचरण के कारण तिर्यंच एवं नरकायु को भोगता है। अज्ञान, मोह, कषाय, मिथ्यात्व के कारण यह परिभ्रमण अनवरत चला आ रहा है।

आत्म तत्त्व के बारे में चिंतन हुआ ही नहीं क्योंकि इतने पुण्यायु बंधी पुण्य का संग्रह भी शायद हुआ नहीं कि मनो भावनाएं उस ओर प्रगति कर सके। मनुष्य भव अति दुर्लभ है और ''चतुरंगाणि परमंगाणि'' के न्याय स्वरूप आत्म तत्त्व की ओर हो गया, वह मानो भव सागर तिरने की कगार पर आ गया।

आगम बत्तीसी के 32 आगमों में सम्यग ज्ञान, दर्शन चरित्र एवं तप का विशद विश्लेषण किया गया है, निगोद से मोक्ष तक की जीवन यात्रा का स्वरुप तात्त्विक रुप से समझाया गया है, चतुर्विध संघ के आचार-विचार, व्यवहार को दिग्दर्शित किया गया है, इनको आचार शास्त्र विभाग, उपदेश एवं धर्म कथा शास्त्र विभाग एवं तत्त्वज्ञान शास्त्र विभाग में संयोजन करके गंभीर विषय को सरलता से संक्षिप्त सारांश रुप देकर उत्कृष्ट कार्य किया है।

हमारे सांसारिक अग्रज भ्राता श्री विमल कुमारजी नवलखा वरिष्ठ स्वाध्यायी हैं और आगम आदि पठन-पाठन में गाढ़ रूचि रखते हैं, पूर्व में आगम बत्तीसी सारांश (हिन्दी संस्करण), पर्युषण में प्रवचनोपयोगी 'अन्तर्मन के मोती' थोकड़ों के लिए जैन तत्त्व दर्शन, जैन आगमों में मध्यलोक, संलेखना संथारा जैनागमों में लोकस्वरूप आदि का विशिष्ट संकलन कर समाज को लाभान्वित कर स्वयं की आत्मा को भावित करते आ रहे हैं, यह हमारे लिए भी गौरवपूर्ण है। प्रस्तुत ग्रंथ ''जैनागम सारांश'' चार भागों में प्रकाशित कराया है, बहुत मनोहर है, चित्र एवं चार्ट आदि से वस्तु तत्त्व को अच्छी तरह से समझाया गया है, हमने भी इनका अवलोकन किया कार्य स्तुत्य है, हम अनुमोदना प्रेषित कर भावी जीवन की आध्यात्मिक मंगल कामना करते हैं।

बहिन साध्वी द्वय

दिनांक : 1 जून, 2024 **शीलप्रभा एवं सत्यप्रभा**

आचार्य शिवमुनि

मंगल संदेश

समस्त जिनवाणी का सार एक शब्द में कहे तो 'मैं जीवात्मा हूँ।' आत्मा को केन्द्रिभूत रखकर समस्त तीर्थकर जिनवाणी प्रदान करते है। जीव मात्र के कल्याण के लिए तीर्थकर देशना प्रदान करते है।

जीव का मिथ्या दर्शन है की वह अपने को छोड़कर अजीव तत्व को, पर तत्व को, देह को अपना मानकर, देह के लिए विभाव में जाता है और अपना स्वभाव छोड़कर कर्त्ता-भोक्ता बनता है, क्रिया-प्रतिक्रिया करता है, कषाय की उत्पत्ति करता है और चार गति चौरासी लाख जीवायोनि में यात्रा कर रहा है।

जीव में अष्ठ गुणों की सम्पदा होते हुए भी प्रकट नहीं रही, उसका मूल कारण है मिथ्या दर्शन। जो सब पापों का मूल है, आस्रव का मूल कारण है। सभी तीर्थंकरों ने सम्यक्त्व का, सत्य का बोध करवाया, जीव को उसके स्वरूप का बोध करवाया और उसमें स्थित होने की विधि प्रदान की।

अस्तित्व का बोध, उस पर श्रद्धा, भेद-विज्ञान व आत्म स्थिरता ये मोक्ष मार्ग की सीढ़िया है। आत्मार्थी साधकों को इस विधि का प्रयोग करते हुए आत्म ध्यान के प्रयोग सीखकर भेद-विज्ञान प्राप्त कर क्षायिक सम्यक्त्व का पुरूषार्थ करते हुए केवल ज्ञान की ओर बढ़ना चाहिए। मिथ्यात्व व मोह का त्याग, वैराग्य के द्वारा वीतरागता की ओर बढ़ते जाए।

जिनवाणी का पारायण करते हुए 32 आगमों के नवनीत को वरिष्ठ स्वाध्यायी जिनशासन रत्न श्री विमलकुमार जी नवलखा द्वारा जैनागम सारांश चार भागों में प्रकाशित होने जा रहा है। आपका उत्तम पुरूषार्थ अनुमोदनीय है, प्रशंसनीय है। जिनवाणी रसिक चतुर्विध संघ से अनुरोध है आगम सारांश का स्वाध्याय कर हेय, ज्ञेय, उपादेय को ध्यान में रखकर आत्म कल्याण के क्षेत्र में आगे बढ़े।

सहमंगल मैत्री,

दिनांक -: 11-04-2024

स्थान -: आत्म भवन, अवध संगरीला, सूरत (गुजरात)

शिवमुनि

(आचार्य शिवमुनि)

www.jainacharya.org
shivacharyaji@yahoo.co.in
09350111542
http://www.facebook.com/shivmuni
http://www.twitter.com/jainacharya
http://acharyashivmuni.blogspot.in/
http://www.youtube.com/jainacharyaji
JAINACHARYA

लेखक के दो शब्द

परम पूज्य, परम कृपालु, देवाधिदेव, चरम तीर्थंकर, भगवान महावीर स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त कर सतत् परोपकार में रहकर धर्मदेशना रूपी अमृत का दान जगत के जीवों के लिए किया।

केवलज्ञान से सर्व अर्थों को जानकर उसमें जो प्रज्ञापनीय अर्थ हैं, उन्हें प्रभु फरमाते हैं। गणधर भगवंत उस ''आगम वाणी'' को झेलकर सूत्र रूप गुंथित करते हैं, यह सूत्र रूप रचित पदार्थ यानि श्रुतज्ञान।

जगत में दो प्रकार के पदार्थ हैं, (1) अनभिलाप्य (नहीं कह सकने वाले) (2) अभिलाप्य (कह सकने वाले)। जो कहे जा सकें उनके भी दो विभाग हैं (1)अप्रज्ञापनीय (जो समझाये (बताये) न जा सके) (2) प्रज्ञापनीय (बताये या समझाये जा सके)।

अभिलाप्य पदार्थों से अनभिलाप्य पदार्थ अनंत हैं, अभिलाप्य कम हैं, थोड़े हैं, अप्रज्ञापनीय उनसे भी कम हैं, प्रज्ञापनीय पदार्थ अल्प हैं, फिर भी यह अल्पता अत्यन्त विशाल है। ऐसे अभिलाप्य-प्रज्ञापनीय पदार्थों का संग्रह यानि ''आगम ग्रंथ''।

आगम यानि समुद्र का मंथन जिनका अवगाहन दुष्कर, अति दुष्कर है। सामायिक से लेकर बिन्दुसार नामक 14वें पूर्व तक श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान का सार चारित्र है, और चारित्र का सार मुक्ति (मोक्ष) सुख है।

अगाध जलराशि से परिपूरित समुद्र में से रत्न खोजना अति कठिन, दुष्कर कृत्य है, फिर भी उस महाभयावह वारिधि में से भी रत्न जिज्ञासु खोजने के लिए तत्पर होकर रत्नों की प्राप्ति कर ही लेते हैं। तलस्पर्शी अभ्यास करने वाले महान् आत्मार्थी मनीषियों ने ''आगम भंडार'' वाचकों के समक्ष रखकर महान् उपकार किया है।

तत्त्वरूपी ''रत्न'' ये आगम ग्रंथ हमारे समक्ष विद्यमान हैं, उपकारियों ने शास्त्रों के माध्यम से ''अदृष्ट जगत'' के दर्शन कराकर हम पर उपकार किया है।

जैन शासन के चारों अनुयोग द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, कथानुयोग, चरणकरणानुयोग का एक महान् संकलन आगम सारांश में कर दिया है। इस ज्ञानार्णव को विषय प्रतिपादन कौशल्य से 4 विभागों में विभक्त कर, समस्त विषय का सम्पूर्ण विवेचन पूर्वक वर्णन इस में किया है।

तत्त्वज्ञान अत्यंत जटिल विषय है, फिर भी चार्ट आदि एवं चित्रादि के माध्यम से सरल पठनीय शैली से सम्पादन करने की कोशिश की है।

सम्पूर्ण लोक के समस्त पदार्थों का समुचित दिग्दर्शन जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि जगत के तत्त्वों, पदार्थों को एक ग्रंथ में समाकर ''गागर में सागर'' की युक्ति को कृतार्थ की है।

विषय वस्तु- जैनागमों में विस्तृत एवं यत्र तत्र बिखरे पुष्पों को एकत्रित कर विषयानुकूल सम्पादन करने की चेष्टा करते हुए आचार, संस्कार, उपदेश, कथाशास्त्र एवं तत्त्वज्ञान को इस ग्रंथ में यथास्थान प्रस्तुत किया है। सभी का पारस्परिक

संयोजन होने से एक दूसरे की वक्तव्यता में एक दूसरे का संदर्भ भी आवश्यकतानुसार दिया है। पाठकों को संदर्भ की उचित जानकारी हो सके यही मंतव्य रहा है।

32 जैनागमों का विस्तृत वर्णन पढ़कर, उनमें से सार रूप ग्रहण कर पाठकों के समक्ष रखना, और उसे सुरुचि, पूर्व बनाना यह अत्यन्त दुष्कर था. परन्तु ''जहाँ चाह वहां राह'' की उचित को चरितार्थ करते हुए यह कदम उठाया और वर्षों तक रही हुई लालसा को पूर्ण किया।

सन् 1987 से 1992 तक के पांच वर्षों में श्रद्धेय त्रिलोक मुनि ने अति परिश्रम करके मेरे इस भगीरथ कार्य को पूर्ण किया था, उनेक स्वर्गवास के पश्चात पुनः इसकी जरूरत महसूस हुई, और इस कार्य को नवीनतम रूप देकर चित्रों एवं सारणियों, चार्टो का समावेश करके इस आगम सारांश लेखन को पुनः गतिमान किया, इस ज्ञान गंगा को सर्वत्र पहुंचाने एवं इस आगम रस से आप्लावित करने के इस पुण्योपार्जन में मेरी सुज्ञा बहिन साध्वि द्वय परम् विदुषी श्रद्धेय शील प्रभाजी म.सा. एवं आगम ज्ञाता पंडित रत्न श्री सत्य प्रभाजी म.सा. विशेष योगदान रहा, चित्र, सारणियों, चार्ट ये सभी उन्हीं की आगम ज्ञान पिपासा की झलक है।

महास्थविर गणाधिपति, प्रकांड पंडित, आगम मर्मज्ञ, विद्वदवर्य श्री शांति मुनि जी म.सा. एवं शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, जिन शासन के अनमोल रत्न आचार्य प्रवर श्री विजयराज जी म.सा. के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से आगम सारांश का लेखन, सम्पादन का कार्य बड़ी ही उमंग, उत्साह से प्रारंभ किया और सभी गुरूजनों के ज्ञान प्रकाश तले यह कार्य उत्तरोत्तर करता रहा।

32 आगमों की विषय वस्तु को मैंने 3 भागों में विभक्त करने का प्रयास किया **यथा–** 1.आचार शास्त्र विभाग, 2. उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग 3. तत्त्व ज्ञान विभाग। तत्त्वज्ञान विभाग अत्यन्त विस्तृत होने से इसे दो भागों में विभक्त किया। इस प्रकार 4 भाग बनाये गये। यथा-

1. आचार शास्त्र विभाग– आचारांग सूत्र आवश्यक सूत्र एवं चार छेद सूत्रों के साथ दशवैकालिक सूत्र तथा चूलिकाएं एवं सूत्रकृतांग सूत्र का समावेश कर इनके परिशिष्टों के साथ संयोजन करके लेखन सम्पादन किया, इससे साधु-साध्वियों के आचार आदि का विस्तृत प्रथम भाग में नियोजन किया गया है। पासत्थादि का विवेचन देकर प्रथम भाग को सुरुचि पूर्ण बनाया है। सर्वप्रथम आचारांग सूत्र एवं उसके परिशिष्ट, आवश्यक सूत्र एवं उसके परिशिष्ट तथा 4 छेद सूत्र उनके परिशिष्ट और साथ में पासत्थादि, नियंठा स्वरूप आदि का समावेश कर विस्तृत एवं रोचक तथा शास्त्रीय प्रमाणादि देकर सुरूचिपूर्ण बनाया।

2. उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग– यह विस्तृत सूत्रों का विभाग है, इसमें, अंग, उपांग एवं मूल सूत्रों का संयोजन करके नंदी सूत्र की कथाएं, परिशिष्ट आदि देकर अत्यंत रोचक पठनीय, मननीय, उपदेशात्मक बनाया है। उपासक दशा अन्तकृत दशा जैसे उपदेशी सूत्रों का संकलन चतुर्दिध संघ के लिए अप्रतिम भेंट स्वरूप विभाग प्रदान करने की भरपूर कोशीश की है। इस भाग में नन्दी सूत्र इसकी कथाएं अनुयोग द्वार सूत्र आदि मूल सूत्रों के साथ औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीय एवं 5 उपांग सूत्रों के साथ, ज्ञाता धर्म कथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, प्रश्न व्याकरण, विपाक सूत्र, अनुत्तरोपपातिक आदि अंग सूत्रों का महा समायोजन करके 15 सूत्रों का सारांश लिखकर, पर्युषण सम्बन्धी रोचक व्याख्यान सामग्री अन्तकृत सूत्र के साथ देकर इस ग्रंथ भाग को जिज्ञासा मय बनाया है।

3. तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-1 इसमें उत्तराध्ययन सूत्र, अंग सूत्रों में से ठाणांग एवं समवायांग आदि गणितीय सूत्रों का समावेश करके उपांग सूत्रों में से जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति, ज्योतिषगण राज प्रज्ञप्ति (चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति) एवं जीवाजीवाभिगम सूत्र का विवेचन विस्तृत करके चार्ट एवं चित्रादि देकर अति रोचक पठनीय बनाया है। भ्रान्तियां निवारण करने, द्विअर्थी शब्दों, नक्षत्र भोजन आदि के बारे में निराकरण करके स्वमत स्थपित किया है। गुणस्थान प्रकरण देकर इस भाग को अति रोचक बनाया है।

4. तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-2- इस विभाग में प्रज्ञापना सूत्र, भगवती (व्याख्या प्रज्ञप्ति) सूत्र जैसे अति विशाल सूत्र शास्त्रों का दोहन करके तत्त्वज्ञान जैसे अपार ज्ञान भंडार को श्री संघ के सम्मुख पठनीय, मननीय, ज्ञेय बनाकर प्रस्तुत करना महान् चुनौति भरा कार्य था, इसलिए इस चौथे खण्ड को पूर्णतः अलग करके अलग ग्रंथ रूप देने का विचार करके, इसे अति भव्य बनाने के लिए चार्ट एवं चित्रादि देकर इसे साधु-साध्वी एवं अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों, पी.एच.डी. तथा डॉक्टरेट (D.Lit.) करने वाले भव्य जनों के लिए अति सरल एवं सरस पाठ्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया है। इसका श्रेय मेरी अत्यन्त आदरणीय सुज्ञ आगम मर्मज्ञ विदुषी साध्वी रत्ना बहिन द्वय श्री शीलप्रभाजी म.सा. एवं सत्यप्रभाजी म.सा. को देता हूँ, जिनके अथक परिश्रम, मार्गदर्शन एवं सत्प्रेरणा से अत्यंत सुलभ हो गया, जिससे सागर को गागर में भरकर विद्वान पाठकों के समक्ष रख सका।

आगम सूत्रों की विषय वस्तु की गहनता, अनेकार्थता को सुगम्य बनाने हेतु आवश्यकतानुसार परिशिष्ट देकर रोचकता और अर्थ ग्रहण को सुरुचि पूर्ण बनाने एवं द्वि अर्थ सूचक और अन्य मतावलम्बियों के प्रक्षिप्त संदेहात्मक शब्द रचनाओं को भी पारदर्शक और स्वमतानुसार बनाने का भी श्रम किया। विवादास्पद शब्द रचनाओं के प्रति सजग रहते हुए कहीं कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, उसके लिए मैं विद्वदवर्य पाठक गण से क्षमा प्रार्थी हूं। स्वमत रखने के लिए अन्य मत का या द्विअर्थी शब्द रचनाओं का खण्डन आवश्यक होता है। इसी को ध्यान में रखते हुए, स्वमत प्रतिष्ठित करने का प्रयास मात्र है।

विशालतम आगम साहित्य को संक्षिप्त और सरल हिन्दी भाषा में समस्त जन समुदाय के लिए उपयोगी बने, ऐसा विचार करके ये सारांश प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे पूर्व भी कई रचनाएं प्रस्तुत की पर्युषण पर्वराधना में स्वाध्यायियों के लिए उपयोगी 'अन्तर्मन के मोती' थोकड़ो के लिए उपयोगी 'जैन तत्त्व दर्शन' भाग 1 एवं 2, 'जैनागमो में मध्यलोक' भूगोल संबंधी, 'जैनागमों में लोक स्वरूप' भाग 1 एवं 2 लोक द्रव्य क्षेत्र काल भाव का दिग्दर्शन करने हेतु, जैनागमों में उत्कृष्ट एवं संलेखना संथारा ये रचनाएं समाज के समक्ष रखते हुए अत्यधिक आनन्द का अनुभव हुआ।

उक्त नवीन रचना जैनागम सारांश 4 खण्डों में प्रस्तुत कर आप सभी के समक्ष रखते हुए अपार आनन्द और हर्ष की अनुभूति हो रही है, मानो वत्स अपने अभिभावकों के श्री चरणों में पुष्प अर्पित कर रहा है।

इस आगम सारांश रचना को अध्ययन करते समय इसमें कोई त्रुटि नजर आये तो उसे सुधार कर पढ़ने का अनुनय करता हूँ और अल्पज्ञ समझ कर मेरी भूलों के लिए मुझे क्षमा करने का वृहद् हृदय रखें। जिनाज्ञा के विपरीत या विरूद्ध एक शब्द भी लिखने में आया हो तो अरिहन्त सिद्ध भगवन्तों की साक्षी से सभी से करबद्ध क्षमा याचना।

विमल कुमार नवलखा (जगपुरा)

कीम, पीपोदरा सूरत

प्रकाशन सहयोगी दान दाता

21000/-	श्रीमान् रमेशचन्द्रजी सा. ओमप्रकाशजी सा. हीरालालजी सा. मांडोत, खमनोर, अंकलेश्वर
21000/-	श्रीमान् गणपतलालजी सा. विशाल कुमारजी सा. भलावत, रायपुर (भीलवाड़ा) टिम्बा श्रीमान् मनोहरलालजी सा. दिनेश कुमारजी सा. पंकज कुमारजी सा. आंचलिया, रायपुर, धोरण पारड़ी श्रीमान् राजेन्द्र कुमारजी सा. संजय कुमारजी सा. चेतन कुमारजी सा. बोल्या, रायपुर, लाड़वी-मुम्बई, नेरोल
15000/-	श्रीमान् सुरेश चन्दजी सा. दीपक कुमारजी सा. नाहर, लाम्बिया, ब्यावर, अंकलेश्वर
11000/-	श्रीमान् जीवनसिंहजी सा. चण्डालिया, महाराणा परिवार, घासा, बारडोली
11000/-	श्रीमान् सुरेश कुमारजी सा. जीवन सिंहजी सा. दिलीप कुमारजी सा. बाबेल, राशमी, कामरेज
11000/-	श्रीमान् चन्द्रसिंहजी सा. प्रशांत कुमारजी सा. मयंक कुमारजी सा. बाबेल डूंगला, कामरेज
11000/-	श्रीमान् गौतम कुमारजी सा. अर्पित कुमारजी सा. बोहरा, बर (ब्यावर), कोयम्बटूर
11000/-	श्रीमती मदनबाई श्रीमान् मांगीलालजी सा. सौ. कल्पनाजी श्री कांतिलालजी सा. रांका, पूना
11000/-	आगममर्मज्ञा डॉ. चेतनाजी म.सा. के पास अध्ययन रत विरक्ता कु. पूजा की ओर से
11000/-	श्रीमान् धनराजजी सा. राजकुमारजी सा. समर्थ कुमारजी सा. भंडारी, अरेठ, बारडोली, ब्यावर
6000/-	श्रीमान् अंकित कुमारजी सा. निशांत कुमारजी सा. कोठारी, रायपुर, भीलवाड़ा
5100/-	श्रीमान् प्रकाशचन्दजी सा. पल्केशजी नमनजी सा. कटारिया, पाली मारवाड़
3000/-	श्रीमान् प्रेमसिंहजी सा. शर्मिष्ठ कुमारजी सा. प्रशांत कुमारजी सा. बुरड़, बारडोली
2100/-	श्रीमान् पारसमलजी सा. सचिन कुमारजी सा. मेहता, पाली मारवाड़
2100/-	श्रीमती कंचन बाई स्व. श्री शांतिलालजी सा. कोठारी, देवगढ़, कामरेज
7500/-	श्री जैन दिवाकर महिला परिषद्, चित्तौड़गढ़ (महासती जय श्रीजी म.सा. की प्रेरणा) श्रीमती अंगूरबालाजी प्रेम कुमारजी सा. भड़क्त्या, अध्यक्ष, चित्तौड़गढ़ श्रीमती नगीनाजी राकेशजी मेहता महामंत्री, चित्तौड़गढ़ श्रीमती नीलमजी संदीपजी तरावत, उपाध्यक्ष, चित्तौड़गढ़ श्रीमती सीमाजी सुनीलजी सिपाणी कोषाध्यक्ष, चित्तौड़गढ़ श्रीमती पुष्पाजी छीतरमलजी चण्डालिया, चित्तौड़गढ
1500/-	श्रीमान् ललित कुमारजी सा. स्व. श्री लक्ष्मीलालजी सा. भलावत, रायपुर, कीम
1500/-	श्रीमती रेखाजी श्रीमान् मुकेश कुमारजी सा. अम्बालालजी सा. रांका, राजाजी का करेड़ा, अहमदाबाद
1500/-	श्रीमती कंचनदेवीश्री किशनलालजी सा. विपिन कुमारजी सा. तातेड़, डिंडोली, चित्तौड़गढ़, थाणे, मुम्बई
1500/-	श्रीमान् दिनेश कुमारजी सा. जैन, 8-वीर नगर, दिल्ली रोड मेरठ (यू.पी.)
1500/-	श्रीमती मधुजी श्री प्रदीप कुमारजी सा. मठ्ठा, सेंती, चित्तौड़गढ़
1500/-	श्रीमान् राजेन्द्रजी सा. पुखराजजी सा. कटारिया, बेलगाम (कर्नाटक)
1500/-	श्रीमान् प्रकाशजी, पिंटू कुमारजी, प्रिंस कुमारजी कोठारी, देवगढ़, कामरेज
1500/-	श्रीमती प्रेमलताजी श्रीमान् भोपालसिंहजी सा. सांखला, आरणी, कामरेज
1500/-	श्रीमान् विनोद कुमारजी सा. नमन कुमारजी सा. दर्शन कुमारजी सा. बोरदिया, चेनपुरा, कीम

अनुक्रमणिका

I **नन्दी सूत्र**	1
स्तुति गुणग्राम	
14 प्रकार के श्रोता	1
पांच ज्ञान	3
1. मतिज्ञान	4
श्रुतनिश्रित विज्ञान	4
जाति स्मरण ज्ञान	4
अश्रुत निश्रित मति ज्ञान	5
विशेष	5
मतिज्ञान का विषय	5
2. श्रुतज्ञान	5
श्रुतज्ञान के 14 भेद	6
विशेष विचारणा	8
अध्ययन, श्रवण के 8 सूत्र	9
3. अवधिज्ञान	9
अवधिज्ञान के 6 भेद	10
जघन्य एवं उत्कृष्ट विषय	
4. मनःपर्यवज्ञान	11
मनःपर्यवज्ञान के प्रकार	
मनःपर्यवज्ञान का विषय	12
परिशेष वार्ता	
अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान की तुलना	
5. केवलज्ञान	13
केवलज्ञान का विषय	
भगवती एवं नंदी सूत्र में ज्ञान विषय	14
परिशिष्ट -	15
ठाणांग में कतिपय परिचय	15
नन्दी सूत्र का कथा विभाग	16
औत्पातिकी बुद्धि के 37 दृष्टांत	16
वैनयिकी बुद्धि के 8 दृष्टांत	26
कर्मजा बुद्धि के दृष्टांत	30
पारिणामिकी बुद्धि के 16 दृष्टांत	31
II **अनुयोग द्वार सूत्र**	37
प्रस्तावना नाम अर्थ विचारणा	37
विषय संकलन	38
अनुयोग एक चिंतन एवं परंपरा एवं व्यवस्थाएं	40
अनुयोग का विषय ज्ञान	48
आवश्यक का अनुयोग	48
श्रुत का अनुयोग	49
स्कंध का अनुयोग	50
अध्ययन का अनुयोग	51
अनुयोग के 4 द्वारों का वर्णन	51
उपक्रम के 6 प्रकार	52
आनुपूर्वी के 10 प्रकार	52
नाम द्वार	55
1. नाम के 10 प्रकार	55
26 भंग	56
मान प्रमाण	59
उन्मान प्रमाण	59
अवमान प्रमाण	59
गणिम पमाण	60
प्रतिमान प्रमाण	60
2. क्षेत्र प्रमाण	60
आत्मांगुल, उत्सेधांगुल प्रमाणांगुल	60
काल प्रमाण	62
उपमा द्वारा काल प्रमाण	63
पल्य की उपमा	63
संख्याता, असंख्याता अनंत के भेद	66
शलाका, प्रतिशलाका, महाशलाका	67
असंख्याता, अनंत का प्रमाण	68

3. निक्षेप द्वार	69
भाव निक्षेप	69
चार निक्षेपों का रहस्य एवं व्यवहार	71
अनुगम द्वार	72
सामायिक का 26 द्वारों में अनुगम	72
4. नय द्वार	74
7 नय	74
दृष्टांतों द्वारा नय स्वरूप	75
स्याद्वाद, अनेकांतवाद	79
III **ज्ञाता धर्म कथा सूत्र**	80
सूत्र परिचय	
प्रथम श्रुत स्कंध	80
प्रथम अध्ययन मेघ कुमार	80
दूसरा अध्ययन धन्ना सेठ विजय चोर	84
तीसरा अध्ययन अण्डे का दृष्टांत	86
जिनदत्त सागर दत्त	
चतुर्थ अध्ययन कछुए का दृष्टांत	88
पंचम अध्ययन-शैलक राजर्षि	89
छठा अध्ययन-तूम्बे का दृष्टांत	92
सप्तम अध्ययन-धन्ना सार्थवाह एवं बहुएं	93
आठवां अध्ययन-मल्लि भगवती,	95
तीर्थंकर नामकर्म के 20 बोल	
नौवां अध्ययन जिनपाल जिन रक्षित	103
दसवां अध्ययन चन्द्र का दृष्टांत	106
ग्यारहवां अध्ययन दाव द्रव का दृष्टांत	108
बारहवां अध्ययन जितशत्रु राजा सुबुद्धिप्रधान	109
तेरहवां अध्ययन नन्द मणियार	111
चैदहवां अध्ययन तेंतली पुत्र प्रधान	113
पंद्रहवां अध्ययन नन्दी फल	116
सौलहवां अध्ययन द्रौपदी	117
सत्रहवां अध्ययन अश्व का दृष्टांत	123
अठारहवां अध्ययन सुंसुमा बालिका	126
उन्नीसवां अध्ययन पुण्डरीक कण्डरीक	129
उन्नीस अध्ययनों का हार्द	132
दूसरा श्रुत स्कंध	
काली देवी	134
10 वर्गों का वर्णन	136
परिशिष्ट -	137
समाधिमरण संलेखना संथारा	
संथारा कब आवश्यक	138
IV **उपासक दशा सूत्र**	140
प्रारंभिक	
प्रथम अध्ययन आनंद श्रावक	141
दूसरा अध्ययन कामदेव श्रावक	144
तीसरा अध्ययन चूलनी पिता श्रावक	147
चैथा अध्ययन सुरादेव श्रावक	148
पाँचवां अध्ययन चुल्ल शतक श्रावक	148
छठा अध्ययन कुंडकौलिक श्रावक	149
सातवां अध्ययन सकडाल पुत्र श्रावक	150
आठवां अध्ययन महाशतक श्रावक	151
नवमां अध्ययन नंदिनी पिता श्रावक	154
दसवां अध्ययन सालिहि पिता श्रावक	155
आगार धर्म श्रावक व्रत	155
श्रावक व्रतों का अधिकार	155
अनैतिक प्रवृत्तियों का त्याग	156
श्रावक की समझ एवं श्रद्धा	157
उदासीन वृत्ति का दृष्टांत	158
चावल की चूरी	158
श्रावक के आदर्श गुण	159
व्रतधारी क्यों बनें ?	160
बारह व्रतों के प्रयोजन	161
बारह व्रत	166
पन्द्रह कर्मादान	169
चार अनर्थ दंड	171

तीन मनोरथ चिंतन 175
चैदह (25) नियम 177
श्रमणोपासक धर्म आगम में 183
नौ तत्त्व 184
25 क्रियाएं 185
श्रावक के 21 गुण 186
श्रावक के 21 लक्षण 187
V **अन्तकृत दशा सूत्र**
सूत्र परिचय (आठ दिवसीय प्रवचन विभाजन)
प्रथम दिन 189
प्रथम वर्ग 190
प्रथम अध्ययन 190
गौतम कुमार
द्वारिका निर्माण
कृष्ण वासुदेव की समृद्धि
गौतम कुमार का जन्म दीक्षा मुक्ति
शेष 9 अध्ययन
दूसरा वर्ग 192
आठ अध्ययन
शिक्षा प्रेरणा
दूसरा दिन 193
तीसरा वर्ग 13 अध्ययन 193
1 से 6 अध्ययन नाग गाथापति 193
सुलसा के पुत्र 6 अणगार
7वां अध्ययन सारण 193
8वां अध्ययन गज सुकुमाल 194
तीसरा दिन 197
8वां अध्ययन गज सुकुमाल का जन्म
भिक्षुपड़िमा
मारणातिक उपसर्ग 199
चौथा दिन 201
कृष्ण का कोप
सौमिल की मृत्यु
नवमां अध्ययन सुमुरव 203
10 से 13 अध्ययन
चैथा वर्ग 10 अध्ययन
जालि आदि
पांचवा वर्ग 204
पद्मावती
द्वारिका दहन
कृष्ण अरिष्टनेमि प्रश्नोत्तर
अध्ययन 2 से 10 205
पांचवां दिन 206
छठावर्ग 206
भगवान महावीर के शासन के 13 अध्ययन
(1 से 3)
मंकाई किंकम 207
अर्जुन माली सुदर्शन श्रावक, दीक्षा 207
अर्जुन के परिषह उपसर्ग, मुक्ति 208
छठा दिन-छठा वर्ग 212
अध्ययन 4 से 14 212
15वां अध्ययन एवंता मुनिवर
माता पुत्र का संवाद 213
एवंता की दीक्षा, नावतिरी
एवता का मोक्ष 215
सातवां दिन 217
सौलहवा अध्ययन 217
अलक्षराजा 217
सातवां वर्ग 13 अध्ययन 218
श्रेणिक की नंदा आदि 13 रानियां, मोक्ष गमन
आठवां वर्ग 218
श्रेणिक की कालीराणी 218
आठवां दिन 220
श्रेणिक की अन्य 9 राणियां मोक्ष गमन

उपसंहार	225
मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख एवं अंतिम साधन	226
सूत्र के आदर्श	227
तपस्या विवरण यंत्र	227
भिक्षु की 12 पड़िमा	
श्री कृष्ण का जीवन जैनागमों में	230
व्याख्यानोपयोगी सामग्री	230
सूत्र एवं अर्थ	
VI **अनुत्तरोपपातिक सूत्र**	247
प्रस्तावना	247
प्रथम वर्ग 10 अध्ययन	248
जालि कुमार	
अभय कुमार	
दूसरा वर्ग 13 अध्ययन	249
तीसरा वर्ग 10 अध्ययन	249
धन्ना अणगार	249
VII **प्रश्न व्याकरण सूत्र**	252
प्रस्तावना	252
प्रथम श्रुत स्कंध	
प्रथम अध्ययन	254
1. हिंसा का स्वरूप	
हिंसा के पर्यायवाची शब्द	254
हिंसा के पाप कार्य	
हिंसा के प्रयोजन	255
हिंसक जीवों का मानस	256
नरक के दुःख	256
परमाधामी देवों कृत दुःख	257
तिर्यंच के दुःख	258
2. मृषावाद	259
पर्यायवाची	259
मृषावाद का फल	260
3. अदत्तादान	261
चोरी का स्वरूप	261
पर्यायवाची शब्द	262
चौर्य कर्म के प्रकार	263
इस भविक दुःख परिणाम	
4. अब्रह्मचर्य	264
पर्यायवाची शब्द	264
अब्रह्म का दुष्परिणाम	265
5. परिग्रह	266
पर्यायवाची शब्द	266
परिग्रहधारी	266
कटु परिणाम	268
उपसंहार	
दूसरा श्रुतस्कंध	269
प्रारंभिक	
पांच संवर का स्वरूप	269
1. अहिंसा का स्वरूप	270
पर्यायवाची शब्द	270
आहार चर्या	271
पांच भावनाएं	272
2. सत्य महाव्रत	274
सत्य स्वरूप	
पांच भावनाएं	275
3. अचौर्य महाव्रत	277
स्वरूप	
अचौर्य की 5 भावनाएं	278
4. ब्रह्मचर्य महाव्रत	280
ब्रह्मचर्य की महिमा	280
विघातक आचार	
ब्रह्मचर्य की 5 भावनाएं	281
5. अपरिग्रह महाव्रत	282
अपरिग्रह की 5 भावनाएं	285
उपसंहार	

परिशिष्ट-1	
भावनाओं का तुलनात्मक अध्ययन	287
परिशिष्ट-2 से 5	287
असत्य त्याग कथा	
VIII **विपाक सूत्र-**	301
प्रथम श्रुत स्कंध (दुःख विपाक सूत्र)	
प्रथम अध्ययन-मृगापुत्र	301
दूसरा अध्ययन-उज्झितक	303
तीसरा अध्ययन-अभग्न सेन	305
चौथा अध्ययन-शकट कुमार	306
पांचवां अध्ययन-वृहस्पति दत्त	308
छठा अध्ययन-नन्दीवर्द्धन	309
सातवां अध्ययन-उम्बर दत्त	311
आठवां अध्ययन-शौरिक दत्त	313
नवां अध्ययन-देवदत्ता	314
दसवां अध्ययन-अंजूश्री	316
द्वितीय श्रुत स्कंध (सुखविपाक सूत्र)	319
प्रथम अध्ययन-सुबाहु कुमार	319
2 से 10 अध्ययन-	320
परिशिष्ट-1	323
पाप पुण्य विचारणा	323
परिशिष्ट-2	325
शब्द एवं अर्थ	
परिशिष्ट-3	326
कर्म की अवस्थाएं	
परिशिष्ट-4	327
पुरूषार्थ से भाग्य परिवर्तन	
परिशिष्ट-5	329
एषणा के बैयालीस दोष	
घर का विवेक	
सूत्रों का श्लोक परिमाण	
IX **औपपातिक सूत्र-**	334
प्रस्तावना	334
प्रथम अध्ययन-समवसरण	336
चम्पा नगरी उद्यान	
कूणिक राजा	338
भगवान महावीर का वर्णन	340
भगवान महावीर की शिष्य संपदा	340
स्थविरों के गुण	340
देवों का आगमन	341
कूणिक राजा, जन समुदाय का आगमन	342
राणियों का आगमन	343
भगवान की देशना	343
निर्ग्रंथ प्रवचन का माहात्म्य	344
परिषद विसर्जन	345
द्वितीय अध्ययन-उपपात	346
गौतम स्वामी का वर्णन	346
वानप्रस्थ, कांदर्पिक, परिव्राजकों की गति	347
अम्बड़ के शिष्य, अंबड़ परिव्राजक	349
गौशाला	351
निन्हवों की उत्पत्ति	351
सात निन्हव उनके वाद	352
तिर्यंच श्रावक, गति	353
श्रमणोपासक मनुष्यों की गति	354
निर्ग्रंथ श्रमणों की गति	354
केवली समुद्घात	355
सिद्धों का स्वरूप	356
सिद्धों का सुख	357
परिशिष्ट-1	357
तप स्वरूप	357
ध्यान स्वरूप	365
X **राजप्रश्नीय सूत्र**	377
प्रथम खण्ड-	377

सूर्याभदेव	377
विमान एवं सुधर्म सभा	379
जन्माभिषेक	
द्वितीय खण्ड-	382
प्रदेशी राजा	382
चित्त एवं केशी श्रमण	382
केशी -प्रदेशी संवाद	385
राजा का परिवर्तन	391
शिक्षा एवं ज्ञातव्य	391
XI-XV **उपांग सूत्र**	395
निरयावलिका पंचक	395
सूत्र परिचय	395
प्रथम वर्ग- निरयावलिका (कप्पीया)	396
अध्ययन 1 से 10 (नरक गमन वाले)	
कोणिक का जन्म	
श्रेणिक के अशुभ दिन	
काल कुमार आदि का भविष्य	
दूसरा वर्ग-कल्पावतंसिका	398
1 से 10 अध्ययन (देव विमानों में जाने वाले)	
प्रथम अध्ययन-पद्मकुमार	398
शेष 9 अध्ययन	
तीसरा वर्ग (पुष्पिका)	400
1 से 10 अध्ययन	
चन्द्र देव	400
पूर्व भव एवं मनुष्य लोक में आगमन	400
दूसरा अध्ययन	400
सूर्य देव	
तीसरा अध्ययन	401
शुक्र महाग्रह	
चौथा अध्ययन	402
बहुपुत्रिका देवी	
पांचवां छठा अध्ययन पूर्ण भद्र, मणिभद्र	403
7 से 10 अध्ययन	
दत्त, शिव, बल, अनादृत	403
चौथा वर्ग-पुष्प चूलिका	404
10 अध्ययन 10 देवियां	
पांचवा वर्ग-वृष्णिक दशा	406
1 से 12 अध्ययन	
निषध आदि यदुवंशीयों का वर्णन	

नंदी सूत्र

स्तुति गुणग्राम-

(1) जगत् गुरू जगत् नाथ, जगत् बंधु, जगत् पितामह, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के विज्ञाता, अंतिम तीर्थंकर महात्मा महावीर जयवंत हो।

(2) जगत में भाव उद्योत करने वाले, देवदानवों से वंदित, कर्मों से मुक्त, वीतराग भगवान महावीर का (उनके शासन का) भद्र हो।

(3) 1 नगर की उपमा वाले 2 चक्र की उपमा वाले 3 रथ की उपमा वाले, 4 कमल की उपमा वाले 5 चन्द्र 6 सूर्य 7 समुद्र 8 मेरू की उपमा वाले महासंघ की सदा जय हो तथा ऐसे गुणागर संघ को वंदन हो।

(4) आदि तीर्थंकर ऋषभ देव से लेकर चरम तीर्थंकर भगवान वर्द्धमान स्वामी को एवं गणधरों को वंदन हो।

(5) निर्वाण मार्ग का पथ प्रदर्शक, सपूर्ण पदार्थों का सम्यग् ज्ञान कराने वाला , कुदर्शन-मिथ्यामत का मद नष्ट करने वाला, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का शासन जयवंत हो।

(6) भगवान के शासन को चालने वाले पट्टधर शिष्य एवं कालिक श्रुत और उसके अनुयोग (अर्थ परमार्थ) के धारण करने वाले बहुश्रुतों को वंदन नमस्कार हो। उनमें 1 सुधर्मा 2 जम्बू ये दो मोक्षगामी है शेष देवलोकगामी बहुश्रुत भगवंत हें। वे इस प्रकार है- 3 प्रभव 4 शयम्भव 5 यशोभद्र 6 सम्भूतविजय 7 भद्रबाहु 8 स्थूलभद्र 9 महागिरि 10 सुहस्ती, 11 बलिस्सह, 12 स्वाति, 13 श्यामार्य, 14 शाण्डिल्य, 15 समुद्र, 16 मंगू, 17 धर्म, 18 भद्र गुप्त, 19 वज्र, 20 रक्षित, 21 नन्दिल, 22 नागहस्ति, 23 रेवती नक्षत्र, 24 ब्रह्मदीपिक सिंह, 25 स्कंदिलाचार्य, 26 हिमवंत, 27 नागार्जुन, 28 गोविंद, 29 भूतदिन्न, 30 लोहित्य, 31 दूष्य गणी इनके अतिरिक्त और भी जो कालिक श्रुत के अर्थ परमार्थ को धारण करने वाले अनुयोगधर हुए है उन सभी को प्रणम करके ज्ञान की प्ररूपणा करूंगा । ये नाम न एकांत गुरू परंपरा के हैं, न स्थविर परंपरा के और न ही पाट परंपरा के हैं। सभी मिश्रित हैं। मुख्यता युग पुरूष प्रसिद्धि प्राप्त अनुयोग धरों का नाम लेकर अवशेष को अंतिम गााथा से प्रणाम किया हैं। अंतिम नाम दूष्यगणि का है खुद का नाम भी सूत्रकार ने मूल पाठ में नहीं रखा हैं। टीकाकार चूर्णिकार ने स्पष्ट किया है कि दूष्यगणी के शिष्य देववाचक देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण यह स्तुति करने वाले हैं वे ही सूत्र के रचियता हैं।

योग्यायोग्य श्रोता के चौदह दृष्टांत-

(1) मुद्गशैल- चिकना गोल पत्थर 7 दिन रात पुष्कलावर्त्त मेघ के बरस जाने पर भी अंदर से नहीं भींजता हैं। उसी प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी कोई शिक्षा जिसके अंतर हृदय में नहीं उतरती है वह शास्त्र, शिक्षा- उपदेश वचन श्रवण के अयोग्य हैं।

(2) चार प्रकार के घड़े होते है- 1 नीचे से फूटा, 2 बीच में से फूटा, 3 ऊपर से मूख फूटा, 4 अखंड। ये पानी धारण करने के लिए योग्यायोग्य हैं इसमें चौथा श्रेष्ठ हैं। वैसे ही सब कुछ धारण कर रखने वाला श्रोता श्रेष्ठ होता हैं।

(3) जैसे चालणी संपूर्ण पानी को ग्रहण कर निकाल देती है, वैसे ही सुना अनसुना कर सब साफ कर देने वाला पूर्णतः अयोग्य है।

(4) जैसे घृत छानने का साधन घी को निकाल कर केवल कचरा रखता हैं। उसी प्रकार जो गुणों को निकाल कर केवल दोषों को रखता है, यह अयोग्य श्रोता हैं।

(5) मिश्रित दूध पानी में से हंस केवल दूध को ही अलग करके पीता हैं। वैसे ही जो गुणों को ही ग्रहण करता है अवगुणों को छोड़ देता है वह उपदेश, श्रवण के योग्य होता हैं।

(6) भेंसा जिस तरह सारे पानी को हिलाकर गंदा करके स्वयं भी स्वच्छ जल नहीं पी सकता और दूसरों को भी नहीं पीने देता । वैसे ही अविनीत शिष्य आदि स्वयं भी शास्त्र या शिक्षा ग्रहण नहीं करते और दूसरों को भी ग्रहण नहीं करने देते, वे शास्त्र श्रवण के अयोग्य हैं।

(7) भेड़ शान्ति से घुटने टेक कर झुक कर पानी को नहीं हिलाते हुए स्वच्छ जल पीती है, वैसे ही जो स्वयं शांति से सुनते और दूसरों को भी सुनने देते वे श्रेष्ठ श्रोता हैं।

(8) मच्छर जैसे शरीर पर बैठते ही दुःख देता हैं। वैसे ही जो श्रोता आचार्य या उपदेष्टा को कष्ट पहुंचाता है, वह अयोग्य हैं।

(9) जैसे जलौका बिना कष्ट पहुंचाए खराब खून पी करके उसका सही परिणमन कर लेता है, वैसे ही जो आचार्य को कुछ भी कष्ट पहुंचाए बिना ईशारे मात्र से शिक्षा उपदेश ग्रहण कर लेते है, वे शास्त्र श्रवण के योग्य हैं।

(10) जैसे बिल्ली दूध को गिराकर बर्तन फोड़ कर धूल युक्त दूध पीती हैं। वैसे ही जो अंहकारवश आचार्य से न सुनकर इधर-उधर सुने सुनायों से सुनता है, वह भी अयोग्य हैं।

(11) जैसे विशिष्ट चूहा (जाहक) बर्तन में से थोड़ा-थोड़ा दूध पीकर आसपास में चाट कर साफ करता हैं। और फिर पीता है उसी तरह जो शिष्य कुछ सुनता, फिर मनन करता, फिर सुनता, वह उपदेश देने के योग्य हैं।

(12) चार ब्राह्मणों को एक गाय दक्षिणा में मिली। बारी-बारी से एक एक दिन चारों दूध निकालते। किन्तु अगले दिन दूसरे की बारी है, यों सोच कोई भी उसे चारा घास नहीं डालता, सार संभाल नहीं करता, आखिर वह गाय मर गई। वैसे ही जो आचार्य की सेवा करने में आलसी उदासीन होते है, दूसरों के भरोसे रहते है, वे शास्त्र श्रवण के अयोग्य हैं।

(13) श्री कृष्ण के पास देव द्वारा दी हुई विध्न विनाशक प्रभावक एक भेरी थी। जिसको बजाने से जहां तक उसके शब्द सुनाई पड़े वहां पर 6 मास तक कोई रोग उत्पन्न नहीं होता और पुराना रोग हो तो वह नष्ट हो जाता। भेरी 6 मास में एक बार बजाई जाती थी। दूर से आने वाले 6 मास निकालना भारी हो जाता । अतः भेरी रक्षक गुप्त रूप से पुरस्कार लेकर उस भेरी का छोटा टुकड़ा तोड़कर आगंतुक को दे देता और वहां दूसरा कुछ जोड़ जोड़ा कर ठीक कर देता। यों

करते-करते कंथा बन गई, उसका घोष भी कमढ हो गया, रोग नाशक प्रभाव भी मंद हो गया। भेरी का निरीक्षण करने पर भेद खुल गया उस भेरी रक्षक को निकाल दिया एवं देव की आराधना कर के कृष्ण ने दूसरी भेरी प्राप्त की। भेरी को खंडित करने वाला वह रक्षक अयोग्य था, वैसे ही जो शास्त्र में इधर-उधर के ग्रंथों के वाक्य मिला दे, घटा दे, प्रभावहीन कन्था-भेरी के समान शास्त्रों को विकृत करदे, वह भी शास्त्र श्रवण के अयोग्य होता है। दूसरे भेरी रक्षक ने बराबर संभाल की तो राजा ने उस पर खुश होकर उसकी आजीविका बढ़ा दी। वैसे ही योग्य शिष्य जिनवाणी का रक्षण कर जन्म जन्मांतरों तक सुख के भागी बनते हैं।

(14) अहीर और अहीरण गाड़ी में घी के घड़े भर कर नगर में ले गये। गाड़ी से उतरते समय दोनों की असावधानी से एक घड़ा गिर गया। जिससे घी जमीन पर गिर गया। दोनों एक दूसरो पर आक्षेप प्रत्याक्षेप करने लगे अपनी भूल नहीं मानने से विवाद बढ़ता गया। तब तक कुत्ते घी चट कर गये। फिर कुछ देर बाद दोनों शांत हुए, घी बेच कर घर चले। झगड़े की देरी में रात हो गई थी। अतः बीच में चोरों ने धन लूट लिया। इस तरह उनका धन भी गया और घी भी गया। उसी तरह जो शिष्य गुरू के कहने पर भूल स्वीकार नहीं करता हे, कलह करता है, वह श्रुत ज्ञान रूपी घी और संपत्ति खो बैठता है, वैसा शिष्य अयोग्य है। जो अहीर अहीरण शीघ्र अपनी भूल स्वीकार कर घी और घड़े को संभाल लेते हैं और शीघ्र घी बेच कर दिन में ही दोनों घर पहुँच जाते हैं। जिससे उन्हें विशेष नुकासान नहीं होता है। वैसे ही जो शिष्य शीघ्र ही अपनी भूल स्वीकार कर आचार्य के चित्त की आराधना करता है, वह श्रुत ग्रहण के योग्य होता है। दूसरी अपेक्षा से तीन प्रकार की परिषद श्रोता कहे गये हैं- 1 जाणिया- जो तत्त्व जिज्ञासु, गुणज्ञ, बुद्धिमान, सम्यग्दृष्टि, विवेकवान, विनीत, शांत, सुशिक्षित, श्रद्धावान आत्मान्वेषी, गुणों को ग्रहण कर दोषों को छोड़ने वाला, हंस के समान सहज स्वभाव वाला, प्रथम ज्ञायिका-समझदार परिषद में होता है। 2 अज्ञायिका- जो अबोध बच्चों की भांति सरल हृदयी हो, किसी भी मतमतांतर की कलुषित भावनाओं से रहित हो, जैसी भी शिक्षा दी जाय उसे ग्रहण कर सके, खान से निकले असंस्कारित रत्न के समान एवं कच्चे घड़े के समान है, उसे जैसा बनाना चाहे बना सकते हें अर्थात् जिन्हें आसानी से गुणवान, सन्मार्गगामी, संयमी, व्रती, विद्वान, तपस्वी, गुणसंपन्न, बनाया जा सकता है ऐसे सरल स्वच्छ हृदयी अबोध श्रोता अज्ञायिका-अजाण परिषद में है। 3 दुर्विदग्धा- जैसे कोई ग्रामीण पंडित किसी भी विषय में या शास्त्र में विद्वत्ता नहीं रखता है एवं अनादर या अपमान के ख्याल से किसी विद्वान से कुछ पूछ भी नहीं सकता। लोगों से अपने पंडितपन के प्रवाद को सुनकर केवल वायु से भरी मशक के समान मानों उसका पेट कट रहा हो इस तरह जो फूला रहता है। ऐसा अभिमानी, अविनीत, दुराग्रही झूठे ही मनमाने बने पंडित जन तीसरी दुर्विदग्धा परिषद में गिने गये हैं। प्रथम परिषद शास्त्र श्रवण के पूर्ण योग्य है, दूसरी परिषद भी योग्य है किन्तु तीसरी परिषद वाला सर्वथा शास्त्र श्रवण के अयोग्य है। वह शास्त्र का सही अर्थ परामार्थ समझ नहीं सकता तथा शास्त्र ज्ञान से वह अपना और अन्य किसी का भी हित करने में समर्थ नहीं हो सकता। उल्टा उस ज्ञान को अहितकारी बना देता है।

पांच ज्ञान-

ज्ञान आत्मा का निजगुण है जो ज्ञानावरणीय कर्म से आवरित होकर विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता है। जैनागमों में वह ज्ञान पांच भागों में विभक्त है। यथा-1 मतिज्ञान, 2 श्रुत ज्ञान, 3 अवधि ज्ञान 4 मनः पर्यव ज्ञान, 5 केवल ज्ञान। इन

पांचों ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म भी पांच प्रकार का कहा गया है। (1) मतिज्ञानावरणीय (2) श्रुत ज्ञानावरणीय (3) अवधिज्ञानावरणीय (4) मनः पर्यवज्ञानावरणीय इन चार कर्म प्रकृतियों का जितना जितना क्षयोपशम बढ़ता है उतना ही मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यव ज्ञान बढ़ते जाते हैं और इन चारों कर्मों का उदय बढ़ता जाता है वो वे चारों ज्ञान घटते जाते हैं (5) केवल ज्ञानावरणीय कर्म प्रकृति का तो एक साथ क्षय ही होता है, क्षयोपशम नहीं होता। क्षय होने पर केवल ज्ञान (और साथ में केवल दर्शन भी) प्रकट होता है। चार ज्ञान में घटना, बढ़ना या विलुप्त हो जाना होता रहता है किन्तु केवल ज्ञान में ऐसी कोई अवस्था नहीं होती है। वह उत्पन्न होने के बाद सदा और सभी को एक सरीखा रहता है। फिर कभी भी विनष्ट नहीं होता है। यह आत्मा का स्थाई और परिपूर्ण ज्ञान है। इन पांच ज्ञान का क्रम जो बताया गया है वही अन्य आगामों में वर्णित है। अपेक्षा से यहां नदी सूत्र में ज्ञान के भेद इस प्रकार किए हैं- (1) प्रत्यक्ष ज्ञान और (2) परोक्षज्ञान। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का है- (1) इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष पांच प्रकार है। तथा 1 श्रौत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, 2 चक्षु इन्द्रिय प्रत्यक्ष, 3 ध्राणेद्रिय प्रत्यक्ष , 4 रसनेन्द्रिय प्रत्यक्ष 5, स्पर्शनिन्द्रिय प्रत्यक्ष। नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष 3 प्रकार का है-(1) अवधिज्ञान (2) मनःपर्यव ज्ञान (3) केवल ज्ञान। परोक्ष ज्ञान दो प्रकार का है-(1) मति ज्ञान (2) श्रुत ज्ञान। यहां सांराश उपक्रम के पाँच ज्ञान का उक्त प्रसिद्ध क्रम से वर्णन किया जाता है।

1. मतिज्ञान- यह ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान के नाम से भी आगम में कहा जाता है किन्तु इसका मतिज्ञान यह नाम भी लघु, सरल और आगम सम्मत है। यह ज्ञान आत्मा को मन और इन्द्रियों के अवलंबन से होता है अर्थात् देखने, सुनने, सूंघने, चिंतन करने एवं स्पर्श रस आदि के अनुभव करने रूप विविध प्रकार से उत्पन्न होता है अथवा बुद्धि जन्य जो भी ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है। मतिज्ञान के मुख्य दो प्रकार हैं- 1 श्रुतनिश्रत, 2 अश्रुत निश्रित। (1) मन और इन्द्रिय के निमित्त से अर्थात् देखने सुनने सोचने के निमित्त से होने वाला मति ज्ञान श्रुतनिश्रित कहा गया है और (2) चार बुद्धि के द्वारा होने वाला मति ज्ञान अश्रुतनिश्रित कहा गया है।

(1) श्रुतनिश्रित मतिज्ञान- इस ज्ञान के होने की चार अवस्थाएं हैं- 1 अवग्रह, 2 ईहा 3 अवाय, 4 धारणा। (1) किसी भी वस्तु या विषय को सर्व प्रथम इंद्रिय द्वारा ग्रहण करना अर्थात् सामान्य देखना सुनना आदि यह अवग्रह है। (2) उस पर विचारणा करना कि यह शब्द या रूप आदि क्या, कौन, कैसा है ? यह ईहा है। (3) विचारणा करते-करते एक निर्णित रुप दे देना कि यह नहीं है, वैसा ही है, इत्यादि यह अवाय है (4) इस निर्णित किये, जाने, समझे हुए तत्त्व या विषय को कुछ समय तक या अधिक लंबे समय तक स्मृति में धारण करना धारणा है। इन्हें उदाहरण से इस प्रकार समझें- 1. दूर से किसी मनुष्य का दिखाना यह अवग्रहण अवग्रह है, 2. उस पर चिंतन करना कि कौन है कहां का है इसका नाम गौतम है या पारस है ? इत्यादि, निर्णय के पूर्व विचारणा करना, यह ईहा है,

3. यह गौतम है, ऐसा एक निर्णय कर लेना अवाय है। 4. इस व्यक्ति को या प्रसंग को कुछ दिन या कुछ वर्ष याद रखना धारणा है। यह रुप का उदाहरण दिया गया है। इसी तरह गंध, शब्द, रस, स्पर्श के विषय में भी समझ लेना चाहिये। अवग्रह एक समय का होता है। ईहा, अवाय, अंतर्मुहूर्त्त का होता है और धारण उत्कृष्ट संख्याता असंख्याता वर्ष की होती है। अर्थात् असंख्य वर्ष के बाद भी पूर्व की बात स्मृत्ति में रह सकती है या स्मरण करने से स्मृत्ति में आ सकती है।

जातिस्मरण ज्ञान- धारणा के प्रतिफल से व्यक्ति का अनुभव ज्ञान बढ़ता रहता है। और इसी के परिणाम स्वरूप कई जीवों को जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है। इस ज्ञान से जीव अपने जन्म जन्मांतरों की बात को याद कर लेता है अर्थात् पूर्व भवों की अनेकों घटनाएं उसे स्मृति में आ जाती है। यह जातिस्मरण ज्ञान, मतिज्ञान का ही एक रूप है। उसके द्वारा अनेक सैकड़ों भव भी जाने जा सकते हैं इसमें एक नियम यह है कि आज से पूर्व में जो जितने लगातार सन्नी पंचेन्द्रिय के भव किये हैं, उन्हीं का ज्ञान हो सकता है, बीच में कोई अज्ञानी का भव किया होगा तो वहां जातिस्मरण ज्ञान अवस्थित हो जाएगा अर्थात् उसे आगे के भव का ज्ञान नहीं होगा। इस तरह यह अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा रूप चार प्रकार का श्रुत निश्रित अर्थात् इन्द्रियजन्य मतिज्ञान है। अपेक्षा से इसके मूल भेद 28 और विषय की अपेक्षा 336 भेद होते हैं।

(2) अश्रुत निश्रित मतिज्ञान- यह ज्ञान बुद्धि की अपेक्षा रखता है और बुद्धि चार प्रकार की कहीं गई है अतः इस अश्रुत निश्रित मतिज्ञान के भी चार प्रकार है। चार बुद्धि इस प्रकार है- (1) बिना किसी अभ्यास के क्षयोपशम के कारण ही अचानक स्वतः जिसकी उपज हो उत्पत्ति हो सूझ-बूझ हो, वह ''औत्पातिकी बुद्धि'' है (2) गुरू आदि की विनय भक्ति सेवा से जो उन्नत बुद्धि प्राप्त होती है, वह ''वैनयिकी बुद्धि'' है। (3) शिल्पकला आदि किसी कार्यों के अभ्यास से उत्पन्न जो मंजी हुई बुद्धि होती है वह ''कर्मजा बुद्धि'' है। (4) चिरकाल तक पूर्वापर का पर्यालोचन विचारणा करने से अथवा उम्र के परिपक्व होने से उत्पन्न जो अनुभविक बुद्धि है, वह ''पारिणामिकी बुद्धि'' है। अथवा अनुमानित योजना से कार्य करने पर सही परिणाम को प्राप्त कराने वाली बुद्धि परिणामिकी बुद्धि है। इन चारों प्रकार की बुद्धि को क्रियात्मक रूप से समझने के लिए सूत्र में कुछ दृष्टांतों का संकेत किया गया है। उनमें से कुछ दृष्टांत राजप्रश्नीय सूत्र के परिशिष्ट में दिये हैं।

विशेष- अवग्रह, ईहा, अवाय से जो वस्तु का निर्णय होता है उसी निर्णय में जब पुनः नूतन धर्म को जानने की अभिलाषा होती है तब पुनः विचारणा के द्वारा नूतन ईहा होती है, ऐसी स्थिति में वह पूर्व का अवाय इस नूतन ईहा के लिए अवग्रह हो जाता है। इस प्रकार विशेष-विशेष नूतन धर्म की अपेक्षा पूर्व-पूर्व के अवाय भी अवग्रह बन जाते हैं। अर्थात् अपेक्षा से अवाय भी अवग्रह से पुनः प्रारम्भ होते हैं। ऐसा सामान्य से विशेष विशेषतर नूतन धर्म (गुण) की जिज्ञासा से होता है।

मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्द- 1 ईहा 2 अपोह 3 विमर्श 4 मार्गणा 5 गवेषणा 6 संज्ञा 7 स्मति 8 मति 9 प्रज्ञा 10 बुद्धि।

मतिज्ञान का विषय- (1) द्रव्य से-मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व द्रव्य जानता है किन्तु देखता नहीं है। (2) क्षेत्र से मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व क्षेत्र जानता है। किन्तु देखता नहीं है। (3) काल से- मतिज्ञानी अपेक्षा से सर्व काल जानता है किन्तु देखता नहीं है। (4) भाव से- मतिज्ञान अपेक्षा से सर्व भावों को जानता है किन्तु देखता नहीं है। यह उत्कृष्ट विषय है, जघन्य मध्यम मतिज्ञान इससे कम विविध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानता है।

2. श्रुत ज्ञान- अध्ययन, श्रवण, वांचन, चिंतन आदि से जो अक्षर विन्यास मय ज्ञान होता है अथवा इंगित आकार संकेत आदि से जो अनुभव अभ्यास मय ज्ञान होता है, यह सब श्रुतज्ञान कहा जाता है। इसमें सभी इंद्रिय, मन एंव बुद्धि का उपयोग होता है। उसके साथ ही यह ज्ञान लौकिक या लोकोत्तर शास्त्रमय होता है। अथवा कोई भी साहित्य मय या भाषा

अक्षर-समूह संकेतमय होता है। श्रुत ज्ञान मति पूर्वक होता है अर्थात् अध्ययन या अक्षर रूप ज्ञान के पूर्व इंद्रिय या मन से सम्बन्धित वस्तु का ज्ञान और बुद्धि के होने पर फिर श्रुत ज्ञान होता है। अतः ज्ञान क्रम में भी पहले मति ज्ञान लिया गया फिर श्रुतज्ञान लिया गया है। श्रुत ज्ञान के 14 भेद दिये गये हैं उनके अध्ययन से श्रुतज्ञान का सहज ही सरलता से बहुत स्पष्ट बोध हो जाता है। वे भेद इस प्रकार है-

1. अक्षर श्रुत 2 अनक्षर श्रुत 3 सन्नी श्रुत 4 असन्नीश्रुत 5 सम्यक् श्रुत 6 मिथ्या श्रुत 7 सादिक श्रुत 8 अनादिक श्रुत 9 सपर्यवसित श्रुत 10 अपर्यवसित श्रुत 11 गमिक श्रुत 12 अगमिक श्रुत 13 अंग प्रविष्ट श्रुत 14 अनंग प्रविष्ट श्रुत।

अक्षर श्रुत एवं अनक्षर श्रुत में भी सपूर्ण श्रुत ज्ञान का समावेश हो सकता है फिर भी सामान्य बुद्धि वाले जीवों को विभिन्न भेदों से विभिन्न पहलुओं को एंव अर्थ परमार्थ को समझने में सरलता रहती है, अतः 7 अपेक्षाओं से दो-दो भेद करके 14 भेद किए हैं।

1 अक्षर श्रुत- इसके तीन भेद हैं- 1 संज्ञा अक्षर श्रुत 2 व्यंजन अक्षर श्रुत 3 लब्धि अक्षर श्रुत। (1) अक्षरों की आकृति अर्थात् विभिन्न लिपियों में लिखें गये अक्षर ''संज्ञा श्रुत'' है (2) अक्षरों का जो उच्चारण कया जाता है, वह ''व्यंजन अक्षर श्रुत है'' (3) श्रोत्रेन्द्रिय आदि के क्षयोपशय के निमित्त से जो भाव रूप में श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, वह ''लब्धि अक्षर श्रुतज्ञान'' है। अक्षर शब्द की पर्यालोचना से जो अर्थ का बोध होता है, वह ''लब्धि अक्षर श्रुत'' है। यही भाव श्रुत है। संज्ञा और व्यंजन द्रव्य श्रुत है, भाव श्रुत के कारण है।

2 अनक्षर श्रुत- जो शब्द अक्षरात्मक वर्णात्मक न होकर केवल ध्वनि मात्र हो यथा-खांसना, छींकना, थूकना, लंबे श्वास लेना, छोड़ना, सीटी, घंटी, बिगुल बजाना आदि। किसी भी आशय को सूचित करने के लिए जो भी ये संकेत किए जाते हैं, वे सब अनक्षर श्रुत है। बिना प्रयोजन किया हुआ यह शब्द या ध्वनि अनक्षर श्रुत नहीं होता है।

मतिज्ञान एवं श्रुत ज्ञान में संबंध विचारणा- मतिज्ञान कारण हैं, श्रुतज्ञान कार्य है। मतिज्ञान सामान्य है, श्रुतज्ञान विशेष है। मतिज्ञान मूक है, श्रुत ज्ञान मुखरित हे। मतिज्ञान अनक्षर है, श्रुतज्ञान अक्षर परिणत होता है। जब इंद्रिय और मन से अनुभूति रूप ज्ञान होता है, तब वह मतिज्ञान कहलाता है। जब वह अक्षर रूप में स्वयं अनुभव करता है या दूसरे को अपना अभिप्राय किसी प्रकार की चेष्टा से बताता हैं, तब वह अनुभव और चेष्टा आदि श्रुतज्ञान कहा जाता है। अतः मतिज्ञान शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श एवं चिंतन के अनुभव से होता है जबकि श्रुत ज्ञान शब्दादि की अनुभूति अक्षर रूप में अनुभव करना और दूसरों को अक्षर या अनक्षर (ध्वनि) द्वारा अनुभव कराना, यह 'श्रुतज्ञान' है।

3-4 संज्ञी श्रुत-असंज्ञी श्रुत- सन्नी को होने वाला श्रुतज्ञान संज्ञी श्रुत है और असंज्ञी होने वाला श्रुतज्ञान असंज्ञी श्रुत है। असन्नी जीवों में अव्यक्त भाव श्रुत होता है, उनमें भी चारों संज्ञा अभिलाषाएं होती है। चाह और इच्छा अक्षरानुसारी होने से उनको श्रुतज्ञान होता है और उसके पूर्व की अवस्था मतिज्ञान है। संज्ञा जीवों का भाव श्रुत ज्ञान व्यक्ति स्पष्ट होता है। असंज्ञी जीवों का भाव श्रुतज्ञान अस्पष्ट होता है।

5 सम्यक् श्रुत- तीर्थंकर भगवंतों द्वारा प्रणीत अर्थ से गणधरों द्वारा रचे गये शास्त्र 'सम्यग् श्रुत' है एवं इन शास्त्रों के अर्थ आदि के आधार से अन्य दस पूर्वधारी बहुश्रुत आचार्यों द्वारा बनाये गये शास्त्र भी 'सम्यक् श्रुत' है। यह स्वरूप की

अपेक्षा सम्यक् श्रुत है। व्यक्तिगत स्मृति की अपेक्षा दस पूर्व से लेकर चैदह पूर्व के ज्ञानी के उपयोग सहित ये उक्त शास्त्र सम्यक् श्रुत ही है उससे कम ज्ञान वालों के ये शास्त्र सम्यक् श्रुत रूप भी होते हैं और असम्यक् भी होते हैं। इसका कारण स्मृति आदि दोषों का है तथा दस पूर्व से कम ज्ञान वाले मिथ्या दृष्टि भी हो सकते हैं। इसी के आधार से यह समझा जाता है कि दस पूर्व से कम ज्ञान वालों के द्वारा बनाये गये शास्त्र एकांत सम्यक् श्रुत नहीं होते हैं। उन्हें एक अपेक्षा से आगम की कोटी में नहीं माना जाता।

6 मिथ्या श्रुत- अज्ञानी मिथ्या दृष्टि के द्वारा अपनी स्वच्छंद बुद्धि से अर्थात् सर्वज्ञों की वाणी का आधार लिए बिना बनाये गये जो शास्त्र है वे 'मिथ्या-श्रुत' है। यथा-भागवत, रामायण, महाभारत, वेद, पुरण, व्याकरण, 72 कलाएं, नाटक, षष्ठितंत्र माठर, लेख, गणित आदि। ये ग्रंथ द्रव्य मिथ्याश्रुत है। भाव की अपेक्षा मिथ्या दृष्टि के लिये ये मिथ्याश्रुत है। किन्तु सम्यक् दृष्टि के लिए ये सम्यक् श्रुत है। कभी कोई मिथ्या दृष्टि भी इनके अध्ययन से सम्यक् दृष्टि बन जाय तो उसके लिए भी भाव की अपेक्षा ये 'सम्यक् श्रुत' हो जाते है। तथा कभी कोई सम्यक् दृष्टि भी इनके अध्ययन से मिथ्या दृष्टि बन जाय तो उसके लिए ये भाव की अपेक्षा ये सम्यक-श्रुत नहीं होंगे मिथ्या-श्रुत होंगे। तात्पर्य यह हुआ कि सर्वज्ञोक्त भाव युक्त शास्त्र, स्वरूप की अपेक्षा 'सम्यक् श्रुत' है। असर्वज्ञोक्त छद्मस्थ की स्वच्छंद मति से रचित शास्त्र स्वरूप की अपेक्षा 'असम्यक् श्रुत' है। व्यक्तिगत भावों की परिणति की अपेक्षा इन दोनों में सम्यक एवं असम्यक् दोनों विकल्प संभव है।

7.10 सादि-सांत अनादि-अनंत श्रुत- किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा, भरत आदि क्षेत्र की अपेक्षा, उत्सर्पिणी आदि काल की अपेक्षा, श्रुत 'सादि-सांत' होता है परंपरा की अपेक्षा संपूर्ण क्षेत्र, सम्पूर्ण काल की अपेक्षा श्रुत 'अनादि अनन्त' होता है। भवी जीव का श्रुत 'सादिसांत' है। अभवी जीव का असम्यक् श्रुत 'अनादि अनन्त' है। क्योंकि भवी को केवल ज्ञान होने पर श्रुत ज्ञान नहीं रहेगाः। केवल ज्ञान ही आत्मा का निजगुण है। उसका अस्तित्व सभी जीवों में होता है। कर्मावरण के कारण भी उसका अनंतवा भाग तो सभी जीवों के अनावरित रहता है। क्योंकि इतना भी नहीं रहे तो जीव अजीवत्व को प्राप्त हो जाय। किन्तु ऐसा नहीं होता है। यहां केवल ज्ञान को ''पर्याय अक्षर'' शब्द से कहा गया है।

11.12 गमिक श्रुत-अगमिक श्रुत- दृष्टिवाद नामक बारहवां अंग सूत्र 'गमिक श्रुत' हैं। शेष ग्यारह अंग अगमिक श्रुत है। जिसमें एक वाक्य या आलापक बारंबार आते हैं वह गमिक कहलाता हैं। जिस शास्त्र में पुनः पुनः एक सरीखे पाठ नहीं आते वह अगमिक कहा जाता हैं।

13.14 अंग प्रविष्ट एवं अंग बाह्य- बारह अंग सूत्र 'अंग प्रविष्ट श्रुत' हैं। उसके अतिरिक्त सभी सम्यग् शास्त्र 'अंग बाह्य (अनंग प्रविष्ट) श्रुत' हैं। अंग बाह्य के दो भेद है- 1 आवश्यक सूत्र और 2 उससे अतिरिक्त सूत्र। अकेले आवश्यक सूत्र को अलग इसलिए लिया गया है कि यह गणधर द्वारा प्रारम्भ में बना दिया जाता हैं। आवश्यक से अतिरिक्त श्रुत के दो भेद हैं- 1 कालिक श्रुत 2 उत्कालिक श्रुत । प्रथम प्रहर और चतुर्थ प्रहर में ही जिसकी स्वाध्याय आदि की जाय वे 'कालिक श्रुत' है और चारों प्रहर में जिनकी स्वाध्याय आदि की जाय वे 'उत्कालिक श्रुत' हैं। अंग प्रविष्ट सभी आगम कालिक ही होते हैं। इसलिए उसके भेद विकल्प नहीं किये गये हैं। आवश्यक सूत्र उत्कालिक सूत्र हैं। चारों प्रहर में तथा असज्झाय में भी इसका वांचन स्वाध्याय होता हैं।

अंग प्रविष्ट सूत्रों के नाम- (1) आचारांग 2 सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4 समवायांग 5 व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र) 6 ज्ञाता धर्मकथा 7 उपासकदशा 8 अंतकृत दशा 9 अनुत्तरोपपातिक 10 प्रश्न-व्याकरण 11 विपाक 12 दृष्टिवाद (पूर्व ज्ञान)। इनका विषय परिचय समवायांग सूत्र के सारांश में दिया गया है। समवायांग और नंदी सूत्र में दिए गये इस विषय परिचय में कुछ भिन्नता है वह पीछे परिशिष्ट में देखें।

अंग बाह्य कालिक सूत्र- उत्तराध्ययन, निशीथ, दशाश्रुत स्कंध, वृहत्कल्प, व्यवहार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, निरियावलिकादि पांच सूत्र अर्थात् उपांग सूत्र महानिशीथ, ऋषिभाषित, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, क्षुल्लिका, विमान प्रविभक्ति आदि 10 अर्थात् संक्षेपिक दशा, देविंद परियापनिका, नाग परियापनिका, उत्थान श्रुत, समुत्थान श्रुत।

अंग बाह्य उत्कालिका सूत्र- दशवैकालिक, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नंदी, अनुयोग-द्वार, सूर्यप्रज्ञप्ति, कल्पाकल्प, चुल्लकल्प श्रुत, महाकल्प श्रुत, महाप्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, देवेन्द्र-स्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्र विद्या, पोरूषी मंडल, मंडल प्रवेश, विद्याचरण-विनिश्चय, गणिविद्या, ध्यान विभक्ति, मरण विभक्ति, आत्म-विशुद्धि, वीतराग श्रुत, संलेखना श्रुत, विहार-कल्प, चरण-विधि, आतुर-प्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान। अंग प्रविष्ट सूत्रों की संख्या बारह बताई गई है। अंग बाह्य सूत्रों की कोई संख्या नहीं बताई है क्योंकि ये कभी कभी कभी ज्यादा होते रहते हैं अर्थात् प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में अलग-अलग संख्या होती रहती है तथा एक तीर्थंकर के शासन में भी प्रारंभ में 1.2 होते फिर नये-नये बनते रहने से बढ़ते रहते हैं और कभी विलुप्त विच्छेद हो जाने से घट जाते हैं। अतः यहां भी सूत्र में अंग बाह्य की या कालिक उत्कालिक की संख्या नहीं कहीं है।

विशेष विचारणा-

आधुनिक प्रकाशनों में यहां मूल पाठ के साथ क्रमांक संख्या लिखी जाती है उसकी अपेक्षा उत्कालिक 29 कालिक 31 है कुल 12+1+29+31 = 73 शास्त्र होते हैं। वास्तव में 12 अंग शास्त्रों के अतिरिक्त कोई भी संख्या कहना उपयुक्त नहीं हैं। कारण यह है कि समय-समय पर लिपिकाल में ये नाम परिवर्तित हुए हैं। यथा - ठाणांग सूत्र में संक्षेपिक दशा सूत्र के दस अध्ययन कहे है, उन्हीं के दस नामों से यहां दस सूत्र कह दिए हैं। उपांग सूत्र में पांच वर्ग कहे हैं। उनके निरयावालिका आदि पांच नाम हैं। उन्हीं नामों से यहां पांच सूत्र कह दिए हैं। एक वर्ग के दो नाम हो जाने से इन पांच के भी छः सूत्र लिखे जाते हैं। अतः 76 में 14 कम होने से 59 ही है अर्थात् यहां वर्णित संपूर्ण श्रुत संख्या वास्तव में 59 ही है 76 तो बन गई हैं। इसी तरह और भी कोई नामों में किसी भी तरह से परिवर्तन होना या किया जाना संभव हो सकता हैं। तीर्थंकर की मौजूदगी में उनके सभी शिष्य वीतराग वाणी के आधार से जो अपना व्यक्तिगत संकलन करते है, उन्हें प्रकीर्णक श्रुत कहा गया हैं। इसकी संख्या जितने साधु हो उतनी होती हैं। यथा चैबीसवें तीर्थंकर के प्रकीर्णक श्रुत संख्या 14 हजार कही हैं। प्रथम तीर्थंकर के प्रकीर्णक श्रुत की संख्या 84 हजार कही हैं। इनका समावेश अंग बाह्य कालिक या उत्कालिक श्रुत में होता हैं।

श्रुत ज्ञान का विषय- 1 द्रव्य से श्रुत ज्ञानी उपयोग लगाकार सब द्रव्यों को जानता देखता हैं। 2 क्षेत्र से श्रुतज्ञानी उपयोग युक्त होकर सर्व क्षेत्र जानता देखता हैं। 3 काल से श्रुतज्ञानी उपयोग सहित सर्वकाल जानता देखता हैं। 4 भाव से श्रुतज्ञानी उपयोग हो तो सर्व भाव जानता है देखता हैं।

उत्कृष्ट की अपेक्षा यह विषय कहा गया हैं। जघन्य मध्यम आदि में कुछ कुछ न्यून द्रव्य क्षेत्र आदि समझना ।श्रुतज्ञान से जानना तो स्पष्ट है किन्तु देखना चित्र आदि की अपेक्षा समझ लेना चाहिए। अथवा इसमें कुछ पाठ भेद भी हैं। जिससे अन्य आगम में और अन्य प्रतियों में ''न पासई'' है अर्थात् श्रुतज्ञानी जानता है किन्तु देखता नहीं हैं। लेकिन एकांत ऐसा होना भी संभव नहीं है कारण यह है कि कई द्रव्य आदि को श्रुतज्ञानी प्रत्यक्ष में होने से देखता भी हैं।

श्रुतज्ञान की अध्ययन, श्रवणविधि-अध्ययन के आठ गुण-

(1) विनय युक्त सुनना (2) शंकाओं को पूछ कर समाधान करना, (3) पुनः सम्यक् प्रकार से सुनना (4) अर्थ-अभिप्राय ग्रहण करना, (5) पूर्वापर अविरोध विचारणा करना, (6) फिर सत्य मानना, (7) निश्चित किये आदि को हृदय में धारण करना, (8) उसके अनुसार आचरण करना ।

श्रवण विधि- (1) मौन रहकर एकाग्र चित्त से सुने (2) 'हुंकार या 'जी हां' आदि कहे। (3) ''सत्य वचन'' ''तहत्ति'' इत्यादि बोले। (4) प्रश्न पूछे। (5) विचार विमर्श करे। (6) सुने हुए, समझे हुए, श्रुत में पारगामी बने। (7) प्रतिपादन करने में समर्थ होवे।

अध्यापन विधि- आचार्य उपाध्याय या गुरू आदि पहले सूत्रोच्चारण सिखाए, फिर सामान्य अर्थ अर्थात् शब्दों की सूत्र स्पर्शी निर्युक्ति (शब्दार्थ) बतावे फिर उसकी व्याख्या बतावे। उत्सर्ग अपवाद, निश्चय व्यहार आदि सिखावे। अर्थात् इन सबका आशय व्याख्या सहित समझावे। इस क्रम से अध्ययन कराने पर गुरू शिष्य को पारंगत बना सकता है।

3. अवधिज्ञान-

यह ज्ञान मन और इन्द्रियों के सहायता की अपेक्षा नहीं रखता हुआ आत्मा के द्वारा ही रूपी पदार्थों का साक्षात्कार करता हैं। इसमें मात्र रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने की क्षमता है, अरूपी को नहीं। यह इसकी मर्यादा है दूसरे शब्दों में द्रव्य क्षेत्र-काल और भाव की मर्यादा को लेकर यह ज्ञान रूपी द्रव्यों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति रखता हैं अवधि शब्द मर्यादा के अर्थ में यहां प्रयुक्त हुआ हैं।

अवधिज्ञान के दो प्रकार- यह ज्ञान चार ही गति के जीवों को होता हैं। नरक गति में यह ज्ञान ''भव-प्रत्ययिक'' होता है अर्थात् जन्म के समय से ही सभी को होता है मृत्यु पर्यन्त रहता हैं। सम्यक् दृष्टि का यह ज्ञान अवधि ज्ञान कहलाता हैं। और मिथ्या दृष्टि का यह ज्ञान 'अवधि-अज्ञान' या विभंग-ज्ञान कहलाता हैं। तिर्यच एवं मनुष्य में क्षयोपशम के अनुसार किसी किसी को ही यह ज्ञान होता है सबको नहीं। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय एवं असन्नि पंचेन्द्रिय में यह ज्ञान नहीं होता हैं। सन्नी पचेन्द्रिय में ही होता हैं। मनुष्य, तिर्यंच का यह ज्ञान ''क्षायोपशमिक अवधिज्ञान'' कहा जाता है और देव नरक का ''भव प्रत्ययिक अवधिज्ञान'' कहा जाता हैं।

अवधिज्ञान के छः भेद- ज्ञान दर्शन चारित्र संपन्न अणगार को एवं क्वचित श्रमणोपासक को क्षायोपशमिक अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है उसके 6 प्रकार है- 1 अनुगामिक- जो साथ चलता हैं। (2) अनानुगामिक- जो साथ नहीं चलता हैं। (3) वर्द्धमान -जो बढ़ता हैं। (4) हीयमान-जो घटता हैं। (5) प्रतिपाती-जो उत्पन्न होकर फिर नष्ट हो जाता है, गिर जाता है। (6) अप्रतिपाती-जो पूरे भव नष्ट नहीं होता है, नहीं गिरता हैं।

आनुगामिक अवधिज्ञान- इस अवधिज्ञान से कोई आगे देखता है कोई पीछे देखता है कोई दांई या बांई और देखता हैं। और कोई चारों और देखता है। अवधिज्ञान जहां उत्पन्न होता है वहां से वह अवधिज्ञानी कहीं भी जावे तब भी वह अवधिज्ञान उसके साथ चलता है। जहां भी वह अवधिज्ञान से देखना चाहे वहीं पर वह अवधिज्ञान से उस दिशा में अपनी सीमा में देख सकता हैं। यथा किसी को जोधपुर में चौतरफ 500 माइल का अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ वह, जयपुर चला जाय तो वहां अपने स्थान से चौतरफ 500 माइल तक देख सकेगा। एक दिशा का होगा तो एक-? दिशा में देख सकेगा। यह ज्ञान उत्कृष्ट संख्याता असंख्याता योजन का हो सकता हैं। नरक देव का अवधि चौतरफ ही देखता हैं। तिर्यंच और मनुष्य एक तरफ या अनेक तरफ (चौतरफ) भी देख सकते हैं।

अनानुगामिक अवधिज्ञान- जैसे किसी को जोधपुर में 500 माइल का अवधिज्ञान हुआ वह व्यक्ति उस 500 माइल के सीमा के अन्दर कहीं भी रहे तो अवधिज्ञान से जान देख सकता है। सीमा से बाहर जाने पर उसके अवधिज्ञान का विषय नहीं रहता है।, वहां से उसे कुछ नही दिखेगा।

वर्द्धमान अवधिज्ञान- प्रशस्त अध्यवसायों से चारित्र की विशुद्धि से जिस अवधिज्ञानी के आत्म परिणाम विशुद्ध से विशुद्धतर होते जाते है उसका अवधिज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है और सभी दिशाओं में वृद्धि होती है क्षेत्र में, काल में और द्रव्यों में पर्यायों में भी वृद्धि होती है, वह वर्द्धमान अवधिज्ञान है। अवधिज्ञान का जघन्य क्षेत्र सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्ता की अवगाहना जितना होता है और बढ़ते अलोक जितने असंख्य खंड जितनी सीमा को देखने की उसकी क्षमता हो जाती है। उसी अनुपात में काल एव द्रव्य पर्यायों को देखने की क्षमता भी बढ़ जाती है। कल्पना से जिस समय अग्निकाय के उत्कृष्ट जीव हो उन्हें मेरू पर्वत से एक दिशा में क्रमशः बिठाया जाय वे अलोक में बहुत दूर तक पहुंच जाएंगे। उस कतार को चौतरफ घुमाने से जितना क्षेत्र मंडलाकार में बनता है उतना अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र समझना। जो कि असंख्य लोक प्रमाण बन जाता है। अविधिज्ञान के क्षेत्र की वृद्धि से काल की वृद्धि किस क्रम से होती है उसे समझने के लिए तालिका दी जाती है।

क्षेत्र	**काल**
1. अंगुल का असंख्यातवां भाग देखें।	आवलिका का असंख्यातवां भाग देखे।
2. अंगुल का संख्यातवां भाग देखें	आवलिका का संख्यातवां भाग देखे।
3. एक अंगुल	आवलिका से कुछ न्यून
4. अनेक अंगुल	एक आवलिका
5. एक हस्त प्रमाण	एक मुर्हूत्त से कुछ न्यून
6. एक कोस	एक दिवस से कुछ न्यून
7. एक योजन	अनेक दिवस
8. पच्चीस योजन	एक पक्ष से कुछ न्यून

9. भरत क्षेत्र	अर्द्धमास
10. जंबुद्वीप	एक मास से कुछ अधिक
11. अढ़ाई द्वीप	एक वर्ष
12. रूचक द्वीप	अनेक वर्ष
13. संख्यात द्वीप	संख्यात काल
14. संख्यात असंख्यात द्वीप समुद्रों की भजना	पल्योपम आदि असंख्य काल

हीयमान अवधिज्ञान– अप्रशस्त योग, संक्लिष्ट परिणाम जब साधक के आते हैं तब अवधिज्ञान का विषय घटता जाता है। यह सभी दिशाओं से घटता है।

प्रतिपाती अवधिज्ञान– अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर उत्कृष्ट संपूर्ण लोक को विषय करने वाला अविधज्ञान भी उत्पन्न होकर कभी भी विनष्ट हो सकता है। ये सभी प्रतिपाती अवधिज्ञान है।

अवधिज्ञान का जघन्य उत्कृष्ट विषय– लोक सीमा से आगे बढ़कर जब अवधिज्ञान की क्षमता अलोक में जानने देखने योग्य बढ़ जाती है तब वह अवधिज्ञान अप्रतिपाती हो जाता है अर्थात् उस पूरे भव में वह कभी भी नष्ट नहीं होता, पतित नहीं होता है। आयु समाप्ति तक रहता है अथवा तो फिर केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाय तो वह उसी में विलीन हो जाता है।

अवधिज्ञान का जघन्य उत्कृष्ट विषय– (1) द्रव्य से जघन्य अनंत रूपी द्रव्य जाने देखे, उत्कृष्ट सभी रूपी द्रव्य जाने देखे। (2) क्षेत्र से-जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग जितना क्षेत्र जाने देखे, उत्कृष्ट लोक जितने असंख्यातवां खंड प्रमाण क्षेत्र अलोक में जाने देखे। (3) काल से जघन्य आवलिका के असंख्यातवें भाग जान देखें, उत्कृष्ट असंख्यात उत्सर्पिणी काल प्रमाण भूत भविष्यत जाने देखे। (4) भाव से जघन्य अनंत पर्याय जाने देखे, उत्कृष्ट भी अनंत पर्याय जाने देखे। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट का विषय अनंत गुणा है, ऐसा समझना। फिर भी सर्व पर्याय से अनंतवें भाग ही देखे।

मनः पर्यव ज्ञान–

(1) मन की पर्यायों को जानने वाला मनःपर्याय ज्ञान है। भाषा वर्गणा के समान मन वर्गणा भी रूपी है। वचन योग से जिस तरह भाषा वर्गणा के पुद्गल लेकर भाषा रुप में परिणमन कर छोड़े जाते हैं उसी तरह मन योग से मनोवर्गणा के पुद्गल लेकर मन रुप में परिणमन कर छोड़े जाते हैं मन रूप में परिणत उन पुद्गलों को जानना, यह मनःपर्याय ज्ञान का विषय है।

(2) जिस प्रकार श्रोतेन्द्रिय का विषय किसी के वचनों का श्रवण करना है, उसी तरह मनःपर्याय ज्ञान का विषय है किसी के मन को जान लेना है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति ने वचन के द्वारा किसी की निंदा की या प्रशंसा की वे निन्दा और प्रशंसा के वचन हमने सुने बीच में उसने निन्दा से सम्बन्धित व्यक्ति का नाम भी लिया। यह सब सुनना श्रोतेन्द्रिय का विषय है किन्तु वह व्यक्ति किस गांव का, किस जाति का है, इस वक्ता का उससे क्या संबंध है, निंदा या प्रशंसा का कारण या निमित्त क्या है ? इत्यादि ज्ञान वक्ता के किसी शब्द के तात्पर्यार्थ से समझना होगा अथवा अपने क्षयोपक्षम अनुभव चिंतन

से जानना होगा। उसी तरह मनःपर्यव ज्ञान से मन परिणत पर्याय का (मन का) ज्ञान होगा, अन्य विषयों का ज्ञान उन मन की पर्याय के अनुप्रेक्षण से या अपने अन्य अनुभव बुद्धि आदि से अथवा उसके आगे पीछे के अन्य मन से जानना होगा। (3) यह मनःपर्यव ज्ञान मनुष्य को ही होता है अन्य तीन गति में नहीं होता है वह द्रव्य एवं भाव से संयम पर्याय में ही होता है अर्थात् केवल द्रव्य संयम है तो भी यह ज्ञान नहीं होता और केवल भाव संयम है द्रव्य संयम नहीं है (बाह्य लिंग-दीक्षा लेना-आचार पालना आदि नहीं है) तो भी यह ज्ञान नहीं होता है। संयमी भी जब अप्रमत्तयोग में वर्त्तता है, उस समय उसे मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हो सकता है, प्रमत्त अवस्था में मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। गुणस्थान की अपेक्षा सातवें गुणस्थान में उत्पन हो सकता है। एक से 6 गुणस्थान तक में उत्पन्न नहीं होता है। (4) जैसे वचन या भाषा के द्रव्य और भाव ऐसे विकल्प नहीं होते हैं वैसे ही मन के भी द्रव्य और भाव विकल्प आगम मे नहीं कहे गये हैं। इसकी प्रक्रिया पूर्ण भाषा परिणमन के समान ही है। जैसे भाषा के रूपी अरूपी विकल्प नहीं होते हैं, वैसे मन के भी रूपी अरूपी विकल्प नहीं होते हैं। वे दोनों रूपी ही होते हैं ग्रंथों में मन के द्रव्य और भाव विकल्प किए गये हैं किन्तु उनकी कोई आवश्यकता या उपयोगिता नहीं है। (5) यह मनःपर्यव ज्ञान दो तरह का होता है।

(1) ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञान (2) विपुल मति मनःपर्यव ज्ञान। ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को विशुद्ध विपुल और निर्मल रूप से जानता देखता है एवं क्षेत्र में ढाई अंगुल क्षेत्र इसका अधिक होता हैं।

मनःपर्याय ज्ञान का विषय- (1) द्रव्य से मनः पर्यव ज्ञानी सन्नी जीवों (देव मनुष्य तिर्यंच) के मन के (मन रूप में परिणत पुद्गलों के) अनंत अनंत प्रदेशी स्कंधों को जानता देखता हैं। (2) क्षेत्र से मनः पर्यवज्ञानी जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग जानता देखता है उत्कृष्ट नीचे 1000 योजन, ऊपर 900 योजन, चारों दिशाओं में 45 लाख 45 लाख योजन क्षेत्र में रहे हुए सन्नी देव मनुष्य तिर्यंचों के व्यक्त मन को जानता देखता हैं। (जिस प्रकार अस्पष्ट शब्द नहीं सुने जाते है, वैसे ही अस्पष्ट मन नहीं जाने देखे जाते है) (3) काल से-जघन्य पल्योपम का असंख्यातवा भाग जितने समय के भूत भविष्य मन को जान देख सकता है और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितने समय के भूत भविष्य मन को जान देख सकता है। जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही कथन की अपेक्षा तो एक ही है, किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट अघिक है ऐसा समझ लेना चाहिए। (यदि जघन्य उत्कृष्ट वास्तव में समान ही होता है तो उसे जघन्य उत्कृष्ट न कहकर अजघन्य अनुत्कृष्ट कहा जाता है) भाव से-मनःपर्यव ज्ञानी अनंत भावों को जानता देखता हैं।

परिशेष वार्त्ता- प्रश्न- जब अवधिज्ञानी भी रूपी पदार्थों को जानता है तो क्या वह भी अपनी सीमा में रहे जीवों के मन को जानता देखता हैं ?

उत्तर- हां जानता देखता हैं। इसे दृष्टांत द्वारा समझें- एक डाक घर में अनेक व्यक्ति है कोई तार का अनुभवी है कोई उस विषय का अनुभवी नहीं हैं। जो तार का अनुभवी नहीं है उसकेश्रोतेन्द्रिय तो है ही। आने वाले तार की टिक टिक की आवाज वह भी सुन लेता है किन्तु सुनने मात्र से वह उसके आशय को नहीं समझ सकता। ठीक वैसा ही अंतर अवधिज्ञानी और मनःपर्यव ज्ञानी के देखने का समझ सकते हैं। अथवा एक डाक्टर चक्षुरोग का विशेषज्ञ है और दूसरा संपूर्ण शरीर का चिकित्सक है उसमें आंख की चिकित्सा भी वह करता है किन्तु आंख के विषय में उसके अनुभव

चिकित्सा में और चक्षु विशेषज्ञ के अनुभव चिकित्सा में अन्तर होना स्पष्ट है। वैसे ही अवधिज्ञानी के द्वारा मन के पुद्गल जानने में और मनःपर्यव ज्ञानी के द्वारा मन को जानने देखने में अन्तर है, ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न- ऋजुमति और विपुल मति तो लगभग समान ही हैं फिर ये विभाग कैसे समझना ?

उत्तर- जैसे दो छात्रों ने एक ही विषय में परीक्षा दी। एक ने प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किए, दूसरे ने द्वितीय श्रेणी के। स्पष्ट है कि प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाले का ज्ञान विशेष रहा, उसकी श्रेणी भी अलग है और आगे कहीं प्रवेश में भी प्रथम श्रेणी वाले को प्राथमिकता मिलेगी। ठीक इसी तरह ऋजुमति और विपुलमति को समझना। ऋजुमति उसी भव में विनष्ट हो सकता है किन्तु विपुल मति परभव तक रहता है, यह इसकी विशेषता हैं। किसी धारणा से विपुल मति उसी भव में मोक्ष जाता है, किन्तु ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञानी तो भविष्य में अनन्त भव भी कर सकता हैं। सामान्य अन्तर भी कभी महत्वशील अन्तर हो जाता है यथा कोई चुनाव में एक मत (वोट) कम हो गया तो पांच साल का नम्बर चला जाता हैं। ऐसी ही विशेषता दोनों प्रकार के मनःपर्यव ज्ञान में है, अतः दो प्रकार कहे गये हैं।

अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान की तुलना-

(1) अवधिज्ञान की अपेक्षा मनःपर्यव ज्ञान अधिक विशुद्ध होता हैं। (2) अवधिज्ञान सभी प्रकार के रूपी द्रव्यों को विषय करता मनःपर्यव ज्ञान केवल मनोद्रव्यों को विषय करता हैं। (3) अवधि ज्ञान चारों गति में होता है, मनःपर्यव ज्ञान मनुष्य गति में ही होता हैं। (4) अवधि ज्ञान मिथ्यात्व आने पर नष्ट नहीं होता है। परिवर्तित होकर विभंग ज्ञान कहलाता है, मनःपर्यव ज्ञान मिथ्यात्व आते ही समाप्त हो जाता हैं। (5) अवधिज्ञान के साथ अवधि दर्शन होता है, मनःपर्यव ज्ञान के साथ कोई दर्शन नहीं होता है। (6) अवधिज्ञान आगामी भव में साथ जाता है, मनःपर्यव ज्ञान परभव में साथ नहीं जाता हैं। (7) मनःपर्यव ज्ञान के द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का विषय अल्प है, अधिवज्ञान का विषय अत्यन्त विशाल हैं। अर्थात् अवधिज्ञानी संपूर्ण शरीर के चिकित्सक के समान है, तो मनःपर्यव ज्ञानी किसी एक अंग के विशेषज्ञ के समान है।

केवल ज्ञान-

केवलज्ञान आत्मा का निज गुण-स्वभाव है। अनादि काल से ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत्त है। जब आत्मा सदनुष्ठान रूप तप संयम द्वारा मोह कर्म का क्षय करने के बाद ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अंतराय इन तीन कर्मों को एक साथ क्षय करता है तब केवलज्ञान प्रकट होता है। केवल दर्शन भी इसके साथ ही उत्पन्न होता है। यह आवरण से सर्वथा रहित एवं पूर्णज्ञान है। इस ज्ञान से रूपी-अरूपी समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों का ज्ञान हो जाता है। उत्पन्न होने के बाद यह कभी नष्ट नहीं होता है अर्थात् यह अप्रतिपाति ज्ञान है। मनुष्य देह छूटने के बाद भी यह ज्ञान ज्यों का त्यों बना रहता हे। अनन्त सिद्धों का और हजारों मनुष्यों का केवल ज्ञान एक सरीखा होता है। अतः इसके कोई भेद विभाग नहीं होते है।। केवल ज्ञान मनुष्य और सिद्धों की अवस्थाएं विभिन्न होती है उस उपेक्षा से केवल ज्ञानी के भेद विकल्प उपचार से हो सकते है।, परन्तु वास्वत में केवलज्ञान का कोई भेद विकल्प नहीं होता है, यह स्पष्ट है। यह ज्ञान सादि-अनन्त है अर्थात् एक दिन यह ज्ञान प्रकट होता है, इसलिए सादि हैं फिर सदा सर्वदा रहेगा, इसलिए अनन्त है पांच पदों में प्रथम और दूसरे पद में अर्थात् अरिहंत और सिद्धों में केवल ज्ञान होता ही है। शेष तीन पद में किसी को होता है और किसी को नहीं होता है।

केवलज्ञान का विषय- (1) द्रव्य से केवल ज्ञानी रूपी-अरूपी सभी द्रव्यों को जाने देखे। (2) क्षेत्र से लोक-अलोक सर्वत्र जाने-देखे। (3) काल से-संपूर्ण भूत भविष्य को जाने देखे। (4) भाव से- सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों अवस्थाओं को जाने देखे।

केवलज्ञान से संपूर्ण पदार्थों और भावों को जानकर केवली कुछ तत्त्वों का ही कथन वाणी द्वारा करते है वह उनका वचन योग होता हैं। उनका वह प्रवचन सुनने वालों के लिए श्रुतज्ञान बन जाता हैं। मति आदि चार ज्ञान एक साथ एक व्यक्ति में हो सकते हैं। केवल ज्ञान अकेला ही रहता हैं। शेष चारों ज्ञान उसी में विलीन हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी मकान की एक दिशा में चार दरवाजे हैं, उन्हें हटाकर पूरी दिशा खुली करके जब एक ही चौड़ा मार्ग बना दिया जाता है, तब उसमें प्रवेश द्वारा 4 या 5 नहीं होकर एक ही मार्ग कहा जाता हैं। चार दरवाजों के चार मार्ग भी उसी में समाविष्ट हो जाते हे। उसी प्रकार एक केवल ज्ञान में ही चारों ज्ञान समाविष्ट हो जाते हैं। केवल ज्ञान से बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं होता हैं। यही सर्वोपरी ज्ञान है और आत्मा की सर्वश्रेष्ठ निज स्वभाव अवस्था हैं। इसी को प्राप्त करने के लिए ही संपूर्ण तप संयम की साधना स्वीकार की जाती हैं।

नोट- अन्य अवशिष्ट एवं विशिष्ट जानकारी के लिये नंदी सूत्र के अर्थ विवेचन के अन्य संस्करणों का अवलोकन करना चाहिये।

।। नंदी सूत्र सारांश समाप्त ।।

भगवती सूत्र एवं नंदीसूत्र में ज्ञान विषय-

मतिज्ञान के अतिरिक्त चार ज्ञान का विषय उक्त दोनों सूत्रों में समान हैं। किंतु मतिज्ञान के विषय में नंदी में अपेक्षा से सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जानने का विधान किया किंतु देखने का निषेध किया हैं भगवती सूत्र में अपेक्षा से जानने देखने दोनों का विधान किया हैं। जब अपेक्षा शब्द का उपयोग कर दिया गया है तो देखने का भी विधान करना ही उपयुक्त है अतः भगवती का पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता हैं। अपेक्षा शब्द लगाकर के भी नहीं देखना कहना और फिर टीकाकार उसका स्पष्टीकरण करे कि अमुख अपेक्षा से देखता है और अमुक अपेक्षा से नहीं देखता हैं यह अनुपयुक्त होता हैं।

अतः नंदी सूत्र में कभी भी लिपी प्रमाद से या समझ भ्रम से 'नो' शब्द लगा दिया गया है ऐसा समझना चाहिये। क्योकि अपेक्षा शब्द कहने के बाद बहुत गुंजाईस स्वतः रह जाती है। तभी सूत्र में सब द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जानना कह दिया गया हैं। श्रुत ज्ञान में भी अपेक्षा से उपयोग हो तो सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जानने देखने की उत्कृष्ट क्षमता दोनों सूत्रों में कहीं गई हैं।

अतः भगवती सूत्र के समान नंदी में भी मतिज्ञान का विषय समझना चाहिये ।

टीकाकरों के पूर्व से ही यह लिपि दोष प्रतियों में आ चुका था। किंतु भगवती सूत्र के प्रमाण से इसे सुधारने में ही सही निराबाध तत्त्व सिद्ध होता हैं।

सार- मतिज्ञान अपेक्षा से सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाने और देखें

परिशिष्ट –1

नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र में वर्णित द्वादशांगी के परिचय में अंतर-

समवायांग में विषय वर्णन कुछ कुछ अधिक एवं विस्तृत दिया गया है, और नंदी में कुछ कम दिया गया हैं। इसके अतिरिक्त लगभग परिचय समान दिया गया हैं। नंदी में भगवती सूत्र की पद संख्या 2 लाख 88 हजार समवायांग में 84 हजार हैं। नंदी में अंतगड सूत्र के आठ वर्ग आठ उद्देशन काल कहें हैं और अध्ययन का कथन नहीं हैं। समवायांग में 10 अध्ययन और दस उद्देशन काल कहे है, वर्ग सात कहे हैं। नंदी में अणत्तरोपपातिक सूत्र के तीन वर्ग तीन उद्देशन काल कहे हैं समवायांग में 10 अध्ययन 10 उद्देशन काल कहे है और वर्ग 3 कहे हैं। शेष विषय वर्णन एक सा हैं।

ठाणांग सूत्र में कतिपय परिचय-

(1) उपासक दशा, (2) अंतगड़ दशा, (3) अणुत्तरोपपातिक दशा, (4) प्रश्न व्याकरण, (5) विपाक सूत्र के अध्ययनों की संख्या और नाम दसवें ठाणे में दिये गये है। नंदी और समवायांग के सूत्र परिचय में किसी भी सूत्र के अध्ययनों के नाम नहीं दिये गये हैं। वर्तमान में उपलब्ध इन आगमों के अध्ययनों में और ठाणांग सूचित अध्ययनों के नामों में विभिन्नता हैं। उक्त पांच ही सूत्रों की अध्ययन संख्या ठांणाग में 10-10 ही कही हैं। समवायांग में उक्त चार सूत्रों के 10-10 अध्ययन कहे है किन्तु प्रश्न व्याकरण के 45 अध्ययन कहे हैं। नंदी में उक्त पांच में अंतगड और अणुत्तरोपपातिक की अध्ययन संख्या नहीं कही है। प्रश्न व्याकरण के 45 अध्ययन कहे हैं। केवल विपाक और उपासकदशा के ही दस अध्ययन कहे हैं। वर्तमान में उपलब्ध अंतगड में 90 अध्ययन हैं। अणुत्तरोपपातिक में 33 अध्ययन है, शेष तीनों में दस दस अध्ययन हैं।

उपासकदशा और विपाक इन दो सूत्रों के अध्ययन संख्या में विभिन्नता नहीं है किन्तु विपाक के नामों में विभिन्नता हैं। प्रश्न व्याकरण के अध्ययनों की संख्या 10 उपलब्ध है किन्तु वे दशों ही भिन्न हैं। अणुत्तरोपपातिक के 10 नामों में भी भिन्नता हैं।

इन विभिन्नता के कारणों की कई प्रकार से कलपना की जाती हैं। आगमों में कोई भी कारण का संकेत नहीं हैं।

सार- उक्त पांच सूत्रों में उपासक दशा पूर्ण निर्दोष और एक मत हैं। अंतगड, अणुत्तरोपपातिक और प्रश्न व्याकरण ये तीन सूत्र उपलब्ध कुछ और है एवं परिचय या अध्ययनों के नाम उससे अलग ही हैं। विपाक भी निर्दोष एकमत है किन्तु कुछ अध्ययन के नामों में अंतर हैं।

इससे फलित यह है कि तीन अंग आगमों का पूर्णतः परिवर्तित रूप उपलब्ध है एवं विपाक सूत्र के कुछ अध्ययनों में परिर्वतन दिखता हैं। शेष सात अंग सूत्रों की किसी भी प्रकार की विभिन्नता इन परिचय सूत्रों में चर्चित नहीं हैं।

आचारांग सूत्र के पिछले दो अध्ययन भावना और विमुक्ति 'बंध-दशा-सूत्र' के सातवें, आठवें अध्ययन है, ऐसा ठाणांग सूत्र में कहा है। निशीथ अध्ययन को आचारांग से अलग करने पर इनका कुछ परिवर्तन हुआ है और अध्ययन

संख्या की पूर्ति की गई है। आगमों में इन परिवर्तनों के संबंध में कोई संकेत नहीं होने से किसी परिवर्तन के लिए निर्णित निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अनुमान एवं संभावनाएं ही की जा सकती है। जिनका निर्देश ऊपर किया गया है।

नन्दी सूत्र का कथा विभाग

औत्पातिकी बुद्धि का दृष्टान्त-

(1) उज्जयिनी नगरी के पास एक नटों का ग्राम था। वहां भरत नामक नट रहता था। पत्नी का छोटी उम्र में देहांत हो गया। उसके एक पुत्र रोहक था। दोनों के अवलंबन के लिए उसने पुनः शादी कर ली किन्तु वह विमाता उससे दुर्व्यवहार करने लगी।

रोहक बड़ा होनहार और बुद्धिमान बालक था। उसने माता से एक बार स्पष्ट कह दिया कि आप मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती हो यह आपके लिए उचित नहीं है। विमाता आगबबूला हो गई और कह दिया कि तुझसे जो बने वह कर लेना। रोहक ने उपाय सोच लिया, रात्रि में उठकर बोला-पिताजी ! कोई पुरुष दौड़कर जा रहा है। भरत ने उठ कर पूछा कहां है? उसके कह दिया भाग गया। पत्नी ने कह दिया नहीं जी कोई नहीं है यह ऐसे ही करता है। भरत को पत्नी पर संदेह हो गया और उससे विमुख होकर रहने लगा।

कुछ ही दिनों में विमाता की अक्ल ठिकाने आ गई। रोहक से क्षमा मांगी। रोहक ने एक दिन, रात्रि में फिर आवाज की। भरत उठा, दिखाने को कहा तो रोहक ने चांदनी में अपनी परछाई की तरफ ईशारा करते हुए यह जा रहा है। भरत बच्चे की नादानता समझ गया और पत्नी से पूर्ववत मधुर व्यवहार करने लगा। रोहक अब सावधान रहने लगा कि विमाता कभी भोजन में जहर न दे दे। वह सदा पिता के साथ ही भोजन करता था।

एक बार भरत किसी कार्य वश उज्जयिनी गया तो रोहक भी साथ हो गया। नगरी का वैभव सौन्दर्य आदि देखकर मुग्ध सा हो गया। घूम घूम कर नगरी के नक्शे उसने अपने दिमाग में जमा लिए। पुनः गांव की ओर लौटे। मार्ग में क्षिप्रा नदी आई। वहां रोहक को बिठा कर भरत कोई भूली वस्तु लेने पुनः नगरी में गया। वहां रोहक उस नदी की रेत में खेलने लगा। उसने नगरी का भव्य चित्र एवं राजमहल आदि रेत में बना दिए।

अचानक उधर से घूमते हुए राजा आ निकला। वह रोहक के चित्र पर से होकर जाने लगा। रोहक ने तत्काल टोकते हुए कहा महाशय! इस मार्ग से मत जाओ। राजा ने बालक को कारण पूछ लिया। उसने कहा- यहां राज भवन है इसमें बिना इजाजत के कोई प्रवेश नहीं कर सकता है। यह सुनते ही राजा ने उसका सारा नक्शा देखा और छोटे से बालक की बुद्धि पर दंग रह गया। राजा बच्चे पर आकर्षित हुआ उसका नाम, गांव, परिचय आदि पूछ लिया और परीक्षण करने का तय कर लिया।

(2) राजा ने एक बार ग्रामवासियों को बुलाकर कहा कि तुम्हारे गांव के बाहर एक बहुत बड़ी शिला है उसे वहां से हटाये बिना आप लोग एक सुंदर मंडप बनाओ, जिसके उपर वह शिला ढकी हुई है।

आदेश पाकर गांव के लोगों ने इकट्ठे होकर विचार विमर्श किया। बहुत समय हो गया तो भी उपाय नहीं सूझा। भरत भी सभा में था। रोहक को भूख लगी थी पिता के बिना भोजन नहीं करता था खोजते खोजते वहां पहुंच गया। गंभीर मुद्रा में लोगों को देखकर जानकारी की ओर कहा इस छोटी सी बात को लेकर क्यों चिंता में पड़े हो। उसने उपाय बता दिया सुंदर मंडप बनकर तैयार हो गया। राजा ने निवेदन किया मंडप आपकी आज्ञानुसार तैयार है। राजा ने स्वयं पहुंच कर निरीक्षण किया देखा जहां शिला थी वहीं वह थंभों पर टिकी हुई थी। उसके नीचे की जमीन खोदकर भूमिगृह जैसा वह मंडप बनाया गया था।

राजा ने प्रसन्न होकर पूछा यह तरीका आप लोगों को किसने बताया? रोहक की तरफ लोगों का इशारा था। राजा को इसी उत्तर की आशा थी। रोहक राजा की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

(3) राजा ने दूसरी बार परीक्षा के लिए एक मेंढा भेजा और कहा इसे 15 दिन बाद लाना। इसका वजन घटना भी नहीं चाहिये और बढना भी नहीं चाहिये। गांव वाले चिंताग्रस्त हो गये कि अच्छा खिलाएंगे तो बढ़ेगा ही, भूखा रखेंगे तो घटेगा ही, फिर क्या करें। रोहक ने तरीका बता दिया कि खाने को अच्छी खुराक दें किन्तु उसके सामने पींजरे में एक शेर को बांध दे। ऐसा ही किया गया वास्तव में वजन घटा बढ़ा नहीं। एक पक्ष बाद राजा को लौटा दिया। वजन मापने पर बराबर निकला। राजा ने रोहक की चतुराई को जानकर उसकी सराहना की।

(4) कुछ दिनों बाद राजा ने एक मुर्गा भेजा और कहा कि इसे लड़ाकू बना दें। शर्त है कि दूसरा मुर्गा नहीं लाना। अकेला कैसे लड़ाकू बनेगा, यह गांव वालों की चिंता रोहक ने दूर करदी। एक बड़ा कांच लिया। उसे व्यवस्थित योग्य स्थान पर रखकर वहीं मुर्गे को रख दिया। कांच में दूसरा मुर्गा देखकर वह उससे लड़ता ही रहता। प्रतिबिंब के अवलंबन से वह मुर्गा लड़ाकू बन गया। मुर्गे को राजा के समक्ष रखा और परीक्षण किया गया तो मुर्गे को लड़ाकू पाया गया। राजा रोहक की बुद्धि पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

(5) एक बार राजा ने तिलों का एक ढेर लगाकर गांव वालों को दिखाकर कहा कि इस ढेर में कितने तिल हैं गिने बिना संख्या बताओ। लोग तो किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। रोहक ने उत्तर लिख दिया तद्नुसार राज सभा में उत्तर दे दिया कि-हम गणित के विद्वान तो है नहीं, अतः उपमा से बता देते हैं कि उज्जयिनी नगर के उपर आकाश में जितने तारे हैं ठीक उतनी ही संख्या में ये तिलों के दाने हैं। राजा रोहक की बुद्धि पर मन ही मन प्रसन्न हुआ।

(6) एक बार राजा ने क्षिप्रा नदी की बालू रेत से शानदार रस्सी बनाने का आदेश दिया। रोहक के निर्देशानुसार लोगों ने जाकर राजा से निवेदन कर दिया कि हम लोगों ने रस्सी पर नाचना सीखा है, रस्सी बनाना नहीं सीखा है। आपके आदेश से बनाने का प्रयत्न करेंगे, किन्तु हमें आप रेत की बनी हुई रस्सी का एक नमूना दें। राजा मन ही मन सहम गया। रोहक की बुद्धि के आगे उसकी अकल पानी भरने लगी। उसने कुछ भी कारण निकाल कर आदेश रद्द कर दिया।

(7) एक दिन राजा के एक वृद्ध मरणासन्न हस्ती (हाथी) गांव वालों को दिया और कहा कि इसकी अच्छी तरह सेवा करना, प्रतिदिन इसके समाचार मेरे पास भेजते रहना किन्तु यह नहीं कहना कि वह मर गया अन्यथा दंड दिया जाएगा।

ध्यान रखते हुए भी एक दिन हाथी मर गया। रोहक ने उत्तर बता दिया। जाकर राजा को हकीकत कह दी। आज हाथी न खाता है न पीता है न हिलता है न चलता है। सोया पड़ा है यहां तक कि सांस भी नहीं लेता है। राजा ने पूछा तो क्या मर गया है? ग्रामीण लोगों ने कहा ऐसा हम नहीं कह सकते आप ही कह सकते हैं। राजा समझ गया और गांव वालों की चतुराई देखकर चुप हो गया।

(8) एक बार राजा ने कहा कि तुम्हारे गांव का जो कुआ है उसका पानी अत्यन्त मधुर है वह कुआ हमारे यहां भेज दो। रोहक ने लोगों को उत्तर सिखा कर चिंता मुक्त कर दिया। लोगों ने जाकर राजा से निवेदन कर दिया कि ग्रामीण कुआ भीरू और संकोचशील है, एक शहरी कुआ भेजने की कृपा करो, उसके साथ भेज देंगे। उसके साथ वह आ भी जाएगा। राजा रोहक की बुद्धि की प्रशंसा करता हुआ चुप रह गया।

(9) एक बार राजा ने संदेश भेजा कि तुम्हारे गांव के पूर्व में जो वनखंड है उसे पश्चिम में कर दो। रोहक ने समझा दिया कि गांव को ही वनखंड के पूर्व में बसा दो। वैसा ही किया। राजा बहुत आनंदित हुआ।

(10) एक बार राजा ने आदेश भेजा कि बिना अग्नि के खीर तैयार करके भेजो। रोहक ने सुझाव अनुसार चावल को पहले भिजोकर रख दिया गया। फिर उन्हें दूध की देगची (तपेली) में डाल दिया। देगची को चूने के ढेर पर ढक्कन लगाकर रख दिया। चूने पर पानी डाल दिया गया। चूने की तीव्र गर्मी से खीर पक गई। राजा ने खीर चखी, विधि पूछी। इस प्रकार रोहक के बुद्धि की परीक्षा हो गई।

(11) अब राजा ने उसे अपने पास बुलावा भेजा और कहा कि रोहक मेरे पास आओ, किन्त न कृष्ण पक्ष में आवे न शुक्ल पक्ष में, न रात में आवे न दिन में आवे, न धूप में आवे न छाया में आवे, न आकाश मार्ग से आवे न भूमी पर चलकर आवे। न मार्ग से आवे न उन्मार्ग से आवे, न स्नान करके आवे न बिना स्नान किए आवे किन्तु आवे अवश्य। ऐसी अद्भुत शर्त सुनकर लोक अवाक रह गये।

रोहक ने पांव तक स्नान किया। मेंढे की सवारी ली। अमावस्या और प्रतिपक्ष का मध्य समय देख कर संध्या के समय सिर पर चालनी का छत्र धारण कर गाड़ी के पहियों के बीच की जगह में चलता हुआ राजा के पास चला गया। एक मिट्टी का ढेला साथ में लाया था वह राजा को भेंट किया। राजा ने चकित होकर पूछा यह क्या है? रोहक ने विनय पूर्वक मधुर शब्दों में कहा प्रभु! आप पृथ्वीपति है, अतः यह पृथ्वी आपके लिए लाया हूं। राजा बहुत खुश हुआ उसे अपने पास रख लिया।

रात्रि के दूसरे प्रहर में राजा की नींद खुली उसने रोहक को संबोधन किया और पूछा क्या सोच रहे हो? उसने बताया कि बकरी के पेट में गोल-गोल मिंगणिया कैसे बनती हैं? राजा ने उसका उत्तर पूछ लिया। रोहक ने बताया कि उसके पेट में संवर्तक वायु होती है उसके कारण ऐसा होता है।

12.13 इसी प्रकार तीसरे और चौथे प्रहर में दो बाते बताई- 1. पीपल के पत्ते का डंठल और शिखा दोनों समान होते हैं जब तक शिखा का भाग सूखे नहीं। 2. गिलहरी की पूंछ और उसका शरीर समान लंबे होते हैं।

(14) सूर्योदय के समय जब रोहक आवाज देने पर भी नहीं उठा तो राजा ने उसे अपनी छड़ी से थोड़ा कुदेला। वह तुरन्त जाग गया। राजा ने कुतुहल वश फिर पूछ लिया कि अब क्या सोच रहे हो? रोहक ने अजीब सा उत्तर दिया कि आपके कितने पिता हैं यह सोच रहा हूं। राजा ने पूछ लिया बताओ क्या उत्तर सोचा है? उसने कहा महाराज! आप पांच से पैदा हुए हो। राजा ने क्रोध को दबाते हुए उसी से पूछ लिया पांच कैसे ? उसने कहा- एक तो आप वेश्रमण से, क्योंकि आप कुबेर के समान उदरचित्त हैं। दूसरे चांडाल से क्योंकि आप दुश्मनों के लिए चांडाल से भी अधिक क्रूर हैं। तीसरे धोबी से, जिस तरह धोबी गीले कपड़े को निचोड़ कर सारा पानी निकाल लेता है उस तरह आप राजद्रोहियों और देश द्रोहियों का सर्वस्व हरण कर लेते हैं। चौथे बिच्छु के समान मुझ निद्राधीन को आपने छड़ी चुभाकर कष्ट दिया। पांचवे आप अपने पिता से क्योंकि अपने पिता के समान ही न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करते हो। रोहक की बातें सुनकर राजा अवाक् रह गया।

सुबह वह माता के पास प्रणाम करने गया। रोहक की कहीं पांच पिता की बात माता को कह सुनाई। राजामाता ने कहा कि विकारी इच्छा से देखना ही तेरे इन संस्कारों का निमित्त हो सकता है। कारण कि जब तुम गर्भ में आए तब मैं कुबेर की पूजा करने गई कुबेर की सुंदर मूर्ति को देखकर एवं मार्ग में धोबी और चांडाल को रूपवान देखकर मेरी भावना विकृत हुई थी। उसके बाद घर आने पर एक बिच्छु युगल को रति क्रीडा करते हुए देख कर भी मन में कुछ विकारी भावना पैदा हुई थी। वस्तुतः तो तुम्हारे पिता एक ही है।

रोहक की अलौकिक बुद्धि का चमत्कार देखकर राजा का हृदय फूला नहीं समाया, उसे महामंत्री पद पर नियुक्त कर दिया। ये सभी रोहक की उत्पातिकी बुद्धि के उदाहरण है।

(15) एक गांव में गाड़ी वाला गाड़ी भर कर ककड़ियें लाया और गांव के दरवाजे में बैठकर बेचने लगा। एक धूर्त आया और बोला कि ये गाड़ी भरी सभी ककड़ियें यहां खड़े-खड़े खा जाऊं तो क्या दो। ग्रामीण धूर्त की बातों के चक्कर में आ गया। शर्त हो गई। साक्षी भी हो गये और उस द्वार में नहीं आ सके ऐसा लड्डू देना तय हो गया।

धूर्त ने सारी ककड़ियां झूठी कर दी और कह दिया कि सभी खाली है। लाओ लड्डू। ग्राहक आए वे भी बोलने लगे ये तो खाई हुई ककड़ियां हैं। धूर्त ने लड्डू के लिए परेशान कर दिया। अब ककड़ियां तो खराब हुई पर लड्डू कहां से लावे। इतने में ग्रामीण को एक बुद्धिमान मिल गया। उसने हकीकत सुन कर उपाय बता दिया कि बाजार से एक लड्डू लाओ और दरवाजे के बाहर रख दो, फिर अंदर से आवाज देकर उसे बुलाओ, वह नहीं आवे तक कह देना कि देखलो बुलाने पर भी यह दरवाजे में नहीं आ रहा है साक्षी वाले भी कुछ बोल नहीं सके और ग्रामीण का धूर्त से पिंड छूटा।

(16) कुछ यात्री मार्ग में आम के वृक्ष के नीचे ठहरे। पके हुए आम देखकर खाने का मन हुआ किन्तु वृक्ष पर बंदर बैठे हुए थे। एक बुद्धिमान ने उपाय ढूंढ लिया कि बंदर नकलची होते हैं हम लोग इन पर पत्थर फेकेंगे तो ये आम तोड़ कर अपने ऊपर फेकेंगे। ऐसा ही किया गया और उन्होंने भर पेट आम खाए और चल दिए।

(17) राजा प्रसेनजित के अनेक पुत्र थे उनमें श्रेणिक समस्त राज्योचित गुणों से सम्पन्न था। एक बार श्रेणिक किसी कारण वश या भ्रम वश खिन्न होकर चुपचाप अन्य देश में जाने के लिए रवाना हो गया। चलते चलते बेनातट नगर

पहुंचा और एक व्यापारी की दुकान पर एक तरफ जाकर बैठ गया। दुकानदार का व्यापार बहुत दिनों से चल नहीं रहा था उसका वैभव समाप्त सा हो रहा था। किन्तु उस दिन उसका पुराना माल भी बहुत ऊंचे भावों से चला गया। सेठ बहुत खुश हुआ। सोचने लगा यह कौन व्यक्ति आकर बैठा है? इसी के प्रताप से मेरे भाग्य खुले हैं। यों भी यह सुंदर और तेजस्वी दिख रहा है। उसे पास बुलाकर पूछा कि आप किसके यहां मेहमान है। श्रेणिक ने नम्र शब्दों में कहा श्रीमान् मैं आपका ही अतिथि हूं। सेठ बड़ा खुश हो गया घर ले गया, बड़े प्रेम से उसे रखा। सेठ के धन संपति व्यापार में अपार वृद्धि हुई। फिर सेठ ने अपनी कन्या नंदा के साथ उसका विवाह कर दिया। श्रेणिक अब ससुराल में नंदा के साथ मानुषिक सुख भोगते हुए रहने लगा।

श्रेणिक के अचानक चले जाने पर प्रसेनजित राजा बड़ा ही चिंतित हुआ। बहुत खोज करी अंत में बेनातट नगर में होने की जानकारी मिली। बुलावा भेजा। नंदा की और सेठ की स्वीकृति लेकर एवं अपना परिचय लिखित देकर श्रेणिक पिता के पास आ गया।

नंदा गर्भवती थी कालांतर से पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम अभयकुमार रखा। कुमार बड़ा हुआ। एक बार उसने माता से पूछ लिया कि मेरे पिता कौन हैं? माता ने उपयुक्त समय समझ कर श्रेणिक का लिखा परिचय पत्र उसको दे दिया क्योंकि अभय पढ़ लिख कर सब कलाओं में शास्त्रों में पारंगत हो चुका था।

अभय ने पत्र पढ़ा, माता से भी वृत्तांत जाना, पिता के पास राजगृही जाने को तत्पर हुआ। साार्थ सहित माता को लेकर राजगृही के बाहर पहुंचा। माता को सार्थ में छोड़ कर अकेला ही नगर का वातावरण देखने चला। एक जगह पानी रहित कुए के पास लोगों के अनेक झुंड खड़े थे। अभयकुमार आगे बढा और उन लोगों से वहां इकट्ठे होने का कारण पूछा? लोगों ने कहा कि राजा श्रेणिक की अंगूठी इस कुए में गिर गई है, राजा ने कुए में उतरे बिना ही इसे निकालने की घोषणा की है और निकालने वाले को बहुत बड़ा ईनाम देने की भी घोषणा की है। हम लोगों ने कई उपाय किए किन्तु अंगूठी नहीं निकली है।

अभय कुमार ने थोड़ा सा गोबर लेकर उस अंगूठी पर फेंक दिया वह उसमें चिपक गई थोड़ी देर बाद उस गोबर के सूखने पर उस कुए में पानी भरवाया गोबर में लगी अंगूठी उपर आ गई। उसे हाथ से निकाल कर दे दी। लोग चकित रह गये राजा तक खबर पहुंच गई। राजा ने उसे बुलाया और पूछा तुम कौन हो? अभय ने उत्तर दिया- मैं आपका ही पुत्र हूं। अभय ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया राजा अपने बुद्धिमान पुत्र को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फिर राजा स्वयं सन्मान सहित नंदा राजरानी को महलों में लाया। सारे नगर में खुशी का वातावरण बन गया। श्रेणिक ने अपने बुद्धिमान पुत्र को मंत्री पद प्रदान किया।

(18) दो व्यक्ति कहीं जा रहे थे। सर्दी के समय था एक के पास सूती वस्त्र था। दूसरे के पास सुंदर कंबल था। मार्ग में सुंदर सरोवर देखकर दोनों स्नान करने उतर गये, वस्त्र बाहर रख दिये। सूती वस्त्र वाले का मन बिगड़ गया। जल्दी बाहर निकला और ऊनी कम्बल लेकर चल दिया। आवाज देने पर भी कुछ नहीं बोला, वह भी दौड़ा आखिर दोनों में झगड़ा हो गया। झगड़ा न्यायालय तक पहुंचा पर न्यायाधीश करे क्या? क्योंकि कंबल पर किसी का भी नाम नहीं था।

अचानक उपाय सूझ गया। कंघी मंगवाई,दोनों के बालों में कंघी की गई। जिसकी कंबल थी उसके मस्तक के बालों से ऊन के बारीक धागे निकले कंबल उसे दे दी गई। यह न्यायाधीश की औत्पातिक बुद्धि थी।

(19) एक बार एक व्यक्ति जंगल में जा रहा था, उसे शौच की हाजत हुई। जल्दी में वह एक बिल पर बैठ गया। अकस्मात एक गिरगिट आया और उसके गुदा भाग को स्पर्श करता हुआ बिल में घुस गया। उसे ऐसा आभास हुआ कि यह मेरे पेट में घुस गया। संयोगवश किसी अन्य कारण से उस समय पेट में दर्द भी हो गया। अतः यह बात उसके पक्की जम गई। कई उपचार कराए, वह स्वस्थ नहीं हो सका।

एक दिन एक अनुभवी एवं नाड़ी वैद्य मिला। उसने सभी नाड़ियें देखी निर्णय किया कोई भी रोग नहीं है। तब उसने पूछा कि यह तकलीफ कब से और कैसे हुई जो भी तुम्हें मालूम हो कह दो। गिरगिट की बात सामने आ गई। वैद्य ने रोग पकड़ लिया। इलाज भी तत्काल सोच लिया। एक कृत्रिम गिरगिट तैयार किया और उस पर लाक्षरस अवलिप्त कर दिया। उसे एक पात्र में गुप्त रख कर रोगी को जुलाब देकर कहा इसमें शौच जाओ। शौच निवृत्त होने के बाद वह पात्र प्रकाश में ले जाकर उसे दिखाया और कहा देखो यह गिरगिट तुम्हारे पेट में था निकल गया है। विश्वास हो जाने से वह शीघ्र स्वस्थ हो गया।

(20) वैन्नातट नगर में भिक्षार्थ भ्रमण करते बौद्ध भिक्षु और जैन मुनि मिले। बौद्ध भिक्षु ने पूछा तुम सर्वज्ञों के पुत्र हो (शिष्य हो) बतावो इस गांव में कौवे कितने हैं? जैन मुनि सर्वज्ञ थे नहीं किन्तु बुद्धि से सोचकर उत्तर दे दिया कि मेरे ध्यान से यहां 60000 साठ हजार कौवे हैं, यदि कुछ कम हो तो समझें मेहमान बन कर बाहर गये हैं और कुछ अधिक हैं तो बाहर के मेहमान आए हुए हैं। यदि संदेह हो तो आप गिन कर देख लीजिए। बौद्ध भिक्षु लज्जावनत होकर चला गया।

(21) एक बार एक व्यक्ति नव विवाहित पत्नी को लेकर कहीं जा रहा था मार्ग में एक धूर्त साथ हो गया। कुछ बातों में समय व्यतीत करते हुए उसने बहु का चित्त मोह लिया और फिर कहने लगा यह स्त्री तो मेरी है। नववधू भी उसके साथ जाने को तैयार हो गई। झगड़ा बढ़ गया। न्यायालय में पहुंचा। न्यायाधीश ने तीनों को अलग कर दिया, फिर पूछा कि कल क्या खाया असली पति ने कहा कल हम दोनों ने मिलकर तिल के लड्डू खाए। न्यायाधीश ने स्त्री और धूर्त को विरेचन देकर देखा स्त्री के मल में तिल थे। धूर्त के नहीं। इस निर्णय से उसने असली पति को पत्नी दी और धूर्त को उचित दंड दिया।

(22) एक राजा को बुद्धिमान प्रधान की आवश्यकता थी। उसने चैराहे पर एक हाथी बंधवा दिया और घोषणा करवा दी कि इसे जो तोल देगा उसे बहुत बड़ा ईनाम दिया जाएगा। धीरे-धीरे लोग वहां से खिसकने लगे क्योंकि हाथी को तोले कैसे। कुछ समय पश्चात् एक व्यक्ति वहां आया उसने वह कार्य स्वीकार किया। नाव पर हाथी को सवार किया, नदी में ले जाकर जहां तक नाव डूबी वहां चिन्ह कर दिया। उसके बाद हाथी को निकाल कर उस चिन्ह तक नाव डूबी उतने पत्थर भरे। फिर पत्थरों को निकाल कर उनका वजन कर लिया, हाथी का वजन निकल आया। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे प्रधान मंत्री पद प्रदान किया।

(23) एक राजा अपने मुंह लगे भांड के सामने रोजाना अपनी रानी की प्रशंसा करता था। एक दिन उसने कहा- रानी बड़ी आज्ञाकारिणी है। भांड ने कह दिया- महाराज वह स्वार्थवश ऐसा करती है, विश्वास न हो तो परीक्षा करके देख लीजिए।

राजा ने रानी की परीक्षा करने का निश्चय किया। उसने रानी से कहा कि मैं नई शादी करना चाहता हूं और उसके जो पुत्र होगा। राज्य भी उसे ही देना चाहता हूं। रानी ने तत्काल दृढ़तापूर्वक कह दिया कि आपकी इच्छा होतो शादी भले ही करें परन्तु राज्य का अधिकारी तो परंपरा से पहला राजकुमार ही हो सकता है। राजा ने भी आग्रह किया किन्तु रानी ने एक भी बात नहीं सुनी और अपनी बात पर दृढ रही। राजा को कुछ हंसी आ गई। तो रानी ने हंसने का कारण जानना चाहा। भांड और राजा की वार्ता प्रकट हो गई। रानी को भांड पर गुस्सा आया और उसे देश निकाला घोषित करवा दिया। दूसरे दिन प्रातः भांड चलने लगा किन्तु रानी जी के दर्शन की स्वीकृति लेकर अंतःपुर में गया, प्रणाम किया। उसके सिर पर बहुत गठरी थी। रानी ने पूछा यह क्या भर कर ले जा रहा है? उसने जूतों का ढेर दिखा दिया और कहा कि इन जूतों से जितने देश विदेश जा सकूंगा वहां घूम-घूम कर आपका अपयश फैलाउंगा। रानी घबरा गई उसने आदेश पलटवा दिया। यह भांड की औत्पातिकी बुद्धि का प्रमाण है।

(24) किसी बालक के खेलते हुए एक लाख की गोली नाक में चली गई और श्वांस नली में अटक गई। उसकी श्वास क्रिया में रूकावट होने लगी, बहुत उपाय किए पर नहीं निकली।

एक बुद्धिमान सुनार उधर से निकला। बात मालूम पड़ी। उसने लोहे की बारीक शलाका ली। अग्र भाग गर्म किया और सावधानी से नाक में पड़ी गोली में चुभा दी। लाख की गोला शलाका में चिपक गई कुछ क्षणों बाद वह गोली शलाका के साथ बाहर आ गई। बच्चे की वेदना शांत हो गई।

(25) एक राजा ने प्रधान की तलाश में गहरे तालाब के बीच में एक ऊंचा थंभा गड़वा दिया और घोषणा करवा दी कि जो कोई भी व्यक्ति पानी में उतरे बिना इस खंभे को रस्सी से बांध देगा उस एक लाख रुपये इनाम में दिए जाएंगे। कई लोग आए और प्रयत्न करके हताश हो गये।

एक बुद्धिमान व्यक्ति आया उसने एक खंभा तालाब के किनारे गाड़ दिया। ''रस्सी'' का एक छोर उस खंभे के बांध कर दूसरा छोर हाथ में लिया और तालाब के किनारे किनारे चलता हुआ चारों ओर घूम गया। जिससे तालाब के बीच में रहा वह खंभा बाहर के खंभे से बंध गया। राजा को खबर पहुंचाई गई कि खंभा बंध गया है। राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे एक लाख रुपये का इनाम देकर अपना मंत्री भी बना लिया।

(26) किसी नगर में एक संन्यासिनी रहती थी। उसे अपने आचार-विचार पर बड़ा गर्व था। एक बार वह राजसभा में जा पहुंची और बोली- ''महाराज, इस नगर में कोइ्र व्यक्ति ऐसा नहीं है जो मुझे परास्त कर सके।'' संन्यासिनी की दर्पभरी बात सुनकर राजा ने उसी समय नगर में घोषणा करवा दी कि जो कोई इस संन्यासिनी को परास्त करेगा उसे राज्य की ओर से सम्मानित किया जाएगा। घोषणा सुनकर और तो कोई नगरवासी नहीं आया, किन्तु एक क्षुल्लक सभा में आया और बोला- **''मैं इसे परास्त कर सकता हूं।''**

राजा ने आज्ञा दे दी। संन्यासिनी हंस पड़ी बोली- इस मुंडित से मेरा क्या मुकाबला? क्षुल्लक गंभीर था वह संन्यासिनी की धूर्त्तता को समझ गया और उसके साथ उसी तरह पेश आने का निश्चय करके बोला- ''जैसा मैं करूं अगर वैसा ही तुम नहीं करोगी तो परास्त मानी जाओगी।'' यह कहकर उसने समीप ही बैठे मंत्री का हाथ पकड़कर उसे सिंहासन से उतार कर नीचे खड़ा कर दिया और अपना परिधान उतार कर उसे ओढ़ा दिया। तत्पश्चात् संन्यासिनी से भी ऐसा ही करने के लिए कहा। किन्तु संन्यासिनी आवरण रहित नहीं हो सकती थी, अतः लज्जित व पराजित होकर वहां से चल दी। क्षुल्लक की औत्पातिकी बुद्धि का यह उदाहरण है।

(27) एक पुरुष अपनी पत्नी को लेकर कहीं जा रहा था। मार्ग में रथ रोक कर उसकी पत्नी झाड़ी में लघु शंका के लिए गई। रथ के पास वृक्ष था, उस पर एक व्यंतरी थी। वह पुरुष पर मोहित हो गई और उस स्त्री का रूप बनाकर रथ में आकर बैठ गई, रथ चल दिया। इतने में झाड़ी से आती हुई स्त्री ने आवाज दी रथ रोको। बैठे हुई व्यंतरी ने कहा जल्दी रथ चलावो, कोई व्यंतरी मेरा रूप बनाकर आ रही है। रथ आगे बढ़ नहीं पाया कि वह स्त्री रथ के पास पहुंच गई और रथ के साथ दौड़ती हुई रो रोकर कहने लगी स्वामी! रथ रोको। रथ में तो कोई दूसरी स्त्री आकर बैठ गई है मैं तो लघु शंका करके अब आई हूं। पुरुष समझ नहीं पाया क्या करूं। इतने में ही निकट गांव दिखा। रथ धीरे किया और गांव में तीनों पहुंचे। झगड़ा पंचायत में पहुंच गया।

पंचों ने बात सुनी और पुरुष को बहुत दूर बिठा दिया फिर दोनों से कहा कि जो पहले उस व्यक्ति को छू लेगी वही उसकी पत्नी होगी। असली पत्नी ने दौड़कर शीघ्र छूने का प्रयास किया किन्तु व्यंतरी ने तो वहीं पर बैठे वैक्रिय शक्ति से हाथ लंबा कर के छू लिया। बुद्धि बल से देवी का भेद खुल गया और असली पत्नी को पति के साथ विदा किया।

(28) दो मित्र कहीं जा रहे थे। रास्ते में कुछ दूर एक स्त्री पुरुष का युगल जा रहा था। एक मित्र का मन उस स्त्री पर चलित हो गया। दूसरे मित्र ने उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए उपाय किया। उसे एक झाड़ी में बिठा दिया और स्वयं उस पुरुषर के पास गयी और बड़े तरीके से बोला कि भाई मेरी पत्नी के यही पास की झाड़ी में प्रसूती हुई है जरा अपना पत्नी को तनिक देर के लिए भेज दो। पुरुष ने वास्तविकता समझ कर पत्नी को भेज दिया तब तक दोनों यहां मार्ग में बैठ गये। पत्नी ने दूर से झाड़ी में एक पुरुष को देख लिया और धोखा जानकार शीघ्र लौट आई और उस व्यक्ति से बोली- आपको बधाई हो बच्चा बड़ा सुंदर है बस अब आप जावें मेरा वहां काम नहीं है। यह सुनकर वह पुरुष बड़ा लज्जित हुआ और चल दिया। यह स्त्री पुरुष दोनों की औत्पातिकी बुद्धि का परिणाम था।

(30) एक नगर में एक व्यापारी रहता था। उसके दो पत्नियां थी, वह उन्हें साथ लेकर विदेश चल दिया। व्यापारी वहीं काल कर गया। एक पत्नी के पुत्र था एक के नहीं। वंध्या स्त्री उस पुत्र को प्यार करती खिलाती। पुत्र को यह ज्ञात भी नहीं हो सका कि मेरी माता यह है या वह। कुछ समय पश्चात् वंध्या स्त्री कहने लगी पुत्र मेरा है इसलिए धन संपत्ति की मालकिन मैं हूं। विवाद बढ़ गया न्यायालय में पहुंच गया। न्याय कर्त्ता चक्कर में पड़ गया। उसने बुद्धि से काम लिया। कर्मचारियों को आदेश दिया कि सारी संपत्ति को दो विभाग कर दो और बालक के भी दो विभाग कर देवें और दोनों को बांट दे। वंध्या स्त्री सुनकर चुप रही किन्तु असली माता ने साफ इन्कार कर दिया कि मुझे आधा धन भी नहीं चाहिए और बालक के दो टुकड़े भी नहीं करवाने हैं। न्यायाधीश ने समझ लिया कि यह पुत्र के दुःख को देख नहीं सकती अर्थात् पुत्र

को काट कर मरवाना इसे मंजूर नहीं है। फैसला दे दिया गया। संपूर्ण धन ओर पुत्र असली माता को मिल गया और वंध्या स्त्री को धूर्त्तता के कारण धक्के देकर निकाल दिया गया।

(31) किसी नगर में ब्राह्मण पुरोहित रहता था। नगर में प्रसिद्ध था कि यह बड़ा सत्यवादी है। कई लोग अपनी संपत्ति उसके पास रखकर लम्बे समय तक चले जाते थे उसका पूरा विश्वास था। एक बार एक गरीब हजार मोहरों की थेली उसके यहां रख कर गया। लौटने पर पुरोहित ने कह दिया कि **''तू कौन है और कैसी तेरी धरोहर''** वह पागल सा हो गया **''मेरी हजार मोहरों की थेली''** इस तरह चिल्लाता हुआ नगर भर में घूमने लगा।

एक बार प्रधान को देखकर वह गरीब उनसे कह बैठा कि मेरी हजार मोहरों की थेली लौटा दीजिए। प्रधान समझ गया कि किसी ने धोखा दिया है। उसने राजा से कहा राजा ने दरिद्र और पुरोहित दोनों को सभा में बुलाया और पुरोहित से कहा कि तुम इसकी हजार मोहरों की थेली क्यों नहीं देते हो? पुरोहित ने कहा कि मैं इसे पहिचानता भी नहीं। न ही इसकी रकम मेरे पास है। यह सुनकर राजा चुप हो गया। पुरोहित भी उठकर चला गया।

उसके बाद राजा ने उस दरिद्र को अपने पास बुलाया और प्रेम से पूछकर सही हकीकत जान ली। धरोहर रखने का दिन, समय, स्थान आदि सब बता दिया। राजा बुद्धिमान था देखा कि धूर्त्त को धूर्त्तता से पराजित करना चाहिए। पुरोहित को बुलाया और शतरंज खेलने में मस्त हो गया। खेल ही खेल में पुरोहित की अंगूठी राजा जीत गया। गुप्त रूप से अपने राजपुरुष को देकर पुरोहित के घर भेजा और उसकी स्त्री से कहा कि पुरोहित ने विश्वास के लिए यह मुद्रिका दी है। अमुक दिन, अमुक समय, अमुक दरिद्र ने, अमुक प्रकार की, हजार मोहरों की थेली दी थी उसे अमुक स्थान पर रख रखी है, अंगूठी लाने वाले राज कर्मचारी को वह थेली दे देवें।

थेली लाकर राजा को दे दी गई। अनेक थेलियों के बीच वह थैली रख दी गई। दरिद्र ने तत्काल अपनी थैली पहिचान ली। राजा ने उसे थैली दे दी और पुरोहित को जीव्हा छेद का दंड देकर राज्य निकाल दिया।

(32) एक व्यक्ति ने किसी सेठ को हजार सोना मोहरें भरी थेली धरोहर के रूप में दी और देशांतर चला गया। बहुत वर्षों बाद वापिस आया। सेठ ने कुछ वर्षों बाद उस में नकली मोहरें डाल दी, असली निकाल ली। मांगते ही उसकी थैली उसको दे दी गई। थैली में मोहरें सभी नकली थीं, वह सहन नहीं कर सकता था, सेठ से कहा और नहीं मानने पर न्यायालय में जा पहुंचा। दोनों की बात सुनी गई अंत में न्यायाधीश ने मोहरों पर अंकित वर्ष देखे और रखने की तारीख मिलाई तो नकली मोहरें बाद की डाली हुई सिद्ध हुई। सेठ निरूत्तर हो गया। हजार मोहरें लाकर देनी पड़ी।

(33) एक व्यक्ति ने एक संन्यासी के पास अपनी हजार मोहरें रखी और विदेश जाकर कुछ समय बाद लौटा। मांगने पर संन्यासी ने टालमटोल किया और कई दिन बिता दिए। संयोग वश उसे कुछ जुआरी मिले। उन्हें उसने अपनी चिंता कह सुनाई।

जुआरियों ने गेरुए रंग के कपड़े पहने और संन्यासी का वेश बनाया। सोने की खूंटियां लेकर भिक्षु के पास पहुंचे और कहा हमें विदेश जाना है, आप बड़े सत्यवादी हैं हमें धरोहर रूप में यह सामान रखना है। भिक्षु ने हां भर ली और वे सामान गिनने लगे। इतने में ही संकेत किया हुआ वह व्यक्ति आ पहुंचा और भिक्षु से अपनी हजार मोहरे देने के लिए बोला।

भिक्षु ने तत्काल लाकर उसकी हजार मोहरें दे दी, वह लेकर रवाना हुआ। जुआरी भी कुछ बहाना बना कर चल दिए। इस तरह जुआरियों ने बुद्धि बल से उस व्यक्ति की चिंता मिटा दी।

(34) दो व्यक्ति आपस में मित्र थे। जंगल में एक बार अचानक उन्हें गड़ा हुआ धन मिला। धूर्त्त मित्र ने सरल मित्र को कहा कल अच्छा मुहूर्त्त है ले जाएंगे। सरल मित्र ने उसकी बात मान ली। रात्रि में धूर्त्त मित्र आया, धन ले गया और कोयले भर गया।

दूसरे दिन दोनों साथ में आये देखने पर कोयले निकले तो धूर्त्त मित्र सिर छाती पीट-पीट कर रोने लगा और बात बनाने लगा कि हम कितने भाग्य हीन हैं कि देव ने हमें धन देकर भी छीन लिया। सरल मित्र मूर्ख तो नहीं था वह समझ गया।

उसने दो बंदर पाले और कपटी मित्र की एक मूर्ति बनाई और उन बंदरों को मूर्ति के हाथ पांव मस्तक पर रख कर रोटी खिलाता था। बंदर वही खाते और उसी पर उछल कूद करते थे।

एक समय त्यौहार के दिन भले मित्र ने मायावी मित्र के दोनों पुत्रों को निमंत्रण दिया। भोजन कराकर उन्हें छिपा दिया। शाम को मायावी मित्र आया। आते हुए देखकर उसने वह मूर्ति वहां से हटा दी और सुंदर आसन वहां बिछा दिया। मायावी मित्र आकर उस आसन पर बैठ गया। भले मित्र ने दोनों बंदरों को छोड़ दिया। वे आये और उस पर उछल कूद करने लगे। मायावी मित्र हैरान हो गया बोला यह क्या बलाय है जैसे कोई बहुत परिचित हो वैसा कर रहे हैं। भले मित्र ने उदास भाव से कहा ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं मेरे घर का खाना खाते ही बंदर बन गये। मायावी मित्र बोला ऐसा कैसे हो सकता है मनुष्य भी कभी बंदर बन सकता है? भले मित्र ने शांति से कहा कि आपकी किस्मत खराब लगती है इसलिए ऐसा हो सकता है क्योंकि किस्मत खराब होने पर अपने सोने का कोयला भी बन सकता है तो मनुष्य बंदर बन जाय इसमें क्या अनहोनी है। कपटी मित्र समझ गया उसे शिक्षा मिल गई। धन का आधा भाग दे दिया और भले मित्र ने भी दोनों पुत्रों को उसे सौंप दिया। भले मित्र ने औत्पातिकी बुद्धि से काम लिया।

(35) एक व्यक्ति धनुर्विद्या में बहुत निपुण था। घूमते हुए वह किसी नगर में गया। वहां उसकी कला निपुणता देखकर बहुत से अमीरों के लड़के उससे धनुर्विद्या सीखने लगे। विद्या सीखने पर उन धनिक पुत्रों के बहुत सारा धन कलाचार्य को दक्षिणा के रूप में दिया लड़कों के अभिभावकों को मालूम पड़ी तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। उन्होंने मंत्रणा करी कि जाते समय रास्ते में मारकर धन छीन लेंगे।

कलाचार्य को इस रहस्य का पता चल गया। उसने गोबर के कंडे बनाये, उसमें सारा धन छिपा दिया। अपने घर पर संकेत कर दिया कि अमुक दिन रात्रि में नदी में से कंडे निकाल लेना। निश्चित की गई रात्रि में विद्यार्थियों को कह दिया कि आज मंत्रोच्चार करके हम नदी में अपनी शिक्षा पूर्ति के उपलक्ष में गोबर के कंडे बहायेंगे। ऐसा ही किया गया। बच्चों की मदद से सारे कंडे नदी में फिकवा दिये गये और कलाचार्य के घर पर पहुंच गये। कुछ दिन बिता कर कलाचार्य ने विदाई ली। शरीर पर केवल वस्त्र रखे। लड़कों के अभिभावकों ने देख लिया कि इनके पास तो कुछ भी नहीं है। मारने का विचार छोड़ दिया। शिक्षक अपनी बुद्धि के बल सकुशल घर पहुंच गया।

(36) एक सेठ बहुत सारा धन उधार देकर अचानक मर गया। सेठाणी ने सेठ के एक मित्र से कहा कि मेरा धन वसूल कर दो। उस मित्र ने कहा मुझे क्या हिस्सा दोगे। सेठाणी ने कह दिया जो तुम्हारी इच्छा हो वह मुझे दे देना। सेठ के मित्र ने चंद दिनों में ही बहुत सारा धन इकट्ठा कर दिया। अब वह सेठाणी को बहुत कम धन देने लगा, उसे संतोष नहीं हुआ तो बात न्यायालय में पहुंच गई। न्यायाधीश ने संपूर्ण धन मंगवाया और दो ढ़ेर करवाए एक छोटा और दूसरा बड़ा। फिर पहले स्वार्थी मित्र सेठ से कहा कि तुम कौनसा ढ़ेर चाहते हो तो उसने बड़े ढेर की तरफ इशारा करते हुए कहा कि मैं यह चाहता हूं। न्यायाधीश ने फैसला दे दिया कि **''तुम चाहते हो वही सेठाणी को देना''** ऐसी ही शर्त सेठाणी की थी और तुम यह बड़ी ढ़ेरी चाहते हो अतः बड़ी ढ़ेरी सेठानी को देनी होगी। सेठ का मित्र चुपचाप छोटा ढ़ेर लेकर चला गया।

(37) एक परिव्राजक बड़ा ही कुशाग्र बुद्धि का था। किसी भी बात को एक बार सुन लेता तो अक्षरशः याद कर लेता। उसके पास एक चांदी का बहुत बड़ा पात्र था उसे वह **''खोरक''** कहता था।

अपनी प्रज्ञा के अभिमान में चूर होकर उसने एक बार बहुत से व्यक्तियों के समक्ष प्रतिज्ञा की- **''जो व्यक्ति मुझे पूर्व में कभी न सुनी हुई यानी''** अश्रुतपूर्व बात सुनायेगा उसे मैं चांदी का यह बृहत् पात्र दे दूंगा। इस प्रतिज्ञा को सुनकर बहुत से व्यक्ति आए और उन्होंने अनेकों बातें परिव्राजक को सुनाई, किन्तु परिव्राजक अपनी विशिष्ट स्मरण शक्ति के कारण उन बातों को उसी समय अक्षरशः सुना देता था और कहा- **''यह तो मैंने पहले भी सुनी है।''**

परिव्राजक की चालाकी को एक सिद्धपुत्र ने समझा और उसने निश्चय किया कि मैं परिव्राजक को सबक सिखाऊंगा। परिव्राजक की प्रतिज्ञा की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई थी। वहां से राजा ने अपने दरबार में परिव्राजक और उस सिद्धपुत्र को बुलवाया जिसने परिव्राजक को परास्त करने की चुनौति दी थी।

राजसभा में सबके समक्ष सिद्धपुत्र ने कहा-

''तुज्झ पिया मह पिउणो, धारेइ अणूणगं सयसहस्सं।
जइ सुयपुव्वं दिज्जउ, अह न सुयं खोरयं देसु।।''

अर्थात् तुम्हारे पिता को मेरे पिता के एक लाख रुपये देने हैं यदि यह बात तुमने पहले सुनी है तो अपने पिता का एक लाख रुपये का कर्ज चुका दो और यदि नहीं सुनी है तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चांदी का पात्र (खोरक) मुझे सौंप दो।'' बेचारा परिव्राजक अपने फैलाए हुए जाल में खुद ही फंस गया गया। उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी और खोरक सिद्धपुत्र को मिल गया।

ये औत्पातिकी बुद्धि के उदाहरण है। जिससे कि उलझी गुत्थी सुलझा दी जाती है। बिना देखी सुनी समझी नई बात का तुरंत समाधान या उपाय कर दिया जाता है। यह व्यक्ति की स्वतः उपजने वाली बुद्धि है।

वैनयिकी बुद्धि के उदाहरण-

गुरु आदि के विनय भक्ति सेवा करने से उनकी कृपा दृष्टि द्वारा प्राप्त बुद्धि विनय निमित्तक होने से वैनयिकी बुद्धि कही जाती है। इसके उदाहरण इस प्रकार है-

(1) किसी नगर में एक सिद्ध पुरुष रहता था उसके दो शिष्य थे। दोनों पर उसका समान स्नेह था। किन्तु एक शिष्य विनीत मेहनती चिंतनशील था। शंका समाधान करके विषय को स्पष्ट समझ लेता था। पूछने में भी विनय भक्ति वंदना व्यवहार में आलस्य नहीं करता था। दूसरा शिष्य अविनीत था और बार-बार गुरु से पूछने में अपना अपमान समझता था। पठित विषय पर विमर्श भी नहीं करता था अतः उसका अध्ययन अपूर्ण और दोष पूर्ण रहा जबकि पहला शिष्य सर्व गुण संपन्न एवं निमित्त ज्ञान में पारंगत हो गया।

एक बार गुरु की आज्ञा से दोनों शिष्य किसी गांव को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें बड़े-बड़े पैरों के पदचिन्ह दिखाई दिये। अविनीत शिष्य ने अपने गुरुभाई से कहा- **''लगता है कि ये पद चिन्ह किसी हाथी के हैं।''** उत्तर देते हुए दूसरा शिष्य बोला- नहीं मित्र! ये पैरों के चिन्ह हाथी के नहीं, हथिनी के हैं। वह हथिनी वाम नेत्र से कानी है। इतना ही नहीं हथिनी पर कोई रानी सवार है और वह सधवा तथा गर्भवती भी है। रानी आजकल में ही पुत्र का प्रसव करेगी।

केवल पद-चिन्हों के आधार पर इतनी बातें सुनकर अविचारी शिष्य की आंखें कपाल पर चढ़ गई। उसने कहा- **''यह सब बातें तुम किस आधार पर कह रहे हो''** विनीत शिष्य ने उत्तर दिया- **''भाई! आगे चलने पर तुम्हें सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा।''** यह सुनकर प्रश्नकर्ता शिष्य चुप हो गया और दोनों चलते-चलते कुछ समय पश्चात् अपने गन्तव्य ग्राम तक पहुंच गये। उन्होंने देखा कि ग्राम के बाहर एक विशाल सरोवर के तीर पर किसी अतिसम्पन्न व्यक्ति का पड़ाव पड़ा हुआ है। तम्बुओं के एक ओर बांये नेत्र से कानी एक हथिनी भी बंधी हुई है। ठीक उसी समय दोनों शिष्यों ने यह भी देखा कि एक दासी जैसी लगने वाली स्त्री एक सुंदर तम्बू से निकली और वहीं खड़े हुए एक प्रभावशाली व्यक्ति से बोली- **''महाराज को जाकर बधाई दीजिए- राजकुमार का जन्म हुआ है।''**

यह सब देख सुनकर जिस शिष्य ने ये सारी बातें पहले ही बता दी थीं, वह बोला- ''देखो वाम नेत्र से कानी हथिनी खड़ी है और दासी के वचन सुनकर हमें यह भी ज्ञात हो गया है कि उस पर गर्भवती रानी सवार थी जिसे अभी-अभी पुत्रलाभ हुआ है।'' अविनीत शिष्य ने बेदिली से उत्तर दिया- **''हां''** समझ गया, तुम्हारा ज्ञान सही है, अन्यथा नहीं है। तत्पश्चात् दोनों सरोवर में हाथ पैर धोकर एक वट वृक्ष के नीचे विश्राम हेतु बैठ गये।

कुछ समय पश्चात् ही एक वृद्धा स्त्री अपने मस्तक पर पानी का घड़ा लिए हुए उधर से निकली। वृद्धा की नजर उन दोनों पर पड़ी। उसने सोचा- ये दोनों विद्वान मालूम होते हैं, क्यों न इनसे पूछ लूं कि मेरा विदेश गया हुआ पुत्र कब लौट कर आएगा? यह विचार कर वह शिष्यों के समीप गई और प्रश्न करने लगी। किन्तु उसी समय उसका घड़ा सिर से गिरा और फूट गया। सारा पानी मिट्टी में समा गया। यह देखकर अविनीत शिष्य झट बोल पड़ा- **''बुढ़िया ! तेरा पुत्र घड़े के समान ही मृत्यु को प्राप्त हो गया है।''**

वृद्धा सन्न रह गई किन्तु उसी समय दूसरे ज्ञानी शिष्य ने कहा- **''मित्र, ऐसा मत कहो। इसका पुत्र तो घर आ चुका है।''** उसके बाद उसने वृद्धा को संबोधित करते हुए कहा- **''माता! तुम शीघ्र घर जाओ, तुम्हारा पुत्र तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।''**

वृद्धा की जान में जान आई। उसने अपने घर की ओर कदम बढ़ा दिये। घर पहुंचते ही देखा कि लड़का धूलि धूसरित पैरों सहित ही उसकी प्रतीक्षा में बैठा है। हर्ष- विह्वल होकर उसने पुत्र को अपने कलेजे से लगा लिया और उसी समय नैमित्तिक शिष्य को उसने यथायोग्य दक्षिणा के साथ अनेक आशीर्वाद दिये।

विनय से उत्पन्न बुद्धि वाला अनेक पहलुओं से सोचता है, अविनीत उतावल करता है, एक पहलू से सोचकर समाप्त कर देता है।

(2) एक भूवेत्ता अपने शिक्षक के पास अध्ययन करता था। उसने शिक्षक की प्रत्येक आज्ञा को एवं सुझाव को इतने विनयपूर्वक माना कि वह अपने विषय में पूर्ण पारंगत हो गया। अपनी चमत्कारिक, वैनयिकी बुद्धि के द्वारा प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करने में लगा।

एक बार किसी ग्रामीण ने उससे पूछा- **''मेरे खेत में कितनी गहराई तक खोदने पर पानी निकलेगा''**? भूवेत्ता ने परिमाण बताया। उसी के अनुसार किसान ने भूमि में कुआ खोद लिया किन्तु पानी नहीं निकला। किसान पुनः भूवेत्ता के पास जाकर बोला- **''आपके निर्देशानुसार मैंने कुआ खोद डाला। किन्तु पानी नहीं निकला।''** भूमि परीक्षक ने खोदे हुए कुए के पास जाकर बारीकी से निरीक्षण किया और तब किसान से कहा- **''इसके पार्श्व भूभाग पर एड़ी से प्रहार करो।''** किसान ने वही किया और चकित रह गया, यह देखकर कि उस छोटे से स्थान से पानी का स्रोत मानो बांध तोड़कर बह निकला है। किसान ने भूवत्ता की वैनयिकी बुद्धि का चमत्कार देखकर उसकी प्रशंसा की तथा अपने सामर्थ्य के अनुसार द्रव्य भेंट किया।

(3) एक बार बहुत से व्यापारी द्वारका नगरी में अपने घोड़े बेचने के लिये गये। नगर के कई राजकुमारों ने मोटे-ताजे और डील-डौल से बड़े देखकर घोड़े खरीद लिए। किन्तु वासुदेव नामक एक युवक ने, जो अश्व परीक्षा में पारंगत था, एक दुबला-पतला घोड़ा खरीदा। आश्चर्य की बात यह थी कि जब घुड़दौड़ होती तो वासुदेव का घोड़ा ही सबसे आगे होता, सभी मोटे ताजे घोड़े पीछे रह जाते, इसका कारण वासुदेव की अश्वपरीक्षा की प्रवीणता थी। यह विद्या उसने अपने कलाचार्य से बहुत विनयपूर्वक सीखी थी। विनय द्वारा ही बुद्धि तीक्ष्ण होती है तथा सीखे जाने वाले विषय का पूर्ण ज्ञान होता है।

(4) एक घोड़ों के व्यापारी ने नौकर रखा। वेतन के रूप में उसे दो घोड़े देने को कहा। उसने घोड़ों की सार संभाल प्रारंम्भ कर दी। व्यापारी की लड़की से उसका स्नेह हो गया। वह सेवक चतुर था। उसने कन्या से पूछ लिया कि- इनमें श्रेष्ठ घोड़ा कौन है? कन्या ने बता दिया कि- वृक्ष के ऊपर से पत्थर भरा डिब्बा गिराया जाय उसकी आवाज से नहीं चमके वही उत्तम अश्व है।

सेवक ने इस विधि से परीक्षा करके दो घोड़े छांट लिए। वेतन में उसने वे ही दो घोड़े मांगे। सेठ उन्हें नहीं दे सका और उसे घर जंवाई बना लिया। यह कन्या और सेवक की विनयजा बुद्धि थी।

(5) किसी समय पाटलिपुत्र में मुरूण्ड नामक राजा राज्य करता था। एक अन्य राजा ने उसे तीन विचित्र वस्तुएं भेजी। वे इस प्रकार थी- ऐसा सूत जिसका छोर नहीं था, एक ऐसी लाठी जिसकी गांठ का पता नहीं चलता था ओर एक

डिब्बा जिसका द्वार दिखाई नहीं देता था। उन सब पर लाख इस प्रकार लगाई गई थी कि किसी को इनका पता नहीं चलता था। राजा ने सभी दरबारियों को दिखाया किन्तु कोई भी इनके विषय में नहीं बता सका।

राजा ने तब आचार्य पादलिप्त को बुलवाया और उनसे पूछा- **''भगवन्! क्या आप इन सबके विषय में बता सकते हैं?''** आचार्य ने स्वीकृति देते हुए गर्म पानी मंगवाया और पहले उसमें सूत को डाल दिया। उसमें लगी हुई लाख पिघल गई और सूत का छोर नजर आने लगा। तत्पश्चात् लाठी को पानी में डाला तो गांठवाला भारी किनारा पानी में डूब गया, जिससे यह साबित हुआ कि लाठी में अमुक किनारे पर गांठ है। अन्त में डिब्बे को भी गरम पानी में डाला गया और लाख पिघलते ही उसका द्वार दिखाई देने लगा। सभी व्यक्तियों ने एक स्वर से आचार्य की प्रशंसा की।

तत्पश्चात् राजा मुरुण्ड ने आचार्य पादलिप्त से प्रार्थना की- **''देव! आप भी कोई ऐसी कौतुकपूर्ण वस्तु तैयार कीजिए जिस मैं बदले में भेज सकूं।''** इस पर आचार्य ने एक तूम्बे को बड़ी सावधानी से काटा और उसमें रत्न भरकर यत्नपूर्वक काटे हुए हिस्से को जोड़ दिया। दूसरे राज्य से आए हुए पुरुषों से कहा- **''इस तोड़े बिना इसमें से रत्न निकाल लेना।''** किन्तु उनके राज्य में कोई भी बिना तूम्बे को तोड़े रत्न नहीं निकाल सका। इस पर पुनः राजा समेत समस्त सभासदों ने आचार्य की वैनयिकी बुद्धि की भूरी-भूरी सराहना की।

(6) एक बार एक राजा को जहर की आवश्यकता हुई। उसने नगर में सूचना कर दी। कई वैद्य आदि जहर लेकर आए और दे गये। एक वैद्य आया वह बहुत थोड़ा सा जहर लेकर आया। राजा क्रुद्ध हुआ। वैद्य ने हाथी मंगवा कर उसकी पूंछ का एक बाल उखाड़ा, और सूई की नोक से उसी स्थान में विष का संचार किया। थोड़ी देर में पूरा हाथी ही विष मय हो गया। राजा को वैद्य का विश्वास हो गया। वह विष सहस्त्र वेदी विष था।

राजा ने कहा क्या यह हाथी पुनः स्वस्थ हो सकता है? वैद्य बोला क्यों नहीं, हो सकता है। उसने पूंछ के उसी स्थान में अन्य औषधी का संचार किया, हाथी सचेतन हो गया। यह वैद्य की विनयजा बुद्धि थी।

(7) एक व्यापारी बहुत समय से विदेश था। उसकी पत्नी ने दासी द्वारा अपनी वासना पूर्ति के लिए किसी पुरुष को बुला लिया। रात्रि में वर्षा हुई। उसे प्यास लगी थी, छज्जे से गिरते हुए वर्षा के पानी को वह पुरुष पी गया, वहां ऊपर सांप मरा था। पानी विषमय होने से वह मर गया, उसे जंगल में फिकवा दिया गया। राजपुरुषों ने वह सब देखा। पता लगाने की कोशिश की। केश और नख तत्काल के काटे हुए देखे। सभी नाइयों को इकट्ठा किया और पूछा। एक नाई ने हां भर ली कि अमुक सेठाणी के घर इस पुरुष के मैंने नख केश काटे हैं। यह खोज निकालना राज पुरुषों की विनयजा बुद्धि है।

(8) एक व्यक्ति बड़ा ही पुण्य हीन था जो कुछ भी करता उससे वह संकट में पड़ जाता। एक दिन वह अपने मित्र से बैल ले गया। शाम को लाकर मित्र के सामने देखते हुए बांधकर चला गया बोला कुछ नहीं। रात्रि में चोर आए बैल ले गये। सुबह ही मित्र ने उसे बैल के लिए कहा तो उसने कहा मैं तो शाम को ही बांध गया था। मित्र को गुस्सा आया उसे पकड़ कर राजा के पास ले चला।

मार्ग में एक घुड़सवार सामने आ रहा था उसका घोड़ा उसे गिरा कर भागने लगा था उसने आवाज दी कि अरे भाई ! इसे डंडे से मार कर रोको। दुर्भाग्य वश पुण्य हीन ने अपने हाथ में रखे डंडे से एक चोट दी, घोड़ा मर गया। घुड़सवार

भी उस पर रोष करते हुए उसके साथ हो गया। रास्ते चलते एक नगर के बाहर नट लोग ठहरे हुए थे। उनके साथ एक बुढिया मां थी। वह शौच निवृत्ति के लिए गई और एक झाड़ के नीचे विश्रांति लेने लगी। इधर परेशान हुआ वह पुण्यहीन रस्सी लेकर मरने के लिए वृक्ष पर चढ़ा फंदा लगाया किन्तु वह रस्सी के टूट जाने से मरा नहीं और बुढिया पर जाकर गिरा। बुढ़िया मर गई। नट इकट्ठे हो गये। इसकी पिटाई की और राज दरबार में ले जाने के लिए साथ हो गये।

अब यह सारा काफिला राज दरबार में पहुंचा। राजा ने आने का कारण पूछा सभी ने अपना अभियोग कहा। पुण्य हीन को भी पूछा गया, उसने निराशापूर्वक सारी घटना सुनाते हुए कहा- महाराज! मैंने जान बूझ कर कोई अपराध नहीं किया है। मेरा दुर्भाग्य इतना प्रबल है कि प्रत्येक कार्य उल्टा हो जाता है। सुनकर राजा ने चतुराई से फैसला करने का निर्णय लिया।

(1) बैल वाले को कहा- तुमने आंखों से बैल देख लिए थे। इसलिए पहले अपनी आंखें निकाल कर इसे दे दो फिर बैल ले लो।

(2) घोड़े वाले को कहा- तुमने जबान से कहा था, अतः पहले जीव्हा काट कर इसे दे दो, फिर घोड़ा मिल जाएगा।

(3) नटों को कहा कि इसको वृक्ष के नीचे सुला दिया जाता है, तुम में से एक मुखिया व्यक्ति वृक्ष पर चढ़ो और इस पर गिर पड़ो।

राजा के इन फैसलों को सुनकर तीनों अभियोगी चुपचाप चले गये। इस प्रकार राजा ने अपनी बुद्धि से अभागे व्यक्ति की अनुकम्पा कर ली।

कर्मजा बुद्धि के उदाहरण-

बारम्बार कार्य करने के अभ्यास से जो बुद्धि अनुभव सिद्ध होती है वह कर्मजा बुद्धि है। इसके निम्न उदाहरण है-

(1) एक घर में एक चोर ने सेंध लगा कर चोरी की। सुबह वहां पर लोग इकट्ठे हुए। चोर भी वहीं खड़ा था। चोर की बातें करते हुए एक व्यक्ति ने सेंध की प्रशंसा की, इस प्रकार खड्डा किया कि चोर ने कमल का फूल बना दिया। चोर खुश हुआ। वहां खड़े एक किसान ने कहा इसमें प्रशंसा की कोई बात नहीं। अपनी-अपनी कला में सभी अभ्यस्त हो जाते हैं। चोर को उस पर गुस्सा आया और वह छुर्रा लेकर मारने के लिए उसके खेत पर पहुंच गया। किसान ने पीछे हटकर अपना बचाव किया और ठंडा करते हुए कारण पूछा। चोर ने कारण बता दिया।

किसान ने उसे समझाया कि मैंने तेरी निंदा तो की नहीं। देख अभ्यास के कारण मैं तुझे ये मूंग के दाने इस प्रकार भूमि पर डाल कर दिखा सकता हूं कि मैं चाहूं तो इन को उल्टे पटक दूं अथवा सीधे पटक दूं। चोर को विश्वास नहीं हुआ उसने कहा तुम इन्हें उल्टे पटक कर बताओ। किसान ने भूमि पर चादर फैलाई और सभी को अधोमुख बिखेर दिया। चोर ने ध्यान से दानों को देखा और कहा कि तुम तो मेरे से भी अधिक कुशल हो अपने कार्य में और उसे छोड़ दिया।

इसी तरह जुलाहा, दर्जी, जवेरी, घृत का व्यापारी, रसोइया, बढ़ई (खाती), कुम्भकार, चित्रकार आदि के उदाहरण हैं, जो अपने अपने कार्य में दक्ष होते हैं।

4. पारिणामिकी बुद्धि के दृष्टान्त-

(1) घटना चैथे आरे की है। चंड प्रद्योतन राजा ने अपने राज्य बल के मद में आकर श्रेणिक राजा के पास दूत भेजा। दोनों राजा परस्पर संबंधी (साढू) थे। दोनों के आपस में कोई वैर विरोध नहीं था। किन्तु लोभ और मद के नशे में व्यक्ति नहीं करने योग्य कर लेता है। दूत ने आकर श्रेणिक राजा की राज्य सभा में अपना विनय व्यवहार करने के पश्चात् चंडप्रद्योत राजा का संदेश इस प्रकार सुनाया- '' अगर आप अपना कुशल चाहते हो तो बंकचूड़ हार, सचेनक हाथी, अभयकुमार पुत्र और रानी चेलना को अविलम्ब मेरे पास भेज दो। यह सुनकर श्रेणिक आग बबूला हो गया किन्तु दूत क्षम्य होता है। अतः उसने प्रत्युत्तर में कह दिया कि अपना भला चाहते हो तो अग्नि-रथ, अनिलगिरि हस्ती, वज्रजंघ दूत तथा शिवा देवी राणी इन चारों को मेरे पास भेज दो।

दोनों ओर से क्रोध, कलह को बढ़ावा मिल गया। युद्ध की तैयारी करके चंडप्रद्योतन राजगृह के बाहर आ पहुंचा।

इधर रात्रि को ही अभयकुमार काफी धन लेकर नगर से बाहर आया और उस चंडप्रद्योतन के डेरे के पीछे भूमि में गड़वा दिया। तत्पश्चात् वह चंडप्रद्योतन के समक्ष आया। प्रणाम करके बोला- ''मौसा जी! आप किस फेर में हैं? इधर आप राजगृह को जीतने का स्वप्न देख रहे हैं और उधर आप के सभी वरिष्ठ सेनाधिकारियों को पिताजी ने घूस देकर अपनी ओर मिला लिया है। वे सूर्योदय होते ही आपको बन्दी बनाकर मेरे पिताजी के समक्ष उपस्थित कर देंगे। आप मेरे मौसा हैं, अतः आपको मैं धोखा खाकर अपमानित होते नहीं देख सकता।'' चंडप्रद्योतन ने कुछ अविश्वास पूर्वक पूछा- **''तुम्हारे पास इस बात का क्या प्रमाण है?''** तब अभयकुमार ने उन्हें चुपचाप साथ ले जाकर गड़ा हुआ धन निकाल कर दिखाया। धन देखकर चंद्र प्रद्योतन को अपनी सेना के मुख्याधिकारियों की गद्दारी का विश्वास हो गया और वह उसी समय घोड़े पर सवार होकर उज्जयिनी की ओर चल दिया।

राजा का डेरा खाली देखकर प्रातःकाल सारी सेना भी चली गई। अभयकुमार की पारिणामिकी बुद्धि से इच्छित परिणाम निकल आया। सही बात का भान होने पर चंडप्रद्योतन को अभयकुमार पर गुस्सा चढ़ आया। घोषणा करवा दी कि उसे जो कोई भी पकड़ कर लायेगा उसे बहुत सारा पुरस्कार दिया जाएगा।

एक वैश्या ने यह बीड़ा उठाया और राजगृही में आकर श्राविका बनकर रहने लगी। धीरे- धीरे उसने अभय कुमार से घनिष्ट परिचय कर लिया। एक दिन उसने अभयकुमार को भोजन का निमंत्रण दिया एवं भोजन में नशीली वस्तु मिला दी। अभयकुमार भोजन करने के बाद मूर्छित हो गया। कपटी श्राविका ने उसे रथ में डलवाया और उज्जियनी लेकर आ गई। राज को सौंप दिया। राजा ने व्यंग कसते हुए अभयकुमार को कहा- क्यों बेटा! धोखे का फल मिल गया है न । अभय ने कहा- मौसाजी आपने मुझे बेहोश करके यहां रथ से मंगवाया है मैं आपको होश हवास में रथ में बिठाकर जूते मारते हुए राजगृह ले जाऊंगा।

कुछ दिन बीतने के बाद उसने एक योजना बनाई। एक ऐसे व्यक्ति को खोजा जिसकी आवाज राजा सरीखी थी। उस गरीब को भारी इनाम का प्रलोभन देकर अपनी सारी योजना समझा दी। अभय उसको रथ में लेकर बाजार में निकला

और जूतों की मारने लगा। वह गरीब चिल्लाता हुआ कहता कि मुझे अभय कुमार जूतों से पीट रहा है कोई छुड़ावो, मुझे बचाओ। लोग दौड़ कर निकट आए तो दोनों ही खिलखिला कर हंस पड़े। अभयकुमार का खेल समझ कर लोग चले गये। इस प्रकार वह 4-5 दिन बाजारों में करता रहा। सारे बाजार के लोग समझ गये। अब कोई छुड़ाने के लिए नहीं आता। छठे दिन तो मौका देख कर राजा को उसने बांध लिया और रथ में डाल कर जूते मारते हुए बीच बाजार से ले चला कोई भी राजा को छुड़ाने नहीं आया। राजगृही ले जाकर छोड़ा। राजा बहुत लज्जित हुआ। श्रेणिक राजा से क्षमायाचना की। श्रेणिक ने भी उसे हृदय से लगाया और राजकीय सम्मान के साथ उज्जियनी पहुंचा दिया। यह अभय कुमार की पारिणामिकी बुद्धि है कि जैसी योजना सोची बनाई वह सफल हो गई और वैश्या ने भी पारिणामिकी बुद्धि से जैसी योजना बनाई वह सफल हो गई।

(2) मुनि ने अपने पुत्र राजा के आग्रह से नगर में चातुर्मास किया। बहुत धर्मोद्योत हुआ। धर्म के विरोधी कोई इस बात को सहन नहीं कर सके। विहार के समय उनके द्वारा सिखाई हुई गर्भवती दासी आकर कहती है कि मुनिराज! मैं तो आपके पुत्र की माता बनने वाली हूं और आप जा रहे हैं पीछे मेरा क्या होगा। मुनि निष्कलंक और शक्ति संपन्न साधक थे। विचार किया कि यह धर्म को कलंकित करने का षडयंत्र है। उन्होंने कह दिया कि मेरा गर्भ होगा तो सहज प्रसूति होगी अन्यथा पेट चीरने पर ही निकलेगा।

समय व्यतीत हो चला। दासी को घोर वेदना होने लगी। किसी भी उपाय से प्रसव नहीं हो रहा था। हैरान होकर दासी पुनः मुनि के पास आई। झूठे कलंक लगाने की सारी हकीकत कही और क्षमा मांगी। मुनि के दिल में कोई रोष नहीं था, क्षमा कर दिया। विपक्ष की निंदा हुई और धर्म की जाहो जलाली अधिक बढ़ी।

(3) उदितोदय राजा और श्रीकांता रानी दोनों ही धार्मिक विचारों के थे एवं श्रावक व्रत ले रखे थे। एक परिव्राजिका वहां अंतःपुर में आई उसने शुचि धर्म का उपदेश दिया। श्रीकांतारानी ने उसको विशेष आदर नहीं दिया तो वह क्रुद्ध हो गई। वाराणसी के धर्म रूचि राजा के सामने राणी के रूप यौवन की अत्यंत प्रशंसा करके उसे राणी के प्रति आशक्त कर दिया। उसने श्रीकांता राणी को प्राप्त करने के लिए युद्ध की तैयारी की और पुरिमतालपुर नगर के बाहर घेरा डाल दिया।

राजा ने विचार किया ऐसा उपाय करना चाहिए कि निष्कारण होने वाला यह जनसंहार रूक जाय। उसने वैश्रमण देव की आराधना की। देव उपस्थित हुआ और राजा ने अपनी भावना व्यक्त की। देव ने पुरिमतालपुर नगर को ही वहां से अन्यत्र उठाकर रख दिया। सुबह होते ही धर्मरूचि राजा ने देखा सामने नगर है ही नहीं मैदान पड़ा है। चकित होकर सेना सहित लौट गया।

पुष्प चूला की माता पुष्पवती देवलोक में गई। उसे यह विचार आया कि पुष्प चुला और पुष्प चूल भाई बहिन ने गलत सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। अतः ऐसा उपाय करना चाहिए कि वे श्रेष्ठ कल्याण का मार्ग अपना लें। उसने उन्हें स्वप्न में नरक और स्वर्ग का साक्षात चित्र दिखाया। वे दृष्य देखकर विरक्त हो गये। संयम लेकर आत्म कल्याण साध लिया। संपूर्ण कर्म क्षय कर दोनों ने केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया एवं मुक्त हो गये।

(5) नंदिषेण श्रेणिक का पुत्र था। उसने भगवान महावीर स्वामी की धर्म देशना सुनी। विरक्त होकर गुण संपन्न युवती स्त्रियों को छोड़ कर संयम ग्रहण किया। शास्त्रों का विशाल अध्ययन किया। धर्मोपदेश देने लगे। अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध देकर संयम में अग्रसर किया।

एक बार वे अपनी शिष्य मंडली सहित विचरण कर रहे थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि एक मुनि का चित्त संयम से उठ गया है भोगों की तरफ आकृष्ट हो रहा है। नंदिषेण मुनि ने राजगृही की ओर विहार किया और वहां पहुंच कर बगीचे में ठहर गये।

पुत्र नंदिषेण मुनि का आगमन जानकर श्रेणिक राजा को अपार हर्ष हुआ। वह अपनी संपूर्ण ऋद्धि एवं राणियों के साथ मुनि दर्शन के लिए उपस्थित हुआ। नंदिषेण की पत्नियों को भी मुनि दर्शन कराने साथ में लाया था। सभी मुनियों ने नंदिषेण मुनि के परिवार को देखा और अत्यंत प्रसन्न हुए कि हमारे पूज्य गुरुराज ने अपार वैभव का त्याग कर संयम स्वीकार किया। संयम से विचलित मन वाले मुनि ने भी यह देखा सुना तो उसके विचार स्वतः परिवर्तित हो गये और गुरु के पास अपने संयम त्यागने की भावना का पश्चाताप करते हुए शुद्धिकरण किया। नंदीषेण मुनि का राजगृह आने का उद्देश्य सफल हो गया।

(6) एक श्रावक के अपनी पत्नी की सहेली के प्रति आसक्त भाव बन गये किन्तु लज्जावश वह प्रकट न कर सका। वह सदा चिंतित सा रहने लगा। एक बार उसकी पत्नी श्राविका ने आग्रह करके कारण जान लिया। उसने पति का तिरस्कार नहीं किया किन्तु उपाय सोच लिया। पति से कहा कि मैं सहेली से विचार वार्ता करूंगी। सहेली के घर जाकर उसकी सुंदर पोषाक मांग कर ले आई, जिसे पहने हुए उसके पति ने देखा था। पति से निवेदन किया कि मेरी सहेली भी कुलवान स्त्री है उसे अत्यन्त शर्म है, अतः वह पूर्ण अंधकार में ही आपके पास आ सकती है।

पति के स्वीकार करने पर वह स्वयं सहेली के कपड़े पहिन कर पति के पास पहुंच गई। दूसरे दिन पति को बहुत पश्चाताप हुआ और व्रत खंडित होने का खेद करने लगा। पत्नि ने उनकी शुद्ध परिणति को जानकर यथार्थ बात कह दी। श्रावक ने पत्नी के बुद्धि की सराहना की और गुरु के पास आलोचना कर अपने व्रत की शुद्धि की।

(7) ब्रह्मदत्त का पिता उसे छोटी उम्र में छोड़ कर चल बसा। पिता के मित्र दीर्घपृष्ट को राज्य सौंप गया। ब्रह्मदत्त की माता चूलनी से उसका अनुचित सम्बन्ध स्थापित हो गया। वहां धनु नामक वफादार मंत्री था। बड़ी सावधानी से उसने ब्रह्मदत्त की देख रेख की और समझदार होने पर उसे राजा राणी के अनुचित सम्बन्ध की जानकारी दे दी।

ब्रह्मदत्त को यह जानकर बड़ा क्रोध आया उसने दोनों को सावधान करने के लिए परोक्ष रूप से तीन बार चेतावनी और धमकी दी। प्रथम बार में कौवे और कोयल को दिखाकर दूसरी बार श्रेष्ट हथिनि और निकृष्ट हाथी को दिखाकर एवं तीसरी बार हंसिनी और बगुले को सामने लाकर उनके गलत सम्बन्ध को बताते हुए कहा।

तीसरी बार करने पर दीर्घपृष्ट एवं राणी ने उसे मारने का संकल्प कर लिया। शादी करके लाक्षागृह में निवास देकर उसे आग लगा देना, यह षडयंत्र रचा गया। प्रधान को इसकी जानकारी होने पर उसने जीवन साधना के नाम से निवृत्ति मांग ली और गंगा किनारे दानशाला खोलकर दान देने लगा। इसी बीच उसने एक सुरंग शीघ्रता से बनाई की चन्द दिनों लक्षागृह से नदी किनारे तक सुरंग बन कर तैयार हो गई।

प्रधान का पुत्र वरधनु प्रधान बनाया गया। ब्रह्मदत्त की शादी करके वरधनु के साथ उसे लाक्षागृह में पहुंचाया गया। अर्द्ध रात्रि में आग लगा दी गई। वरधनु ने कुमार को सुरंग की जानकारी दे दी। तीनों ही सावधानी पूर्वक सुरंग से होकर गंगातट पर पहुंच गये इस प्रकार प्रधान की पारिणामिकी बुद्धि से ब्रह्मदत्त मौत के मुंह से बच गया।

(8) वरधनु और ब्रह्मदत्त जंगल में जा रहे थे। पीछे से दीर्घपृष्ट के अनुचर आए। वरधनु सरोवर के किनारे पानी भर रहा था। अनुचरों ने उसे वहां पकड़ लिया। उसी समय उसने इतना जोर से शब्द किया कुमार ब्रह्मदत्त संकेत समझ कर घोड़े पर सवार होकर भाग निकला। यह दोनों की पारिणामिकी बुद्धि है। फिर कर्मचारियों ने उसे ब्रह्मदत्त को बताने के लिए आग्रह किया पर न बताने पर खूब मारा। इस पर चतुर वरधनु इस प्रकार निश्चेष्ट पड़ गया कि मरा समझ कर छोड़ कर कर्मचारी चले गये। उनके जाते ही वह तत्काल उठ खड़ा हुआ और कुमार की खोज में लग गया। घूमते-घूमते उसे दो जड़ी बूटियां मिल गई। (1) संजीवनी (2) निर्जीवनी। फिर उसे पता लगा कि उसके सारे परिवार वालों को केद में रख दिया गया है। वह नगर के बाहर आया एक चांडाल से मिला। उसे कुछ लोभ दिया जिससे उसने सब कार्य करना स्वीकार किया। उसके द्वारा केद में अपने परिवार के पास निर्जीवनी जड़ी पहुंचाई। बताई गई विधि के अनुसार सब के आंख में आंज दी। सभी बेहोश मृत तुल्य हो गये। राजा ने उन्हें चांडाल को सपुर्द कर दिया। कहा श्मशान में ले जाओ। चांडाल ने लाकर वरधनु का सौंप दिये वरधनु ने संजीवनी बूटी के प्रयोग से उन्हें स्वस्थ किया और किसी सम्बन्धी के घर पर रखा। स्वयं कुमार की खोज में चला। बेहोश होकर खुद की प्राण रक्षा कर लेना और परिवार वालों को भी सुरक्षित बचा लेना यह वरधनु की पारिणामिकी बुद्धि है।

(9) पिता की मृत्यु का कारण समझ कर स्थूलभद्र ने प्रधान पद नहीं लिया और दीक्षा ग्रहण की। शकटार मंत्री ने राजा को नाराज देखा तो अपने परिवार की रक्षा के लिए श्रियक पुत्र के द्वारा स्वयं ने मरना स्वीकार किया। यह उनकी पारिणामिकी बुद्धि का परिमाण था। कोशा ने संयम से विचलित मुनि को नेपाल राजा से कंबल लाने को कहा और उसके निमित्त से उसे संयम में स्थिर किया। यह कोशा की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(10) नासिकपुर में सुंदरीनंद अपनी सुंदर भार्या में अत्यन्त आसक्ति रखता था। इस कारण उसका नाम सुंदरी में ही आनन्द मानने वाला ''**सुंदरीनंद**'' प्रचलित हो गया।

उसका छोटा भाई मुनि बन गया था। उसे अपने भाई की स्थिति एवं दुर्गति के परिणाम का अनुमान होने पर दुःख हुआ। वह उन्हें प्रतिबोध देने नासिक पुर आया किन्तु सुंदरी नंद व्याख्यान में नहीं आया। मुनि भिक्षा ग्रहण करते हुए उसके घर पर पहुंच गये। उसे बोध देने के लिये सुंदर बंदरी का रूप बनाकर दिखाया और पूछा- क्या यह सुंदरी जैसी है? उसने कहा उससे आधी सुंदर है। फिर विद्याधरी का रूप वही प्रश्न पूछा तो **'यह सुंदरी के जैसी सुंदर है'** ऐसा उत्तर मिला। फिर एक देवी की विकुर्वणा करके वही प्रश्न किया। उत्तर मिला यह सुंदरी से भी अधिक सुंदर है। फिर मुनि ने कहा थोड़ा धर्माचरण करो तो ऐसी अनेक सुंदरियां सहज मिल जाएगी। सेठ को मुनि का आशय समझ में आ गया। उसने अपनी आसक्ति कम कर दी। एवं कुछ समय पश्चात् संयम ग्रहण कर आत्म कल्याण किया। उसे बोध देने में मुनि की पारिणामिकी बुद्धि का प्रभाव था।

(11) वज्र स्वामी जब माता के गर्भ में थे तभी उनके पिता ने दीक्षा ले ली थी। यथासमय उनका जन्म हुआ। माता के किन्हीं वचनों के निमित्त से उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया और संयम की भावना घर कर गई। बालक ने उपाय सोच लिया और दिन रात रोना प्रारम्भ कर दिया। माता-सुनंदा परेशान हो गई। बालक के पिता धनगिरि मुनि विचरण करते हुए नगर में पहुंचे और गोचरी के लिए सुनंदा के घर पहुंचे। सुनंदा ने एकाएक उस रोते हुए पुत्र को मुनि के पात्र में रख दिया

और कहा कि यह लो आपका पुत्र आप ही संभाले। बालक ने पात्र में रखते ही रोना बंद कर दिया। इस प्रकार निरंतर रोना बालक की पारिणामिकी बुद्धि का परिणाम था। जिससे वह मुनि सेवा में पहुंच गया।

एक बार माता ने मुनि से अपने पुत्र की पुनः मांगणी की नहीं मिलने पर राजा ने पास फरियाद की। राजा ने एक तरफ बालक को बिठा दिया और एक तरफ माता को खिलौने लेकर बैठा दिया। माता के द्वारा प्रलोभनों से बुलाने पर भी बालक अपने स्थान से नहीं हटा, उसने सोचा कि माता के पास नहीं जाऊंगा तो मुझे और माता को दोनों को आत्म कल्याण का चांस मिलेगा। फिर मुनि को सामने बिठाया गया मुनि ने उसे संबोधन कर रजोहरण लेने को कहा। बालक ने शीघ्र की चलकर रजोहरण ले लिया। राजा ने मुनि को बालक सौंप दिया। राजा एवं संघ की आज्ञा से उसे दीक्षा प्रदान कर दी। फिर माता सुनंदा ने भी विचार किया कि अकेली घर में रहकर क्या करूंगी और उसने भी संयम अंगीकार कर लिया।

(12) एक राजकुमार को मिष्ठान्न बहुत प्रिय था, एक दिन उसने भरपेट मोदक खा लिया, अधिक खाने से अजीर्ण हो गया, अजीर्ण के कारण मुख से दुर्गन्ध निकलने लगी। दुःखी होकर राजकुमार ने सोचा कि इस अशुचि शरीर से संयोग पाकर ऐसा मधुर और मनोहर पदार्थ भी बिगड़ गया। इसी शरीर के लिये लोग अनेक पाप करते हैं, अवश्य यह धिक्कारने योग्य है। ऐसा सोचकर वह विरक्त हो गया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

(13) किसी नगर में एक युवा राजा राज्य करता था। उसकी अपरिपक्व अवस्था का लाभ उठाने के लिये कुछ युवकों ने आकर उसे सलाह दी- ''महाराज! आप तरूण है, तो आपका कार्य संचालन करने के लिए भी तरूण व्यक्ति ही होने चाहिए। ऐसे व्यक्ति अपनी शक्ति व योग्यता से कुशलता पूर्वक राज्य कार्य करेंगे। वृद्धजन अशक्त होने के कारण किसी भी कार्य को ठीक प्रकार से नहीं कर सकते।''

राजा यद्यपि नवयुवक था, किन्तु अत्यन्त बुद्धिमान था। उसने उन युवकों की परीक्षा लेने का विचार करते हुए पूछा- ''अगर मेरे मस्तक पर कोई अपने पैर से प्रहार करे तो उसे क्या दंड देना चाहिये?''

युवकों ने तुरन्त उत्तर दिया- **''ऐसे व्यक्ति के टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिए।''** राजा ने यही प्रश्न दरबार के अनुभव वृद्धों से भी किया। उन्होंने सोच विचार कर उत्तर दिया- ''देव! जो व्यक्ति आपके मस्तक पर चरणों से प्रहार करे उसे प्यार करना चाहिए तथा वस्त्राभूषणों से लाद देना चाहिये।''

वृद्धों का उत्तर सुनकर नवयुवक आपे से बाहर हो गये। राजा ने उन्हें शांत करते हुए उन वृद्धों से अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये कहा। एक बुजुर्ग दरबारी ने उत्तर दिया- ''महाराज! आपके मस्तक पर चरणों का प्रहार आपके पुत्र के अलावा और कौन करने का साहस कर सकता है? और शिशु राजकुमार को भला कौन-सा दंड दिया जाना चाहिए?''

वृद्ध का उत्तर सुनकर सभी नवयुवक अपनी अज्ञानता पर लज्जित होकर पानी पानी हो गये। राजा ने प्रसन्न होकर अपने वयोवृद्ध दरबारियों को उपहार प्रदान किये तथा उन्हें ही अपने पदों पर रखा। युवकों से राजा ने कहा- **''राजकार्य में शक्ति की अपेक्षा बुद्धि की आवश्यकता अधिक होती है।''** इस प्रकार वृद्धों ने तथा राजा ने भी अपनी पारिणामिकी बुद्धि का परचिय दिया।

(14) एक कुम्हार ने किसी व्यक्ति को मूर्ख बनाने के लिये पीली मिट्टी का एक आंवला बनाकर दिया जो ठीक आंवलों के सदृश ही था, आंवला हाथ में लेकर वह व्यक्ति विचार करने लगा- ''यह आकृति में तो आंवले जैसा है, किन्तु

कठोर है और यह ऋतु भी आंवलों की नहीं है।'' अपनी पारिणामिकी बुद्धि से उसने आंवले की कृत्रिमता को जान लिया और उसे फेंक दिया।

(15) चंड कौशिक सर्प ने भगवान के खून की धारा का आश्वादन किया तो उसे अनुभव हुआ कि यह कोई विलक्षण पुरुष है उसका क्रोध शांत हुआ भगवान की तरफ देखने लगा। भगवान ने उसे प्रतिबोध देने के लिये पूर्व भव का स्मरण कराया कि तुम तपस्वी थे, तुम्हारे पांव के नीचे एक मेंढ़क मर गया। आलोचना नहीं की। शिष्य ने सावधान भी किया। प्रतिक्रमण बाद उसे शिष्य ने फिर याद दिलाया। किन्तु उस पर क्रोध किया एवं मारने के लिए ज्यों ही आगे बढ़े अंधेरे में खंभे से टकराकर मस्तक फूट गया। प्रचंड क्रोध में तप के विकृत प्रभाव में मर कर यह दृष्टि विष सर्प बने हो। क्रोध के वशीभूत होकर मरने से मनुष्य भव हार कर पशु बने हो। अब भी शांत हो जावो। सम्भलो प्रतिबोध को प्राप्त करो। बोध पाकर चण्डकौशिक को जाति स्मरण ज्ञान हो गया उसने अब भी अपना जीवन सुधारने का निर्णय कर लिया। मुंह बिल में रखते हुए संथारा ग्रहण किया।

ग्वालों ने पत्थरों से परेशान किया। फिर पूजा सामग्री की मिठाई से आकृष्ट कीड़ियों ने शरीर की चलनी बना दी। इस प्रकार घोर कष्ट सहन कर वह चण्डकौशिक वहां से आयु समाप्त कर आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ।

चंडकौशिक को प्रतिबोध देने में भगवान की पारिणामिकी बुद्धि थी और बिल में मुंह करके संथारा ग्रहण करना, किसी को कष्ट नहीं पहुंचाना और आराधना करके देवलोक में उत्पन्न होना यह चण्डाकौशिक की पारिणामिकी बुद्धि है।

(16) राजा कोणिक के द्वारा भेजी गई वैश्या ने नदी पर ध्यानस्थ कुल बालक मुनि को श्राविका बनकर आकृष्ट किया फिर गोचरी के पदार्थों में विरेचन (जुलाब) की औषधियां खिलाई और क्रमशः मुनि की शरीर परिचर्या भी करने लगी। इस प्रकार मुनि को उसने संयम से विचलित किया और अनुकूल जानकर एक दिन उसे कोणिक के पास में लेकर आ गई। यह वैश्या की पारिणामिकी बुद्धि थी।

कूलबालक मुनि ने निमित्तक का रूप बनाकर नगरवासियों के द्वारा ही स्तूप को गिरवाया और कोणिक की विजय करवाई। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

सारः इस प्रकार यहां चारों बुद्धि की कई कथाएं दी हैं। यहां प्रथम औत्पातिकी बुद्धि है स्वतः समाधान की उपज होना। दूसरी वैनयिकी बुद्धि है विनय पूर्वक प्राप्त की गई विद्याएं। तीसरी कर्मिकी बुद्धि है अभ्यास अनुभव से सिद्धहस्त बनी कलाएं। चौथी पारिणामिकी बुद्धि है जिस परिमाण (रिजल्ट) के संकल्प से जो प्रवृत्ति, उपाय या आचरण किया जाय, वह सफल हो जाय। ये बुद्धियां मतिज्ञान से होती है अर्थात् मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है।

नोट- कथाओं को विस्तृत एवं परिपूर्ण जानकारी के लिए आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त नंदी सूत्र का अध्ययन करें।

।। नंदी सूत्र की कथाएं समाप्त ।।

अनुयोग द्वार

प्रस्तावना-

सांसारिक प्राणी अज्ञान मिथ्यात्व और मोह अवस्था के कारण चतुर्गति में भ्रमण करते रहते हैं। इस स्थिति से उबारने वाली मात्र तीर्थंकर प्रभु की वाणी है। जिसके श्रवण मनन अध्ययन आदि आदि के द्वारा जीव को राहत मिलती है। आज तीर्थंकर प्रभु की वाणी आगम रूप में गुंथन की हुई उसी गुणयुक्त उपलब्ध है। अनेक मुमुक्षु प्राणी आगमों के माध्यम से सन्मार्ग को प्राप्त करते हैं। श्रमण एंव श्रमणोपासक वर्ग आज भी इन आगमों के आधार से धर्म श्रद्धालु पुण्यवान जीवों को त्याग वैराग्य एवं ज्ञान वृद्धि करवाने के लिए धर्मोपदेश करते हैं। आगम हमारे मौलिक सूत्र रूप है, उनका अर्थ एवं व्याख्याएं- विश्लेषण भी उन आगमों के भावों को संक्षेप में एवं विस्तार में समझाने में सहायक होते हैं। प्राचीन काल में उन अर्थ एवं व्याख्याओं के लिए ''अनुयोग'' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

सूत्र नाम एवं अर्थ विचारणा-

सूत्र के अनुरूप अर्थ एवं व्याख्या को योजित करना ''अनुयोग'' कहलाता है। सूत्र के उन अर्थों, व्याख्याओं एवं विश्लेषणों रूप अनुयोग को कहने की जो पद्धति होती है, तरीके होते हैं अर्थात् जिस भंग, भेद, क्रमों का अवलंबन लेकर आगम शब्दों एवं सूत्रों की व्याख्या-अनुयोग किया जाता है उसे ''अनुयोग पद्धति'' कहते हैं। इस पद्धति में जिन भंग भेदों का अवलंबन लिया जाता है उसके मुख्य भंग भेदों को ''द्वार'' शब्द से कहा जाता है। द्वार का अर्थ है सूत्र व्याख्या में प्रवेश करने के मुख्य मार्ग। फिर जो भेदानुभेद किए जाते हैं वे ''उपद्वार'' कहे जाते हैं। उन्हें भंग, भेदानुभेद, विकल्प, उपद्वार किसी भी शब्द से कहा जा सकता है।

प्रस्तुत सूत्र में सूत्रों-शब्दों के अर्थ व्याख्यान की पद्धति चार मुख्य द्वारों से बताई गई है इसलिए इसका सार्थक नाम ''अनुयोग द्वार सूत्र'' रखा गया है। यह सूत्र समग्र आगमों को और उनकी व्याख्याओं को समझने की कुंजी के सदृश है।

सूत्र का विषय- इस सूत्र में प्रथम पांच ज्ञानों से मंगलाचरण किया गया है। उसके पश्चात् आवश्यक, श्रुत, स्कंध, अध्ययन एवं सामायिक इन पांच शब्दों को उदाहरण रूप में लेकर व्याख्या पद्धति को क्रियान्वित किया गया है।

व्याख्या पद्धति के भेद प्रभेदों की प्रचुरता के कारण ही इस सूत्र को समझना अन्य आगमों से क्लिष्ट-कठिन है। इसलिए यह सूत्र सर्व सामान्य के लिए सुरूचिपूर्ण नहीं है। तथापि जैन दर्शन को एवं प्राचीन व्याख्याओं को समझने में गति करने हेतु मेधावी शिष्यों के लिए अतीव उपयोगी-बड़ा ही महत्वपूर्ण सूत्र है। क्योंकि प्राचीन चूर्णि निर्युक्ति टीकाओं आदि के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनके प्रारम्भ में विवेचन करने की वही पद्धति अपनाई गई है जो इस सूत्र में भेद प्रभेदों के द्वारा बताई गई है। व्याख्याओं में यह पद्धति श्वेताम्बर जैन आगमों के अतिरिक्त दिगम्बर जैन आगम ''षट-खंडागम'' आदि की टीकाओं में भी देखने को मिलती है। इससे भी इस सूत्रोक्त अनुयोग पद्धति की महत्ता एवं आवश्यकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

अनुयोग द्वार सूत्र का विषय संकलन-

1. ज्ञान के भेद
2. श्रुत ज्ञान का उद्देश आदि
3. आवश्यक सूत्र का, श्रुत का, स्कंध का निक्षेप द्वारा प्ररूपण
4. अनुयोग के चार द्वार एवं प्रथम उपक्रम द्वारा का विभाग वर्णन
5. आनुपूर्वी विस्तार
6. एक से दस नाम के वर्णन से विविध भावों का निरूपण
7. चार प्रमाण स्वरूप
8. मान उन्मान के भेद एवं स्वरूप
9. तीन प्रकार के अंगुल
10. जीवों की अवगाहना
11. स्थितियां
12. पाचं शरीरों के बद्ध मुक्त का वर्णन
13. प्रत्यक्ष प्रमाण आदि भाव प्रमाण
14. संख वर्णन
15. चार पल्य से काल गणना की उपमा (डाला-पाला वर्णन)
16. अर्थाधिकार
17. समवतार
18. चार निक्षेप द्वार
19. अनुगम द्वार निरूपण
20. सामायिक स्वरूप
21. नय प्ररूपण

नोट- ये अनुयोग द्वार सूत्र में वर्णित विषय है। जीवों की अवगहनाएं, स्थितिएं, बद्ध मुक्त शरीरों का वर्णन, पन्नवणा सूत्र के सारांश में होने से यहां इसमें नहीं लिया गया है।

इस सूत्र का स्थान आगमों में- व्याख्या पद्धति का सूचक यह अनुयोग द्वार सूत्र अंग बाह्य उत्कालिक सूत्र है, ऐसा नंदी सूत्र की सूत्र सूचि में बताया गया है। वर्तमान में श्वेताम्बर स्थानकवासी परंपरा में इसे मूल सूत्रों में गिना जाता है एवं श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परंपरा में चूलिका सूत्र कहा जाता है। इस सूत्र में मुख्य रूप से 'आवश्यक सूत्र' एवं 'सामायिक आवश्यक' पर अनुयोग पद्धति से व्याख्या का कथन चार मुख्य द्वारों से किया गया है। उसके साथ साथ ही प्रसंगानुसार अन्य भी ज्ञातव्य विषयों, तत्त्वों का कथन किया गया है।

जिसमें सांस्कृतिक सामग्री का भी वर्णन है यथा-संगीत के सात स्वर, स्वर स्थान, गायक के लक्षण, ग्राम, मूर्च्छनाएं, संगीत के गुण दोष, नव रस, सामुहिक लक्षण उत्तम पुरूष के लक्षण, चिन्ह आदि। निमित्त के संबंध में भी कुछ प्रकाश डाला गया है यथा- आकाश दर्शन एवं नक्षत्रादि के प्रशस्त होने पर सुवृष्टि होती है एवं अप्रशस्त होने पर दुर्भिक्ष आदि होते हैं।

रचनाकार एवं रचनाएं- इसके रचयिता आर्य रक्षित माने गये हैं। तद्नुसार इस सूत्र की रचना वीर निर्वाण संवत् 592 की एवं विक्रम संवत् 122 की मानी जाती है।

आगम प्रभावक श्री पुण्य विजय जी म. सा. का यह मन्तव्य है कि अनुयोग द्वार सूत्र की रचना आर्य रक्षित ने ही की हो ऐसा निश्चित नहीं कह सकते। इसलिये उपाचार्य श्री देवेंद्र मुनिजी ने वीर निर्वाण 827 वर्ष के पूर्व की रचना मानने का उल्लेख भी किया है। पूर्ण निर्णय के अभाव में भी इतना तो अवश्य है कि नंदी सूत्र की रचना के पूर्व इस सूत्र की रचना हो गई थी। यह सूत्र एक श्रुतस्कंध है, इसमें अध्ययन उद्देशे नहीं है। इसका परिमाण 1892 श्लोक का माना जाता है।

इस सूत्र पर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण एवं जिनदास गणी महत्तर यों दो प्राचीन आचार्यों की चूर्णि नामक व्याख्या उपलब्ध है। आचार्य हरिभद्र सूरी एवं हेमचन्द्राचार्य की प्राचीन टीकाएं उपलब्ध है। बीसवीं सदी में 32 सूत्रों पर संस्कृत व्याख्या आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. ने की है, वे सभी प्रकाशित उपलब्ध है। आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी म. सा. ने 32 ही सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया है एवं हिन्दी विवेचन सहित 32 ही शास्त्र आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित हुए हैं। 32 आगमों का सारांश प्रकाशित हो रहा है। अब इसे नवीन रूप दिया जा रहा है।

उपसंहार- इस सूत्र के जटिल एवं रूक्ष विषय को यथा संभव सरल और सुगम बनाकर सारांश रूप में दिया गया है। नय-निक्षेप का वर्णन भी सुस्पष्ट किया गया है। जिसका पाठक गण स्वयं ही अनुभव करके संतुष्ट होंगे, ऐसा विश्वास एवं अनुमान किया जाता है।

लेखक

विमलकुमार नवलखा, जगपुरा

अनुयोग एक चिन्तन-

अनुयोग की परंपरा- भगवान के शासन में मेधावान शिष्यों को कालिक श्रुत रूप अंग सूत्रों के मूल पाठ के साथ यथासमय उसके अनुयोग-अर्थ विस्तार की वाचना भी दी जाती थी। वे श्रमण उसे कंठस्थ करके अनुयोग युक्त कालिक श्रुत के धारण करने वाले कहे जाते थे। नन्दी सूत्र के प्रारम्भ में ऐसे अनेक अनुयोगधरों को स्मरण कर उनका गुणानुवाद एवं वंदन किया गया है। वहां अंतिम पचासवीं गाथा में भी उन महापुरूषों को स्मरण किया गया है जिनका नाम पूर्व की 49 गाथाओं में नहीं लिया जा सका और जो सूत्रकार के अनुभव से अज्ञात श्रुतधर पूर्व में हो चुके थे, उन्हें नमन किया है। वह गाथा इस प्रकार है-

जे अण्णे भगवंते, कालिय सुय आणुओगिए धीरे।
ते पणमिउण सिरसा, णाणस्स परूवणं वोच्छं।।

इस प्रकार कालिक श्रुत-अंगसूत्र एवं उनका अनुयोग ''विस्तृत विश्लेषण की परंपरा'' भगवान के शासन में नंदी सूत्र कर्ता श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक मौखिक चलती रही है। इसी कारण उन क्षमाश्रमण ने नंदी सूत्र प्रारंभ में तीर्थंकर गणधरों से लेकर कालानुक्रम से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध अनुयोगधरों का स्मरण देवदूष्य गणि तक किया है। ये देवदूष्य गणि देवर्द्धि गणि के दीक्षा गुरू या वाचनाचार्य थे। इसके बाद सूत्रों को लिपिबद्ध करने का क्रम देवर्द्धिगणि से प्रारम्भ हुआ जो विधिवत् और स्थायित्व लिए हुए था। उसके पहले भी ऐसे क्रम चले होंगे, पर वे इतने महत्व शील एवं व्यापक नहीं हो सके। सूत्र लिपि बद्ध करने का कार्य भी अति श्रमसाध्य था तो उसके अनुयोग-अर्थ व्याख्यान को लिपिबद्ध करना तो उस समय कल्पनातीत ही था। इसलिए उसका लेखन स्थागित रखा गया और यों संतोष किया गया कि अर्थ व्याख्यान करने की पद्धति तो अनुयोग द्वार सूत्र में सुरक्षित लिपिबद्ध कर दी गई है एवं सूत्रों के सामान्य आवश्यक उपयोगी अर्थ एवं क्वचित अनुयोग भी गुरू परंपरा से मौखिक चलते रहेंगे। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को हुए 40-50 वर्ष भी नहीं बीते होंगे कि सूत्रों की व्याख्याएं लिपिबद्ध किया जाना प्रारम्भ हो गया। परंतु यह कार्य एक साथ सामुहिक रूप से नहीं हुआ। ऐच्छिक व्यक्तिगत रूप से समय समय पर होता रहा, जिसके प्रारंभ कर्ता वराहमिहिर के भ्राता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी थे। उन्होंने (दस) सूत्रों पर जो व्याख्याएं लिखी उनका नाम ''निर्युक्ति'' रखा गया। फिर आगे से आगे आवश्यकतानुसार व्याख्याओं पर व्याख्याएं विस्तृत स्पष्टार्थ वाली लिखी जाती रही। उनके नाम भाष्य, चूर्णी, अवचूरी, दीपिका, टीका, टब्बा आदि रखे जाते रहे। नामकरण कुछ भी दिया जाता था। आज भी शब्द कोषों में अनुयोग शब्द का अर्थ परमार्थ मिलता है। उसका भी प्रमुख घोष यही है कि अनुयोग अर्थात् सूत्रों के अर्थ एवं विस्तृत व्याख्याएं और उन व्याख्याओं के करने की एक विशिष्ट क्रमिक पद्धति होती है वही ''अनुयोग पद्धति'' कही जाती है। प्रस्तुत अनुयोग द्वार सूत्र में मुख्य रूप से वह अनुयोग पद्धति प्रयोगात्मक रूप से बताई गई है। इसलिए इस सूत्र का अनुयोगद्वारसूत्र यह सार्थक नाम रखा गया है। इसमें जो पद्धति बताई गई है, निर्युक्ति भाष्यों में भी सूत्र के अर्थ का व्याख्यान लगभग उसी पद्धति के अवलंबन से किया हुआ है, जो आज भी उनमें देखने को मिलता है। इस प्रकार उस सूत्र की मौलिकता एवं प्रयोजन यहां स्पष्ट कर दिया गया है। किन्तु इतिहास के पन्नों में इस विषय

में कुछ भ्रमित परंपरा है जिसके विषय में कुछ विचारणा प्रस्तुत करना आवश्यक है। वह यह है कि ''आर्यरक्षित ने स्मृति दोष को ध्यान में लेकर सूत्र से उनके अनुयोग को हटा दिया और वह व्यवच्छिन्न हो गया और उनके संकेत दर्शन के लिए इस सूत्र अनुयोग द्वार की रचना कर दी गई।''

किन्तु यह कथन नंदी सूत्र संबंधी ऊपर की गई चर्चा से बाधित है। अनुयोगधर आचार्य आर्यरक्षित भी थे एवं दूष्यगणी भी थे और भी कई अनुयोगधर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय मौजूद थे। उन्हें भी अन्तिम गाथा से सत्कारित सम्मानित एवं नमन किया है। यदि अनुयोग विच्छेद होता तो उसके बाद अनेक बहुश्रुत अनुयोगधर कैसे बनते? किन्तु इतिहास के नाम से ऐसी कई अनघड परंपराओं का प्रवाह चल जाता है। ऐसी कई बातों का संग्रह एक स्वतंत्र ऐतिहासिक परिशिष्ट रूप में देने का संकल्प है।

कालातंर से किसी युग में मौलिक सूत्रों को भी चार अनुयोगों में से किसी अनुयोग में कल्पित किया जाने लगा है। जबकि अनुयोग शब्द तो अर्थ या व्याख्या के लिए है, मूल सूत्रों के लिए नहीं है।

वर्तमान में सूत्रों के अंशों को विषयों में विभाजित किया जाता है उस विषयवार विभागीकरण को भी अनुयोग या अनुयोग पद्धति कहा जाने लगा है और ऐसा विभाजन कार्य करने वाले विद्वानों को 'अनुयोग-प्रवर्त्तक' कहा जाने लगा है। किन्तु यह अनुयोग शब्द का प्रयोग केवल रूढ सत्य बन गया है। वास्तव में वह कार्य आगमों का विषयक्रम से वर्गीकरण है, अनुयोग नहीं है। किन्तु एक प्रवाह चला और फिर प्रचलित होकर रूढ हो गया है। प्रमाणों से युक्त अनुयोग शब्द संबंधी जानकारी के लिए इसी लेख में आगे देखें। वास्तव में सूत्रों के अर्थ परमार्थों को यथार्थ रूप में, क्रमशः, पूर्ण रूपेण धारण करने वाले, ''अनुयोगधर'' कहलाते हैं एवं ऐसे अर्थ परमार्थ को स्वगण एवं अन्य गण के सैकड़ों हजारों श्रमण श्रमणियों को समझाने, पढ़ाने वाले ''अनुयोग-प्रवर्त्तक'' कहलाते हैं। कभी ऐसे ही कोई अनुयोग-प्रवर्त्तक विशेष विख्यात हो जाते हैं और लम्बी उम्र के कारण अधिकांश रूप में उनके द्वारा समझाया हुआ अर्थ परमार्थ ही सभी गणों की परंपराओं में चल जाता है और उन अनुयोग प्रवर्तक के नाम से एवं छाप से प्रचारित होता चला जाता है। जो कई युग तक विख्यात रह जाता है। यथा- अनुयोगधर स्कंधिलाचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के कुछ पूर्व हुए थे। उन्होंने विशेष रूप में ऊपर कहे अुनसार अनुयोग का प्रवर्त्तन किया था। जिसकी परंपरा बहुत विस्तृत हुई एवं देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय तक पूर्ण व्याप्त हो चुकी थी। इसी कारण नंदी सूत्र की एक गाथा में उन्होंने कहा कि-

जेसि इमो अणुयोगो पयरई अज्जावि अड्ढ़ भरहम्मि।
बहु नयरनिग्गय जसे, ते वंदे खंदिलायरिए।।

इस गाथा से भी यह बात स्पष्ट होती है कि सूत्रों का अनुयोग विच्छिन्न नहीं हुआ था किन्तु संपूर्ण अर्द्ध-भरत में प्रचलित था। देवर्द्धिगणी एवं स्कंधिलाचार्य आदि, आचार्य श्री आर्यरक्षित से सैकड़ों वर्ष बाद के आचार्य थे और अनुयोगधर एवं अनुयोग-प्रवर्त्तक थे। अतः अनुयोग के विच्छेद होने या विच्छेद करने का इतिहास, समझ भ्रम वाला एवं कल्पित कल्पना वाला है, यह सूत्र प्रमाण से ही स्पष्ट हो जाता है।

अनुयोग शब्द की उपलब्ध व्याख्याएं-

अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग में अनुयोग शब्द के अनेक अर्थ एवं उनके प्रयोग की विस्तृत व्याख्या पृष्ठ 340 से 360 तक है। जो अनेक आगमों एवं ग्रंथों से वहां ली गई है।

कुछ अंश यहां दिये जाते है-

1. अणु-सूत्रं, महान अर्थः ततो महतो अर्थस्य अणुना सूत्रेण योगो, अनुयोगः / पृष्ठ 340/2

2. अनुयोगो-व्याख्यानम / पृष्ठ 354/1

3. अनुरूपो योगः सूत्रस्य अर्थेन सार्द्धं अनुरूपः संबंध, व्याख्यानमित्यर्थः / पृष्ठ 355/22

4. आर्य वज्रद्यावत् अपृथक्त्वे सति ''सूत्र व्याख्या रूप'' एकोप्यनुयोगः क्रियमाणः प्रतिसूत्रं चत्वारि द्वाराणि भाषतेः अर्थात् चरणकरणादिश्चतुरोऽपि प्रतिपादयति इत्यर्थः। पृथकत्वानुयोगकरणादेव व्यवच्छिन्नः। ततः प्रभूति एक-एक चरणकरणादीनामन्यतरों अर्थः प्रतिसूत्रं व्याख्यायते, न चत्वारोऽपि इत्यर्थः।

5. अनुयोगो- अर्थः व्याख्यानम्ः / पृष्ठ 358/2 पंक्ति 1.2

6. अध्ययननार्थ कथनविधिः अनुयोगः / ''अनुयोग द्वार'' / पृष्ठ 358

7. महापुरस्य इव सामायिकस्य अनुयोगार्थ व्याख्यानार्थ द्वाराणि इति अनुयोग द्वाराणि।

8. अणुयोगद्दाराइं, महापुरस्सेव तस्स चत्तारि।

अणुयोगो त्ति तदत्थो, दाराइं तस्स उ महाइं।। ''अणुओगद्वार'' पृष्ठ 358/2

9. संहिता य पदं चैव, पयत्थो, पदविग्गहो।

चालणा य पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं।। / पृष्ठ 355/19

10. तं च अनुयोगो यद्यपि अनेक ग्रंथ विषयः संभवति तथपि प्रतिशास्त्रं प्रति अध्ययनं, प्रति उद्देशकं, प्रति वाक्यं प्रति पंद च उपकारित्वाद्। पृष्ठ 359/1 अनुयोगद्वार टीका से।

11. ''अनुयोगिन''- अनुयोगो व्याख्यानम, परूपणा इति यावत् स यत्र अस्ति, अनुयोगी-आचार्य, अणुयोगी लोगाणं संसय णासओ दढं होति।

अणुओगधर-अनुयोगिकः।

12. अणुयोगपरः- सिद्धांत व्याख्याननिष्ठः।

13. नंदी सूत्र, गाथा 32 टीका-लययगिरीया में-

''कालिकश्रुतानुयोगिकान्''- कालिकश्रुतानुयोगे व्याख्याने नियुक्ताः कालिकश्रुतानुयोगिकाः, तान् अथवा

कालिकश्रुतानुयोग येषां विद्यते इति कालिकाश्रुतानुयोगिनः।

14. अणुओगे च नियोगा, भास विभास य वत्तियं चेव।

एए अणुओगस्स उ, नामा, एगट्ठिया पंच।। -वृहत्कल्प भाष्य कोष पृष्ट 344

अणुओयणं अणुओगो, सुयस्स नियएण जमभिहेएण।

वावारो वा जोगो, जो अणुरूवो अणुकूला वा।। पृष्ठ 344

सुत्तत्थो खुल पढ़मो, बीओ निज्जुत्ति मीसिओ भणिओ।

तइओ य निरवसेसो, एस विही भणिय अणुओगे।। -345।14

इन उपर्युक्त उद्धरणों में सूत्र के अर्थ को संक्षिप्त या विस्तृत कहने की पद्धति को अर्थात् व्याख्या करने की पद्धतियों को अनुयोग शब्द से परिलक्षित किया गया है।

नन्दी सूत्र में अनुयोग शब्द के प्रयोग-

1. रयणकरण्डगभूओ अणुओगो रक्खिओ जेहि (32)

2. अयलपुरा निक्खंते कालियसुय अणुओगिए धीरे।

बंभद्दीवग-सीहे, वायग पयमुत्तंम पत्ते (36)

3. जेसि इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्ढ भरहम्मि (37)

4. कालिय सुय अणुओगस्स धारए, धारए य पुव्वाणं।

हिमवंत खमासमणे वन्दे नागज्जुणायरिए (39)

5. गोविंदाणं पि णमो, अणुओगे विउल धारणिंदाणं (41)

6. सीलगुण गद्दियाणं अणुओग जुगप्पहाणाणं (48)

नन्दी सूत्र की इन गाथाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिक सूत्र की जो संक्षिप्त या विस्तृत व्याख्या की जाती है, उसकी एक विशिष्ट पद्धति होती है। जो आगम काल से सूत्रों के साथ ही शिष्यों को समझाई जाती थी। उन विस्तृत व्याख्यानों सहित सूत्र विशाल हो जाते थे। उन्हें कंठस्थ धारण करना क्रमशः कठिन होता गया। अनुयोग पद्धति से की जाने वाली उस व्याख्या से युक्त कालिक सूत्रों को धारण करने वाले बहुश्रुत आचार्यों को उक्त नंदी सूत्र की गाथाओं में अनुयोगधर, अनुयोगरक्षक, अनुयोगिक, अनुयोग प्रधान आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। यहां गाथा में प्रयुक्त अनुयोग व्याख्या पद्धति पहले से प्रचलित थी, जिसका रक्षण और धारण युग प्रधान आचार्यों ने किया था। अतः इन गाथाओं से अनुयोग के पृथक्करण या नवीनीकरण का कुछ भी संकेत समझना भ्रमपूर्ण है। गाथा 37 के अनुसार नन्दी सूत्रकार के समय में जो सूत्रों की व्याख्यायें कंठस्थ परंपरा में उपलब्ध थी वे सब स्कंदिलाचार्य द्वारा व्यवस्थित एवं निश्चित

की गई थी। अभिधान राजेद्र कोष से उद्धृत नम्बर 4 के अनुसार प्रत्येक अध्ययन के प्रत्येक सूत्र की व्याख्याएं मुख्य रुपेण एक अनुयोग से की जाती थी। उसके साथ ही चारों अनुयोगो के आधार से भी की जाती थी। अर्थात् उस सूत्र से किस तत्त्व का कथन हो सकता है ? उसका संयमाचरण से क्या संबंध है ? उसके लिए उदाहरण क्या है ? इत्यादि यथासम्भव 2-3 या 4 अनुयोगों में घटित करके विशिष्ट मेधावान श्रमणों को समझाया जाता था। इस प्रकार सामान्य बुद्धिमान शिष्य को एक अनुयोगात्मक संक्षिप्त व्याख्या से एवं विशेष प्रज्ञावान शिष्यों को अनेक अनुयोगात्मक व्याख्या से एवं अनुयोग पद्धति से अध्ययन कराया जाता था। और यही तरीका आगे भी देवर्द्धि तक चलता रहा और आज तक भी आंशिक रूप में वही क्रम चल रहा है।

आर्य रक्षित ने क्या किया ? इतिहास एवं आगम-

आर्यरक्षित के समय अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था उसमें प्रत्येक सूत्र की व्याख्या 1. चरण-करण 2. धर्म कथा 3. गणित एवं 4. द्रव्य-तत्त्व दृष्टि एवं अनुयोग पद्धति से की जाती थी यह व्याख्या पद्धति अत्यन्त क्लिष्ट थी। इसका अध्ययन स्मृति की तीक्ष्णता पर अवलंबित था। अर्थ वाचना के साथ इस व्याख्या पद्धति का भी आवश्यक स्थान था। ऐसा कहा जाता है कि शिष्यों की सुविधा एवं भविष्य का विचार करके आर्य रक्षित ने अर्थ वाचना में से इस क्लिष्ट व्याख्या पद्धति को अलग करने का संकल्प किया जिसका तात्पर्य यह था कि सूत्र के साथ उसका सामान्य विशेष अर्थ और उस सूत्र के आशय को स्पष्ट करने वाली मौलिक एक अनुयोगात्मक व्याख्या को रखा जाय। उसके अतिरिक्त चार अनुयोगों से युक्त जो व्याख्या प्रत्येक सूत्र के साथ सम्बद्ध है, उसे अलग कर दिया जाय। उसका भी कोई कोई प्रतिभा सम्पन्न शिष्य अध्ययन करता रहेगा, सामान्य रूप से उस पद्धति का अध्ययन अध्यापन नहीं रहेगा। इस संकल्प को उन्होंने संघ सम्मति से कार्यान्वित किया। यह भी एक कल्पना मात्र है वास्तव में तो जिन शासन में प्रारंभ से ऐसा ही यह तरीका चला आ रहा था। क्योंकि कई साधु सध्वियं सामान्य बुद्धि वाले या वृद्धावस्था वाले भी होते ही थे। उन सभी के लिये एक सरीखी पद्धति तो थी ही नहीं कि सभी को चारों अनुयोग युक्त पद्धति से ही अध्ययन करना पड़ेगा। अर्थात् उस समय भी योग्यता के अनुसार ही अर्थ, परमार्थ, अनुयोग पद्धति से अध्ययन कराया जाता था। अतः आर्यरक्षित ने मौलिक सूत्रों को अनुयोगों से विभाजित भी नहीं किया और अनुयोग का विच्छेद भी नहीं किया। किन्तु अनुयोग द्वार सूत्र की स्वतंत्र रचना करके अनुयोग पद्धति को सुरक्षित किया। जिसके लिए नंदी सूत्र में कहा है-''रयणकरण्डगभूओ अणुओगो रक्खिओ जेहिं''।। चार अनुयोग रूप से प्रत्येक सूत्र की क्लिष्ट व्याख्या पद्धति को व्याख्या में से पृथक किया ऐसा इतिहासों का मंतव्य एवं चिंतन हैं। किन्तु नंदी सूत्र की मौलिक गाथाओं में अनुयोग संबेध अनेक प्रकार के कथन है जो ऊपर बताये गये हैं। उनसे तो ऐसा इतिहासों के चिंतन से सम्मत कोई अर्थ आशय नहीं निकलता है। किन्तु उन नंदी सूत्र के स्थलों का आशय इन इतिहास चिंतकों के बिल्कुल विरोध में है। नंदी के अनुसार आर्यरक्षित ने अनुयोग पद्धति की कुंजी रूप एक शास्त्र अनुयोग द्वार सूत्र बना कर अनुयोग की रक्षा की है। थोड़े में अनुयोग पद्धति को सुरक्षित और बहुजन भोग्य बना दिया। साथ ही नंदी के अनुसार अनुयोग प्रचलन और अनुयोग धर एवं अनुयोग प्रवर्त्तक की परंपरा अक्षुण्ण चलती रही है। उन्हें पृथक् करने और विच्छेद करने की कोई गंध मात्र भी वहां नहीं है। अतः नदीं सूत्र कर्त्ता की दृष्टि में सूत्रों से अनुयोग के पृथक्करण या विच्छेद करण एवं प्रत्येक मौलिक सूत्रों को अनुयोगों में विभाजीकरण आदि जैसी कोई वार्त्ता वातावरण नहीं था। किन्तु ऐसा लगा है कि बाद में अर्थ भ्रम एवं परंपरा भ्रम से ऐसी कई कल्पनाएं उठती रही है एवं पुष्ट होती रही और चलती रही

है। उन परंपराओं को ही देख पढ़ कर इतिहासज्ञ प्रायः चिंतन मनन करते रहते है। किन्तु आगमों के संप्रेक्षण से चिंतन करने का प्रयत्न वे इतिहासज्ञ प्रायः नहीं किया करते हैं। इसी कारण से कई भ्रमित परंपराएं इतिहास के नाम से चलती जाती है और बढ़ती जाती है।

समान पाठों (विषयों) का अनुयोग-

सामान्यतया पाठक विषयानुसार वर्गीकरण को पढ़ने में विशेष रूचि रखता है। समझने में भी एक विषय का सम्पूर्ण वर्णन एक साथ अत्यन्त सुविधाजनक होता है। स्वाध्यायशील पाठकों एवं अन्वेषक विद्यार्थियों के लिए तो वर्गीकृत विषयों का संकलन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। अतः वर्गीकृत विषयों के संकलन की आवश्यकता एवं उपयोगिता सदा मानी गई है। आगमों में भी इस पद्धति का ही अधिकांशतः अवलम्बन लिया गया है। विषयों का विभाजन अनेक दृष्टिकोणों से किया जाता है। यह विभाजनकर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर है। यथा- 1. ''जीव द्रव्य के विषय का अलग विभाग करना किन्तु उसमें अन्य कोई गति या दंडक के विभाजन का लक्ष्य नहीं रखना, 2. गतियो की अपेक्षा विभाजन करना किन्तु दंडकों के क्रम या व्युत्क्रम का लक्ष्य नहीं रखना, 3. दंडकों की अपेक्षा विभाजन करना किन्तु उसमें 12 देवलोक 7 नरक या 5 तिर्यंच का विभाजन न रखना, इत्यादि स्थूल से सूक्ष्म या सूक्ष्मतर अपेक्षित विभाजन उपयोगितानुसार किये जा सकते हैं।

अथवा- 1. प्रायश्चित विधानों को एक सूत्र में कहना, 2. लघु, गुरू, मासिक, चैमासी इन विभागों के क्रम से कथन करना, 3. इनमें भी पांच महाव्रतों की अपेक्षा से विभाजित करना, 4. समिति, गुप्ति, दीक्षा, संघ व्यवस्था, स्वाध्याय आदि विभागों में विभाजन करना, इत्यादि अनेक प्रकार से विभाजन किए जा सकते हैं।

आगमों में की गई विभाजन पद्धति भी एक सापेक्ष पद्धति है यथा-

(1) आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध में संयम के प्रेरक विषय है,

(2) आचारांग के द्वितीय श्रुत सकंध में साधु के अत्यावश्यक आचारों से संबंधित विषय है,

(3) सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुत सकंध में प्रथम अध्ययन को छोड़कर शेष सभी अध्ययनों में साध्वाचार का प्रतिपादन किया गया है-

(4) दशवैकालिक में मुनि जीवन का ही पूर्ण मार्गदर्शन किया है।

(5) ज्ञाता मे विपाक पर्यत अंग सूत्रों में विविध धर्मकथाएं है।

(6) प्रश्नव्याकरण में 5 आश्रव एवं 5 संवर का विषय विस्तार से संकलित है।

(7) नन्दी में ज्ञान का एक ही विस्तृत विषय है।

(8) चार छेद सूत्रों में भी प्रमुख आचार संबंधी विषयों का संकलन है। जिसमें निशीथ सूत्र तो पूरा प्रायश्चित विधानों का ही संकलन है।

इसी प्रकार अन्य उपांग आदि कई सूत्र अन्यान्य विषयों के संकलन से युक्त है।

ठाणांग समवायांग का संकलन संख्या की प्रधानता को लिए हुए है। इसलिए उसमें विषयों की विभिन्नता है। भगवती सूत्र पूरा विविध विषयों के प्रश्नोत्तरों का संकलन है। उत्तराध्ययन सूत्र विभिन्न विषयों का गद्यपद्यात्मक उपदेशी सूत्र है।

निष्कर्ष यह है कि इन आगमों की रचना पद्धति भी विषय संकलन में एक विशेष विवक्षा वाली है। फिर भी उपलब्ध ठाणंग, समवायांग, भगवती सूत्र आदि अनेक आगमों में विविध विषय बिखरे हुए भरे पड़े हैं अतः विषयों के सक्ष्म सूक्ष्मतर विभाजन की जिज्ञासा वालों को उनके अध्ययन में कठिनाई का अनुभव होना स्वाभाविक है। अतः सूत्र पाठों का विभाजन भी एक विशिष्ट विभाजन की पूर्त्ति के लिए किया जाने लगा है वहां तक तो वह ठीक ही है, किन्तु इसे अनुयोग कहा जाना तो सर्वथा अनुपयुक्त है। आगम में ऐसे एक विषय के वर्णन समूह को 'गंडिका' शब्द से कहा गया है। बारहवें अंग सूत्र के चौथे विभाग का नाम ''अनुयोग'' है इसका आशय यह है कि उस विभाग में जो भी विषय गूंथे गये हैं उनके संबंधी बहुमुखी विस्तृत चर्चा की गई है और एक विषय या एक व्यक्ति संबंधी विषयों का एक साथ संकलन भी किया गया है। इस एक विषय के एक साथ संकलन रूप विशिष्ट पद्धति को वहां 'गड़िका' कहा है और विस्तृत वर्णन होने से उनके साथ अनुयोग शब्द भी लगाया गया है। इसलिए इस चौथे विभाग को अनुयोग कहा है और उस विभाग में जो अलग अलग विषयों के उपविभाग है उसे गंडिक, अनुयोग = गंडिकानुयोग कहा है।

यथा-

प्रथमानुयोग- **तीर्थंकरादिनः पूर्व भवादि व्याख्यान ग्रंथः।।**

गडिका- **एकार्थाधिकारा ग्रंथ पद्धति रित्यर्थः।**

गांडिकानुयोग- **भरत नरपति वंशजातानां निर्वाण गमन अणुत्तर विमान गमन व्यक्तव्यता 'व्याख्यान ग्रंथः'।**

गांडिकानुयोग- गंडिका का अर्थ है- समान वक्तव्यता वाली वाक्य पद्धति। अनुयोग अर्थात्-विस्तृत अर्थ प्रकट करने वाली विधि। एक सरीखे विषयों के संग्रह वाले ग्रंथ या अध्ययन का नाम है 'गंडिका' और उसका जो अर्थ विस्तार संयुक्त है, उसका नाम है-अनुयोग। यथा- जिस ग्रंथ या विभाग में केवल तीर्थंकरों का वर्णन एवं उसका विषय विस्तार हो वह विभाग तीर्थंकर गंडिकानुयोग कहा जाता है। इस प्रकार की अनेक गंडिकाएं कही गई है यथा-1. कुलकर गंडिकानुयोग 2.तीर्थंकर गंडिकानुयोग 3.गणधर गंडिकानुयोग 4. चक्रवर्ती गंडिकानुयोग 5.दशार्ह गंडिकानुयोग 6.बलदेव गंडिकानुयोग 7.वासुदेव गंडिकानुयोग 8.हरिवंश गंडिकानुयोग 9- उत्सर्पिणी गंडिकानुयोग 10-अवसर्पिणी गंडिकानुयोग आदि।

इस प्रकार के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि एक विषय के संकलन को ''गंडिका'' कहना चाहिए एवं उसके विस्तृत वर्णन को या किसी भी सूत्र के अर्थ व्याख्यान को ''अनुयोग'' कहना चाहिए और विस्तृत वर्णन वाले एक सरीखे विषय संकलन को अर्थात् अनुयोग युक्त गंडिका को ''गंडिकानुयोग'' कहा जाना चाहिए। अतः किसी सूत्र को ही

''अनुयोग'' कहना या सूत्र पाठों के विभाजन को ''गंडिका'' न कह कर ''अनुयोग'' कह देना आदि आगम सम्मत कथन प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु भ्रमित प्रवाह से चली हुई कथन पद्धति है।

चार अनुयोग-श्वेतांबर परम्परा में 1.चरणकारणानुयोग 2. धर्मकथानुयोग 3. गणितानुयोग 4.द्रव्यानुयोग ये चार भेद नाम रूप में मिलते हैं। ये नाम 32 या 45 किसी आगम के मूल पाठ में नहीं मिलते हैं अर्थात् ठाणांग सूत्र के चैथे ठाणे में भी नहीं है और स्वयं अनुयोग द्वार सूत्र में भी अनुयोग के ये चार प्रकार कहीं पर भी नहीं बताये गये है। अनुयोग द्वार सूत्र में अनुयोग के चार द्वार ये कहे हैं यथा- 1. उपक्रम 2. निक्षेप 3.अनुगम और 4.नय।

धर्मकथानुयोग आदि चार नाम एक साथ आचारांग सूत्र की टीका में मिलते हैं। ये चारों अनुयोग भी सूत्रों की व्याख्याओं की विशेष पद्धति से ही संबंधित है किन्तु मौलिक सूत्र रूप नहीं है। अर्थात् प्रत्येक सूत्र का इन चार विषयों में अर्थव्याख्यान कया जाता था। आजकल इसके लिये अर्थ विचार की वास्तविक अपेक्षा को छोड़कर इसका केवल सूत्रों के मूल पाठ के विभाजन के रूप में ही उपयोग किया जाने लगा है कि ''अमुक आगम अमुक अनुयोग है या अमुक सूत्र अमुक अनुयोग रूप है'' यह एक प्रवाह मात्र है जो रूढ़ सत्य बन चुका है। वास्तविक सत्य तो यही है कि सूत्रों के व्याख्यान विवेचन को अनुयोग समझना चाए और विवेच्य विषय को अनुयोग पद्धति से समझना चाहिए। उस विवेचन और विवेचन पद्धति को अनुयोग और अनुयोग पद्धति कहना चाहिए। किन्तु मौलिक आगम सूत्रों को अमुक अनुयोग या अमुक अनुयोग रुप यह आगम है ऐसा नहीं कहना चाहिए। यही इस अनुयोग के विषय की चर्चा करने का प्रमुख सार है। इति शुभम्। सुज्ञेषुः किं बहुना।

अनुयोग द्वार सूत्र

अनुयोग का विषय-

ज्ञान के पांच प्रकार है- 1. मतिज्ञान 2. श्रुतज्ञान 3. अवधिज्ञान 4. मनःपर्यवज्ञान 5. केवलज्ञान।

इनमें से चार ज्ञान का अनुयोग नहीं होता है क्योंकि वे सीखने पढ़ाने आदि के विषयभूत नहीं है। श्रुतज्ञान ही सीखने पढ़ाने का विषय बनता है। क्योंकि 1 उददे्श-पढ़ाना कठस्थ करना, 2 समुद्देश पक्का कराना-स्थिर कराना एवं शुद्ध कराना, 3 अनुज्ञा-अन्य को पढ़ाने का अधिकार, आज्ञा, स्वीकृति देना, 4 अनुयोग-वाचना देना, सामान्य अर्थ विशेषार्थ एवं अनुयोग पद्धति से वस्तु तत्त्व का विश्लेषण करना इत्यादि ये सभी श्रुतज्ञान के ही होते हैं। शेष मति आदि चारों ज्ञान उस-उस प्रकार के क्षयोपशम से स्वतः ही प्राप्त होते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए किसी को अध्ययन अध्यापन या अनुयोग व्याख्यान करना नहीं पड़ता है।

श्रुत ज्ञान में आवश्यक सूत्र, आवश्यक के अतिरिक्त अंग शास्त्र, अंगबाह्य-कालिक उत्कालिक शास्त्र इत्यादि सभी का अनुयोग होता है।

किसी भी एक सूत्र का अनुयोग पद्धति से व्याख्यान समझ लेने पर उसी पद्धति से अन्य सूत्रों का अनुयोग स्वाभाविक ही बहुत कुछ समझ में आ सकता है। एक सूत्र में भी उसके मुख्य 2-4 शब्दों का अनुयोग-व्याख्यान पद्धति समझ में आ जाने पर आगे संपूर्ण सूत्र की व्याख्या समझना सरल हो जाता है। इसलिए श्रमण निग्रन्थों के उभय काल उपयोग में आने वाले एवं आचारांग सूत्र आदि अंग सूत्रों से भी पहले अध्ययन कराये जाने वाले ''आवश्यक सूत्र'' का अनुयोग किया जाता है।

''आवश्यक सूत्र एक श्रुत स्कंध है और उसमें अनेक अध्ययन है।''

इस कथन में प्रयुक्त 1. आवश्यक, 2. श्रुत, 3. स्कंध और 4. अध्ययन इन चार शब्दों का अनुयोग करके स्वरूप बताया जाता है।

''आवश्यक'' का अनुयोग-

नाम आवश्यक- आवश्यक सूत्र अंग बाह्य उत्कालिक सूत्र हैं। ''आवश्यक'' यह इस सूत्र का गुण निष्पन्न नाम हैं। क्योकि अवश्यकरणीय आदि गुण इसमें घटित होते हैं। किसी भी वस्तु का गुण सम्पन्न या गुण रहित नाम रखना ऐच्छिक एवं परिचय के लिए होता हैं। यथा-महान वीरता के गुण से सम्पन्न व्यक्ति का नाम भी महावीर रखा जा सकता है एवं कमजोर डरपोक व्यक्ति का नाम भी महावीर रखा जा सकता हैं। यह नामकरण स्थाई होता हैं। तदनुसार किसी का भी ''आवश्यक'' यह नाम हो सकता हैं।

स्थापना आवश्यक- किसी भी वस्तु या रूप में किसी भी वस्तु या व्यक्ति की कल्पना करके उसे स्थापित करना स्थापना हैं। यह सत्य रूप में भी हो सकती है एवं असत्य रूप में भी होती हैं। यह अपेक्षित, सीमित या असीमित काल के लिए होती हैं। प्रस्तुत प्रकरण में इसका प्रसंग नहीं हैं।

द्रव्य आवश्यक- 1. अक्षर शुद्धि एवं उच्चारण शुद्धि से युक्त तथा वाचना आदि चारों से युक्त सीखा हुआ 'आवश्यक शास्त्र' आदि अनुप्रेक्षा एवं उपयोग से रहित है तो वह द्रव्य आवश्यक आगम हैं।

2. भूतकाल में आवश्यक शास्त्र को सीखे हुए व्यक्ति का मृत शरीर या भविष्य में जो आवश्यक शास्त्र को सीखेगा उसका वह शरीर भी उपचार से द्रव्य आवश्यक हैं। यथा-घृतकुंभ जलकुंभ आदि ।

3. सांसारिक लोग प्रातः कालीन जो भी आवश्यक क्रियाएं स्नान, मंजन, वस्त्राभरण, पूजा पाठ, खाना-पीना, गमनागमन आदि नित्य क्रिया करते हैं, वे भी ''द्रव्य आवश्यक'' क्रियाएं हैं।

4. सन्यासी तापस आदि भी प्रातः काल उपलेपन संमार्जन प्रक्षालन धूप दीप अर्चा तर्पणा आदि नित्य आवश्यक प्रवृत्तिएं करते हैं, वे भी द्रव्य आवश्यक क्रियाएं हैं।

5. जो निर्ग्रंथ, श्रमण-पर्याय में रहते हुए भी श्रमण गुणों से रहित होते है, अत्यन्त स्वच्छ वस्त्रों से सुसज्जित रहते है, जिनाज्ञाओं एवं शास्त्राज्ञाओं का उल्लंघन करते है, इस प्रकार स्वच्छंद विचरण करते हुए जो उभयकाल विधियुक्त आवश्यक करते है, यह भी ''द्रव्य आवश्यक'' क्रिया हैं।

भाव आवश्यक- 1. अक्षर शुद्धि एवं उच्चारण शुद्धि से युक्त गुरूपदिष्ट वाचना आदि से सहित तथा अनुप्रेक्षा एवं उपयोग पूर्वक जो आवश्यक है, वह ''भाव आवश्यक आगम'' है।

2. यथासमय रामायण, महाभारत आदि का उपयोग सहित वांचन श्रमण करना ''भाव आवश्यक लौकिक'' क्रिया हैं।

3. सन्यासी तापस आदि का यज्ञ, हवन, जाप, वंदना, अंजली आदि उपयोग सहित क्रियाएं करना ''कुप्रावचनिक भाव आवश्यक'' क्रियाएं हैं।

4. जो श्रमण , निर्ग्रंथ पर्याय में भगवदाज्ञानुसार विचरण करते हुए एकाग्रचित से दत्तचित होकर, संपूर्ण उपयोग उसी में रखते हुए, उभय काल प्रतिक्रमण करते है, उस समय अन्य किसी भी चिंतन में मन प्रवृत्त नहीं होने देते है, तो उनकी वह प्रवृत्ति ''लोकोत्तरिक भाव आवश्यक'' क्रियाएं हैं। ये तीनों नो आगम भाव आवश्यक हैं।

आवश्यक के पर्याय शब्द- 1. आवश्यक 2. अवश्यकरणीय 3. ध्रुवनिग्रह 4. विशोधि 5. छः अध्ययन समूह 6. न्याय 7. आराधना 8. मार्ग। ये अलग-अलग उच्चारण एवं अक्षर वाले एकार्थक आवश्यक के पर्यायवाची शब्द हैं।

इस प्रकार ''श्रमण'' एवं ''श्रमणोपासकों'' द्वारा उभय संध्या में किये जाने वाले आवश्यक का यह अनुयोग-स्वरूप हैं।

''श्रुत'' का अनुयोग-

नाम-किसी भी आगम शास्त्र या शास्त्र वाक्यों को जो श्रुत संज्ञा से कहा जाता है, अथवा परिचय के लिये यथेच्छ वस्तु का नाम ''श्रुत'' रख दिया जाता है तो वह भी ''नाम श्रुत'' हैं।

स्थापना-किसी भी रूप या वस्तु में ''यह श्रुत है '' ऐसा आरोप, कल्पना अथवा स्थापना की जाय तो वह ''स्थापना श्रुत'' है।

द्रव्य- 1. अक्षर शुद्धि उच्चारण शुद्धि से युक्त गुरूपदिष्ट वाचना आदि चारों से सहित सीखा हुआ किन्तु अनुप्रेक्षा एवं उपयोग से रहित शास्त्र ''द्रव्य श्रुत'' आगम हैं।

2. भूतकाल में ''श्रुत'' सीखे हुए व्यक्ति का मृत शरीर एवं भविष्य में सीखने वाले का वर्तमान शरीर उपचार से ''द्रव्य श्रुत'' हैं।

3. ताडपत्रों, पन्नों एवं पुस्तक में लिखा हुआ शास्त्र भी ''द्रव्य श्रुत'' है। ''श्रुत'' के लिय आगम भाषा में ''सुयं'' और ''सुत्तं'' शब्द का प्रयोग किया जाता है और कपास, ऊन आदि के धागों के लिए भी ''सुत्तं'' शब्द का प्रयोग किया जाता है, इस अपेक्षा से अनेक प्रकार के वस्त्रों के धागे-डोरे भी ''द्रव्य सूत्र'' है।

भाव- 1. अक्षर शुद्धि, उच्चारण शुद्धि आदि के साथ अनुप्रेक्षा एवं उपयोग युक्त जो श्रुत है वह ''भाव श्रुत आगम'' है।

2. अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों आदि के द्वारा स्वच्छंद बुद्धि से रचित मत मतांतरीय शास्त्र, ग्रंथ, 72 कलाएं, व्याकारण, रामायण, महाभारत, सांगोपांग वेद, यह सब ''लौकिक भाव श्रुत'' है।

3. सर्वशक्ति निर्ग्रंथ प्रवचन रूप आचारांग प्रमुख बारह अंग सूत्र आदि आगमोक्त चारित्र गुण से सम्पन्न श्रमण के कंठस्थ एवं उपयोग युक्त है तो वे ''लोकोत्तरिक भाव श्रुत'' क्रिया रूप है।

पर्याय शब्द- 1. श्रुत 2. सूत्र 3. ग्रंथ 4. सिद्धांत 5. शासन 6. आज्ञा 7. वचन 8. उपदेश 9. प्रज्ञापना 10. आगम, ये सभी ''श्रुत'' के पर्यावाची शब्द है।

स्कंध का अनुयोग-

नाम-स्थापना- किसी का ''स्कंध'' नाम रखा गया है, वह नाम स्कंध है। और किसी को ''यह स्कंध'' है ऐसा आरोपित, कल्पित या स्थापित किया हो, वह ''स्थापना स्कंध'' है।

द्रव्य- 1. श्रुत के विभाग रूप स्कंध को अथवा ''स्कंध'' इस पद को शुद्ध अक्षर एवं उच्चारण युक्त, गुरूपदिष्ट वाचनादि से सहित, सीखा है किन्तु अनुप्रेक्षा एवं उपयोग रहित है, वह ''द्रव्य-स्कंध'' है।

2. भुतकाल में ''स्कंध'' को जिसने जाना सीखा था, उसका मृत शरीर अथवा भविष्य में जो जानेगा उसका वर्तमान शरीर, उपचार से ''द्रव्य स्कंध'' है।

3. हाथी घोड़ा आदि का स्कंध ''सचित्त द्रव्य स्कंध'' है।

4. द्विप्रदेशी स्कंध यावत् अनंत प्रदेशी स्कंध से ''अचित्त द्रव्य स्कंध है।

5. सेना का स्कंधावार ''मिश्र द्रव्य सकंध'' है उसमें शस्त्रादि अचित्त एवं हाथी घोड़े मनुष्य आदि सचित्त होते हैं।

भाव- 1. द्रव्य स्कंध में कहे गये उच्चारण शुद्धि आदि से सीखा हुआ, साथ ही अनुप्रेक्षा एवं उपयोग से भी युक्त ''भाव स्कंध'' आगम रूप है।

2. सामायिक आदि छः अध्ययनों के समुदाय रूप ''आवश्यक श्रुत स्कंध'' चारित्र गुण से सम्पन्न जिन श्रमणों के उपयोग युक्त है वह ''भाव स्कंध'' क्रिया रूप है।

पर्याय शब्द- 1. गण 2. काय 3. निकाय 4. स्कंध 5. वर्ग 6. राशि 7. पुंज 8. पिंड 9. निकर 10. संघात 11. आकुल 12. समूह।

अध्ययन'' का अनुयोग-

आवश्यक सूत्र के 6 अध्ययन है उनके नाम और अर्थ इस प्रकार है-

1. सामायिक-सावद्य योग अर्थात् पाप कार्यों से निवृत्ति करना।

2. चतुर्विंशति-स्तव-पाप के आचरण का त्याग कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए परम उपकारी धर्म प्रवर्त्तक तीर्थंकरों की स्तुति करना।

3. वंदना-गुणवानों की अर्थात् सावद्ययोग त्याग की साघना में तत्पर श्रमण वर्ग की विनय प्रतिपत्ति-आदर, सम्मान, बहुमान करना।

4. प्रतिक्रमण-संयम साधना में प्रमाद वश होने वाली स्खलनाओं एवं अतिचारों की शुद्ध बुद्धि से एवं वैराग्य भावना से निंदा गर्हा कर उस प्रमाद से अलग हो जाना, उसे छोड़ देना।

5. कायोत्सर्ग-व्रण चिकित्सा के समान अर्थात् घाव पर मरहम पट्टी करने के समान संयम साधना में आई हुई कमी को दुरस्त करने के लिए सीमित श्वासोश्वास प्रमाण समय तक शरीर पर से ममत्व भाव, राग भाव का त्याग कर उसकी प्रक्रियाओं को अर्थात् मन वचन काया की प्रवृत्तियों को रोक कर शक्य निश्चेष्ट होकर ध्यान मुद्रा से खड़े रहना।

6. प्रत्याख्यान-स्खलित संयम को विशेष पुष्ट बनाने के लिए एवं तज्जनित कर्म बंध को क्षय करने के लिये नवकारसी आदि तप रूप निर्जरा गुणों को धारण करना।

अनुयोग के द्वारों का वर्णन-

अनुयोग के मुख्य चार द्वार है। यथा- 1. उपक्रम 2. निक्षेप 3. अनुगम 4. नय।

1. उपक्रम-प्रारंभिक ज्ञातव्य विषय की चर्चा करना एवं पदार्थ को निक्षेप के योग्य बना देना ''उपक्रम'' है।

2. निक्षेप-नाम स्थापना आदि के भेद से सूत्रगत पदों को व्यवस्थापन करना।

3. अनुगम-सूत्र का अनुकूल अर्थ कहना। इससे वस्तु के सही रूप का ज्ञान होता है।

4. नय-वस्तु के शेष धर्मों को अपेक्षा दृष्टि से गौण करके मुख्य रूप से किसी एक अंश को ग्रहण करने वाला बोध ''नय'' है।

2. उपक्रम द्वार का वर्णन-

उपक्रम के 6 प्रकार है- 1. नाम 2. स्थापना 3. द्रव्य 4. क्षेत्र 5. काल 6. भाव।

द्रव्य उपक्रम- सचित सजीव मनुष्य पशु आदि को, अचित्त पुद्गल गुड शक्कर आदि को, उपाय विशेष से पुष्ट करना, गुण वृद्धि करना, ''परिकर्म द्रव्य उपक्रम'' है एवं शस्त्र से जीवों का विनाश और प्रयत्न विशेष से पुद्गलों के गुण धर्मों का विनाश करना ''वस्तु विनाश द्रव्य उपक्रम है।

क्षेत्र उपक्रम- भूमि को हल आदि के प्रयोग से उपजाऊ बनाना परिकर्म विषयक क्षेत्र उपक्रम है और हाथी आदि को बांध कर भूमि को बंजर बनाना ''विनाश विषयक क्षेत्र उपक्रम'' है।

काल उपक्रम- जलघड़ी, रेतघड़ी आदि से समय का यथार्थ ज्ञान किया जाता है यह ''परिकर्म रूप काल उपक्रम'' है और नक्षत्रादि की गति से जो काल का विनाश (व्यतीत होना) होता है यह ''विनाश रूप काल उपक्रम'' है।

भाव उपक्रम- 1. उपक्रम के अर्थ स्वरूप का सही ज्ञान होना एवं उसके उपयोग से भी युक्त होना, आगम रूप भाव उपक्रम है।

2. उपक्रम का अर्थ है अभिप्राय। अतः अभिप्राय का यथावत् परिज्ञान ''भाव उपक्रम प्रवृत्ति'' है। यह अभिप्राय जानने रूप भाव उपक्रम प्रशस्त एवं अप्रशस्त दोनों तरह का होता है वेश्या आदि स्त्री के द्वारा अन्य का अभिप्राय जानना अप्रशस्त है और शिष्य के द्वारा गुरू का अभिप्राय जान लेना प्रशस्त है। लौकिक दृष्टि की अपेक्षा यह उपक्रम वर्णन है।

अन्य अपेक्षा से (शास्त्रीय दृष्टि से) उपक्रम वर्णन- उपक्रम के 6 प्रकार है- 1. आनुपूर्वी 2. नाम 3. प्रमाण 4. वक्तव्यता 5. अर्थाधिकार 6. समवतार।

1. आनुपूर्वी का वर्णनः- आनुपूर्वी के दस प्रकार है ? 1. नाम 2. स्थापना, 3. द्रव्य 4. क्षेत्र 5. काल 6. उत्कीर्तन 7. गणना 8. संस्थान 9. समाचारी 10. भावानुपूर्वी।

आनुपूर्वी, अनुक्रम एवं परिपाटी ये तीनों एकार्थक शब्द है अर्थात् एक के पीछे दूसरा ऐसी परिपाटी को आनुपूर्वी कहते हैं।

1. द्रव्यानुपूर्वी- 1. किसी विवक्षित पदार्थ को पहले व्यवस्थापित करके रख कर फिर उसके पास पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम से अन्यान्य पदार्थों को रखना द्रव्यानुपूर्वी हैं इसे उपनिधिकी आनुपूर्वी कहते हैं।

2. पदार्थों को पूर्वानुपूर्वी आदि के क्रम की अपेक्षा रखे बिना व्यस्थापित करना-रखना या स्वभावतः स्कंधों का व्यस्थपित हो जाना किसी भी क्रम से जुड़ जाना भी द्रव्यानुपूर्वी है इसे अनौपनिधिकी आनुपूर्वी कहते हैं।

3. आनुपूर्वी वही है जहां आदि मध्य और अन्त का व्यवस्थापन हो। इसलिए परमाणु अनानुपूर्वी है। द्विप्रदेशी स्कंध में आदि एवं अन्त है किन्तु मध्य नहीं है अतः अनानुपूर्वी भी नहीं किन्तु ''अवक्तव्य'' है। त्रिप्रदेशी से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कंध आनुपूर्वी है।

4. आनुपूर्वी अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य के एक वचन, बहुवचन के भेद से असंयोगी 6 से द्विसंयोगी भंग बनाने पर 12 भंग बनते हैं एवं तीन संयोगी भंग 8 बनते हैं कुल 26 भंग होते हैं। ये भंग विकल्प इस प्रकार है-असंयोगी भंग 6 1. आनुपूर्वी 2. अनानुपूर्वी 3. अवक्तव्य 4. आनुपूर्वियां 5. अनानुपूर्वियां 6. अनेक अवक्तव्य। द्विसंयोगी भंग 12, 1. आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी एक 2. आनुपूर्वी एक अनानुपूर्वी अनेक 3. आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वी एक 4. आनुपूर्वी अनेक अनाननुपूर्वी अनेक। इसी प्रकार चार भंग आनुपूर्वी एवं अवक्तव्य के साथ होते हैं और चार भंग अनानुपूर्वी एवं अवक्तव्य के साथ होते हैं, ये कुल 12 भंग है। तीन संयोगी 8 भंग- 1 आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य एक 2. आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य अनेक, 3. आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्त्तव्य एक, 4. आनुपूर्वी एक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य अनेक, 5. आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य, एक, 6. आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी एक, अवक्तव्य अनेक, 7. आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य एक, 8. आनुपूर्वी अनेक, अनानुपूर्वी अनेक, अवक्तव्य अनेक। ये 6+12+8 = 26 भंग होते हैं। यही भंग बनाने की विधि अन्यत्र भी जान लेनी चाहिए। इसी विधि से परमाणु, द्विप्रदेशी स्कंध एवं तीन प्रदेशी स्कंध इन तीनों के संयोग से 26 भंग जानने चाहिए।

5. आनुपूर्वी आदि द्रव्यों का 'अस्तित्व' आदि द्वारा विचार करना ''अनुगम'' अर्थात् अनुकूल विशेष ज्ञान है। यथा- 1. आनुपूर्वी आदि तीनों का अस्तित्व है। 2. द्रव्य संख्या से अनन्त है। 3. अनेक द्रव्यों की अपेक्षा आनुपूर्वी आदि सर्वलोक में है और एक द्रव्य की द्रव्यों की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग आदि में अलग-अलग रूप में है। 4. वैसी ही साधिक स्पर्शना है। 5. स्थिति सभी की जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्य काल की है एवं बहुत्व की अपेक्षा शाश्वत है। 6. अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अनन्त काल का है। किन्तु परमाणु का असंख्य काल का है। बहुत्व की अपेक्षा अंतर नहीं है। 7. शेष द्रव्यों के अनेक असंख्यातवें भाग में आनुपूर्वी द्रव्य होते हैं। द्विप्रदेशी तथा परमाणु द्रव्य असंख्यातवें भाग में होते हैं 8. आनुपूर्वी आदि द्रव्य पारिणामिक भाव में होते हैं। 9. द्विप्रदेशी स्कंध द्रव्य सबसे थोड़े है, उससे परमाणु विशेषाधिक है एवं तीन प्रदेशी आदि स्कंध द्रव्य असंख्य गुणे है। प्रदेश की अपेक्षा-सबसे थोड़े परमाणु अप्रदेश, द्विप्रदेशी के प्रदेश विशेषाधिक उससे तीन प्रदेशी आदि स्कंधों के प्रदेश अनंत गुण है।

6. नैगम एवं व्यवहार नय से उपरोक्त 26 भंग होते है और संग्रह नय से आनुपूर्वी आदि के सात भंग होते हैं क्योकि बहुवचन की विवक्षा इसमें अलग नहीं होती हैं। भंग इस प्रकार है- 1. आनुपूर्वी 2. अनानुपूर्वी 3. अवक्तव्य 4. आनुपूर्वी अनानुपूर्वी 5. आनुपूर्वी अवक्तव्य 6. अनानुपूर्वी अवक्तव्य 7. आनुपूर्वी अनानुपूर्वी अवक्तव्य। अन्य भी वर्णन संग्रह नय से, समझना किन्तु इसमें बहुवचन संबंधी कोई विकल्प द्रव्य, प्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, स्थिति, आदि में नहीं समझना।

यह अनोपनिधि की आनुपूर्वी का वर्णन हुआ ।

पूर्वानुपूर्वी आदि के भंग- औपनिधिकी द्रव्य आनुपूर्वी तीन प्रकार की होती हैं-

1. पूर्वानुपूर्वी 2. पश्चानुपूर्वी 3. अनानुपूर्वी (दोनों से भिन्न अवस्था स्वरूप वाली) यथा- 6 द्रव्यों को क्रम से रखना पूर्वानुपूर्वी हैं, उल्टे क्रम से रखना पश्चानुपूर्वी हैं। छः द्रव्यों के अनानुपूर्वी के भंग इस प्रकार है- $1\times2\times3\times4\times5\times6 = 720$ इसमें दो कम करने पर 718 अनानुपूर्वी के भंग जानना। इसी प्रकार पंच परमेष्ठी के पदों की एक पूर्वानुपूर्वी एक पश्चानुपूर्वी और 118 ($1\times2\times3\times4\times5 = 120-2 = 118$) अनानुपूर्वी के भंग बनते हैं।

क्षेत्रानुपूर्वी- द्रव्यानुपूर्वी के समान ही संपूर्ण वर्णन है इसमें तीन प्रदेशों आदि से अवगाढ स्कंध आनुपूर्वी है, एक प्रदेशावगाढ स्कंध अनानूपूर्वी है और द्विप्रदेशावगाढ स्कंध अवक्तव्य हैं। अल्पाबहुत्व में यहां अनंत गुण के स्थान पर असंख्य गुण ही होता है क्योंकि अवगाहना असंख्य प्रदेश की होती है, अनन्त प्रदेश की नहीं होती हैं। पूर्वानुपूर्वी, पश्चानूपूर्वी और अनानुपूर्वी यहां ऊंचालोक नीचा लोक और तिरछा लोक की अपेक्षा कहनी चाहिए। फिर नीचे लोक के सात नरक, तिरछे लोक के असंख्य द्वीप समुद्र एवं ऊर्ध्व लोक के 15 स्थान (12 देवलोक 1 ग्रैवेयक 1 अणुत्तर देव 1 सिद्व शिला) की पूर्वानुपूर्वी आदि कही जा सकती हैं।

कालानुपूर्वी- द्रव्यानुपूर्वी के सदृश संपूर्ण वर्णन हैं। इसमें एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानूपूर्वी है, दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्य है और तीन समय से असंख्यात समय तक की स्थिति वाले द्रव्य आनुपूर्वी हैं। क्षेत्र अवगाहना के समान काल स्थिति भी असंख्य है अतः अनंत नहीं कहना। एक समय की स्थिति यावत् असंख्य समय की स्थिति की अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी आदि कहनी चाहिए। अथवा समय, आवलिका, आणुपाणु, थोव, लव, मुहुर्त्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग , सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, यावत् शीर्ष प्रहेलिकांग शीर्ष प्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गल परावर्त्तन, अतीत काल, अनागत काल, सर्वकाल, इन 53 पदों से भी कह सकते हैं।

उत्कीर्तन आनुपूर्वी- इसके पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेद है जो ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त 24 तीर्थंकरों की अपेक्षा कहनी चाहिए।

गणनानुपूर्वी- इसके पूर्वानुपूर्वी आदि तीन भेद है जो एक, दस, सौ, हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़ अरब तक के इन दस पदों की अपेक्षा कहनी चाहिए ।

संस्थान आनुपूर्वी- यह छः संस्थानों की अपेक्षा कही जाती हैं।

समाचारी आनुपूर्वी- यह ''आवस्सहि'' आदि दस समाचारी की अपेक्षा कही जाती हैं।

भावानुपूर्वी- यह छः भावों की अपेक्षा कही जाती है। 1. उदय 2. उपशम 3. क्षायिक 4. क्षयोपश्मिक 5. पारिणामिक 6. मिश्रसंयोगी (सन्निपातिक) भाव ।

यह आनुपूर्वी अधिकार पूर्ण हुआ ।

2. नाम उपक्रम का वर्णन- यह दस प्रकार का है, यथा- एक नाम, दो नाम, तीन नाम यावत् दस नाम।

एक नाम- द्रव्य गुण पर्यायों के जो भी नाम लोक में रूढ है उन सब की ''नाम'' यह एक संज्ञा होने से वे सब एक नाम हैं।

द्विनाम- एकाक्षर ''श्री'' आदि द्वयाक्षर 'देवी' आदि अथवा जीव अजीव ये दो नाम है। विशेषित-अविशेषित भेद रूप दो नाम अपेक्षा से अनेक प्रकार का होता है यथा-जीव अविशेषित भेद रूप दो नाम अपेक्षा से अनेक प्रकार का होता है यथा-जीव अविशेषित और नारकी आदि विशेषित। नारकी अविशेषित रत्नप्रभा आदि विशेषित। यों भेदानुभेद करते हुए अणुत्तर देव अविशेषित, विजय वैजयंत विशेषित, यह दो नाम है। इस प्रकार अजीव द्रव्य में भी समझना चाहिए।

तीन नाम- द्रव्य गुण पर्याय यह तीन नाम है। इसमें द्रव्य के 6 भेद, गुण के वर्णादि पांच भेद एवं 25 भेद और पर्याय के एक गुण काला यावत् अनंत गुण काला आदि अनंत भेद है। स्त्री, पुरूष, नपुंसक ये भी तीन नाम है। स्त्री नाम के अंत में स्वर आ ई ऊ होता है पुरूष नाम के अंत में आ ई ऊ ओ होता है नपूंसक नाम के अन्त में अं इं उं होता है। यथा- 1. माला, लक्ष्मी, वधू, 2. राजा, गिरी, विण्हु, दुमो (वृक्ष) 3. धन्नं, अच्छिं, महुं।

चार नाम- नाम चार प्रकार से बनते हैं- 1. आगम से 2. लोप से 3. प्रकृति, से 4. विकार से। इनके उदाहरण- 1. पद्मानि, पयांसि, कुंडानि (सुट का आगम) 2. तेऽत्र, रथोऽत्र (अ का लोप) 3. अग्नि एतौ, पटू इमौ (इसमें संधी नहीं होती प्रकृति भाव हो जाने से) 4. दंडस्य+अग्रं = दंडाग्रं (एक वर्ण के स्थान पर अन्य वर्ण)।

पंच नाम- 1. किसी वस्तु का बोध कराने वाला शब्द या नाम वह नामिक नाम है। 2. ''खलु'' आदि नैपातिक नाम है। 3. धावति आदि तिगंत क्रियाएं आख्यातिक नाम है। 4. ''परि'' आदि उपसर्ग औपसर्गिक नाम है। 5. संयतः आदि मिश्र-संयोगी नाम है (उपसर्ग भी है, नामिक भी है)।

छः नाम- 1. उदय भाव-आठ कर्मों का उदय, जीव उदय निष्पन्न-मनुष्यत्व, त्रसत्व, देवत्व। अजीव उदय निष्पन्न-शरीर आदि।

2. उपशम भाव-मोहनीय कर्म के उपशम से-उपशम समकित, उपशम श्रेणी, उपशांत मोह गुणस्थान, उपशम चारित्र लब्धि।

3. क्षायिक भाव-आठ कर्मों के एवं उनकी समस्त प्रकृतियों के क्षय से होने वाला भाव।

4. क्षायोपशकिमक भाव-ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मों के क्षय एवं उपशम को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। चार ज्ञान, पांच इंद्रियां तीन दर्शन, चार चारित्र, गणी, वाचक आदि पदवी।

उदय प्राप्त कर्म का क्षय, अनुदीर्ण के विपाकोदय की अपेक्षा उदयाभाव (उपशम) इस प्रकार क्षय से उपलक्षित उपशम ही क्षयोपशम कहलाता है। उपशम में प्रदेशोदय भी नहीं होता है किन्तु क्षयोपशम में प्रदेशोदय होता है, विपाकोदय नहीं होता है।

5. पारिणामिक भाव-सादि पारिणामिक-बादल, संध्या, पर्वत, इन्द्रधनुष, बिजली, हवा, वर्षा आदि। अनादि पारिणामिक-जीवत्व भव्यत्व, अभव्यत्व लोक अलोक एवं धर्मास्तिकाय आदि।

6. सन्निपातिक (संयोगी-मिश्र) भाव-पूर्वोक्त पांच भवों से द्विक संयोगी आदि 26 भंग बनते है, वे सन्निपातिक भाव कहे जाते हैं।

छब्बीस भंग-

द्विसंयोगी भंग-10- 1. उदय उपशम 2. उदय क्षय 3. उदय क्षयोपक्षम 4. उदय पारिणामिक 5. उपशम क्षय 6. उपशम क्षयोपशम 7. उपशम पारिणामिक 8. क्षय क्षयोपक्षम 9. क्षय पारिणामिक 10. क्षयोपशम पारिणामिक।

त्रिसंयोगी भंग-10- 1. उदय उपशम क्षय 2. उदय उपशम क्षयोपशम 3. उदय उपशम पारिणामिक 4. उदय क्षय क्षयोपशम 5. उदय क्षय पारिणामिक 6. उदय क्षयोपशम पारिणामिक 7. उपशम क्षय क्षयोपशम 8. उपशम क्षय पारिणामिक 9. उपशम क्षयोपशम पारिणामिक 10. क्षय क्षयोपशम पारिणामिक।

चतुः संयोगी भंग-5. 1. उदय उपशम क्षय क्षयोपशम 2. उदय उपशम क्षय पारिणामिक 3. उदय उपशम क्षयोपशम, पारिणामिक 4. उदय क्षय क्षयोपशम पारिणामिक 5. उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक।

पंच संयोगी एक भंग-1. 1. उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक।

इन 26 भंग में से जीव में 6 भंग पाये जाते हैं शेष 20 का भंग रूप में अस्तित्व मात्र समझना। वे 6 भंग इस प्रकार है-

1. क्षायिक पारिणामिक-सिद्धों में।

2. उदय क्षयोपशम पारिणामिक-सामान्य रूप से संसारी जीवों में।

3. उदय क्षायिक पारिणामिक-भवस्थ केवलियों में (गुणस्थान 13.14 में)।

4. उदय क्षय क्षयोपशम पारिणामिक-क्षायिक समकिती सामान्य जीव में।

5. उदय उपशम क्षयोपशम पारिणामिक-उपशम समकिती सामान्य जीव में।

6. उदय उपशम क्षय क्षयोपशम पारिणामिक-क्षायिक सम्यग् दृष्टि उपशम श्रेणी में।

यहां पर 1. गतियों को उदय में 2. उपशम समकित, उपशम श्रेणी-उपशम में 3. इंद्रियां क्षयोपशम में 4. क्षायिक समकित, क्षपक श्रेणी, केवल ज्ञान, क्षय में 5.जीवत्व भाव आदि पारिणामिक में समझना चाहिये।

सात नाम- सात स्वर हैं, वे सप्तनाम है यथा-

1. षड्ज स्वर- कंठ, वक्षस्थल, तालु, जीव्हा, दंत, नासिका इन छः स्थानों के संयोग से यह स्वर उत्पन होता है, जीव्हाग्र से उच्चारित होता है। यथा-मयूर का शब्द, मृदंग का शब्द। इस स्वर वाला मनुष्य आजीविका, पुत्र, मित्र आदि से संपन्न सुखी होता है।

2. वृषभ स्वर- बैल की गर्जना के समान यह स्वर वक्षस्थल से उच्चारित होता हैं यथा-कूकड़े का स्वर, गोमुखी वादिंत्र का स्वर। इस स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता हैं सेनापतित्व एवं धनधान्य आदि भोग सामग्री को प्राप्त होता है।

3. गांधार स्वर- यह कंठ से उच्चारित होता है। यथा-हंस का स्वर, शंख की आवाज। इस स्वर वाला मनुष्य-श्रेष्ठ आजीविका प्राप्त करता है। कलाकोविद होता है। कवि बुद्धिमान एवं अनेक शास्त्रों में पारंगत होता है।

4. मध्यम स्वर- उच्चनाद रूप होता है। जीव्हा के मध्य भाग से उच्चारित होता है। यथा-भेड का स्वर, झालर का स्वर। इस स्वर वाले सुखैषी सुख जीवी होते हैं, मनोज्ञ खाते पीते एवं अन्यों को खिलाते-पिलाते दान करते हैं।

5. पंचम स्वर- नाभि, वक्षस्थल, हृदय, कंठ और मस्तक इन पांच स्थानों के संयोग से एवं नासिका से उच्चारित होता है। यथा- बसंत ऋतु में कोयल का शब्द, गोधिका वार्दित्र का स्वर। इस स्ववर वाला राजा, शूरवीर, संग्राहक और अनेक मनुष्यों का नायक होता है।

6. धैवत स्वर- पूर्वोक्त सभी स्वरों का अनुसंधान (अनुसरण) करने वाला यह स्वर दंत औष्ठ के संयोग से उच्चारित होता है। यथा-क्रौंच पक्षी का स्वर, नगाड़ा की आवाज। इस स्वर वाला मनुष्य कलह प्रिय एवं हिंसक, निर्दयी होता है।

7. निषाद स्वर- यह सभी स्वरों का पराभव करने वाला है। भृकुटि ताने हुए सिर से इसका उच्चारण होता है। यथा-हाथी की आवाज, महाभेरी की आवाज। इस स्वर वाला मनुष्य चांडाल, गोघातक, मुक्केबाज, चोर एवं ऐसे ही बड़े पाप करने वाला होता है। ये सात स्वर पूर्ण हुए।

गायन- डरते हुए, उतावल से, श्वांस लेते, नाम के संयोग से कटु स्वर एवं ताल विरूद्ध गाना इत्यादि गायन के दोष है। स्पष्ट उच्चारण, शुभ मधुर स्वर, उतार चढ़ाव से संपन्न, गेय राग से युक्त गाना इत्यादि गायन के गुण है। गायन का गीत के स्वर में मूर्च्छित सा हो जाना ''गीत की मूर्च्छना'' कहलाती है। ये मूर्च्छनाएं 21 है। इनके सात सात के समूह को ''ग्राम कहते हैं अतः सात स्वरों के तीन ग्राम एवं 21 मूर्च्छनाएं होती है। गायन भी सत्य, उपघात आदि 32 दोषों से रहित, विशिष्ट अर्थ युक्त, अलंकारों से युक्त, उपसंहार से युक्त, अल्प पद-अल्प अक्षर वाला एवं प्रियकारी होना चाहिए। श्याम स्त्री मधुर गाती है, काली स्त्री खर रूक्ष स्वर में गाती है, गौर वर्णा चतुराई से गाती है, काणी विलंबित स्वर में एवं अंधी शीघ्र गति स्वर में गाती है।

आठ नाम- शब्दों की आठ वचन विभक्तियां आठ नाम है। यथा-

1. प्रथमा- (कर्त्ता) जाति और व्यक्ति के निर्देश में 2. द्वितीया- (कर्म) जिस पर उपदेश, क्रिया का फल पड़े 3. तृतीया- (करण) क्रिया के साधकतम कारण में 4. चतुर्थी-संप्रदान-जिसके लिए क्रिया होती है वह। 5. पंचमी-

(अपादान) जिससे अलग होने का बोध हो 6. छट्ठी (संबंध) स्वामित्व संबंध कहने वाली 7. सप्तमी (आधार)- क्रिया के आधार स्थान का बोध कराने वाली 8. अष्टमी (संबोधन) संबोधित आमंत्रित करने वाली। यथा-

1. यह, वह, मैं 2. इसको कहो, उसको बुलाओ 3. उसके द्वारा किया गया, मेरे द्वारा कहा गया 4. उसके लिए दो उसके लिये ले जाओ, जिनेश्वर के लिये मेरा नमस्कार हो 5. वृक्ष से फल गिरा, यहां से दूर कर दो 6. उसकी वस्तु, उसका मकान, उसके खेत 7. छत पर, भूमि पर, पुस्तक में, घर में। 8. अरे! भाई, ओ! बहिन जी, है! स्वामी, हे! नाथ, इत्यादि।

नव नाम- काव्यों के नौ रस है वे, नव नाम है। यथा- 1 वीर रस 2 श्रृंगार रस 3 अद्भुत रस 4 रौद्र रस 5 व्रीडन (लज्जा उत्पादक) रस 6 वीभत्स रस 7 हास्य रस 8 कारूण्य रस 9 प्रशांत रस। अनेक सहकारी कारणों से अंतरात्मा में उत्पन्न उल्लास का विकार की अनुभूति रस कहलाती है। अतः जिस काव्य के गाने या सुनने से आत्मका में जो वीरता हास्य श्रृंगार भाव आदि की अनुभूति होती है, वह उस काव्य का रस कहलाता है। एक काव्य में एक रस या अनेक रस भी हो सकते हैं।

दस नाम- नामकरण दस प्रकार का होता है। यथा-

1. गुण निष्पन्न नाम-श्रमण, तपस्वी, पवन 2. गुण रहित नाम- समुद्द, समुद्र, पलाश, इन्द्रगोप कीडा 3. आदान पद निष्पन्न नाम- प्रारंभिक पद से अध्ययन आदि का नाम-भक्तामर, पुच्छिस्सुणं 4. प्रतिपक्ष पद निष्पन्न नाम-अलाबु, अलत्तक 5. प्रधान पद निष्पन्न नाम-आम्रवन आदि। 6. अनादि सिद्धांत निष्पन्न नाम-धर्मास्तिकाय आदि 7. नाम निष्पन्न नाम-मृगापुत्र, पांडुपुत्र, पांडुसेन, 8. अवयव निष्पन्न नाम-पक्षी द्विपद चतुष्पद, जटाधारी आदि 9. संयोग निष्पन्न नाम-गोपालक, दंडी, रथिक, नाविक, मारवाड़ी, हिन्दुस्तानी, पंचमारक (पंचम आरे के मनुष्य) हेमंतक, वसंतक, चैमासी, संवत्सरी, ज्ञानी, संयमी, क्रोधी।

10 वां प्रमाण निष्पन्न नाम- इसके चार भेद है-नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। किसी का 'प्रमाण' नाम रख दिया वह नाम निष्पन्न। स्थापना प्रमाण निष्पन्न नाम-28 नक्षत्रों के एवं उनके देवता के नाम। अनेक प्रकार के कुल नाम-उग्र कुल, भोग कुल, इक्ष्वाकु कुल आदि। अनेक प्रकार के पासंड नाम-श्रमण, पंडुरग, भिक्षु, परिव्राजक तापस आदि। अनेक प्रकार के गण नाम-मल्ल गण आदि ये सभी स्थापना प्रमाण निष्पनन नाम के अंदर समाहित है।

द्रव्य प्रमाण निष्पन्न नाम- धर्मास्तिकायादि है।

भाव प्रमाण निष्पन्न नाम से समास, तद्धित, धातु, निरूक्तिज ये चार भेद और इनके भेदानुभेद एवं उदाहरण भी कहे गये हैं। समास सात है- 1. द्वंद 2. बहुव्रीहि 3. कर्मधारय 4. द्विगु 5. तत्पुरूष 6. अव्ययी भाव 7. एक शेष। अर्थात् समास निष्पन्न नाम सात प्रकार के हैं।

तिद्वत निष्पन्न नाम आठ प्रकार के हैं। 1. कर्म से-व्यापारी, शिक्षक 2. शिल्प से-काष्टकार, स्वर्णकार, चित्रकार 3. श्लोक से श्रमण ब्राह्मण 4. संयोग से-राज-जवांई 5. समीप नाम-वेनातट 6. संयूथ नाम-टीकाकार, शास्त्रकार, तरंगवतीकार 7. एश्वर्य नाम-सेठ, सार्थवाह, सेनापति 8. अपत्यनाम-राजमाता, तीर्थंकर माता।

धातु से निष्पन्न नाम धातुज कहलाते हैं।

निरूक्त निष्पन्न नाम-महिष, भ्रमर, मूसल, कपित्थ

यह दस नाम प्रकरण पूर्ण हुआ।

3. ''प्रमाण'' उपक्रम का वर्णन-

द्रव्य प्रमाण के 5 प्रकार है यथा-

1. मान प्रमाण– धान्य को मापने का सबसे छोटा माप ''मुट्ठी'' हैं। दो मुट्ठी = पसली। दो पसली = एक खोबा, चार खोबा = एक कुलक। चार कुलक = एक प्रस्थ। चार प्रस्थ = एक आढक। चार आढक = एक द्रोण। साठ आढक = छोटी कुंभी। अस्सी आढक = मध्यम कुंभी। एक सौ आढक = बड़ी कुंभी, आठ बड़ी कुंभी = एक बाह। तरल पदार्थ मापने का सबसे छोटा माप ''चतु:षष्ठिका''

(4 पल = पाव सेर)। दो चतु:षष्ठिका =एक बतीसिका (आधा सेर)। दो बतीसीका = एक सोलसिका (एक सेर)।

दो सोलसिका = एक अष्ट भागिका (2 सेर)। दो अष्टभागिका = एक चतुर्भागिका (चार सेर)। दो चतुर्भागिका = अद्धमाणी (आठ सेर)। दो अद्धमाणी = एक माणी (16 सेर = 256 पल)। एक पल, एक छटांक को कहा जाता हैं। 256 पल की ''माणी'' होती हैं। इससे दूध, घी, तेल आदि का माप होता हैं।

2. उन्मान प्रमाण– तराजू आदि से तोल कर वस्तु की मात्रा का ज्ञान करना उन्मान प्रमाण हैं। तोलने का सबसे छोटा ''बाट'' अर्द्ध कर्ष होता हैं। दो अर्द्ध कर्ष = एक कर्ष। दो कर्ष = एक अर्द्ध पल। दो अर्द्धपल = एक पल'। एक सो पांच पल = एक तुला''। दस तुला = अर्द्ध भार। दो अर्द्ध भार = एक भार। इससे गुड़ खांड मिश्री, आदि द्रव्यों का वजन किया जाता हैं।

ये माप तौल अपेक्षित क्षेत्र काल के हैं। कालांतर या क्षेत्रांतर से ये माप तौल की इकाइयां अलग-अलग हीनाधिक भी होती हैं। यथा- कुछ समय पूर्व छटांक सेर मण आदि प्रचलित थे। आजकल- ग्राम, किलो, क्विंटल में वजन किया जाता हैं।

टिप्पण– (') एक पल एक छटांक अथवा पांच तोला का सूचक हैं। इसे अच्छी तरह ध्यान में रखने पर मान उन्मान को समझने में सरलता रहेगी। मुद्गरपाणी यक्ष का मुद्गर 1000 पल का था अर्थात् 1000 छटांक = एक मण साढे बाईस सेर का था।

('') अन्य ग्रन्थों में 100 पल = एक तुला कहा गया है वह कथन ज्यादा संगत लगता हैं। यहां लिपी दोष की विशेष संभावना है। क्योकि 500 पल का पाठांतर भी मिलता ही हैं।

3. अवमान प्रमाण– इससे भूमि आदि का माप किया जाता है इसकी सबसे छोटी इकाई हाथ हैं। चार हाथ = एक धनुष। धनुष, दंड, युग, नालिका, अक्ष, मूसल ये सब एक ही माप के होते हैं।

दस नालिका =एक रज्जू। इससे भूमि की लम्बाई, चैड़ाई, ऊंचाई व गहराई मापी जाती हैं। वर्तमान में ''गज-फुट'' से माप किया जाता अथवा मीटर से माप किया जाता हैं।

4. गणिम प्रमाण– गिनती संख्या से किसी भी पदार्थ की मात्रा का ज्ञान करना ''गणिम प्रमाण '' हैं। इससे रूपये पैसे संपत्ति आदि का एवं गिनती के योग्य अन्य पदार्थों का ज्ञान किया जाता हैं। इसकी जघन्य इकाई एक है, फिर क्रमशः दो तीन चार आदि करोड़ पर्यंत समझ लेनी चाहिए। सूत्र में 1, 10, 100, 1000, 10000, लाख , 10 लाख, करोड़ ये संख्या दी हैं। अधिकतम 194 अंक प्रमाण संख्या गणना प्रमाण में हैं। उसके बाद उपमा प्रमाण हैं।

5. प्रतिमान प्रमाण– सोना, चांदी एवं मणि-मुक्ता आदि को छोटे तुला से तोल कर मान ज्ञात किया जाता है, वह प्रतिमान प्रमाण हैं। गुड, शक्कर आदि को बड़े तराजू से सेर, मण आदि में तोला जाता है और बहुमूल्य वस्तुओं को तोला मासा (रति) गुंजा आदि छोटे तोलों से बाटों से तोला जाता हैं। यह उन्मान और प्रतिमान में अंतर समझना चाहिए।

5	गुंजा (रत्ती)	=	1 कर्ममाषक (मासा)
4	कांकणी	=	'' '' ''
3	निष्पाव	=	'' '' ''
12	मासा	=	1 मंडल
48	कांकणी	=	1 मंडल
16	मासा	=	1 तोला (सोना मोहर)

क्षेत्र प्रमाण– इसकी जघन्य इकाई ''अंगुल'' हैं। अंगुल तीन प्रकार के होते है यथा -

1. आत्मांगुल– जिस काल में जो मनुष्य होते है, उनमें जो प्रमाण युक्त पुरूष होते है, उनके अंगुल को आत्मांगुल कहा जाता है। प्रमाण युक्त पुरूष वह होता है जो अपने अंगुल से 108 एक सौ आठ अंगुल अथवा 9 मुख प्रमाण होता है। एक द्रोण जितना जिनके शरीर का आयतन होता हैं। और अर्द्ध भार प्रमाण जिनका वजन होता हैं। द्रोण और अर्द्धभार में करीब 64 सेर का परिमाण होता हैं।

2. उत्सेधांगुल– 8 बालाग्र = एक लीख। आठ लीख= एक जूं। आठ जूं = एक जौ मध्य। आठ जौ मध्य = एक उत्सेधांगुल अर्थात् 8 × 8 × 8 × 8 = 4096 बाल (केश) का गोल भारा बनाने पर उसका जितना विस्तार (चैड़ाई-व्यास) होता है, उसे एक उत्सेधांगुल कहते हैं। यह अंगुल आधा इंच के करीब होता है ऐसा अनुमान किया जाता हैं। जिससे 12 इंच =24 अंगुल = 1 हाथ = 1 फुट होता हैं।

प्रमाणांगुल– चक्रवर्ती के कांकणी रत्न के 6 तले और 12 किनारे होते है उसके प्रत्येक किनारे एक उत्सेधांगुल प्रमाण होते हैं। उत्सेधंगुल से हजार गुणा प्रमाणांगुल होता हैं। श्रमण भगवान महावीर का अंगुल उत्सेधांगुल से दुगुना होता हैं। अर्थात् 8192 बाल (केश) का गोल भारा बनाने पर जितना विस्तार हो उतना भगवान महावीर स्वामी का अंगुल होता हैं। एवं 4096000 बाल के गोल बनाये गये भारे का जितना विस्तार होता है उतना एक प्रमाणांगुल अर्थात् अवसर्पिणी के प्रथम चक्रवर्ती का अगुंल होता हैं।

योजन– 12 अगुंल = एक बिहस्ती (बेंत) । दो बेंत = हाथ। चार हाथ = एक धनुष। दो हजार धनुष = एक कोश। चार कोश = एक योजन। यह माप तीनों प्रकार के अंगुल में समझना चाहिए। इस प्रकार योजन पर्यंत सभी माप तीन तीन प्रकार के होते हैं। इसमें आत्मांगुल से उस काल के क्षेत्र ग्राम नगर घर आदि का माप किया जाता हैं। उत्सेधांगुल से चारों गति के जीवों की अवगाहना का माप कहा जाता हैं। प्रमाणांगुल से शाश्वत पदार्थों का अर्थात् द्वीप, समुद्र, पृथ्वीपिंड, विमान, पर्वत, कूट आदि की लम्बाई, चैड़ाई, ऊंचाई कही जाती हैं।

अपेक्षा से लोक में तीन प्रकार के रूपी पदार्थ है (1) मनुष्य कृत ग्राम नगर मकानादि (2) कर्म कृत-शरीर आदि (3) शाश्वत स्थान। इन तीनों का माप करने के लिए ये उपरोक्त तीन प्रकार के अंगुल से लेकर योजन पर्यंत के मापों का उपयोग होता हैं।1

टिप्पण– यहां सूत्र पाठ में चार गति के जीवों की अलग-अलग विस्तार से अवगाहना बताई है उसके लिए प्रज्ञापना सूत्र पद 11 देखना चाहिए ।

परमाणु से अंगुल का माप - सूक्ष्म परमाणु और व्यवहारिक परमाणु के भेद से परमाणु दो तरह के हैं। सूक्ष्म परमाणु अवर्ण्य है, वह अतिसूक्ष्म अविभाज्य पुद्गल का अंतिम एक प्रदेश होता हैं। उसका आदि मध्य अंत वह स्वंय ही हैं। ऐसे अनंतानंत परमाणु का एक व्यवहारिक परमाणु होता हैं। वह भी इतना सूक्ष्म होता है कि तलवार आदि से अविच्छेद्य होता है, अग्नि उसे जला नहीं सकती, हवा उसे उड़ा नहीं सकती हें। ऐसे अंनत व्यवहारिक परमाणु से माप की गणना इस प्रकार होती हैं-

अंनत व्यवहार परमाणु	= 1 उत्श्लक्षण-श्लक्षणिका होती हैं।
8 उत्श्लक्षणश्लक्षणिका	= 1 श्लक्षणश्लक्षणिका
8 श्लक्षणश्लक्षणिका	= 1 ऊर्ध्व रेणु
8 ऊर्ध्व रेणु	= 1 त्रस रेणु
8 त्रस रेणु	= 1 रथ रेणु
8 रथ रेणु	= 1 बाल (देवकुरू मनुष्य का)
8 बाल (देव कुरू)	= 1 हरिवर्ष मनुष्य का

8 बाल (हरिवर्ष)	= 1 बाल (हेमवत मनुष्य का)
8 बाल (हेमवत)	= 1 बाल (महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य का)
8 बाल (महाविदेह)	= 1 बाल (भरत क्षेत्र के मनुष्य का)
8 बाल	= 1 लीख
8 लीख	= 1 जूं
8 जूं	= 1 जौ मध्य
8 जौ मध्य	= 1 उत्सेधांगुल

12 अंगुल = 1 बेंत, 2 बेंत = हाथ, 2 हाथ, = 1 कुक्षी, 2 कुक्षी = 1 धनुष ।

काल प्रमाण- काल की जघन्य इकाई ''समय'' यह अति सूक्ष्म एवं अविभाज्य हैं। आंख के पलक पड़ने जितने समय में भी असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं। ऐसे असंख्य समय की एक आवलिका होती हैं। संख्याता आवलिका का एक श्वासोश्वास होता हैं। वृद्वावस्था एवं व्याधिरहित स्वस्थ पुरूष का श्वासोश्वास यहां प्रमाण भूत माना गया हैं। श्वासोश्वास को ''प्राण'' कहा गया हैं।

7 प्राण = एक स्तोक । सात स्तोक = एक लव । 77 लव = एक मुहुर्त

1 मुहुर्त = 3773 श्वासोश्वास = प्राण होते हैं।

1 मुहुर्त = 1, 67, 77, 216 आवलिका

1 प्राण = 4446 साधिक आवलिका

1 सेकंड = आवलिका 1.54 (4446 ÷ 2880)

1 प्राण = सेकंड देते है। 1.31 (4446 ÷ 3773)

1 मुहुर्त = 2880 सेकंड

1 मुहुर्त = 48 मिनिट। एक मिनिट = 60 सैकंड

30 मुहुर्त = एक दिन।

84 लाख वर्ष = एक पूर्वांग।

84 लाख पूर्वांग- एक पूर्व । आगे की प्रत्येक काल संज्ञा एक दूसरे से 84 लाख गुणी होती हैं। अंत में शीर्ष प्रहेलिकांग से शीर्ष प्रहेलिका 84 लाख गुणी होती हैं। इतनी संख्या तक गणित का विषय माना गया हैं। इसके आगे की

संख्या उपमा द्वारा कही जाती हैं। उत्कृष्ट संख्याता की संख्या उपमा द्वारा पूर्ण होती हैं। उस उत्कृष्ट संख्याता में एक अधिक होते ही जघन्य असंख्याता होता हैं।

उपमा द्वारा काल गणना प्रमाण–

(1) पल्योपम और सागरोपम रूप दो प्रकार की उपमा से काल गणना की जाती हैं। पल्योपम के गणना की उपमा समझ लेने के बाद सागरोपम की गणना सहज समझ में आ जाती हैं। क्योकि किसी भी प्रकार के पल्योपम से उसका सागरोपम दस क्रोडाक्रोड गुना होता हैं। अतः आगे केवल पल्योपम का वर्णन किया जाता हैं।

(2) उपमा गणना का पल्योपम तीन प्रकार का होता है। 1. उद्धार पल्योपम, 2. अद्धा पल्योपम, 3. क्षेत्र पल्योपम। इन तीनों में सूक्ष्म और व्यवहार (बादर) दो-दो भेद होते हैं।

(3) 1. ''उद्धार पल्योपम'' की उपमा में बालाग्र एक एक समय में निकाले जाते हैं।

2. ''अद्धा पल्योपम'' की उपमा में बालाग्र 100 वर्ष से निकाले जाते हैं और

3. ''क्षेत्र पल्योपम'' में बालाग्रों के आकाश प्रदेश का हिसाब होता हैं।

(4) ''उद्धार बादर पल्योपम'' में एक दिन से सात दिन के जुगलियों के बाल अखंड भरे जाते और निकाले जाते है जबकि ''सूक्ष्म'' में उस एक एक बाल के असंख्य खंड करके भरे जाते है और निकाले जाते हैं। सूक्ष्म पनक जीवों की अवगाहना से असंख्यगुण और निर्मल आंखों से जो छोटी से छोटी वस्तु देखी जा सकती है उससे असंख्यातवां भाग हो, ऐसे असंख्य खंड बालाग्र के समझने चाहिए ।

(5) ऐसा ही अंतर बादर ''अद्धा पल्योपम'' और सूक्ष्म अद्धा पल्योपम में समझ लेना चाहिए।

(6) बादर ''क्षेत्र पल्योपम'' में अखंड बालाग्रों के अवगाहन किए आकाश प्रदेशों का हिसाब होता है और सूक्ष्म में असंख्य खंड किए गये बालाग्रों के अवगाढ़ (अवगाहन किए) और अनवगाढ दोनों प्रकार के अर्थात् पल्य क्षेत्र के समस्त आकाश प्रदेश गिने जाते हैं।

(7) तीनों प्रकार के बादर (व्यवहार) पल्योपम केवल सूक्ष्म को समझाने मात्र के लिए है और लोक में उसका कोई उपयोग नहीं होता हैं।

(8) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम से द्वीप समुद्रों का माप होता है अर्थात् ढाई उद्धार सागरोपम के जितने समय होते हैं उतने ही लोक में द्वीप समुद्र हैं।

(9) सूक्ष्म अद्धा पल्योपम सागरोपम से चारों गति के जीवों की उम्र का कथन किया जाता हैं।

टिप्पण– 1 यहां चारों गति के जीवों की स्थितियां विस्तार से बताई गई है, उसके लिए प्रज्ञापना सूत्र पद 4 सारांश देखना चाहिए ।

(10) सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम से दृष्टिवाद अंग सूत्र में वर्णित द्रव्यों का माप किया जाता हैं।

पल्य की उपमा- पल्य-लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई इन तीनों में समान, धान्य आदि मापने का एक पात्र होता हैं। यहां स्वीकार किए जाने वाले पात्र को भी तीनों की समानता के कारण पल्य कहा गया हैं।

उत्सेधांगुल से एक योजन लम्बा, चौड़ा, गहरा गोलाकार पल्य हो जिसकी साधिक तीन योजन की परिधि हो। उसमें उत्कृष्ट सात दिन के नवजात शिशुओं के बाल ठूंस ठूंस कर - खचाखच सघन ऐसे भर दिये जाय कि रंच मात्र भी रिक्त स्थान (स्थूल दृष्टि की अपेक्षा) न रहने पावे। ऐसे भरे उन बालों को समय में या सौ-सौ वर्षों में इत्यादि उपरोक्त भिन्न-भिन्न प्रकारों से निकाला जाता हैं।

सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम के वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि ऐसे खचाखच भरे स्थान में भी सूक्ष्म दृष्टि से अनेक आकाश प्रदेश रिक्त रह जाते हैं, उसे एक दृष्टांत द्वारा समझना चाहिए । यथा- एक बड़े प्रकोष्ठ में कुष्मांड फल (कोल्हा फल) खचाखच भर दिए । उसमें हिला हिला कर बिजोरा फल भर दिए, फिर हिलाहिला कर विल्व फल, यो क्रमशः छोटे से छोटे फल आंवला, बोर , चणा, मूंग, सरसों भरे गये तो वे भी उसमें समा गये। उसके बाद भी जगह खाली रह जाती हैं। (फिर भी उसमें हिला हिला कर बालू रेत भरी जाय तो उसका भी समावेश हो जायेगा, उसके बाद उसमें पानी भरा जाय तो उसका भी समावेश हो जायेगा)। जिस प्रकार सघन सागौन की लकड़ी पूर्ण ठोस है, हमें उसमें कहीं पोल नहीं दिखती है, फिर भी बारीक कील उसमें लगाई जाय तो उसको जगह मिल जाती हैं। जैसे इनमें सघन दिखते हुए भी आकाश प्रदेश अनवगाढ रहते है, वैसे ही एक योजन के उस पल्य में बालों से अनवगाढ आकाश प्रदेश रह जाते हैं।

द्रव्य- अरूपी अजीव द्रव्य दस हैं। रूपी अजीव द्रव्य अनंत हैं। परमाणु भी अनंत है यावत् अनंत प्रदेशी स्कंध भी अनंत हैं। जीव द्रव्य अंनत हैं। नारकी, देव, मनुष्य, असंख्य-असंख्य हैं, तिर्यञ्च अनन्त हैं। तेवीस दंडक के जीव असंख्य है, वनस्पति के जीव अनंत है, सिद्ध अनंत हैं। संसारी जीवों में प्रत्येक जीव के शरीर होते हैं वे शरीर पांच है, यथा- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कार्मण। इनमें से नारकी देवता में तीन-तीन शरीर होते हैं। मनुष्य में पांच और तिर्यञ्च में चार शरीर होते हैं।। इन सभी शरीरों की संख्या भी जीव द्रव्यों की संख्या के समान 23 दंडक में असंख्य और वनस्पति में अनंत होती है।

टिप्पण- 1. यहां सूत्र पाठ में दंडकों में शरीर संख्या का स्पष्टीकरण है एवं असंख्य और अनन्त शरीरों का भी तुलनात्मक दृष्टि से स्पष्टीकरण किया गया हैं। उसके लिए प्रज्ञापना सूत्र पद 12 सारांश देखना चाहिए।

भाव प्रमाण- इसके तीन भेद हैं- 1. गुण 2. नय 3. संख्या। गुण के दो भेद जीव और अजीव। अजीव के वर्णादि 25 भेद है और जीव गुण प्रमाण के चार भेद हैं। यथा- 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. उपमान 4. आगम।

प्रत्यक्ष- पांच इन्द्रिय और अवधि, मनःपर्यव, केवल ज्ञान ये प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

अनुमान- अनुमान प्रमाण को समझने के लिए उसके पांच अवयव जानने चाहिए इनसे अनुमान प्रमाण सुस्पष्ट होता है। कभी इनमें दो अवयवों से विषय स्पष्ट होता है अर्थात अनुमान सिद्ध हो जाता है और कभी पांचों अवयवों से। यथा- रत्न महंगे होते हैं जैसे कि मूंगा माणक आदि। इसमें दो अवयव प्रयुक्त है प्रतिज्ञा और उदाहरण। पांच अवयव का

उदाहरण-1 यहां अग्नि है 2 क्योंकि धूआं दिख रहा है 3 जहां जहां धुआं होता है वहां अग्नि होती है 4 यथा रसोइ घर 5. इसलिये यहां भी धुआं होने से अग्नि हैं।

1. प्रथम प्रतिज्ञा की जाती है जिसमें साध्य का कथन होता है फिर 2. उसका तर्क हेतु कारण मुख्य आधार कहा जाता है 3. उस हेतु के लिए व्याप्ति दी जाती है फिर 4. उस हेतु वाला सरीखा उदाहरण दिया जाता है 5. फिर उसका उपसंहार कर अपना साध्य स्थिर किया जाता है। पांच अवयव- 1. साध्य 2. हेतु 3. व्याप्ति 4. उदाहरण 5. निगमन (उपसंहार)।

ये अनुमान भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल संबंधी होते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल दोनों होते हैं। कुछ अनुमानों के उदाहरण इस प्रकार है-

1. यह लड़का मेरा ही है क्योंकि इसके हाथ में मेरे द्वारा किया गया यह घाव का चिन्ह है 2. परिचित किसी की आवाज को सुनकर जानना कि यह अमुक व्यक्ति की या अमुक जानवर की आवाज है 3. गंध, स्वाद, स्पर्श से क्रमशः जानना कि यह अमुक इत्र, फूल है। अमुक खाद्य पदार्थ या मिश्रित वस्तु है एवं अमुक जाति का आसन है 4. सींग से भेंस को, शिखा से कूकड़े को, पूंछ से बंदर को, पंखों से मोर को अनुमान करके सही जान लिया जाता है। 5. धुएं से अग्नि का, वक्र पक्षी से पानी का, अभ्रविकार से वृष्टि का अनुमान किया जाता है 6 इंगित-आकार, नेत्र-विकार से भावों का, आशय का, अनुमान कर लिया जाता है 6. एक सिक्के के अनुभव से अनेक सिक्कों को पहिचानना, एक चावल से अनेक चावल सीजने का अनुमान करना, 7. एक साधु को देखकर अन्य सभी उस वेष वालों को जान लेना कि ये उस मत के साधु है 8. किसी भी एक पदार्थ का इतना अति परिचय ज्ञान हो जाय कि एक सरीखे अनेक पदार्थों में उसे रख दे तो भी उसे किसी विशषेता के आधार से अलग से पहिचान लेना, यह विशेष दृष्ट सामर्थ्य अनुमान है।

9. वनों में हरी घास प्रचुर देखकर सुवृष्टि होने का अनुमान करना इसके विपरीत कुवृष्टि का अनमान करना 10. घरों में प्रचुर खाद्य सामग्री देखकर अनुमान करना कि यहां अभी सुभिक्ष है।

11. हवा, बादल या अन्य लक्षण देखकर अनुमान करना कि यहां शीघ्र ही सुवृष्टि होगी। अथवा इसके विपरीत लक्षण दिखे तो अनावृष्टि का अनुमान होना।

उपमान प्रमाण- किसी भी पदार्थ के अज्ञात स्वरूप को जानने के लिये ज्ञात वस्तु की उपमा देकर समझाया जाता है। वह उपमा वाली वस्तु अपेक्षित किसी एक गुण से या अनेक गुणों से समान हो सकती है। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की उपमाएं होती है। यथा- 1. सूर्य जैसे ही दीपक या जुगनू (प्रकाश की अपेक्षा) 2. जैसी गाय होती है वैसा ही गवय (नील गाय) होती है 3. जैसा चितकबरी गाय का बछड़ा है वैसा सफेद गाय का बछड़ा नहीं है 4. जैसा वायस काला है, वैसी पायस-खीर नहीं है।

आगम प्रमाण- लौकिक और लोकोत्तर के भेद से आगम दो प्रकार का है। सुत्तागम, अर्थागम, तदुभयागम की अपेक्षा तीन प्रकार का है। आत्मागम, अनंतरागम और परंपरागम के भेद से भी आगम तीन प्रकार का होता है। महाभारत, रामायण यावत् चारवेद सांगोपांग ये लौकिक आगम है। 12 अंग एवं अंगबाह्य कालिक उत्कालिक शास्त्र लोकोत्तर आगम

है। तीर्थंकरों के अर्थागम आत्मागम है। गणधरों के सूत्र आत्मागम है, अर्थ अनन्तरागम है। गणधर-शिष्यों के सूत्र अनन्तरागम है अर्थ परंपरागम है। शेष शिष्यानुशिष्यों के सूत्र अर्थ दोनों परांपरागम है। प्राचीन काल में धर्म शास्त्र रूप में मान्य अपने अपने आगम साहित्य कंठोपकंठ प्राप्त करके स्मरण रखे जाते थे। सुन कर प्राप्त किए होने से वे श्रुत कहे जाते थे। आगम शब्द भी श्रुत के अर्थ का वाचक है क्योंकि आगच्छतीति आगम-गुरू परंपरा से जो चला आ रहा है, वह आगम है अथवा जीवादि पदार्थों का भलीभांति ज्ञान जिससे हो वह आगम। अथवा वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी आप्त पुरूषों द्वारा प्रणीत श्रुत 'आगम' कहा जाता है। लोक में जो प्रसिद्धि प्राप्त पुरूष है, उनके बनाये गये श्रुत 'लौकिक आगम' है और गुण सम्पन्न प्राप्त पुरूषों द्वारा प्ररूपित श्रुत 'लोकोत्तर आगम' कहा जाता है।

2. नय प्रमाण– भिन्न भिन्न अपेक्षा से एक देश या अनेक देश की विवक्षा से वस्तु तत्त्व का जो बोध किया जाता है या आशय समझाया जाता है वह नय प्रमाण है। यह सात प्रकार का है। विशेष विस्तृत वर्णन चौथे अनुयोग द्वार में आगे देखें।

3. संख्या प्रमाण– आठ भेदों की विवक्षा से संख्या प्रमाण का कथन किया जाता है इसका आगमिक शब्द ''संखप्पमाण'' है। अतः ''संख'' शब्द को अपेक्षित करके भी कथन किया गया है।

1. नाम 2. स्थापना 3. द्रव्य 4. उपमा 5. परिमाण 6. जाणणा 7. गणना 8. भाव संख्या।

1-2. नाम स्थापना– किसी का ''संख'' नाम रख दिया हो वह नाम ''संख'' है अथवा किसी भी रूप में ''यह संख'' है ऐसी स्थापना, कल्पना या आरोप कर दिया हो, वह 'स्थापना संख' है।

3. द्रव्य संख्या (संख्या)– (1) जिसने संख (संख्या) को भलीभांति सीख लिया है परन्तु उसमें अनुप्रेक्षा उपयोग नहीं है वह द्रव्य संख (संख्या) है।

(2) संख्या के ज्ञाता का भूत भविष्य का शरीर द्रव्य संख (संख्या) है।

(3) जो अगले अनंतर भव में संख (बेइंद्रिय) होने वाला है आयु बंध नहीं किया है वह एक भविक संख है।

(4) जिसने ''संख'' होने का आयु बंध कर लिया है वह बद्धायु संख है।

(5) जो ''संख'' भव में जाने के लिए अभिमुख है, आयु समाप्त होने वाला है या वाटेवहता में है। यह अभिमुख संख है।

(6) एक भविक संख की स्थिति-जघन्य अंतमुहुर्त्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व होती है। बद्धायुष्क संख की स्थिति जघन्य अंतमुहुर्त्त उत्कृष्ट करोड़ पूर्व की तृतीय भाग। अभिमुख संख की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतमुहुर्त्त की होती।

4. उपमा– सत् असत् पदार्थों से सत् असत् वस्तु व्यक्ति को उपमित किया जा सकता है। यथा-तीर्थंकरों के वक्षस्थल को कपाट की उपमा देना, आयुष्य को पल्योपम सागरोपम द्वारा बताना। खरविशाण की उपमा, पत्ते एवं किसलय में वार्त्ता करने की कल्पना इत्यादि।

5. परिमाण- श्रुत के पर्यव, अक्षर, पद, गाथा, वेष्टक, श्लोक प्रमाण का निरूपण करना ''परिमाण'' संख का कथन है।

6. जाणणा- शब्द को जानने वाला शाब्दिक, वैसे ही गणितज्ञ, कालज्ञ, वैद्यक, आदि यह 'ज्ञान संख्या' के उदाहरण है।

7. गणणा संख्या- इसके तीन भेद है 1. संख्यात 2. असंख्यात 3. अनन्त। संख्यात के तीन भेद है- 1. जघन्य 2. मध्यम 3. उत्कृष्ट।

असंख्यात के 9 भेद है- (1-3) जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट परित्त असंख्यात (4-6) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट-युक्त असंख्यात (7-9) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात।

अनंत के आठ भेद- (1-3) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट परितानंत (4-6) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट युक्तानंत (7-8) जघन्य और मध्यम अनंतानन्त।

1. संख्यात- जघन्य संख्याता दो का अंक है। मध्य में सभी संख्याएं है अर्थात शीर्ष प्रहेलिका तक तो है ही, आगे भी असत्कल्पना में उपमा द्वारा बताई जाने वाली समस्त संख्या भी मध्यम संख्यात है। अर्थात् जब तक उत्कृष्ट संख्यात की संख्या न आवे वहां तक सब मध्यम संख्यात है। उत्कृष्ट संख्यात की उपमा इस प्रकार है-

उत्कृष्ट संख्याता- उत्कृष्ट संख्याता को चार पल्य की कल्पना करके समझाया जाता है। यथा- 1. अनवस्थित पल्य, 2. शलाका पल्य, 3. प्रतिशलाका पल्य, 4. महाशलाका पल्य। चारों पल्य की लम्बाई चैड़ाई जम्बूद्वीप प्रमाण होती है। ऊंचाई 1008) योजन होती है तीन पल्य स्थित रहते हैं। प्रथम अनवस्थित पल्य की लम्बाई चैड़ाई बदलती है, ऊंचाई वही रहती है।

शलाका पल्य भरना- अनवस्थित पल्य में सरसों के दाने सिखा पर्यन्त भर कर एक एक दाना एक-एक द्वीप समुद्र में डाले। जहां अनवस्थित पल्य खाली हो जावे, उस द्वीप-समुद्र जितना लम्बा चौड़ा अनवस्थित पल्य बनाया जाय और उसे भर कर यहां से आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक सरसों का दाना डाले जहां वह खाली हो जाय, वहां उस द्वीप समुद्र जितना लम्बा चौड़ा अनवस्थित पल्य को बना लेना। पहला उत्तर अनवस्थित पल्य खाली होने की साक्षी रूप एक दाना ''शलाका पल्य'' में डालना। इसी क्रम से अनवस्थित पल्य बनाते रहना और आगे आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना डालते रहना। अनवस्थित पल्य खाली होवे ज्यों ही एक दाना ''शलाका पल्य'' में डालते रहना।

प्रतिशलाका पल्य भरना- जहां शलाका पल्य पूरा भर जाय वहां अनवस्थित पल्य उतना लम्बा चौड़ा बनाकर भर कर रख देना फिर शलाका पल्य को उठाकर आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना डाल कर खाली करना और अन्त में साक्षी रूप एक दाना ''प्रतिशलाका पल्य'' में डालना। ''शलाका पल्य'' को खाली करके रख देना। अब पुनः उस भरे हुए अनवस्थित पल्य को उठाना और आगे के नये द्वीप समुद्र से दाना डालना प्रारंभ करना। खाली होने पर एक दाना ''शलाका पल्य'' में डालना फिर उस द्वीप समुद्र जितना बड़ा अनवस्थित पल्य बनाना, भरना और खाली करना और एक दाना ''शलाका पल्य'' में डालना। यों करते-करते जब शलाका पल्य भर जाएगा तब उसे भी अगले द्वीप समुद्रों में दाना

डाल कर खाली करना और एक दाना फिर ''प्रतिशलाका पल्य'' में डालना। इसी विधि से करते हुए एक समय ''प्रतिशलाका पल्य'' भर जाएगा।

महाशलाका पल्य भरना– संपूर्ण भरे उस ''प्रतिशलाका पल्य'' को उठाकर आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक दाना डालना और खाली होने पर उसे खाली रख देना एक दाना उसके साक्षी रूप ''महाशलाका पल्य'' में डाल देना। इस विधि वे अनवस्थित पल्य से शलाका पल्य भरना, शलाका पल्य से प्रतिशलाका पल्य भरना फिर एक दाना ''महाशलाका पल्य'' में डालना। यों करते-करते एक समय ''महाशलाका पल्य'' भी भर जाएगा। फिर क्रमशः प्रतिशलाका और शलाका पल्य भी अर्थात् तीनों अवस्थित पल्य पूर्ण भर जाय वहां उस द्वीप समुद्र जितना अनवस्थित पल्य को बना कर सरसों के दाने से भर लेना।

चारों पल्य में भरे हुए दाने और अभी तक द्वीप समुद्रों में डाल गये सारे दानों को मिलाने से जो संख्या बनती है उसमें से एक कम करने पर जो संख्या आती है उसे ही उत्कृष्ट संख्याता समझना चाहिए। उत्कृष्ट संख्या का परिमाण संपूर्ण हुआ। प्रचलित भाषा से यह ''डाला-पाला का अधिकार'' पूर्ण हुआ।

असंख्याता का प्रमाण–

1. जघन्य परित्ता-असंख्याता-उत्कृष्ट संख्याता से एक अधिक।

2. मध्यम परित्ता असंख्याता-जघन्य परित्ता असंख्याता एवं उत्कृष्ट परित्ता असंख्याता के बीच की सभी संख्या।

3. उत्कृष्ट परित्ता असंख्याता-जघन्य परित्ता असंख्यात की संख्या को उसी संख्या से और उतने ही बार गुणा करने पर जो संख्या आवे उसमें एक कम करने पर उत्कृष्ट परित्त असंख्यात होता है। यथा-पांच का पांच बार गुणा करके एक घटाने से 3124 संख्या आती है। ($5 \times 5 \times 5 \times 5 \times 5 = 3125-1 = 3124$)।

4. जघन्य युक्ता असंख्याता-उत्कृष्ट परित्ता असंख्याता में एक जोड़ने पर।

5. मध्यम युक्ता असंख्याता-जघन्य और उत्कृष्ट युक्ता असंख्याता के बीच की सभी संख्या

6. उत्कृष्ट युक्ता असंख्याता-जघन्य युक्ता असंख्याता की संख्या को उसी संख्या से उतनी बार गुणा करके एक घटाने पर जो राशि आवे, वह उत्कृष्ट युक्ता असंख्यात है।

7. जघन्य असंख्याता असंख्यात-उत्कृष्ट युक्ता असंख्यात में एक जोड़ने पर।

8. मध्यम असंख्याता असंख्यात-जघन्य और उत्कृष्ट असख्यांता-असंख्यात के बीच की सभी संख्या।

9. उत्कृष्ट असंख्याता असंख्यात-जघन्य असंख्याता असंख्यात की संख्या को उसी संख्या से उतनी ही बार गुणा करके एक घटाने पर जो राशि वह उत्कृष्ट असंख्याता असंख्यात है।

अंनत का प्रमाण–

1. जघन्य परित्ता अनंत– उत्कृष्ट असंख्याता असंख्यात से एक अधिक। इस प्रकार असंख्यात के 9 भेद जो ऊपर बताए गये हैं उसी के अनुसार अंनत्त के भी आठ भेद समझ लेने चाहिए। उनके नाम- 2. मध्यम परित्ता अनन्त

3. उत्कृष्ट परित्ता अनन्त 4. जघन्य युक्ता अनंत 5. मध्यम युक्ता अनंत 6. उत्कृष्ट युक्ता अनन्त 7. जघन्य अनन्ता अनन्त। 8. मध्यम अनंता अनंत अनन्त का नौवां भेद नहीं होता है अर्थात् लोक की अधिकतम द्रव्य गुण या पर्याय की समस्त संख्या आठवें अनन्त में ही समाविष्ट हो जाती है। अतः नौवें भेद की आवश्यकता भी नहीं है।

8. भाव संख- जो जीव बेइंद्रिय संख के भव में है और वहां के आयुष्य आदि कर्म का भोग कर रहे है वे भाव संख है।

उपक्रम द्वार का तीसरा 'प्रमाण द्वार' सम्पूर्ण हुआ।

4. वक्तत्यता- अध्ययन आदि के प्रत्येक अवयव का विवेचन करना, इसमें अपने जिनानुमत सिद्धांत का कथन करना स्वमत वक्तव्यता है एवं अन्य मत के सिद्धांतों का कथन आदि करना परमत वक्तव्यता है।

यह कथन 6 विशेषणों वाला हो सकता है। 1. सामान्य अर्थ व्याख्यान 2. प्रासंगिक विषय का लक्षण आदि युक्त कथन करना 2. कुछ विस्तृत प्ररूपण 4. दृष्टांत द्वारा विषय को स्पष्ट समझाना 5. दृष्टांत को पुनः घटित करना 6. उपसंहार करना अर्थात् अन्त में विवेचन का जो आशय है, उस सिद्धांत सार को पुनः स्थापित करना।

5. अर्थाधिकार- जिस अध्ययन का जो वर्ण्य विषय है उसके अर्थ का कथन करना अर्थाधिकार है यथा-आवश्यक सूत्र के प्रथमादि अध्ययन का अर्थ बताना।

सामायिक- सावद्ययोगों का त्याग करना।

चतुर्विंशतिस्तव-चैबीस तीर्थंकर का गुणग्राम करना। इत्यादि अर्थाधिकार है।

6. समवतार- सभी द्रव्य आत्म भाव की अपेक्षा खुद के अस्तिव में रहे हुए हैं, यह आत्म समवतार है। आधार आश्रय की अपेक्षा पर वस्तु में समवसृत होने से उनका पर समवतार भी होता है। यथा-कुंडे में बोर, घर में स्तम्भ।

100 ग्राम का माप आत्म भाव से स्व में अवतरित है एवं पर समवतार की अपेक्षा 200 ग्राम में भी रहा हुआ है।

जम्बूद्वीप आत्मभाव से स्व में अवतरित है एवं पर समवतार की अपेक्षा तिरछा लोक में रहा हुआ है। ऐसे ही काल के समय आवलिका मुहुर्त वर्ष आदि के लिए समवतार समझ लेना चाहिए। इसी तरह क्रोधादि जीवत्वादि का समवतार समावेश भी समझ लेना चाहिए।

यह छह प्रतिद्वारों युक्त अनुयोग का प्रथम 'उपक्रम द्वार' संपूर्ण हुआ।

2. निक्षेप द्वार- इष्ट वस्तु का निर्णय करने के लिए अप्रासंगिक का निराकरण कर प्रसंग प्राप्त का विधान करना, निक्षेप है। आवश्यक सूत्र के निक्षेप के बाद ''अध्ययन'' के निक्षेप का प्रसंग होने से यहां सर्वप्रथम 1. ''अध्ययन'' का निक्षेप किया जाता है फिर 2. अक्षीण 3. आय, और 4. क्षपणा का निक्षेप है। निक्षेप कम से कम चार द्वारों से किया जाता है अधिक करना ऐच्छिक प्रसंगानुसार होता है।

अध्ययन- नाम, स्थापना एवं द्रव्य अध्ययन का कथन पूर्व में वर्णित आवश्यक आदि के समान है।

भाव– अध्ययन का ज्ञान एवं उसमें उपयुक्त होने पर भाव अध्ययन है। सामायिक आदि अध्ययन में चित्त लगाना। नवीन कर्मों का बंध नहीं करना, पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करना यह भाव क्रियात्मक अध्ययन है।

अक्षीण– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार भेदों से इसका निक्षेप पूर्ववत् समझना चाहिए।

भाव अक्षीण– जो ज्ञाता उपयोग युक्त हो वह भाव अक्षीण है और जिस तरह दीपक दूसरे दीपक को जलाते हुए भी खुद क्षीण नहीं होता है, वैसे ही आचार्य आदि दूसरों को ज्ञानादि देते हुए भी खुद के ज्ञान में कम नहीं होते हैं, वे भाव अक्षीण है।

आय– इसका भी चार भेदों से निक्षेप है। नाम स्थापना पूर्ववत् है। पशु-पक्षी, धन-सम्पत्ति, आभूषण-अलंकार युक्त आश्रित व्यक्ति लौकिक द्रव्य आय है। शिष्य उपकरण भी द्रव्य आय है।

भाव आय– ज्ञान, श्रुत ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की प्राप्ति एवं अभिवृद्धि।

क्षपणा– चार द्वारों से इसका निक्षेप होता है। कर्मों का विशेष विशेषतर क्षय करना भाव क्षपणा है। कषायों का क्षय करना भी प्रशस्त भाव क्षपणा है और ज्ञानादि को घटाना अप्रशस्त भाव क्षपणा है।

सामायिक अध्ययन का प्रसंग होने से अब सामायिक का निक्षेप किया जाता है।

सामायिक निक्षेप प्ररूपणा–

प्रथम अध्ययन का नाम सामायिक है, इसलिए नाम निष्पन्न निक्षेप के अधिकार में सामायिक का प्ररूपण है।

नाम स्थापना एवं द्रव्य तीन निक्षेप का वर्णन पूर्ववत् है।

भाव निक्षेप–

1. स्वरूप– 1. जिसकी आत्मा तप संयम नियम में लीन हो 2. जो त्रस स्थावर सभी प्रणियों के प्रति समभाव धारण करे अर्थात् सदा उनका संरक्षण करे किन्तु हनन न करे। उसी को भाव सामायिक होती है, ऐसा सर्वज्ञों का कथन है।

2. श्रमण– सामायिक (आजीवन) वाला श्रमण होता है। अतः सामायिकवान श्रमण का कथन किया जाता है जो अपने समान ही दूसरों को भी दुख अप्रिय है, ऐसा जानकर, अनुभव करके, किसीभी जीव को दुख नहीं पहुंचावे, दुःख देने वालों का अनुमोदन भी न करें, किसी भी प्राणी के प्रति रोग-द्वेष भाव नहीं रखे, सभी पर ''सम'' मन रखे, वह 'श्रमण' कहा जाता है।

3. उपमायें– सामायिकवान जो श्रमण होता है, वह महान् आत्मा होता है, उसकी महानता प्रकट करने के लिए निम्न उपमायें हैं-

1. सर्पवत् पर-गृह में रहने वाला।

2. पर्वत सम परीषह उपसर्गों को सहने में अडोल।

3. अग्नि सम तेजवान अथवा ज्ञानादि से अतृप्त।

4. समुद्र के समान मर्यादा में रहने वाला, गंभीर, गुण रत्नों से परिपूर्ण।

5. आकाश के समान निरालंबन-किसी के आश्रय का प्रतिबंध नहीं है जिसे।

6. वृक्ष के समान काटने या पूजने में समपरिणाम, अर्थात् निंदाप्रशंसा, मान-अपमान में समवृत्ति वाले।

7. भ्रमर के समान अनेक घरों से आहार प्राप्त करने वाला।

8. मृग के समान सदा संसार भ्रमण रूप कर्मबंध से भयभीत।

9. पृथ्वी सम सभी दुख कष्ट झेलने में समर्थ, सक्षम।

10. जल कमलवत् भोगों से निर्लिप्त।

11. सूर्य के समान जगत प्राणियों को प्रतिपूर्ण ज्ञान प्रकाश देने वाला।

12. पवन-हवा के समान अप्रतिहत बेरोकटोक मोक्ष मार्ग में गति करने वाला।

इस प्रकार सु मन वाला और पाप मन से रहित, सभी परिस्थितियों में सदा सम रहने वलाा, विषम नहीं बनने वाला अर्थात् सदा गंभीर, शांत और प्रसन्न मन रहने वाला 'श्रमण' होता है, वही 'भाव सामायिकवान' होता है। यह दूसरा 'निक्षेप द्वार' संपूर्ण हुआ।

चार निक्षेपों का रहस्य एवं व्यवहार-

इस निक्षेप द्वार में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार द्वारों से वस्तु का कथन किया जाता है। फिर भी नाम स्थापना केवल ज्ञेय है, उससे वस्तु की पूर्ति नहीं होती है। तीसरे द्रव्य निक्षेप में उस वस्तु का कुछ अंश में अस्तित्व होता है। किन्तु उससे भी उस वस्तु की पूर्ण प्रयोजनासिद्धि नहीं होती है। भाव निक्षेप में कहा गया पदार्थ वास्तव में परिपूर्ण अस्तित्व वाला होता है, उसी से उस पदार्थ संबंधी प्रयोजन की सिद्धि होती है। यथा- 1. किसी का नाम घेवर या रोटी रख दिया है तो उससे क्षुधा पूर्ति आदि नहीं होती- 2. किसी वस्तु में घेवर या रोटी जैसा आकार कल्पित कर उसे ''यह घेवर है'' या ''यह रोटी है'' ऐसी कल्पना-स्थापना करदी तो भी क्षुधा शांति आदि उससे भी संभव नहीं है। 3. जो रोटी या घेवर बनने वाला गेंहू का आटा या मैदा पड़ा है अथवा जो एक रोटी या घेवर एक किलो पानी में घोल कर विनष्ट कर दिये गये हैं उस आटे से और पानी के घोल से भी रोटी या घेवर जैसी तृप्ति नहीं हो सकती है 4. शुद्ध परिपूर्ण बनी हुई रोटी एवं घेवर ही वास्वविक रोटी एवं घेवर है। उसी से क्षुधा शांति एवं तृप्ति संभव है। इसलिये चारों निक्षेप में कहे गये सभी पदार्थ को एक सरीखा करने की नासमझ नहीं करके, भाव निक्षेप का महत्व अलग ही समझना चाहिए एवं द्रव्य निक्षेप का किंचित अंश में महत्व होता है और नाम स्थापना निक्षेप प्रायः आरोपित कल्पित ही होते हैं। उन्हें भाव निक्षेप के तुल्य नही करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति या महान् आत्मा का फोटू, तस्वीर, मूर्ति आदि में उस गुणवान व्यक्ति के

योग्य वस्त्राभूषण, स्नान, श्रृंगार, आहार एवं सत्कार सम्मान आदि का व्यवहार करना निक्षेप की अवहेलना एवं दुरूपयोग करना ही समझना चाहिए तथा ऐसा करने की प्रेरणा या प्ररूपण करना भी सूत्र विरूद्ध प्ररूपण करना समझना चाहिए।

3. अनुगम द्वार-

पदच्छेद आदि करके सूत्र की सामान्य व्याख्या करना एवं विस्तार से सूत्र के आशय को सरल एवं स्पष्ट करना ''अनुगम'' है।

1. अस्खलित शुद्धाक्षर युक्त उच्चारण कराना 2. सुबंत, तिडंत पदों का ज्ञान कराना 3. उन शब्दों के अर्थ बताना 4. समास ज्ञान, संधि-ज्ञान द्वारा पद विग्रह करना 5. शंका खड़ी करके अर्थ समझाना 6. विविध युक्तियों द्वारा सूत्रोक्त युक्ति या अर्थ को सिद्ध कर घटित करके समझाना।

मेधावी किन्हीं शिष्यों को अस्खलित, अमिलित्ति, अव्यत्याम्रेडित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, कंठोष्ठ विप्रमुक्त तथा गुरूवाचनोपगत रूप से सूत्र के उच्चारण श्रवण करने मात्र से अर्थाधिकार ज्ञात हो जाते है। और किन्हीं को न हो सके तो उपरोक्त 6 युक्तियों से सरल सुगम कर समझाया जाता है। अन्य अनेक द्वारों से विचारणा करके भी उस विषय की विस्तृत जानकारी हासिल की जाती है। उसके लिये अर्थात् प्रथम अध्ययन रूप सामायिक के बहुमुखी तत्त्व ज्ञान वृद्धि के लिए 26 द्वारों से उसका वर्णन किया जाता है।

सामायिक का अनुगम 26 द्वारों से-

1. उद्देश- सामान्य कथन यथा-यह आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन है।

2. समद्देश- नामोल्लेख-यथा-इसका नाम ''सामायिक'' है।

3. निर्गम- सामायिक की अर्थोत्पत्ति तीर्थंकरों से, सूत्रोत्पत्ति गणधरों से।

4. क्षेत्र- समय क्षेत्र में या पावापुरी में इसका प्रारंभ।

5. काल- चतुर्थारक या वैशाख सुदी ग्यारस।

6. पुरूष- तीर्थंकर, वर्तमान में श्रमण भगवान महावीर।

7. कारण- गौतमादि ने संयत भाव की सिद्धि के लिए श्रवण किया।

8. प्रत्यय- केवल ज्ञान होने से तीर्थंकर भगवान ने प्ररूपण किया।

9. लक्षण- ''सम्यक्त्व साामयिक'' का लक्षण-श्रद्धा है, ''श्रुत सामायिक का लक्षण तत्त्व ज्ञान है, ''चारित्र सामायिक'' का लक्षण सर्व सावद्यविरति है।

10. नय- सात नय से सामायिक का स्वरूप समझना।

11. समवतार- कौन भी सामायिक किस नय में है।

12. अनुमत- मोक्षमार्ग रूप सामायिक कौन सी है नयों की दृष्टि में।

13. क्या है ?- किन नयों की दृष्टि में सामायिक जीव का गुण है।

14. कितने प्रकार- दर्शन, श्रुत एवं चारित्र सामायिक ये तीन भेद करके भेदानुभेद करना।

15. किसको- समस्त प्राणियों पर समभाव रखने वाले तप संयत वान को सामायिक होती है।

16. कहां- क्षेत्र, दिशा, काल, गति, भव्य, संज्ञी, श्वासोश्वास, दृष्टि और आहारक के आश्रय से सामायिक का कथन करना।

17. किसमें- सम्यक्त्व सामायिक सब द्रव्य पर्याय में, श्रुत और चारित्र सामायिक सब द्रव्यों में होती है सब पर्यायों में नहीं। देश विरत सामायिक सर्व द्रव्यों में भी नहीं होती और सर्व पर्यायों में भी नहीं होती।

18. कैसे- मनुष्यत्व, आर्य क्षेत्र, आरोग्य, आयुष्य, बुद्धि, धर्म-श्रमण, श्रद्धा आदि को प्राप्त होने पर सामायिक प्राप्त होती है।

19. स्थिति- जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट श्रुत और सम्यक्त्व सामायिक साधिक 66 सागरोपम। चारित्र सामायिक देशोन क्रोड पूर्व।

20. कितने- श्रुत और सम्यक्त्व सामायिक वाले उत्कृष्ट असंख्य होते हैं। देशविरत सामायिक वाले भी असंख्य होते हैं। चारित्र-सर्वविरत सामायिक वाले अनेक हजार करोड़ होते हैं।

21. अंतर- अनेक जीवों की अपेक्षा अंतर नहीं है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त, उत्कृष्ट अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल का अन्तर होता है।

22. अविरह- श्रुत और सम्यक्त्व सामायिक वाले आवलिका के असंख्यातवें भाग तक निरन्तर हो सकते है।

23. भव- देशविरति और सर्वविरति सामायिक लगातार 8 भवों में आ सकती है।

24. आकर्ष- सर्वविरति सामायिक अनेक सौ बार और अन्य सामायिक अनेक हजार बार एक भव में आ सकती है। अनेक भवों की अपेक्षा सर्वविरति सामायिक अनेक हजार बार और शेष सभी सामायिक असंख्य हजारों बार आती है।

25. स्पर्श- सम्यक्त्व और चारित्र सामायिक वाले समस्त लोक का स्पर्श करे (केवली समुद्घात की अपेक्षा) अन्य सामायिक वाले सात छः पांच चार तीन दो राजू-प्रमाण लोक का स्पर्श करे।

26. निरूक्ति- पर्याय वाची शब्द-सम्यग्दृष्टि, अमोह, शोधि, सद्भाव, दर्शन, बोधि, अविपर्यय, सुदृष्टि इत्यादि सामायिक के एकार्थक शब्द है।

अनुयोग का चौथा नय द्वार-

वस्तु को विभिन्न दृष्टियों में समझने के लिये या उसके तह तक प्रवेश करने के लिये उस वस्तु की ''नय'' द्वारा विचारणा की जाती है। अपेक्षा से ''नय'' के विविध प्रकार होते हैं अथवा तो जितने वचन मार्ग है-जितने आशयों से वस्तु का कथन किया जा सकता है उतने ही नय होते हैं। अर्थात् प्रत्येक वस्तु में अनंत धर्म (गुण) रहे हुए होते है, उनमें से एक समय मे अपेक्षित किसी एक धर्म का कथन किया जाता है। उस एक धर्म के कहने के उस अपेक्षा वचन को ''नय'' कहते हैं। अतः अनन्त धर्मात्मक वस्तुओं का अपेक्षा नयों की संख्या भी अनन्त है। फिर भी किसी वस्तु को सुगमता से समझने के लिए उन अनेक भेदों को संग्रहित कर सीमित भेदों में समाविष्ट करके कथन करना भी आवश्यक होता है। अतः उक्त अनेकों भेदों का समावेश सात नयों में किया गया है। इसके अतिरिक्त संक्षिप्त अपेक्षा में दो-दो भेद भी किये जाते हैं। यथा- द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय अथवा निश्चय नय और व्यवहार नय अथवा ज्ञान नय एवं क्रिया नय। अति संक्षेप विधि से उन सात भेदों को इन दो-दो में समाविष्ट करके भी कथन कर दिया जाता है। सूत्रोक्त सात नय इस प्रकार है- 1. नैगम नय 2. संग्रह नय 3. व्यवहार नय 4. ऋजु सूत्र नय 5. शब्द नय 6. समभिरूढ़ नय 8. एवंभूत नय।

(1) नैगमनय- इस नय में वस्तु के सामान्य और विशेष उभय धर्मों का अलग-अलग अस्तित्व स्वीकार किया जाता है अर्थात् किसी वस्तु में अंश मात्र भी अपना वाच्य गुण हो तो भी उसे सत्य रूप में स्वीकार किया जाता हैं। भूत भविष्य वर्तमान काल को भी अलग-अलग स्वीकार किया जाता हैं। अर्थात् जो हो गया है, हो रहा है, होने वाला है उसे भी सत्य रूप में यह नय स्वीकार करता हैं। न+एक+गम = नैगम-जिसके विचार करने का केवल एक ही प्रकार नहीं है अनेकों प्रकारों से वस्तु के धर्मों का अलग-अलग अस्तित्व स्वीकार करने वाला यह नय हैं। तीर्थंकर आदि महापुरूषों का जो जन्म दिन स्वीकार कर मनाया जाता है, वह भी नैगम नय से ही स्वीकार किया जाता हैं। यह नय चारों निक्षेपों को स्वीकार करता हैं।

(2) संग्रह नय- इस नय में वस्तु के सामान्य धर्म को स्वीकार किया जाता है। अलग अलग भेदों से वस्तु को भिन्न-भिन्न स्वीकार नहीं करके सामान्य धर्म से, जाति वाचक रूप से वस्तु को संग्रह करके उसे एक वस्तु रूप स्वीकार करके कथन किया जाता हैं। उनकी विभिन्नताओं एवं विशेषताओं से अलग-अलग स्वीकार नहीं करते हुए यह नय कथन करता हैं। अर्थात् इस नय के कथन में सामान्य धर्म के विवक्षा की प्रमुखता रहती है, विशेष धर्म गौण होता हैं। यह नय भेद प्रभेदों को गौण करता रहता है और सामान्य सामान्य को ग्रहण करता हैं। ऐसा करने में यह क्रमशः विशेष को भी ग्रहण तो कर लेता है, किन्तु उस विशेष के साथ जो भेद प्रभेद रूप अन्य विशेष धर्म है, उन्हें गौण कर के अपने अपेक्षित विशेष धर्म को सामान्य धर्म रूप में स्वीकार कर उसी में अनेक वस्तुओं को संग्रहित कर लेता हैं। यथा-''घड़ा'' द्रव्य का कथन करके सभी घड़ों को इसी में स्वीकार कर लेता, फिर भेद-प्रभेद और अलग-अलग वस्तु को स्वीकार नहीं करता हैं। चाहे छोटा बड़ा घड़ा हो या उनमें रंग भेद हो अथवा गुण भेद हो और चाहे मूल्य भेद हो। और जब ''बर्तन'' द्रव्य से वस्तु का बोध कराना होगा तो सभी तरह के बर्तनों को एक में समाविष्ट करके ही कहेगा अलग-अलग जाति या अलग अलग पदार्थो की भिन्नता की अपेक्षा नहीं रखेगा। इस नय वाला विशेष का ग्राहक न होते हुए भी तीन काल की अवस्था को एवं चारों निक्षेप को स्वीकार करता हैं।

(3) व्यवहार नय- व्यवहार में उपयुक्त जो भी वस्तु का विशेष विशेषतर गुण-धर्म, है, उसे स्वीकार करने वाला यह व्यवहार नय है: यह वस्तु के सामान्य सामान्यतर धर्म की अपेक्षा नहीं रखता हैं। अपने लक्षित व्यवहारोपयुक्त विशेष धर्म को स्वीकार करने की अपेक्षा रखता हैं। यह तीन ही काल की बात को एवं चारों निक्षेपों को स्वीकार करता हैं। संग्रह नय वाला जीवों को जीव शब्द से कहेगा तो यह नय उन्हें नारकी, देवता आदि विशेष भेदों से कहेगा।

(4) ऋजु सूत्र नय- यह भूत भविष्य को स्वीकार न करके केवल वर्त्तमान गुण धर्म को स्वीकार करता है। अर्थात् वर्त्तमान में जो पदार्थ का स्वरूप, अवस्था या गुण है, उसे यह नय मानेगा और कहेगा। शेष अवस्था की अपेक्षा नहीं करेगा। यह केवल भाव निक्षेप ही स्वीकार करता हैं।

(5) शब्द नय- काल कारक लिंग वचन संख्या पुरूष उपसर्ग आदि से शब्दों का जो भी अर्थ प्रसिद्ध हो उसे स्वीकार करने वाला नय शब्द नय हैं। एक पदार्थ को कहने वाले पर्यायवाची शब्दों को एकार्थक एक रूप में स्वीकार कर लेता हैं। अर्थात् शब्दों को व्युत्पत्ति अर्थ से, रूढ प्रचलन से और पर्याय वाची रूप में भी स्वीकार करता है।

(6) समभिरूढ़ नय- पर्यायवाची शब्दों में निरूक्ति भेद से जो भिन्न अर्थ होता हैं। उन्हें अलग-अलग स्वीकार करने वाला यह नय हैं। शब्द नय तो शब्दों की अपेक्षा रखता है अर्थात् सभी शब्दों को और उनके प्रचलन को मानता है, किन्तु यह नय उन शब्दों के अर्थ की अपेक्षा रखता हैं। पर्याय शब्दों के वाच्यार्थ वाले पदार्थें को भिन्न-भिन्न मानता हैं। यह नय विशेष को स्वीकार करता हैं। सामान्य को नहीं मानता । वर्तमान काल को मानता है एवं एक भाव निक्षेप को ही स्वीकार करता हैं।

(7) एवंभूत नय- अन्य किसी भी अपेक्षा या शब्द अथवा शब्दार्थ आदि को स्वीकार नहीं करके उस अर्थ में उपयुक्त अवस्था में ही उस वस्तु को स्वीकार करता है, अन्य अवस्था में उस वस्तु को यह नय स्वीकार नहीं करता हैं। समभिरूढ़ नय तो अर्थ घटित होने से उस वस्तु को अलग स्वीकार कर लेता है किन्तु यह नय तो अर्थ की जो क्रिया है उसमें वर्तमान वस्तु को ही वह वस्तु स्वीकार करता है अर्थात क्रियान्वित रूप में ही शब्द और वाच्यार्थ वाली वस्तु को स्वीकार करता है। इस प्रकार यह नय शब्द, अर्थ और क्रिया तीनों को देखता हैं। वस्तु का जो नाम और अर्थ है वैसी ही क्रिया एवं परिणाम की धारा हो, वस्तु अपने गुण धर्म में पूर्ण हो और प्रत्यक्ष देखने समझने में आवे, उसे ही वस्तु रूप में स्वीकार करना एवंभूत नय हैं। एक अंश भी कम हो तो यह नय उसे स्वीकार नहीं करता हैं। इस प्रकार यह नय सामान्य को नहीं स्वीकारता है विशेष को स्वीकार करता हैं। वर्तमान काल को एवं भाव-निक्षेप को स्वीकार करता है ।

दृष्टांतों द्वारा पुनः नय स्वरूप विचारणा-

(1) नैगमनय- इस नय में वस्तु स्वरूप को समझने में या कहने में उसके सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म दोनों की प्रधानता को स्वीकार किया जाता है। भूत-भविष्य, वर्तमान सभी अवस्था को प्रधानता देकर स्वीकार कर लिया जाता हैं। वस्तु के विशाल रूप से भी उस वस्तु को स्वीकार किया जाता है एवं वस्तु के एक अंश से भी उस वस्तु को स्वीकार किया जाता हैं। इस नय के अपेक्षा स्वरूप को समझने के लिये तीन दृष्टांत दिये जाते है यथा-1.निवास का 2.‘‘प्रस्थक‘‘ नाम के काष्ठ पात्र का 3.गांव का ।

1. एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से पूछा- आप कहां रहते है ? तो इसके उत्तर में वह कहें कि मैं लोक में रहता हूं या तिर्छा लोक में रहता हूं या जंबूद्वीप, भरतक्षेत्र, हिन्दुस्तान, राजस्थान, जयपुर, चैड़ा रास्ता, लाल भवन, दूसरी मंजिल इत्यादि कोई भी उत्तर दे, नैगम नय उन सभी (अनेकों) अपेक्षाओं को सत्य या प्रमुखता से स्वीकार करता हैं।

2. काष्ठ पात्र बनाने हेतु लकड़ी काटने जंगल में जाते समय भी किसी के पूछने पर वह व्यक्ति कहे कि प्रस्थक (काष्ठ पात्र) लाने जा रहा हूं, वृक्ष काटते समय, वापिस आते समय, छीलते समय, सुधारते समय एवं पात्र बनाते समय, इस प्रकार सभी अवस्थाओं में उसका प्रस्थक बनाने का कहना नैगम नय सत्य स्वीकार करता हैं।

3. जयपुर जाने वाला व्यक्ति जयपुर की सीमा में प्रवेश करने पर कहे जयपुर आ गया, नगर के बगीचे आदि आने पर कहे जयपुर आ गया, उपनगर में पहुंचने पर कहे जयपुर आ गया, शहर में पहंचने पर, चौड़ा रास्ता में पहुंचने पर एवं लाल भवन में बैठने पर साथी से कहे हम जयपुर में बैठे हैं इन सभी अवस्थाओं के वाक्य प्रयोगों को नैगम नय बिना किसी संकोच के सत्य स्वीकार कर लेता हैं। यह नैगम नय की अपेक्षा हैं। इस प्रकार द्रव्य पर्याय सामान्य विशेष और तीनों काल को सत्य स्वीकार करने वाला नैगम नय है।

संग्रह नय- नैगम नय सामान्य और विशेष दोनों की उपयोगिता को स्वीकार करता हैं। संग्रह नय केवल सामान्य को ही स्वीकार करता हैं। विशेष को गौण करता हैं। सामान्य धर्म से अनेक वस्तुओं को एक में ही स्वीकार करने वाला यह संग्रह नय है। यथा- ''भोजन लावों'' इस कथन से रोटी, साग, मिठाई, दही, नमकीन आदि सभी पदार्थ को ग्रहण कर उनका आदेश कर देना यह संग्रह नय वचन हैं। इसी प्रकार यहां वनस्पतियां है, ऐसा कहने से हरी घास, पौधे, लता, आम्रवृक्ष आदि अनेकों का समावेश युक्त कथन संग्रह नय की अपेक्षा है। उसी प्रकार, द्रव्य से 6 द्रव्यों का, जीव से चार गति के जीवों का कथन संग्रह नय की अपेक्षा हैं। इस प्रकार यह नय एक शब्द से अनेकों पदार्थो का संग्रह करता हैं। किन्तु विशेष विशेषतर भेद-प्रभेदों की अपेक्षा नहीं रखता हैं।

व्यवहार नय- सामान्य धर्मों को छोड़ते हुए विशेष धर्मों को ग्रहण कर वस्तु का कथन करने वाला एवं भेद-प्रभेद करके वस्तु का कथन करने वाला यह व्यवहार नय हैं। यथा-द्रव्य को 6 भेद से, उसमें भी जीव द्रव्य को चार गति से, फिर जातिसे, काया से, फिर देश से, कथन करता हैं। जैसे संग्रह नय मनुष्य, जानवर आदि को या उनके समूह को ये जीव ऐसा सामान्य धर्म की प्रमुखता से कथन करेगा तो व्यवहार नय यह मनुष्य भारत वर्ष में, राजस्थान प्रांत के जयपुर नगर का ब्राह्मण जाति का तीस-वर्षीय जवान पुरूष है ऐसा कहेगा। इस तरह विशेष धर्म के कथन एवं आशय को व्यवहार नय प्रमुख करता हैं।

1. नैगम नय सामान्य विशेष दोनों को उपयोगी स्वीकार करता हैं।

2. संग्रह नय सामान्य को उपयोगी स्वीकार करता हैं।

3. व्यवहार नय विशेष (व्यवहारिक) अवस्था स्वीकार कर कथन करता है।

इन तीनों नयो को द्रव्यार्थिक नय कहते है ये तीनों काल को स्वीकार करते हैं।

ऋजु सूत्र नय– केवल वर्त्तमान काल को प्रमुखता देकर स्वीकार करने वाला यह ऋजु सूत्र नय हैं। यह वर्त्तमान की ही उपयोगिता स्वीकार करता हैं। भूत और भावी के धर्मों अवस्थाओं की अपेक्षा नहीं रखता है। कोई व्यक्ति पहले दुखी था, फिर भविष्य में भी दुखी होगा, किन्तु यदि वर्तमान में सुखी है और सुख का अनुभव कर रहा है तो पूर्व और भावी दुख का उसे अभी क्या वास्ता। अतः उस व्यक्ति को सुखी कहा जायेगा। कोई पहले राजा था, अभी भिखारी बन गया है, फिर कभी राजा बन जायेगा, तो भी उसे अभी तो भिखारी पन का ही अनुभव करना हैं, अतः भूत और राजापन से उसे अभी सुख कुछ भी नहीं है, न राजापन है, अतः वह भिखारी कहा जायेगा। पहले कोई मुनि बना, अभी गृहस्थ बना हुआ है, फिर मुनि बन जायेगा, तो भी वर्तमान में वह गृहस्थ रूप है, पूर्व और भावी मुनिपन का उसे कोई आत्मानन्द नहीं है, अतः यह नय वर्तमान अवस्था से वस्तु स्वरूप को देखता, जानता और कथन करता हैं।

शब्द नय– शब्द से ही पदार्थो का ज्ञान होता है इसलिये यह नय पदार्थों के किसी भी प्रकार से बोध कराने वाले शब्दों को स्वीकार करता हैं। वह शब्द जिस पदार्थ को कहता है, उसे यह नय प्रधानता देकर स्वीकार करता है। यह नय वर्त्तमान को ही स्वीकार करता हैं। यथा-''जिन'' शब्द से जो वर्तमान में राग द्वेष विजेता है, उसे ग्रहण करता हैं। किन्तु भविष्य में कोई जिन होगा उस द्रव्य ''जिन'' को स्वीकार नहीं करता हैं। वैसे किसी का नाम जिन है, उस नाम जिन को भी यह स्वीकार नहीं करता हैं। प्रतिमा या चित्र पर कोई जिन की स्थापना कर दी है, वह स्थापना जिन भी यह नय स्वीकार नहीं करता हैं। इस प्रकार यह नय केवल भाव निक्षेप को स्वीकार करता हे नाम, स्थापना एवं द्रव्य निक्षेप को यह नय स्वीकार नहीं करता हैं। जो शब्द जिस वस्तु के कथन करने की अर्थ योग्यता या बोधकता रखता हैं। उसके लिए उस शब्द का प्रयोग करना शब्द नय हैं। शब्द-यौगिक, रूढ़ एवं योगिक-रूढ़ (मिश्र) भी होते हैं। वे जिस जिस अर्थ के बोधक होते है, उन्हें यह नय उपयोगी स्वीकार करता हैं। यथा- 1.''पाचक'' यह यौगिक निरूक्त शब्द है इसका अर्थ रसोईया रसोई करने वाला होता हैं। 2. ''गौ'' यह रूढ़ शब्द है इसका अर्थ तो है-जाने की क्रिया करने वाला। किन्तु बैल या गाय जाति के लिये यह रूढ़ है, अतः शब्द नय इसे भी स्वीकार करता हैं। 3. ''पंकज'' यौगिक भी है रूढ़ भी हैं। इसका अर्थ है कीचड़ में उत्पन्न होने वाला ''कमल'' किन्तु कीचड़ में तो काई, मेढ़क, सेवाल आदि कई चीजें उत्पन्न होती है, उन्हें नहीं समझ कर केवल ''कमल'' को ही समझा जाता हैं। अतः यह ''पंकज'' यौगिक रूढ़ शब्द है, इससे जो कमल का बोध माना जाता हैं। शब्द नय इसे भी स्वीकार करता हैं। इस प्रकार विभिन्न तरह से अर्थ के बोधक सभी शब्दों को उपयोगी स्वीकार करने वाला यह ''शब्द नय'' हैं।

समभिरूढ़ नय– यह नय भी एक प्रकार का शब्द नय ही है। इसका स्वरूप भी संपूर्ण शब्द नय के समान समझना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि यह रूढ़ शब्द आदि को पदार्थ का अर्थ बोधक स्वीकार नहीं करता है, केवल यौगिक, निरूक्त शब्द जिस अर्थ को कहते हैं उस पदार्थ को ही यह नय स्वीकार करता हैं। अर्थात् रूढ़ शब्द को भी स्वीकार नहीं करता है, साथ ही जो पर्यायवाची शब्द है उन्हें भी एक रूप में स्वीकार नहीं करके भिन्न भिन्न रूप में स्वीकार करता है अर्थात् उन पर्यायवाची शब्दों का जो निरूक्त अर्थ होता है उस शब्द से उसी पदार्थ को स्वीकार करता है और दूसरे पर्यायवाची शब्द के वाच्य पदार्थ से उसे अलग स्वीकार करता है। यथा-जिन, केवली, तीर्थंकर, ये जिनेश्वर के ही बोधक शब्द है एवं एकार्थक रूप में भी है तो भी यह नय इन्हें अलग-अलग अर्थ से अलग-अलग ही स्वीकार करेगा। इस प्रकार यह नय निरूक्त अर्थ की प्रधानता से ही शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये करता हैं। एवं ऐसा प्रयोग करना उपयोगी मानता

हैं। उन पर्याय शब्द को अलग अलग पदार्थ का बोधक मानता है जिन, अर्हत् तीर्थंकर, केवली ये भिन्न शब्द भिन्न भिन्न गुण वाले पदार्थ के बोधक हैं।

एवंभूत नय- जिस शब्द का जो अर्थ है और वह अर्थ जिस पदार्थ का बोधक है वह पदार्थ उस समय उसी अर्थ का अनुभव करता हो, उसी अर्थ की क्रियाशील अवस्था में हो, तभी उसके लिए उस शब्द का प्रयोग करना, यह इस एंवभूत नय का आशय हैं। अर्थात् जिस दिन जिस समय तीर्थं की स्थापना करते हों उस समय तीर्थंकर शब्द का प्रयोग करना । जिस समय सुरासुर से पूजा की जाती हो उस समय अर्हत कहना, कलम से जब लिखने का कार्य किया जा रहा हो तभी उसके लिए ''लेखनी'' शब्द का प्रयोग करना । समभिरूढ़ नय निरूक्त अर्थ वाले शब्द को स्वीकार करता है और एंवभूत नय भी उसे ही स्वीकार करता है किन्तु उस भाव या क्रिया में परिणत वस्तु के लिये ही उस शब्द का प्रयोग करना स्वीकार करता हैं यह इसकी विशेषता हैं। इस प्रकार यह नय केवल शुद्व भाव निक्षेप को ही स्वीकार करने का कथन करता हैं। ये सातों नय अपनी-अपनी अपेक्षा से वचन प्रयोग एवं व्यवहार करते है, उस अपेक्षा से ही ये नय कहलाते हैं। दूसरी अपेक्षा का स्पर्श नहीं करते है,

उपेक्षा रखते है इसलिये भी नय कहलाते हैं। यदि दूसरी अपेक्षा का खडंन, विरोध करते है तो ये नय वचन नय की सीमा का उल्लंघन करके ''दुर्नय बन जाते है अर्थात् इनकी नय रूपता कुनयता में बदल जाती हैं। ऐसे कुनयों के कारण ही अनेक विवाद एवं मत मतांतर या निन्हव आदि पैदा होते हैं। नय में क्लेश उत्पादकता नहीं हैं। दुर्नय में क्लेशोत्पादकता हैं। यथा- दो व्यक्तियों ने एक ढाल देखी, दोनों अलग अलग दिशा में दूर खड़े थे। ढ़ाल एक तरफ स्वर्ण रस युक्त थी दूसरी तरफ चांदी के रस से युक्त बनाई हुई थी। यदि वे दोनों व्यक्ति नय से बोले तो एक व्यक्ति ''ढाल स्वर्ण मय है'' ऐसा कहेगा। दूसरा उसे ''चांदी की कह देगा।'' दोनों अपने कथन में शांत रहे तो नय हैं। एक दूसरे की हीलना निन्दा करे कि अरे तू पागल हो गया है क्या दिखती नहीं हैं।साफ पीली सोने की दीख रही हैं दूसरा कहे तेरी आंखें में पीलिया छा गया है क्या ? स्पष्ट ही स्वच्छ सफेद दीख रही है, तो यह दुर्नय हैं। दुर्नय में झगड़ा हैं। यहां यदि स्याद्वाद अनेकांतवाद आ जाय तो कहेगा कि सफेद भी है पीली भी है, सोना रूप भी है चांदी रूप भी है, तो शांति हो जाती हैं। इस प्रकार नय एवं दुर्नय को जानकर या तो नय तक सीमित रहना चाहिये या फिर सभी अपेक्षा से चिंतन कर अनेकांतवाद में आ जाना चाहिए। किन्तु एकांतवाद एवं दुर्नय का आश्रय कभी भी नहीं लेना चाहिए। दुर्नय-एकांतवाद से मिथ्यात्व क्लेश एवं दुःख की प्राप्ति होती है एवं नयवाद अनेकांतवाद से शांति आनन्द की प्राप्ति होती हैं।

एक व्यक्ति किसी का पिता है तो पुत्र की अपेक्षा उसे पिता कहना नय हैं। किन्तु यह पिता ही हैं। किसी का भी भाई , पुत्र, मामा आदि है ही नहीं, ऐसा कथन करने वाला दुर्नय हो जाता हैं। मोक्ष मार्ग में श्रद्वा का स्थान अति महत्वशील बताना नय है। किन्तु अन्य ज्ञान या क्रिया का खडंन निषेध कर देना दुर्नय हो जाता हैं। इसी प्रकार कभी ज्ञान का महत्व बताते हुए कथन विस्तार करना भी नय है, किन्तु क्रिया का निषेध नहीं होना चाहिए । क्रिया का निषेध यदि ज्ञान के महत्व कथन के साथ आ जाता है, तो वह भी दुर्नय हो जाता है अथवा कभी क्रिया का महात्म्य बताते हुए विस्तृत कथन किया जा सकता किन्तु ज्ञान का निषेध या उसे निरर्थक बताने रूप कथन होता हो तो वह भी दुर्नय हो जाता हैं। अतः अपनी अपेक्षित किसी

भी अपेक्षा से कथन करना नय हैं। दूसरी अपेक्षाओं को विषय भूत नहीं बनाना भी नय है किन्तु दूसरी अपेक्षा को लेकर विवाद कर उन सभी अपेक्षाओं या किसी अपेक्षा को गलत निरर्थक कह देना दुर्नय हैं।

स्याद्वाद-अनेकांतवाद जैन धर्म की समन्वय मूलकता का बोधक है। वह नयों का समन्वय करता हैं। प्रत्येक विषय या वस्तु को अनेक धर्मों से, अनेक अपेक्षाओं से, देखकर उसका चिन्तन करना एवं निर्णय लेना, यही सम्यग् अनेकांत सिद्वान्त है और इसी से समभाव सामायिक की प्राप्ति होती हैं।

अनेकांतवाद, नय से अपनी भिन्न विशेषता रखता हैं। इन दोनों को एक नहीं समझ लेना चाहिए। नय अपनी अपेक्षा दृष्टि को मुख्य कर अन्य दृष्टि को गौण करके वस्तु का प्रतिपादन करता हैं, दूसरी दृष्टि की उपेक्षा रखता हैं। जबकि स्याद्वाद अनेकांतवाद सभी दृष्टियों को सम्मुख रख कर उन सभी सत्य आशयों को, वस्तु के विभिन्न धर्मों को, उन उन अपेक्षा से देखता है, किसी को गौण और मुख्य अपनी दृष्टि से नहीं करता हैं।

नय मानों अपने हाल में मस्त है, दूसरों की अपेक्षा नहीं रखता है तो तिरस्कार भी नहीं करता है। और अनेकांतवाद सभी की अपेक्षा रख कर उन्हें साथ लेकर उदारता से चलता हैं। जबकि दुर्नय स्वयं को ही सब कुछ समझ कर अन्य का तिरस्कार करता हैं।इस प्रकार नय, दुर्नय एवं अनेकांतवाद को समझ कर समन्वय दृष्टि प्राप्त कर समभावों रूप सामायिक को प्राप्त करना चाहिए। यह चौथा नय द्वार सम्पूर्ण हुआ।

नोट- विस्तृत जानकारी के लिए आगम प्रकाशन समिति ब्यावर आदि संस्थाओं से प्रकाशित अनुयोग द्वार सूत्र एवं उसकी व्याख्याओं का तथा विवेचन का अध्ययन करना चाहिए ।

।। इति अनुयोग द्वार सूत्र सारांश समाप्त ।।

ज्ञाताधर्म कथा सूत्र

सूत्र परिचयः ग्यारह अंग सूत्रों में यह छठा अंग सूत्र है रचना की अपेक्षा यह गणधर कृत सूत्र है। इसमें दो श्रुतस्कंध (विभाग) है।

प्रथम श्रुत स्कंध में कुछ कथाएं ऐतिहासिक है अर्थात् घटित घटनाएं या चारित्र है और कुछ कथाएं कल्पित है अर्थात् रुपक या दृष्टान्त के रुप में कही गई है। इन सभी कथाओं का उद्देश्य विविध प्रकार से प्रतिबोध प्रेरणा या शिक्षा देने का है। जिनसे मुमुक्षु साधक भलीभांति आत्मजागरण एवं आत्म उत्थान कर सकें।

इन कथाओं में श्रद्धा का महत्व, आहार करने का उद्देश्य, अनासक्ति, इन्द्रिय विजय, विवेक बुद्धि, गुण वृद्धि, पुद्गल स्वभाव, कर्म परिणाम एवं कर्मों से आत्मा की दशा, क्रमिक विकास, भोगों का जहर के समान दुष्परिणाम, सहनशीलता के माध्यम से संयम की आराधना-विराधना एवं दुर्गति-सद्गति आदि विषयों पर सरल और सरस भाषा में प्रकाश डाला गया है। ये कथाएं वाद-विवाद या मनोरंजन के लिए नहीं है, अपितु जीवन उत्थान के लिये आदर्श रुप में चिंतन मनन करने योग्य है।

द्वितीय श्रुत स्कंध- में संयम साधना करके देवलोक मे जाने वाले 206 जीवों का जीवन वृत्त है। सभी स्त्री पर्याय में संयम स्वीकार कर देवी के रूप में उत्पन्न होने वाली आत्माएं है। वे तेवीसवे तीर्थंकर के शासन में दीक्षित हुई एवं संयम की विराधिका बनी। देव भव के अनंतर मनुष्य भव प्राप्त कर संयम की शुद्ध आराधना करेगी एवं वे सभी (206) आत्माएं मुक्ति प्राप्त करेगी।

इस प्रकार यह छठवां अंग सूत्र कथा प्रधान शास्त्र है। जन साधारण के लिए भी यह रोचक आगम है एवं जीवन निर्माण योग्य अनेक प्रेरणाओं का भण्डार है। एक विशेषता इसकी यह भी है कि इसमें सूचित जीवन उत्थान की प्रेरणाऐं श्रमण एवं श्रमणोपासक दोनों ही वर्गों के लिए बहुत उपयोगी है।

प्रथम श्रुत स्कंध में 19 अध्ययन है। द्वितीय श्रुतस्कंध में 10 वर्ग हैं एवं उनमें कुल 206

अध्ययन है। इस पूरे सूत्र का परिमाण 5500 श्लोक तुल्य माना गया है।

इस पूरे सूत्र में शिक्षाप्रद दृष्टांत (ज्ञात) और धर्म कथाएं वर्णित होने से इसका परिपूर्ण नाम ''ज्ञाता धर्म कथा'' सूत्र है। संक्षिप्त में इसे ज्ञाता सूत्र भी कह दिया जाता है।

प्रथम श्रुत स्कंध

प्रथम अध्ययन-

मेघ कुमार- पच्चीस सौ वर्ष पूर्व राजगृह नामक नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था उसके चेलना धारिणी आदि अनेक राणियां थीं। औपपातिक सूत्र आदि में कुल 25 राणियों का वर्णन मिलता है।

एक समय धारिणी नामक राणी को रात्रि के समय अर्द्ध निद्रा अवस्था में एक स्वप्न आया। जिसमें उसने आकाश से आते हुए एक सुंदर हाथी को अपने मुंह में प्रवेश करते हुए देखा। जिसके फल स्वरूप एक पुण्यात्मा उसके गर्भ में आई।

गर्भ के तीसरे महिने में उसे दोहद (मनो-संकल्प) उत्पन्न हुआ। जिसमें उसे यह तीव्र इच्छा हुई कि मैं वर्षा, बादल, हरियाली आदि सुनहरे प्राकृतिक दृश्य में राजा श्रेणिक के साथ नगर एवं उपवन में संपूर्ण ऐश्वर्य का आनंद लेते हुए भ्रमण करूं।

प्रकृति की भव्यता किसी भी मानव के हाथ में नहीं होती है। दोहद से असमय में उत्पन्न राणी की मनोकामना की पूर्ति नहीं होने से वह चिंतित एवं उदासीन सी रहने लगी। आखिर श्रेणिक पुत्र बुद्धि निधान अभयकुमार ने तेला करके मित्र देव का स्मरण किया एवं देव के सहयोग से धारिणी माता की मनोकामना पूर्ण की।

कालांतर में यथासमय धारिणी ने पुत्र को जन्म दिया उसका नाम मेघकुमार रखा गया। आठ वर्ष से अधिक उम्र होने पर उसे कलाचार्य के पास रखा गया। वहां वह पुरुष की 72 कलाओं में पारंगत हो गया।

माता-पिता ने शुभ समय में आठ राजकन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण कराया। इस प्रकार वह मेघकुमार प्राप्त हुई ऋद्धि संपदा का उपभोग करते हुए रहने लगा।

मेघकुमार की दीक्षा- किसी समय विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी का राजगृही में पदार्पण हुआ। धर्म सभा इकट्ठी हुई। मेघकुमार भी सभा में उपस्थित हुआ। भगवान ने सार गर्भित एवं वैराग्य पूर्ण उपदेश दिया। मेघकुमार भोगों से एवं संसार से विरक्त हो गया।

माता-पिता ने आज्ञा मांगने पर श्रेणिक और धारिणी राणी ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया किन्तु उसका वैराग्य दृढ़ रहा। तब अनिच्छापूर्वक आज्ञा दी। मेघकुमार ने संपूर्ण राजसी वैभव एवं सर्वांग सुंदर पत्नियों को त्याग कर महोत्सव के साथ भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की। प्रथम रात्रि में श्रमणों के आवागमन आदि से उसको क्षण मात्र भी निद्रा नहीं आ सकी। जिससे उसका चिंतन संयम से चल-विचल होने लगा। आखिर सुबह होते ही भगवान से निवेदन कर संयम छोड़ने का निर्णय कर ही लिया।

प्रातः काल भगवान के समीप पहुंचा। वंदन नमस्कार कर निवेदन करने के लिए तत्पर हुआ। सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु उसके संपूर्ण मनोगत संकल्पों को जानते थे। मेघमुनि को संबोधन कर उन्होंने उसके रात्रि में हुए सारे परिणामों को स्पष्ट कर दिया और पूछा कि तुम इस आशय से मेरे पास उपस्थित हुए हो?

मेघ मुनि ने भगवान के वचनों को स्वीकार करते हुए उत्तर दिया कि हां भगवान ऐसा ही हुआ है। भगवान ने उसे पुनः प्रतिबोध देते हुए उसके पूर्व भवों का कथन किया।

पूर्वभव- हे मेघ! तू यहाँ से पूर्व तीसरे भव में सुमेरूप्रभ नामक हाथी था। एक हजार हाथी हथिनियों का नायक था। निर्भय होकर सुख पूर्वक विचरण करता था। तुम्हारी वृद्धावस्था के समय एक बार जेठ महिने में जंगल में भयंकर दावानल लग गया। जंगल के अनेक प्राणी त्राहि-त्राहि करते हुए भाग दौड़ करने लग गये। उस समय हे मेघ! तू दौड़ते-भागते

भूख प्यास से आकुल व्याकुल होकर एक सरोवर के निकट पहुंचा। उसमें कीचड़ अधिक था। पानी पीने की इच्छा से तूं सरोवर में उतरा और कीचड़ में फंस गया। निकलने की कोशिश करते हुए अधिक-अधिक फंसता गया, पानी तक नहीं पहुंच सका।

घूमते हुए एक जवान हाथी उधर आया जिसे कि तूने अपने झुंड में से परास्त करके निकाल दिया था, तुझे देखते ही उसका क्रोध भड़क उठा और दांतो सें भयंकर प्रहार करके तुम्हारा बदला लिया। उस समय तुम्हें दुःस्सह दारूण वेदना हुई। हे मेघ! ऐसी प्रचंड असह्य वेदना में तुमने वहां सात दिन व्यतीत किए और मरकर फिर मेरूप्रभ नामक हाथी बना। कालांतर में वह मेरूप्रभ हाथी भी यूथ पति बन गया।

दूसरा भव हाथी का भव- एक बार गर्मी के समय जंगल में दावानल लगा। सभी प्राणी इधर-उधर भागने लगे। मेरूप्रभ उस दावानल को देखकर विचार में पड़ गया। चिंतन करते करते उसे पूर्व भव का स्मरण हो गया। बारबार होने वाली इस आपत्ति से बचने के लिए उसने उपाय सोच लिया दावानल शांत हुआ। सभी वन पशुओं के सहयोग से उसने एक बहुत बड़ा मैदान साफ कर लिया जिसमें किंचित भी घास नहीं रखा। ताकि जंगल के सभी पशु उसमें कुछ समय ठहर कर दावानल से अपनी सुरक्षा कर सकें।

एक बार जेठ महिने में पुनः जंगल में आग लगी। साफ किया हुआ सारा मैदान जानवरों से खचाखच भर गया। तूं भी मेरूप्रभ हाथी के रुप में उस मैदान में खड़ा था कि अचानक खाज खुजलाने के लिये तुमने पांव ऊपर किया। संयोगवश एक खरगोश इधर उधर से धक्के खाते हुए तुम्हारे उस पांव की खाली जगह में आकर बैठ गया।

खरगोश की अनुकम्पा- खरगोश को देखकर हे मेघ! तुमने जीव की रक्षा-अनुकम्पा के उत्तम परिणामों से अपने पांव को नीचे नहीं रखा। किन्तु हिम्मत रखकर ढाई दिन पांव को ऊपर ही रखा। अनुकम्पा के शुभ परिणामों से तुमने समकित प्राप्त करके वहां संसार परित्त किया। ढाई दिन बाद अग्नि शांत हुई सारे पशु इधर-उधर चले गये। खरगोश भी चला गया। तब हे मेघ! तूने पांव नीचे रखने का प्रयत्न किया। किन्तु निरन्तर ढाई दिन पांव उंचा रखने से अकड़ गया था। वह नीचे नहीं रखा गया। अधिक जोर लगाने पर तू धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उस समय तुम्हारी वहां 100 वर्ष ही उम्र थी। वृद्ध जर्जरित देह में तीन दिन प्रचंड वेदना रही। उस दुःस्सह वेदना जन्य आर्त्तध्यान के कारण क्वचित समकित के चले जाने से मेरूप्रभ हाथी ने मनुष्य आयु का बंध किया। एवं वहां से आयु पूर्ण कर श्रेणिक राजा के घर में जन्म लिया है। तत्पश्चात् हे मेघ! तुम अनुक्रम से मेरे पास दीक्षित हुए हो।

प्रभु का उद्बोधन- हे मेघ! पशु की योनि में परवश होकर वृद्धावस्था में भूख प्यास से व्याकुल होते हुए दूसरे जवान हाथी से किये गये प्रहारों की वेदना से सात दिन तक सहन किया एवं उस के बाद मेरूप्रभ हाथी के भव में एक प्राणी की रक्षा के लिए तुम वृद्धावस्था में, भूख प्यास सहन करते हुए भी, ढाई दिन निरंतर एक पांव ऊंचा करके तीन पांव पर खड़े रहे। असह्य और घोरातिघोर वेदना तुमने एक जीव रक्षा के लिए पशु योनि में होते हुए भी सहन की।

अभी तो तुम हे मेघ! मनुष्य बने हो एवं सब प्रकार की समृद्धि का त्याग कर मुनि बने हो। परिपूर्ण स्वस्थ शरीर होते हुए भी निर्ग्रन्थ मुनियों के आवागमन या स्पर्श आदि का इतना सा कष्ट एक दिन भी सहन नहीं कर सके और संकल्प

विकल्पों में रात्रि व्यतीत कर मेरे पास उपस्थित हुए हो। हे मेघ! विचार करो, चिंतन करो एवं संयम में अपने परिणाम स्थिर करो।

भगवान से हृदय द्रावक अपना पूर्व जीवन श्रवण कर मेघ को जाति स्मरण ज्ञान हो गया। वह स्वयं स्पष्ट रूप से अपने पूर्व भवों को जानने लगा। मेघ का हृदय पलट गया। उसका वैराग्य एवं उत्साह कई गुणा बढ़ गया। वंदना करके भूल की क्षमा मांगी एवं पुनः संयम में स्थिर हो गया।

मेघ मुनि की पुनः दीक्षाः अपनी दुर्बलता का पश्चाताप करते हुए प्रायश्चित रूप में मेघ ने पुनः दीक्षा ग्रहण करते हुए यह संकल्प किया कि दो नैत्र की रक्षा के अतिरिक्त मेरा पूरा शरीर मुनियों की सेवा के लिए सदा अर्पित रहेगा।

संयम जीवन में मेघमुनि ने अनेक प्रकार से तप का आचरण किया। भिक्षु पड़िमा और गुणरत्न संवत्सर तप किया। ग्यारह अंगों का कण्ठस्थ अध्ययन किया। अंत में संलेखना संथारा करके समाधि पूर्वक काल करके प्रथम अणुत्तर विमान में देव बना। वहां से वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर संपूर्ण कर्मों का क्षय करेगा।

इस अध्ययन के मूल पाठ में राजा की व्यायाम विधि, स्नान विधि, स्वप्न पाठक, दोहद मेघमय प्राकृतिक दृश्य, 72 कला, विवाह महोत्सव, दीक्षा की आज्ञा प्राप्ति, दीक्षा महोत्सव, भगवान के समवसरण में पहुंचने का वर्णन, पूर्व भव की घटनाएं आदि विषय विस्तार से कहे गये हैं।

अणुत्तरोपपातिक अंग सूत्र में भी मेघकुमार का तपोमय जीवन और अणुत्तर विमान में उत्पन्न होने का वर्णन है।

प्रेरणा शिक्षा–

1. जीव ने अनेक भवों में विविध वेदनाए सहन की है। अतः मानव भव को पाकर धर्म साधना करने में कष्टों से कभी भी घबराना नहीं चाहिए।
2. पशु या मनुष्य किसी को भी अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो सकता है।
3. पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धांत की सम्यक् आस्था रखनी चाहिये।
4. दुःख की घड़ियों में भी विवेक पूर्ण आवश्यक कर्तव्यों से च्युत नहीं होना चाहिए। जैसे कि मेघ मुनि संयम में अस्थिर चित्त हो जाने पर भी अचानक ही कोई प्रवृत्ति न करते हुए पहले भगवान की सेवा में विनय पूर्वक निवेदन करने के लिए पहुंच गये।
5. किसी को भी मार्गच्युत हुआ जान कर योग्य उपायों से कुशलता पूर्वक पुनः सद्‌गुणों में उसे तत्पर बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु निन्दा, अवहेलना, तिरस्कार आदि निन्दनीय प्रवृत्तियों का आचरण कदापि नहीं करना चाहिए।
6. अपनी भूलों का पश्चाताप करके उन्हें सुधार लेना चाहिए। किन्तु छिपाने का प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिए।
7. अनुकम्पा और दया भाव यह आत्मोन्नति का एक उत्तम गुण है। इसे समकित का चौथा लक्षण कहा गया है। प्रसिद्ध आध्यात्म कवि तुलसीदासजी के शब्दों में यह धर्म का मूल है। उक्त कथानक में हाथी जैसे एक पशु ने दया भाव

के निमित्त से ही संसार भ्रमण के मार्ग की जगह मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर लिया। हृदय की सच्ची अनुकंपा और उस पर दृढ़ रहने का यह परिणाम है।

8. आत्मा अनंत शाश्वत तत्त्व है। रागद्वेष आदि विकारों से ग्रस्त होने के कारण वह विभिन्न अवस्थाओं में जन्म मरण करता है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना ही संसरण या संसार कहलाता है। कभी आत्मा अधोगति के पाताल में तो कभी उच्चगति के शिखर पर पहुंच जाती है। इस उतार चढ़ाव का मूल कारण स्वयं आत्मा ही है। संयोग मिलने पर आत्मा जब अपने स्वरूप को समझ लेता है तब अनुकूल पुरुषार्थ कर विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करके शाश्वत सुखों का स्वामी बन जाता है। मेघकुमार के जीवन में यही घटित हुआ। हाथी से मानव, फिर मुनि, तपश्चात देव बना और क्रमशः परमात्म पद को प्राप्त करेगा।

9. ''**संयम से मेघ मुनि के चित्त उखड़ जाना**'' यह इस अध्ययन का एक प्रमुख विषय है, भगवान के द्वारा पूर्व भव सुना कर संयम में स्थिर करने के प्रेरक विषय का मूल निमित्त भी यही है। अतः अध्ययन का नाम ''**मेघकुमार**'' नहीं होकर ''**उक्खित्तनाय**'' रखा गया है।

दूसरा अध्ययन

धन्य सेठ और विजय चोर- राजगृह नगर में धन्य सार्थवाह रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। धन्य समृद्धिशाली था, प्रतिष्ठा प्राप्त था, किन्तु निःसन्तान था। उसकी पत्नी ने अनेक देवताओं की मान्यता-मनौती की, तब उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। देवी कृपा का फल समझ कर उसका नाम ''**देवदत्त**'' रखा गया।

देवदत्त बालक की हत्या- देवदत्त कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन भद्रा ने उसे नहला धुलाकर और अनेक प्रकार के आभूषणों से श्रृंगार कर अपने दास चेटक पंथक को खेलाने के लिये दे दिया। पंथक उसे ले गया और एक स्थान पर उसे बिठलाकर स्वयं गली के बालकों के साथ खेलने लगा। खेलते समय देवदत्त का उसे ध्यान ही न रहा। इस बीच राजगृह का विख्यात निर्दय और नृंशस चोर ''**विजय**'' घूमता-घूमता वहां जा पहुंचा और आभूषण-सज्जित बालक देवदत्त को उठाकर चल दिया। नगर से बाहर ले जाकर उसके आभूषण उतार लिए और उसे एक कुए में फेंक दिया। बालक के प्राण-पखेरू उड़ गए।

जब पंथक को बालक का ध्यान आया तो उसे वह वहां नहीं दिखा। इधर-उधर ढूंढने पर भी वह नहीं मिला। रोता-रोता पंथक घर गया। धन्य सार्थवाह ने भी खोज की किन्तु जब बालक का कुछ भी पता न लगा तब वह नगर रक्षकों (पुलिसदल) के पास पहुंचा। नगर रक्षक खोजते खोजते वहीं जा पहुंचे जहां वह अन्धकूप था, जिसमें बालक का शव पड़ा था। शव को देखकर सबके मुख से अचानक ''**हाय-हाय**'' शब्द निकल पड़ा।

विजय चोर जेल में- पैरों के निशान देखते-देखते नगर रक्षक आगे बढ़े तो विजय चोर पास के सघन झाड़ियों वाले प्रदेश में (मालुका-कच्छ में) छिपा हुआ मिल गया। उसे पकड़ा, खूब मार पीट की, नगर में घुमाया और कारागार में डाल दिया।

कुछ समय के पश्चात् किसी के चुगली खाने पर, एक साधारण अपराध पर धन्य सार्थवाह को भी उसी कारागार में बन्द किया गया। विजय चोर और धन्य सार्थवाह-दोनों को एक बेड़ी में डाल दिया।

सार्थवाह पत्नी भद्रा ने धन्य के लिए विविध प्रकार का भोजन पान कारागार में भेजा। धन्य सार्थवाह जब उसको खाने बैठा तो विजय चोर ने उसका कुछ भाग मांगा। किन्तु धन्य अपने पुत्र घातक शत्रु को आहार पानी कैसे खिला पिला सकता था ? उसने देने से इन्कार कर दिया।

कुछ समय पश्चात् धन्य सार्थवाह को मल-मूत्र विसर्जन की बाधा उत्पन्न हुई। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विजय-चोर और धन्य एक साथ बेड़ी में जकड़े थे। एक के बिना दूसरा चल फिर नहीं सकता था। मल-मूत्र विसर्जन के लिए दोनों का साथ जाना अनिवार्य था। जब सार्थवाह ने विजय चोर से साथ चलने का कहा तो वह अकड़ गया। बोला- तुमने भोजन किया है, तुम ही जाओ। मैं भूखा-प्यासा मर रहा हूं, मुझे बाधा नहीं है। मैं नहीं जाता।

पुत्र घातक को भोजन देने की परिस्थिति- धन्य विवश हो गया। थोड़े समय तक उसने बाधा रोकी, कब तक रोकता अन्ततः अनिच्छा पूर्वक भी विजय चोर को आहार पानी में से कुछ भाग देने का वचन देना पड़ा। अन्य कोई मार्ग नहीं था। जब दूसरी बार भोजन आया तो धन्य ने उसका कुछ भाग विजय चोर को दिया।

दास चेटक पंथक आहार लेकर कारागार जाता था। उसे यह देखकर दुःख हुआ। घर जाकर उसने भद्रा सार्थवाही को यह घटना सुनाई और कहा कि ''**सार्थवाह**'' आपके भेजे भोजन-पान का हिस्सा विजय चोर को देते हैं। यह जानकर भद्रा के क्रोध का पार न रहा। पुत्र की क्रूरतापूर्वक हत्या करने वाले पापी चोर को भोजन पान देकर उसका पालन पोषण करना उसे सहन न हो सका। माता का हृदय घोर वेदना से व्याप्त हो गया। प्रतिदिन यही क्रम चलने लगा।

कुछ काल के पश्चात् धन्य सार्थवाह को कारागार से मुक्ति मिली। जब वह घर पहुंचा तो सभी ने उसका स्वागत सत्कार किया। किन्तु उसकी पत्नी भद्रा ने बात भी नहीं की। वह पीठ फेर कर उदास, खिन्न सी बैठी रही। यह देखकर सार्थवाह बोला भद्रे! क्या तुम्हें मेरी कारागार से मुक्ति अच्छी नहीं लगी। क्या कारण है कि तुम विमुख होकर अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर रही हो?

भद्रा सेठानी का कोप एवं समाधान- तथ्य से अनजान भद्रा ने कहा मुझे प्रसन्नता, आनन्द और सन्तोष कैसे हो सकता है ? जब कि आपने मेरे लाडले बेटे के हत्यारे वैरी विजय चोर को आहार पानी में से हिस्सा दिया है ?

धन्य सार्थवाह भद्रा के कोप का कारण समझ गया। समग्र परिस्थिति समझाते हुए उसने स्पष्टीकरण किया। हे देवानुप्रिये! मैंने उसको हिस्सा तो दिया है, मगर धर्म समझकर कर्तव्य समझकर अथवा प्रत्युपकार समझकर नहीं दिया, केवल मल-मूत्र की बाधा निवृत्ति में सहायक बने रहने के उद्देश्य से ही दिया है।

यह स्पष्टीकरण सुनकर भद्रा को संतोष हुआ। वह प्रसन्न हुई। विजय चोर अपने घोर-पापों का फल भुगतने के लिए नरक का अतिथि बना। धन्य सार्थवाह कुछ समय पश्चात् धर्मघोष स्थविर से मुनिदीक्षा अंगीकार करके अन्त में स्वर्गवासी हुआ।

तात्पर्य यह है कि जैसे धन्य सार्थवाह ने ममता या प्रीति के कारण विजय चोर को आहार नहीं दिया किन्तु शारीरिक बाधा की निवृत्ति के लिए दिया। उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनि शरीर के प्रति आसक्ति के कारण आहार पानी से उसका पोषण नहीं करते, मात्र शरीर की सहायता से सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र की रक्षा एवं वृद्धि के उद्देश्य से ही उसका पालन पोषण करते हैं।

प्रेरणा शिक्षा–

1. साधना के क्षेत्र में प्रबल से प्रबल बाधक **'आसक्ति'** है। आसक्ति वह मनोभाव है, जो आत्मा को पर पदार्थों की ओर लालायित बनाता है, आकर्षित करता है, और आत्मानन्द की ओर से विमुख करता है। साधना में एकाग्रता के साथ तल्लीन रहने के लिए आसक्ति को त्याग देना आवश्यक है। स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द जब इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा ग्रहण करता अर्थात् जानता है, तब मन उस जानने के साथ राग-द्वेष का विष मिला देता है। इस कारण आत्मा में **''यह इष्ट है, यह अनिष्ट है''** इस प्रकार का विकल्प उत्पन्न होता है। इष्ट प्रतीत होने पर उस विषय को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाता है। उसका समत्वयोग खण्डित हो जाता है, समाधिभाव विलीन हो जाता है और वैराग्य नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक अपनी मर्यादा से पतित हो जाता है और कभी कभी उसके पतन की सीमा भी नहीं रहती है।

2. आसक्ति के इन खतरों को ध्यान में रख कर शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार से आसक्ति-त्याग का उपदेश दिया है। अपने से प्रत्यक्ष पृथक दिखने वाले पदार्थों की बात जाने दीजिए, अपने शरीर के प्रति भी आसक्त न रहने का आगमों में विधान किया है। यथा-

''गामे कुले वा नगरे व देसे ममत्त भावं न कहिं चि कुज्जा।।
''अवि अप्पणो वि देहं मि, नारयंति ममाइयं।।''

अर्थ– भिक्षु को ग्राम में घर में नगर में या देश में किसी में भी ममत्व नहीं करना चाहिए।

मुनिजन अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं रखते।

3. कहा जा सकता है- यदि शरीर के प्रति ममता नहीं है तो आहार पानी आदि के द्वारा उसका पोषण संरक्षण क्यों करते हैं? इस प्रश्न के समाधान के लिए ही इस अध्ययन की रचना की गई है और एक सुंदर उदाहरण द्वारा समाधान किया गया है।

4. किसी की कोई भी प्रवृत्ति एवं कथन का आशय समझे बिना फिजूल में गुस्सा नहीं करना चाहिए। जैसे कि भद्रा सेठानी ने धन्य सेठ पर किया। नम्रता पूर्वक उस व्यक्ति से ही उसके वचन और व्यवहार के आशय की जानकारी कर निरर्थक के कर्मबंधन से बचते रहना चाहिए। अपनी एक पाक्षिक बुद्धि से निर्णय कर लेने की आदत को सुधारना चाहिए।

तीसरा अध्ययन

अंडे का दृष्टान्त– चम्पा नगरी में दो सार्थवाह पुत्र रहते थे। जिनदत्तपुत्र और सागरदत्त पुत्र दोनों अभिन्नहृदय मित्र थे। प्रायः साथ ही रहते थे। विदेशयात्रा हो या अन्य प्रसंग; हर समय साथ रहने का उन्होंने संकल्प किया था। किन्तु चित्तवृत्ति दोनों की एक दूसरे से विपरीत थी।

एक बार दोनों साथी देवदत्त गणिका को साथ लेकर चम्पा नगरी के सुभुमिभाग उद्यान में गए। वहां स्नान करके, भोजन पानी करके उद्यान परिभ्रमण करने लगे। उद्यान में लगा हुआ सघन झाड़ियों वाला एक प्रदेश 'मालुकाकच्छ' वहां था। वे मालुकाकच्छ की ओर गये ही थे कि एक मयूरी घबराहट और बैचेनी के साथ ऊपर उड़ी और निकट के एक वृक्ष की शाखा पर बैठ कर केकारव करने लगी। यह दृश्य देखकर सार्थवाह पुत्रों को सन्देह हुआ। वे आगे बढ़े तो उन्हें दो अंडे दिखाई दिए।

सार्थवाह पुत्रों ने दोनों अंडे उठा लिये और अपने घर ले गए। दोनों ने एक एक बांट लिया। सागरदत्त पुत्र शंकाशील था। उसने उस अंडे को ले जाकर अपने घर के पहले अंडों के साथ रख दिया, जिससे उसकी मयूरियां अपने अंडों के साथ उसका भी पोषण करती रहे।

शंकाशीलता के कारण सागरदत्त पुत्र से रहा नहीं गया। वह बारंबार उस अंडे के पास जाता और विचार करता कि कौन जाने यह अंडा निपजेगा अथवा नहीं, इस प्रकार शंका, कांक्षा और विचिकित्सा से ग्रस्त होकर उसने अंडे को उलटा, पलटा, उलट फेर कर कानों के पास ले गया, उसे बजाया। बार-बार ऐसा करने से अंडा निर्जीव हो गया। उसमें से बच्चा नहीं निकला।

इसके विपरीत जिनदत्तपुत्र श्रद्धासम्पन्न था। उसने विश्वास रक्खा और वह अंडा अपने मयूर पालकों को सोंप दिया। यथासमय अंडे से बच्चा उत्पन्न हुआ। उसे नाचना सिखलाया गया। अनेक सुन्दर कलाएं सिखलाई गई। जिनदत्तपुत्र यह देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ। नगर भर में उस मयूरपोत की प्रसिद्धि हो गई। जिनदत्तपुत्र उसकी बदौलत हजारों लाखों की बाजिया जीतने लगा।

यह है अश्रद्धा और श्रद्धा का परिणाम। जो साधक महाव्रतों में, छःकाया में श्रद्धावान रहकर साधना में प्रवृत्त होता है, उसे इस भव में मान सन्मान की और परभव में मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अश्रद्धालु साधक इस भव में निन्दा गर्हा का तथा परभवों में अनेक प्रकार के संकटों, दुःखों, पीड़ाओं और व्यथाओं का पात्र बनता है।

प्रेरणा शिक्षा–

1. तृतीय अध्ययन का मुख्य स्वर है **''जिन प्रवचन में शंका कांक्षा या विचिकित्सा न करना''। ''तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं''** अर्थात् वीतराग और सर्वज्ञ ने जो तत्त्व प्रतिपादित किया है, वही सत्य है, उसमें शंका के लिए कोई अवकाश नहीं है। कषाय और अज्ञान के कारण ही असत्य बोला जाता है, जिसमें ये दोनों दोष नहीं है उसके वचन असत्य हो ही नहीं सकते।

2. इस प्रकार की सुदृढ़ श्रद्धा के साथ मुक्ति साधना के पथ पर अग्रसर होने वाला साधक ही अपनी साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। उसकी श्रद्धा उसे अपूर्व शक्ति प्रदान करती है और उस श्रद्धा के बल पर वह सब प्रकार की विध्न बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता जाता है। यही कारण है कि सम्यग्दर्शन का प्रथम अंग या लक्षण **''निःशंकितता''** कहा गया है।

3. इसके विपरीत जिसके अन्तःकरण में अपने लक्ष्य अथवा लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में दृढ़ विश्वास नहीं होता, जिसका चित्त डांवाडोल होता है, जिसकी मनोवृत्ति ढुलमुल होती है, प्रथम तो उसमें आन्तरिक बल उत्पन्न ही नहीं होता और यदि हो तो भी वह उसका पूरी तरह उपयोग नहीं कर सकता। इस प्रकार अधूरे बल और अधूरे मनोयोग से कार्य की पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती। लौकिक कार्य हो अथवा लोकोत्तर, सर्वत्र पूर्ण श्रद्धा, समग्र उत्साह और परिपूर्ण मनोयोग को उसमें लगा देना आवश्यक है। सम्पूर्ण सफलता-प्राप्ति की यह अनिवार्य शर्त है।

4. प्रस्तुत तृतीय अध्ययन में यही तथ्य उदाहरण द्वारा और फिर साक्षात् उपसंहार रूप में प्रस्तुत किया गया है। दो पात्रों के द्वारा श्रद्धा का सुफल और अश्रद्धा का दुष्परिणाम दिखलाया गया है।

चतुर्थ अध्ययन

कछुए का दृष्टान्त–

चतुर्थ अध्ययन का नाम कूर्म अध्ययन है। इसमें आत्मसाधना के पथिकों के लिए इन्द्रियागोपन की आवश्यकता दो कूर्मों के उदाहरण के माध्यम से प्रतिपादित की गई है।

वाराणसी नगरी में गंगा नदी से उत्तरपूर्व में एक विशाल तालाब था। निर्मल शीतल जल से परिपूर्ण और विविध जाति के कमलों से व्याप्त उस तालाब में अनेक प्रकार के मच्छ, कच्छप, मगर, ग्राह आदि जलचर प्राणी अभिरमण किया करते थे। तालाब को लोग ''**मृतगंगातिरहद**'' कहते थे।

एक बार संध्या समय व्यतीत हो जाने पर, लोगों का आवागमन जब बंद सा हो गया, तब उस तालाब में से दो कूर्म (कछुए) आहार की खोज में निकले। तालाब के आस पास घूमने लगे।

उसी समय वहां दो सियार आ पहुंचे। वे भी आहार की खोज में भटक रहे थे। सियारों को देख कर कूर्म भयभीत हो गए। आहार की खोज में निकले कूर्मों को स्वयं सियारों का आहार बन जाने का भय उत्पन्न हो गया। परन्तु कूर्मों में एक विशेषता होती है। वे अपने पैरों और गर्दन को अपने शरीर में जब गोपन कर लेते हैं, छिपा लेते हैं तो सुरक्षित हो जाते हैं, कोई भी आघात उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। कूर्मों ने यही किया। सियारों ने उन्हें देखा। वे उन पर झपटे। बहुत प्रयत्न किया उनको छेदन-भेदन करने का, किन्तु सफल नहीं हो सके।

सियार बहुत चालाक जानवर होता है। उन्होंने देखा कि कूर्म अपने अंगों का जब तक गोपन किये रहेंगे तब तक हमारा कोई प्रयत्न सफल नहीं होगा, अतएव चालाकी से काम लेना चाहिए। ऐसा सोच कर दोनों सियार कूर्मों के पास हट गये, पर निकट ही एक झाड़ी में पूरी तरह शान्त होकर छिप गए।

दोनों कूर्मों में से एक चंचल प्रकृति का था। वह अपने अंगों का देर तक गोपन नहीं कर सका। उसने एक पैर बाहर निकाला। उधर सियार इसी की ताक में थे। जैसे ही उन्होंने एक पैर बाहर निकला देखा कि शीघ्रता के साथ वे उस पर झपटे और उस पैर को खा गए। सियार फिर एकान्त में चले गए। थोड़ी देर बाद कूर्म ने अपना दूसरा पैर बाहर निकाला और सियारों ने झपट्टा मार कर उसका दूसरा पैर भी खा लिया इसी प्रकार थोड़ी देर में कूर्म एक-एक पैर बाहर निकालता और

सियार उसे खा जाते। अन्त में उस चचंल कूर्म ने गर्दन बाहर निकाली और सियारों ने उसे भी खा कर उसे प्राणहीन कर दिया। इस प्रकार अपने अंगों का गोपन न कर सकने के कारण उस कूर्म के जीवन का करुण अन्त हो गया।

दूसरा कूर्म चंचल नहीं था। उसने अपने अंगों पर संयम (नियन्त्रण) रखा। लम्बे समय तक उसने अंगों को गोपन करके रखा और जब सियार चले गए तब वह चारों पैरों को एक साथ बाहर निकाल कर शीघ्रतापूर्वक तालाब में सकुशल सुरक्षित पहुंच गया।

प्रेरणा शिक्षा–

1. शास्त्रकार कहते हैं कि जो साधु या साध्वी अनगार दीक्षा अंगीकार करके अपनी इन्द्रियों का गोपन नहीं करते, उनकी दशा प्रथम कूर्म जैसी होती है। वे इह भव परभव में अनेक प्रकार के कष्ट पाते हैं, संयम जीवन से च्युत हो जाते हैं और निन्दा गर्हा के पात्र बनते हैं। इससे विपरीत, जो साधु या साध्वी इन्द्रियों का गोपन करते हैं वे इसी भव में सब के वन्दनीय, पूजनीय, अर्चनीय होते हैं और संसार अटवी को पार करके सिद्धिलाभ प्राप्त करते हैं।

2. तात्पर्य यह है कि साधु हो अथवा साध्वी, उसे अपनी सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए, उनका गोपन करना चाहिए। इन्द्रिय गोपन का अर्थ इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में प्रवृत्त न होने देना। किन्तु सर्वत्र सर्वदा इन्द्रियों की प्रवृत्ति रोकना भी सम्भव नहीं है। सामने आई वस्तु इच्छा न होने पर भी दृष्टिगोचर हो ही जाती है, बोला हुआ शब्द श्रोत्र का विषय बन ही जाता है। साधु साध्वी अपनी इन्द्रियों को बंद करके रख नहीं सकते। ऐसी स्थिति इन्द्रिय द्वारा गृहीत विषय में राग द्वेष नहीं उत्पन्न होने देना ही इन्द्रिय गोपन इन्द्रियदमन, अथवा इन्द्रियसंयम कहलाता है। इस साधना के लिए मन को समभाव का अभ्यासी बनाने का सदैव प्रयास करते रहना आवश्यक है।

पंचम अध्ययन

शैलक राजर्षि–

द्वारिका नगरी में बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ। वासुदेव कृष्ण अपने वृहत्त परिवार के साथ प्रभु की उपासना और धर्मदेशना श्रवण करने पहुंचे। द्वारिका के नर-नारी भी गये। द्वारिका में थावच्चा नामक एक सम्पन्न गृहस्थ महिला थी। उसका इकलौता पुत्र थावच्चापुत्र के नाम से ही अभिहित होता था। वह भी भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने पहुंचा। धर्मदेशना सुनी और वैराग्य के रंग में रंग गया। माता ने बहुत समझाया आजीजी की, किन्तु थावच्चापुत्र अपने निश्चय पर अटल रहा। अन्त में विवश होकर माता ने दीक्षा महोत्सव करने का प्रस्ताव किया, जिसे उसने मौनभाव से स्वीकार किया।

श्रीकृष्ण द्वारा थावच्चापुत्र का दीक्षा महोत्सव– थावच्चा छत्र, चामर आदि मांगने कृष्ण महाराज के पास गई तो उन्होंने स्वयं अपनी ओर से महोत्सव मनाने का प्रस्ताव रखा। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने कृष्ण स्वयं उसके घर पर गए। सोलह हजार राजाओं के राजा अर्द्धभरत क्षेत्र के अधिपति महाराज श्रीकृष्ण का सहज रूप से थावच्चा के घर पहुंचना उनकी असाधारण महत्ता और निरहंकारिता का द्योतक है। श्रीकृष्ण को थावच्चापुत्र की परीक्षा के पश्चात् जब विश्वास हो गया कि उसका वैराग्य आन्तरिक है, सच्चा है तब उन्होंने द्वारिका नगरी में आम घोषणा करवादी ''**भगवान**

अरिष्टनेमि'' के निकट दीक्षित होने वालों के आश्रित जनों के पालन-पोषण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कृष्ण वासुदेव वहन करेंगे। जो दीक्षित होना चाहे, निश्चिन्त होकर दीक्षा ग्रहण करे।

घोषणा सुनकर एक हजार पुरुष थावच्चापुत्र के साथ प्रव्रजित हुए। कालान्तर में थावच्चापुत्र अनगार, भगवान अरिष्टनेमि की अनुमति लेकर अपने साथी एक सहस्त्र मुनियों के साथ देश देशान्तर में पृथक विचरण करने लगे।

विचरण करते हुए थावच्चापुत्र सौगन्धिका नगरी पहुंचे। वहां का नगर सेठ सुदर्शन यद्यपि सांख्यधर्म का अनुयायी और शुक परिव्राजक का शिष्य था, तथापि वह थावच्चापुत्र की धर्मदेशना श्रवण करने गया। थावच्चापुत्र और सुदर्शन सेठी के बीच धर्म के मूल आधार को लेकर संवाद हुआ। संवाद से संतुष्ट होकर सुदर्शन ने निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् जिनधर्म को अंगीकार कर लिया।

शुक परिव्राजक की जैन दीक्षा- शुक परिव्राजक को जब इस घटना का पता चला तो वह सुदर्शन को पुनः अपना अनुयायी बनाने के विचार से सौगन्धिका नगरी में आया। सुदर्शन डिगा नहीं। दोनों धर्माचार्यों (शुक और थावच्चापुत्र) में धर्मचर्चा का आयोजन हुआ। शुक अपने शिष्यों के साथ थावच्चापुत्र के समीप पहुंचे। शुक ने शब्दों के चक्कर में थावच्चापुत्र को फंसाने का प्रयास किया, मगर थावच्चापुत्र ने उसका गूढ़ अभिप्राय समझकर अत्यन्त कौशल के साथ उत्तर दिया। अन्त में शुक परिव्राजक, थावच्चापुत्र के शिष्य बन गए। शुक के भी एक हजार शिष्य थे। उन्होंने भी अपने गुरु का अनुसरण किया वे भी साथ ही दीक्षित हो गए।

शैलक राजर्षि की दीक्षा- शुक अनगार एक बार किसी समय शैलकपुर पधारे। वहां का राजा शैलक पहले ही थावच्चा पुत्र के उपदेश से श्रमणोपासक धर्म अंगीकार कर चुका था। इस बार वह अपने पांच सौ मंत्रियों के साथ दीक्षित हो गया। उसका पुत्र मंडुक राजगद्दी पर बैठा।

शैलक मुनि साधुचर्या के अनुसार देश देशान्तरों में विचरण करने लगे। उनके गुरु शुक मुनि तब विद्यमान नहीं थे सिद्धिलाभ कर चुके थे। शैलक राजर्षि का सुखों में पला सुकोमल शरीर साधु जीवन की कठोरता को सहन नहीं कर सका। शरीर में दाद खाज हो गई, पित्तज्वर रहने लगा, जिसके कारण वे तीव्र वेदना से पीड़ित हो गये। भ्रमण करते करते शैलकपुर में पधारे। उनका पुत्र मंडुक राजा उपासना के लिए उपस्थित हुआ। उसने राजर्षि शैलक के रोगग्रस्त शरीर को देखकर यथोचित चिकित्सा करवाने की प्रार्थना की। शैलक ने स्वीकृति दी। चिकित्सा होने लगी। स्वास्थ्य लाभ हुआ किन्तु राजर्षि सरस भोजन एवं औषध भेषज में मस्त रहने लगे। वहां से अन्यत्र जाने का विचार तक न आने लगा। तब उनके साथी मुनियों ने एकत्र होकर एक अनगार पंथक को, जो गृहस्थावस्था में उनका मुख्य मंत्री था, उनकी सेवा में छोड़कर स्वयं विहार कर विचरने का निर्णय किया। वे विहार कर गए, राजर्षि वहीं रहे, पंथक सेवा में रहे।

कार्तिकी चौमासी का दिन था। शैलक राजर्षि आहार पानी करके सुख पूर्वक सोये थे। उन्हें आवश्यक क्रिया करने का स्मरण तक न था। पंथक मुनि चातुमार्सिक प्रतिक्रमण करने को उद्यत हुए और शैलक के चरणों से अपने मस्तक का स्पर्श किया। शैलक की निद्रा भंग हो गई और वे क्रोध में आग बबुला हो उठे। पंथक को कटु और कठोर शब्द कहने लगे। पंथक मुनि ने क्षमा प्रार्थना करते हुए कार्तिकी चौमासी की बात कही।

राजर्षि की धर्म चेतना जागृत हो उठी। सोचा-राज्य का परित्याग करके मैंने साधुत्व अंगीकार किया और अब ऐसा प्रमत्त एवं शिथिलाचारी हो गया हूं। साधु के लिए यह सब अशोभन है।

दूसरे ही दिन उन्होंने शैलकपुर छोड़ दिया। पंथक मुनि के साथ विहार कर चले गए। यह समाचार जानकर उनके सभी शिष्य साथी मुनि उनके साथ आ मिले।

अंतिम समय में सभी मुनियों ने सिद्धि प्राप्त की।

प्रेरणा शिक्षा–

1. ''**थावच्चा**'' स्त्री का कृष्ण के दरबार में जाना और कृष्ण वासुदेव का उसके घर आना एक महत्वपूर्ण घटना है।

2. संयम की वार्त्ता सुनकर उत्साहित होना उसके घर जाकर वैराग्य की परीक्षा करना एवं सारे शहर में प्रेरणा करके एक हजार पुरुषों का दीक्षा महोत्सव करना इत्यादि सारे आचरण तीनखंड के स्वामी श्री कृष्ण वासुदेव की अनन्य धर्म श्रद्धा एवं विवेक को प्रकट करते हैं। यह विवेक सभी के लिए आदर्शभूत है अर्थात् दीक्षा लेने वाले के प्रति क्या भाव एवं व्यवहार रखना चाहिए, यह इस घटना से सीखने को मिलता है।

3. सांख्य मतानुयायी सुदर्शन ने जैन मुनि से चर्चा कर श्रावक धर्म स्वीकारा और उसके गुरु शुक संन्यासी ने चर्चा करके संयम अंगीकार किया। ऋजु और प्राज्ञ जीवों के इन उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि मान कषाय से अभिभूत होते हुए भी वे आत्माएं दुराग्रही नहीं होती है। सत्य समझ में आते ही अपना सर्वस्व परिवर्तन कर देते हैं। हमें भी स्वाभिमान के साथ सरल और नम्र बनकर दुराग्रहो से दूर रहना चाहिए अर्थात् सत्य समझ में आ जाने के बाद उसे स्वीकार करने में हिचकिचािहट नहीं करना चाहिए, चाहे वह कोई परंपरा हो या सिद्धांत।

4. समय पर शिष्य भी गुरु का कर्तव्य कर देता है। पंथक शिष्य की विनय भक्ति, सेवा, सत्य निष्ठा ने शैलक राजर्षि का अधःपतन रोक दिया।

5. संयम से गिरते हुए साधक का तिरस्कार न करते हुए उसकी योग्य संभाल करने से उसका उत्थान संभव हो सकता है। अतः गुरु हो या शिष्य विवेक युक्त निर्णय सर्वत्र आवश्यक है। तिरस्कार वृत्ति तो हेय एवं अनाचरणीय ही है।

6. अति वेग से गिरने वाला व्यक्ति भी कभी बच सकता है। अतः योग्य संभाल और सहानुभूति रखना भी कर्तव्य समझना चाहिए।

7. जीवन किसी भी ढर्रे में चल रहा हो तो भी पुनर्चिन्तन एवं नया मोड़ देने की गुंजाइश रखनी चाहिए। आत्मा को हठाग्रह और दुराग्रह में नहीं पहुंचाना चाहिए।

8. औषध सेवन भी संयम का एक खतरा है। इससे भी असंयम भाव एवं प्रमाद भाव उत्पन्न हो सकता है। अतः साधक को औषध सेवन की रूचि से निवृत्त होकर तप संयम एवं विवेक युक्त साधना करनी चाहिए। शैलक जैसे चरम शरीरी तपस्वी साधक भी औषध सेवन के निमित्त से संयम में शिथिल बन गये थे।

9. शैलक राजर्षि मध्यम तीर्थंकर के शासन में हुए थे। उनके लिए मास कल्प आदि का नियम पालन आवश्यक नहीं था। इसी कारण 500 श्रमण वहां ठहरे थे। कथानक के अवलंबन से ंअतिम तीर्थंकर के शासन में नकल नहीं करनी चाहिए अर्थात् सेवा में जितने श्रमण आवश्यक हो उनके अतिरिक्त छोटे बड़े किन्ही भी श्रमणों को अकारण कल्प मर्यादा से अधिक नहीं ठहरना चाहिए।

10. पंथक ने चौमासी के दिन दो प्रतिक्रमण किए। इसका कारण भी यह है कि मध्यम तीर्थंकर के शासन में श्रमणों के लिए सदा दोनों समय प्रतिक्रमण करने का नियम नहीं होता है। अतः वे केवल पक्खी चौमासी संवत्सरी पर्व दिनों में ही नियमतः प्रतिक्रमण करते हैं। इसी कारण वे एक दैवसिक प्रतिक्रमण और एक उस पर्व तिथि का प्रतिक्रमण यों दो प्रतिक्रमण एक साथ कर लेते हैं, इस वर्णन की नकल करके अंतिम तीर्थंकर के श्रमणों को दो प्रतिक्रमण करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रतिदिन दोनों समय भाव युक्त प्रतिक्रमण करने का नियम ही उनके लिए पर्याप्त है। पर्व दिनों के विशेष प्रतिक्रमण या दो प्रतिक्रमण का उनके लिए कोई महत्व नहीं है। उनके लिए तो त्याग तप मौन ध्यान एवं आत्म चिंतन या धर्म जागरण करना ही पर्व दिनों की आराधना करना है।

छठ्ठा अध्ययन

तुम्बे का दृष्टान्त–

राजगृही नगरी में गणधर गौतम स्वामी ने भगवान महावीर स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन्! जीव हल्का होकर ऊपर कैसे चला जाता है और भारी होकर नीचे कैसे चला जाता है?

भगवान ने उत्तर में एक दृष्टांत देकर समझाया कि जैसे तुम्बा स्वयं के स्वरूप में पानी पर तैरता है किन्तु उसके ऊपर कोई व्यक्ति मिट्टी घास लगाकर धूप में सुखा दे। फिर दूसरा लेप लगाकर सुखा दे। इस तरह क्रमशः आठ पट लगा दे।

उस तुम्बे को यदि वह पुरुष जल में छोड़ दे तो वह तुम्बा लेप के भार के कारण नीचे तल में जाता है और क्रमशः पानी में मिट्टी के लेप गल जाने पर पुनः लेप रहित होकर वह ऊपर आ जाता है।

उसी प्रकार जीव 18 पापों का सेवन करके आठ कर्मों का बंध करता है जिस से भारी बना आत्मा अधोगति में नरक में जाता है और कर्मों के संपूर्ण नष्ट हो जाने पर वह ऊर्ध्व गमन कर शास्वत सिद्धि स्थान लोकाग्र में स्थित हो जाता है।

प्रेरणा शिक्षा–

श्रमण तो 18 पाप का त्यागी ही होता है; फिर भी जाने अनजाने झूठ, निंदा, कलह, कषाय, आदि पापों का सेवन न हो जाय इसका उसे ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि पाप का सेवन ही आठ कर्मों का उपार्जन करता है। श्रमणोपासक को भी एवं प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी को भी 18 पापों का भली भांति ज्ञान करके उनसे बचने का सदा प्रयत्न करना चाहिए। परनिंदा भी एक प्रबल पाप है इसे आगम में 'पीठ का मांस खाने' से उपमित किया है और इसे महान संसार भ्रमण कराने वाली कहा है। अतः निंदा, कषाय, रागद्वेष से आत्मा को भारी कर्मा नहीं बनाना चाहिए।

सप्तम अध्ययन

धन्ना सार्थवाह और चार बहुएं-

राजगृह नगर में सार्थवाह धन्य के चार पुत्र थे- धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित। चारों विवाहित हो चुके थे। उनकी पत्नियों के नाम अनुक्रम से इस प्रकार थे- उज्झिता या उज्जिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

धन्य सार्थवाह बहुत दूरदर्शी थे। भविष्य का विचार करने वाले थे। उनकी उम्र जब परिपक्व हो गई तब एक बार वे विचार करने लगे कि मैं वृद्धावस्था से ग्रस्त हो गया हूं मेरे पश्चात् कुटुम्ब की सुव्यवस्था कैसे कायम रहेगी? मुझे अपने जीवन काल में ही इसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस प्रकार विचार कर धन्य ने मन ही मन एक योजना निश्चित कर ली।

परीक्षा का आयोजन- योजना के अनुसार उन्होंने एक दिन अपने ज्ञातिजनों, सम्बन्धियों, मित्रों आदि को आमंत्रित किया। भोजनादि से सब का सत्कार-सन्मान किया और तत्पश्चात् अपनी चारों पुत्रवधुओं को सब के समक्ष बुलाकर चावलों (शालि) के पांच-पांच दाने देकर कहा- **''मेरे मांगने पर ये (पांच) दाने वापिस सोंपना।''**

पहली पुत्रवधु उज्झिता ने विचार किया कि बुढ़ापे में श्वसुरजी की मति मारी गई जान पड़ती है। इतना बड़ा समारोह करके यह तुच्छ भेंट देने की उन्हें सूझी, इस पर तुर्रा यह कि मांगने पर वापिस लौटा देने होंगे। कोठार में चावलों के भंडार भरे हैं। मांगने पर उस में से दे दूंगी। ऐसा विचार करके उसने वे दाने कचरे में फेंक दिये।

दूसरी पुत्रवधु ने सोचा- ''भले ही इन दानों का कुछ मूल्य न हो तथापि श्वसुरजी का यह प्रसाद है। फेंक देना उचित नहीं।'' इस प्रकार विचर करके उसने वे दाने खा लिये।

तीसरी ने विचार किया- ''अत्यन्त व्यवहार कुशल, अनुभवी और समृद्धिशाली वृद्ध श्वसुर ने इतने बड़े समारोह में ये दाने दिए हैं।'' इसमें उनका कोई विशिष्ट अभिप्राय होना चाहिए। अतएव इन दोनों की सुरक्षा करना उन्हें जतन से संभाल कर रखना चाहिए।

इस प्रकार सोच कर उसने उन्हें एक डिबिया में रख लिया और सदा उनकी सार संभाल रखने लगी।

चैथी पुत्रवधु रोहिणी बहुत बुद्धिमति थी- वह समझ गई कि दाने देने में कोई गूढ़ रहस्य निहित है। यह दाने परीक्षा की कसौटी बन सकते हैं।

उसने पांचों दाने अपने मायके (पितृगृह) भेज दिए उसकी सूचनानुसार मायके वालों ने उन्हें खेत में अलग बो दिया। प्रतिवर्ष बार-बार बोने से दाने बहुत हो गए, कोठार भर गया।

चारों बहुओं का परीक्षा फल- इस घटना को पांच वर्ष व्यतीत हो गए। तब धन्य सार्थवाह ने पुनः पूर्ववत समारोह आयोजित किया।

जिन्हें पहले निमंत्रित किया था, उन सब को पुनः निमंत्रित किया। सब का भोजन पान, गंध माला आदि से सत्कार किया। तत्पश्चात् पहले की ही भांति पुत्रवधुओं को सबके समक्ष बुला कर पांच पांच दाने, जो पहले दिए थे, वापिस मांगे।

पहली पुत्रवधु ने कोठार में से लाकर पांच दाने दे दिए। धन्य सार्थवाह ने जब पूछा कि क्या वे वही दाने हैं या दूसरे? तो उसने सत्य वृतान्त कह दिया। सुन कर सेठ ने उसे घर में झाड़ने बुहारने आदि का काम सौंपा। कहा तुम इसी योग्य हो।

दूसरी पुत्रवधु ने कहा- ''आपका दिया प्रसाद समझ कर मैं उन दानों को खा गई हूं।'' सार्थवाह ने उनके स्वभाव का अनुमान करके उसे भोजनशाला सम्बंधी कार्य सौंपा।

तीसरी पुत्रवधु ने पांचों दाने सुरक्षित रक्खे थे, अतएव उसे कोषाध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया।

चैथी पुत्रवधु ने कहा- पिताजी, वे पांच दाने गाड़ियों के बिना नहीं आ सकते। उन्हें लाने को कई गाड़ियां चाहिए।

जब धन्य सार्थवाह ने स्पष्टीकरण मांगा तो उसने सारा ब्योरा सुना दिया। गाड़ियां भेजी गई। गाड़ियां भर कर चावल आये। धन्य सेठ यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। सब के समक्ष रोहिणी की भूरी-भूरी प्रशंसा की। उसे गृहस्वामिनी के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया। कहा- **''तू प्रशंसनीय है बेटी''**। तेरे प्रताप से यह परिवार सुखी और समृद्धिशाली रहेगा।

दृष्टान्त का उपनयः शास्त्रकार इस उदाहरण को धर्म शिक्षा के रूप में इस प्रकार घटित करते हैं।

जो व्रती व्रत ग्रहण करके उन्हें त्याग देते हैं, वे पहली पुत्रवधु उज्झिता के समान इह भव परभव में दुखी होते हैं। सबकी अवहेलना के भाजन बनते हैं।

जो साधु पांच महाव्रतों को ग्रहण करके सांसारिक भोग उपभोग के लिए उनका उपयोग करते हैं। वे भी निन्दा के पात्र बन कर भवभ्रमण करते हैं।

जो साधु तीसरी पुत्रवधु रक्षिका के सदृश अंगीकृत पांच महाव्रतों की भली भांति रक्षा करते हैं, वे प्रशंसा पात्र होते हैं और उनका भविष्य मंगलमय होता है।

जो साधु रोहिणी के समान स्वीकृत संयम की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं निर्मल और निर्मलतर पालन करके संयम का विकास करते हैं, वे परमानन्द के भागी होते हैं।

प्रेरणा शिक्षा–

यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन का उपसंहार धर्मशिक्षा के रूप में किया गया है। धर्मशास्त्र का उद्देश्य मुख्यतः धर्मशिक्षा देना ही होता है तथापि उसे समझाने के लिए कथानक की योजना की गई है, वह गार्हस्थिक-पारिवारिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। **''योग्यं योग्येन योजयेत''** यह छोटी-सी उक्ति अपने भीतर विशाल अर्थ समाये हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति में योग्यता होती है। किन्तु उस योग्यता का सुपरिणाम तभी मिलता है जब उसे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य में नियुक्त किया जावे, मूल भूत योग्यता से प्रतिकूल कार्य में जोड़ देने पर योग्य से योग्य व्यक्ति भी अयोग्य सिद्ध होता है। उच्चतम कोटी का प्रखरमति विद्वान भी बढ़ई सुथार के कार्य में अयोग्यतम बन जाता है। योग्यतानुकूल योजना करने वाला कोई विरला ही होता है। धन्य सार्थवाह उन्हीं विरले योजकों में से एक था। अपने परिवार की सुव्यवस्था करने के लिए उसने जिस सूझ से काम लिया वह सभी के लिए मार्गदर्शक है। इस उदाहरण से लौकिक और लोकोत्तर सभी कार्यों को सफलता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं।

आठवां अध्ययन

मल्ली भगवती–

महाविदेह क्षेत्र की सलिलावती विजय की राजधानी वीतशोका थी। वहां के राजा का नाम बल था। किसी समय राजधानी में स्थविरों का आगम हुआ। धर्मदेशना श्रवण करके राजा बल अपना सुखद राज्य और एक सहत्र राजरानियों की मोह ममता त्याग कर मुनि धर्म में दीक्षित हो गया। तीव्र तपश्चर्या करके समस्त कर्मों को ध्वस्त कर मुक्त हुआ।

पूर्वभव– महाबल-बल राजा का उत्तराधिकारी उनका पुत्र महाबल हुआ। अचल, धरण आदि अन्य छह राजा उसके परम मित्र थे, जो साथ-साथ जन्में, खेले और बड़े हुए थे। उन्होंने निश्चय किया था कि सुख में, दुःख में, विदेश यात्रा में और दीक्षा में हम एक दूसरे का साथ देंगे। एक बार महाबल संसार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा लेने को तैयार हुए तो उनके साथी भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तैयार हो गए। सभी ने उत्कृष्ट साधना की। घोर तपश्चर्या की और जयन्त नामक अनुत्तर विमान में देवपर्याय में जन्म लिया।

तपस्या में मायाचरण का परिणाम– इस बीच एक अनहोनी घटना घटित हो गई थी। साधु अवस्था में महाबल मुनि के मन में कपट भाव उत्पन्न हो गया कि मैं यहां भी प्रमुख हूं और आगे भी प्रमुख बनूं, यह समान तपस्या से संभव नहीं था। अतः ज्येष्ठ होने के नाते वे दूसरों को पारणा कराकर स्वयं तपस्या आगे बढ़ा लेते थे। जबकि सातों मुनियों का एक सी तपस्या करने का निश्चय था, मगर छह मुनि चतुर्थभक्त करते तो महाबलमुनि षष्ठभक्त कर लेते। वे षष्ठभक्त करते तो महाबल अष्टमभक्त कर लेते। इस तपस्या का फल हुआ कि छह मुनियों को देव पर्याय में किंचित न्यून बत्तीस सागरोपम की आयु प्राप्त हुई तो महाबल मुनि को पूर्ण बत्तीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त हो गई। साथ ही उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध किया। जिससे मनुष्य के भव में भी वे अन्य छः से वरिष्ठ बने।

किन्तु कोई राजा हो या रंक, महामुनि हो या सामान्य गृहस्थ, कर्म किसी का लिहाज नहीं करते। कपट सेवन के फलस्वरूप महाबल ने स्त्रीनामकर्म का बन्ध कर लिया। जयन्त विमान से जब वे च्युत होकर मनुष्य पर्याय में अवतरित हुए तो उन्हें इसी भरतक्षेत्र में मिथिला नरेश कुंभ की महारानी प्रभावती के उदर से कन्या के रूप में जन्म लेना पड़ा। उनका नाम ''मल्ली'' रक्खा गया।

तीर्थंकरों का जन्म पुरुष के रूप में होता है किन्तु मल्ली कुमारी का जन्म महिला के रूप में होना जैन इतिहास की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक घटना है।

मल्ली कुमारी के छह अन्य साथी इससे पूर्व ही विभिन्न प्रदेशों में जन्म लेकर अपने-अपने प्रदेशों के राजा बन चुके थे। उनके नाम इस प्रकार है-

(1) प्रतिबुद्धि-इक्ष्वाकुराज, (2) चन्द्रध्वज-अंग देश का राजा, (3) शंख-काशीराज, (4) रूक्मि-कुणाल नरेश, (5) अदीनशत्रु-कुरुराज, (6) जितशत्रु-पंचालाधिपति ।

अनेक बार हम देखते हैं कि वर्तमान जीवन में किसी प्रकार का सम्पर्क न होने पर भी किसी प्राणी पर दृष्टि पड़ते ही हमारे हृदय में प्रीति या वात्सल्य का भाव उत्पन्न हो जाता है और किसी को देखते ही घृणा उमड़ पड़ती है। इन एक दूसरे से विपरीत मनोभावों का कोई व्यक्त कारण नहीं जान पड़ता। मगर ये भाव निष्कारण भी नहीं होते। वस्तुतः पूर्व जन्मों का संस्कारों को साथ लेकर ही मानव जन्म लेता है। वे संस्कार अप्रकट रूप में अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। पूर्व जन्म में किसी जीव के प्रति हमारा रागात्मक सम्बन्ध रहा है, उस पर दृष्टि पड़ते ही, अनायास ही हमारे हृदय में प्रीतिभाव उत्पन्न हो जाता है। इसके विपरीत जिसके साथ वैर विरोधात्मक सम्बन्ध रहा है, उसके प्रति सहसा विद्वेष की भावना जागृत हो उठती है। अनेकानेक जैन कथानकों में इस तथ्य की पुष्टि की गई है। भगवान पार्श्वनाथ और कमठ, महावीर और चरवाहा, गजसुकमाल और सौमिल ये प्रसिद्ध उदाहरण है।

हुआ यह कि मल्ली कुमारी के जीव के प्रति उसके पूर्व साथियों का जो अनुराग का सम्बन्ध था वह विभिन्न निमित्त पाकर जागृत हो गया और संयोगवश छहों राजा एक ही साथ उससे विवाह करने का दल-बल को लेकर मिथिला नगरी जा पहुंचे।

कौन राजा क्या निमित्त पाकर मल्लीकुमारी पर अनुरक्त हुआ वह वर्णन इस प्रकार है-

1. राजा प्रतिबुद्धि- प्रतिबुद्धि राजा की पद्मावती राणी का नागपूजा महोत्सव था। वहां पर एक विशाल पुष्प मंडप बनाया गया। उसके बीच में फूल मालाओं के समूह से बना हुआ एक श्री दाम कांड छत पर लटकाया गया था। यह सारी सजावट राणी की आज्ञा से की गई थी। राजा उस मण्डप और श्री दाम कांड को देख कर अति विस्मित हुआ और बारंबार निहारने लगा।

आखिर राजा से न रहा न गया और सुबुद्धि प्रधान से पूछ बैठा कि ऐसी मण्डप की शोभा पहले कहीं देखी है। प्रधान ने राजा से कहा कि मिथिला नगरी में मल्ली राजकुमारी की वर्षगांठ में ऐसा मंडप एवं श्री दाम कांड देखा था। उसकी अपेक्षा शोभा में यह लाखवां भाग भी नहीं है। फिर राजा के द्वारा पूछने पर मल्ली राजकुमारी के शरीर का एवं उसकी सुंदरता का वर्णन भी किया। उसे सुनकर प्रतिबुद्धि राजा को मल्ली राजकुमारी से विवाह करने का संकल्प उत्पन्न हुआ।

2. राज चन्द्रध्वज- चंपानगरी में परदेश जाकर व्यापार करने वाले एवं नौकाओं से जाकर व्यापार करने वाले अनेक व्यापारी रहते थे। एक बार वे परस्पर मंत्रणा करके विदेश यात्रा के लिए रवाना हुए। सैकड़ों लोग साथ हो गये थे। आगे जाकर बंदरगाह से नावा में सवार होकर समुद्र में जाने के लिए रवाना हुए। सैकड़ों योजन समुद्र मे जाने के बाद एक देव का उपद्रव हुआ।

अरणक श्रावक की धर्म परीक्षा- वहां आकाश में विकराल रूप धारण कर एक पिशाच आया और उस नावा में बैठे अरणक श्रावक को संबोधन करके बोला कि तू यह अपना सब धर्म कर्म, व्रत-नियम छोड़ दे, नहीं तो मैं इस नाव को आकाश में ले जाकर समुद्र में पटक दूंगा।

अरणक श्रावक ने उसे मन से ही उत्तर दे दिया कि मुझे कोई भी देव दानव धर्म से च्युत नहीं कर सकता है तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो। इस प्रकार निर्भय होकर पिशाच को चुनौति देकर वह धर्म घ्यान में लीन बन गया।

दो तीन बार धमकी देकर फिर देव ने जहाज को आकाश में उठा लिया फिर वहां और धमकी दी। अरणक श्रावक अडोल रहा सारे जहाज के लोग भयभीत हो रहे थे। अनेक प्रकार की मनौतियां कर रहे थे किन्तु अरणक श्रावक ने सागारी संथारा पचक्ख लिया था।

दैवी पुरस्कार– आखिर देव थक गया। धीरे से जहाज को नीचे रखा और पिशाच का रुप त्याग कर अपना देव रुप प्रकट कर उपस्थित हुआ। अरणक श्रावक की प्रशंसा करी, क्षमा मांगी और कुंडलों की दो जोड़ी देकर चला गया।

वहां से वे वणिक लोग मिथिला नगरी पहुंचे राजा को भेंट स्वरूप एक कुंडल जोड़ी देकर वहां व्यापार करने की आज्ञा मांगी। कुंभ राजा ने उनके सामने ही मल्लीकुमारी को बुलाकर के कुंडल पहना दिये और वणिकों को सत्कार-सन्मान करके व्यापार करने की अनुमति दी। साथ ही ठहरने को स्थान भी दिया।

व्यापार करके वे पुनः अपनी चंपा नगरी में आए और वहां के राजा चन्द्रध्वज को बची हुई एक कुंडल जोड़ी भेंट स्वरूप दी। राजा ने उन्हें पूछा कि तुमने भ्रमण क्रम में कोई आश्चर्य देखा है? वणिकों ने राजा से कहा कि मिथिला नगरी के राजभवन में मल्लीकुमारी को आश्चर्य के रूप में देखा है। वह जैसी श्रेष्ठ और सुंदर है, वैसी जगत में कोई कन्या नहीं है। यह सुनकर राजा को मल्लीकुमारी से विवाह करने का संकल्प हुआ।

3. रुक्मि राजा– कुणाल देश के राजा रुक्मि की पुत्री सुबाहुकुमारी का चातुर्मासिक स्नान महोत्सव मनाना गया। तदनंतर वह राजकुमारी राजा को चरण वंदन करने आई। राजा ने पुत्री को गोद में बिठाया और उसके रूप लावण्य से वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने अंतःपुर में रहने वाले वर्षधर को पूछा लिया कि ऐसा चौमासी स्नान महोत्सव कभी कहीं देखा है? उत्तर में उसने मल्लीकुमारी के चौमासी स्नान महोत्सव का जिक्र किया और कहा कि यह महोत्सव तो उसके लाख भाग के बराबर भी नहीं है। यह सुनकर रुक्मि राजा ने मल्लीकुमारी के साथ विवाह करने का संकल्प किया।

4. शंख राजा– किसी समय मल्लीकुमारी का दिव्य कुंडल टूट गया अर्थात् उसका जोड़ स्थान खुल गया। राजा ने स्वर्णकारों को बुलाकर ठीक करने दिया। किन्तु दिव्य वस्तु होने से उसे वे नहीं जोड़ सके। कुंभ राजा ने अप्रसन्न होकर देश निकाला दे दिया। वे स्वर्णकार वहां से निकल कर वाराणसी नगरी में आए और शंख राजा से वहां रहने की अनुमति मांगी। राजा के पूछने पर देश निकाले का कारण भी स्पष्ट कर दिया।

राजा ने पूछ लिया कि वह मल्लीकुमारी कैसी है? उत्तर में स्वर्णकारों ने उसके रुप यौवन की प्रशंसा करते हुए बताया कि संसार में उसके समान कोई कन्या नहीं हो सकती। यह सुनकर शंख राजा ने मल्लीकुमारी से विवाह करने का संकल्प किया।

5. राजा अदीनशत्रु– मल्लीकुमारी के भाई मल्लदिन्न कुमार ने अपने लिए एक सुंदर भव्य विशाल चित्रशाला बनवाई। किसी चित्रकार ने एक बार मल्लीकुमारी के पांव का अंगुठा देख लिया। उससे उसे मल्ली कुमारी का पूरा रूप चित्रित करने का संकल्प हुआ और चित्रशाला के किसी योग्य स्थान पर साक्षात रूप चित्रित कर दिया।

चित्रशाला पूर्ण होने पर कुमार अपने अंतःपुर सहित वहां आया, चित्रशाला की सुंदरता देखने लगा। अचानक वहां मल्ली कुमारी को देखकर लज्जित हुआ किन्तु जब यह जानकारी मिली कि चित्रकार ने यह चित्र बनाया है। तो कुमार को चित्रकार की मूर्खता पर गुस्सा आया। उसका अंगुठा और उसके पास की एक अंगुली कटवा कर देश निकाला दे दिया।

वह चित्रकार अदीन शत्रु राजा के पास हस्तिनापुर आया और सारी हकीकत कह कर वहां रहने की आज्ञा मांगी। राजा ने उसे रहने की आज्ञा दे दी और पूछा उस मल्लीकुमारी का रुप कैसा है ? तब चित्रकार ने अपने पास रखे चित्र को निकाल कर दिखाया और कहा कि यह मल्लीकुमारी का चित्र है। चित्र देख राजा बहुत खुश हुआ और मल्लीकुमारी के साथ विवाह करने का संकल्प किया।

6. राजा जितशत्रु– मिथिला नगरी में ''चोक्खा'' नाम की परिव्राजिका रहती थी। वह दान धर्म, शौच धर्म, तीर्थं स्नान आदि की प्ररूपणा करती थी एवं उसी से स्वर्ग गमन का कथन करती थी। एक बार वह मल्लीकुमारी के भवन में आकर योग्य स्थान में पानी छिड़क कर घास बिछाकर उस पर आसन रख कर बैठ गई और मल्लीकुमारी को अपने धर्म का उपदेश देने लगी।

मल्लीकुमारी और चोक्खा परिव्राजिका– मल्लीकुमारी ने उस चोक्खा को पूछा कि तुम्हारे धर्म का मूल क्या है। उसने कहा कि हमारा शूचिमूलक धर्म है और सर्वत्र जल से शुद्धि करने पर सभी स्थान एवं पदार्थ पवित्र हो जाते हैं। इस प्रकार जीव भी पवित्र होकर स्वर्ग में जाता है।

मल्लीकुमारी ने उसे कहा कि जैसे कोई खून से भरे कपड़े को खून से धोवे तो वह पवित्र नहीं हो सकता, वैसे ही पाप सेवन से भारी बनी आत्मा पुनः हिंसादि पापों के सेवन से शुद्ध पवित्र एवं मुक्त नहीं हो सकती।

चोक्खा परिव्राजिका निरुत्तर हो गई और दासियों के द्वारा अपमानित किए जाने पर रुष्ट होकर वहां से निकल गई और मिथिला नगरी को छोड़कर कपिलपुर नगर में अपने परिव्राजिकाओं के साथ पहुंची और यथास्थान ठहर गई। वहां भी एक बार राज भवन में गई। राजा अदीनशत्रु ने सिंहासन से उतर कर उसे सन्मान दिया बैठने को आसन दिय।

चोक्खा परिव्राजिका ने पानी का छिड़काव किया, घास बिछाया, उस पर अपना आसन रख कर बैठ गई। राजा का कुशल क्षेम पूछा और अपने दान धर्म, शुचिधर्म, तीर्थं स्नान धर्म की प्ररूपणा की और उपदेश दिया।

वहां राजा अपने राणियों के परिवार सहित बैठा था। वह अपनी राणियों के सौन्दर्य में विस्मित था। उसने चैक्खा से पूछा कि तुमने ऐसा अंतःपुर कभी कहीं देखा?

चौक्खा ने राजा का उपहास करते हुए कहा कि हे देवानुप्रिय! आप इस प्रकार कहते हुए कूप मंडूक के समान जान पड़ते हो। ऐसा कह कर उसने कूप मंडूक का दृष्टान्त विस्तार से कहा। अंत में राजा के पूछने पर मल्लीकुमारी के रूप यौवन गुण आदि की प्रशंसा की और चली गई। राजा मल्लीकुमारी के रुप के गुणों से आकृष्ट हुआ और उससे विवाह करने का संकल्प किया।

एक साथ छः दूत मिथिला में– इस प्रकार छहों राजाओं को संयोगवश एक साथ संकल्प हुआ और उन्होंने अपने दूत मिथिला नगरी में भेजे। छहों दूत एक साथ पहुंचे। एक साथ देखकर कुंभ राजा क्रुद्ध हुआ। अपमानित कर छहों को निकाल दिया।

उधर मल्ली कुमारी ने अवधिज्ञान के साथ जन्म लिया था। अवधिज्ञान के उपयोग से उन्होंने अपने छहों साथियों की अवस्थिति जान ली थी। भविष्य में घटित होने वाली घटना भी उन्हें विदित हो गई थी। अतएव उसके प्रतीकार की तैयारी भी करली थी। तैयारी इस प्रकार की थी-

मल्ली कुमारी ने हूबहू अपनी जैसी एक प्रतिमा का निर्माण करवाया। अंदर से वह पोली थी और मस्तक में एक बड़ा सा छिद्र था। उस प्रतिमा को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह मल्ली नहीं, मल्ली की प्रतिमा है। मल्ली कुमारी जो भोजन पान करती उसका एक पिंड मस्तक के छेद में से प्रतिमा में डाल देती थी। वह भोजन पानी प्रतिमा के भीतर जाकर सड़ता रहता और उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध उत्पन्न होती। किन्तु ढक्कन होने से वह दुर्गन्ध वहीं की वहीं दबी रहती थी। जहां प्रतिमा अवस्थित थी, उसके इर्दगिर्द मल्ली ने जाली दार गृहों का भी निर्माण करवाया था। उन गृहों में बैठने वाले एक दूसरे को नहीं देख सकते थे।

छहों राजा मिथिला में– जब छह राजा एक साथ मल्ली कुमारी का वरण करने के लिए मिथिला आ पहुंचे तो राजा कुंभ बहुत असमंजस में पड़ गए। वे सब मिल कर कुंभ राजा के साथ युद्ध करने के लिए तत्पर थे। परस्पर में परामर्श करके ही वे एक साथ चढ़ आए थे। कुंभ ने छहों राजाओं का सामना किया। वीरता के साथ संग्राम किया, मगर अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकता है? आखिर कुंभ पराजित हुआ और लौटकर अपने महल में आ गया। वह अत्यन्त गहरे विषाद में डूब गया, ''किंकर्त्तव्यविमूढ़'' हो गया।

उसी समय राजकुमारी अपने पिता कुंभराज को प्रणाम करने गई। मगर कुंभ चिन्ता में ऐसे निमग्न थे कि उन्हें उसके आने का भान ही नहीं हुआ। तब कुमारी मल्ली ने गहरी चिन्ता का कारण पूछा। कुंभ राजा ने उसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

मल्ली कुमारी ने इसी प्रसंग के लिए अपनी प्रतिमा बनवा कर सारी तैयारी कर रक्खी थी। पिता से कहा **''आप चिन्ता त्यागिए''** और प्रत्येक राजा के पास गुप्त रूप से दूत भेज कर कहला दीजिए कि आपको ही मल्ली कुमारी दी जाएगी। गुप्त रूप से सन्ध्या समय राजमहल में आ जाइए। उन सब को जालीदार गृहों में अलग अलग ठहरा दीजिए।

मल्ली कुमारी का सफल उपाय– कुंभ राजा ने ऐसा ही किया। छहों राजा मल्ली कुमारी का वरण करने की लालसा से गर्भगृहों में आ पहुंचे। प्रभात होने पर सबने मल्ली की प्रतिमा को देखा और समझ लिया कि यही कुमारी मल्ली है। सब उसी की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगे। तब मल्ली कुमारी वहां पहुंची और प्रतिमा के मस्तक के छिद्र को उघाड़ दिया। छिद्र को उघाड़ते ही उसमें से जो दुर्गन्ध निकली वह असह्य हो गई। सभी राजा घबरा उठे। सबने अपनी अपनी नाक दबाई और मुंह बिगाड़ लिया। विषयासक्त राजाओं को उद्‌बुद्ध करने का यही उपयुक्त अवसर था। मल्ली कुमारी ने नाक मुंह बिगाड़ने का कारण पूछा। सभी का एक ही उत्तर था असह्य दुर्गन्ध।

तब राजकुमारी ने राजाओं से कहा– देवानुप्रियों ! इस प्रतिमा में भोजन पानी का एक एक पिण्ड डालने का ऐसा अनिष्ट एवं अमनोज्ञ परिणाम हुआ तो इस औदारिक शरीर का परिणाम कितना अशुभ, अनिष्ट और अमनोज्ञ होगा ? यह शरीर तो मल, मूत्र रुधिर आदि की थैली है। इस के प्रत्येक द्वार से गंदे पदार्थ झरते रहते हैं। सड़न-गलन इस का स्वभाव है। इस पर चमड़ी की चादर हटा दी जाए तो यह शरीर कितना असुन्दर एवं वीभत्स प्रतीत होगा। वह चीलों कौवों का भक्ष्य बन जाएगा। अतः मलमूत्र की इस थैली पर आप क्यों मोहित हो रहे हैं ?

इस प्रकार सम्बोधित करके मल्ली कुमारी ने पूर्वजन्मों का वृतान्त उन्हें कह सुनाया। किस प्रकार वे सब साथ दीक्षित हुए थे, किस प्रकार उसने कपटाचरण किया था, किस प्रकार वे सब देव-पर्याय में उत्पन्न हुए थे, इत्यादि सब वर्णन कह सुनाया।

राजाओं को जाति स्मरण ज्ञान एवं बोध– मल्ली द्वारा पूर्वभवों का वृत्तांत सुनते ही छहों राजाओं को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। सब संबुद्ध हो गए। तब गर्भगृहों के द्वारा उन्मुक्त कर दिए गए। उस समय वातावरण में अनुराग के स्थान पर विराग छा गया। उसी समय राजकुमारी ने दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प किया।

तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान देने के पश्चात् मल्लीकुमारी ने जिन प्रवज्या अंगीकार कर ली। जिस दिन दीक्षा अंगीकार की उसी दिन उन्हें केवलज्ञान दर्शन की प्राप्ति हो गई। तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली। अन्त में सभी ने मुक्ति प्राप्त की।

भगवती मल्ली तीर्थंकर ने भी चैत्र शुक्ला चतुर्थी के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

ज्ञातव्य– 1. कुंभ राजा और प्रभावती राणी ने श्रावक व्रत स्वीकार किए।

2. छह राजाओं ने संयम अंगीकार किया और चौदह पूर्वी होकर अंत में मोक्ष गये।

3. मल्लीनाथ तीर्थंकर के 28 गणधर थे।

4. वे उन्नीसवें तीर्थंकर थे। 25 धनुष के ऊंचे थे। 100 वर्ष घर में रहे, 55 हजार वर्ष की सम्पूर्ण उम्र थी।

5. पूर्व भव में महाविदेह क्षेत्र में महाबल के भव में 84 लाख वर्ष तक संयम का पालन किया था। कुल उम्र वहां 84 लाख पूर्व की थी।

6. वहां तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था। तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन के 20 बोल इस प्रकार है-

बीस बोल– 1. अरिहंत, 2, सिद्ध, 3. जिन सिद्धांत, 4. गुरु, 5. स्थविर, 6. बहुश्रुत, 7. तपस्वी इन सात की भक्ति बहुमान गुण कीर्तन करने से। 8. बांरबार ज्ञान में उपयोग करना, 9. दर्शन शुद्धि, 10. विनय, 11. भाव युक्त प्रतिक्रमण, 12. निरतिचार संयम व्रतों का पालन, 13. अप्रमत्त जीवन, 14. तपस्या, 15. त्याग नियम या दान, 16. अपूर्व ज्ञान ग्रहण, 17. समाधि भाव प्रसन्न भाव में रहना या दूसरों को शाता उपजाना, 18. सेवा करना, 19. श्रुत भक्ति, 20. जिन शासन की प्रभावना करना।

इनमें से एक या अनेक बोल के सेवन में उत्कृष्ट रसायन आत्म परिणाम होने पर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध होता है। इस बंध के बाद जीव तीसरे भव में अवश्य तीर्थंकर बनता है एवं मोक्ष प्राप्त करता है।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य- 1. धर्म में और तप में भी सरलता गुण का होना नितांत आवश्यक है। कपट भाव तनिक भी क्षम्य नहीं है। विशाल तप साधना काल में अल्पतम माया से महाबल के जीव को मिथ्यात्व की प्राप्ति और स्त्रीत्व का बंध हो गया था। तीर्थंकर बन जाने पर भी जिसका फल अवश्यंभावी रहा।

2. मित्रों के साथ कभी भी अविश्वास धोखा नहीं करना चाहिए। यदि साथ में संयम लेने की वार्ता कर चुके हों तो भी समय आने पर नहीं मुकरना चाहिए। यथा- महाबल के 6 मित्र राजा होते हुए भी उसके साथ दीक्षित हुए एवं आत्म कल्याण साधा।

3. मन एवं इच्छा पर काबू नहीं हो तो व्यक्ति अपने प्राप्त पूर्ण सुखों में भी असंतुष्ट हो जाता है और अप्राप्त की लालसा में गोते खाता है। यथा-छहों राजा राज्य ऋद्धि राणियों के परिवार से सम्पन्न थे फिर भी मल्लिकुमारी का वर्णन सुनकर उनमें अनुरक्त हुए और युद्ध करने चले। यह सब असंतोष वृत्ति है। ज्ञानी होने का फल यह है कि अपने प्राप्त सामग्री में संतोष मानते हुए क्रमशः उसके त्याग भावना की वृद्धि करना चाहिए।

4. मोह का नशा यदि अधिक चढ़ा हो तो वह प्रेम और उपदेश से एक बार नहीं मिट सकता किन्तु एक बार मन के प्रतिकूल भयंकर परिस्थिति आने पर और फिर कुशल उपदेष्टा का संयोग मिले तो परिवर्तित हो सकता है। यथा-तेतलिपुत्र प्रधान का दृष्टांत आगे चैदहवें अध्ययन में है। इसी आशय से छहों राजा को एक साथ प्रतिबोध देने के लिए अर्थात् उनके महा मोह नशे को शांत करने के लिए अवधिज्ञान से जानकर मल्लिकुमारी ने उचित उपाय निकाल लिया था तदनुसार ही जालगृह और अपने आकृति की पूतली बनाई और सदा अपने भोजन का एक कवल जितना भाग उसमें डाला। प्रसंग उपस्थित होने पर ढक्कन को उघाड़ कर दुस्सह दुर्गन्ध से आकुल व्याकुल बने हुए राजाओं को बोध और ज्ञान देकर साथ ही पूर्व भव बताकर विरक्त बनाया एवं भोग से योग की तरफ अग्रसर किया।

5. मल्लिकुमारी ने झूठा कवल पुतली में नहीं डाला किन्तु एक कवल जितना शुद्ध आहार ही पुतली में डाला था। बंद होने से पूरा सूख नहीं पाने से उसमें दुर्गन्ध पैदा हुई थी किन्तु समुर्च्छिम मनुष्य या त्रस जीवों की उत्पत्ति नहीं होवे ऐसे ज्ञान और विवेक से प्रवृत्त की गई थी। केवल दुर्गन्ध होने मात्र से ही उनका प्रयोजन था।

विशाल भवन, जालगृह एवं पुतली आदि के आरम्भ जन्य निर्माण प्रवृति के साथ आहार के दुर्गन्ध की प्रवृति के आरंभ का कोई स्वतंत्र अधिक महत्व नहीं रह जाता है।

अर्थात् भवन निर्माण के हेतुभूत पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि के विशाल आरम्भ के सामने आहार के दुर्गन्धित होने का आरम्भ नगण्य समझना चाहिए। वह अपेक्षाकृत इतना अधिक महत्व देने जैसा नहीं है।

6. अपनी भौतिक ऋद्धि में कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए। संसार में कई एक से बढ़कर एक भौतिक वैभव वाले जीव होते ही रहते हैं। चाहे वह कोई महोत्सव हो या सजावट हो, कूप मंडूक नहीं बन कर विशाल दृष्टि रखनी चाहिए।

7. परीक्षा की घड़िएं जब आती हैं तब बहुत गंभीर और सहनशील बनना चाहिए। उस समय भ्रमित लोक निंदा, उलाहना और कष्टों की उपेक्षा करना आवश्यक हो जाता है। यथा अरणक श्रावक ने जब धर्म परीक्षार्थ देव उपद्रव आया जान लिया तब उसने इन्हीं उक्त गुणों को धारण कर निर्भय और दृढ़ मनोबल के साथ काम लिया। तभी मानव की शांति और धैर्य के आगे दानव की विकराल शक्ति विफल हुई और देव नतमस्तक हो गया।

8. परिग्रह की मर्यादा वाला श्रावक अचानक प्राप्त संपत्ति अपने पास नहीं रखता है। यथा- अरणक श्रावक ने देव से प्राप्त कुण्डल की जोड़ी दोनों राजाओं को भेंट स्वरूप दे दी।

9. संपन्न श्रावक अपने आस-पास में रहने वाले सामान्य परिस्थिति वाले जन समुदाय को व्यापार में अनेक प्रकार से सहयोग करे तो यह उनकी एक प्रकार की अनुकंपा और सहवर्ती लोगों के साथ सहानुभूति का व्यवहार होता है। यह श्रावक का व्यवहारिक आदर्श जीवन है। ऐसे व्यवहार से धर्म और धर्मीजन प्रशंसित होते हैं। जीवों के प्रति उपकार होता है। अपने कार्य में ही अन्य का भी काम हो जाता है। यह व्यवहारिक श्रावक जीवन का कर्त्तव्य है। व्यवहारिक जीवन से आगे बढ़कर निवृत्त साधना वाला श्रावक फिर स्वयं भी इन प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है। उसका लक्ष्य आत्म साधना का प्रमुख हो जाता है। उसके लिए सामाजिक और व्यवहारिक जिम्मेदारियां कर्तव्य और आदर्श गौण हो जाते हैं। यथा- उपासक दशा सूत्र वर्णित आनंद आदि दसों श्रावकों का अंतिम छः वर्ष का साधना मय जीवन।

सार यह है कि अरणक श्रावक के जीवन से धर्म में दृढ़ता,सहवर्त्तियों को सहयोग एवं परिग्रह की सीमा में सतर्क रहना, मन को लोभान्वित नहीं करना इत्यादि शिक्षाएं ग्रहण करनी चाहिए।

10. अपनी कला में कोई कितना भी निपुण हो किन्तु उसकी प्रवृत्ति में विवेक बुद्धि न हो तो उसे लाभ और यश की जगह दुःख और तिरस्कार की प्राप्ति होती है। यथा-मिथिला नगरी का दक्ष चित्रकार। उसके पास चमत्कार पूर्ण कला थी किन्तु विवेक बुद्धि के अभाव में उसे दंडित होना पड़ा।

अतः ज्ञान के साथ विवेक ज्ञान सीखना सीखाना भी आवश्यक समझना चाहिए।

मुनियों को भी सामूहिक जीवन में विवेक की बहुत आवश्यकता है। किस परिस्थिति में कितने विवेक से उत्सर्ग मार्ग पर चलना चाहिए और किस तुफानी परिस्थिति में कितने विवेक के साथ अपवाद मार्ग पर चलना आवश्यक हो जाता है। यह विवेक ज्ञान अवश्य सीखना एवं सीखाना चाहिए। हर परिस्थिति में एकांत उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना यह गच्छ मुक्त या विशिष्ट साधना रत साधकों के लिए उचित है किन्तु गच्छ गत सामूहिक जीवन वाले स्थविर कल्पी साधुओं का सामाजिक और व्यवहारिक जीवन होता है। उन्हें परिस्थितिक उचित विवेक के साथ ही व्यवहार करना श्रेष्ठ एवं शोभाजनक होता है।

जिस प्रकार श्रावक की गृहस्थ जीवन युक्त साधना और निवृत्ति साधना यों दो विभाग है उसी प्रकार मुनि जीवन के भी गच्छ गत और गच्छ मुक्त या सामान्य साधक और विशिष्ट साधक अथवा स्थविर कल्पी और जिन कल्पी ऐसे साधना के दो विभाग हैं। एक में व्यवहार और विवेक आवश्यक है तो दूसरे विभाग में व्यवहार विवेक गौण हो जाता है क्योंकि वे निवृत्त साधक कहे जाते हैं।

11. शुचि मूलक धर्म में पानी के जीवों का आरंभ (पाप) करके उसे धर्म और मुक्ति मार्ग माना जाता है। यह भ्रामक एवं अशुद्ध सिद्धांत है। इसीलिए ऐसे सिद्धान्त को खून से खून की शुद्धि करने की वृत्ति की उपमा दी गई है।

अतः प्रत्येक धर्मार्थी मुमुक्षु प्राणी को यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि छः काया के जीवों की किसी भी प्रकार से किसी भी उद्देश्य से की गई हिंसा या पाप प्रवृत्ति कभी भी मोक्ष दायक शुद्ध पवित्र धर्म का वाना नहीं ले सकती है। अतः अपनी आत्मा में यह घोष गुंजायमान रखना चाहिए कि-

सब जीव रक्षा यही परीक्षा, धर्म उसको जानिए।
जहां होत हिंसा, नहीं है संशय, अधर्म वही पहिचानिए।

इसी कारण से शुचि धर्मी चोक्खा परिव्राजिका मल्लीकुमारी से पराजित और निरुत्तर हो गई थी।

12. जीवन कब किस निमित्त से कितना परिवर्तित हो जाता है इसका अनुमान और कल्पना करना छद्मस्थों के लिए असंभव सा है। अतः आशावादी और योग्य पुरुषार्थ रत जीवन जीना चाहिए एवं अपने क्षयोपशम अनुसार गुणवृद्धि के मार्गों का अनुसरण और अनुपालन करने में आलस्य नहीं करना चाहिए।

13. यदि किसी के जीवन को सुधारने की भावना हो तो उसके प्रति अपने हृदय में किंचित भी तिरस्कार की भावना या घृणा भावना नहीं होनी चाहिए एवं परिपूर्ण आत्मीयता होनी चाहिए। साथ ही अपने सामर्थ्य का ज्ञान भी होना चाहिए। उसके बाद विवेक पूर्वक किया गया प्रयत्न असंभव से कार्य को भी संभव और सफल बना सकता है। यथा- मल्लीकुमारी का विवाह की इच्छा वाले छः राजाओं को एक साथ प्रतिबोध देकर सन्मार्ग में लगा देना।

इस प्रकार आगम अध्ययन के साथ-साथ उस पर चारित्र निर्माण का तुलनात्मक चिंतन किया जाय; जीवन में उतारा जाय, तो विशेष लाभ हासिल किया जा सकता है।

14. मल्लिनाथ भगवान की निर्वाण तिथि का वर्णन करते हुए सूत्र में कहा गया है कि ग्रीष्म ऋतु का पहला महिना दूसरा पक्ष और चैत्र सुदी चतुर्थी के दिन 500 साधु और 500 साध्वियों के साथ भगवान मोक्ष पधारे।

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि महिने का प्रथम पक्ष वदी कहा दूसरा पक्ष सुदी कहा। इससे यह सिद्ध होता है कि जैन सिद्धांत के अनुसार अमांत महिने या वर्ष नहीं होते किन्तु महिना और वर्ष पूर्णिमांत होता है। ऋतु भी पूर्णिमांत होती है।

नौवां अध्ययन

जिनपाल और जिनरक्षित- चम्पा नगरी के निवासी माकन्दी सार्थवाह के दो पुत्र थे- जिन पालित और जिन रक्षित। वे ग्यारह बार लवणसमुद्र में यात्रा कर चुके थे। उनकी यात्रा का उद्देश्य व्यापार करना था। वे जब भी समुद्रयात्रा पर गए, अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करके लौटे। इससे उनका साहस बढ़ गया। उन्होंने बारहवीं बार समुद्रयात्रा करने का निश्चय किया। माता-पिता से अनुमति मांगी।

बारहवीं समुद्र यात्रा संकट ग्रस्त- माता-पिता ने उन्हें यात्रा करने से रोकना चाहा। कहा पुत्रों! पूर्वजों द्वारा उपार्जित धन सम्पत्ति प्रचुर परिमाण में अपने पास विद्यमान है। सात पीढ़ियों तक उपभोग करने पर भी वह समाप्त नहीं होगी। समाज में हमें पर्याप्त प्रतिष्ठा भी प्राप्त है। फिर अनेकानेक विघ्नों से परिपूर्ण समुद्रयात्रा करने की क्या आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त बारहवी यात्रा अनेक संकटों से परिपूर्ण होती है। अतएव यात्रा का विचार स्थगित कर देना उचित है।

बहुत समझाने बुझाने पर भी जवानी के जोश में लड़के नहीं माने और यात्रा पर चल पड़े। समुद्र में काफी दूर जाने पर माता-पिता का कहा सत्य प्रत्यक्ष होने लगा। अकाल में मेघों की भीषण गर्जना होने लगी, आकाश में बिजली तांडव नृत्य करने लगी और प्रलयकाल जैसी भयानक आंधी ने रौद्र रूप धारण कर लिया। जिनपालित और जिनरक्षित का यान उस आंधी में फंस गया। यान छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया। व्यापार के लिए जो माल भरा था, वह सागर के गर्भ में समा गया। दोनों भाई निराधार और निरवलम्ब हो गए। उन्होंने जीवन की आशा त्याग दी। उस समय माता-पिता की बात न मानने और अपने हठ पर कायम रहने के लिए उन्हें कितना पश्चाताप हुआ होगा यह अनुमान करना कठिन नहीं है।

संयोगवश उन्हें अपने यान का एक पटिया हाथ लग गया। उसके सहारे तैरते तैरते वे समुद्र के किनारे जा लगे। जिस प्रदेश में वे किनारे लगे वह प्रदेश रत्नद्वीप था। इस द्वीप के मध्यभाग में रत्न देवी निवास करती थी। उसका एक अत्यन्त सुंदर महल था, जिसके चारों दिशाओं में चार वनखंड थे।

रत्नदेवी ने अवधिज्ञान से माकंदीपुत्रों को विपद्ग्रस्त अवस्था में समुद्रतट पर देखा और तत्काल उनके पास आ पहुंची। बोली- यदि तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो तो मेरे साथ चलो और मेरे साथ विपुल भोग भोगते हुए आनंदपूर्वक रहो। अगर मेरी बात नहीं मानते, भोग भोगना स्वीकार नहीं करते तो इस तलवार से तुम्हारे मस्तक काट कर फेंक देती हूं।

दोनों भाई रयणादेवी के चंगुल में- बेचारे माकन्दीपुत्रों के सामने दूसरा कोई विकल्प नहीं था। उन्होंने देवी की बात मान्य कर ली। उसके प्रासाद में चले गए और उसकी इच्छा तृप्त करने लगे।

इन्द्र के आदेश से, सुस्थित देव ने रत्न देवी को लवणसमुद्र की सफाई के लिए नियुक्त कर रक्खा था। सफाई के लिए जाते समय उसने माकंदीपुत्रों को तीन दिशाओं में स्थित तीन वनखण्डों में जाने एवं घूमने का परामर्श दिया किन्तु दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जाने का निषेध किया। कहा- उस में एक अत्यन्त भयंकर सर्प रहता है, वहां गए तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

एक बार दोनों भाईयों के मन में आया देखें दक्षिण दिशा के वनखण्ड में क्या है? देवी ने क्यों वहां जाने को मना किया है? वे उस ओर चल पड़े। वहां जाने पर उन्होंने एक पुरुष को शूली पर चढ़ा देखा। पूछने पर पता लगा कि वह भी उन्हीं की तरह देवी के चक्कर में फंस गया था और किसी सामान्य अपराध के कारण देवी ने उसे शूली पर चढ़ा दिया है।

उसकी करुण कहानी सुनकर माकंदीपुत्रों का हृदय कांप उठा। अपने भविष्य की कल्पना से वे बेचैन हो गए। तब उन्होंने उस पुरुष से अपने छुटकारे का उपाय पूछा। उपाय उसने बतला दिया।

उपकारी शैलक यक्ष- पूर्व के वनखण्ड में अश्वरूपधारी शैलक नामक यक्ष रहता था। अष्टमी आदि तिथियों के दिन, एक निश्चित समय पर, वहां बुलन्द आवाज में घोषणा किया करता था- ''**कं तारयामि कं पालयामि**''। अर्थात् किसे तारूं, किसे पालूं ? एक दिन दोनों भाई वहां जा पहुंचे और उन्होंने अपने को तारने और पालने की प्रार्थना की।

शैलक यक्ष ने उनकी प्रार्थना स्वीकार तो की किन्तु एक शर्त के साथ। उसने कहा- ''रत्नदेवी अत्यन्त पापिनी, चण्डा, रौद्रा, क्षुद्रा और साहसिका है।'' जब मैं तुम्हें ले जाऊंगा तो वह अनेक उपद्रव करेगी, ललचाएगी, मीठी-मीठी बातें करेगी। तुम उसके प्रलोभन में आ गए तो मैं तत्काल अपनी पीठ पर से तुम्हें समुद्र में गिरा दूंगा। प्रलोभन में न आए, अपने मन को दृढ़ रक्खा तो तुम्हें चम्पानगरी तक पहुंचा दूंगा।

शैलक यक्ष दोनों को पीठ पर बिठाकर लवणसमुद्र के ऊपर चला जा रहा था। रत्नदेवी जब वापिस लौटी और दोनों को वहां न देखा तो अवधिज्ञान से जान लिया कि वे मेरे चंगुल से निकल भागे हैं। तीव्र गति से उसका पीछा किया उन्हें पा लिया। अनेक प्रकार से विलाप किया परन्तु जिनपालित शैलक यक्ष की चेतावनी को ध्यान में रखकर अविचल रहा। उसने अपने मन पर पूरी तरह अंकुश रखा परन्तु जिनरक्षित का मन डिग गया। श्रृंगार और करुणाजनक वाणी सुनकर रत्नदेवी के प्रति उसके मन में अनुराग जागृत हो उठा।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार यक्ष ने उसे पीठ से गिरा दिया और निर्दय हृदय रत्नदेवी ने तलवार पर झेल कर उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए। जिनपालित अपने मन पर नियंत्रण रखकर दृढ़ रहा और सकुशल चम्पा नगरी में पहुंच गया। पारिवारिक जनों से मिला और माता-पिता की शिक्षा न मानने के लिए पछतावा करने लगा।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. आप्त जनों ने संक्षिप्त सूत्र में साधना का मूलभूत रहस्य प्रकट करते हुए महत्वपूर्ण सूचना दी है- **''एगे जिए जिया पंच''**। अर्थात् एक मन पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो पांचों इन्द्रियों पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है। किन्तु मन पर विजय प्राप्त करना साधारण कार्य नहीं। मन बड़ा ही साहसिक, चंचल और हठीला होता है। उसे जिस ओर जाने से रोकने का प्रयास किया जाता है, उसी ओर वह हठात् जाता है। ऐसी स्थिति में उसे वशीभूत करना बहुत कठिन है। तीव्रतर संकल्प हो, उस संकल्प को बारम्बार दोहराते रहा जाए, निरंतर सतर्क सावधान रहा जाए, अभ्यास और वैराग्य-वृत्ति का आसेवन किया जाए, धर्मशिक्षा को सदैव जागृत रक्खा जाए, तो उसे वश में किया जा सकता है। शास्त्रों में नाना प्रकार के अनुष्ठानों का, क्रियाकलापों का जो वर्णन किया गया है, उनका प्रधान उद्देश्य मन को वशीभूत करना ही है।

2. इन्द्रियां मन की दासी है। जब मन पर आत्मा का पूरा अधिकार हो जाता है तो इंद्रियां अनायास ही काबू में आ जाती है।

3. इसके विपरीत मन यदि स्वच्छन्द रहा तो इन्द्रियां भी पतन की दिशा में अग्रसर हो जाती है। उसके पतन की सीमा नहीं रहती। **''विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः''** वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती है। जीवन में जब यह स्थिति उत्पन्न होती है तो इहभव और परभव दोनों दुःखदायी बन जाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में इसी तथ्य को सरल सुगम उदाहरण रूप में प्रकट किया गया है।

4. देवी ने जिनपालित और जिनरक्षित को पहले कठोर वचनों से और फिर कोमल लुभावनें वचनों से अपने अनुकूल करने का प्रयत्न किया। कठोर वचन प्रतिकूल उपसर्ग के और कोमल वचन अनुकूल उपसर्ग के द्योतक हैं।

कथानक से स्पष्ट है कि मनुष्य प्रतिकूल उपसर्गों को तो प्रायः सरलता से सहन कर लेता है किन्तु अनुकूल उपसर्गों को सहन करना अत्यन्त दुष्कर है। जिनपालित की भांति दृढ़मनस्क साधक दोनों प्रकार के उपसर्गों के उपस्थित होने पर भी प्रतिज्ञा पर अचल अटल रहते हैं, किन्तु अल्पसत्व साधक अनुकूल उपसर्गों के आने पर जिनरक्षित की तरह भ्रष्ट हो जाता है। अतएव साधक को अनुकूल उपसर्गों को अतिदुःस्सह समझ कर उनसे सतर्क रहना चाहिए।

5. जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी, आचार्य उपाध्याय के समीप प्रवजित होकर फिर से मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का आश्रय लेता है, अभिलाषा करता है, या दृष्ट अथवा अदृष्ट शब्दादि के भोग की इच्छा करता है, वह मनुष्य इसी भव में बहुत से साधुओं , बहुत सी साध्वियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी श्राविकाओं द्वारा निन्दनीय होता है; इस भव में अनेक कष्टों को प्राप्त करता है और अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है। उसकी दशा जिनरक्षित जैसी होती है।

6. पीछे देखने वाला जिनरक्षित छला गया और पीछे नहीं देखने वाला जिनपाल निर्विघ्न अपने स्थान पर पहुंच गया। अतएव चारित्रवान को अनासक्त रह कर चारित्र का पालन करना चाहिए।

7. चारित्र ग्रहण करके भी जो भोगों की इच्छा करते हैं,वे घोर संसार सागर में गिरते हैं और जो भोगों की इच्छा नहीं करते, वे संसार रूपी कान्तार को पार कर जाते हैं।

8. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी संयम लेने के बाद मन एवं इन्द्रियों को पूर्ण सावधानी के साथ केन्द्रित रखते हैं, जिनाज्ञा में रखते हैं एवं अंतिम श्वास तक दृढ़ता पूर्वक अपनी प्रतिज्ञा में सत्य रत रहते हैं उनका संयम जीवन एवं मानव जीवन धन्य बन जाता है। भव परम्परा जन्य विभिन्न दुःखों से वे छूट जाते हैं। जिस प्रकार जिनपाल रत्नदेवी के अनुकूल प्रतिकूल सभी उपसर्गों में पूर्ण उपेक्षा रखते हुए अपने लक्ष्य में निश्चल रहा। अपने मन को उस रत्नदेवी से पूर्ण उपेक्षित रखा तो सुरक्षित जीवन के साथ घर पहुंच गया एवं अंत में भगवान महावीर स्वामी के समीप संयम ग्रहण कर मनुष्य जन्म सार्थक किया। एक भव प्रथम देवलोक का पूर्ण कर महाविदेह से मोक्ष जाएगा।

9. अतः इस प्रेरणा प्रद दृष्टांत को स्मृति पटल पर रख कर संयम साधकों को त्यागे हुए विषय भोगों की एवं संसार के मोह जन्य कृत्यों की कभी भी चाहना नहीं करनी चाहिए। पूर्ण विरक्त भावों से संयम तप में रमण करते हुए विचरण करना चाहिए।

दशम अध्ययन

चन्द्र का दृष्टान्त-

प्रस्तुत अध्ययन में कोई कथा प्रसंग वर्णित नहीं है, केवल उदाहरण से जीवों के विकास और ह्रास का अथवा उत्थान और पतन का बोध कराया गया है। एक बार गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया- ''भंते! जीव किस कारण से वृद्धि अथवा हानि को प्राप्त होते हैं ?''

भगवान ने सामान्य जनों को भी हृदयंगम हो सके, ऐसी पद्धति अपना कर, चन्द्र, का उदाहरण देकर इस प्रश्न का उत्तर दिया। कहा कि- ''गौतम ! जैसे कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा, पूर्णिमा के चन्द्रमा की अपेक्षा कान्ति, दीप्ति, प्रभा;

और मंडल की दृष्टि से हीन होता है, फिर द्वितीया तृतीया आदि तिथियों में हीनतर-हीनतम ही होता चला जाता है।'' पक्ष के अन्त में अमावस्या के दिन पूर्ण रूप से विलीन नष्ट गायब हो जाता है।

इसी प्रकार जो अनगार आचार्य या उपाध्याय के निकट गृहत्याग कर अकिंचन अनगार बनता है, वह यदि क्षमा, मार्दव, आर्जव, ब्रह्मचर्य प्रभृति मुनिधर्मों से हीन होता है और फिर हीनतर-हीनतम ही होता चला जाता है, अनुक्रम से पतन की ओर ही बढ़ता जाता है, तब अन्त में वह अमावस्या के चन्द्र के समान पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है अर्थात् संयम रहित बन जाता है।

विकास अथवा वृद्धि का कारण ठीक इससे विपरीत होता है। जैसे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र अमावस्या के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण, कान्ति, प्रभा, सौम्यता, स्निग्धता, आदि की दृष्टि से अधिक होता है और फिर द्वितीया, तृतीया आदि तिथियों में अनुक्रम से बढ़ता जाता है। पूर्णिमा के दिन अपनी समग्र कलाओं से उद्भासित हो जाता है, मण्डल से भी परिपूर्णता प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार जो साधु प्रवज्या अंगीकार करके क्षमा, शांति, संतोष, सरलता, लघुता, ब्रह्मचर्य आदि गुणों का क्रम से विकास करता जाता है, वह अन्त में पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति सम्पूर्ण प्रकाशमय बन जाता है, उसकी अनंत आत्म ज्योति, ज्ञान ज्योति प्रकट हो जाती है।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. अध्ययन संक्षिप्त है किन्तु इसमें निहित भाव बहुत गूढ़ है। आगम सूत्ररूप है किन्तु उनका अर्थ बहुत विशाल होता है। अतएव साधुओं को लक्ष्य करके यहां जो कुछ भी कहा गया है, वह गृहस्थों पर अर्थात् सभी जीवों पर लागू होता है।

2. तात्पर्य यह है कि मानव जीवन का उत्थान या पतन गुणों और अवगुणों के कारण होता है। प्रारम्भ में कोई अवगुण अत्यन्त अल्प मात्रा में उत्पन्न होता है। मनुष्य उस ओर लक्ष्य नहीं देता या उसकी उपेक्षा करता है तो वह अवगुण बढ़ता बढ़ता अपनी चरम सीमा तक पहुंच जाता है और जीवन ज्योति को नष्ट करके उसके भविष्य को घोर अन्धकार से परिपूर्ण बना देता है। इसके विपरीत, यदि सद्गुणों की धीरे-धीरे निरन्तर वृद्धि करने का मनुष्य प्रयास करता रहे तो अन्त में वह गुणों में पूर्णता प्राप्त कर लेता है। अतएव किसी भी अवगुण को उसके उत्पन्न होते ही, वृद्धि पाने से पूर्व ही कुचल देना चाहिए और सद्गुणों के विकास के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

3. इस अध्ययन से एक बात और लक्षित होती है कि दीक्षा अंगीकार करते ही मुनि शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा बनता है। पूर्णिमा का चन्द्र बनने के लिए उसे निरन्तर साधु गुणों का विकास करते रहना चाहिए।

4. आध्यात्मिक गुणों के विकास में निमित्त कारण अन्तरंग, बहिरंग आदि अनेक प्रकार के होते हैं। गुणों के विकास के लिए सद्गुरु का समागम बहिरंग निमित्त कारण है तो चारित्रवान कर्म का क्षयोपशम एवं अप्रमादवृत्ति अन्तरंग निमित्त कारण हैं। दोनों प्रकार के निमित्त कारणों से संयोग से आत्मगुणों के विकास में पूर्ण सफलता मिलती है।

ग्यारहवां अध्ययन

दावद्रव वृक्ष का दृष्टांत–

समुद्र के किनारे सुन्दर मनोहर दावद्रव नामक वृक्ष होते हैं, 1. वे जब द्वीप की वायु चलती है तो बहुत से खिले रहते हैं, थोड़े मुरझाते हैं।

2. जब समुद्र की हवा चलती है तो सभी मुरझा जाते हैं, थोड़े खिले रहते हैं।

3. जब कोई भी वायु नहीं चलती है तो सभी मुरझा जाते हैं।

4. जब दोनों ओर की वायु चलती है तब सभी खिल जाते हैं, सुशोभित हो जाते हैं।

जिस प्रकार उन दावद्रव वृक्षों के चार विभाग बनते हैं उसी प्रकार सहनशीलता की अपेक्षा साधुओं के भी चार प्रकार बनते हैं-

(1) स्वतीर्थिक साधु-साध्वी आदि के प्रतिकूल वचन आदि को सम्यक् सहन करने वाले; किन्तु अन्यतीर्थिक या उनके गृहस्थों के प्रतिकूल वचनों को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करने वाले।

(2) अन्यतीर्थिक के दुर्वचनों को सम्यक् सहन करने वाले किन्तु स्वतीर्थिकों के दुर्वचन सहन नहीं कर सकने वाले।

(3) किसी के भी दुर्वचनों को सहन नहीं करने वाले।

(4) सभी के दुर्वचनों को सम्यक् सहन करने वाले।

1. प्रथम विभाग वाले देश विराधक हैं।

2. द्वितीय विभाग वाले देश आराधक हैं।

3. तृतीय विभाग वाले सर्व विराधक हैं।

4. चतुर्थ विभाग वाले सर्व आराधक हैं।

1. सर्व विराधक सबसे निम्न दर्जे के श्रमण हैं।

2. इससे देश आराधक श्रेष्ठ हैं।

3. इससे देश विराधक श्रेष्ठ हैं।

4. सर्व आराधक सबसे श्रेष्ठ हैं।

दृष्टांत देने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि साधना के लिए उद्यत सभी साधकों को चौथे विभाग वाले दावद्रवों के समान बनकर सर्व आराधक होना चाहिए।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य–

1. इस अध्ययन में कथित दावद्रव वृक्षों के समान साधु है, द्वीप की वायु के समान स्वपक्षी साधु आदि के वचन है, समुद्री वायु के समान अन्यतीर्थिकों के वचन है और पुष्प-फल आदि के समान मोक्षमार्ग की आराधना है, ऐसा समझना चाहिए।

2. जैसे द्वीप की वायु के संसर्ग से वृक्षों की समृद्धि बताई, उसी प्रकार साधर्मी के दुर्वचन सहने से मोक्ष मार्ग की आराधना और अन्य तीर्थिक के दुर्वचन न सहने से विराधना समझनी चाहिए। अन्यतीर्थिकों के दुर्वचन न सहन करने से मोक्षमार्ग की 'अल्प विराधना' होती है।

3. जिस प्रकार समुद्री वायु से पुष्प आदि की थोड़ी समृद्धि और बहुत असमृद्धि बताई, उसी प्रकार परतीर्थिकों के दुर्वचन सहन करने और स्वपक्ष के न सहन कर करने से 'थोड़ी आराधना और बहुत विराधना' होती है।

4. दोनों के दुर्वचन सहन न करके क्रोध आदि करने 'सर्वथा विराधना' और सहन करने 'सर्वथा आराधना' होती है। अतएव साधु को सभी दुर्वचन क्षमाभाव से सहन करने चाहिए।

5. सन्त जनों को मुक्तिपथ में अग्रसर होने और सफलता प्राप्त करने के लिए सहनशील होना चाहिए। प्रस्तुत अध्ययन में विशेष रूप से दुर्वचनों को सहन करने की प्रेरणा की गई है और निरूपण किया है कि जो साधु दुर्वचन सहन करता है वही मुक्तिमार्ग का या भगवान् की आज्ञा का आराधक हो सकता है।

6. दुर्वचन सहन को इतना जो महत्व दिया गया है, वह निर्हेतुक नहीं है। कोई निन्दा करे, विद्यमान या अविद्यमान दोषों को दुष्ट भाव से प्रकट करे, जाति, कुल आदि को हीन बतला कर अपमानित करे अथवा अन्य प्रकार से कटुक अयोग्य या असभ्य वचनों का प्रयोग करे तो साधु का कर्तव्य यह है कि ऐसे वचनों को सुनकर अपने चित्त में तनिक भी क्षोभ उत्पन्न न होने दे, दुर्वचन कहने वाले के प्रति लेशमात्र भी द्वेष न हो प्रत्युत करुणाभाव उत्पन्न हो। तात्पर्य यह है कि दुर्वचन सुनकर भी जिसका चित्त कलुषित नहीं होता, वही वास्तव में सहनशील कहलाता है और वही आराधक होता है। इस प्रकार आराधक बनने के लिए क्षमा, सहिष्णुता, विवेक, उदारता आदि अनेक गुणों की भी आवश्यकता होती है। इसीलिए दुर्वचन सहन को इतना महत्व दिया गया है।

बारहवां अध्ययन

जितशत्रु राजा और सुबुद्धि प्रधान–

चम्पा नगरी के राजा जितशत्रु का अमात्य सुबुद्धि था। राजा जितशत्रु जिनमत से अनभिज्ञ था। सुबुद्धि अमात्य (मंत्री) जिनमत का ज्ञाता और श्रावक (श्रमणोपासक) भी था।

एक दिन का प्रसंग है। राजा अन्य अनेक प्रतिष्ठित स्वजनों के साथ भोजन कर रहा था। संयोगवश उस दिन भोजन बहुत स्वादिष्ठ बना। भोजन करने के पश्चात् भोजन की सुस्वादुता से विस्मित राजा ने भोजन की प्रशंसा की। अन्य लोगों ने राजा के कथन का समर्थन किया। सुबुद्धि अमात्य भी वहां था किंतु वह कुछ बोला नहीं, मौन धारण किये रहा।

सुबुद्धि को मौन धारण किये देख राजा ने उसी को लक्ष्य कर के जब बार-बार भोजन की प्रशंसा की तो उसे बोलना ही पड़ा। उसने राजा के कथन का अनुमोदन न करते हुए कहा- स्वामिन! इस स्वादिष्ट भोजन के विषय में मेरे मन में किंचित् भी विस्मय नहीं है। पुद्गलों के परिणमन अनेक प्रकार के होते रहते हैं। शुभ प्रतीत होने वाले पुद्गल निमित्त पाकर अशुभ रूप में और अशुभ पुद्गल शुभ रूप में परिणत हो जाते हैं। पुद्गल तो पुद्गल ही है। अतएव मुझे इस प्रकार के परिणमन में आश्चर्यजनक कुछ भी नहीं लगता। सुबुद्धि के इस कथन का राजा ने आदर नहीं किया, मगर वह चुप रह गया।

दुर्गन्ध युक्त खाई- चम्पा नगरी के बाहर एक खाई थी। उसमें अत्यन्त अशुचि दुर्गन्धयुक्त एवं सड़े गले मृतक कलेवरों से व्याप्त गंदा पानी भरा था। राजा जितशत्रु एक बार सुबुद्धि अमात्य आदि के साथ घुड़सवारी पर निकला और उसी खाई के निकट से गुजरा। पानी की दुर्गन्ध से वह घबरा उठा। उसने वस्त्र से नाक मुंह ढंक लिये। उस समय राजा ने पानी की अमनोज्ञता का वर्णन किया। साथियों ने उसका समर्थन किया, किन्तु सुबुद्धि इस बार भी चुप रहा। जब उसने वही कहा जो सुस्वादु भोजन के सम्बन्ध में कहा था।

इस बार राजा ने सुबुद्धि के कथन का अनादर करते हुए मौन नहीं रखी और कहा- सुबुद्धि! तुम दुराग्रह के शिकार हो रहे हो और दूसरों को ही नहीं, अपने को भी भ्रम में डाल रहे हो।

प्रधान का बुद्धि कौशल- सुबुद्धि उस समय मौन रहा एवं मन में विचार किया कि राजा सत्य पर श्रद्धा नहीं करता है तथा सत्य को असत्य मान कर मुझे भ्रम में पड़ा समझता है। इसे किसी उपाय से सन्मार्ग पर लाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उसने पूर्वोक्त खाई का पानी मंगवाया और विशिष्ट विधि से 49 दिनों में उसे अत्यन्त शुद्ध और स्वादिष्ट बनाया। वह स्वादिष्ट पानी जब राजा के यहां भेजा गया और उसने पिया तो वह खुश हो गया। पानी वाले लाने सेवक से पूछने पर उसने कहा- यह पानी अमात्य जी के यहां से आया है। अमात्य ने निवेदन किया, स्वामिन! यह उसी खाई का पानी है, जो आपको अत्यन्त अमनोज्ञ प्रतीत हुआ था।

राजा को धर्म बोध- राजा ने स्वयं प्रयोग करके देखा। सुबुद्धि का कथन सत्य सिद्ध हुआ। तब राजा ने सुबुद्धि से पूछा सुबुद्धि ! तुम्हारी बात वास्तव में सत्य है, पर यह तो बताओ कि यह सत्य,तथ्य यथार्थ तत्त्व तुमने कैसे जाना? तुम्हें किसने बतलाया?

सुबुद्धि ने उत्तर दिया स्वामिन् ! इस सत्य का परिज्ञान मुझे जिन भगवान के वचनों से हुआ है। वीतराग वाणी से ही मैं इस सत्य तत्त्व को हृदयंगम कर सका हूं।

राजा ने जिनवाणी श्रवण करने की अभिलाषा प्रकट की सुबुद्धि ने उसे चातुर्याम धर्म का स्वरूप समझाया। राजा भी श्रमणोपासक बन गया।

एक बार स्थविर मुनियों का चम्पा में पदार्पण हुआ। धर्मोपदेश श्रवण कर सुबुद्धि अमात्य ने प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा से अनुमति मांगी। राजा ने कुछ समय रुक जाने के लिए और फिर साथ ही दीक्षा अंगीकार करने के लिए कहा। सुबुद्धि ने उसके कथन को मान लिया। बारह वर्ष बाद दोनों संयम अंगीकार करके अन्त में जन्म जरा मरण की व्यथाओं से सदा के लिए मुक्त हो गये।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. प्रस्तुत अध्ययन में समझाया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष किसी भी वस्तु का केवल बाह्य दृष्टि से विचार नहीं करता, किन्तु आन्तरिक तात्त्विक दृष्टि से भी अवलोकन करता है। उसकी दृष्टि तत्त्वस्पर्शी होती है। तत्त्वस्पर्शी दृष्टि से वस्तु का निरीक्षण करने के कारण उसकी आत्मा में राग-द्वेष के आविर्भाव की संभावना प्रायः नहीं रहती। इससे विपरीत बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव वस्तु के बाह्यरुप का ही विचार करता है। वह उसकी गहराई में नहीं उतरता, इस कारण पदार्थों में इष्टअनिष्ट, मनोज्ञ अमनोज्ञ आदि विकल्प करता है और अपने ही इन मानसिक विकल्पों द्वारा राग द्वेष के वशीभूत होकर कर्मबन्ध का भागी होता है। इस उपदेश को यहां अत्यन्त सरल कथानक की शैली में प्रकट किया गया है।

2. सुबुद्धि अमात्य सम्यग्दृष्टि, तत्त्व का ज्ञाता और श्रावक था अतएव सामान्य जनों की दृष्टि से उसकी दृष्टि भिन्न थी। सम्यग्दृष्टि के योग्य निर्भीकता भी उसमें थी। सम्यग् दृष्टि आत्मा किसी वस्तु के उपभोग से न तो चकित (विस्मित) होता है और न पीड़ा, दुःख या द्वेष का अनुभव करता है। वह यथार्थ वस्तुस्वरुप को जान कर अपने स्वभाव में स्थिर रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव की यह व्यवहारिक कसौटी है। जो उसका आदर्श गुण है।

3. श्रावकत्त्व अमुक कुल में उत्पन्न होने (जन्म लेने) से नहीं आता। यह जाति गत विशेषता भी नहीं है। प्रस्तुत सूत्र स्पष्ट निर्देश करता है कि श्रावक होने के लिए सर्वप्रथम वीतराग प्ररुपित तत्त्वस्वरुप पर श्रद्धा होनी चाहिए।

4. मनुष्य जब श्रावकत्त्व को अंगीकार करता है, श्रावकवृत्ति स्वीकार कर लेता है, तब उसके आन्तरिक जीवन में पूरी तरह परिवर्तन होने पर बाह्य व्यवहार में भी स्वतः परिवर्तन आ जाता है। उसका रहन सहन, खान पान, बोल चाल आदि समस्त व्यवहार बदल जाता है। श्रावक मानो उसी शरीर में रहता हुआ भी नूतन जीवन प्राप्त कर लेता है। उसे समग्र जगत वास्तविक स्वरुप में दृष्टि गोचर होने लगता है। उसकी प्रवृत्ति भी तदनुकूल ही हो जाती है। यह इस अध्ययन के सुबुद्धि मंत्री के जीवन से ज्ञात होता है।

5. इस सूत्र से राजा और उसके मंत्री के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध प्राचीनकाल में होता था अथवा होना चाहिए, यह भी विदित होता है।

तेरहवां अध्ययन

नन्द मणियार- भगवान् महावीर का राजगृह नगर में पदार्पण होने पर दुर्दुरावतंसक विमान वासी दर्दुर नामक देव वहां आया। राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित सूर्याभदेव की तरह नाट्यविधि दिखाकर वह लौट गया। तब गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान ने उसके अतीत जन्म का, वर्तमान जन्म का और भावी जन्म का भी परिचय दिया। वह कथा इस प्रकार है-

राजगृह नगर में नन्द नामक मणियार था। भगवान का उपदेश सुनकर वह श्रमणोपासक हो गया। कालान्तर में साधु समागम न होने से तथा मिथ्यादृष्टियों के साथ परिचय बढ़ने से वह मिथ्यात्वी हो गया, फिर भी तपश्चर्या आदि बाह्य क्रियाएं पूर्ववत करता रहा। एक बार ग्रीष्म ऋतु में उसने पौषधशाला में अष्टमभक्त की तपश्चर्या की। तपश्चर्या के समय वह भूख-

प्यास से पीड़ा पाने लगा। तब उसके मन में ऐसी भावना उत्पन्न हुई जो कि पौषध अवस्था में नहीं होनी चाहिए थी। उसने एक बावड़ी , बगीचा आदि निर्माण करने का संकल्प किया।

बावड़ी निर्माण कार्य- दूसरे दिन पौषध समाप्त करके वह राजा के पास पहुंचा। राजा की अनुमति प्राप्त कर उसने एक सुन्दर बावड़ी बनवाई, बगीचे लगवाए और चित्रशाला, भोजनशाला, चिकित्साशाला तथा अलंकारशाला का निर्माण करवाया। बहुसंख्यक जन इनका उपयोग करने लगे और नन्द मणियार की प्रशंसा करने लगे। अपनी प्रशंसा एवं कीर्त्ति सुनकर नन्द बहुत हर्षित होने लगा। बावड़ी के प्रति उसके हृदय में गहरी आसक्ति हो गई।

एक बार नन्द के शरीर में एक साथ सोलह रोग उत्पन्न हो गए। उसने एक भी रोग मिटा देने पर चिकित्सकों को यथेष्ट पुरस्कार देने की घोषणा करवाई। अनेकानेक चिकित्सक आए, भांति भांति की चिकित्सा पद्धतियों का उन्होंने प्रयोग किया, मगर कोई भी सफल नहीं हो सका।

आशक्ति भाव से मेंढ़क बना- अन्त में नन्द मणियार बावड़ी में आसक्ति के कारण आर्तध्यान से ग्रस्त होकर उसी बावड़ी में मेंढ़क की योनि में उत्पन्न हुआ। वहां बारंबार लोगों के मुख से नन्द मणियार की प्रशंसा सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। तब उसने अपने पूर्वभव के मिथ्यात्व के लिए पश्चाताप करके आत्मसाक्षी से पुनः श्रावक के व्रत अंगीकार किए।

तत्पश्चात् एक बार भगवान् महावीर का राजगृह में समवसरण हुआ। उसे भी भगवान् के आगमन का वृत्तान्त विदित हुआ। भक्तिभाव से प्रेरित होकर वह भगवान् की उपासना के लिए रवाना हुआ, पर रास्ते में ही राजा श्रेणिक की सेना के एक घोड़े के पांव के नीचे आकर कुचल गया। जीवन का अन्त सन्निकट देखकर उसने अन्तिम समय की विशिष्ट आराधना की और मृत्यु के पश्चात् देवपर्याय में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही अवधिज्ञान से जानकर वह भगवान के दर्शन करने आया।

देवगति का आयुष्य पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य भव प्राप्त कर, चारित्र अंगीकार करके मुक्ति प्राप्त करेगा।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. अध्ययन में निरूपित उदाहरण से पाठकों को जो बोध दिया गया है, उसमें दो बातें प्रधान है- (1) सद्गुरु के समागम से आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है। अतः सद्गुरु और सद्ज्ञान का समागम करते रहना चाहिए।

(2) आसक्ति अधःपतन का कारण है अतः सदा विरक्त भाव को जीवन के प्रत्येक क्षण में उपस्थित रखना चाहिए।

2. गृद्धि आसक्ति, मोह या राग, इसे किसी भी शब्द से कहा जाय, यह आत्मा को मलीन बनाने का एवं आत्मा के अधःपतन का प्रधान कारण है। नन्द मणियार ने पुष्करणी बनवाई, यशकीर्त्ति सुनकर हर्षित होने लगा, अन्तिम समय में भी वह नन्दा पुष्करणी में आसक्त रहा। इसी आसक्ति भाव ने उसे ऊपर चढ़ने के बदले नीचे गिरा दिया। वह उसी पुष्करणी में मेंढ़क पर्याय में उत्पन्न हुआ।

3. इस अध्ययन में तिर्यंच भव से भी श्रावक व्रत स्वयं धारण करने लगा एवं आजीवन संथारा भी स्वयं धारण करने का आदर्श उपस्थित किया गया है।

4. श्रावक के व्रतों में पापों का स्थूल त्याग होता है और उसके संथारे में पापों का सर्वथा त्याग होता है। फिर भी संथारे में वह साधु नहीं कहा जाता, किन्तु श्रावक ही कहा जाता है। बाह्य विधि, वेश, व्यवस्था एवं भावों में साधु और श्रावक के अंतर होता है। अतः संथारे में पापों का साधु के समान सर्वथा पच्चक्खाण होते हुए भी श्रावक-श्रावक ही कहलाता है। साधु नहीं कहा जा सकता।

5. सम्यक्त्व के चार श्रद्धान का महत्व इस अध्ययन में बताया गया है। (1) जिन भाषित तत्त्वों के ज्ञान की वृद्धि करना। (2) तत्त्व ज्ञाता साधु श्रावक की संगति करते रहना। (3) अन्य धर्मियों की संगति का त्याग एवं (4) सम्यक्त्व से भृष्ट हो जाने वालों का परिचय वर्जन। इन चारों बोलों से विपरीत संयोग या आचरण होने से नन्द मणियार श्रावक धर्म में च्युत हो गया था।

चैदहवां अध्ययन

तेतली पुत्र प्रधान– प्राकृत अध्ययन का कथानक बहुत रोचक तो है ही, शिक्षाप्रद भी है। पिछले तेरहवें अध्ययन में बतलाया गया है कि सद्गुरु का समागम आदि निमित्त न प्राप्त हो तो जो सद्गुण विद्यमान है उनका भी ह्रास और अन्ततः विनाश हो जाता है। ठीक इससे विपरीत इस अध्ययन में प्रतिपादित किया गया है कि सन्निमित्त मिलने पर अविद्यमान सद्गुण भी उत्पन्न और विकसित हो जाता है। अतएव गुणाभिलाषी पुरुष को ऐसे निमित्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इस तथ्य को कदापि विस्मृत नहीं करना चाहिए। प्रस्तुत अध्ययन में मनोरम कथानक द्वारा यही तथ्य प्रकाशित किया गया है। कथानक का सार इस प्रकार है-

तेतलिपुर नगर के राजा कनकरथ के अमात्य का नाम तेतलिपुत्र था। मृषिकारदारक तेतलिपुर का निवासी स्वर्णकार था। एक बार तेतलिपुत्र अमात्य ने उसकी पुत्री पोट्टिला को क्रीड़ा करते देखा और वह उस पर अनुरक्त हो गया। पत्नी के रुप में उसकी मंगनी की। शुभ मुहूर्त में दोनों का विवाह हो गया।

पोट्टिला पत्नी से घृणा– कुछ समय तक दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक चलता रहा। दोनों में परस्पर गहरा अनुराग था। किन्तु कालान्तर में स्नेह का सूत्र टूट गया। स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि तेतलिपुत्र को पोट्टिला के नाम से भी घृणा हो गई। पोट्टिला इस कारण उदास और खिन्न रहने लगी। उसकी निरन्तर की खिन्नता देख एक दिन तेतली पुत्र ने उससे कहा- तुम चिन्तित मत रहो, मेरी भोजनशाला में प्रभूत अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवा कर श्रमणों, माहनों, अतिथियों एवं भिखारियों को दान देकर अपना काल यापन करो। पोटिला यही करने लगी। उसका समय इसी कार्य में व्यतीत होने लगा।

संयोगवशात् एक बार तेतलीपुर में सुव्रता नामक आर्या का आगमन हुआ। उनकी कुछ आर्यिकाएं यथासमय गोचरी के लिए निकली और तेतलीपुत्र के घर पहुंची। पोटिला ने उन्हें आहार पानी का दान दिया और साध्वियों से निवेदन किया- ''मैं तेतलीपुत्र को पहले इष्ट थी, अब अनिष्ट हो गई हूं। आप बहुत भ्रमण करती हैं और राजा रंक आदि सभी प्रकार के

लोगों के घरों में प्रवेश करती हैं। आपका अनुभव बहुत व्यापक है। कोई कामण चूर्ण या वशीकरण मन्त्र बतलाइये जिससे मैं तेतलीपुत्र को पुनः अपनी ओर आकृष्ट कर सकूं। ''

मगर साध्वियों का ऐसी बातों से क्या सरोकार। पोट्टिला का कथन सुनते ही उन्होंने हाथों से अपने कान ढंक लिये। कहा- ''देवानुप्रिये! हम ब्रह्मचारिणी साध्वियां है। हमारे लिए ऐसी बातें सुनना भी निषिद्ध है। चाहो तो सर्वज्ञ प्ररुपित धर्म सुन सकती हो।''

पोट्टिला ने वहीं पर धर्मोपदेश सुना और श्राविकाधर्म अंगीकार कर लिया। इससे नूतन जीवन मिला। उसके संताप का किंचित् शमन हुआ। उसे ऐसी शान्ति की अनुभूति होने लगी जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। उसके अन्तरात्मा में धर्म के प्रति रस उत्पन्न हो गया कुछ समय बाद उसने संयम अंगीकार करने का संकल्प कर लिया।

पोट्टिला की दीक्षा- तेतलीपुत्र के पास जाकर उसने अपनी अभिलाषा व्यक्त की और अनुमति मांगी तो तेतलीपुत्र ने कहा- ''तुम संयम स्वीकार करोगी तो आगामी भव में अवश्य किसी देवलोक में उत्पन्न होवोगी। वहां से आकर यदि मुझे प्रतिबोध देना स्वीकार करो तो मैं अनुमति देता हूं, अन्यथा नहीं।'' पोट्टिला ने तेतलीपुत्र की शर्त स्वीकार करली और वह दीक्षित हो गई। संयम पालन कर आयुष्य पूर्ण होने पर देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुई।

कनक ध्वज का जीवन- तेतलीपुर का राजा राज्य में अत्यन्त गृद्ध और सत्तालोलुप था। कोई मेरा पुत्र वयस्क होकर मेरा राज्य न हथिया ले, इस भय से प्रेरित होकर वह अपने प्रत्येक पुत्र को जन्मते ही विकलांग कर दिया करता था। उसकी यह लोलुपता और क्रूरता देख रानी पद्मावती को गहरी चिन्ता और व्यथा हुई। वह जब गर्भवती थी तब उसने अमात्य तेतलीपुत्र को गुप्त रूप से अन्तःपुर में बुलवाया और होने वाले पुत्र की सुरक्षा के लिए मंत्रणा की। निश्चित हो गया कि यदि होने वाली सन्तान पुत्र हो तो राजा को उसका पता न लगने पाए और तेतलीपुत्र के घर पर गुप्त रूप से उसका पालन पोषण किया जाए।

संयोगवश जिस समय रानी पद्मावती ने पुत्र का प्रसव किया, उसी समय तेतलीपुत्र की पत्नी ने मृत कन्या को जन्म दिया। पूर्वकृत निश्चय के अनुसार तेतलीपुत्र ने पुत्र और पुत्री की अदला- बदली कर दी। मृत पुत्री को पद्मावती के पास और राजकुमार की अपनी पत्नी के पास ले आया। पत्नी को सब रहस्य बतला दिया। कुमार सुरक्षित वृद्धिंगत होने लगा।

कनकरथ राजा की जब मृत्यु हुई तो उसके उत्तराधिकारी की चर्चा चली। तेतलीपुत्र ने समग्र रहस्य प्रकट कर दिया और राजकुमार कनकध्वज राजसिंहासन पर आसीन हो गया।

रानी पद्मावती का मनोरथ सफल हुआ। उसने कनकध्वज राजा को आदेश दिया कि तेतलीपुत्र के प्रति सदैव विनम्र रहना, उसका सत्कार करना सन्मान करना, राजसिंहासन, वैभव, यहां तक कि तुम्हारा जीवन इन्हीं की बदौलत है। कनकध्वज ने माता के आदेश को शिरोधार्य किया और वह अमात्य का बहुत आदर करने लगा।

पोट्टिला देव द्वारा प्रधान को प्रतिबोध- उधर पोटिला देव ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेतलीपुत्र को प्रतिबुद्ध करने के अनेक उपाय किए,मगर राजा द्वारा अत्यधिक सम्मानित होने के कारण उसे प्रतिबोध नहीं हुआ। तब देव ने

अन्तिम उपाय किया राजा आदि को उससे विरूद्ध कर दिया। एक दिन जब वह राज सभा में गया तो राजा ने बात भी नहीं की, सत्कार सम्मान करने की तो बात ही दूर विमुख होकर बैठ गया।

तेतलीपुत्र यह अभिनव व्यवहार देखकर भयभीत होकर वापिस घर लौट आया। मार्ग में और घर में आने पर पारिवारिकजनों ने भी उसे किंचित आदर नहीं दिया। सारी परिस्थिति बदली देख तेतलीपुत्र ने आत्मघात करने का निश्चय किया। आत्मघात के लगभग सभी उपाय आजमा लिये, मगर दैवी माया के कारण कोई भी कारगर न हुआ।

जब तेतलीपुत्र आत्महत्या करने में भी असफल हो गया- पूर्ण रुप से निराश हो गया तब पोट्टिल के रुप में देव प्रकट हुआ। उसने अत्यन्त सारपूर्ण शब्दों में उसे प्रतिबोध दिया।

उसी समय तेतलीपुत्र को शुभ अध्यवसाय के प्रभाव से जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे विदित हो गया कि पूर्व जन्म में वह महाविदेह क्षेत्र में महापद्म नामक राजा था। संयम अंगीकार करके वह यथाकाल शरीर त्याग कर महाशुक्र नामक देवलोक में उत्पन्न हुआ था। तत्पश्चात् वह यहां जन्मा।

तेतलीपुत्र ने मानों नूतन जगत् में प्रवेश किया। थोड़ी देर पहले जिसके चहूं ओर घोर अन्धकार व्याप्त था, अब अलौकिक प्रकाश की उज्ज्वल रश्मियां भासित होने लगी। वह स्वयं दीक्षित हुआ और चिंतन करते-करते उसे जातिस्मरण से 14 पूर्वों का ज्ञान भी उपस्थित हो गया। भावों की श्रेणी क्रमशः विशुद्ध होती गई और वहीं केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। आकाश में देव दुंदुभी बजी। कनकध्वज राजा आया क्षमा मांगी। उपदेश सुना एवं श्रावकव्रत अंगीकार किए। तेतलीपुत्र अनेक वर्ष केवली पर्याय में रहकर सिद्ध हुआ।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

(1) प्रतिज्ञा बद्ध देव धर्म क्रिया में सहायक बन सकता है।

(2) मनोनुकूल वातावरण की अपेक्षा प्रतिकूल परिस्थिति में रहे व्यक्ति को बोध शीघ्र लगता है।

(3) पति पत्नी का प्रेम भी क्षणिक होता है। वह कर्मों का उदय पाकर कभी भी पलट सकता है। अतः सदा सतर्क सावधान रहना चाहिए। एक दिन तेतलीपुत्र प्रधान पोट्टिला पर अनुरक्त होकर शादी करता है और वही एक समय उसे छिटका दानशाला में बिठा देता है। यह कर्मों की एवं संसार की विचित्रता है। मानव को ऐसे संसार चक्र से बचकर धर्म एवं ज्ञान से आत्मा की सुरक्षा कर लेनी चाहिए।

(4) विपत्ति काल में भी सुखी एवं प्रसन्न रहने का उपाय निकाल लेना चाहिए। यथा- पोट्टिला का दानशाला में रहना।

(5) कभी गोचरी के प्रसंग में भी उचित विवेक के साथ संक्षिप्त उपदेश दिया जा सकता है यथा- पोट्टिला ने उपदेश सुनकर श्रावक व्रत स्वीकार किए।

(6) दुःख से घबराकर आत्मघात करना महान् कायरता है, अज्ञान दशा है, ऐसे समय में धर्म का स्मरण कर संयम तप स्वीकार कर लेना चाहिए। अर्थात् दुःख में तो धर्म को अवश्य याद करना ही चाहिए।

पन्द्रहवां अध्ययन

नन्दीफल-

प्रस्तुत अध्ययन का मूल स्वर अन्य अध्ययनों की भांति साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण होने वाले साधकों को संसार में रमणीय प्रतीत होने वाले एवं मन को लुभाने वाले इन्द्रिय विषयों से सावधान रहने की सूचना देना ही है। यही वह मूल स्वर है जो प्रस्तुत आगम में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक गूंजता सुनाई देता है। किन्तु उस स्वर को सुबोध एवं सुगम बनाने के लिए जिन उदाहरणों की योजना की गई है, वे विभिन्न प्रकार के हैं, ऐसे ही उदाहरणों में से ''**नन्दीफल**'' भी एक उदाहरण है।

चम्पा नगरी का निवासी धन्य सार्थवाह एक बड़ा व्यापारी था। उसने एक बार विक्रय के लिए माल लेकर अहिच्छत्रा नगरी जाने का विचार किया।

प्राचीन काल में वणिक वर्ग के अन्तर्गत एक वर्ग सार्थवाहों का होता था। सार्थवाह वह बड़ा व्यापारी होता था जो अपने साथ अन्य अनेक लोगों को ले जाता था और उन्हें कुशलपूर्वक, उनके गन्तव्य स्थानों तक पहुंचा देता था।

धन्य सार्थवाह अपने सेवकों द्वारा चम्पा की गली-गली में यह घोषणा करवाता है कि- ''धन्य सार्थवाह अहिच्छत्रा नगरी जा रहा है। जिसे साथ चलना हो, चले। जिसके पास जिस साधन का अभाव होगा, वह उसकी पूर्ति करेगा। अपने साथ चलने वालों को सभी प्रकार की सुविधाएं कर देगा।'' यह भी एक बहुत बड़ी सेवा थी, जिसे सार्थवाह वणिक, स्वेच्छापूर्वक करता था।

धन्य श्रेष्ठी का सार्थ चम्पा नगरी से रवाना हो गया। चलते-चलते और बीच-बीच में विश्रान्ति लेते लेते सार्थ एक बहुत बड़ी अटवी के निकट पहुंचा। अटवी बड़ी विकट थी; उसमें लोगों का आवागमन नहीं जैसा था। उसके मध्यभाग में एक जाति के विषैले वृक्ष थे, जिनके फल, पत्ते, छाल आदि छूने, चखने, सूंघने और देखने में अत्यन्त मनोहर लगते थे, किन्तु वे सब, यहां तक कि उनकी छाया भी प्राणहरण करने वाली थी। अनुभवी धन्य सार्थवाह उन नन्दीफल (तात्कालिक आनन्द प्रदान करने वाले फल युक्त) वृक्षों से परिचित था। अतएव समस्त सार्थ को उसने पहले ही चेतावनी दे दी- ''सार्थ का कोई भी व्यक्ति नन्दीफल वृक्षों की छाया के निकट भी न फटकें।'' इस प्रकार उसने अपने उत्तर दायित्व का पूरी तरह निर्वाह किया।

धन्य सार्थवाह की चेतावनी पर कुछ लोगों ने अमल किया कुछ ऐसे भी निकले जो उन वृक्षों के वर्ग, गंध, रस, और स्पर्श के प्रलोभन को रोक न सके। जो उससे बचे रहे वे सकुशल यथेष्ट स्थान पर पहुंच कर सुख के भागी बने। जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर अपने मन पर नियंत्रण न रख सके, उन्हें मृत्यु का शिकार होना पड़ा।

तात्पर्य यह है कि यह संसार भयानक अटवी है। इसमें इन्द्रियों के विविध विषय नन्दीफल के सदृश है। इन्द्रिय विषय भोगते समय-क्षण भर सुखद प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके भोग का परिणाम अत्यन्त शोचनीय होता है। दीर्घ काल पर्यन्त विविध प्रकार की व्यथाएं सहन करनी पड़ती है। अतएव साधक के लिए यही श्रेयस्कर है कि वह विषय भोगों से बचे, उनकी छाया से भी दूर रहें।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य–

(1) बुजुर्ग अनुभवी व्यक्तियों को चेतावनी, हित, सलाह की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

(2) अज्ञात फल आदि नहीं खाने चाहिए।

(3) इच्छाओं पर नियंत्रण रखने का अभ्यास होना चाहिए।

(4) खाने की आसक्ति तीव्रता मनुष्य के शरीर स्वास्थ्य, संयम एवं जीवन का भी खात्मा कर देती है। अतः खाने सम्बन्धी पूर्ण विवेक का ज्ञान होना आवश्यक है।

सोलहवां अध्ययन

द्रौपदी–

मनुष्य कभी-कभी साधारण से लाभ की इच्छा से प्रेरित होकर ऐसा अत्यन्त कुत्सित एवं क्रूर कर्म कर बैठता है कि उसका उसे अतीव दारूण दुष्फल भोगना पड़ता है। उसका भविष्य दीर्घातिदीर्घ काल के लिए घोर अन्धकारमय बन जाता है। द्रौपदी का यह अध्ययन इस तथ्य को सरल सरस और सुगम रूप से प्रदर्शित करता है।

नाग श्री ब्राह्मणी– द्रौपदी के जीव की कथा उसके नागश्री ब्राह्मणी के भव से प्रारम्भ होती है। नागश्री ने अपने परिवार के लिए भोजन तैयार किया था उसने तूंबे का उत्तम शाक बनाया। मगर जब चखकर देखा तो ज्ञात हुआ कि तूंबा कटुक विषयुक्त है। उसने उपालम्भ अथवा अपयश से बचने के लिए उस शाक को एक जगह छिपा कर रख दिया। पारिवारिक जन भोजन करके अपने-अपने काम में लग गए। घर में जब नागश्री अकेली रह गई, तब मासखमण के पारणे के दिन धर्मरुचि अनगार भिक्षा के लिए उसके घर पहुंचे। नाग से अमृत की आशा नहीं की जा सकती, उससे तो विष ही मिल सकता है। नाग श्री मानवी के रूप में नागिन थी। उसने परम तपस्वी मुनि को विष ही प्रदान किया। विष्ष युक्त तूंबे का शाक उनके पात्र में उंडेल दिया।

धर्मरूचि अनगार का पारणा एवं पंडित मरण– मुनि धर्मरुचि वही आहार लेकर अपने गुरु के पास आए। गुरुजी उसकी गंध से ही समझ जाते हैं कि यह शाक-आहार विषैला है। फिर भी उसमें से एक बूंद लेकर चखा और धर्मरूचि को निर्वद्य स्थान में परठ देने का आदेश दिया और कहा कि यह शाक प्राणहारी है।

धर्मरुचि परठने गये। उसमें से एक बूंद लेकर भूमि पर डाली और उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे। गंध से कीड़ियां आती हैं, ज्यों ही उसके रस का आस्वादन करती हैं, प्राण गंवा बैठती हैं। यह दृश्य देखकर दयावान मुनि का हृदय दहल उठता है। सोचते हैं सारा का सारा शाक परठ दिया जाए तो कितने ही जीवों का घात हो जाएगा। इससे तो यही

श्रेयस्कर है कि मैं अपने ही उदर में इसे परठ लूं। मुनि ने यही किया। दारूण वेदना होकर उनके जीवन का अन्त हो गया। मुनि ने संथारा स्वीकार कर समाधिपूर्वक पंडित मरण प्राप्त किया।

नाग श्री की दुर्दशा- नागश्री का पाप छिपा न रहा। सर्वत्र उसकी चर्चा फैल गई। घर वालों ने ताड़ना तर्जना कर के उसे बाहर निकाल दिया। वह भिखारित बन गई। उस समय उसकी यह दुर्दशा हुई एवं अन्तिम अवस्था में वह एक साथ सोलह भयानक रोगों से ग्रस्त होकर, अत्यन्त तीव्र दुःखों का अनुभव करती, हाय-हाय करती मरकर के छठी नरक भूमि में पैदा हुई। वह प्रत्येक नरक में सागरोपमों की आयु से अनेक प्रकार जन्म लेती है, बीच-बीच में मत्स्य आदि की योनियों में भी जन्म लेती है। शस्त्रों से उसका वध किया जाता है। जलचर, नभचर, और भूचर, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय आदि आदि तिर्यंच पर्यायों में दुःखपूर्वक जन्म लेती, दुःखमय जीवनयापन करती और दुःख के साथ ही मरती है।

सुकुमालिका- लम्बे काल तक के इस जन्म मरण के पश्चात् उसने मनुष्य भव प्राप्त किया। एक सेठ के घर पुत्री के रूप में जन्म लिया। ''**सुकुमालिका**'' नाम रखा। किन्तु अब भी उसके पाप-फल का अन्त नहीं हुआ था। विवाहित होने पर पति द्वारा उसका परित्याग कर दिया गया। उसके शरीर का स्पर्श उसे तलवार की धार जैसा तीक्ष्ण और अग्नि जैसा उष्ण लगा। दबाव डालने पर पति ने कहा- मैं मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हूं, मगर सुकुमालिका के शरीर के स्पर्श को सहन नहीं कर सकता।

सुकुमालिका का पुनर्विवाह किया गया एक अत्यन्त दीन भिखारी के साथ। भिखारी भी प्रथम रात में ही उसे छोड़कर भाग जाता है। सुकुमालिका का अंगस्पर्श उसे भी सहन न हो सका। एक अतिशय दीन भिखारी, सेठ के असीम वैभव एवं स्वर्ग, जैसे सुख के प्रलोभन को भी ठुकरा कर भाग गया तो आशा की कोई किरण शेष नहीं रही। पिता ने निराश होकर कहा- ''बेटी, तेरे पाप-कर्म का उदय है, उसे सन्तोष के साथ भोग।'' पिता ने दानशाला खोल दी। सुकुमालिका दान देती हुई अपना समय व्यतीत करने लगी।

कुछ समय पश्चात् उसकी दानशाला में साध्वियों का भिक्षा के लिए आगमन हुआ। सकुमालिका ने वशीकरण मंत्र, तंत्र, कामण आदि की याचना की। आर्यिकाओं ने उसे अपना धर्म समझाया। कहा-ऐसी बात सुनना भी हमारे लिए अयोग्य है। हम ब्रह्मचारिणी हैं। यंत्र-तंत्र से हमारा क्या वास्ता?

आखिर सुकुमालिका उपदेश से विरक्त होकर उनके पास दीक्षा अंगीकार कर लेती है। मगर कालांतर से वह शिथिलाचारिणी हो गई स्वच्छंद होकर साध्वी-समुदाय को छोड़ एकाकिनी रहने लगी। गांव के बाहर जाकर आतापना लेने लगी। इसी प्रसंग में एक बार उसे पांच पुरुषों के साथ विलास करती हुई एक वेश्या दृष्टिगोचर हुई। वेश्या एक पुरुष की गोद में बैठी है। शेष चार में से एक पुरुष उसे मस्तक पर छत्र किये खड़ा है, कोई चंवर ढोल रहा है तो कोई उसके पैर दबा रहा है। यह दृश्य देख कर सुकुमालिका के मन में इसी प्रकार के सुखभोग की लालसा उत्पन्न हुई। वह संकल्प करती है। मेरी तपस्या का फल हो तो मैं भी इसी प्रकार सुख प्राप्त करूं।

अन्त में मर कर वह देव पर्याय में उत्पन्न हुई मगर वहां भी देव गणिका बनी।

द्रोपदी का स्वयंवर– देव भव का अन्त होने पर पंचाल नृपति राजा द्रुपद की कन्या के रूप में उसका जन्म हुआ। उचित वय होने पर स्वयंवर का आयोजन किया गया। स्वयंवर में वासुदेव श्रीकृष्ण पांडव आदि अनेक राजा आदि उपस्थित हुए, द्रोपदी ने पांच पाण्डवों का वरण किया। उसके इस स्वंयवर पर किसी ने कोई आपत्ति नहीं की।

द्रौपदी पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर चली गई। वहां भी कुछ विधि विधान हुए। बारी बारी से वह पांच पाण्डवों के साथ मानवीय सुखों का उपभोग करने लगी।

द्रौपदी हरण– एक बार नारद जी अचानक हस्तिनापुर जा पहुंचे। सभी ने उनकी यथोचित विनय प्रतिपत्ति की परन्तु द्रौपदी ने आदर नहीं किया। नारद जी द्रौपदी से रुष्ट हो गए। बदला लेने के विचार से लवण समुद्र पार करके धातकी खंड द्वीप में अमरकंका के राजा पद्मनाभ के वहां गये। द्रोपदी के रूप लावण्य की अतिशय प्रशंसा की, पद्मनाभ ने देवी सहायता से द्रोपदी का हरण करवाया। द्रौपदी के संस्कार अब बदल चुके थे। वह पतिव्रता थी। पद्मनाभ ने भोग के लिए आमंत्रित किया तो उसने छह महीने की मोहल्लत मांग ली। उसे विश्वास था कि इस बीच श्रीकृष्ण आकर अवश्य मेरा उद्धार करेंगे। हुआ भी यही।

पांडु राजा ने चारों तरफ खोज करवाई। द्रौपदी का कहीं भी कुछ भी पता नहीं लगा। आखिर पांडवों की माता कुंती कृष्ण वासुदेव के पास गई। कृष्ण ने नगर के बाहर सामने जाकर स्वागत किया। भवन में लाकर आने का कारण पूछा। कुंती ने द्रौपदी हरण की वार्ता कही। कृष्ण ने हाथों हाथ लाकर देने का आश्वासन देकर उसे विदा किया।

बहुत खोज करने पर द्रौपदी का पता नहीं लगा। अचानक एक बार वे ही कच्छुल नारद आकाश से उतरे और कृष्ण के पास अंतःपुर में जा पहुंचे और योग्य, आसन पर बैठ गए परस्पर कुशल वार्ता पूछने के बाद कृष्ण ने द्रौपदी के विषय में पूछा। नारद ने उत्तर में कहा- धातकीखंड द्वीप के अमरकंका नामक राजधानी में पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी के जैसी एक महिला को देखा था।

तब कृष्ण वासुदेव नारद के उत्तर के इस बनावटी ढंग को समझ गये और कहा कि यह सब तुम्हारी ही करतूत जान पड़ती है। यह सुनकर नारद जी वहां से गायब हो गये।

कृष्ण वासुदेव ने पांडवों को समुद्र के किनारे पहुंचने के लिए सूचित किया। वहां सब मिले फिर छहों जने अपने-अपने रथों से लवणाधिपति सुस्थित देव की सहायता से लवण समुद्र पार कर अमरकंका राजधानी के पास पहुंचे। दूत भेज कर पद्मनाभ को सूचित किया। युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रथम युद्ध में पांडवों की हार हुई। फिर कृष्ण वासुदेव ने शंखनाद करके युद्ध किया, विजय प्राप्त की। द्रौपदी का पद्मनाभ से पिंड छुड़ाया। उसे लेकर पुनः लवण समुद्र में चले।

दो वासुदेवों का मिलन शंख से– कृष्ण वासुदेव के शंख की आवाज उस घातकीखंड के भरत क्षेत्र के कपिल वासुदेव ने सुनी। उस समय वे वहां बावीसवें तीर्थंकर भगवान के समवसरण में थे। पूछने पर भगवान ने सारी घटना बताई। वासुदेव बहुत दूर समुद्र में पहुंच गये थे। दोनों वासुदेवों की शंखध्वनि से मिलन एवं वार्ता हुई। फिर कपिल वासुदेव ने पद्मनाभ राजा को देश निकाला दिया और उसके पुत्र को राज्यगद्दी पर बिठाया।

समुद्र पार करके कृष्ण ने पांडवों को आगे भेज दिया और स्वयं सुस्थित देव से मिलने गये। पांचों पाण्डव गंगा महानदी को नावा द्वारा पार करके किनारे पहुंचे और उस नावा को वहीं रोक ली कि श्री कृष्ण कैसे इतनी बड़ी नदी को तैर कर पार करके आ सकते हैं?

कृष्ण वासुदेव नदी किनारे आये। कोई साधन नहीं दिखा तो नदी में उतरे और तैर कर पार करने लगे। बहुत थक जाने पर उन्हें देवी ने विश्रांति के लिए स्थान दिया एवं स्थल मार्ग दिया।

कृष्ण वासुदेव के पांडवों से नदी पार करने के विषय में आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा तो उन्होंने सारी हकीकत सत्य कह दी कि हम जानना चाहते थे कि आपमें कितनी शक्ति है?

पांडवों को देश निकाला- कृष्ण के गुस्से का पार ही न रहा। पांचों के रथों को चूर-चूर कर दिया और उन्हें देश निकाले की आज्ञा दे दी। हस्तिनापुर आकर पांडवों ने पांडु राजा एवं कुंती माता से देश निकाले की बात कही। पांडु राजा ने बहुत उपालंभ दिया कि यह तुमने कृष्ण के साथ अच्छा नहीं किया।

तीन खण्ड के अधिपति कृष्ण वासुदेव के राज्य से बाहर कहां जाया जाय। आखिर कुंती कृष्ण के पास पहुंची। समाधान यही रहा कि दक्षिणी समुद्र के किनारे जाकर नई पांडु मथुरा बसा कर रहें।

हस्तिनापुर का राज छोड़कर उन्हें जाना आवश्यक हो गया। अब पांडु राजा और कुंती का कोई जोर नहीं चला एवं पांचों पुत्रों को समुद्र के किनारे जाने की आज्ञा दी। द्रौपदी सहित पांच पांडव अपने दलबल सहित समुद्र के किनारे चले गये एवं वहां सुख पूर्वक रहने लगे।

पांडवों की दीक्षा एवं मुक्ति- कालांतर से द्रौपदी के पुत्र हुआ जिसका नाम पांडुसेन रखा गया। एक बार धर्मघोष आचार्य का उस पांडु मथुरा में पदार्पण हुआ। द्रौपदी सहित पांचों पांडवों ने पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा अंगीकार की।

द्रौपदी ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। तप संयम की आराधना करके वह पांचवें देवलोक में उत्पन्न हुई। पांच पांडवों ने 14 पूर्वों का अध्ययन किया। अनेक वर्षों तक तप संयम का आराधन किया। एक बार अर्हन्त अरिष्टनेमि के दर्शन हेतु मास मास खमण तप का अभिग्रह करके गुरु आज्ञा लेकर पांचों मुनियों ने विहार किया। किसी नगर में मासखमण का पारणा लाने के बाद ज्ञात हुआ कि भगवान अरिष्टनेमि निर्वाण प्राप्त हो गये। तब उन्होंने आहार को वोसिरा कर संथारा पचक्ख लिया और कुल 60 दिन के तप एवं संथारे से संपूर्ण कर्म क्षय करके वे सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

कथा से फलित तत्त्व- इस कथा में द्रौपदी विवाह के बाद तक हस्तिनापुर में पांडु राजा के होने का वर्णन है। द्रौपदी हरण एवं पांडवों को देश निकाले का आदेश हुआ तब भी पांडु राजा मौजूद थे। अर्थात् पांडु राजा की उपस्थिति में ही कृष्ण वासुदेव की आज्ञा से पांडवों ने हस्तिनापुर का राज्य त्याग दिया था। कृष्ण वासुदेव का संपूर्ण अर्द्ध भरत में राज्य था।

ऐसी स्थिति में कृष्ण की मौजूदगी में और कृष्ण के मार्फत कौरवों से पांडवों के द्वारा हस्तिनापुर का राज्य मांगना कदापि संभव नहीं माना जा सकता।

अतः जैन सिद्धांत को मानने वाले और इस ज्ञाता सूत्र का अनुभव रखने वाले विद्वान महाभारत जैसी घटना की प्रचलित कल्पना के प्रवाह में नहीं बह सकते। क्योंकि इस आगम अध्ययन से सुस्पष्ट है पांडुराजा की उपस्थिति में ही पांडवों का हस्तिनापुर पर किंचित भी अधिकार नहीं रह गया था।

ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर का जुआ खेलना, दुर्योधन का कपट पासों से जीतना, दुःशासन के हाथों द्रौपदी के साथ दुर्व्यवहार करना, वनवास घोषित करना, पुनः राज्य के लिए कौरवों से युद्ध करना और कृष्ण वासुदेव का इन सब में तटस्थ रहना अर्थात् कुछ भी अधिकार पूर्ण कदम नहीं उठाना और गुप्त रूप से मदद करना यह सब जैन सिद्धांत से सहमत नहीं समझाना चाहिए। कथाओं की ओर जैन महाभारत की रचना या वांचना करने वाले महानुभावों को इस अध्ययन की घटना का सूक्ष्मतम अनुचिंतन करना चाहिए।

महाभारत संवाद-

प्रश्न- जैन सिद्धांत के अनुसार कौरव-पांडव के बीच भंयकर महाभारत युद्ध हुआ था?

उत्तर- अंग सूत्रों में यह प्रस्तुत सूत्र छठवां अंग सूत्र है इसमें वर्णित विषय के अनुसार प्रचलित महाभारत का युद्ध संभावित नहीं है।

प्रश्न- इसमें मुख्य हेतु क्या है?

उत्तर- अपने पिता, पितामह, विद्यागुरु, कुलगुरु के सामने माताओं, बहिनों आदि परिवार के सामने एवं राज सभा में अपनी कुल वधु द्रौपदी के साथ दुर्व्यवहार किये जाने की घटना में वास्तविकता संभव नहीं हो सकती। साथ ही कृष्ण वासुदेव की भी वहां अदृश्य रूप में उपस्थिति मानी जाती है वह भी उचित नहीं है। सतयुग में ऐसा घोर अन्याय होगा तो कलियुग में क्या शेष रहेगा।

तीसरा हेतु है कृष्ण वासुदेव स्वयं तीन खंड के अधिपति होकर अपने राज्य में कोई अधिकार पूर्ण समाधान शान्ति न करे, पांच गांव नहीं दिलवा सके और भाईयों को आपस में लड़ने दे, अपनी सेना भी लड़ने के लिए दे और खुद केवल दर्शक बने, यह क्या अधिकारी सर्व सत्ताधारी का कर्तव्य हो सकता है ? क्या कृष्ण दुर्योधन से डरते थे या क्या दुर्योधन का पक्ष सत्य था? तो फिर ऐसा अन्याय वे कृष्ण वासुदवे क्यों होने देते?

प्रश्न- जैन शास्त्र में महाभारत का क्या स्थान है।

उत्तर- इस प्रस्तुत सूत्र के अनुसार प्रचलित महाभारत की कथा कल्पित सिद्ध होती है। इसी कारण जैनागमों में अनेक जगह महाभारत ग्रन्थ को सम्यग्-श्रुत नहीं कहा गया है किन्तु असम्यक्श्रुत कहा गया है। यदि वास्तविक होता तो पांडवों के चारित्रात्मक ग्रन्थ को असम्यक् कहने का कोई कारण नहीं था। अतः असम्यक् श्रुत, मिथ्याश्रुत आदि में वर्णन होने से भी उक्त तत्त्व की सिद्धि होती है। अर्थात् प्रस्तुत सूत्र में बताई गई घटना के अनुसार कृष्ण वासुदेव के कोप से पांडवों का सदा के लिए हस्तिनापुर का त्याग करना ही उपयुक्त उचित समझ में आता है।

प्रश्न- प्रस्तुत अध्ययन में तो कौरवों का कोई जिक्र ही नहीं है?

उत्तर- जब कृष्ण वासुदेव और जरासंघ प्रतिवासुदेव का युद्ध हुआ तभी कौरव जरासंघ के पक्ष में आए और पांडव कृष्ण के पक्ष में युद्ध में आये। वहीं पर दुर्योधन आदि सौ ही भाई काल कवलित हो गये थे। इस कारण से प्रस्तुत अध्ययन में कृष्ण का त्रिखण्डाधिपति होना बताया गया है और कौरवों का नाम निशान भी नहीं आया है।

प्रश्न- जरासंघ का और कृष्ण का युद्ध कब हुआ ?

उत्तर- द्रौपदी के स्वयंवर के समय जरासंघ, दुर्योधन प्रमुख सौ भाई, शकुनि, पांडु राजा सहित पांचों पांडव, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, विदुर, जयद्रथ, कर्ण, अश्वत्थामा आदि को निमंत्रण भेजा गया था। ऐसा इस अध्ययन में वर्णन है अतः द्रौपदी के स्वयंवर के बाद जरासंघ और कृष्ण का युद्ध हुआ। पांडु राजा की उपस्थिति में जब पांडवों को देश निकाला दिया गया था उसके पहले जरासंघ का राज्य समाप्त हो चुका था तभी पांडु राजा के द्वारा भेजी गई कुंती राणी ने कृष्ण से कहा कि तुम्हारा तो तीन खण्ड में राज्य है पांडव कहां और किस देश में जावे? तब कृष्ण ने वचन को अपरिवर्तनशील बताकर समुद्र तट पर जाने का सुझाव दिया।

सार- भाईयों भाईयों में हुआ महाभारत युद्ध का प्रचलित वर्णन जैनागमों से सम्मत नहीं है।

यहां श्री कृष्ण जयसंघ युद्ध सार्थक लगता है।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

(1) धर्म और धर्मात्माओं के साथ किया गया अल्पतम खिलवाड़ व्यक्ति को भवोभव दुखदाई हो जाता है। जैसे नागश्री ने मुनि को जहर का दान देकर दुःख ही दुःख प्राप्त किया।

(2) ''पाप छिपाया ना छिपे'' यह हमेशा दुष्कृत्य करते समय स्मरण में रखना चाहिए। वह कई गुना बढ़कर प्रकट हो जाता है। नागश्री का जहर बहराना गुप्त था फिर भी स्वतःप्रकट हो गया।

(3) कर्मों का विपाक महा भयानक होता है। नागश्री उसी भव में भिखारण बनी अंत में सोलह रोगों की व्यथा भोगकर नरक में गई।

(4) मुनि जीवन की साधनाएं जिनशासन में विविध प्रकार की होती है। गच्छ और गुरु के साथ में रहते हुए भी मुनि बहुत बड़ी तपस्या के पारणे एवं परठने में स्वतंत्र और स्वावलंबी रह सकता है। यथा-धर्मरुचि अणगार के गुरु उन्हें मासखमण की तपस्या में भी जहर का आहार परठने जाने की अनुमति दे देते हैं, दूसरे साधु को भेजने का प्रस्ताव भी नहीं रखते हैं।

(5) परठने की गुरु आज्ञा होते हुए भी धर्म रुचि ने उस जहर को स्वयं पी लिया, यह समय पर किया गया खुद का विवेक समझना। विवेक का महत्व विनय और आज्ञा से भी बढ़कर समझना। भगवदाज्ञा की आराधना में है विराधना में नहीं।

(6) साधु को किसी का गुप्त अवगुण नहीं खोलना चाहिए। फिर भी धर्म पर संभावित आक्षेप आपत्ति से बचने हेतु धर्मरूचि अणगार के गुरु को नागश्री का नाम प्रकट करना आवश्यक हो गया। अन्यथा यह बदनामी होती कि साधुओं ने जहर दे दिया। क्योंकि उनके मृत शरीर में जहर का परिणाम स्पष्ट दीख रहा था। यह भी धर्मघोष आचार्य का विवेक व्यवहार था कि उन्होंने साधुओं से जगह-जगह घोषणा करवाई कि नागश्री के दिए गये जहरी शाक के खाने से मुनि की मृत्यु हुई। धर्मघोष आचार्य 14 पूर्वधारी आगम विहारी थे।

(7) परस्त्री सेवन का त्याग धार्मिक जीवन के लिए एवं व्यवहारिक जीवन के लिए भी अत्यन्त आवश्यक समझना चाहिए। परस्त्री लंपट पुरुषों का परभव तो बिगड़ता ही है किन्तु कई व्यक्ति इस भव में भी महान दुःखी और निन्दित हो जाते हैं यथा द्रौपदी पर ललचाने वाला अमरकंका का राजा पद्मरथ। शास्त्र में भी कहा है-

कामे य पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गई;

अर्थात् इन्हें इच्छित भोग मिल भी नहीं पाते तो विचारों की मलिनता से ही ये दुर्गति के भागी बनते हैं। अतः मर्यादित व्रतधारी जीवन स्वीकार कर लेना चाहिए।

(8) कथानक के सभी प्रसंग उपादेय नहीं होते हैं उसमें कई प्रसंग केवल ज्ञातव्य होते हैं एवं कुछ ही उपादेय-धारण करने योग्य होते हैं और कोई त्याग करने योग्य बातें होती है एवं कई आदर्श शिक्षाएं होती है। अतः ऐसी कथाओं में से विवेक पूर्वक क्षीरनीर बुद्धि से आदर्श ग्रहण करना चाहिए।

(9) भाषा प्रयोग का भी परिणाम पर असर पड़ता है अतः इसमें विवेक रखना चाहिए। पद्मरथ से युद्ध करने जाते समय पांडवों के शब्द उच्चारण और कृष्ण के शब्द उच्चारण। यथा-या तो हम रहेंगे या पद्मरथ (पांडव), मैं जीतकर आऊंगा (कृष्ण)।

(10) बड़े पुरुषों से कभी भी हंसी मजाक या कुतुहल वृत्ति का व्यवहार नहीं करना चाहिए। अन्यथा अतिप्रेम भी टूटने का कारण बन जाता है। यथा पांडवों ने कृष्ण की शक्ति देखने का भोलापन किया जिसका परिणाम यह हुआ कि अपमानित होकर पूरे परिवार को देश छोड़कर समुद्र के किनारे जाकर आजीवन रहना पड़ा। माता-पिता ने भी पांडवों का साथ नहीं किया अपितु पांचों को जाने का आदेश दे दिया। जीवन भर के लिए हस्तिनापुर भी उनका छूट गया।

(11) उत्तम, पुरुष वास्तव में वे होते हैं जो अपना पिछला जीवन तो सुधार ही लेते है। कहा भी है- ''पाछल खेती नीपजे तो भी दारिद्र दूर'' पांचों पांडवों ने पुत्र को राज्य भार संभला कर संयम ग्रहण कर आत्म कल्याण साध लिया। सारी ही उम्र संसार की आसक्ति में नहीं बिताई।

(12) तीर्थंकर की मौजूदगी में भी स्थविरों के पास दीक्षा ली जाती है। यथा-पांचों पांडवों ने धर्मघोष आचार्य के पास दीक्षा ली।

सतरहवां अध्ययन

अश्व का दृष्टांत-

हस्तिशीर्ष नगर के कुछ नौकावणिक् जलयान द्वारा समुद्र के रास्ते विदेश जाकर व्यापार करने वाले व्यापार के लिए निकले। वे लवणसमुद्र में जा रहे थे कि अचानक तुफान आ गया। नौका आंधी के थपेड़ों से डगमगाने लगी, चलित विचलित होने लगी। इधर-उधर चक्कर खाने लगी। निर्यामक की बुद्धि भी चक्कर खाने लगी। उसे दिशा का भान नहीं रहा नौका किधर जा रही है, किस ओर जाना है, यह भी भूल गया। वणिकों के भी होश हवास ठिकाने नहीं रहे। वे देवी-देवताओं की मनौती मानने लगे।

गनीमत रही कि तुफान थोड़ी देरे में शान्त हो गया। निर्यामक की संज्ञा जागृत हुई। दिशा का बोध हो आया। नौका कालिक द्वीप के किनारे जा लगी।

कालिक द्वीप में पहुंचने पर वणिकों ने देखा यहां चांदी, सोने, हीरों रत्नों की प्रचुर खाने हैं। उन्होंने वहां उत्तम जाति के विविध वर्णों वाले अश्व भी देखे।

मगर वणिकों को अश्वों से कोई प्रयोजन नहीं था, अतएव वे चांदी, सोना, हीरा आदि भर कर वापिस अपने नगर हस्तिशीर्ष में लौट आए।

तत्कालीन परम्परा के अनुसार वणिक, बहुमूल्य उपहार लेकर राजा कनककेतु के समक्ष गए। राजा ने उनसे पूछा- देवानुप्रियों! आप लोग अनेक नगरों में भ्रमण करते हैं, समुद्रयात्रा भी करते हैं तो इस बीच कुछ अद्भुत अनोखी वस्तु देखने में आई है?

वणिकों ने कालिक द्वीप के अश्वों का उल्लेख किया, उनकी सुन्दरता का वर्णन कह सुनाया। तब राजा ने वणिकों को अश्व ले आने का आदेश दिया।

वणिक राजा के सेवकों के साथ पुनः कालिक द्वीप गए। किन्तु उन्होंने पहले ही देखा था कि यहां के अश्व मनुष्य की गंध पाकर दूर भाग गए थे। वे सहज ही पकड़ में आने वाले नहीं थे अतएव वे पांचों इन्द्रियों को लुभाने वाली सामग्री लेकर चले। कालिक द्वीप पहुंचकर उन्होंने वह सामग्री बिखेर दी। जो घोड़े इन्द्रियों को वश में न रख सके, उस सामग्री के प्रलोभन में फंस गए वे बन्धन में फंस गए, पकड़े गए और हस्तीशीर्ष नगर में ले आए गए। वहां प्रशिक्षित होने में उन्हें चाबुकों की मार खानी पड़ी। वध बन्धन के अनेकानेक कष्ट सहन करने पड़े। उनकी स्वाधीनता का सुख नष्ट हो गया। पराधीनता में जीवन यापन करना पड़ा।

कुछ अश्व ऐसे भी थे जो वणिकों द्वारा बिखेरी गई लुभावनी सामग्री के जाल में नहीं फंसे थे। वे उस सामग्री से विमुख होकर दूर चले गए। उनकी स्वाधीनता नष्ट नहीं हुई। पराधीनता के कष्टों से वे बचे रहे। उन्हें न चाबुक आदि की मार सहनी पड़ी और न सवारी का काम करना पड़ा। वे स्वेच्छापूर्वक कालिक द्वीप में ही सुख से रहे।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. प्रस्तुत अध्ययन का नाम आकीर्णज्ञात है। आकीर्ण अर्थात् उत्तम जाति का अश्व। अश्वों के उदाहरण के द्वारा यहां यहा प्रतिपादन किया गया है कि जो साधक इन्द्रियों के वशवर्ती होकर अनुकूल विषयों को प्राप्त करके उनमें लुब्ध बन जाते हैं, वे अपनी रागवृत्ति की उत्कृष्टता के कारण दीर्घ काल तक भवभ्रमण करते हैं। जन्म जरा मरण की वेदनाओं के अतिरिक्त भी उन्हें अनेक प्रकार की व्यथाएं सहन पड़ती है। इसके विपरीत, प्रलोभन जनक विषयों में जो आसक्त नहीं होते, जो इन्द्रिय विषयों से विमुख रहते हैं, वे अपने वीतरागभाव के कारण सांसारिक यातनाओं से बच जाते हैं। यहीं नहीं, वे सहज स्वाभाविक असीम आत्मानन्द को प्राप्त कर लेते हैं।

2. कथानक के समाप्त होने पर बीस गाथाओं में शिक्षा वचन कहे गये हैं जिसका सारांश यह है-

1. कानों को सुख कर लगने वाले, हृदय हारी मधुर वीणा बांसुरी, श्रेष्ठ मनोहर वाद्य, ताली आदि के शब्दों में इन्द्रियों के वशवर्ती जीव आनंद मानते हैं। आत्मार्थी साधक को इसमें आनंद नहीं मानना चाहिए। मनोज्ञ या अनोज्ञ कैसे भी शब्द सुनाई दे उसमें रुष्ट भी नहीं होना एवं तुष्ट भी नहीं होना किन्तु दोनों अवस्था में समभाव और उपेक्षा भाव धारण करना चाहिए।

2. स्त्रियों के स्तन, पेट, मुख, हाथ, पैर, नैत्र आदि को देखने में एवं उनकी विलास युक्त गति के देखने में इन्द्रियासक्त जीव आनंद मानते हैं। मुनि इन से निर्लिप्त रहे। अन्य भी मनोज्ञ अमनोज्ञ रूपों में रूष्ट तुष्ट न होते हुए समभाव एवं उपेक्षाभाव रखे।

3. सुगंधित पदार्थ के धूप की गंध में एवं फूल माला, चंदन इत्र आदि की सुगंध सूंघने में एवं इन पदार्थों के उपयोग करने में इन्द्रियासक्त जीव आनन्द मानते हैं। आत्मार्थी मुनि इन सब में विरक्त रहे। मनोज्ञ सुगंध और अमनोज्ञ दुर्गन्ध का संयोग मिल जाय तो भी रुष्ट या तुष्ट न होवें। समभाव और मध्यस्थ भाव में रहें।

4. कड़वे तीखे कषैले खट्टे मीठे खाद्य पदार्थों में, फल मेवा मिष्ठानों के खाने में नमकीले स्वादिष्ट पदार्थों के खाने, चाटने, पीने में इन्द्रियासक्त अज्ञानी प्राणी आनंद मानते हैं। ज्ञानी आत्मार्थी मुनि इस सब शुभाशुभ पदार्थों के आवश्यक होने पर सेवन करते हुए भी उसमें आनंद अथवा दुःख का अनुभव नहीं करें। किन्तु पुद्गल स्वभाव और उदरपूर्ति के लक्ष्य से ही आवश्यक खाद्य पदार्थों का उपयोग करें।

5. स्पर्शेन्द्रिय में आसक्त बने जीव अनेक ऋतुओं के मनोहर सुखकर स्पर्श में, तन को सुख देने वाले आसन, शयन, फूल, माला आदि के स्पर्श में और मन की सुखकर स्त्री आदि के स्पर्श में रमण करते हैं, आनंद मानते हैं किन्तु ज्ञानी विरक्त आत्माओं को तो इन इन्द्रिय विषयों को दुःख का परिणामक समझ कर इनसे विमुख ही रहना चाहिए। मुनि अपनी मर्यादा में रहते हुए मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्श के प्राप्त होने पर समभाव में रहें एवं सहन करें।

3. इन इन्द्रिय विषयों को संसार की मूल-जड़ कहा गया है। **यथा-**

जे गुणे से मूले ठाणे, जे मूल ठाणे से गुणे। आचा.

इन पांचों इन्द्रियों के विषय विकार की आसक्ति ही संसार भ्रमण और जन्म मरण की जड़ है। एक-एक इन्द्रिय के अंदर आशक्त होकर दुःख पाते हुए मरने वाले प्राणियों के दृष्टांत भी इन गाथाओं में दिए हैं यथा-

(1) श्रोतेन्द्रिय की आसक्ति से- तीतर, (2) चक्षुइन्द्रिय की आसक्ति से पतंगा, (3) घ्राणेन्द्रिय सुगंध की आसक्ति से सर्प (4) खाने की आसक्ति से मच्छ, (5) स्पर्शेन्द्रिय की आसक्ति से हाथी। ये जीव महान कष्टों को और मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

4. इसलिए साधना में उपस्थित विरक्तात्मा ज्ञानी जनों को इन इन्द्रियों के मनोज्ञ अमनोज्ञ विषयों के संयोग प्राप्त होने पर राग या द्वेष नहीं करना चाहिए। इनकी निंदा या प्रशंसा भी नहीं करनाः इनकी आसक्ति या घृणा भी नहीं करना चाहिए। खुश होकर इनका अति उपयोग भी नहीं करना एवं अप्रसन्न होकर संकल्प विकल्पों से आर्त्तध्यान रौद्रध्यान भी नहीं करना चाहिए। अर्थात् सावधानी रख कर पुद्गल स्वभाव के चिंतन को उपस्थित रखकर एवं अपने कर्म संयोगजन्य अवस्थाओं संयोगों की प्राप्ति जानकर पूर्ण समभाव, समाधि भाव में रहना चाहिए। साथ ही आत्मानंद में एवं ज्ञान, वैराग्य, तप, संयम तथा भगवदाज्ञा में रमण करते रहना चाहिए।

अठारवां अध्ययन

सुंसुमा बालिका-

सुंसुमा सोने के पालने में झूली, सुख में पली, राजगृह नगर के धन्य सार्थवाह की लाडली कुमारी कितनी अभागिनी कैसा करुण अन्त हुआ उसके जीवन का, यह इस अध्ययन में वर्णित है।

धन्य सार्थवाह के पांच पुत्रों के पश्चात् उसका जन्म हुआ था। जब वह छोटी थी तब चिलात (किरात) दास उसे अन्य बच्चों के साथ खेलाया करता था। यही उसका मुख्य काम था। चिलात बड़ा नटखट था, बहुत उद्दंड और दुष्ट भी। खेल के समय वह बालक बालिकाओं को बहुत सताता था, बहुत बार वह कोड़ियां छिन लेता, लाख के गोले छिपा लेता, वस्त्र हरण कर लेता। कभी उन्हें धमकाता मारता, पीटता, उसके मारे बालकों का नाकों दम था। वे घर जाकर माता-पिता से उसकी शिकायत करते। धन्य सेठ उसे डांटते। मगर वह अपनी आदत से बाज न आया। उसकी हरकत बढ़ती ही गई।

चिलात नौकर चोर सेनापति बना- एक बार बालकों के अभिभावक जब बहुत क्रुद्ध हुए, रूष्ट हुए तब धन्य सार्थवाह ने चिलात को खरी खोटी सुना कर अपने घर से निकाल दिया।

चिलात अब पूरी तरह स्वछंद और निरंकुश हो गया। उसे कोई रोकने वाला या फटकारने वाला नहीं था। अतएव वह जुआ के अड्डों में, मदिरालयों में, वेश्यागृहों में इधर-उधर भटकने लगा। उसके जीवन में सभी प्रकार के दुर्व्यसनों ने अड्डा जमा लिया।

राजगृह से कूछ दूरी पर सिंहगुफा नामक एक चोरपल्ली थी। उसमें पांच सौ चोरों के साथ उनका सरदार विजय नामक चोर रहता था। चिलात उस चोर पल्ली में जा पहुंचा। वह बड़ा साहसी, बलिष्ठ और निर्भीक तो था ही, विजय ने उसे चोरकलाएं चोरविद्याएं और चोरमंच सिखला कर चौर्यकला में निष्णात कर दिया। विजय की मृत्यु के पश्चात् वह चोरों का सरदार सेनापति भी बन गया।

तिरस्कृत करके घर से निकाल देने के कारण धन्य सार्थवाह के प्रति उसके मन में प्रतिशोध की भावना थी। किन्तु सुंसुमा पर उसकी प्रीति थी। उसने एक बार सब साथियों को एकत्र करके धन्य का घर लूटने का निर्णय प्रकट किया। सब साथी उससे सहमत हो गए। चिलात ने कहा- लूंट में जो धन मिलेगा वह सब तुम्हारा होगा, केवल सुंसुमा लड़की मेरी होगी।

सेठ के घर डाका और सुंसुमा का प्राणांत- निश्चयानुसार एक रात्रि में धन्य सार्थवाह के घर डाका डाला गया। प्रचुर सम्पत्ति और सुंसुमा को लेकर चोर जब वापिस लौट गए तो धन्य सेठ, जो कहीं छिपकर अपने प्राण बचा पाया था, नगर रक्षकों के यहां गया। समग्र वृतान्त सुनकर नगर रक्षकों ने सशस्त्र होकर चोरों का पीछा किया। धन्य और उसके पांचों पुत्र भी साथ चले।

नगर रक्षकों ने निरन्तर पीछा करके चिलात को पराजित कर दिया। तब उसके साथी पांच सौ चोर चोरी का माल छोड़कर इधर उधर भाग गए। नगर रक्षक वह धन सम्पत्ति लेकर वापिस लौट गए। चिलात सुंसुमा को लेकर अकेला भागा। धन्य सेठ अपने पुत्रों के साथ उसका लगातार पीछा करता चला गया। यह देखकर बचने का अन्य कोई उपाय न रहने पर चिलात ने सुंसुमा का गला काट डाला और धड़ को वहां छोड़ मस्तक साथ लेकर अटवी में कहीं भाग गया। मगर भूखप्यास से पीड़ित होकर वह अटवी में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया सिंह गुफा तक नहीं पहुंच सका।

उधर धन्य सार्थवाह ने जब अपनी पुत्री का मस्तकविहीन निर्जीव शरीर देखा तो उसके शोक संताप का पार न रहा। वह बहुत देर तक रोता विलाप करता रहा।

मृत पुत्री के शरीर से प्राण रक्षा- धन्य और उसके पुत्र चिलात का पीछा करते करते बहुत दूर पहुंच गये थे। जोश ही जोश में उन्हें पता ही नहीं चला कि हम नगर से कितनी दूर आ गए हैं। अब वह जोश निःशेष हो चुका था। वे भूख प्यास से बुरी तरह पीड़ित हो गए थे। आसपास पानी की तलाश की, मगर कहीं एक बूंद न मिला। भूख प्यास की इस स्थिति में लौट कर राजगृह तक पहुंचना भी संभव नहीं था। बड़ी विकट अवस्था थी। सभी के प्राणों पर संकट था।

यह सब सोचकर धन्य सार्थवाह ने कहा- ''भोजन पान के बिना राजगृह पहुंचना सम्भव नहीं है, अतएव मेरा हनन करके मेरा मांस और रुधिर का उपयोग करके तुम लोग सकुशल घर पहुंचो।'' किन्तु ज्येष्ठ पुत्र ने पिता के इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। उसने अपने वध की बात कही, पर अन्य भाईयों ने उसे भी मान्य नहीं किया। इस प्रकार कोई भी भाई के वध के लिए सहमत नहीं हुआ। तब धन्य ने सुंसुमा के मृत कलेवर से भूख प्यास की निवृत्ति करने प्रस्ताव किया। यही निर्णय रहा। सुंसुमा के शरीर का आहार करके अपने पुत्रों के साथ धन्य सार्थवाह सकुशल राजगृह पहुंच गया। यथासमय धन्य ने प्रवज्या अंगीकार की। सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वह महाविदेह क्षेत्र से सिद्धि प्राप्त करेगा।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. धन्य सार्थवाह और उसके पुत्रों ने सुंसुमा के मास रूधिर का आहार शरीर के पोषण के लिए नहीं किया था। जिव्हा लोलुपता के वशीभूत होकर भी नहीं किया था किन्तु जीवित रहकर राजगृही तक पहुंचने के एक मात्र उद्देश्य से ही किया था। इसी प्रकार साधक मुनि को चाहिए कि वह इस अशुचि शरीर के पोषण के लिए नहीं वरन मुक्तिधाम तक पहुंचने के लक्ष्य से ही आहार करे।

2. जैसे धन्य सार्थवाह को अपनी पुत्री के मांस रूधिर के सेवन में लेश मात्र भी आसक्ति या लोलुपता नहीं थी, उसी प्रकार साधक के मन में आहार के प्रति अणुमात्र भी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

3. उच्चतम कोटी की अनासक्ति प्रदर्शित करने के लिए यह उदाहरण अत्यन्त उपयुक्त है। इस पर सही दृष्टिकोण से शास्त्रकार के आशय को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

4. अपनी साधना को उन्नतोन्नत बनाने के लक्ष्य वाले साधकों को इस दृष्टांत में बताए गए आदर्श के अनुसार आहार के प्रति अपनी उदासीन भावनाओं का सर्जन करना चाहिए। जिसके लिए आहार करते समय एवं अन्य समय में इस दृष्टान्त का पुनः पुनः अनुचिंतन करते रहना चाहिए कि आप्त पुरुषों ने भिक्षु को आहार के लिए ऐसी मनोवृत्ति रखने का उपदेश किया है।

5. अपने पारिवारिक जनों का या किसी मानव के मृत कलेवर का आसक्ति पूर्वक आहार करने वाला व्यक्ति मनुष्य की कोटि में नहीं गिना जा सकता।

उसी प्रकार भिक्षा में प्राप्त आहार को गृह त्यागी निर्ग्रन्थ आसक्ति पूर्वक ग्रहण तो उनकी यह वृत्ति साधुत्व को समाप्त देने वाली होती है अर्थात् वह साधक अपने भाव संयम से हाथ धो बैठता है। संयम की सच्ची आराधना वह नहीं कर सकता। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

दीपक झोलो पवन को, नर ने झोलो नार ।
साधु झोलो जीभ को, डूबे काली धार ।।

6. जिस प्रकार धन्य सार्थवाह ने केवल नगर में पहुंचने मात्र के लिए ही वह आहार किया, उसके स्वाद में किसी भी प्रकार का आनंद संकल्प नहीं किया। वैसे ही श्रमण निर्ग्रन्थों को केवल मुक्ति प्राप्त करने हेतु एवं ग्रहण किए गये संयम की पालना के लिए अपने शरीर की अत्यावश्यक शक्ति को बनाए रखने के लिए ही आहार करना चाहिए। अन्य कोई भी हेतु आहार करने में नहीं होना चाहिए। इसी अपेक्षा की विस्तृत रूप में बताने के लिए आहार करने के छः कारण उत्तराध्ययन सूत्र में और ठाणांग सूत्र आदि में कहे गये हैं।

7. ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' अर्थात् धर्म साधना का प्रथम अथवा प्रधान साधन शरीर है। शरीर की रक्षा पर ही संयम की रक्षा निर्भर है। मानव शरीर के माध्यम से ही मुक्ति की साधना संभव होती है। अतएव त्यागी वैरागी उच्चकोटी के सन्तों को भी शरीर टिकाए रखने के लिए आहार करना पड़ता है। तीर्थंकरों ने आहार करने का विधान भी किया है। किन्तु सन्तजनों का आहार अपने लक्ष्य की पूर्ति के एक मात्र ध्येय को समक्ष रख कर होना चाहिए। शरीर की पुष्टि, सुन्दरता, विषय सेवन की शक्ति, इन्द्रिय तृप्ति आदि की दृष्टि से नहीं।

साधु जीवन में अनासक्ति का बड़ा महत्व है। गृहस्थों के घरों से गोचरी द्वारा साधु को आहार उपलब्ध होता है। वह मनोज्ञ भी हो सकता है, अमनोज्ञ भी हो सकता है, आहार अमनोज्ञ हो तो उस पर अप्रीति भाव अरुचि या द्वेष का भाव उत्पन्न न हो और मनोज्ञ आहार करते समय प्रीति या आसक्ति उत्पन्न न हो, यह साधु के समभाव की कसौटी है। यह कसौटी

बड़ी विकट है। आहार न करना उतना कठिन नहीं है जितना कठिन है मनोहर सुस्वादु आहार करते हुए भी पूर्ण रूप से अनासक्त रहना।

विकार का कारण विद्यमान होने पर भी चित्त को विकृत न होने के लिए दीर्घकालीन अभ्यास, और अत्यन्त धैर्य एवं दृढ़ता की आवश्यकता होती है। धन्य सार्थवाह को अपनी बेटी सुंसुमा अतिशय प्रिय थी। उसकी रक्षा के लिए उसने सभी सम्भव उपाय किए थे। उसके निर्जीव शरीर को देख कर वह संज्ञाशून्य होकर धरती पर गिर पड़ा, रोता रहा। इससे स्पष्ट है कि सुंसुमा उसकी प्रिय पुत्री थी। तथापि प्राणरक्षा का अन्य उपाय न रहने पर उसने उसके निर्जीव शरीर के मांस शोणित का आहार किया। कल्पना की जा सकती है कि इस प्रकार का आहार करते समय धन्य के मन में किस सीमा का अनासक्त भाव रहा होगा। निश्चय ही लेशमात्र भी आसक्ति का संस्पर्श उसके मन को नहीं छुआ होगा। अनुराग निकट भी नहीं फटका होगा। धन्य ने उस आहार में तनिक भी आनन्द न माना होगा। राजगृह नगर और अपने घर पहुंचने के लिए प्राण टिकाए रखना ही उसका एक मात्र लक्ष्य रहा होगा।

साधु को इसी प्रकार का अनासक्त भाव रखकर आहार करना चाहिए। अनासक्ति को समझाने के लिए इससे अच्छा तो दूर रहा, इसके समकक्ष भी अन्य उदाहरण मिलना सम्भव नहीं है। यह सर्वोत्तकृष्ट उदाहरण है।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रख कर इस उदाहरण की अर्थ-संघटना करनी चाहिए।

उन्नीसवां अध्ययन

पुण्डरीक कण्डरीक– प्रस्तुत अध्ययन का कथानक मानव जीवन में होने वाले उत्थान और पतन का तथा पतन और उत्थान का सजीव चित्र उपस्थित करता है। जो कथानक यहां प्रतिपादित किया गया है, वह महाविदेह क्षेत्र का है।

महाविदेह क्षेत्र के पूर्वीय भाग में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी राजधानी साक्षात् देवलोक के समान मनोहर एवं सुन्दर थी। बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी वहां के राजा महापद्म के दो पुत्र थे- पुण्डरीक और कंडरीक।

एक बार वहां धर्मघोष आचार्य का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना श्रवण कर और संसार की असारता का अनुभव करके राजा महापद्म दीक्षित हो गए। बड़े भाई पुण्डरीक राजसिंहासन पर आसीन हुए। महापद्म मुनि संयम और तपश्चर्या से आत्मा को विशुद्ध करके यथासमय सिद्ध, बुद्ध, और मुक्त हो गए।

कंडरीक की दीक्षा– किसी समय दूसरी बार पुनः स्थविरों का आगमन हुआ। इस बार धर्मोपदेश श्रवण कर करने से राजकुमार कण्डरीक छोटे भाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने राजा पुण्डरीक बड़े भाई से दीक्षा की अनुमति मांगी। पुण्डरीक ने उसे राजसिंहासन प्रदान करने की पेशकश की, मगर कण्डरीक ने उसे स्वीकार नहीं किया। आखिर वह दीक्षित हो गया।

दीक्षा के पश्चात् स्थविर के साथ कण्डरीक मुनि देश देशान्तर में विचरने लगे, किन्तु रूखा सूखा आहार करने के कारण उनकी शरीर रूग्ण हो गया। स्थविर जब पुनः पुण्डरीकिणी नगरी में आए तो राजा पुण्डरीक ने कण्डरीक मुनि को

रोगाक्रान्त देखा। पुण्डरीक ने स्थविर मुनि से निवेदन किया- भंते! मैं कण्डरीक मुनि की चिकित्सा कराना चाहता हूं। आप मेरी यानशाला में पधारे।

स्थविर यानशाला में पधार गए। उचित चिकित्सा होने से कण्डरीक मुनि स्वस्थ हो गये। स्थविर मुनि वहां से अन्यत्र विहार कर गए परन्तु कण्डरीक मुनि राजसी भोजन पान में ऐसे आसक्त हो गए कि विहार करने का नाम ही न लेते। पुण्डरीक उनकी आसक्ति और शिथिलता को समझ गए। कण्डरीक की आत्मा को जागृत करने के लिए एक बार पुण्डरीक ने उनके निकट जाकर वन्दन नमस्कार करके कहा- ''देवानुप्रिय आप धन्य हैं, आप पुण्यशाली हैं, आपका मनुष्य जन्म सफल हुआ है, आपने अपना जीवन धन्य बनाया है। मैं पुण्यहीन हूं, भाग्यहीन हूं कि अभी तक मेरा मोह नहीं छूटा, मैं संसार में फंसा हूं।''

कण्डरीक को यह कथन रुचिकर तो नहीं हुआ फिर भी वह बड़े भाई की लज्जा के कारण, बिना इच्छा ही विहार कर गया। मगर संयम की पालना तो तभी संभव है जब अन्तरात्मा में सच्ची विरक्ति हो, इन्द्रियविषयों के प्रति लालसा न हो और आत्महित की गहरी लगन हो। कण्डरीक में यह कुछ भी शेष नहीं रहा था। अतएव कुछ समय तक वह स्थविर के पास रह कर और सांसारिक लालसाओं से पराजित होकर फिर लौट आया। वह लौट कर राज प्रासाद की अशोकवाटिका में जा कर बैठ गया। लज्जा के कारण प्रासाद में प्रवेश करने का उसे साहस न हुआ।

कंण्डरीक का पतन और पुण्डरीक का कल्याण-

धायमाता ने उसे अशोकवाटिका में बैठा देखा। जाकर पुण्डरीक से कहा, पुण्डरीक अन्तःपुर के साथ उनके पास गया और पूर्व की भांति उनकी सराहना की। किन्तु इस बार पुण्डरीक की यह युक्ति काम न आई। कण्डरीक चुपचाप बैठा रहा। तब पुण्डरीक ने उससे पूछा भगवन्! आप भोग भोगना चाहते हैं? कण्डरीक ने लज्जा और संकोच को त्याग कर **''हां''** कह दिया।

पुण्डरीक राजा ने उस समय कण्डरीक का राज्याभिषेक किया उसे राजगद्दी दे दी और कण्डरीक के संयमोपकरण लेकर स्वयं दीक्षित हो गए। उन्होंने प्रतिज्ञा धारण की कि स्थविर महाराज के दर्शन करके एवं उनके निकट चातुर्याम धर्म अंगीकार करने के पश्चात् ही मैं आहार पानी ग्रहण करूंगा। वे पुण्डरीकिणी नगरी का परित्याग करके विहार करके स्थविर भगवान के निकट जाने को प्रस्थान कर गए।

कण्डरीक अपने अपथ्य आचरण के कारण अल्प काल में ही आर्त्तध्यान पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में, सप्तम पृथ्वी में उत्पन्न हुआ।

यह उत्थान के पश्चात् पतन की करुण कहानी है।

पुण्डरीक मुनि उग्र साधना करके, अन्त में समाधिपूर्वक शरीर का त्याग करके तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। तदनन्तर वे मुक्ति के भागी होंगे।

यह उत्थान की ओर जाने का उत्कृष्ट उदाहरण है।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

1. संयम जीवन में कभी रूग्णावस्था के कारण औषध भेषज का सेवन करना हो या अन्यतर शक्ति वर्धक पौष्टिक दवा लेना आवश्यक हो जाय तो उसमें अनुभव एवं विवेक की अत्यधिक आवश्यकता होती है। क्योंकि शक्ति वर्धक दवाएं या रासायनिक दवाएं कभी कभी किसी व्यक्ति के मानस पर ऐसा प्रभाव जमा देती है कि जिससे ऐशोआराम या भोगाकांक्षा की मनोवृत्ति प्रबल हो जाती है। जो सामान्य या विशेष अनेक उपायों से भी अंकुश में नहीं हो सकती। यथा- शैलक राजर्षि एवं कण्डरीक मुनि। दोनों ही दृष्टांत इस सूत्र में दिए गए हैं। दोनों मुनियों के पथ भ्रष्ट होने का निमित्त कारण औषध भेषज चिकित्सा ही बनी थी।

अतः मुनि जीवन में प्रवहमान साधकों को रसायनिक दवाएं स्वयं लेने में या किसी अन्य साधु को देने में परिपूर्ण विवेक रखना चाहिए।

प्रायः अनेक साधु दवा की मात्रा में या पथ्य परहेज में अविवेक कर जाते हैं। जिसका परिणाम नूतन रोगोत्पत्ति और जीवन विनाश तक में आ जाता है। कई साधक औषध भेषज के निमित्त से संयम में शिथिल मानस वाले या संयमच्युत भी हो जाते हैं।

2. विगय और महाविगयों का प्रचुर मात्रा में सेवन भी मानस में विकार दशा को जागृत करने का निमित्त बनता है। इसी कारण शास्त्र में तपरहित विगय सेवन कर्ता को पापश्रमण कहा है। फिर भी वह सुसाध्य होता है अर्थात् विगय जन्य विकार तप के आचरण से उपशामित हो सकता है, किन्तु औषध जन्य विकार महा उन्मादकारी होता है।

कुशल सेवानिष्ट पंथक के महिनों के प्रयास से शैलक राजर्षि का उन्माद शांत हो सका था। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन वर्णित कंडरीक मुनि का विकारोन्माद उसे पूर्णतः ले डूबा। तीन दिन के क्षणिक विनश्वर जीवन के लिए वर्षों की उनकी संयम कमाई बरबाद हो गई। यह निकृष्टतम दर्जे का आत्म दिवाला निकालने का दृष्टांत है।

संयम में अस्थिर चित होने वाले साधकों के लिए यह दृष्टांत बहुत ही मार्मिक एवं अनुचिंतनीय है।

साधक को चाहिए कि जिस प्रारम्भिक वैराग्य से संयम ग्रहण किया है उसी को सदा स्मृति पटल पर रख कर उसे दृढ़तर करने रहना चाहिए। अनेक प्रकार के मानसिक बाधाओं को भी ज्ञान, वैराग्य और विवेक से दूर करते रहना चाहिए।

3. अल्प काल की आसक्ति जीवों को महान गर्त्त में पटक देती है और किंचित काल का वैराग्य उत्साह भी प्राणी को महाशिखर पर पहुंचा देता है।

कंडरीक ने संयम त्याग कर दीर्घ काल तक इच्छित भोग आनंद भी नहीं पाया। फिर भी केवल आसक्ति परिणामों से उसकी दुर्गति अवश्यंभावी हो गई।

पुण्डरीक राजा वैराग्य पूर्ण संयम जीवन केवल तीन दिन ही प्राप्त कर सका किन्तु उत्कृष्ट विरक्ति, उत्कृष्ट उत्साह से तीन दिन के संयम और एक बेले के तप से गुरु सान्निध्य में पहुंच कर आत्मकल्याण साध लिया।

4. यह जानकर मुमुक्षु आत्माओं को आसक्ति भाव क्षण भर भी नहीं टिकने देना चाहिए और वैराग्य भाव जब कभी भी प्राप्त होवे उसका पूर्ण स्वागत कर जीवन में समाचरण कर लेना चाहिए। तीन दिन तो क्या एक घड़ी भर का वैराग्य और तद्युक्त आचरण आत्मा का बेड़ा पार कर सकता है और क्षण भर की सफर की लापरवाही वर्षों की कमाई लुटेरों को लुटा देती है।

5. पुण्डरीक राजा ने स्वतः ही वेश पहिन कर दीक्षा अंगीकार की फिर विहार कर गुरु के पास पहुंच कर पुनः गुरु मुख से संयम ग्रहण किया और प्रथम बेले का पारणा गुरु आज्ञा से स्वयं ही लाए। वैराग्य की धारा प्रवर्धमान थी इसलिए निरस रूक्ष आहार लाए। पैदल विहार का प्रसंग, तपस्या तथा अचानक नया जीवन परिवर्तन था। उस आहार से पेट में और शरीर में दारूण वेदना रात्रि में उत्पन्न हुई। अवसर जानकर स्वतः आजीवन अनशन ग्रहण किया एवं रात्रि में ही दिवंगत हो गये। सर्वार्थ सिद्ध अणुत्तर विमान में 33 सागरोपम की उम्र के देव बने।

कण्डरीक भी प्रबल इच्छा से राजा बना और तीसरे दिन रात्रि में मर कर सातवीं नरक में तेतीस सागरोपम की उम्र का नैरयिक बना।

6. विषय और कषाय आत्मा के महान लुटेरे हैं, अनर्थों की खान है। आत्मगुणों के लिए अग्नि और डाकू का काम करने वाले हैं। विषय भोगों को विष और कषायों को अग्नि की उपमा आगम में दी गई है। विष स्वस्थ हृष्ट पुष्ट शरीर का क्षण भर में खात्मा कर देता है। अग्नि अल्प समय में ही सब कुछ भस्म कर देती है। बस इसी तरह ये विषय और कषाय अल्प समय में दीर्घ काल की आत्म साधना का सफाया कर देते हैं। विषय भोगों में अंधा बना मणिरथ मदनरेखा के लिए छोटे प्रिय भाई निरपराध की हत्या कर देता है और स्वयं भी संयोग वश सांप के काट जाने से उसी दिन मर कर नरक में चला जाता है।

निरंतर मासखमण की तपस्या करने वाला महातपस्वी भी यदि कषाय भावों में परिणत होता है तो वह बारंबार जन्म मरण करता है। -सूय.अ. 2 उ. 1

कषाय और विषय की तीव्रता वाले व्यक्ति चक्षु हीन नहीं होते हुए भी अंधे कहे गये हैं। यथा- मोहांध, विषयांध, क्रोधांध आदि।

उत्तरा. अ.-19 में विषय- भोगों को जहरीले और मीठे किंपाक फल की उपमा दी गई है।

7. इस अंतिम अध्ययन में काम भोगों का दारुण दुःखमय परिणाम और संयम का श्रेष्ठ आनंद परिणाम बताया गया है।

उन्नीस अध्ययनों का हार्द-

1. संसार भ्रमण के दुःखों की तुलना में संयम के कष्ट नगण्य है। संयम में अस्थिर बनी आत्मा को बड़े ही विवेक से स्थिर करना चाहिए। यथा- भगवान महावीर ने मेघमुनि को।

2. किसी के वचन या आचरण का मौलिक आशय उससे समझे बिना भ्रम या कल्पना से भद्रा सेठानी की तरह अपना माथा भारी नहीं करना चाहिए। अन्यथारुप में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

धर्म साधना का साधन एवं प्रगति मार्ग का साथी होने से शरीर को आहार देना पड़ता है ऐसी मनोवृत्ति से मुनि को आहार करना चाहिए। यथा सेठ का चोर को आहार देना।

3. जीवन में अपने साध्य के प्रति दृढ़ आस्था होनी चाहिए। यथा जिनदत्त पुत्र की अंडे के प्रति।

4. गंभीरता के साथ इंद्रिय और मन का निग्रह कर उन्हें आत्म वश में नियंत्रण में रखते हुए साधना में अग्रसर होनी चाहिए। गंभीर कछुए के समान स्थिर मानस होना चाहिए।

5. मार्ग भटके हुए साधक का तिरस्कार न करके कुशलता और आत्मीयता पूर्वक विनय भक्ति उसे उसका उद्धार करने का प्रयत्न करना चाहिए। **यथा–** पंथक मुनि।

औषध प्रयोग में अत्यधिक सावधानी वर्त्तनी चाहिए क्योंकि उसमें कई प्रकार के अपथ्य पदार्थ प्रयुक्त होते हैं। जिसकी मात्रा का अविवेक हो जाने पर वे पदार्थ बुद्धि भ्रष्ट एवं धर्म च्युत कर देते हैं। **यथा–** शैलक राजर्षि।

6. कर्म आत्मा को लेप युक्त तुम्बे के समान भारी बना कर संसार में डुबाता है, ये कर्म पापों से पुष्ट होते हैं, और पाप हिंसा, क्रोध कलह निंदा आदि 18 है इनके त्याग से आत्मा हलुकर्मी बनते हुए क्रमशः मुक्त बन सकती है। अतः पापों का त्याग और कर्मों की निर्जरा करने में सदा पुरुषार्थ रत रहना चाहिए।

7. संयम में और आत्मगुणों में दिनों दिन विकास करते रहना चाहिए। उपेक्षा या लापरवाही नहीं होनी चाहिए। उत्तरोत्तर बढ़ने का उत्साह रखना चाहिए। यथा- धन्ना सार्थवाह की चैथी बहु-रोहिणी द्वारा पांच शालि की वृद्धि।

8. साधनामय जीवन में माया कपट का अल्पतम आचरण भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि माया मिथ्यात्व की जननी है और समकित को नष्ट करके स्त्रीत्व को प्राप्त कराने वाली है। यथा- मल्ली भगवती का पूर्व भव का कपट।

9. स्त्रियों के लुभावने हाव भाव में फसना खतरे की निशानी है। अपनी प्रतिज्ञा एवं लक्ष्य सें किंचित भी च्युत नहीं होना चाहिए। जिनपाल के समान दृढ़ रहना चाहिए।

10. जीव अपने प्रयत्न विशेष से गुणों में शिखर पर भी पहुंच सकता है और अविवेक से अंधकारमय गर्त में भी। जीव की उत्थान पतन दोनों अवस्थाएं संभव है। यह जानकर सावधानी पूर्वक विकासोन्मुख बनना चाहिए। चंद्रमा की कला वृद्धि के समान।

11. अपने या पराए किसी भी व्यक्ति के द्वारा कोई भी प्रतिकूल व्यवहार हो, सब कुछ शान्ति एवं गंभीरता के द्वारा सम्यक् सहन करना चाहिए, चौथे दावद्रव वृक्ष के समान। इसमें यदि किंचित भी कमी की जायेगी तो खुद के संयम की ही विराधना होगी। अन्य तीन प्रकार के दावद्रव वृक्षों के समान।

12. पुद्‌गल स्वभाव बदलते रहते हैं मनोज्ञ या अमनोज्ञ पुद्‌गलों में प्रसन्नता-अप्रसन्नता या घृणा-आनंद मानने के परिणामों का त्याग करने से ही व्यक्ति सच्चा ज्ञानी समभावी बनता है। **यथा-** सुबुद्धि प्रधान।

13. धर्म गुरुओं का सत्संग प्राप्त होना आत्म विकास का श्रेष्ठ माध्यम है। अतः समय-समय पर सत्संग लाभ का प्रयत्न रखना चाहिए। सत्संग एवं सुसंस्कारों को पुष्ट करने वाले संयोगों को जुटाते रहना चाहिए। तभी आत्मा धर्म में स्थिर रह सकती है।

मनुष्य भव में आत्म साधना को बिगाड़ने वाला कभी पशुयोनि में संयोग पाकर साधना जीवन को सफल कर सकता है, **यथा-** नंद मणिहार। (चण्डकौशिक आदि)। मनुष्य भव में ही सावधानी युक्त साधना करने का ही प्रयत्न रखना चाहिए ताकि पशु योनि में जाना ही न पड़े।

14. दुःख आने पर ही अधिकांशतः जीवों को धर्म का बोध लगता है या रूचि बढ़ती है यथा-तेतली पुत्र प्रधान। किन्तु सुख की घड़ियों में ही धर्म धारण कर लिया जाय तो जीव को दुःख की अवस्था देखनी ही न पड़े। धर्म के परिणामों की तीव्रता में दुःख भी सुख बन जाता है।

15. अभिभावकों के हित सलाह की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अनुभवी आत्मीयता युक्त व्यक्ति के आदेश का आदर करना चाहिए।

नंदी फल सरीखे वर्त्तमान सुख सुविधा में ही लुभावित न होकर भविष्य का या परिणाम का विचार करके ही कोई प्रवृत्ति करनी चाहिए।

16. यदि किसी का भला न कर सको तो बुरा भी मत करो। मुनि को अभक्ति अश्रद्धा से अमनोज्ञ दान मत दो। यथा- नागश्री। बड़ों के साथ मश्करी कुतुहल करना अपने जीवन को बरबाद करना है। अतः सर्वत्र विवेक बुद्धि और भविष्य की विचारणा पूर्वक दीर्घ दृष्टि से आचरण करो।

जीव दया और अनुकंपा का महत्व खुद के सुखसुविधा से ज्यादा समझो। ''**दया धर्म का मूल है**'' कीड़ियों की करुणा में धर्मरुचि अणगार ने स्वयं का जीवन होम दिया।

17. इन्द्रिय विषयों के लुभावने चक्कर में फंसना स्वयं की स्वतंत्रता नष्ट करना है, परतंत्र बनना है। **यथा-** रत्नद्वीप के अश्व।

18. आहार की आसक्ति किंचित भी नहीं होना अपितु आहार करते हुए भी उन पुद्‌गलों के प्रति पूर्ण अनासक्ति होना चाहिए मृत पुत्री के कलेवर के खाने की उपमा से भावित अंतःकरण आहार करने के समय रखना चाहिए।

19. साधना युक्त जीवन में पूर्ण धैर्य रखना चाहिए। संयम रुचि को पूर्ण सुरक्षित रखना चाहिए। संयम च्युत और भोगासक्त व्यक्ति नहीं चाहते हुए भी दुख परंपरा बढ़ा लेता है। यथा- कुण्डरीक इसलिए सावधानी पूर्वक सदा संयम गुणों की वृद्धि करते रहना चाहिए।

इस प्रकार इन अध्ययनों में आत्म विकास एवं आत्म सुरक्षा के उपाय विभिन्न तरह से सूचित किए गये हैं।

दूसरा श्रुत स्कंध

काली देवी-

राजगृह नगर में श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ। उस समय चमरेन्द्र असुरराज की अग्रमहिषी (पटरानी) काली देवी अपने सिंहासन पर आसीन थी। उसने अचानक अवधिज्ञान का उपयोग जम्बुद्वीप की ओर लगाया तो देखा कि भगवान महावीर जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में राजगृह नगर में विराजमान हैं। यह देखते ही काली देवी सिंहासन से नीचे उतरी, जिस दिशा में भगवान थे, उस दिशा में सात आठ कदम आगे गई और पृथ्वी पर मस्तक टेक कर उन्हें विधिवत वन्दना की।

देवी का मनुष्य लोक में आगमन-

तत्पश्चात् उसने भगवान के समक्ष जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करने, वन्दना और नमस्कार करने का निश्चय किया। उसी समय एक हजार योजन विस्तृत यान की विक्रिया द्वारा तैयारी करने का आदेश दिया। यान तैयार हुआ और वह भगवान् के समक्ष उपस्थित हुई। वन्दन किया, नमस्कार किया, देवों की परम्परा के अनुसार अपना नाम गौत्र प्रकाशित किया। फिर बत्तीस प्राकर की नाट्यविधि दिखला कर वापिस लौट गई।

काली देवी के चले जाने पर गौतम स्वामी ने भगवान के समक्ष निवेदन किया। भंते ! काली देवी को दिव्य ऋद्धि किस प्रकार प्राप्त हुई है।

पूर्वभव- तब भगवान ने उसके पूर्व भव का वृत्तान्त सुनाया। आमलकल्पा नगरी के कालनामक गाथापति की एक पुत्री थी। उसकी माता का नाम कालश्री था। पुत्री का नाम काली था। काली नामक वह पुत्री शरीर से बड़ी बेडौल थी। अतएव उसे कोई वर नहीं मिला। वह अविवाहित ही रही।

एक बार पुरुषादानीय भगवान पार्श्वनाथ का आमलकल्पा नगरी में पदार्पण हुआ। काली ने धर्मदेशना श्रवण कर दीक्षा अंगीकार करने का संकल्प किया। माता-पिता ने सहर्ष अनुमति दे दी। ठाठ के साथ दीक्षा महोत्सव मनाया। भगवान ने दीक्षा प्रदान कर उसे आर्या पुष्पचूला को सौंप दिया। काली आर्या ने ग्यारह अंगो-आगमों का अध्ययन किया और यथाशक्ति तपश्चर्या करती हुई संयम की आराधना करने लगी।

किन्तु कुछ समय के पश्चात् काली आर्या को शरीर के प्रति आसक्ति उत्पन्न हो गई। वह बार-बार अंग उपांग धोती और जहां स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि करती, वहां जल छिड़कती। साध्वी आचार से विपरीत उसकी यह प्रवृत्ति देखकर आर्या पुष्पचूला ने उसे ऐसा न करने के लिए समझाया। वह नहीं मानी। बार-बार टोकने पर वह गच्छ से सम्बन्ध तोड़ कर अलग उपाश्रय में रहने लगी। अब वह पूरी तरह स्वच्छन्द हो गई संयम की विराधिका बन गई। कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हुआ। अन्तिम समय में उसने पन्द्रह दिन का अनशन-संथारा तो किया किन्तु शिथिलाचार की न आलोचना की और न प्रतिक्रमण ही किया।

भगवान महावीर ने कहा- यही वह काली आर्या का जीव है जो काली देवी के रूप में उत्पन्न हुआ है।

भविष्य एवं मुक्ति- गौतम स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा- देवीभव का अन्त होने पर, उद्वर्त्तन करके काली देवी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगी। वहां निरतिचार संयम की आराधना करके सिद्धि प्राप्त करेगी।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य-

महाव्रतों का विधिवत् पालन करने वाला जीव, उसी भव में यदि समस्त कर्मों का क्षय करे तो निर्वाण प्राप्त करता है। यदि कर्म शेष रह जाएं तो वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है। किन्तु महाव्रतों को अंगीकार करके भी जो उनका विधिवत् पालन नहीं करता, शिथिलाचारी बन जाता है, कुशील हो जाता है, सम्यग्ज्ञान आदि का विराधक हो जाता है, तीर्थंकर के उपदेश की परवाह न करके स्वेच्छाचारी बन जाता है और अन्तिम समय में अपने अनाचार की आलोचना प्रतिक्रमण नहीं करता, वह मात्र कायक्लेश आदि बाह्य तपश्चर्या करने के कारण देवगति प्राप्त करके भी वैमानिक जैसी भी उच्चगति और देवत्व नहीं पाता। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क की पर्याय प्राप्त करता है।

दस वर्गों का विषय वर्णन-

द्वितीय श्रुतस्कन्ध में दस वर्ग हैं।

प्रथम वर्ग में चमरेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है। दूसरे वर्ग में वैरोचनेन्द्र बलीन्द्र की।

तीसरे में असुरेन्द्र को छोड़कर दक्षिण दिशा के नौ भवनवासी इन्द्रों की अग्रमहिषियों का और चौथे में उत्तर दिशा के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

पांचवें में दक्षिण और छठे में उत्तर दिशा में वाणव्यन्तर देवों की अग्रमहिषियों का।

सातवें में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की, आठवें में सूर्य इन्द्र की तथा नौवें और दशवें वर्ग में वैमानिक के सौधर्मेन्द्र तथा ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों का वर्णन है।

इन सब दैवियों का वर्णन वस्तुतः उनके पूर्वभव का है, जिस में वे मनुष्य पर्याय में महिला के रूप में जन्मी थी। उन्होंने साध्वी-दीक्षा अंगीकार की थी और कुछ समय तक चारित्र की आराधना की थी। कुछ काल के पश्चात् वे शरीर बकुशा हो गई, चारित्र की विराधना करने लगी। गुरुणी के मना करने पर भी विराधना के मार्ग से हटी नहीं। गच्छ से अलग होकर रहने लगी और अन्तिम समय में भी उन्होंने अपने दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण किये बिना ही शरीर त्याग किया।

(1) चमरेन्द्र की अग्रमहिषियां -	5
(2) बलीन्द्र की अग्रमहिषियां -	5
(3) दक्षिण के नागकुमार आदि 9 की अग्रमहिषियां $6 \times 9 =$	54
(4) उत्तर के नागकुमार आदि 9 की अग्रमहिषियां $6 \times 9 =$	54

(5) दक्षिण व्यंतर के आठ इन्द्रों की अग्रमहिषियां	4 × 8 =	32
(6) उत्तर व्यंतर के आठ इन्द्रों की अग्रमहिषियां	4 × 8 =	32
(7) चन्द्रेन्द्र की अग्रमहिषियां		4
(8) सूर्येन्द्र की अग्रमहिषियां		4
(9) सौधर्मेन्द्र की अग्रमहिषियां		8
(10) ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियां		8

इस प्रकार दस वर्ग के 206 अध्ययन में 206 देवियों का वर्णन किया गया है। ये सभी एक भव करके महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगी।

सार- जिनवाणी के प्रति, जिनाज्ञा के प्रति, श्रद्धा आस्था शुद्ध है, तप संयम की रुचि भी है तो बकुश वृत्ति भवपरंपरा को नहीं बढ़ाती है किन्तु अंत में सही रुप से आलोचना प्रायश्चित नहीं करने से जीव विराधक होता है।

नोट- विस्तृत जानकारी के लिए आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त ज्ञाता सूत्र का अध्ययन करें।

।। ज्ञाता धर्म कथा सूत्र समाप्त।।

परिशिष्ट-

समाधिमरण-संलेखना संथारा क्या है ?

समाधिमरण, साधनामय जीवन की चरम और परम परिणति है, साधना के भव्य प्रासाद पर स्वर्णकलश आरोपित करने के समान है। जीवन पर्यन्त आन्तरिक शत्रुओं के साथ किए गए संग्राम में अन्तिम रूप से विजय प्राप्त करने का महान अभियान है। इस अभियान के समय वीर साधक मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

संसारासक्तचित्तानां, मृत्युर्भीत्ये भवेन्नृणाम।
मोदायते पुनः सोऽपि, ज्ञान-वैराग्यवासिनाम्।।

जिसका मन संसार में, संसार के राग रंग में उलझा होता है उन्हें ही मृत्यु भयंकर जान पड़ती हैं, परन्तु जिनकी अन्तरात्मा सम्यग्ज्ञान और वैराग्य से वासित होती है, उनके लिए वह आनंद का कारण बन जाती है।

साधक की विचारणा तो विलक्षण प्रकार की होती है। वह विचार करता है-

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपंजरे ।
भिऽमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ।।

सैंकड़ों कीड़ों के समूहों से व्याप्त शरीर रुपी पींजरे का नाश होता है तो भले हो। इसके विनाश से मुझे भयभीत होने की क्या आवश्यकता है। इससे मेरा क्या बिगड़ता है। यह जड़ शरीर मेरा नहीं है। मेरा असली शरीर ज्ञान है, मैं ज्ञानविग्रह हूँ। वह मुझ से कदापि पृथक नहीं हो सकता।

समाधिमरण के काल में होने वाली साधक की भावना को व्यक्त करने के लिए कहा गया है-

एगोऽहं नत्थि में कोई, नाहमन्नस्स कस्सइ ।
एवमदीणमणसो अप्पाणमणुसासई ।।

एगो मे सासओ अप्पा नाणदंसण संजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा।।

संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्खपरम्परा ।
तम्हा संजोगसंबंध सव्वं तिविहेण वोसिरिअं।।

मैं एकाकी हूं मेरे सिवाय मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी अन्य का नहीं हूं। इस प्रकार के विचार से प्रेरित होकर दीनता का परित्याग करके अपनी आत्मा को अनुशासित करे। यह भी सोचे-ज्ञान और दर्शनमय एकमात्र शाश्वत आत्मा ही मेरा है। इसके अतिरिक्त संसार के समस्त पदार्थ मुझसे भिन्न है, संयोग से प्राप्त हो गये हैं और बाह्य पदार्थों के इस संयोग के कारण ही जीव को दुःख की परम्परा प्राप्त हुई है। अनादिकाल से एक के बाद दूसरा और दूसरे बाद तीसरा जो दुःख उपस्थित होता रहता है, उसका मूल और मुख्य कारण पर पदार्थों के साथ आत्मा का संयोग ही है। अब इस परम्परा का अन्त करने के लिए मैंने मन, वचन, काया से इस संजोग का त्याग कर दिया है।

संथारा कब आवश्यक-

इस प्रकार की आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर साधक समाधिमरण अंगीकार करता है। किन्तु मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। आगम में चार दुर्लभ उपलब्धियां कही गई है। मानव जीवन उनमें परिगणित है। देवता भी इस जीवन की

कामना करते हैं। अतएव निष्कारण जब मन में उमंग उठी तभी इसका अन्त नहीं किया जा सकता। संयमशील साधक मनुष्य शरीर के माध्यम से आत्महित सिद्ध करता है। और उसी उद्देश्य से इसका संरक्षण भी करता है। परन्तु जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए कि जिस ध्येय की पूर्ति के लिए शरीर का संरक्षण किया जाता है, उस ध्येय की पूर्ति में वह बाधक बन जाए तब उसका परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर होता है। प्राणान्तकारी कोई उपसर्ग आ जाए, दुर्भिक्ष के कारण जीवन का अन्त समीप जान पड़े, वृद्धावस्था अथवा असाध्य रोग उत्पन्न हो जाए तो उस अवस्था में हाय-हाय करते हुए आर्तध्यान के वशीभूत होकर प्राण त्यागने की अपेक्षा समाधिपूर्वक स्वेच्छा से शरीर को त्याग देना ही उचित है। शरीर हमें त्याग इसकी अपेक्षा यही बेहत्तर है कि हम स्वयं शरीर को त्याग दें। ऐसा करने से पूर्ण शान्ति और अखण्ड समभाव बना रहता है।

समाधिमरण अंगीकार करने के पूर्व साधक को यदि अवसर मिलता है तो वह उसके लिए तैयारी कर लेता है। वह तैयारी संलेखना के रुप में होती है। काया और कषायों को कृश और कृशतर करना संलेखना है। कभी-कभी यह तैयारी बारह वर्ष पहले से प्रारम्भ हो जाती है।

ऐसी स्थिति में समाधिमरण को आत्मघात समझना विचार-हीनता है। परघात की भांति आत्मघात भी जिनागम के अनुसार घोर पाप है, नरक का कारण है। आत्मघात कषाय के तीव्र आवेश में किया जाता है जबकि समाधिमरण कषायों की उपशान्ति होने पर उच्चकोटी के समभाव की अवस्था में ही किया जा सकता है।

समाधिमरण अनशन के तीन प्रकार है- (1) भक्तप्रत्याख्यान, (2) इंगितमरण और (3) पादपोपगमन। जिस समाधिमरण में साधक स्वयं शरीर की सार-संभाल करता है और दूसरों की भी सेवा स्वीकार कर सकता है, वह भक्तप्रत्याख्यान कहलाता है। इंगितमरण स्वीकार करने वाला स्वयं तो शरीर की सेवा करता है किन्तु किसी अन्य की सहायता अंगीकार नहीं करता। भक्तप्रत्याख्यान की अपेक्षा इसमें अधिक साहस और धैर्य की आवश्यकता होती है। किन्तु पादपोपगमन समाधिमरण तो साधक की चरम सीमा की कसौटी है। उसमें शरीर की सार संभाल न स्वयं की जाती है, न दूसरों के द्वारा कराई जाती है। उसे अंगीकार करने वाला साधक समस्त शरीर चेष्टाओं का परित्याग करके पादप (वृक्ष) की कटी हुई शाखा के समान निश्चेष्ट, निश्चल हो जाता है। अत्यन्त धैर्यशील, सहनशील और साहसी साधक ही इस समाधिमरण को स्वीकार करते हैं।

सार- आत्मघात कषायों के उद्वेग से होता है या आर्तरौद्रध्यान से होता है, जबकि संलेखना संथारा तो परम् शांत एवं धर्मध्यान के परिणामों से होता है। यही दोनों में मुख्य अंतर है।

मृत्यु समय की पहिचान-

अतिगाज नहीं अति बीज नहीं, मूत्र न खंडे धार ।
कर तो दीसे स्तंभ सा, हंसा चालन हार ।।

* आत्मघात जीव की कषाय अवस्था का परिणाम है ।
* संथारा करना ज्ञान एवं वैराग्य मय, आत्मा की सर्वोच्च समभाव अवस्था है।
* मेरी पुस्तक जैन धर्म में उत्कृष्ट तप संलेखना संथारा का अध्ययन करना चाहिए।

उपासकदशा सूत्र

प्रारंभिक-

जैन धर्म में त्याग एवं साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। तीर्थंकर प्रभु केवलोत्पति के बाद धर्म-तीर्थं की स्थापना करते हैं। जिसमें चार अंग होते है, साधु-साध्वी, श्रावक एवं श्राविका। इन्हीं की साधना को दो भागों में विभाजित किया जाता हैं। श्रमण धर्म ा एवं श्रमणोपासक धर्म। श्रमण सर्व त्यागी संयमी होते है वहां आत्मा साधना ही सर्वस्व हैं। ये श्रमण ''**सव्व सावजं जोगं पच्चक्खामि**'' इस संकल्प के साथ ही नये जीवन में प्रवेश करते है वहां वे कृतकारित एवं अनुमोदित इन तीनो करण और तीन योगों से जीवन पर्यन्त सभी पापों का त्याग कर देते हैं। उनकी वह साधना सर्व-विरत साधना हैं।

महाव्रतों की समग्र परिपूर्ण अराधना रूप उक्त साधना की अपेक्षा हलका सुकर-सरल एक और मार्ग है जिसमें साधक अपनी शक्ति के अनुसार सीमा रूप में व्रत स्वीकर करता है ऐसे साधक को श्रमणोपासक कहा जाता हैं। उनकी यह साघना देशविरत साधना कही जाती हैं।

उपासकदशा अंग- सूत्रों में सातवां अंगसूत्र हैं। इसमें देश विरत साधना अर्थात् श्रमणोपासक जीवन की चर्चायें है। भगवान महावीर के समसामयिक दस श्रावक आनंद, कामदेव, चूलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुंडकोलिक, सकडालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिता और शालिहिपिता इन 10 का वर्णन हैं। वैसे भगवान महावीर के लाखों की संख्या में श्रावक थे। उनके प्रमुख शंख, पुष्कली श्रमणोपासक थे। तथापि यहां इन 10 श्रावकों का जीवन कुछ विशेष घटनाओं एवं उपसर्गों के कारण अत्यन्त प्रेरक होने से अंकित किया हैं। सूत्र में वर्णित दसों श्रावकों ने बीस वर्ष श्रावक व्रत का पालन किया।जिसमें पिछले छः वषों में सभी ने निवृत्तिमय जीवन स्वीकार किया एवं श्रावक की ग्यारह पड़िमाओं का आराधन किया। इस समानता की दृष्टि से भी इन दस का वर्णन सूत्र में किया गया है। इस सूत्र की यह स्वतन्त्र रूप से विशेषता है कि यह गृहस्थ जीवन का सर्वांगीण साधना पर प्रकाश डालता हैं। इस कारण इसका नाम भी उपासकदशा रखा गया हैं। अतः गृहस्थजीवन में धर्माचरण करने वाले सभी साधकों के लिए यह सूत्र विशेष रूप से पठनीय मननीय हैं। आशा है अत्यन्त आवश्यक समझकर सभी श्रमणोपासक इस सूत्र का अध्ययन करेगें एवं सही मार्गदर्शन प्राप्त करेगे। उपलब्ध यह सूत्र 812 श्लोक प्रमाण माना गया हैं।

विमलकुमार नवलखा, जगपुरा

उपासकदशा सूत्र

प्रथम अध्ययन

आनंद-श्रमणोपासक

प्राचीन काल में वैशाली के निकट ही वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वहां जितशत्रु राजा राज्य करता था। वह लिछवियों का गणराज था। उस नगर में आनन्द नामक सेठ रहता था। करोड़ों की उसके पास सम्पत्ति थी। समाज में वह प्रतिष्ठित एवं सम्मानित था। बुद्धिमान, व्यवहार कुशल एवं मिलनसार होने से वह सभी का विश्वसनीय था। शिवानन्दा नामक उसके भार्या थी। वह भी गुणवती और पतिपरायणा थी। आनन्द के अन्य पारिवारिक जन भी गुण सम्पन्न एवं सुखी थे। एक बार उसके नगर के बाहर उपवन में भगवान महावीर स्वामी पधारे। नागरिक लोग भगवान के दर्शन करने गए। राजा भी अपने सामन्तो अधिकारियों एवं पारिवारिक जनों के साथ भगवान के दर्शन करने गया। आनन्द को जानकारी मिली। तो उसके मन में भी भगवान के दर्शन करने की उत्कंठा जागी। वह भी वहां पहुँचा और भक्ति पूर्वक भगवान को वन्दन नमन कर परिषद में बैठ गया। भगवान ने आई विशाल परिषद को धर्मोपदेश दिया। जीवादि मोक्ष पर्यन्त तत्त्वों का स्वरूप बताया। संयम धर्म एवं गृहस्थ धर्म का भी भगवान ने विश्लेषण किया। उपदेश सुन कर कई लोग प्रबुद्ध हुए, श्रद्धान्वित बने एवं कईयों ने श्रमण धर्म और श्रमणोपासक धर्म स्वीकार किया एवं वीतराग धर्म की भूरि-भूरि प्रशंसा की। आनन्द श्रेष्ठि भी भगवद्वाणी का पान कर अत्यन्त आनन्दित हुआ। अगाढ़ श्रद्धा भक्ति प्रकट करते हुए उसने भगवान के समीप अणगार बनने वालों को धन्यवाद दिया एवं स्वयं की असमर्थता प्रकट करते हुए श्रावक के व्रतों को स्वीकार किया।

आनन्द के ग्रहित व्रत-

1-3. स्थूल हिंसा, झूठ एवं चोरी, का दो करण-तीन योग से त्याग।

4. शिवानन्दा स्त्री की मर्यादा रख कर शेष सम्पूर्ण कुशील का त्याग।

5. इच्छा परिमाण-परिग्रह परिमाण में, 1. चार करोड़ सौनेया निधान में, चार करोड़ व्यापार में और चार करोड़ चल-अचल सम्पत्ति में (गृह व्यवस्था में) इसके अतिरिक्त परिग्रह का त्याग। 2. चालीस हजार पशुओं के उपरांत त्याग। 6. आवागमन सम्बन्धी क्षेत्र सीमा 500 हलवा उपरांत त्याग। दो हजार बांस का एक हलवा होता है, ऐसे 500 हलवा अर्थात् 2500 माइल 4000 किलो मीटर की क्षेत्र मर्यादा उपरांत त्याग।

7. 1. सुगन्धित और लाल रंग का अंगोछा उपरांत त्याग 2. हरि मुलेठी उपरांत दाँतोन का त्याग 3. दूधिया आंवला के सिवाय मस्तक आदि धोने के फल का त्याग 4. शतपाक और सहस्त्र-पाक तेल के उपरांत मालिस का त्याग 5. एक प्रकार की पीठी के उपरांत उबटन का त्याग 6. आठ घड़े उपरांत स्नान के पानी का त्याग 7. पहनने के वस्त्र सूती उपरांत त्याग। 8. चन्दन, कुंकम, अगर के अतिरिक्त त्याग। 9. कमल और मालती के फूल के अतिरिक्त का त्याग 10. कुंडल और अंगुठी के अतिरिक्त आभूषण का त्याग। 11. अगर लोबान और धूप के अतिरिक्त का त्याग। 12. एक प्रकार का काढ़ा या उकाली के अतिरिक्त पेय पदार्थ का त्याग अथवा मूंग के या चावल के जूस के अतिरिक्त त्याग। 13. घेवर और दहीथड़ा

मक्खन बड़ा (बालुशाही) के अतिरिक्त मिठाई का त्याग। 14. बासमति चावल के अतिरिक्त ओदन का त्याग। 15. चना, मूंग और उड़द की दाल के अतिरिक्त त्याग।

16. ताजे गाय के घी के अतिरिक्त त्याग। 17. बथुआ, लौकी, सुवापालक और भींडी के अतिरिक्त हरी साग का त्याग। 18. पालंका विशिष्ट प्रकार के गूंद के अतिरिक्त त्याग। 19. दाल के बड़े और काजी के बड़े के अतिरिक्त तले पदार्थ त्याग। 10. वर्षा के पानी या घर के इकट्ठे किए वर्षा के पानी के अतिरिक्त त्याग। 21. इलायची, लौंग, कपूर, दालचीनी और जायफल के अतिरिक्त तम्बोल का त्याग। 22. एक हजार बैलगाड़ियां उपरांत रखने का त्याग, आठ जहाज उपरांत रखने का त्याग ।

8. चार प्रकार के अनर्थ दण्ड का त्याग । शेष सामायिक आदि की संख्या परिमाण आदि का वर्णन नहीं हैं। आनन्द के द्वारा ये व्रत प्रत्याख्यान ग्रहण करने के बाद भगवान महावीर ने उसे समकित सहित सभी व्रतों के 99 अतिचार बताये। ये अतिचार ग्रहित व्रत की सीमा में होते हुए भी ध्यान रखने योग्य हैं। इनका यथाशक्य सेवन नहीं करने पर ही व्रत एवं धर्म की शोभा होती हैं। इन अतिचारों के सेवन करने पर व्रती की एवं धर्म की अवहेलना होती है और व्रत में भी किंचित दोष लगता है या परम्परा से दोष की सम्भावना रहती हैं। 99. अतिचार श्रवण कर आनन्द ने भगवान को वन्दना नमस्कार कर प्रतिज्ञा धारण की अन्य किसी मतावलबी धर्म देवों को और उनके धर्म गुरूओं को वन्दन नमस्कार एवं अत्यधिक वार्ता सम्पर्क नहीं करूंगा। इसमें राजा देवता, माता-पिता, कुल की रीति, गुरू और आजीविका का आगार रखा। श्रमण निर्ग्रन्थों को आहार, वस्त्रादि एवं औषध वगैरह प्रतिलाभित करने का संकल्प किया। प्रतिज्ञा ग्रहण करने के बाद उसमें अपने मन में उठे प्रश्नों को पूछ कर समाधान किया। तदनन्तर घर जाकर आनन्द ने अपनी पत्नि शिवानन्दा को भी व्रत धारण करने की प्रेरणा की। उसने भी भगवान की सेवा में पहुँच कर विनय भक्ति पूर्वक उपदेश श्रवण कर व्रत धारण किए। क्रमशः श्रमणोपासक पर्याय का पालन करते हुए शिवानन्दा पत्नि सहित आनन्द श्रावक जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता बन गया। निर्ग्रन्थ प्रवचन में उसकी आस्था दृढ़ से दढ़तर बनी। कोई भी देव दानव उसे धर्म से विचलित नहीं कर सकता था। धर्म का रंग उसके रोम-रोम में रम चुका था। वह महिने में 6. दिन घर के समस्त कार्यों से निवृत्त होकर प्रतिपूर्ण पोषध व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करता था। चौदह वर्ष के बाद आनन्द ने बड़े समारोह के साथ सम्पूर्ण कुटुम्ब की जिम्मेदारी अपने पुत्र को सम्भला कर स्वयं पोषधशाला में निवृत्ति से रहने लगा। उस निवृत जीवन में उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं स्वीकार की उनकी साढ़े पाँच वर्ष में सम्यक् आराधना की एवं अन्त में मृत्यु का समय नजदीक जानकर उसने भक्त प्रत्याख्यान संथारा ग्रहण किया। संथारे के दरम्यान शुद्ध अध्यवसायों के द्वारा ज्ञानावणीय कर्म के क्षयोपशम से विशिष्ट अवधि-ज्ञान उत्पन्न हुआ। अवधि-ज्ञान से वह ऊंचे नीचे एंव तिरछे सीमित क्षेत्र को और उसमें जीवाजीव पदार्थों को प्रत्यक्ष देखने लगा। विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी उस नगरी में पधारे। गौतम स्वामी भगवान की आज्ञा लेकर बेले के पारणार्थ गोचरी लेने नगरी में पधारे आनन्द श्रावक के संथारे की वार्ता सुनी तो स्वयं गौतम स्वामी वहां पौषधशाला में आनन्द के पास आए। आनन्द का शरीर धन्ना अणगार की तरह अस्थि पिंजर (अत्यंत कृष) हो चुका था। अपने स्थान से इधर-उधर होना उसके लिए शक्य नहीं था। गौतम स्वामी से निकट पधारने की प्रार्थना की। गौतम स्वामी निकट गए, उसने सभक्ति वन्दन नमन किया और निवेदन किया कि हे भंते! मुझे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है जिससे मैं ऊपर-सौधर्मकल्प, नीचे लोलुच्य नामक नरकावास तक, पूर्व पश्चिम दक्षिण में लवण समुद्र में 500-500. योजन तक तथा उत्तर

में चुल्ल हिमवन्त पर्वत तक देखता हूँ । गौतम स्वामी ने कहा श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है परन्तु इतना विशाल नहीं। अतः आप इस कथन की आलोचना प्रायश्चित करें। गौतम स्वामी से आनन्द ने नम्रता के साथ निवेदन किया। कि भंते ! जिन शासन में क्या सत्य को आलोचना प्रायश्चित होता है ? गौतम स्वामी ने कहा-ऐसा नहीं होता अर्थात् सत्य का प्रायश्चित नहीं होता हैं। आनन्द ने पुनः निवेदन किया कि हे भंते ! तो आपको ही आलोचना प्रायश्चित करना चाहिए । यह सुन कर गौतम स्वामी संदेहशील हो गए एवं सीधे भगवान के पास पहुंच कर आहार पानी दिखाया और सम्पूर्ण हकीकत कह कर भगवान से पूछा कि आनन्द को प्रायश्चित करना चाहिए या मुझे ? भगवान ने फरमाया हे गौतम ! तुम्हें ही प्रायश्चित लेकर शुद्धि करनी चाहिए एवं आनन्द से इस प्रसंग की क्षमायाचना करनी चाहिए। तब गौतम स्वामी ने अपनी भूल का प्रायश्चित किया एवं पोषधशाला में जाकर आनन्द से क्षमायाचना की फिर पारणा किया। आनन्द श्रावक का वह संथारा एक महीने तक चला। फिर समाधिपूर्वक उसने पण्डित मरण प्राप्त किया। देह त्याग कर वह प्रथम देवलोक में चार पल्योपम की स्थिति में उत्पन्न हुआ। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर तप संयम का पालन कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

शिक्षा-प्रेरणा-

1. व्यक्ति को बुद्धिमान, व्यवहार कुशल एवं मिलनसार होना चाहिए ।

2. पत्नि का पति के प्रति हार्दिक अनुराग श्रद्धा और समर्पण भाव होना चाहिए।

3. धर्म की सच्ची श्रद्धा निष्ठा समझ प्राप्त हो जाने के बाद व्रत धारण में आलस्य नहीं करना चाहिए। कितनी भी विशाल सम्पत्ति हो या कितना ही विशाल कार्य क्षेत्र क्यों न हो, श्रावक के व्रत धारण करने में उसे बाधक नहीं बनाना चाहिए। क्योकिं सम्पत्ति धर्म में बाधक नहीं होती है उसकी अमर्यादा एवं मोह-ममत्व बाधक होता हैं।कई लोग वर्षों तक धर्म सुनते रहते है और भक्ति भाव करते रहते है किन्तु श्रावक के बारह व्रतों को धारण करने में आलस्य के कारण परिस्थितियों और जिम्मेदारियों के बहानों को सामने रख देते हैं। उन्हें इन श्रावकों के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए।

4. धर्म गुरूओं को भी चाहिए कि वे आई हुई परिषद को श्रावक व्रतों का स्वरूप सरलता पूर्ण विधि से समझा कर उन्हे व्रत धारी श्रावक बनने के लिए उत्साहित करें। आज कल के धर्मोपदेष्टा व कई पूज्य आचार्य आदि यह विषय प्रायः लेते ही नहीं और कई इस विषय का प्रतिपादन करे भी तो श्रावक के व्रतों को पहाड़ के समान बताकर कठिनता का भय श्रावकों में भर देते है। जिससे वे लोग श्रावक के इन व्रतों को धारण करने की वार्ता को सदा आगे से आगे धकेलते रहते है। अतः ऐसा न करते हुए इस विषय में विद्वान आचार्यों एवं संत सतियों को विशेष ध्यान देना चाहिए।

5. उपदेश श्रवण के बाद जिनवाणी की हृदय से प्रशंसा अनुमोदना करनी चाहिए।

6. अपनी शक्ति का मूल्यांकन करके या विकास करके व्रत धारण करना।

7. पारिवारिक साथी जनों को भी धर्म कार्य में व्रत प्रत्याख्यान में उत्साहित करना ।

8. श्रावक पर्याय में तत्त्वज्ञान की भी वृद्धि करते रहना । आगमों का स्वाध्याय भी करना।

9. शीघ्र ही जिम्मेदारियों से निवृत्त होने की लगन रख कर कार्य भार पुत्र आदि को सम्भला देना चाहिये। यह नहीं हो कि मरे जहां तक घर दुकान का धन्धा और मोह छूटे ही नहीं। ऐसी मनोवत्ति से आराधना सम्भव नहीं रहती हैं। अतः समय पर धन्धों से निवृत्त होकर साधना की अभिवृद्धि करने का लक्ष्य भी रखना चाहिये। यह श्रावक का पहला मनोरथ भी है।

10. निवृत्त जीवन में शक्ति अनुसार तप ध्यान एकांत चिंतन मनन में लीन होकर साधना करना।

11. लोगों की इतनी परवशता न होना अर्थात् पारिवारिक मोह की इतनी प्रगाढ़ता न होना कि संथारा स्वीकार करने में वे बाधक बनते रहे।

12. गुणों के शिखर तक विकास होने पर भी विनय गुण नहीं छोड़ना। आनन्द का जीवन त्याग, तप, ध्यान, पड़िमा युक्त था। आदर्श श्रावक रत्न था, अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था फिर भी गौतम स्वामी को देखते ही उनके प्रति श्रद्धा, विनय-भक्ति के भावों में कोई कमी नहीं रखी।

13. सत्य का सम्मान सदा जीवन में होना चाहिए। विनयवान होते हुए भी सत्य के लिए दृढ़ मनोबल भी होना चाहिए। किसी से दबने की या डरने की जरूरत नहीं होती हैं।

14. भूल की जानकारी हो जाय तो घमण्ड या झूठा दम्भ नहीं करना चाहिये। सरलता और क्षमायाचना रूप नम्रता धारण कर जीवन सुन्दर एवं साधनामय बनाना चाहिये।

सार– जिन शासन में त्याग का, व्रत निष्ठा का, शुद्ध श्रद्धा का, सरलता, नम्रता आदि गुणों का, सत्य निष्ठता, निडरता एवं क्षमाापना भाव युक्त आत्मविकास करने वालों का, महत्व है। ऐसे साधक अन्तिम समय तक उच्च साधना में लीन बन कर आत्म कल्याण साध लेते है। वे बीच में गुस्सा, घमण्ड, अप्रेम, वैमनस्य , कलह, द्वेष, निंदा, प्रमाद, आलस्य आदि दूषणें के शिकार नहीं होते हैं।

दूसरा अध्ययन

श्रमणोपासक कामदेव–

भगवान महावीर के समय की बात है कि पूर्व बिहार में चम्पानगरी थी। जितशत्रु राजा वहां राज्य करता था। उस नगरी में कामदेव नामक सेठ रहता था जो आनंद के समान ही गुणों में श्रेष्ठ एवं प्रकृति से सुन्दर था। अतः वह भी समाज में अग्रगण्य था। लोग उसकी बात का आदर करते थे। उसके भद्रा नामक सुयोग्य पतिपरायणा पत्नि थी। समृद्धि की अपेक्षा वह कामदेव श्रेष्ठी ''आनन्द'' से भी कुछ बढ़ा चढ़ा था अर्थात् उसकी संपत्ति आनन्द से ड्योढ़ी (डेढ़गुणी) थी। उसका पारिवारिक जीवन सुखी एवं समृद्ध था। आनंद की तरह एक दिन उसके भी सांसारिक जीवन में नया मोड़ आया। भगवान महावीर स्वामी का उस नगरी में पर्दापण हुआ। भगवान की सेवा में जाने के लिए नगरी के लोगों का तांता लग गया। कामदेव के मन में भी उत्कंठा जगी। वह भी भगवान की सेवा में पहुँचा। धर्म देशना श्रवण की, परम वैभवशाली कामदेव का हृदय एक ही देशना के श्रवण से गद्गद हो उठा। व्रत धारण की उत्कंठा जगी और वहीं बारह व्रत धारण किए। धर्म श्रवण से

उसके जीवन में भोग-वासना, लालसा और कामना की दृष्टि सीमित बनी। जीवन संयमित और नियंत्रित बन गया। संसार की आशक्ति भाव की दिशा पलट गई। अतः अब वह अंतरंग में विरक्ति भाव से कुटुम्ब का पालन करने लगा एवं साथ ही धर्म साधना भी करने लगा। आनन्द के समान ही चौदह वर्ष श्रावक व्रत के पालन करने के बाद इसके जीवन में भी दूसरा मोड़ आया। कुटुम्ब का भार समारोह के साथ पुत्र को संभलाया और निवृत्त जीवन में अधिकाधिक साधना वृद्धि करते हुए पौषधशाला में रहने लगा। एक समय कामदेव की साधना के बीच संकट एवं परीक्षा की घड़ियाँ उपस्थित हो गई। वह पौषधशाला में पौषध लेकर आत्मध्यान में तन्मय हो रहा था। उसके धर्म दृढ़ता की प्रशंसा प्रथम देवलोक में इन्द्रसभा में स्वयं शकेन्द्र ने की। एक मिथ्यात्वी देव उसे सह नहीं सका एवं विघ्न उपस्थित कर धर्म से विचलित कने के लिए कामदेव की पौषधशाला में पहुंच गया। कामदेव को भयभीत एवं संत्रस्त करने के लिए उसने अत्यंत भयावह विकराल पिशाच का रूप धारण किया एवं हाथ में खड्ग लेकर प्रकट हुआ और कामदेव को डराते धमकाते हुए कहा कि तुम अपना यह सब क्रिया कलाप और धर्म उपासना छोड़ दो नहीं तो मैं इस तलवार से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा और तुम आर्त्तध्यान करते हुए अकाल में ही मर जाओगे। दूसरी और तीसरी बार फिर यही वाक्य दोहराए और देखा कि कामदेव श्रावक अपनी साधना में मस्त तल्लीन बना, उसकी धमकी की किंचित भी परवाह नहीं करते हुए शान्ति में रमण कर रहा है। उसके मन में किसी प्रकार की घबराहट नहीं है। यह देख कर देव के गुस्से का पार नहीं रहा। तत्काल तलवार से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। कामदेव ने घोर वेदना समभाव एवं शान्ति से सहन की। देवमाया से शरीर पुनः तत्काल जुड़ गया। देव ने दूसरी बार हाथी का रूप किया, डराया-धमकाया और तीसरी बार कहने के उपरांत भी नहीं मानने पर सूंड में पकड़ कर आकाश में उछाला, दांतों से झेल कर नीचे पटक कर पावों से तीन बार कुचल दिया, घोर वेदना सहन करते हुए भी कामदेव निश्चल रहा। देव माया से पुनः उसका शरीर दुरूस्त हो गया। तीसरी बार देव ने विषधर सर्प का रूप धारण करके डराया घमकाया और धर्म छोड़ने के लिए कहा, किन्तु कामदेव तनिक भी विचलित नहीं हुआ। देव ने अपनी धमकी को कार्यान्वित किया। तीन आंटे शरीर पर लगा कर छाती में पूरी शक्ति के साथ डंक दिया। घोरातिघोर वेदना दी और ज्ञान से देखा तो श्रावक किंचित भी नहीं डिगा। वह शांत भावों से अपनी श्रद्धा एवं साधना में अडोल रहा। आखिर मानव के आगे दानव की हार हुई। क्रूरता पर शान्ति ने विजय प्राप्त की। दृढ़ता से परीक्षा में उत्तीर्णता आई। देव पराजित होकर नतमस्तक हो गया, गुणानुवाद किया, धन्यवाद दिया, क्षमा मांगी और भविष्य में कभी ऐसा नहीं करूंगा, यह संकल्प करके पावों में पड़ा और हाथ जोड़ कर बारंबर क्षमा याचना करते हुए देवलोक में चला गया। भगवान महावीर स्वामी विचरते हुए उस नगरी में पधारे। प्रातः काल कामदेव ने पौषध पूर्ण किया। शुद्ध सभा योग्य वस्त्र धारण किए एवं उपवास का पारणा किए बिना ही जन समूह के साथ भगवान के दर्शन करने चला। भगवान की सेवा में उपस्थित होकर तीन बार वंदन नमस्कार करके बैठ गया। विशाल परिषद में भगवान ने धर्म देशना दी। तदनंतर स्वयं प्रभु महावीर ने कामदेव श्रमणोपासक को संबोधित करके पूछा कि रात्रि में देव उपस्थित हुआ और उपसर्ग दिया इत्यादि घटना को परिषद के सामने भगवान ने दुहराते हुए कहा। कामदेव ने उस घटना की स्वीकृति देते हुए कहा कि हां भंते! ऐसा ही हुआ। उस घटना को बताकर भगवान ने श्रमण श्रमणियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि एक श्रमणोषापक गृहस्थ भी धर्म की दृढ़ आस्था रख सकता है परीक्षा की घड़ियों में तन मन एक करके इतना धीर वीर गंभीर बन कर सब कुछ सहन कर सकता है। एक क्रूर रौद्र दानव भी जिसकी क्षमता के आगे पराभूत हो जाता है। इस घटित घटना को जानकर सम्पूर्ण गृह त्यागी श्रमणों को भी अत्यन्त श्रद्धा निष्ठा से, दृढ़ता

से एवं धैर्य से संकटों को पार करने की प्रबल प्रेरणा लेनी चाहिए। तब उपस्थित सभी श्रमण श्रमणियों ने ''तहत्ति'' कह कर भगवान के वचनों को शिरोधार्य किया। तदंतर कामदेव श्रावक ने विनय युक्त कुछ प्रश्न पूछ कर समाधान प्राप्त किये एवं वंदन नमस्कार कर वह चला गया। उपवास का पारणा कर पौषध शाला में अपनी धर्म साधना में लग गया। आनन्द के समान कामदेव ने भी श्रावक की ग्यारह पडिमाएं स्वीकार की एवं सम्यक् आराधना की। अंत में एक महिने के संथारे से समाधिमरण प्राप्त कर प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां से चार पल्योपम की आयु पूर्ण कर महाविदेह में सिद्ध होगा। शेष वर्णन आनन्द के समान ही समझना। 14 वर्ष सामान्य श्रावक पर्याय और 6 वर्ष निवृत्त साधनामय जीवन में यों कुल 20 वर्ष की श्रमणोपासक पर्याय का कामदेव श्रावक ने पालन किया।

शिक्षा-प्रेरणा-

धर्म में निश्चल दृढ़ मनोबल के साथ अपनी श्रद्धा को स्थिर रखने की प्रबल प्रेरणा इस चरित्र से मिलती है। मानव को अपने कर्म संयोग से शारीरिक आर्थिक मानसिक सामाजिक आदि कई संकट की घड़ियों से गुजरना पड़ता है। उसमें क्षुब्ध नहीं होना, ग्लान नहीं बनना, घबराना नहीं, किन्तु धैर्य के साथ आत्म क्षमता को केन्द्रित करते हुए प्रसन्न चित्त से दृढ़धर्मी एवं प्रियधर्मी बनकर समय व्यतीत कर लेना चाहिए। दशवैकालिक सूत्र में मनोबल को दृढ़ करने वाला आश्वासन वाक्य है उसे सदा स्मरण में रखना चाहिए।

यथा-

सनमें चिरं दुक्खमिणं भविस्सई ।
सपलि ओवमं झिझइ सागरोवमं ।
किमंग पुण मज्झ इमं मणो दुहं ।

भावार्थ- यह मेरा दुःख शाश्वत सदा रहने वाला नहीं है। बेचारे कई प्राणी नरक में असंख्य वर्षों तक घोरातिघोर दुःख वेदना सहन कर रहे हैं। मेरा यह मानसिक शारीरिक दुःख तो उसके सामने कुछ भी नहीं है। आत्मा सबकी समान है। मेरी आत्मा ने भी वैसे घोरातिघोर कष्ट अज्ञान दशा में सहन किये हैं। तो ज्ञानी एवं मानव होकर अब मैं ऐसे सामान्य कष्टों में क्यों घबराऊँ, मेरा घबराना श्रेयस्कर नहीं है। इस तरह चिंतन कर श्रेष्ठ आदर्शों को सामने रख कर धैर्य से आपत्ति की घड़ियों को प्रसन्नता पूर्वक पार कर लेना चाहिये। कई श्रद्धालु धर्म से लौकिक सुखों की चाहना करते रहते हैं एवं चाहना पूर्ति होने और न होन से ही धर्म की और धर्म गुरूओं की कीमत आंकते रहते हैं। उन्हें तो चमत्कारी गुरू और चमत्कारी धर्म ही प्रिय लगता है। उन श्रावकों को कामदेव श्रावक के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये कि उसने देव द्वारा दिए कष्ट भी सहर्ष झेल लिए किन्तु किसी भी प्रकार की दीनता नहीं की, यों भी नहीं सोचा कि ''इतना ऊँचा धर्म धारण किया, तीर्थंकरों की शरण ली और उत्कृष्ट श्रावक धर्म का पालन कर रहा हूँ तो भी कोई संकट को टालने वाला नहीं मिला और इस धर्म के कारण ही यह इतनी आफत आई, वास्तव में इस धर्म में कोई दम नहीं है। इसे धारण करने से लाभ क्या हुआ ? सुख की जगह दुःख ही मिला।'' ऐसा कोई संकल्प विकल्प उसमें नहीं था। जिसमें ज्ञान युक्त सच्ची श्रद्धा होती है उसके तो ऐसे उक्त गलत विचार आ नहीं सकते। किन्तु केवल अन्ध-श्रद्धा अर्थात् ज्ञानाभाव एवं केवल भक्ति की प्रमुखता वाली श्रद्धा

जिनमें होती है वैसे ऐहिक इच्छा वाले भद्रिक श्रद्धालु लोगों की स्थिति शीघ्र ही डावाडोल होती रहती है। उन्हें चाहिए ये कि वे धर्म के प्रति ज्ञान गर्भित श्रद्धा रखें। अस्थिर चित्त वाले न बनें एवं धर्म से चमत्कार और ऐहिक आशाओं से मुक्त बनें।

तीसरा अध्ययन

चुलनीपिता– भारत की सुप्रसिद्ध और समृद्ध वाराणसी नगरी में चुलनीपिता नाम का सेठ निवास करता था। उसकी पत्नि का नाम श्यामा था। भद्रा उसकी माता थी। चुलनीपिता की सम्पत्ति आनन्द और कामदेव से भी अधिक थी। आठ करोड़ सोनैया निधान में थी एवं उतनी-उतनी ही व्यापार में तथा घर खर्च में (घर की सामग्री में) अलग-अलग थी। गौधन भी ८० हजार की संख्या में था। इस प्रकार चुलनीपिता एक वैभवशाली सम्पन्न पुरूष था। भगवान महावीर जब विचरण करते हुए वाराणसी में पधारे तब चुलनीपिता ने धर्मोपदेश श्रवण कर श्रावक व्रत अंगीकार किये। उसने भी चौदह वर्ष गृहस्थ जीवन में रहने के बाद निवृत्त साधना स्वीकार की। एक बार पौषधशाला में उपवास युक्त पौषध स्वीकार करके चुलनीपिता आत्म साधना रत था। आधी रात के समय एक देव हाथ में तलवार लेकर आया और बोला अरे ओ चुलनीपिता! यह धर्म-कर्म सब छोड़ दो, नहीं तो अभी तुम्हारे सामने बड़े लड़के को तलवार से काट कर कड़ाह में उबालूंगा और फिर उसके गर्म खून और मांस तुम्हारे ऊपर छिड़कूंगा। चुलनीपिता ने भावुकता पर विवेक की लगाम रखी, अपनी साधना में स्थिर रहने का निर्णय ले लिया। दो तीन बार चेतावनी देने के बाद देव ने वैसा कृत्य कर दिया एवं पुत्र के गर्मागर्म खून मांस का श्रावक पर छिड़काव किया। दूसरों की कोई प्रवृत्ति साधक को दुःखी न बनावे, यही साधना का आध्यत्मिक श्रेष्ठ परिणाम है। चुलनीपिता ने आँखों देखते उस भीषण कृत्य और शारीरिक वेदना में अपने मन को क्षुब्ध नहीं होने दिया किन्तु आध्यात्म ज्ञान एवं वैराग्यपूर्ण अध्ययवसायों के द्वारा शांतिपूर्वक साधना में रत रहा। देव का क्रोध उसकी शांति के कारण भड़कता ही गया। यह भी जीवों की अपनी दुर्बुद्धि से होने वाली एक दुर्दशा है जो दूसरों के गुणों से भी अधिकाधिक जलते रहते हैं। देव ने एक-एक करके उसके तीनों पुत्रों के साथ वैसा ही वीभत्स कृत्य किया। चुलनीपिता अडिग रहा। अन्त में देव ने चुलनीपिता की माता भद्रा के साथ भी ऐसा कृत्य करने की धमकी दी। अब चुलनीपिता का धर्य टूट गया। उसकी आत्म दृढ़ता अब क्षुब्धता में परिवर्तित हो गई। माता की ममता के कारण वह साधना में हार खा गया। अपनी पौषध की मर्यादा उल्लंघन कर देव को पकड़ने का संकल्प किया और पकड़ने के लिये ज्योंही हाथ फैलाए तो देव आकाश में अन्तर्धान हो गया। आवाज सुन कर उसकी माता आई और घटना की जानकारी होने पर उसने पुत्र से कहा कि यह तो केवल देव माया थी, सभी पुत्र सुरक्षित हैं क्रोध करके तुमने अपनी साधना में दोष लगाया है। यह तुम्हारी भूल है इसकी शुद्धि करलो। चुलनीपिता ने माँ के कथन को शिरोधार्य किया और प्रायश्चित स्वीकार कर अपनी साधना में लग गये। बीस वर्ष कुल श्रावक पर्याय का पालन किया। श्रावक पड़िमाओं की आराधना की। अन्त में एक मास के संथारे से प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ।

शिक्षा–प्रेरणा–

1. अपार वैभव सम्पन्न होते हुए भी प्राचीन काल में मानव इतना सरल और पवित्र ह्रदयी होता था कि शीघ्र ही धर्म का बोध पाकर जीवन परिवर्तित कर लेता था। आज के मानव को भी अपने जीवन में ऐसी सहजता लानी चाहिये। धन सम्पति को ही सर्वस्व और अन्तिम पाथेय नहीं समझना चाहिये। परलोक में चलने वाला भाता (टीफन) धन नहीं किन्तु धर्म ही है, यह अच्छी तरह ह्रदय में उतरना चाहिये।

2. अपने किसी भी कोने में छिपी कमजोरी के कारण मानव से नहीं चाहते हुए भी कभी भूल हो जाना सम्भव है किन्तु भूल को भूल समझ लेना, मान लेना और छोड़ कर सुधर जाना, यह एक जीवन का श्रेष्ठ आदर्श एवं उत्थान करने वाला गुण है। हम अपने जीवन में ऐसा गुण धारण करें एवं तत्काल अपनी भूलें स्वीकार कर सन्मार्ग में जा जावें।

चौथा अध्ययन

सुरादेव- वाराणसी नगरी में सुरादेव नामक श्रेष्ठी रहता था। वह भी समृद्धिशाली था छः छः करोड़ का धन उसके व्यापार आदि में लगा था। उसकी पत्नि का नाम धन्या था। आनन्द के समान ही इसका सांसारिक एवं धार्मिक जीवन था। एक बार पौषधशाला में पौषध की पालना कर रहा था। उस समय एक मिथ्यात्वी देव अर्ध रात्रि में आया और चुलनीपिता की तरह इसको भी धमकी दी और वीभत्स कृत्य किया तीनों पुत्रों का काम तमाम कर दिया। साथ ही गर्मागर्म खून मांस छिड़काव से श्रावक सुरादेव को भी दारूण कष्ट दिया। किन्तु सुरादेव निर्भीकता के साथ साधना में लगा रहा। देव ने नया उपाय निकाला और बोला कि तुम यह सब धर्म कर्म छोड़ दो अन्यथा तुम्हारे शरीर में कोढ़ आदि सोलह बड़े-बड़े भयानक रोग पैदा कर दूंगा जिसे तुम्हारा शरीर सड़ जायगा और तुम महान् दुःखी हो जावोगे। रोगो की असीम वेदना की कल्पना से उसका हृदय क्षुब्ध हो गया घबरा गया और उसका धैर्य टूट गया। इस कारण चुलनीपिता के समान सुरादेव भी अन्त मे साधना से विचलित हो गया और पत्नि धन्या के द्वारा प्रेरणा पाकर उसने तत्काल अपने व्रत की शुद्धि की। भूल स्वीकार करके पुनः धर्म साधना मं लग गया एवं उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए श्रावक पड़िमाएं स्वीकार की। बीस वर्ष की श्रावक पर्याय का पालन कर वह भी एक मास के संथारे से प्रथम स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।

शिक्षा-प्रेरणा-

शरीर का ममत्व भी साधक को साधना से च्युत कर देता हैं। अतः किसी भी प्रकार की आत्म साधना में शरीर के प्रति रहे हुए ममत्व भाव को क्रमशः ज्ञान एवं वैराग्यमय चिंतन के द्वारा घटाते रहने में प्रयत्नशील रहना चाहिए। क्योंकि साधना की अन्तिम सफलता देह के ममत्व का त्याग करने में ही हैं।

अतः

'देहं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि' 'देह दुःखं महाफलं'
आदि वाक्यों से आत्मा शक्ति को जागृत करते रहना चाहिये।

पाँचवा अध्ययन

चुल्लशतक-

आलंभिका नामक नगरी थी । चुल्लशतक नामक समृद्ध सेठ रहता था। उसकी वैभव-समृद्धि सुरादेव श्रावक के समान थी। इसके जीवन का एवं साधना का सम्पूर्ण वर्णन भी सुरादेव के समान ही हैं। यह देव के द्वारा सम्पूर्ण धन नष्ट करके दरिद्र बना देने की धमकी में साधना में फिसल गया और बहुला नामक अपनी भार्या की प्रेरणा से प्रायश्चित कर शुद्ध हुआ। अन्त में सही आराधना कर पण्डित मरण प्राप्त किया। शेष मोक्षगमन तक का सम्पूर्ण वर्णन सुरादेव के समान है।

छठवां अध्ययन

कुंडकौलिक- प्राचीन काल में काम्पिल्यपुर नामक नगर था। कुंडकौलिक नामक एक सेठ वहां निवास करता था। धन समृद्धि इसकी सुरादेव श्रावक के समान ही थी। पूर्व श्रावकों के समान यह भी उत्तम धार्मिक जीवन जीने लगा। श्रावक व्रतों का पालन करने लगा। एक बार दुपहर को कुंडकौलिक श्रावक अपनी अशोक वाटिका में गया। पहिने हुए उत्तरीय (ऊपरी भाग के) वस्त्र उतारे, अंगुठी भी निकाल कर वस्त्र के साथ अपने समीप में रख दी और सामायिक लेकर धर्म साधना करने लगा। वहां एक देव उपस्थित हुआ और उत्तरीय वस्त्र एवं अंगुठी उठा कर आकाश में जाकर बोला कि देखो, गोशालक का धर्म सिद्धांत सुन्दर है भगवान महावीर के सिद्धांत उत्तम नहीं है क्योंकि पुरूषार्थ से कुछ नहीं होता है किन्तु जो होना है वही होता हैं। यह सुनकर कंडकौलिक बोला कि देव! एक बात कहो कि तुमने यह देव ऋद्धि कैसे प्राप्त की है ? ''यह सब मैंने बिना पुरूषार्थ और प्रयत्न के ही प्राप्त किया है'' ऐसा देव ने उत्तर दे दिया। कुंडकौलिक ने पुनः देव से प्रश्न कर दिया कि जो अनेक अन्य प्राणी हैं ये सभी पुरूषार्थ और प्रयत्न के बिना तुम्हरी तरह देव क्यों नहीं हो जाते ? इनमें यदि तुम्हारा कुछ विशेष पुरूषार्थ है तो फिर गोशालक का सिद्धांत सुन्दर कैसे हुआ वह तो पुरूषार्थ को निरर्थक बताता है। भगवान महावीर का सिद्धांत पुरूषार्थ, नियति, काल, स्वभाव और कर्म सभी को स्वीकार करते हुए पुरूषार्थ प्रधान व्यवहार का कथन करता है। अर्थात् व्यवहारिक जीवन में पुरूषार्थ आवश्यक एवं मुख्य कर्त्तव्य है। अन्यथा तो सभी लोग निठल्ले होकर बैठ जाय और मोक्ष प्राप्त करले। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है इस गोशालक के सिद्धांत से लौकिक व्यवहार में भी जीवन निर्वाह नहीं चल सकता है। क्योंकि उसके सिद्धांत से तो किसी को व्यापार में या भोजन आदि कार्यों में भी पुरूषार्थ करने की आवश्यकता नहीं रहेगी जो कि सर्वथा अव्यवहारिक है। कुंडकौलिक श्रावक के तर्कपूर्ण उत्तर से देव निरूत्तर हो गया एवं उत्तरीय वस्त्र और और अंगुठी रख कर चला गया। भगवान ने कामदेव के समान ही अपनी परिषद में कुंडकौलिक श्रावक की प्रशंसा की एवं सभी श्रमण श्रमणोपासक आदि को ज्ञान चर्चा में देव से भी नहीं घबराने के आदर्श को सम्मुख रखने की प्रेरणा की और कहा कि इसी तरह सभी को ज्ञान एवं अनुभव में विशाल वन कर धैर्य के साथ तर्कों का समाधान करने का प्रयत्न करना चाहिए कुंडकौलिक श्रमणोपसक ने भी चौदह वर्ष के दरम्यान अपनी जिम्मेदारियां समेटली। समारोह के साथ पुत्र को कार्य भार सम्भला कर छः वर्ष निवृत्त साधना की। पड़िमाओं का आराधन किया। अन्त में एक महिने के संथारे से पण्डित मरण प्राप्त किया। कुंडकौलिक प्रथम स्वर्ग में चार पल्योपम की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगा।

शिक्षा-प्रेरणा-

श्रमणोपासकों को अपने साधना जीवन में कुछ समय शास्त्र अध्ययन श्रवण एवं चिंतन मनन में लगाकर ज्ञान की अक्षय निधि को प्राप्त करना चाहिए। दशवैकालिक सूत्र अ. 9 उ. 4 में बताया है कि 'श्रुत अध्ययन' चित्त को एकाग्र करने का अचूक उपाय तो है ही साथ ही समय पर अपनी या अन्य की आत्मा को धर्म में स्थिर करने में भी श्रुत संपन्न साधक अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः दत्त चित्त होकर साधकों को यथा समय श्रुत अध्ययन करके अपनी निर्णायक एवं कुशल बुद्धि का विकास करना चाहिए।

सातवां अध्ययन

सकडाल- पोलासपुर नगर में सकडालपुत्र नामक एक कुंभकार रहता था। जो गोशालक के प्रमुख अनुयायियों में था। वह अर्थ दृष्टि से भी सम्पन्न एवं समृद्ध था। उसके व्यापार आदि में एक-एक करोड़ सोनैया प्रमाण धन लगा हुआ था। दस हजार की संख्या में पशु धन था। उसके मिट्टी के बर्तन बनाने की पांच सौ कर्मशालाएं थी और उन बर्तनों को बेचने की व्यवस्था उसने नौकरों द्वारा राजमार्ग एवं अनेक सार्वजनिक स्थानों पर कर रखी थी। वह सकडाल अपने धर्म सिद्धान्तों के प्रति भी दृढ़ आस्थावान था एवं तदनुसार धर्मोपासना में अपना समय भी लगाता था। एक दिन दोपहर के समय वह अपनी अशोक वाटिका में धर्माराधना में लगा हुआ था। उस समय एक देव आया और आकाश में ठहर कर बोला कि कल यहां सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान पधारेंगे। तुम उनकी वंदना पर्युपासना करना एवं उन्हें ठहरने के लिए स्थान आदि का आमंत्रण करना। इस सूचना को सकडाल ने अपने धर्म प्रणेता गोशालक के लिए समझा। दूसरे दिन उस पोलासपुरी नगरी के बाहर भगवान महावीर स्वामी पधारे। नागरिक जन दर्शनार्थ जाने लगे। सकडाल भी गया। विधि सहित वंदन नमस्कार कर सभा में बैठ गया। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। तदनंतर सकडाल को संबोधन करके भगवान ने कहा कि कल दोपहर में एक देव ने तुम्हें सूचना दी थी, उस देव का अभिप्राय मेरी अपेक्षा ही था, गोशालक की अपेक्षा नहीं था। सकडाल भगवान के अपरोक्ष ज्ञान से प्रभावित हुआ एवं मन ही मन प्रसन्न हुआ। उसने उठकर भगवान को वंदन नमस्कार कर अपनी कर्मशाला में पधारने को प्रार्थना की। भगवान उसकी प्रार्थना स्वीकार कर वहां पधारे।

सकडाल भगवान के प्रति आस्थावान तो हुआ किन्तु सैद्धान्तिक आस्था तो उसकी गौशालक में थी। एक बार कभी अनुकूल अवसर देखकर भगवान ने सकडाल से पूछा कि ये मिट्टी के बर्तन किस प्रकार बने हैं ? सकडाल ने उत्तर में क्रमशः सारी प्रक्रिया बता दी। भगवान ने पुनः पूछा कि यह सारी प्रक्रिया प्रयत्न और पुरूषार्थ से हुई ? सकडाल ने उत्तर दे दिया-नहीं, नियति से ही हुआ है, पुरूषार्थ का कोई महत्व नहीं है। भगवान ने पुनः कहा कि यदि कोई पुरूष तुम्हारे इन सेकड़ों बर्तनों को बिखेर दे, फोड़ दे, नष्ट कर दे एवं तुम्हारी भार्या के साथ बलात्कार करे, तो उसे तुम उस पुरूष का प्रयत्न और पुरूषार्थ मान कर दंड दोगे या नियति से होना मान कर उपेक्षा करोगे ? सकडाल ने कहा कि मैं उस पुरूष को इस कृत्य का अपराधी समझूंगा और उसे मृत्यु दंड तक दे दूंगा। भगवान ने कहा यदि तुम ऐसा मानोगे और करोगे तो तुम्हारा माना हुआ सिद्धांत असत्य ठहरेगा। क्योंकि तुमने नियति के स्थान पर उस पुरूष का प्रयत्न मान लिया और उसे अपराधी मान लिया। इस थोड़ी सी वार्त्ता से ही सकडाल यथार्थ तत्त्व को समझ गया। उसका मस्तक श्रद्धा से भगवान के चरणों में झुक गया। उसने भगवान से श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए। सकडाल की प्रेरणा से उसकी पत्नि अग्निमित्रा ने भी वैसा ही किया। यों पति पत्नि दोनों ही सद्धर्म को प्राप्त कर गृहस्थ जीवन के साथ साथ धर्म साधना में लग गये। गोशालक को जब इस घटना की जानकारी हुई तो सकडाल को पुनः अपने मत में लाने की कोशिश की। वह वहां आया, भगवान महावीर की प्रशंसा भी की, कुछ दिन ठहरा भी, लेकिन सारे प्रयत्न उसके निष्फल गये। फिर निराश होकर चला गया।

एक बार पोषध में आधी रात के समय सकडाल के पास एक देव आया और धर्मक्रिया, व्रत आदि को छोड़ने के लिए उसके पुत्रों को मारने की धमकी दी सकडाल अविचल रहा। देव ने तीनों पुत्रों को मार कर फिर अग्निमित्रा भार्या को मारने की धमकीदी। इस पर सकडाल की व्रत निष्ठा डगमगा गई, क्रोध जगा और देव को पकड़ने का प्रयत्न करते हुए साधना

से च्युत हुआ। देव लुप्त हो गया। आवाज सुनकर अग्निमित्रा भार्या ने आकर व्रत में स्थिर किया। सकडाल ने प्रायश्चित लेकर शुद्धि की।

अंतिम जीवन में सकडाल ने भी निवृत्तिमय साधना स्वीकार की। श्रावक की ग्यारह पड़िमाओं का पालन किया। बीस वर्ष की श्रावक पर्याय पूर्ण करके एक मास के संथारे से प्रथम स्वर्ग में गया एवं महाविद्रह में मुक्त होगा।

शिक्षा-प्रेरणा-

1. एकांत वाद सभी मिथ्या है, अतः अनेकांत सत्य स्वीकार करना चाहिए अर्थात् नियति को स्वीकार करते हुए भी पुरूषार्थ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। किसी भी कार्य की सफलता में एक या अनेक समवायों की प्रमुखता स्वीकार करते हुए अन्य का एकांतिक निषेध नहीं करना चाहिए। व्यवहार पुरूषार्थ प्रधान होता है यह स्वीकारना चाहिए। साथ ही काल, कर्म, नियति और स्वभाव का भी अपनी-अपनी सीमा का महत्व समझना चाहिए।

2. सकडाल ने अपनी बुद्धि एवं समझदारी का आदर्श उपस्थित किया एवं अंत में शुद्ध सत्य को निर्णायक बुद्धि से दृढ़ता के साथ स्वीकार किया। जिसे गोशालक की चमत्कारिक शक्ति भी विचलित नहीं कर सकी। उसी तरह मानव के जीवन में अनेक उतार चढ़ाव भले ही आवे किन्तु जीवन का अंत सत्य के साथ व्यतीत हो ऐसी सरलता एवं बुद्धिमानी का सदुपयोग करना चाहिए।

3. नियति एकांत सिद्धांत मानने वाले व्यक्ति किसी का भी प्रयत्न या कत्तव्य नहीं मान सकते। किसी का गुण और अपराध भी नहीं मान सकते, जो कि व्यवहार से सर्वथा विपरित होता है। तथा नियतिवादी के लिए धर्म क्रिया का पुरूषार्थ भी निरर्थक होता है। अतः ऐसे एकांत सिद्धांत के चक्कर में नहीं आना चाहिए।

आठवां अध्ययन

महाशतक-

राजगृही नगर अपने समय का प्रसिद्ध नगर था। राजा श्रेणिक वहां का शासक था। वहां महाशतक नाम का धनिक सेठ निवास करता था। धन सम्पत्ति, वैभव, प्रभाव, मान-सम्मान आदि की अपेक्षा नगर में उसका बहुत ऊंचा स्थान था। उसके पास कांस्य पात्र के माप की अपेक्षा 24 करोड़ सोनैया का धन था।

उस समय के रिवाजों के अनुसार महाशतक का तेरह श्रेष्ठि कन्याओं के साथ विवाह हुआ। उन कन्याओं को अपने पिता की तरफ से विपुल संपत्ति आदि प्रीतिदान में मिली थी। उन तेरह स्त्रियों में रेवती सबसे प्रमुख थी। पितृ संपत्ति की अपेक्षा भी वह सब से अधिक धनाढ्य थी। इस प्रकार महाशतक सांसारिक दृष्टि से महान वैभव शाली और अत्यंत सुखी था। किन्तु वैभव एवं सुख विलास में वह खोया नहीं था। संयोग वश एक समय भगवान महावीर स्वामी राजगृही में पधारे। नगर के लोग एवं महाशतक सेठ भी दर्शन करने के लिए समवसरण में उपस्थित हुए उपदेश सुना। महाशतक को आत्म प्रेरणा मिली। उसने श्रावक के बारह व्रत धारण किए एवं बढ़ती हुई संपत्ति को सीमित कर दिया अर्थात् उस समय से धन का नहीं बढ़ाने का नियम लिया। महाशतक श्रमणोपासक के उपासना में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हुए।

उसके बाद पुत्र को व्यवसाय आदि सोंपकर निवृत्त जीवन से पौषध शाला में रहते हुए उत्तम साधना करने लगे। महाशतक की प्रमुख पत्नि रेवती का जीवन अत्यंत विलासिता पूर्ण था। वह मांस और मदिरा में प्रारम्भ से ही अत्यंत आसक्त थी। महाशतक के श्रमणोपासक बन जाने पर भी उसने अपनी वह प्रवृत्ति नहीं छोड़ी। राजा श्रेणिक के द्वारा अपने राज्य में अमारी घोषित करवा देने पर कहीं भी राज्य में मांस नहीं मिल सकता था। किन्तु उसने उपाय ढूंढ लिया और नौकरों के द्वारा पीहर से प्रतिदिन गाय के दो नवजात बछड़ों के मांस के आयात की व्यवस्था गुप्त रूप से करली। भोगाकांक्षा की तीव्रता से उसने स्वच्छंदता वश अपनी बारह सौतों को शस्त्र प्रयोग और विष प्रयोग से मरवा डाला। महाशतक का उस पर कोई भी नियंत्रणात्मक उपाय नहीं चल सका। उपेक्षा के सिवाय भवितव्यतावश वह कुछ भी नहीं कर सका। निवृत्त साधना के मध्य एक दिन की बात है कि वह अपनी उपासना में लगा था। रेवती मद्य के नशे में उन्मत्त बनी हुई वहां पहुंची एव महाशतक को व्रत से च्युत करने के लिए अनेक प्रकार के कामोद्दीपक हाव भाव करने लगी एवं इस प्रकार कहने लगी कि तुम्हारे धर्म करने का और पुण्य और स्वर्ग प्राप्त करने का लाभ क्या होगा, जो कि तुम मेरे साथ प्राप्त भोगों का तो भोग करते ही नहीं हो तो और इससे ज्यादा स्वर्ग और मोक्ष में क्या लाभ मिल जाएगा। इस प्रकार उसने दूसरी और तीसरी बार संबोधन करके कहा और संपूर्ण मोह शक्ति के साथ प्रयत्न किया किन्तु वह निष्फल रही। महाशतक मेरू के समान अचल और अडोल रहा धर्म ध्यान में तन्मय रहा। तिल मात्र भी उस पर रेवती का प्रभाव नहीं पड़ा। धन्य है महाशतक की वैराग्य पूर्ण साधना जो कि स्वयं की पत्नि के लुभावने हाव भाव भाषा आदि के मोहमय उपसर्ग में भी पूर्ण रूपेण विजयी हुए। रेवती हार कर छोटा सा मुंह लिए चली गई। महाशतक श्रमणोपासक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमा स्वीकार की। अंत में संलेखना करके आमरण अनशन स्वीकार किया। पवित्र परिणामों से उसे अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह अध्यात्म मे रमण करने लगा। इधर रेवती को मांस और मदिरा की लोलुप वृत्ति में पुनः पाप बुद्धि हुई। वह महाशतक को व्रतों से च्युत करने पौषध शाला में आ पहुंची। यहां उसने अपनी अनेक प्रकार की कुचेष्टाएं प्रारम्भ कर दी एवं अधिकाधिक निर्लज्जता करने लगी। श्रमाणोपासक का धैर्य अब क्षुब्ध होने लगा। अवधिज्ञान में उपयोग लगाकर रेवती का भविष्य देखा और उसे उलाहना देते हुए कह दिया कि तूं सात दिन में भयंकर रोग से दुःखी होकर आर्त्तध्यान करते हुए मर जाएगी और पहली नरक में उत्पन्न होगी। यह सुनते ही रेवती का नशा ठंडा पड गया, मौत उसके सामने चक्कर काटने लगी और भयभीत होकर चिंता सागर में डूब गई।

सातवें दिन मरकर वह नरक में उत्पन्न हुई। संयोगवश वहां राजगृही में श्रमण भगवान महावीर स्वामी का पर्दापण हुआ। उन्होंने गौतम गणधर के द्वारा महाशतक श्रावक को सावधान करवाया कि संथारे में धर्म साधना में श्रावक को इस तरह अमनोज्ञ कथन करना नहीं कल्पता हैं। अतः तुम अपने उस कथन की आलोचना प्रायश्चित कर शुद्धि करो। भगवान की आज्ञा शिरोधार्य कर गौतम स्वामी ने वहां जाकर सूचना दी एवं महाशतक श्रमणोपासक ने उसे सहर्ष स्वीकार करके आत्म शुद्धि कर ली। यथा समय समाधि पूर्वक पंड़ित मरण से देह त्याग कर महाशतक प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जाएगा।

शिक्षा-प्रेरणा-

1. अशुभ कर्मों के संयोग से किसी तीव्रतम दुरात्मा का निकटतम संयोग मिल जाय तो उससे उपेक्षा भाव रखते हुए भी आत्मा साधना की जा सकती है। यह आदर्श महाशतक श्रमणोपासक ने उपस्थित किया। चिंतन करिए- क्या कमी थी

रेवती की दुष्प्रवृत्ति में-मद्य मांस की लौलुप, बारह सौंतो को मारने वाली, पीहर से गाय के नवजात दो बछड़ों का मांस मंगाने वाली, पौषध के समय पति के साथ निर्लज्ज व्यवहार करने वाली एवं यहां तक कि पति के आमरण संथारे के समय भी काम वासना की प्रेरणा से, अश्लीलता से नहीं रूक सकी। अहो! आश्चर्य है कर्मों की विचित्रता और विडंबनाओं का। कैसा विरोध संयोग, पति तो महान दयालु, धर्मात्मा, विरक्तात्मा और पत्नि महारस लौलुप, कामाशक्त और दुर्गतिगामी । दोनों का मरण समय भी लगभग साथ ही रहा।

2. व्यसनी या मद्य मांस लौलुप व्यक्ति कहां तक गिरता ही जाता है इसका कोई ठिकाना ही नहीं है वह घोर से घोर पाप कार्यों में फंसता जाता हैं। यह जानकर सदा कुव्यसनों से दूर रहना चाहिए। सात कुव्यसन मानव के लिए सर्वथा त्याज्य है-जुआ, शिकार, वैश्या, परस्त्री, चोरी, मद्य, मांस।

3. जिन शासन में तनिक भी कटुता या अमनोज्ञ व्यवहार क्षम्य नहीं हैं। चाहे सामने वाला कितना भी पापी दुरात्मा क्यों नहीं हो। देखें-एक छोटी सी दिखने वाली भूल के लिए स्वयं भगवान ने गौतम गणधर को भेजकर महाशतक श्रावक को सावधान होने की प्रेरणा की। जैसे कि उसने कोई महान् अपराध कर लिया हो।

वास्तव में लोहे और लकड़ी, पीतल और तांबे में लोहे की मेख (कील) क्षम्य हो सकती है किन्तु सोने के पात्र में लोहे की बारीक मेख भी अक्षम्य होती हैं। जिस तरह सुकौमल पांव में कांटे की बारीक सलाका भी क्षम्य नहीं हो सकती, वह सारे शरीर की समाधि नष्ट करने वाली हो सकती हैं।' उसी प्रकार अहिंसा एवं समभाव की साधना के सर्वोच्च जीवन में पापी व्यक्ति के प्रति की गई कटुता या अमनोज्ञता का व्यवहार भी अक्षम्य हैं। उसे सुधारने के लिए तीर्थंकर, गणधर को भी प्रयत्न करना आवश्यक हो जाता हैं। और जिन शासन का गृहस्थ साधक भी उस भूल को स्वीकार कर प्रायश्चित करता हैं। यह है जिन शासन की साधना का महान् आदर्श।

4. जिन शासन की साधना में लगे सभी साधकों को अपने जीवन के व्यवहारों का सूक्षतम अवलोकन करना चाहिए एवं किसी भी व्यक्ति के प्रति अपने मानस में कटु व्यवहार या अमनोज्ञ व्यवहार हो तो उसे अपनी ही भूल समझ कर स्वीकार करना चाहिए और उसे सुधारना अपनी अराधना के लिए आवश्यक समझना चाहिए।

5. आजकल साधकों के मन में न मालुम किन किन के प्रति कटुता अमनोज्ञता, अप्रसन्नता, अमैत्री के संकल्प चक्कर काटते ही रहते हैं। किन-किन के प्रति अमनोज्ञ व्यवहार के चक्र चलते रहते है। उन सभी साधकों को आत्म जागरण कर सजग सावधान होना चाहिए। अन्यथा बाह्य क्रिया कलाप और विचित्र विकट साधनाएं सफलता की श्रेणी में नहीं पहुंचा सकेगी इस पर पुनः पुनः सभी श्रमणोपासकों को और विशेष कर निर्ग्रन्थ साधना करने वालों को आत्म साक्षी पूर्वक मनन चिंतन एवं संशोधन अवश्य करना चाहिए ।

6. कई धर्म श्रद्धालु जन व्रतों की प्रेरणा करने पर घर की परिस्थिति का आलंबन लेकर व्रत नियम एवं साधनाओं से वंचित रह जाते हैं। उन्हें महाशतक श्रमणोपासक का आदर्श सामने रखना चाहिए कि तेरह पत्निएं होते हुए भी भगवान के पास व्रत धारण करने में उसने शर्म या बहाना बाजी नहीं की किंतु आात्मीयता से धर्म मार्ग को स्वीकार किया।

बारह स्त्रियों की हत्या रेवति पत्नि के द्वारा उसके घर में कर दी गई तो भी सामायिक और महिने के छः पौषध आदि साधना नहीं छोड़ी । स्वयं की प्रमुख स्त्री का मांसाहार और मद्य सेवन नहीं छूट सका तो भी अपनी साधना की प्रगति करते ही गये ।

7. रेवती की विलासिता एंव आसक्ति बढ़ती ही गई तो भी उनकी साधना बीस वर्ष में अविराम संथारे तक भी पहुंच गई। कितनी उपेक्षा, कितनी एकाग्रता , शांति समभाव रखा होगा महाशतक श्रमणोपासक ने, कि ऐसी विकट संयोग जन्य स्थिति में भी उन्होने गृहस्थ जीवन में अवधिज्ञान एवं आराधक अवस्था प्राप्त कर ली।

इन महान् श्रमणोपासक के शांत एवं धैर्य संयुक्त साधनामय जीवन से प्रेरणा पाकर हमें अनेकानेक गुणों को प्राप्त करके अपने जीवन से प्रेरणा पाकर हमें अनेकानेक गुणों को प्राप्त करके अपने जीवन को उज्जवल बनाना चाहिए।

8. आज कल अधिकतर लोक दुर्घटनाओं के वातावरण से व्याप्त होकर व्यक्ति के दोष से भी धर्म को बदनाम करने लग जाते हैं। यह उनकी भावुकता एवं अज्ञानदशा से होने वाली एक गहरी भूल हैं। अध्यात्म धर्म किसी को अकृत्य करने की रंच मात्र भी प्रेरणा नहीं करता हैं। धर्मिक संस्कारों वाले व्यक्ति के परिवार में यदि कोई अकृत्य हो भी जाता है तो वह उस पारिवारिक सदस्य की धर्मिकता से नहीं किन्तु व्यक्तिगत विषय कषाय मूर्खता एवं स्वार्थान्धता के दूषणों का अथवा पूर्वकृत कर्मों का प्रतिफल है, ऐसा समझना चाहिए। धर्म और धार्मिक व्यक्ति तो ऐसे समय में भी अपने आदर्श एवं सिद्वान्त में कायम रहते हैं। कहा भी हैं-

कीमत घटे नहीं वस्तु नी, भाखे परीक्षक भूल।
जेनो जेहवों पारखी, करे मणी नो मूल।।

नवमा अध्ययन

नंदिनीपिता-

श्रावस्ती नगरी में समृद्वि शाली गाथापति सेठ नंदिनीपिता रहता था। वह भी आनंद के समान गुण सम्पन्न था एवं समाज में प्रतिष्ठित था। उसकी संपत्ति भी कुल बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं में थी । जो तीन विभागों में विभक्त थी ।पशु धन भी 40 हजार की संख्या में था। उसकी पत्नि का नाम अश्विनी था ।वह सुखी जीवन बिता रहा था। शुभ संयोग से भगवान महावीर श्रावस्ती में पधारे। श्रद्धालु मानव समुदाय दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ा। नंदिनीपिता भी गया भगवान की धर्म देशना सुनी । अंतः करण में प्रेरणा जगी। गाथापति आनंद की तरह श्रावक व्रत धारण किए ।

नंदिनीपिता अपने धार्मिक जीवन को उत्तरोत्तर विकसित करता गया। यों चौदह वर्ष बीत गये। ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार संभलाया और निवृत्त साधना में लग गया। श्रावक पड़िमाओं की अराधना की। अंत में बीस वर्ष की श्रावक पर्याय पूर्ण कर एक मास के संथारे से प्रथम स्वर्ग में उत्पन्न हुआ । वहां से एक मनुष्य भव करके महाविद्रेह से मोक्ष जायेगा।

दसवां अध्ययन

सालिहीपिता-

नगरी, वैभव, संपत्ति , व्रत साधना, निवृत साधना एवं संलेखना संथारा आदि का संपूर्ण वर्णन नवमें अध्ययन के समान हैं। सालिहीपिता श्रमणोपासक की भार्या का नाम फाल्गुनी था। नंदिनीपिता और सालिहीपिता दोनों श्रमणोपासकों को कोई भी उपसर्ग नहीं आया एवं समाधि से पंडित मरण प्राप्त किया। प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुए , वहां से च्यव कर महाविद्रेह से मुक्ति धाम प्राप्त करेंगे।

संपूर्ण उपासकदशा सूत्र से प्रेरणा-

1. पुण्यवानी से मिली ऋद्धि में अभिमान नहीं करना।
2. बारह व्रत धारण अवश्य करना। छः छः पौषध करना।
3. परिस्थितियों में और संकट में धर्म नही छोड़ना ।
4. संसार प्रपंचों से शीघ्र ही पूर्ण निवृत्त हो जाना।
5. संलेखना संथारा करना।
6. जीवन में सरलता नम्रता अंत तक रखना।
7. छोटा भी दोष हो जाय तो उसे स्वीकार करना एवं प्रायश्चित लेना। गुस्सा घमण्ड आदि नहीं करना।

आगार धर्म-श्रावक व्रत-

तीर्थंकर प्रभु ने अपार करूणा करके गृहस्थ धर्म के स्वरूप का निरूपण किया हैं। साधक जीवन का सही मार्ग तो गृह त्याग कर संयम लेना ही हैं, संपूर्ण सांसारिक जीवन का त्याग करना हैं। फिर भी सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु यह भली-भाति जानते हैं कि धर्म को हृदयंगम करके भी अनेकों आत्माएं संयम स्वीकार नहीं कर सकती। गृहस्थ जीवन की अनेक परिस्थितियों में रहे हुए जीवों को अपनी उस अवस्था में भी साधना का अनुपम अवसर मिलना चाहिए। जिससे वे उसी में अपने धर्म जीवन की पूर्ण आराधना कर सके। इसीलिए प्रभु ने महाव्रतों के साथ-साथ अणुव्रतों का अर्थात् श्रमण धर्म के साथ ही गृहस्थ धर्म (श्रावक व्रतों) का निरूपण किया हैं।

श्रावक व्रतों का अधिकार-

मनुष्यों के भीषण संग्राम में जाने वाला राजा हो या बड़ा व्यापारी सेठ हो या कुम्भकार हों, चाहे किसी के मांसाहारी भार्या हो या 13 स्त्रियां हो (महाशतक), अम्बड़ सन्यासी जैसा हो या गोशालक पंथी नियतिवादी (शकडाल) हो, जिसके हजारों बैलगाड़ियां चलती हो या 10-10 जहाज जिसके चलते हों , स्त्री हो या पुरूष हो। वह श्रावक के व्रतों को सहर्ष सहज ही स्वीकार कर सकता हैं। श्रावक व्रतों की मौलिक संरचना भी विशाल दृष्टिकोण को लिए हुए हैं। उसमें किसी को

भी दिक्कत (बाधा) नहीं आ सकती हैं। अतः श्रावक के 12 व्रत स्वीकार करने में किसी भी मुमुक्षु प्राणी को आलस्य-प्रमाद नहीं करना चाहिए।

अप्रतिबंध-

श्रावक के व्रत धारण करने में किसी के लिए किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं होता है। वह अपनी सुविधानुसार हीनाधिक कोई भी छूट किसी भी व्रत में रख सकता हैं। चाहे वह मौलिक व्रत हो या अतिचार हो। श्रावक किसी भी व्रत को सर्वथा धारण न करें या किसी भी व्रत को इच्छित छूट रखकर धारण करे, उसके लिए कोई रोक-टोक प्रतिबंध नहीं हैं। श्रावकों के व्रतों में अपवादों का कोई इत्थंभूत एक रूप नहीं हैं। एक ही अहिंसा व्रत अनेक प्रकार के अपवादों के साथ स्वीकार किया जा सकता है। विभिन्न व्यक्तियों की क्षमताएं, सामर्थ्य भी विविध प्रकार का होता है, उत्साह, आत्मबल, पराक्रम एक जैसा नहीं होता। अनगिनत व्यक्तियों में वह अपने क्षयोपशम के अनुरूप अनगिनत प्रकार का हो सकता हैं। अतएव अपवाद स्वीकार करने में व्यक्ति का अपना स्वातंत्र्य हैं। उस पर अपवाद बलात् आरोपित नहीं किये जा सकते । इसलिए हीनाधिक सभी तरह की शक्ति वाले साधनोत्सुक व्यक्तियों को साधना में आने का सहज अवसर मिल जाता हैं। फिर धीरे-धीरे साधक अपनी शक्ति को बढ़ाता हुआ आगे बढ़ता जाता हैं। अपवादों को कम करता जाता हैं। वैसा करते करते वह श्रमणेपासक की भूमिका में श्रमणभूत-श्रमणसदृश तक बन सकता हैं। यह गहरा मनोवैज्ञानिक तथ्य हैं। आगे बढ़ना, प्रगति करना जैसा अप्रतिबद्ध और निर्द्वन्द्व मानस से सधता है, वैसा प्रतिबद्ध और निग्रहीत मानस से नहीं सध सकता। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि गृहस्थ की साधना में जैन धर्म की यह पद्धति निःसन्देह बेजोड़ हैं।

प्रेरणा की अपेक्षा कभी किसी त्याग नियम को श्रावक के लिए आवश्यक भी कह दिया जाता है फिर भी उसे एकांतिक नहीं समझना चाहिए। यथा- भगवती सूत्र में प्रेरणा प्रसंग से श्रमणोपासक के लिए कर्मादान का त्यागी होना आवश्यक कर्तव्य बताया गया है फिर भी इस उपासक दशा सूत्र में इंगाल कर्म रूप कुम्भकार कर्म आदि का त्याग नहीं करने वाले सकडाल श्रमणोपासक का भी आदर्श श्रावक रूप वर्णन हैं। आनंद श्रावक के सातवें व्रत में 26 बोल मे से 22 बोलों के धारण करने का ही वर्णन है चार (पन्नी, सयण, सचित्त और द्रव्य) की मर्यादा नहीं बताई गई हैं।

अल्पाधिक व्रत धारण-

कहा जाता है कि एक व्रत धारी भी श्रावक होता है और बारह व्रत धारी भी । अतः कोई भी धर्म प्रेमी शुद्व जानकारी प्राप्त करके श्रावक के बारह ही व्रत अपनी सुविधानुसार धारण कर सकता हैं। इसमें किंचित भी संदेह नहीं करना चाहिए। गृहस्थ जीवन की परिस्थितियों को जानते हुए गृहस्थ जीवन में धर्म साधना सुलभ बने इसके लिए ही प्रभु में यह सरल मार्ग बताया है। फिर भी किसी की कमजोरी का विशेष आग्रह हो तो वह बारह में से कम व्रतों की भी धारण कर सकता है।, हीनाधिक छूट भी रख सकता है। इतना सरल और स्पष्ट होते हुए भी सैकड़ों हजारों श्रद्धालु जन कल-कल या पीछे-पीछे करते हुए वर्षों बीता बीता देते हैं, वे श्रावक के बारह ब्रत धारण नहीं कर सकते। यह एक प्रकार की उपेक्षावृत्ति या आलस्य वृत्ति है अथवा तो श्रमण वर्ग के द्वारा सही ज्ञान और सही प्रेरणा की कमी का परिणाम भी माना जा सकता है। श्रावक के व्रत किंचित भी भय करने के योग्य नहीं है किन्तु स्वशक्ति प्रकृति प्रवृत्ति एवं सुविधानुसार धारण किए जाते हैं। जो छूट

रखी जाती है उसके प्रति भी मन में खेद होता है, एवं क्रमिक विकास करके उन छूटों को जीवन से हटाने का लक्ष्य भी श्रावक का सदा रहता है।

अनैतिक वृत्तियों का त्याग–

किसी का भी जीवन नैतिकता से विहीन है अथवा कोई दुर्व्यसनों का शिकार बना हुआ है। उसको भी कभी धर्म समझ में आ जाय तो उसे धर्मी एवं व्रती बनने के लिए वे अनैतिक प्रवृत्तिएं और दुर्व्यसन छोड़ना अति आवश्यक है। उसमें कुछ विलंब क्षम्य हो सकता है, किन्तु सदा के लिए नहीं। यथा-कोई चोरियां करे, परस्त्री गमन करे, व्यापार में अति लोभ से अनैतिक अव्यवहारिक कृत्य करे, पंचेन्द्रिय हिंसा करे-शिकार करे मद्यमांस अंडे मछली का भक्षण करे, जुआ खेले, धूम्रपान करे इत्यादि ये सभी प्रवृत्तिएं श्रावक जीवन के जघन्य दर्जे में भी त्याज्य है।

श्रावक की समझ एवं श्रद्धा–

श्रावक जीवन स्वीकार करने वाला भी श्रमण धर्म को श्रेष्ठ एवं आदरणीय मानता है एवं धारण करने वालों को धन्य समझता है और स्वयं को अधन्य अकृतपुण्य समझता है। वह गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए भी वहां उदासीन परिणामों में लाचारी से रहता है। अर्थात् किसी भी गृहस्थ प्रवृत्ति में उसकी अति आसक्ति नहीं होती है। उसका पहला और दूसरो मनोरथ उसे इसी बात की सदा प्रेरणा देता रहता है। यथा- (1) मैं अपने गृहस्थ जीवन का भार किसी को संभला कर निवृत्त होउं (2) संयम धारण करूं। श्रावक व्रतों के धारण करने के साथ साथ उसकी समझ सही होना आवश्यक है अर्थात् शुद्ध सम्यक्त्व का धारण एवं पालन होना नितांत आवश्यक है।

देव गुरू धर्म तत्त्व का सामान्य ज्ञान–

वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी साक्षात देहधारी अरिहंत प्रभु एवं निरंजन निराकार सिद्ध प्रभु हमारे आराध्य देव है, महाव्रत समिति गुप्ति एवं भगवदाज्ञा की आराधना करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि आचार्य उपाध्याय एवं साधु साध्वी आराध्य गुरू है एवं दया प्रधान अहिंसा प्रधान या पाप त्याग रूप संवर निर्जरा मय धर्म ही हमारा आराध्य धर्म है। हिंसा प्रधान प्रवृत्तियों में कभी भी धर्म नहीं मानना और ऐसे धर्म को वीतराग धर्म से भिन्न समझना। कर्म, पुनर्जन्म, परलोक, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, व्रत, नियम, संयम, तप, ज्ञान, श्रद्धान, मुक्ति एवं नय आदि जिनेश्वर भाषित सिद्धांत ज्ञेय एवं श्रद्धेय तत्त्व है। इन सभी देव गुरू और धर्म तत्त्वों का सम्यग् ज्ञान कर सम्यग् श्रद्धान करना यही सम्यक्त्व या सम्यग् दर्शन है। प्रत्येक श्रावक अपनी श्रद्धान एवं समझ को शुद्ध रखेगा तभी वह आराधक बन सकेगा। सम्यक्त्व संबंधी विविध ज्ञेय विषयों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्रावक जीवन में उदासीन रहने में धाय माता की उपमा कही गई है यथा-

अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल। अंतर्गत न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल।। इस विषय में एक प्रेरणात्मक दृष्टांत है जिसे स्मरण में रखते हुए श्रावक को प्रत्येक प्रवृत्ति करनी चाहिये।

उदासीन वृत्ति का प्रेरक दृष्टांत

चावल की चूरी-

किसी नगर में एक सभ्य सज्जन सेठ रहता था। उसका जीवन सुखी एवं समृद्ध था। सादगी एवं विचारों से युक्त था।किसी समय उसके जीवन ने मोड़ लिया। अशुभ कर्मों ने प्रभाव जमाया। उसका व्यापार अवरूद्ध हो गया। माल दुकान भी बिक गये। मेहनत से एक दिन गुजरान करने जैसी स्थिती आ पंहुची। बेइमानी और चापलूसी उसने जीवन में समझी ही नहीं थी।संकट की घड़ीयों में भी वह संतोष और मेहनत से आजीविका करता रहा। कर्म उदय और भी तीव्र बन जाते है, भूखे ही सोने की नौबत आ जाती है और जब बच्चों को भूखे रखने की नौबत आने लगी तो सेठ सेठानी का धैर्य समाप्त हो गया। आपस में सलाह कर यह निर्णय लिया कि अब स्थिति ऐसी आ गई है कि कहीं से चोरी करके काम चलाना चाहिए। नहीं जंचते हुए भी सेठ को हाँ भरनी पड़ी। कहा भी है कि 'मरता क्या नहीं करता।' चोरी करना कहां करना, जहां चोरी करूंगा वह गरीब भी तो दुखी होगा।सेठ तो कई अति लोभी कंजूस होते है उनको चोरी का बहुत दुःख होगा। अपना दुःख मिटाने के लिए किसी को दुःखी क्यों करना। विचार बढ़ते बढ़ते सेठ ने राजा के भण्डार में चोरी करने का निर्णय लिया। सोचा कि वहां तो भण्ड़ार भरे रहते हैं किसी को ज्यादा कष्ट नहीं होगा। सेठ तैयार कर अर्द्धरात्री में चोरी करने लगा। मन में संकल्प किया कि झूठ तो नहीं बोलूंगा। सामने मार्ग में गस्त लगाते हुए राजा स्वयं सिपाही के वेश में मिल गया। पूछताछ हुई, सरलता से अपने को चोर बता दिया। उसके पूर्ण सत्य उत्तर में राज भण्डार में चोरी करने की बात भी स्पष्ट थी। राजा ने मजाक समझ कर छोड़ दिया। सेठ राज भण्डार में पहुंचा संयोग से उसे कोई भी नहीं रोक सका, ताले तोड़े और भण्डार में प्रवेश किया। क्रमशः अंदर ही अंदर आगे बढ़ता गया, हीरे, पन्ने, माणक, मोती, सोने, चांदी, जेवर, बहुमुल्य कपड़े, मेवे मिष्ठान्न, धान्य कोठार सारे देख लिए। कहीं मन नहीं ललचाया। उसने विचार किया भूखे मरने की नौबत से चोरी करने चला हूँ तो केवल पेट भरने का साधन ही जुटाना है। अन्य लोभ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस सामान्य से सामान्य चीज से 2-4 दिन का गुजरान चल सके वही उतनी ही वस्तु लेनी है। जितने समय में फिर कुछ कमाई का धंधा हाथ लग जाएगा। इस तरह विचार करते-करते देखते-देखते उसे चावल की चूरी एक बर्तन में दिख गई 5-10 सेर कपड़े में भरी, बाँधी और चल दिया। मार्ग में वही राजा फिर गस्त लगाते हुए मिला। पूछताछ हुई। सत्य उत्तर था उसका कि राज भण्डार में चोरी करके आया हूँ। चावल की चूरी भर कर लाया हूँ। राजा ने खुलवा कर देखली और उसके पीछे गुप्त रूप से आकर घर के चिन्ह कर दिया। राज पुरूषों और भण्डारियों ने ताले टूटने की जानकारी होने पर बहुत कुछ माल अपने अपने घरों में पहुंचा दिया। प्रातः काल राज भण्डार में हुई चोरी की बात प्रगट में आई। राज सभा में वार्त्ता आई। राजा ने कर्मचारियों से वार्त्ता सुनी। नौकर द्वारा उस सेठ को बुलाया गया जिसने रात में चोरी करी थी। सबसे सामने पूछा तो सेठ ने उत्तर दिया मैं दिन का साहूकर रात्रि का चोर हूँ और अपनी हकीकत कहते हुए कहा कि इस कारण चावल की चूरी की चोरी की है। राजा को बड़ा दुःख हुआ कि ऐसे इमानदार सच्चे लोग मेरे राज्य में दुःखी रहें और कमचारी या भण्डारी बने ये लोग स्वयं चोरियां करते हैं। राजा ने उस सेठ को अपने भण्डार का प्रमुख बनाया और कर्मचारियों को अचित दंड और शिक्षा दी। जिस प्रकार सेठ को लाचारी और उदासीनता से चोरी करने के लिए बाध्य होना पड़ा। उस उदासीनता और लाचारी के कारण उस चोरी का उसे दंड न मिल कर इनाम और आदर मिला। श्रावक को भी उदासीनता पूर्वक किये गये

सांसारिक कृत्यों का परिणाम नरक तिर्यंच गति के रूप में न मिल कर उत्तम देव भव प्राप्त होता है। तदनंतर मनुष्य भव और मोक्ष की प्राप्ति होती है। सेठ ने चोरी करने में आनंद नहीं माना था। उसी तरह श्रावक संसार में रहकर जो भी पाप कृत्य करता है उसमें उसकी उदासीनता होनी चाहिए। केवल जीवन निर्वाह का लक्ष्य होना चाहिए। कर्म बंध और पर भव का उसे सदा विचार रखना चाहिए। धन संग्रह भी उसे अत्यन्त आवश्यक हो उससे अधिक नहीं करना चाहिए। उसे सदा यह सोचते रहना चाहिए कि ''पूत कपूता क्यों धन संचे और पूत सपूता क्यों धन संचे''।

आवश्यकता हो वहां तक गृहस्थ जीवन में कृत्य करने पड़ते हैं किन्तु आवश्यकताओं को सीमित करना, यह भी धर्मीजन का प्रमुख कर्त्तव्य होता है। एकबात और ध्यान रखनेयोग्य है कि श्रावक जीवन में किसी के साथ वैर विरोध कषाय कलुषता को दीर्घकाल तक नहीं रखना चाहिए। शीघ्र ही समाधान निकाल कर सरल शांत बन जाना चाहिए। कषायों की तीव्रता समकित को नहीं रहने देती है। माया कपट प्रपंच धूर्ताई ठगाई और दूसरों का अवगुण अपवाद ये धर्म जीवन के एवं समकित के महान् दूषण है। इन को जीवन में तनिक भी स्थान न देते हुए सर्वथा इनका त्याग करते हुए अपने को सुंदर एवं शांत बनाये रखना चाहिए।

श्रावक के आदर्श गुण–

श्रावक को सामान्य दर्जे से प्रारम्भ होकर भी निरन्तर प्रगतिशील रहना चाहिए एवं इन विशिष्ट गुणों की उपलब्धि करनी चाहिए।

1. जीवाजीव का जाणकार होवे।
2. पुण्य पाप आश्रव संवर बंध निर्जरा और मोक्ष के सही स्वरूप का ज्ञाता हो।
3. कर्म बंध कराने वाली पच्चीस क्रिया का ज्ञाता हो।
4. 14 नियम (23) नियम सदा धारण करे। तीन मनोरथ का सदा चिंतन करे।
5. सोते उठते समय धर्म जागरणा करे अर्थात् आत्म विकास का चिंतन करे।
6. दृढ़ धर्मी, प्रिय धर्मी ऐसा बने कि उसे देव भी धर्म से नहीं डिगा सके।
7. जीवन में देवता के सहायता की आशा नहीं रखे अर्थात् देवी देवता की मनौती न करे।
8. स्व सिद्धान्त में कोविद बने।
9. छः छः पौषध प्रतिमास करें।
10. समाज में पूर्ण विश्वास पात्र बनें, प्रतिष्ठित जीवन रखे।
11. तप एवं क्षमा की शक्ति का विकास करे।
12. दान शील के आचरण में उत्तरोत्तर प्रगति करे। सम्पत्ति का अमुक हिस्सा अनुकम्पा दान आदि में लगावें।

13. किसी भी भिखारी याचक को खाली न जाने दे।

14. क्षेत्र में विराजित संत सतियों के दर्शन वंदन आदि की प्रवृत्ति के लिए समय निर्धारित करे। व्याख्यान श्रवण ज्ञान चर्चा आदि का लाभ ले।

15. आहार, वस्त्र, मकान, पाट, पात्र औषध आदि पदार्थों के सुपात्र दान देने में निर्दोषता का पूर्ण विवेक रखे और सदा दान की भावना और तत्सम्बन्धी विवेक की वृद्धि करे।

16. गंभीर और सहिष्णु बनने का प्रयत्न करे।

17. व्यापारिक छूटों को घटावे, संसारिक प्रवृतियों जिम्मेदारियों से क्रमशः निवृत्त होने का प्रयास करते रहे।

18. उदासीन वृत्ति की, वैराग्य की एवं त्याग पच्चक्खानों की वृद्धि करे।

19. रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग करें, जमीकंद अनंतकाय का सर्वथा त्याग करे, सचित्त का सर्वथा त्याग करे, कर्मादान का सर्वथा त्याग करे, एवं प्रवृत्ति मिथ्यात्व का भी सर्वथा त्याग करे, ये पांच प्रत्याख्यान करने के लिए श्रावक को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

20. निवृत्ति मय साधना का अवसर प्राप्त कर आनंदादि की तरह पौषधशाला में रहकर श्रावक पड़िमाओं की आराधना करे। अवसर प्राप्त होने पर संयम ग्रहण करने के लिए तत्पर बने।

21. तीसरे मनोरथ को पूर्ण सफल करने के अवसर को जानकर सावधानी पूर्वक स्वयं आजीवन संथारा पंडित मरण स्वीकार करे।

व्रतधारी क्यों बनें ?

जीव अनादि काल से 84 लाख जीवयोनि में परिभ्रमण कर रहा है। वह जब तक प्रमाद, अव्रत, विषय, कषाय एवं अशुभयोग के परिणाम स्वरूप कर्म बंध करता रहेगा तब तक जन्म जरा और मरण के चक्कर में एवं दुःखों की परम्परा में परिभ्रमण करता रहेगा। ऐसी अवस्था जीवन का असंस्कृत रूप है। सद्गुरू की कृपा पाकर शुद्ध श्रद्धान के साथ सद्ज्ञान की प्राप्ति करके चरित्र मार्ग में उत्तरोत्तर विकास करना, यही जीवन का संस्कृत रूप है। चरित्र विकास के लिए ही व्रतों की आयोजना की गई है, भाग्यशाली जीव ही उनका पालन करते हैं।

शास्त्र में जीवों के लिए चार बातें दुर्लभ कही गई है-

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणों, माणुसत्तं, सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियचं। -उत्तराध्ययन. अ.3 गा.1

इस संसार में प्राणियों को मानव देह मिलना दुर्लभ है, मानव देह मिल जाने पर वीतराग धर्म मिलना दुर्लभ है। कदाचित धर्म प्राप्त हो भी जाय तो शास्त्र श्रवण और श्रद्धा होना अत्यंत दुर्लभ है, उसमें धर्म आचरण करना और भी दुर्लभ है अर्थात् श्रावक व्रत या संयम ग्रहण करना एवं उसकी आराधना करना महान् दुष्कर है। चार गति में, मनुष्य गति ही एक मात्र ऐसी गति है जिसमें जीव सिर्फ धर्माचरण ही नहीं कर सकता है, अपितु कर्मों के बंधन को तोड़ कर सिद्ध बुद्ध एवं

मुक्त भी हो सकता है। मानव भव में जीवन को जो आध्यात्मिक विवेक शक्ति प्राप्त होती है, वह किसी और भव में सुलभ नहीं है। अतः मनुष्य भव पाकर उसको सफल करने का सदा प्रयत्न करना चाहिए। व्रत धारण करने से चारित्र का विकास तो होता ही है, किन्तु साथ ही अव्रती होने से जो निरर्थक आश्रव होता है, उससे बचा जाता है। फलतः कर्म बंधन उतना कम होता है। व्रती जीव का नरकादि दुर्गतियों में भ्रमण करना बंद हो जाता है। उसका वर्तमान जीवन भी शांत और सुखमय हो जाता है। आत्मा जब विकास की ओर प्रवृत्त होती ह तब उसे जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र और आत्म शांति की उपलब्धि होती है, वह शब्दों द्वारा अवर्णनीय है। अतः प्रत्येक सद्गृहस्थ अपने जीवन को व्रतमय बनावे यह आवश्यक है। साथ ही जीवन की साधना उत्तरोत्तर बढ़ाते रहें, तभी वह प्राप्त मानव जीवन को सफल बना सकेगा।

बारह व्रतों के प्रयोजन

सम्यक्तव प्रयोजन-

साधना जीवन में धर्म के सही मार्ग का एवं उस मार्ग के उपदेष्टा का ज्ञान होना और उनके प्रति श्रद्धा भक्ति होना, आत्म कल्याण का प्रमुख अंग है। मोक्षार्थी साधक जब तक जीव अजीव को, हेय उपादेय को, पाप पुण्य को या धर्म अधर्म को सही रूप से समझ नहीं लेता, सम्यक रूप से उस पर श्रद्धान् नहीं कर लेता, तब तक उसका आचरण फलदायी नहीं हो सकता। कहा भी है-

एक समकित पाये बिना जप तप किरिया फोक। जैसे मुरदो सिणगारवो समझ कहे तिलोक।।

इसलिए व्रत धारण के पहले तत्त्वों का ज्ञान और सही श्रद्धान होना आवश्यक है वे तत्त्व दो प्रकार से कहे गये हैं- (1) जीवादि नवतत्त्व (2) देव, गुरू, धर्म तीन तत्त्व। इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का सही ज्ञान और सही श्रद्धान होना यही सम्यक्त्व है। इसके बिना साधुपना या श्रावकपना बिना अंक की केवल बिंदियों के समान है। अतः सर्व प्रथम सम्यक्त्व की प्रत्तिज्ञा का कथन किया गया है।

देव गुरू धर्म तत्त्व का सामान्य ज्ञान-

देव- सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहंत (तीर्थंकर) और सिद्ध भगवान आराध्य-देव हैं। गुरू-महाव्रत समिति गुप्ति वंत एवं भगवदाज्ञाओं का पालन करने वाले सुसाधु आराध्य-गुरू हैं, ये निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। वर्तमान में (1) बकुश (2) प्रतिसेवना (3) कषाय कुशील ये तीन निर्ग्रन्थ पाये जाते हैं। धर्म-पाप त्याग रूप अहिंसा प्रधान, संवर, निर्जरामय धर्म, आराध्य-धर्म हैं। तत्त्व-कर्म, पुनर्जन्म, परलोक,जीव, अजीव, पुण्य, पाप, व्रत, नियम, संयम, तप, ज्ञान, श्रद्धान, मुक्ति एवं नय आदि जिन भाषित सिद्धान्त ज्ञेय एवं श्रद्धेय तत्त्व हैं। इन सभी का सम्यग् ज्ञान कर, सम्यग् श्रद्धान करना, यह सम्यक्त्व या सम्यग् दर्शन हैं।

1. प्रथम व्रत का प्रयोजन-

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवह घोरं, णिग्गंथा वज्जयंतिणं ।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िए, जब लग घट में प्राण।।

संसार में कोई भी जीव मरना एवं दुःखी होना नहीं चाहता । अतः उन प्राणियों का वध करना घोर पाप हैं। इससे जीव नरकादि दुर्गतियों में भ्रमण करता है और अनेक जीवों के साथ वैर का अनुबंध करके संसार की वृद्धि करता है।

अतः स्थूल हिंसा का त्याग एवं सूक्ष्म हिंसा की मर्यादा करने के लिए श्रावक का यह प्रथम व्रत कहा गया हैं।

2. दूसरे व्रत का प्रयोजन-

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्व साहुहिं गरिहिओ।
अविस्सासोय भूयाणं, तम्हामोसंविवज्जए ।।1।।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाँके ह्रदय सांच है, ताँके ह्रदय आप ।।

झूठ को लोक के सभी महात्माओं ने त्याज्य कहा हैं। असत्य भाषी व्यक्ति का विश्वास समाप्त हो जाता है। उसका सर्वत्र अविश्वास फैल जाता हैं। सत्य को भगवान की उपमा दी गई हैं। सत्य को पूर्ण रूप से धारण करने वाला स्वयं परमात्मा स्वरूप बन जाता हैं। इसलिए लघुसाधक-श्रावक के जीवन में स्थूल झूठ का त्याग हो एवं सूक्ष्म झूठ का विवेक बढ़े, इसके लिए यह दूसरा व्रत कहा गया हैं।

तीसरे व्रत का प्रयोजन-

चोरी कर होली धरी, भई छिनक में छार ।
ऐसे माल हराम का, जाता लगे न बार ।

चोरी करने वाले का जीवन अनैतिक होता है, कंलकित होता है। चोरी करने वाला सदा भयभीत बना रहता है। उसकी लोभ वृत्ति बढ़ती जाती हैं। कभी भी चोरी करते पकड़ा जाय तो वह शारीरिक और मानसिक घोर कष्ट प्राप्त करता हैं। चोरी से धन जीव को कभी भी शान्ति सुख नहीं दे सकता हैं। कहा भी है ''चोरी का माल मोरी में''। तथा-

रहे न कौड़ी पाप की, जिम आवे तिम जाय
लाखों को धन पाय के, मरे न कफन पाय।

इसलिए श्रावक ऐसे घृणित निंदित कार्य से बचें, इसके लिए उसे यह तीसरा व्रत स्वीकार करना आवश्यक हैं। इसमें मोटकी चोरी का त्याग होता हैं। और सूक्ष्म चोरी का विवेक होता हैं।

चैथे व्रत का प्रयोजन-

अबंभचरियं घोरं पमांय दुरहिट्ठियं।। -दश.6
मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं।। -दश.6

कुशील अधर्म का मूल है और महान् दोषों को उत्पन्न करने वाला हैं। अर्थात् अनेक दोष, अनेक पाप और अनेक दुखों की परंपरा को बढ़ाने वाला यह कुशील पाप है। धर्मीजन को इसका सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

श्रावक भी धर्म साधना करने का इच्छुक होता हैं। अतः उसे भी कुशील पर अंकुश लगाना चाहिए। परस्त्री सेवन का त्याग करना चाहिए एवं स्वस्त्री संबंधी कुशील प्रवृत्ति को सीमित करना चाहिए। कुशील का त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन करने से बुद्धि, बल, स्वास्थ्य, एवं जीवन विकासोन्मुखी बनता हैं। शास्त्र में कहा है-

सभी तपों में अर्थात् धर्माचरणों में ब्रह्मचर्य उत्तम तप है उत्तम आचारहै।

''तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं।'' -सूय. 6

पांचवे व्रत का प्रयोजन-

इच्छा हु आगास समा अणंतया।। -उत्त. 9
जहा लोहो, तहा लाहो, लाहो लोहो पवड्ढ़ई।। -उत्त. 8
''महारंभी महापरिग्रही'' नरकायु बाधंता हैं। -ठाणांग - 4
वियाणिया दुक्ख विवद्धणं धणं, ममत्तबंधं च महा भयावहं । -उत्त. 19

इच्छाएं असीम है। ज्यों ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों त्यों लोभ भी बढ़ता जाता हैं। महापरिग्रही नरक का आयु बाधंता हैं। धन और उसका ममत्व दुःख वृद्धि कराने वाला है और आत्मा के लिए दुर्गति में ले जाने वाला होने से महा भय रूप हैं। अतः मोक्षार्थी साधक को अपनी इच्छाएं, परिग्रह और ममत्व को अवश्य मर्यादित कर लेना चाहिए। इस व्रत में गृहस्थ जीवन की आवश्यकतानुसार परिग्रह की मर्यादा करने का ही मुख्य उद्देश्य हैं।

छट्ठे व्रत का प्रयोजन-

यह छट्ठा आदि व्रत पांच मूल अणुव्रतों को पुष्ट करने वाले हैं अर्थात् उन्हीं की उत्तरोत्तर वृद्धि कराने वाले हैं। लोक में जितने भी क्षेत्र हैं और उनमें जो भी क्रियाएं चल रही है उनका त्याग नहीं करने से सूक्ष्म क्रिया आती रहती है। दिशाओं में क्षेत्र सीमा कर लेने से उसके आगे जाने का या पाप सेवन करने का त्याग हो जाता है तब वहां से आने वाली क्रियाएं बंद हो जाती है। अतः श्रावक को आवश्यक सीमा निर्धारण कर उसके आगे के सम्पूर्ण लोक में अपनी प्रवृत्ति करने कराने का त्याग कर देना चाहिए। जिस तरह जो जो मकान कमरे काम न आये तो उन्हें बंद रखा जाय तो धूल कचरा नहीं भरता खुला रखने से भर जाता है। उसी प्रकार दिशाओं की सीमा निर्धारित कर आगे त्याग कर देने से उस पाप क्रिया का आश्रव बंद हो जाता है। अतः श्रावक के लिए छः दिशाओं की मर्यादा रूप यह व्रत कहा गया है। इसे धारण करना अत्यन्त सरल है।

सातवें व्रत का प्रयोजन-

लोक में खाने के एवं उपयोग में लेने के कई पदार्थ है एवं व्यापार धन्धे भी अनेक हैं उनका त्याग करने से ही त्यागी होता है। और त्याग नहीं करने से उनकी क्रिया आती रहती है। छठे व्रत से क्षेत्र सीमा हो जाने पर उस क्षेत्र में रहे पदार्थों की

एवं व्यापारों की मर्यादा करना भी आवश्यक है। इसलिए 26 बोल एवं व्यापारों की मर्यादा के लिए यह सातवां व्रत धारण करना चाहिए। इसमें पन्द्रह अत्यधिक पाप बंध कराने वाले धन्धों के त्याग की प्रेरणा भी है संभव हो सके तो श्रावक को उनका पूर्णतः त्याग करना चाहिए।

आठवें व्रत का प्रयोजन-

योग्य खर्च करवो भलो, भलो नहीं अति भाय।
लेखन भर लिखवो भलो, नहीं रेडे रूसनाय।।
सेठ उपालंभ आपियो निरर्थक ढोल्यो नीर।
रोग हरण मोती दिया, गई बहू की पीर।।

स्याही से लिखने वाला सीमित कलम भर के लिखता है किन्तु कागज पर स्याही नहीं गिराता है। उसी तरह योग्य और आवश्यक खर्च करना उचित होता है। आत्मा के लिए भी यह समझना चाहिए कि श्रावक द्वारा अत्यन्त आवश्यक सांसारिक कार्य या पाप कार्य के अतिरिक्त निरर्थक के पाप कार्य करना, अविवेक और अज्ञान दशा के अनर्थ दंड होते हैं। निरर्थक एक लोटा पानी भी खर्च करना या फेंकना श्रावक पसंद नहीं करता है और आवश्यक होने पर खरे मोती भी खर्च कर देता है। बस यही विवेक जागृत करने के लिए यह आठवां व्रत है। गृहस्थ में रहने वाले को कई कार्य आवश्यकतानुसार करने पड़ते हैं। तत्संबधी आश्रव और बंध भी उसके हो जाता है किन्तु जो कर्माश्रव और बंध निरर्थक ही अविवेक आलस्य और अज्ञानता से होते हैं उन्हें रोकने के लिए श्रावक को ज्ञान और विवेक की वृद्धि करना चाहिए तथा आलस्य लापरवाही को हटाकर सावधानी सजगता जागरूकता रखनी चाहिए। अज्ञान दशा से की जाने वाली या विकृत परम्परा से की जाने वाली प्रवृत्तियों को या ज्ञान और विवेक के सामंजस्य से त्याग देना चाहिए ये प्रवृत्तियां वचन की और मन की हो सकती है। अनर्थ दंड के चार भेदों में इन तीनों का समावेश हो जाता है। अतः श्रावक को अनेक मर्यादाएं करने के साथ चार प्रकार के अनर्थ दंडों का स्वरूप समझकर उनका त्याग करना चाहिए जिससे अनेक व्यर्थ के कर्म बंध से आत्मा की सुरक्षा की जा सके।

समझू शंके पाप से, अणसमझू हरषंत।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म बंधंत।।
समझ सार संसार में, समझू टाले दोष।
समझ समझ कर जीवड़ा, गया अणंता मोक्ष।।

नवें व्रत का प्रयोजन-

लाखखंडी सोना तणी लाख वर्ष दे दान।
सामायिक तुल्ये नहीं इम भाख्यो भगवान।।

पूर्व के आठ व्रतों में मर्यादाएं की गई है इस व्रत में मर्यादा या पाप का आगार न रखते हुए अल्प समय के लिए सभी पापों का, सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग किया जाता है। पूर्वाचार्यों ने इसका समय निर्धारण 48 मिनट का किया है। अतः कम

से कम 48 मिनट तक प्रति दिन श्रावक को सभी पाप कार्यों का त्याग करके उस समय में धर्म जागरण कर आत्मोन्नति करने के लिए एवं आत्मा को शिक्षित करने के लिए समायिक व्रत अवश्य धारण करना चाहिए। इस व्रत को धारण करने में अपनी इच्छानुसार सामायिक करने की संख्या निर्धारित की जाती है।

दसवें व्रत का प्रयोजन–

पूर्व व्रतों में जो जो मर्यादाएं जीवन भर के लिए की गई है उन्हें दैनिक मर्यादा में सीमित करना इस व्रत का उद्देश्य है। जीवन भर के लक्ष्य से सीमाएं अधिक अधिक रखी जाती है, प्रतिदिन उतनी आवश्यकता नहीं होती है। अतः विशाल क्रिया को सीमित करने के लिए श्रावक को दैनिक नियम धारण करने भी आवश्यक हो जाते हैं, तभी उसका पाप क्रिया के आश्रव को रोकने उद्देश्य पूर्ण सफल हो सकता है। अतः 14 नियम (23 नियम) धारण करने रूप यह देशावकासिक व्रत है। इसमें 24 घण्टों के लिए अनेक नियम धारण किये जाते हैं। इस व्रत को धारण करना अत्यन्त सरल और महान् लाभदायक है। अतः सभी श्रावकों को यह व्रत अवश्य धारण करना चाहिए।

ग्यारहवें व्रत का प्रयोजन–

दिन भर पुरूषार्थ करने वाले को जैसे रात्रि में विश्राम की आवश्यकता होती हैं, उसी तरह श्रावक के गृहस्थ जीवन में आत्मा के कर्म बंध रूप भार वहन करने का जो क्रम चालू है, आश्रवों की जो प्रवृतिएं चालू है, उनसे महिने में कम से कम 6 दिन विश्रान्ति मिलना आवश्यक होता हैं। जिस तरह परिश्रमी को शारीरिक विश्राम मिलने से उसका श्रम विकसित होता हैं। उसी तरह आत्मा गुणों के विकास के लिए श्रावक को संसार विश्रांति रूप औषध की आवश्यकता होती हैं। इसीलिए आगमों में वर्णित कई श्रावक महिने में छः छः पौषध स्वीकार करते थे। सरकार भी श्रमिकों के लिए रविवार आदि की छुट्टी इसी विश्रांति के उद्देश्य से करती है। इसलिए श्रावक को महिने में एवं वर्ष में कुछ दिन ऐसे निकालने चाहिए जिसमें वह पूरे दिन धर्म साधना कर सके। इसके लिए यह श्रावक का ग्यारहवां व्रत कहा गया हैं। समर्थ साधक को खाने पीने का त्याग करना इस व्रत का उद्देश्य है, तभी पूर्ण आत्मसाधना हो सकती हैं। अल्प सत्व साधक इस व्रत में आहार करते हुए भी पाप त्याग रूप पौषध (दयाव्रत) स्वीकार कर आत्मा साधना कर सकते हैं।

बारहवें व्रत का प्रयोजन–

गृहस्थ जीवन की साधना अधूरी साधना हैं। परिस्थिति एवं लाचारी की साधना हैं। वास्तव में पूर्ण साधना संयम जीवन से ही संभव हैं। श्रावक की सदा मनोकामना होती है कि कब मैं मुनि बनूं और संयम जीवन स्वीकार करूं । जब तक वह अपने मनोरथ को सफल नहीं कर सकता है, तब तक भी श्रमण धर्म का अनुमोदन करते हुए वह श्रमण निर्ग्रन्थों की सेवा भक्ति कर सकता हैं। तदनुसार वह अपने भोजन एवं अन्य सामग्री से उनका सत्कार सम्मान करके उनके संयम में सहयोगी बन कर उनकी साधना को श्रेष्ठ मानते हुए अनुमोदन करता है और उससे वह महान् कर्मो की निर्जरा करता हैं। इसलिए गृहस्थ जीवन में रहने वालों के लिए सहज लाभ का अवसर रूप यह बारहवां व्रत कहा गया हैं। इसके पालन से जिन शासन की भक्ति भी होती हैं एवं गुरू सेवा का आनन्द भी प्राप्त होता हैं। इस व्रत में भिक्षा के दोषों को न लगाते हुए शुद्ध भावों से दान दिया जाता हैं। उस दान को सुपात्र दान कहा जाता हैं। इसमें किसी भी प्रकार की लौकेषणा नहीं की

जाती हैं। केवल गुरू भक्ति, संयम चर्या का अनुमोदन और कर्मों की निर्जरा का हेतु होता हैं। नियमों से युक्त एवं दोष रहित दान का और भावों की पवित्रता का तथा लेने वाले पात्र निर्मल आत्मा का संयोग मिल जाने पर, इस व्रत प्रक्रिया का महत्व बहुत ही बढ़ जाता हैं।

मुनि दर्शन के पांच नियम-

1. सचित सजीव चीजों को अपने पास नहीं रखना ।

2. अचित राजचिन्ह छत्र, चमर, तलवार आदि तथा जूते चप्पल का मुनि के अवग्रह में पहुंचते ही त्याग करना।

3. मुनि के अवग्रह में प्रवेश करते ही मुँह के सामने वस्त्र रखना अर्थात् उत्तरासंग करना या मुखवस्त्रिका बांधना।

4. मुनि की सीमा में पहुँचते ही हाथ जोड़ना ।

5. सभी झंझटों को दिमाग से निकल कर राग द्वेष से दूर हटकर एकाग्रचित हो करके मुनि की सीमा में प्रवेश करना उसके बाद सविधि सभक्ति वंदन, गुणकीर्त्तन, जिनवाणी श्रवण, गुण ग्रहण एवं व्रत धारण आदि करना चाहिए।

श्रावक के बारह व्रतों को धारण करने की स्पष्ट एवं सरल विधि-

सम्यक्त्व- देव गुरू धर्म की शुद्ध समझ रखूंगा और सुदेव सुगुरू का भक्ति पूर्वक विनय वंदन करूंगा। कुदेव कुगुरू के विनय या वंदन की प्रवृत्ति समाज-व्यवहार से, लिहाज की प्रकृति से तथा परिस्थिाति से करनी पड़ेगी तो उसका आगार।

प्रतिक्रमण में उपलब्ध अणुव्रत के पाठों के आधार से व्रतों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

1. पहला व्रत- स्थूल प्राणातिपात विरमण (स्थूल हिंसा का त्याग)

निरपराधी त्रस जीव को मारने की भावना से मारने का पच्चक्खाण, जीवन पर्यन्त, दो करण तीन योग से। अतिचारों को बनते कोशीश टालने का ध्यान रखूंगा।

अतिचार- (1) गुस्से में आकर निर्दयता पूर्वक गाढ़े बंधन से किसी को बांधना (2) गुस्से में आकर निर्दयतापूर्वक मारपीट करना (3) गुस्से में आकर निर्दयतापूर्वक कान, नाक, हाथ, पांव आदि अवयव काट लेना (4) गुस्से में आकर निर्दयतापूर्वक आहार पानी बंद कर देना (5) स्वार्थवश शक्ति उपरांत किसी भी प्राणी पर अधिक भार डालना। जिससे उसको अत्यन्त परिताप पहुंचे या प्राण संकट में पड जाय। ये पांच अतिचार है।

आगार- अपने या अपने आश्रित जीवों के उपचार कराने में कोई त्रस जीवों की हिंसा नहीं रूक सके उसका आगार एवं सांसारिक कार्य या व्यापारिक कार्य करते हुए तथा वाहन प्रयोग करते हुए त्रस जीवों की हिंसा हो जाय उसका आगार। जीवोत्पत्ति के पहले या पीछे उसके निवारण का कोई तरीका अपनाना पड़े उसका आगार। जहां तक बन सकेगा, अहिंसा का तरीका करने का ध्यान रखूंगा। अविवेक और भूल का आगार। आदत नहीं सुधरने से कोई प्रवत्ति हो जाय उसका आगार। आदत सुधारने का ध्यान रखूंगा।

2. दूसरा व्रत-स्थूल मृषावाद विरमण

(बड़े झूठ का त्याग)

पांच प्रकार का मोटका झठ बोलने का अपनी समझ व धारणानुसार उपयोग सहित दो करण तीन योग से जीवन पर्यन्त त्याग। अतिचारों को बनते कोशीश टालने का ध्यान रखूंगा।

पांच प्रकार- (1) कन्या वर (अर्थात मनुष्य) सम्बन्धी (2) जानवर सम्बन्धी (3) भूमि सम्बन्धी (संपति सम्बन्धी) (4) धरोहर सम्बन्धी (5) खोटी साख (व्यवहार व परिवार सम्बन्धी आगार।)

मोटका (स्थूल) झूठ की परिभाषा-

राज दंड़े, लोक भंड़े, दूसरो के साथ धोखा होवे, विश्वास घात होवे, बिना कसूर के किसी को भारी नुकसान भुगतना पड़े , इज्जत व धर्म को ठेस लगे, जीवन कलंकित होवे, ऐसा झूठ बड़ा होता हैं, वह श्रावक के लिए त्याज्य हैं।

आगार- व्यापार सम्बन्धी प्रवत्ति का आगार। अविवेक या भूल का आगार ।कोई आदत नहीं सुधर सके तब तक उसका आगार। बनते कोशिश आदत सुधारने का ध्यान रखुंगा। स्वपर प्राण रक्षा का एवं संघ की परिस्थितियों का आगार। सरकारी कायदे नहीं पलने से कोई झूठ बोलना पड़े उसका आगार।

अतिचार- (1) बिना विचारे आक्षेप लगाना (2) एकान्त में बातचीत करते व्यक्तियों पर आरोप लगाना (3) अपनी स्त्री (या पुरूष) के मर्म प्रकट करना (4) अहितकारी खोटी सलाह देना (5) विश्वास घात करके खोटा लेख (खत) लिखना । से पांच अतिचार हैं।

3. तीसरा व्रत-स्थूल अदत्तदान विरमण

(मोटकी चोरी का त्याग)

पांच प्रकार की मोटकी चोरी का दो कारण तीन योग से त्याग, जीवन पर्यन्त। पांचों अतिचारों को बनते कोशिश टालने का ध्यान रखूंगा।

पांच प्रकार- (1) भींत दरवाजे आदि में छिद्र करके या तोड़ कर (2) वस्त्र, सूत, सोना आदि की गांठ पेटियां खोलकर चोरी करना या जेब काटना।आदि (3) ताले तोड़कर या चाबी लगाकर चोरी करना (4) मार्ग में चलते को लूटकर (5) किसी के मालिकी की कीमत वस्तु चोरी की भावना से लेना।

आगार-तीसरे अतिचार का पूर्ण रूप से टाला (वर्जन) नहीं कर सकता हूँ , उसका आगार । और भी जो प्रवृति इस व्रत के अतिचार की मेरे प्रकृति व प्रवृति में नहीं छुट सकेगी, उसका आगार।

अतिचार- (1) जानकर पांच प्रकार की चोरी की वस्तु लेना।(2) पांच प्रकार की चोरी करने वाले को सहायता देना । (3) राज्य नियमों के विपरीत आचरण करना। (4) जानकर खोटा तोल , खोटा माप करना। (5) चीज दिखाने व तय करने के बाद अदल-बदल करके या मिश्रण करके दे देना। ये पांच अतिचार हैं।

चौथा व्रत-स्वदार संतोष, परदार विवर्जन-

(स्व स्त्री की मर्यादा, पर स्त्री का त्याग)

(1) सम्पूर्ण कुशील सेवन का त्याग या महिने में ( ) दिन कुशील सेवन का त्याग । (2) पर स्त्री या वेश्या का त्याग । (3) ( ) वर्ष के बाद शादी करने का त्याग । (4) दिन में कुशील सेवन का त्याग। एक करण एक योग से एवं सूई ड़ोरा के न्याय से, जीवन पर्यन्त पांचों अतिचारों को बनते कोशिश टालने का ध्यान रखूंगा।

अतिचार- (1) छोटी उम्र की अपनी स्त्री के साथ कुशील सेवन करना। (2) सगाई की हुई कन्या के साथ कुशील सेवन करना (3) अशुद्ध तरीकों से कुशील सेवन करना ।(4) पराये का विवाह कराना ।(5) औषधि आदि से विकार भाव बढ़ाना।

पांचवा व्रत-परिग्रह परिमाण- (1) खेती घरू बीघा ( ) व्यापार सम्बन्धी ( ) , (2) मकान दुकान कुल नग ( ), (3) जानवर की जाति ( ) नग ( ), (4) शेष कुल परिग्रह (रू.) जिसका सोना ( ) किलो प्रमाण । चांदी ( ) किलो प्रमाण , मेरा उत्कृष्ठ परिग्रह हुआ । इसके उपरांत परिग्रह रखने का एक करण तीन योग से त्याग । नया मकान ( ) उपरांत बनाने का त्याग।

स्पष्टीकरण- दूसरों की उधार पूंजी जो व्यापार में लगेगी उसे मेरी नहीं गिनूंगा। जिस चीज की मालिकी वास्तव में घर के किसी सदस्य की अलग कर दी है, उसे मेरे परिग्रह में नहीं गिनूंगा सरकार में नाम अलग-अलग हो और घर में एकमेक हो, उसे अपने परिग्रह में गिनूंगा । भागीदारी के व्यापार में दूसरों की पूंजी को अपनी नहीं गिनूंगा। पुत्र वधु के निजी समान को मेरे परिग्रह में नहीं गिनूंगा । खुद की पत्नि का सामान अपने परिग्रह में गिनूंगा। मकान, जमीन जानवर और वाहन की कीमत नहीं करके संख्या में ही परिग्रह का माप रखूंगा। मेरा बस नहीं चलते लड़के आदि कुछ भी करले उसका आगार।

अतिचार- परिग्रह की जो-जो मर्यादा रखी है उसका अविवेक से, अनजान से एवं लेखा-जोखा नहीं मिलाने से उल्लंघन हुआ होतो वे सब अतिचार समझना और जान कर लोभ संज्ञा से उल्लंघन हो, उसे अनाचार समझना।

6. छठा व्रत-दिशा परिमाण-

अपने निजी स्थान से चारों दिशा में ( ) मील उपरांत जाने का त्याग। या हिन्दुस्तान उपरांत जाने का त्याग ( ) या विदेश संख्या ( ) उपरांत त्याग। विदेश नाम ( ) ऊपर की दिशा में मील ( ) नीचे की दिशा में फुट ( ) उपरांत जाने का त्याग, एक करण तीन योग से जीवन पर्यन्त। तार चिट्ठी फोन आदि स्वयं करना जिसकी मर्यादा ( ) संख्या या देश के उपरांत त्याग।

आगार- स्वभाविक जमीन ऊंची नीची हो उसका आगार। जो वाहन खुले रखे हैं वे जितनें ऊंचे नीचे जावे उसका आगार। आये हुए तार, चिट्ठी, फोन, रेडियो, टी.वी. आदि का आगार। नौकरी या शरीरिक कारण आदि विशेष परिस्थिति का आगार। राज्य सम्बन्धी, देव सम्बन्धी स्थिति का आगार। बच्चे आदि मर्यादित क्षेत्र से बाहर चले जाय तो उनके सम्बन्धी विशेष परिस्थिति का आगार। यथाशक्य सभी परिस्थितियों से बचने का ध्यान रखूंगा।

अतिचार- (1.3) लापरवाही, अनजान और मर्यादा के भूल जाने से उलंघन हुआ हो। (4) एक दिशा के परिणाम को घटाकर दूसरी दिशा में बढ़ाया हो। दोनों दिशाओं का योग वही रहता है इसलिए अतिचार है। (5) स्मृति नहीं रहे, और अंदाज से जितनी मर्यादा ध्यान आवे उसका उलंघन करे, फिर मालूम पड़े कि वास्तव में मर्यादा उल्लंघन नहीं हुआ है तो यह भी अतिचार है।

7. सातवां व्रत-उपभोग परिभोग परिमाण व्रत-

नोट- 26 बोलों की मर्यादा को 15 बोलों में संक्षिप्त किया गया है।

(1) दांतोन-सचित ( ), अचित ( ), प्रति दिन ( )

(2) साबुन-नहाने का ( ), जाति। धोने की जाति ( ), खुद की अपेक्षा।

(3) विलेपन-तेल चंदन पीठी, पावडर क्रीम आदि की जाति ( )।

(4) स्नान-प्रतिदिन ( ), मास में ( ), वर्ष में ( )। एक बार के स्नान में पानी ( ) बाल्टी। बिना माप के पानी के स्नान का त्याग या मर्यादा ( ) लोकाचार का आगार। महिने में ( ) दिन स्नान का त्याग।

(5) वस्त्र-1. सूती, ऊनी आदि जाति ( ), जाव जीव। 2. वस्त्र जोड़ी या नग ( ) उपरांत एक साथ रखने का त्याग। रेशम का सम्पूर्ण त्याग।

(6) सयन- बैठने सोने के नग प्रति दिन ( )।

(7) कुसुम- सूंधने के फूल जाति ( ), इत्रादि ( )। माला जाति ( ), भूल, दवा, परीक्षा का आगार।

(8) आभूषण-घड़ी आदि एक साथ शरीर पर पहिनने की जाति ( ), नग ( ), संभाल कर रखने के लिये व परीक्षा निमित का आगार।

(9) धूप-करना - जाति ( ),अगरबत्ती, लोबान, कपूर, घी, तेल आदि। अगरबत्ती की जाति ( )

(10) हरे शाक फल आदि ( ), जमीकंद ( ) जाति उपरांत त्याग।

(11) सूखा मेवा-जाति ( ), उपरांत त्याग या अमुक चीज त्याग ( )।

(12) सवारी- हवाई जहाज का त्याग या मर्यादा जीवन में ( ) बार। समुद्र की जहाज का त्याग या मर्यादा ( )। जानवर की सवारी का उसकी पीठ पर बैठने की अपेक्षा त्याग या मर्यादा जाति ( ) थल की सवारी अमुक ( ) का त्याग।

(13) पन्नी- (जूता), रबर चमड़ा आदि जाति ( ) बूट सेंडिल आदि जाति ( ) जाव जीव। एक साथ रखना कुल जोड़ी ( ) उपरांत त्याग।

(14) सचित- खाने की जाति ( ) जाव जीव। प्रतिदिन जाति ( ) उपरांत त्याग।

(15) द्रव्य- प्रतिदिन जाति ( ) जाव जीव की जाति ( ) उपरांत त्याग।

द्रव्य– 1. हरे साग, 2. सूखे साग, 3. दालें, 4. मुखवास, 5. मिठाई, 6. पेय पदार्थ, 7. सूखे मेवे, 8. विगय, 9. भोजन, रोटी, खीचड़ी आदि, 10. तरल पदार्थ, 11. अन्य। व्यापार जाति ( ) उपरांत त्याग। कर्मा दान संख्या ( ) का त्याग।

आगार– उपरोक्त नियमों में भूल, दवा का आगार, दूसरा करदे उसका आगार। नौकरी सम्बन्धी आगार। घर के लिये आई वस्तु में से कुछ बेचने का प्रसंग आ जाय तो आगार। लड़के आदि बिना आज्ञा या बिना सलाह के कुछ करले तो यथाप्रकृति आगार। उपरोक्त रखी मर्यादा के उपरांत एक करण तीन योग से त्याग।

अतिचार पांच– (1) त्याग किए हुए सचित को अचित समझ कर या भूल कर खाना अथवा कोई भी सचित वस्तु खाना यह भी अतिचार है। (2) सचित गुठली आदि से लगे गिर को खाकर गुठली थूकना या तत्काल गुठली आदि निकाल कर खाना (3) पक्व समझकर अपक् सचित खाना। (4) अचित समझ कर अधूरे पके या सेके पदार्थ को खाना। (5) जिसमें ज्यादा सचित खाने हो और थोड़ा ही अचित भाग खाने का हो या जिसमें ज्यादा फेंकना थूकना हो अथवा जिसमें पाप क्रिया ज्यादा लगे और लाभ कम हो, ऐसी तुच्छ वस्तुएं खाना पीना। यथा- कंद मूल, बीड़ी सगिरेट तम्बाकू, भांग सीताफल गन्ना आदि।

पन्द्रह कर्मादान स्वरूप–

(1) इंगाल-कम्मे- अग्नि के आरम्भ वाले धंधे- धुलाई, रंगाई, गलाई, हलवाई, भड़भुजा, सुनार, लुहार आदि के धंधे।

(2) वण-कम्मे- वनस्पति के आरम्भ के व्यापार या कर्म। खेती। हरीसब्जी उबालना, सुखाना बेचने का धंधा।

टिप्पण– 1. जिस प्रकार कर्मादान का , मारने पीटने आदि का, चोरी की वस्तु लेने आदि का त्याग नहीं होते हुए भी उन उन व्रतों में अतिचार कहा गया है। उसी प्रकार सचित आदि पदार्थों का खाना भी इस व्रत में अतिचार कहा है। इस प्रकार अन्य व्रतों में भी प्रसंगानुसार समझ लेना चाहिए।

(3) साड़ी-कम्मे- वाहन बनाकर बेचना।

(4) भाडी-कम्मे- वाहन चलाकर भाड़ा कमाना व्यापार रूप में।

(5) फोड़ी-कम्मे- खेती केलिए हल चलाना, खान खोदना उससे निकले पदार्थ को बेचकर आजीविका चलाना। कुआ, बावड़ी, तालाब, सड़क आदि बनाने का ठेका लेना।

(6) दंत-वाणिज्य- त्रस जीवों के शरीर के अवयव का व्यापार। हाथीदांत, रेशम, कस्तूरी, संख, केश, नख, चर्म, ऊन। सीधे खरीदना या आर्डर देना।

(7) लक्ख-वाणिज्य- जिन वस्तुओं को तैयार करने में त्रस जीवों की हिंसा हो या सड़ाना पड़े, ऐसे कैमिकल्स का व्यापार या लाख, चिपड़ी आदि बेचना। नील, सोडा, साबुन, नमक, सज्जीखार, रंग आदि का व्यापार।

(8) रस-वाणिज्य- शराब का धन्धा, तथा घी, तेल, गुड, शक्कर आदि रस पदार्थ का धंधा करना। दूध-दही बेचना।

(9) केश-वाणिज्य- केश वाले जानवर या दास-दासी बेचने खरीदने का व्यापार।

(10) विष-वाणिज्य- जिनका उपयोग जीवों को मारने का हो ऐसे पदार्थ व शस्त्र का व्यापार। यथा-बन्दूक, तलवार डी.डी.टी. पाउडर आदि।

(11) यंत्रपीडन कर्म- तेल या रस निकालना तथा चरखे, मील, प्रेस, चक्की आदि चलाना। बिजली से चलने वाली फेक्ट्री।

(12) णिलंछण-कर्म- नपुंसक बनाने का धंधा करना, अंगोपांग छेदन करना, डाम देना।

(13) दवग्गिदावणया- जंगल, खेत, गांव आदि में आग लगाना।

(14) सर दह तलाय सोसणया- खेती आदि करने के लिये झील, तालाब आदि का पानी सुखाना।

(15) असई जण पोषणया- शौक, शिकार या आजीविका निमित हिंसक जानवर, दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना।

टिप्पण- यह व्रत एक करण तीन योग से लिया जाता है अतः दस्तखत करने या शेयर खरीदने से वह यहां व्यापार में नहीं गिना जायेगा।

8. आठवां व्रत-अनर्थ दंड वेरमण- चार प्रकार के अनर्थ दंड का अपनी समझ अनुसार विवेक अनुसार टालने का ध्यान रखूंगा। बनते कोशीश ज्ञान और विवेक बढ़ाऊंगा।

निम्न त्याग करना- 1. होली खेलना, 2. पटाके छोड़ना 3. ताश खेलना, 4. सिनेमा, 5. पान 6. सात व्यसन, 7. धूम्रपान, 8. तम्बाकू खाना सूंघना, 9. बिना माप के पानी से स्नान करना। यथा-कुआ, बावड़ी, तालाब, नदी, वर्षा में या नल के नीचे। इनका त्याग करना या मर्यादा ( ) बार वर्ष में लोकाचार का आगार, 10. बिना छाणा पानी पीने का त्याग या काम में लेने का त्याग।

चार प्रकार का अनर्थ दंड-

1. अवज्झाणचरिये- खोटा खोटा चिंतन करना। यथा-दूसरों के मरने का, नुकसान का, रोग आने का, आग लगने का, किसी तरह दुखी होने का इत्यादि सोचना या ये कार्य खुद करने का सोचना। और भी अनेक आर्त्त रौद्र ध्यान करे यथा- पर दोष देखे, निंदा करे, अन्य की लक्ष्मी वांछे, संयोग-वियोग के संकल्प विकल्प करे, दूसरों के दुख में खुश होवे, कूडा-आल देवे, झूठी अफवाहें फैलावे, मिश्र भाषा बोलकर किसी के प्रति भ्रम फैलावे इत्यादी ये सभी प्रथम अनर्थ दडं की प्रवृत्तियां हैं।

2. पमायाचरिये- प्रमाद पूर्वक प्रवृत्ति करना। विवेक नहीं रखते हुए आलस्य, लापरवाही आदि कारण से तरल पदार्थ पानी, दूध, घी आदि के बर्तन उघाड़े रख देना। मीठे पदार्थों को बिना विवेक के रख देना। तथा किस वस्तु को कहां

कैसे रखना इसका विवेक नहीं करना। बिना विवेक के कुछ भी बोल जाना, बिना विवेक के चलना, बैठना। बिना प्रयोजन पृथ्वी खेदना, पानी ढोलना, अग्नि जलाना, हवा करना, हाथ पांव वस्तु हिलाना। पंखे बिजली खुले छोड़कर चले जाना । नल आदि खुले छोड़ देना , विवेक नहीं रखना। हरी वनस्पति घास तोड़ना, उस पर बैठना, चलना। बिना माप का पानी उपयोग में लेना या पानी में तैरना। अनेक मनोरंजन की प्रवृत्तियां भी अनर्थ दंड में गिनी जाती हैं। दीपक, चूल्हा उघाड़ा रख देना। सम्मुर्च्छिम, खार, फूलण आदि का ध्यान रखे बिना चलना। वृक्ष पर झूला बांधना। ये सब दूसरे अनर्थ दंड की प्रवृत्तियां हैं।

3. हिंसप्पयाणे– हिंसाकारी शस्त्र हर किसी को अर्थात् अविवेकी को देना तथा ऐसे साधनों का अधिक संग्रह करना। शस्त्र, तलवार, बंदूक, कुदाला, फावड़ा आदि। हिंसक जानवरों का पोषण, डी. डी. टी. पावडर आदि का संग्रह या उपयोग करना आदि यह तीसरा अनर्थ दंड है।

4. पावकम्मोवएसे– बिना प्रायोजन या जबाबदारी के ही दूसरों को पाप कार्यों की प्रेरणा करना । यथा स्नान, शादी, मकान बनाना, व्यापार करना, मोटर कार खरीदना, कुआ, खेती, जानवर संग्रह करना, वनस्पति काटना-उबालना आदि की प्रेरणा करना अथवा ऐसे संकल्प विकल्प करना। किसी भी चीजों को या स्थानों को देखने जाना एवं किसी भी वस्तु की सराहना करना। झूठा शास्त्र रचना एवं वैसी प्ररूपणा करना इत्यादि यह सब चौथा अनर्थ दंड हैं।

आगार– जो आदत जब तक पूर्ण न सुधरे तब तक उसका आगार। यथाशीघ्र आदत सुधारने का ध्यान रखूंगा। लक्ष्य रखकर विवेक ज्ञान बढ़ाऊंगा।

अतिचार– 1. काम विकार जगाने वाली कथा करना, 2. भांडों की तरह दूसरों को हँसाने के लिए काया की कुचेष्टा करना। अंगोपांग को विकृत करना, 3. ढीठता पूर्वक निरर्थक , बोलना, असत्य और उटपटांग व हास्यकारी बोलना, 4. उखल-मूसल आदि उपकरणों को एक साथ रखना, जिससे सहज विराधना होवे तथा शास्त्रों का अधिक संग्रह करना, 5. उपभेग परिभोग की वस्तुओं का अधिक संग्रह करना। ये अतिचार हैं।

सामायिक व्रत-प्रति दिन ( ) प्रतिमास ( ) प्रति वर्ष ( ) सामायिक करूंगा। विशेष परिस्थिति का आगार। 32 दोषों को यथाशक्य टालने का ध्यान रखूंगा। उन दोषों को कंठस्थ करना या साल में 12 वार पढ़ना। भूल करने का आगार।

अतिचार– मर्यादा के बाहर मन वचन, काया की प्रवृत्ति करना। (4) मेरे सामायिक है, यह याद नहीं करना। फिर गलती करते समय अचानक याद आना (5) सामायिक अव्यवस्थित ढंग से अविवेक से करना, जैसे-तैसे अनादर अस्थिरता से करना या समय पूर्ण हुए पहले सामायिक पार लेना। तीन अतिचार अनुपयोग से और दो अतिचार प्रमाद से लगते हैं।

10 देशावकासिक व्रत– तेबीस नियम (चौदह नियम) रोज धारण करूंगा और तीन मनोरथ का चिंतन करूंगा। भूल, शारीरिक परिस्थिति का आगार। अभ्यास न जमने तक आगार। विशेष परिस्थिति में कोई भी संक्षिप्त तरीके से करने का आगार।

अतिचार- मर्यादाओं का अनजान से या अविवक से उल्लंघन करने पर अतिचार लगता है।

नोट- चौदह नियम का विशेष स्पष्टीकरण आगे देखें।

11. पौषध व्रत-दया या पौषध मिला कर कुल ( ) प्रति वर्ष। अथवा प्रतिपूर्ण पौषध ( ) अपूर्ण पौषध ( ) दया ( ) चार खंध ( ) चौविहार ( ) तिविहार ( ) उपवास ( ) आयंबिल ( ) निवी ( ) एकासण ( ) पोरिषि ( ) नवकारसी ( ) प्रतिक्रमण ( ) मास में या वर्ष में। भूल व अवस्था या कारण का आगार। निवृत्ति व्यापार से ( ) वर्ष बाद।

अतिचार- 1. सोने के मकान शय्या का प्रतिलेखन न करना या अच्छी तरह न करना। 2. पूंजने के प्रसंग पर प्रमार्जन न करना या अच्छी तरह न करना। इसी तरह उच्चार पासवण भूमि के दो अतिचार (3-4) समझ लेना। 5. पौषध के 18 दोष न टाले हो तथा चलना, बैठना, सोना, बोलना, पूंजना, थूंकना, खाना, पीना, परठना आदि अववेक से करना। ये सब अतिचार हैं।

12 अतिथि संविभाग व्रत- साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष वस्तुओं को भक्तिभाव से निष्काम बुद्धि से केवल आत्म-कल्याण के लिए बहराऊंगा और भोजन करते समय तीन नवकार गिन कर दिन में कम से कम एक बार दान देने की भावना भाऊँगा।

शिक्षाएँ- निर्दोष लेने वालों को झूठ-कपट कर सदोष आहार, पानी, मकान, वस्त्र पात्र, पाट, पुठे घास, दवा आदि नहीं बहराना। घर में सचित और अचित चीजों को एक-साथ एक आलमारी या एक कागज पर नहीं रखने का सदा ध्यान रखना और घर के सदस्यों को भी समझाना। घर में अचित पानी बनता हो उसे तत्काल नहीं फेंकने का ध्यान रखना एवं दूसरों को ध्यान दिलाना। जो अचित पानी नहीं बनता हो तो उसे बनाकर रखने का रिवाज नहीं करना और उसके लिये सही ज्ञान करके अन्य को भी सही मार्ग-दर्शन देते रहना। 42 दोष आदि का ज्ञान करना। संत-सतियों के सामने झूठ नहीं बोलना। घर में या भोजन-गृह में सचित पदार्थों को, बिखेर कर नहीं रखना या बीच में नहीं रखना।

अतिचार- 1. अविवेक से घर में सचित-अचित वस्तु संघट्टे से रखी हो या भोजन करते समय पानी आदि संघट्टे से रखा हो, 2. अविवेक भूल से अचित धोवण आदि पर सचित पानी आदि रखा हो, 3. भिक्षा के असमय में भावना भाई हो या भिक्षा के समय घर का दरवाजा बंध रखा हो, रास्ता पानी, बीज आदि से युक्त रखा हो, 4. विवेक या उमंग की कमी से प्रसंग आने पर खुद नहीं बहरावे और दूसरों को निर्देश करता रहे। मैं खुद बहराऊँ ऐसा याद नहीं आवे, 5. सरल शुद्ध भाव और शुद्ध काया वचन के विवेक से न बहरा कर अनेक प्रकार के अशुद्ध, भाव, कलुषता, ईर्ष्या, बराबरी, दिखावा, आग्रह, जिद्द, अविनय, अववेक के शब्द उपालंभ, ताना-कसी आदि काया और वचन के अविनय अभक्ति अविवेक से बहराया हो। ये अतिचार हैं।

विशेष नोट- सभी व्रतों में प्रतिक्रमण के अनुसार करण और योग समझना। सभी व्रत समझ अनुसार, धारण करता हूं। सभी में भूल का आगार। इसमें जो कोई नई शंका उत्पन्न होगी, जिसके विषय में अभी सोचा समझा नहीं है, उसे उस समय की समझ शक्ति अनुसार करूंगा। इन लिखे नियमों को फेर-बदल करने का आगार ( ) वर्ष तक। तब तक

प्रति मास में एक-बार अवश्य पढूंगा। उसके बाद प्रति वर्षमें इन लिखे नियमों को एक-बार अवश्य पढ़ूंगा। भूल का आगार। प्रतिक्रमण अर्थ सहित वर्ष में एक-बार अवश्य पढूंगा। जल्दी से जल्दी जाति नाम खोलना-हरी वनस्पति, जमीकंद सचित, साबुन, विलेपन, दांतौन, वस्त्र, फूल, अगरबत्ती, व्यापार, द्रव्य।

अध्ययन- 1. यह पुस्तक महिने में ( ) बार पढ़ना। 2. उपासकदशा सूत्र का सारांश वर्ष में ( ) बार पढ़ना। 3. बतीस आगमों का सारांश ( ) वर्ष में पढ़ना। 4. मोक्ष-मार्ग, सम्यक्त्व विमर्श, उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, तत्त्व त्रयी, जैन तत्व प्रकाश, बोल संग्रह भाग 1 से 7 बीकानेर के। इनको एक-बार अवश्य पढ़ना ( ) वर्ष में 5. ब्यावर से प्रकाशित चार छेद सूत्रों का विवेचन ( ) वर्ष में पढ़ना कंठस्थ करना कम से कम शुद्ध सामायिक सूत्र 32 दोषयुक्त। प्रतिक्रमण अर्थ सहित व पच्चीस बोल।

अंतिम शिक्षा- (1) सभी जैन श्रमणों का आदर सत्कार सम्मान विनय-भक्ति शिष्टाचार आदि अवश्य करना। समय निकाल कर ज्ञान प्राप्त करना। यथा शक्ति सेवा सहयोग करना। सुपात्र दान देकर शाता पहुँचाना।

(2) अन्य मतावलम्बी जैनेत्तर सन्यासी आदि से अति परिचय आदि न करना। किन्तु स्वतः सहंयोग मिल जाय तो अशिष्टता, असभ्म्यता नहीं करना।

(3) कुल-परम्परा से देव-देवी पूजन आदि करना पड़े तो उसे धर्म नहीं समझ कर, सांसारिक कार्य समझना।

(4) हिंसा में, आडम्बर में, धर्म नहीं समझना और हिंसा आडम्बर को धर्म बतावे उसे खोटा समझना। पाप के आचरण को कभी भी धर्म नहीं मानना।

(5) किसी भी व्यक्ति समुदाय विशेष की निंदा, अवहेलना, घृणा नहीं करना। माध्यस्थ भाव, समभाव, अनुकम्पाभाव रखना।

(6) जिनाज्ञा का उल्लंघन करने वाले श्रमणों को सदा यथावसर विनय-विवेकयुक्त शब्दों में सूचित करते रहना। किन्तु निन्दा न करना।

(7) संसार के किसी भी प्राणी के प्रति अपने मन में राग अथवा द्वेष अर्थात् नाराजी, रंज, एलर्जी भाव नहीं रखना। चाहे वह पापी हो, दुष्ट हो, विरोधी हो, प्रतिपक्षी हो, धर्मी हो, अशुद्ध धर्मी हो, अथवा अहित करने वाला हो, पागल या मूर्ख हो या शिथिलाचारी हो, अन्य सम्प्रदाय या धर्म का अनुयायी हो। सभी के प्रति अपना चित प्रसन्न रखना चाहिए। सब के पुण्य और उदय कर्म अलग-अलग होते हैं, ऐसा चिंतन करके समभाव रखना चाहिए। यह समकित का प्रथम लक्षण ''सम'' है।

(8) परमत परपाखंड, अन्यदर्शनी, मिथ्या दृष्टि आदि की संगति परिचय प्रशंसा सम्मान आदि का सम्यक्त्व शुद्धि की अपेक्षा आगमों में निषेध है। किन्तु स्वदर्शनी जिनमतानुयायी तीर्थंकरों का अनुरागी आदि जो जैन श्रमण निर्ग्रन्थ हैं उनसे नफरत करना, अनादर करना, अयोग्य आचरण है। राग-द्वेष-वर्धक आचरण हैं। संकीर्ण वृत्ति का परिचायक है एवं आगम सम्मत भी नहीं है, अपितु जिन शासन की अवहेलना कराने वाला एक निम्न कर्त्तव्य है। अतः समस्त जैन श्रमणों का सम्मान करना चाहिए तथ अनादर तिरस्कार तो किसी का भी नहीं करना चाहिए।

तीन मनोरथ का विस्तार

(सदा चिंतन मनन वांचन करने के लिये)

आरम्भ परिग्रह तज करी, पंच महाव्रत धार।
अंत समय आलोयणा, करू संथारो सार।।1।।

1. पहला मनोरथ- मैंने जो द्रव्यादि की मर्यादा रखी हैं, वह आरम्भ और परिग्रह भी मेरी आत्मा के लिए कर्म बन्ध कराने वाला हैं। किंतु मैं ऐसी ही परिस्थिति में फंस गया हूँ। सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग नहीं कर पा रहा हूं इसलिये यह मर्यादा करके संतोष करता हूं। परन्तु वास्तव में तो मेरा वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग कर निवृत्ति धारण करूंगा। अपना भार "**आनन्द**" आदि श्रावक के समान पुत्र आदि को संभला कर संपूर्ण समय धर्म साधना में लगा दूँगा, वह दिन मेरे लिए परम मंगलमय एवं धन्य होगा। जीवन में वह दिन मुझ जल्दी ही प्राप्त होवे, जिस दिन मैं चवदह प्रकार का अभ्यंतर परिग्रह (क्रोध मान, माया, लोभ, राग द्वेष हास्य, भय, रति, अरति, शोक, दुगंछा, वेद मिथ्यात्व) व नव प्रकार का बाह्य परिग्रह (खेत, वत्थु, हिरण्य, सुवर्ण धन, धान्य, द्विपद, चैपद, कुविय आदि) के निमित्त से होने वाले आरम्भ एवं परिग्रह से बिल्कुल निवृत्त होऊंगा, वह दिन मेरा धन्य होगा। यह आरम्भ-परिग्रह सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र आदि सद्गुणों का ह्रास करने वाला है, राग-द्वेष का वर्द्धक है, विषय का कषाय का जनक है, आठारह पापों को बढ़ाने वाला है, दुर्गति का दाता है, अनन्त संसार को बढ़ाने वाला है, अशरण रूप है, अतरण रूप है, निर्ग्रन्थ के लिये निन्दनीय है, चार गति, चौबीस दंडक, चौरासी लाख जीव योनि में परिभ्रमण करा कर दुःख देने वाला है। इस अपवित्र आरम्भ-परिग्रह का मैं सर्वथा प्रकार से त्याग करूंगा, छोड़ूंगा, इससे ममत्व उतारूंगा, इससे अपने को पूर्णतः अलग करूंगा, वह दिन मेरा धन्य होगा। हे प्रभु ! मुझमें ऐसी आत्म शक्ति प्रकट होवे कि मैं इस आरम्भ और परिग्रह को सर्वथा प्रकार से सफल हो सकूँ।

2. दूसरा मनोरथ- जब मैं आरम्भ-परिग्रह से पूर्णतः निवृत्त होकर अठारह ही पापों का तीन करण व तीन योग से जीवन भर के लिये त्याग कर महाव्रत धार कर संयम अंगीकार करूंगा और सम्पूर्ण आश्रवों को रोक कर तप आदि के द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मों को क्षय करने में लगूंगा, वह दिन मेरा धन्य होगा। मेरा मनुष्य भव प्राप्त करना भी पूर्ण सार्थक होगा। जिन महात्माओं ने संयम धारण किया है अथवा करने वाले हैं, वे कोटि-कोटि धन्य है। मैं संयम लेने वालों के कभी बाधक नहीं बनूंगा। हे प्रभु ! मेरी भी संयम लेने की भावना दिनों-दिन बढ़ती जावे, और मेरे परिवार वालों को भी ऐसी सुबुद्धि होवे कि मेरी भावना दृढ़ होते ही एवं आज्ञा मांगते ही शीघ्र-से-शीघ्र आज्ञा दे दें अथवा मेरा इतना ऊर्ध्व मनोबल हो जावे कि मेरे मार्ग की बाधाएं स्वतः दूर हो जावे। ऐसी मेरी मनोकामना सफल होवे। जिस दिन मैं पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दस यति धर्म, सतरह प्रकार के संयम का यथावत् पालन कर भगवन्त की आज्ञा में विचरण करूंगा, कषायों को कृश करूंगा, परमशांत बनूंगा, वह दिन मेरा परम कल्याण कारी होगा। हे प्रभु ! यह दिन, वह शुभघड़ी मुझे जल्दी प्राप्त होवे कि जब मैं मुनि बनूँ।

3. तीसरा मनोरथ- जो प्राणी जन्मा है सो अवश्य मरेगा। मुझे भी मरना अवश्य है-मौत कब व किस तरह आयेगी इसका कुछ भी पता नहीं है। अतः मेरा वह दिन धन्य होगा कि जब मैं मृत्यु समय को नजदीक आया जानकर संलेखना संथारा के लिए तत्पर होऊंगा। उस समय पूर्ण होश रहते हुए मैं सम्पूर्ण कुटुम्ब परिवार से मोह ममत्व छोड़ कर आत्म भाव में लीन बनूंगा। दूसरे अनेक जगत् प्रपंच व जगत व्यवहार की बातों को भूलकर मात्र अपनी आराधना के विचारों में रहूँगा।

(क) स्वयं सावधानी पूर्वक सम्पूर्ण पापों का त्याग करूंगा। (ख) लिये हुए व्रत पच्चक्खानों मे लगे हुए दोषों की शुद्धि करूंगा। (ग) सब जीवों से खमत खमणा करूंगा अर्थात् किसी के साथ वैर-विरोध नहीं रखता हुआ सब जीवों को मेरी तरफ से क्षमा कर दूंगा। किसी के प्रति नाराजी भाव को नहीं रखूंगा। कोई भी नाराजगी होगी उसे भी याद करके निकाल दूंगा। इस तरह आत्मा में क्षमा, शांति आदि गुणों को धारण करता हुआ धर्म चिन्तन में लीन रहूंगा। अपने पूर्व के लगे पापों की आलोचना, प्रयश्चित कर के, आत्म शुद्धि कर, समाधि पूर्वक पंडित मरण को प्राप्त करूंगा। भगवान की आज्ञा का आराधक हाऊंगा, वह दिन मेरा धन्य होगा। हे प्रभु! जब मेरा मृत्यु समय नजदीक आ जाय तब मुझ आभास हो जाय कि अब थोड़ी सी अंतिम उमर ही बाकी रही है। अब मुझे पंडित मरण के लिए तैयार हो जाना चाहिए और ऐसा जानकर मैं आजीवन अनशन स्वीकार कर लूं। अंत में हे भगवान! मेरी यह हार्दिक भावना है कि वह भव, वह दिन वह समय, मेरी आत्मा को जल्दी से जल्दी प्राप्त होवें, जब मैं आठ कर्म क्षय करके सिद्ध, मुक्त हो जाऊं। वह समय मेरी आत्मा के लिए परम कल्याण कारी होगा।

तीन मनोरथ ये कह्या, जो ध्यावे नित मन।
शक्तिसार वरते सही, पावे शिव सुख धन।।1।।

पतित उद्धारन नाथ जी, अपनो विरूद्ध विचार।
भूलचूक सब माहरी, खमजो बारबम्बार।।2।।

छूटूं पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय।
श्री गुरू देव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय।।3।।

अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।।4।।

धिक् धिक् मेरी आत्मा, सेवे विषय कषाय।
हे ! जिनवर तारो मुझे, विनती बारम्बार।।5।।

आरम्भ परिग्रह कब तजूं, कब लूं महाव्रत धार।
संथारों धारण करूं, ये तीन मनोरथ सार।।6।।

श्रावक मनोरथ

चौदह नियम (25 नियम का सरल ज्ञान)-

प्रयोजन- श्रमणोपासक द्वारा ग्रहण किये हुए व्रत एव मर्यादाओं को प्रति दिन अपने दैनिक जीवन का ध्यान रखकर संकुचित करना ही इसका मुख्य प्रयोजन है। आरम्भ-समारम्भ एवं उपभोग के वस्तुओं की जो मर्यादायें आजीवन के व्रतों में की गयी है, उन सभी का प्रति दिन कार्य में अथवा उपभोग में आना सम्भव नहीं है। अतः उनमें कमी करने का श्रावक का लक्ष्य होना चाहिए। इनमे आत्मा में संतोषवृत्ति आती है एवं पापाश्रव कम हो जाता है। जिससे आत्मा के कर्म बन्धन के अनेक द्वार बंद हो जाते हैं। अगर कल्पना से यह कह दिया जाय कि मेरू पर्वत जितना व्यर्थ का पाप टल जाता है और केवल राई जितना पाप खुला रहता है, तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रतिदिन व्रत पच्चक्खाण की स्मृति होते रहने से एवं आत्मा में त्याग के प्रति रूचि बढ़ते रहने से अशुभ कर्मों की अत्यन्त निर्जरा होती है। अतः श्रावक उपयोगपूर्वक, रूचि एवं शुद्ध समझ पूर्वक इन नियमों को आगे के चौबीस घंटों के लिए अथवा सूर्योंदय तक के लिये प्रतिदिन धारण करे। इस प्रकार त्याग के लक्ष्य में वृद्धि करते रहने से व्रतों की आराधना एवं अन्तिम समय में पंडित मरण प्राप्त होना बहुत सरल हो जाता है और वह साधक आराधक होकर शीघ्र ही "**मोक्ष**" प्राप्त करता है।

विवेक ज्ञान- प्रातः काल (सामायिक में अथवा ऐसे ही) नमस्कार मन्त्र, तीन मनोरथ आदि का चिंतन पूर्वक शुभ ध्यान करके इन नियमों को ग्रहण कर लेना चाहिए। नियमों को धारण करते समय यह विवेक रखना आवश्यक है कि "अमुक-अमुक पांच सचित खाऊंगा", ऐसा नहीं बोल कर यह कहना चाहिये कि पांच सचित उपरांत त्याग अथवा इन पांच सचित के सिवाय खाने का त्याग। इसी तरह सभी नियमों में वाक्य प्रयोग का ध्यान रखना चाहिए। धारण किये हुए व्रतों में भूल से या असावधानी से दोष लग जाय तो उसका "**मिच्छामि दुक्कड़**" देना चाहिए। अगर जान-बूझ कर दोष लगाया हो तो गुरू एवं त्यागी महात्माओं के समक्ष आलोचना करके प्रायश्चित लेना चाहिए। श्रेष्ठ तो यही है कि लिये हुए व्रतों का दृढ़ता पूर्वक एवं दोष रहित पालन हो।

सचित दव्व विग्गई, पण्णी तांबूल वत्थ कुसुमेसु।
वाहण सयण विलेवण, बंभदिसि ण्हाण भत्तेसु।।

(1) सचित- सचित वस्तुएं जो भी खाने-पीने में आवे उसकी जाति की मर्यादा करना। जैसे हरी-तरकारी, फल, फूल, सौंप, इलायची, मेवे, नमक, जीरा, राई, मेथी, अजवायन, कच्चा पानी इत्यादि। सचित वस्तु अग्नि से अथवा अन्य किसी से शस्त्र परिणत हो जाने के बाद अचित हो जाती है। अगर पूर्ण रूप से शस्त्र परिणत न हुई तो उसे भी सचित्त में ही गिनना। मिश्रण की हुई चीज जैसे-पान आदि में जिनकी सचित वस्तुएं हो वे सब अलग-अलग गिनती करना।

ध्यान में लेने योग्य विशेष बातें- 1. बीज निकाले बिना सभी फलों के पणे सचित में गिनना। बीज भी कच्चे और पक्के दो तरह के होते हैं उनका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

2. धूंगारी हुई वनस्पतियां तथा सेके हुए भुट्टे (अधूरे पकने से) सचित गिनना।

3. पके फलों का रस निकाल कर व छान कर रखा हो तो कुछ समय बाद अचित गिनना।

4. साफ किये हुए चावल को छोड़ कर प्रायः सभी अनाज सचित। वे पीसने या अग्नि पर सीजने से अचित्त होवे, परन्तु भीजने से नहीं।

5. काला नमक को छोड़कर सभी नमक सचित्त। उबाल कर बनाये हो या गर्म किए हों तो अचित। पीसने पर तो सचित ही रहता है।

6. धाणा (धनिया) के दो टुकड़े हो जाय तो भी सचित। पीसे हो तो अचित।

7. किसी गीली चीज में नमक जीरा आदि ऊपर से डाले हों तो आधे घन्टे तक सचित गिनना और सूखी चीज पर डाले हो तो सचित ही रहते हैं।

नोट– अन्य भी कोई धारणा का स्पष्टीकरण निश्चित किया जा सकता है।

(2) द्रव्य– जितनी चीजें दिन भर में खाने-पीने में आवे उसकी जाति की मर्यादा करना। अर्थात् तैयार चीज की एक जाति गिन लेना फिर उसके किसी तरह खाने की प्रवृत्ति हो। अथवा दूसरा तरीका यह भी है कि जितने तरह से स्वाद पलट कर संयोग मिलाकर खाया जाय उसको ध्यान में रखकर गिनना। चीज गिनने का तरीका सरल है। दवा, पानी को आगार में रख सकते हैं। अन्य भी कोई आगार या धारणा कायम की जा सकती है।

(3) विगय– महा विगय (मक्खन, शहद) का त्याग करना एवं पांच विगयों (दूध, दही, घी, तेल, मीठा-शकर-गुड) में से कम से कम एक का त्याग करना। एक का भी त्याग न हो सके तो सब की मर्यादा कर लेना। चाय, रसगुल्ला, मावे की चक्की में दो विगय गिनना। गुलाब जामुन में तीन विगय गिनना। दही में से मक्खन नहीं निकाला हो तब तक दही को विगय गिनना। जैसे-राइता, मट्ठा आदि। तेल की कोई भी चीज बनी हो तो उसमें तेल का विगय गिनना, जैसे-साग, अचार, तली चीजें। शक्कर, गुड और इससे बनी चीजें एवं गन्ने का रस ये मीठा के विगय में गिनना। परन्तु जो चीजें शक्कर, गुड के बिना स्वाभाविक मीठी हों तो विगय में नहीं गिनना, जैसे-फल, मेवे, खजूर आदि। दही से बने साग कढ़ी आदि में दही की विगय नहीं गिनी जाती है।

(4) पन्नी– पांव में पहनने के जूते, चप्पल आदि की जाति चमड़े, रबड़ आदि की मर्यादा करना तथा जोड़ी नग की मर्यादा करना। स्पर्श आदि का या भूल आदि का आगार। गुम हो जाने से दूसरी जोड़ी पहननी पड़े तो आगार रखा जा सकता है। घर की सभी के उपरांत भी त्याग किया जा सकता है। मोजे वस्त्र में गिने जाते हैं।

(5) ताम्बूल– मुखवास की चीजें जैसे-सुपारी, इलायची, सौंफ, पान, चूर्ण इत्यादि की जाति की मर्यादा करना। मिश्र वस्तु जैसे-पान आदि में एक जाति भी गिन सकते हैं और अलग-अलग भी, इच्छानुसार गिने।

(6) वस्त्र– पहनने के वस्त्र और काम में लेने के वस्त्रों की गिनती करना। जसै-कमीज, पेंट, रूमाल, टुवाल, मुहपत्ति, दुपट्टा, टोपी, पगडी मोजा आदि।

(7) कुसुम- शौक से सूंघने के पदार्थों की मर्यादा करना जाति में। जैसे-तेल इत्र आदि। किसी चीज की परीक्षा हेतु सूंघा जाये जैसे-घी, फल आदि उसका आगार। भूल या दवा का आगार।

(8) वाहन- सभी प्रकार की सवारी की मर्यादा करना। जाति तथा नग की मर्यादा करना। यथा-साईकल, तांगा, स्कूटर रिक्शा, मोटर, रेल आदि। विशेष 'परिस्थिति में पांच नवकार मंत्र के आगार से जाति और नग की मर्यादा करना। हवाई जहाज का त्याग (मर्यादा) करना।

(9) शयन- बिछाने तथा ओढ़ने के गादी, तकीये, चद्दर, रजाई, पलंग, कुर्सी आदि फर्नीचर की मर्यादा नग में करना। इसमें स्पर्श में या चलने में पांव के नीचे आ जाय उसका आगार तथा जिनकी गिनती सम्भव नहीं हो सके ऐसे प्रसंगों का भी आगार। एक जगह बैठने का एक शयन गिनने का कायदा भी किया जा सकता है। जैस-गलीचा, गादी, चद्दर, दरी आदि एक साथ में हो तो उस पर बैठने का एक गिनना। जैसी भी सुविधा एवं सरलता हो, उसके अनुसार सदा के लिए अपना कायदा बनाकर मर्यादा धारण करना। रोजाना काम आने वालों का आगार रख कर नये की मर्यादा कर सकते हैं।

(10) विलेपन- जितनी भी लेप व श्रृंगार की चीजें शरीर पर लगाई जावे उनकी जाति की मर्यादा करना यथा-तेल, पीठी, साबुन, चन्दन आदि का लेप, इत्र, वेसलीन, पाउडर, क्रीम, कुंकुम, हींगलू मेंहदी आदि। भोजन के बाद चिकने हाथ या अन्य समय में किसी लेप्य चीज से हाथ भर जाए, उसे शरीर पर फेरने की आदत हो तो उसका भी आगार रखा जा सकता है। भूल एवं दवा का आगार रखा जा सकता है। भूल एवं दवा का आगार।

(11) ब्रह्मचर्य- सम्पूर्ण दिन-रात के लिए कुशील का त्याग या मर्यादा करना। सात प्रहर या छः प्रहर या दिन भर का त्याग करना अथवा घड़ी के समय से भी मर्यादा कर सकते हैं।

(12) दिशि- अपने स्थान से चारों दिशा में स्वाभाविक कितने किलो मीटर (या मील) से आगे आवागमन नहीं करना उसकी मर्यादा करना। ऊंची दिशा में पहाड़ पर अथवा तीन-चार मंजिल के मकान पर जाना हो तो उसकी मर्यादा करना। नीची दिशा-भोंयरे आदि में जाना हो तो उसकी मर्यादा मीटर अथवा फुट में अलग कर लेना चाहिए। विशेष परिस्थिति में पांच नवकार मंत्र के आगार से मर्यादा करना मील या प्रांत में। स्वाभाविक बस्ती की जमीन ऊंची नीची हो उसका आगार। तार, चिट्ठी, टेलीफोन स्वयं करनेकी मर्यादा करना। कि.मी. में या पूरा भारत वर्ष में या अमुक-अमुक देश अथवा प्रांत में। संख्या में भी मर्यादा कर सकते हैं।

(13) स्नान- पूरे शरीर पर पानी डालकर स्नान करना ''बड़ी स्नान'' है। पूरे शरीर को गीले कपडे से पूंछना ''मध्यम स्नान'' है और हाथ, पांव , मुंह धोना ''छोटी स्नान'' है। इसकी मर्यादा करना। तथा स्नान के कुल पानी की मर्यादा करना। कि.ग्रा. अथवा बाल्टी में तालाब, नल, वर्षा या बिना माप के पनी का त्याग। रास्ते चलते नदीं, वर्षा आ जाय तो चलने का आगार अर्थात् जान-बूझ कर नहाने का त्याग। लोकाचार का आगार।

(14) भक्त- दिन में कुल कितनी बार खाना, उसकी मर्यादा करना। अर्थात् भोजन, दूध, चाय, नाश्ता, सुपारी, फल-फ्रूट आदि के लिए जितनी बार मुंह चालू करे उसकी गिनती करना। कोई व्यसन हो तो छोड़ देना चाहिए या गिन सके तो गिनना अथवा आगार कर सकते हैं। अन्य कोई आगार या धारणा कायम की जा सकती हैं।

उपरोक्त चौदह नियमों के अतिरिक्त परम्परा से- निम्न नियम और सम्मिलित किये गये हैं मूल पाठ में द्रव्यादि शब्द होने से और संख्या का निर्देश नहीं होने से एव इन निम्न बोलों की मर्यादा करना भी दिनचर्या में आवश्यक होने से ये बोल उपयुक्त ही हैं-

(15) पृथ्वीकाय- मिट्टी मुरड, खडी, गेरू, हिंगलू, हड़ताल आदि अपने हाथ से आरम्भ करने की मर्यादा जाति वजन में करना। अथवा सम्पूर्ण त्याग करना। खाने में ऊपर से नमक लेने का त्याग या मर्यादा करना। अपने हाथ से नमक का आरम्भ करने की मर्यादा वजन में करना।

(16) अप्काय- (1) पानी पीना, स्नान करना, कपड़े धोना, घर-कार्य आदि में अपने हाथ से वापरना, आरम्भ करना, उसकी कुल मर्यादा करना। स्पर्श का, इधर-उधर रखने का, डालने का, दूसरों को देने व पिलाने का आगार। (2) परिंडे-कितनी जगह का पानी पीना, उसकी भी मर्यदा गिनती में करना।

(17) तेऊकाय- 1. अपने हाथ से अग्नि जलाना कितनी बार, उसकी मर्यादा करना। 2. बिजली के बटन चालू-बंद करने की गिनती नग में करना। 3. चूल्हे-चौके-कितनी जगह के उपरांत की बनी चीज का त्याग अर्थात् चूल्हे की गिनती करना। घर की बनी चीज का एक चूल्हा-चौका गिन सकते हैं। चाहे कितने ही चूल्हे-सिगड़ी, स्टोव आदि पर बनी हो। बाहर की मोल खरीदी चीज का ठीक से मालूम नहीं पड़ने से प्रत्येक चीज का एक चूल्हा गिन सकते हैं। अर्थात् जितनी चीज मोल की खावें उसका उतना चूल्हा गिन सकते हैं। दूसरों के घर जहां भोजन आदि करे तो उसके घर की चीजों का एक चूल्हा गिनना और मोल की चीजें ध्यान में आ जाय तो उनका अलग-अलग प्रत्येक चीज के हिसाब से चूल्हा गिनना।

(18) वायुकाय- अपने हाथ से हवा करने के साधनों की गिनती नग में करना। बिजली के बटन, पंखे, पुट्ठे, कापी, कपड़ा आदि किसी से भी हवा करने का प्रसंग आ जाय उसे गिनना। खुद करावे उसे भी गिनना, सीधे आ जाय तो उसका आगार। झूला, पालना आदि खुद करे उसे भी गिनना। एक बटन आदि को अनेक बार करना पड़े तो नग में एक ही गिना जा सकता है। कूलर, एअर कंडीसन का त्याग या मर्यादा करना।

(19) वनस्पतिकाय- हरी लीलोती साग-भाजी फ्रूट (फल फूल) आदि का त्याग या मर्यादा करना- खाने की एवं आरंभ करने की। स्पर्श आदि का आगार करना। सुविधा हो तो हरी के नाम एवं वजन का स्पष्टीकरण भी कर सकते हैं।

(20) रात्रि-भोजन- चौविहार या तिविहार का त्याग करना अथवा रात्रि भोजन की मर्यादा करना-रात्रि में खाना कितनी बार, पीना कितनी बार, व कितने बजे के बाद खाने का त्याग, व पीने का त्याग। सुबह सूर्योदय तक या नवकारसी या पोरषी तक का त्याग।

(21) असि- अपने हाथ से जितने शस्त्र औजार आदि काम में लेवे उनकी मर्यादा नग में करना यानि- सूई, कैंची, पत्ती, चाकू, छूरी आदि। हजामत के साधनों को पूरा एक भी गिन सकते हैं और नाई करे तो उसकी गिनत नहीं रख पाने के कारण आगार रख सकते ।बड़े शस्त्र तलवार, बन्दूक, भाला, बरछी, पावड़ा, कुदाला आदि का त्याग करना अथवा मर्यादा करना।

(22) मसी- पेन, पैसिल, होल्डर, की मर्यादा करना।

(23) कृषि- वाणिज्य-खेती हो तो उसके सम्बन्ध में इतने बीघा उपरांत का त्याग अथवा संपूर्ण त्याग। अन्य व्यपारों की मर्यादा जाति में करना। नौकरी हो तो उसके अतिरिक्त सभी व्यापार का त्याग करना। घर खर्च की मर्यादा करना।

(24) उपकरण- घड़ी, चश्मा, काच, कंघा, थाली, कटोरी, गिलास, लोटा, लेदर-बेग, बोक्स, अलमारी , बाजोट, डेस्क, रेडियो आदि मर्यादा करना अपने उपयोग के लिये। रोजाना काम आवे उसका आगार करके नये की मर्यादा कर सकते हैं।

(25) आभूषण- शरीर पर पहनने के सोने-चांदी के गहने-आभूषण की मर्यादा जाति या नग में करना। अथवा नये पहनने की मर्यादा या त्याग करना।

पच्चक्खाण लेने का पाठ-इस प्रकार जो मैंने मर्यादा व आगार रखे है उसके उपरांत अपनी समझ व धारणा अनूसार दवाई व कारण का आगार रखते हुए उपयोग सहित त्याग एगविंह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंतं पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

पच्चक्खाण पारने का पाठ-जो में देसावकासियं पच्चक्खाणं कयं (जो मैंने अहोरात्र के लिए द्रव्यादि की मर्यादा करके शेष का इस पच्चक्खाणं किया) तं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं न सोहियं , न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अथवा-कल धारण किए नियमों में कोई अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामिदुक्कडं।

नोट- इन नियमों के अतिरिक्त सामायिक, मौन, क्रोध त्याग, झूठ त्याग, कलह त्याग, नवकारसी, पोरिषी , स्वाध्याय, प्रतिज्ञा, ध्यान आदि दैनिक नियम भी रोजना यथा शक्ति कर लेने चाहिये।

चौदह (23.25)नियम भरने का तरीका-तालिका-

विषय ज्ञान	बोलने का तरीका	लिखने का तरीका
1. सचित पदार्थ	5.उपरांत त्याग	5
2. द्रव्य (खानेके)	25 उपरांत त्याग	25
3. विगय पांच	4 उपरांत त्याग	4
1. महाविगय दो	त्याग	×
2. दूध-चाय	2 बार उपरांत त्याग	2 बार
3. दही	1 बार उपरांत त्याग	1 बार
4. घी (ऊपर से)	त्याग	×
5. तले पदार्थ	5 जाति उपरांत त्याग	5

6. शक्कर के पदार्थ	5 जाति उपरांत त्याग	5
7. गुड़ के पदार्थ त्याग	×	
4. पन्नी (जूते आदि)	3 जोड़ी उपरांत त्याग	3
5. तम्बोल (मुखवास)	4 जाति उपरांत त्याग	4
6. वस्त्र (पहनने के एवं रूमाल आदि	25 नग उपरांत त्याग	25
7. कुसुम (सूंघने के त्याग	×	
8. वाहन-जाति	3 उपरांत त्याग	3 नग
	7 उपरांत त्याग	7 विशेष परिस्थिति में
	जाति 5 उपरांत त्याग	5
	नग 11 उपरांत त्याग	11 (पांच नवकार से)
9. शयन (बिछोने)	25 उपरांत त्याग	25
10. विलेपन (तेलादि)	7 उपरांत त्याग	7
11.अब्रह्मचर्य-कुशील	त्याग अथवा रात्रि का	त्याग या मर्यादा
	दूसरा प्रहर उपरांत त्याग	1
12. दिशा-चारों दिशा	5 मील उपरांत त्याग	5 विशेष उपस्थिति (पांच नवकार से)
	500 मील उपरांत त्याग	500 ऊपर
	4 मंजिल उपरांत त्याग	4 नीचे
	20 फीट उपरांत त्याग	20
13. स्नान-छोटी	3 उपरांत त्याग	3 बड़ी 1 उपरांत त्याग
	1 मध्यम	×
		×
14. भोजन-छोटा	10 उपरांत त्याग	10 बड़ा
	2 उपरांत त्याग	×
15. सचित्त मिट्टी आदि का आरंभ त्याग	× ऊपर से नमक त्याग	×
16. पानी का उपयोग	5 बाल्टी उपरांत त्याग	5 परींडा
	10 उपरांत त्याग	10

17. अग्नि जलाना	5 उपरांत त्याग	5 बिजली के बटन नग
	10 उपरांत त्याग	10 चैका
	10 उपरांत त्याग	10
18. पंखा-पुट्ठा आदि	5 उपरांत त्याग	5
19. हरी-सब्जी, फल	10 उपरांत त्याग	10
दूसरी के लिये	5 उपरांत त्याग	5
10. रात्रि-भोजन	त्याग अथवा	×
1. टाइम से	10 बजे बाद त्याग	10 बजे
2. संख्या से	2. बार उपरांत त्याग	2 बार
21. असि-सूई आदि एवं त्याग	5 उपरांत त्याग	5 तलवारादि शस्त्र
22. मसि-पेन आदि साधन	10 उपरांत त्याग	10
23. कृषि- 1. खेती बीघा	त्याग	×
2. व्यापार जाति	2 उपरांत त्याग	2
3. परिग्रह गृह उपयोग	5 हजार उपरांत त्याग	5 हजार
24. उपकरण (शेष सभी उपयोगी वस्तुएँ)	35 उपरांत त्याग	35
25. नये आभूषण जाति या नग	5 उपरांत त्याग	5

प्रश्न- ये नियम तो 25 है फिर भी इन्हें चौदह नियम क्यों कहा गया है ?

उत्तर- श्रावक के दसवें व्रत के पाठ में ''द्रव्य आदि'' कहा है। 14 आदि संख्या नहीं कही हैं। परम्परा में 14 संख्या रूढ हो गई है इसलिये ये चौदह नियम के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं अतः यहां भी प्रसिद्ध नाम ही दिया गया है किंतु दिनचर्या के आवश्यक नियमों को जोड़ कर 25 बोल कर दिये हैं। जिसके अंतर्बोलों के कुल 50 कॉलम बन गये हैं।

श्रमणोपासक धर्म आगम में-

अगारी समाइ अंगाइं, सड्ढ़िं काएणं फासए। पोसहं दुहओ पक्खं, एकराइं न हावए।।

अर्थ- श्रद्धावान् श्रावक (गृहस्थ) सामायिक पौषध आदि गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करे और दोनों पक्षों में पौषध व्रत अवश्य करे। इसमें एक रात्रि से न्यून नहीं करे अर्थात् रात्रि में पौषध अवश्य करे।

एवं **सिक्खासमावण्णे, गिहिवासे वि सुव्वए। मुच्चई छव्विपव्वाओं, गच्छे जक्खसलोगयं।।** -उत्तरा.5

अर्थ- इस प्रकार के आचरणों से युक्त व्यक्ति गृहवास में रहता हुआ भी सुव्रती होता है। वह औदारिक शरीर का त्याग कर के देवगति को प्राप्त करता है।

ताणि ठाणाणि गच्छंति, सिक्खित्ता संजमं तवं। भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे संति परिनिव्वुडा।। -उत्तरा. 5

अर्थ- भिक्षु हो अथवा गृहस्थ जो संयम और तप का आचरण करके क्रोध आदि से रहित होकर परम शांत बन जाते हैं, वे दिव्य गति को प्राप्त करते हैं।

बहिया उड्ढमादाय, नावकंखे कयाई वि। पुव्वकम्म खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे।। -उत्तरा. 6

अर्थ- संसार से ऊपर उठकर अर्थात् मोक्ष की अभिलाषा रख कर, सांसारिक विषय भोगों की आकांक्षा कदापि न करे। और पूर्व-संचित कर्मों का क्षय करने के लिए इस मानव-शरीर को निर्दोष आजीविका से धारण कर के रखें।

दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा। मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सोग्गई।। -दशवै. 5

अर्थ- निष्काम (ऐहिक चाहनाओं से रहित) बुद्धि से सुपात्रदान देने वाला श्रावक और निष्काम बुद्धि से जीने वाला श्रमण दोनों दुर्लभ होते हैं। निष्काम बुद्धि से देने वाले ओर निष्काम बुद्धि से जीने वाले दोनों ही सद्गति में जाते हैं।

संति एगेहिं भक्खूहिं, गारत्था संजममुत्तरा। गारत्थेहिं य सव्वेहि, साहवो संजुमुत्तरा।।-उत्तरा. 5

अर्थ- कई एक (शिथिलाचारी) भिक्षुओं से कई गृहस्थ संयम में अधिक श्रेष्ठ होते हैं। और सब गृहस्थों से, सुसाधु संयम में श्रेष्ठ हैं।

नौ तत्त्व-

पदार्थ (तत्त्व) नौ है। इन तत्त्वों का ज्ञान एवं श्रद्धान सम्यग्दर्शन का आवश्यक अंग है। श्रावक को इन नौ तत्त्वों का ज्ञान होना ही चाहिये। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

1. जीव- ज्ञान दर्शन एवं उपयोग गुण वाला, चेतना लक्षण वाला और संसार अवस्था में जन्म मरण एवं गमनागमन रूप गति आदि करने वाला जीव द्रव्य है। जीव तत्त्व अरूपी है, शाश्वत है। असंख्यात प्रदेशी है और संकोच विस्तार स्वभाव वाला है अर्थात् जितना जैसा शरीर मिले उसी में आत्मा समाविष्ट हो जाती है। संसारी और सिद्ध ये दो इसकी मुख्य अवस्थाएँ है।

2. अजीव- जीव के अतिरिक्त लोक के समस्त पदार्थ अजीव तत्त्व में समाविष्ट है। ये रूपी अरूपी दोनों तरह के होते हैं जीवों के छोड़े हुए शरीर आदि रूपी भी होते हैं तथा पुद्गल के अन्य विविध रूपी भी होते हैं। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य भी अरूपी अजीव रूप है। इनमें चेतना लक्षण नहीं होता है। ये स्वेच्छा से गमनागम नहीं करते हैं। किन्तु पर प्रयोग से एवं स्वभाव से पुद्गलों की गति होती है। स्थूल दृष्टि से जीव अजीव दो द्रव्यों में ही समस्त पदार्थों का समावेश हो जाता है।

पुण्य- छोटे बड़े किसी भी जीव जन्तु प्राणी को सुख पहुंचाना, भौतिक शांति सुविधा प्रदान करना पुण्य हैं अर्थात् मन, वचन, काया, से सुख पहुंचाना, सत्कार, सम्मान, नमस्कार से मनोज्ञ व्यवहार करना, आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, मकान, बिछौना आदि देकर सुख पहुंचाना पुण्य है। इसके 8 भेद हैं।

पाप- किसी भी प्रवृत्ति से प्राणियों को दुःख पहुँचाना पाप है। इसके अठारह प्रकार है।

आश्रव- आत्मा में कर्मों के आवक होने की प्रवृत्तियों को आश्रव तत्त्व कहा जाता है। इसके 20 भेद कहे हैं।

संवर- आश्रव को रोकने की प्रवृत्ति यें संवर है इसके भी 20 भेद हैं।

निर्जरा- कर्मों के विशेष क्षय करने के कार्यों को निर्जरा कहा गया है निर्जरा के 12 प्रकार है जो 12 प्रकार के तप भी कहे जाते हैं। जिसमें 6 आभंयतर तप है 6 बाह्य तप के भेद हैं।

बंध- आत्मा के साथ कर्मों का चिपकना बंध है प्रकृति, स्थिति आदि चार प्रकार से परिपूर्ण बंध होता है।

मोक्ष- संपूर्ण कर्म क्षय होकर मुक्त अवस्था प्राप्त हो जाना मोक्ष है। इसके भी सम्यग् ज्ञान आदि चार उपाय हैं।

श्रावकों को अवश्य जानने योग्य-25 क्रिया-

कायिकी आदि पांच क्रिया-

1. कायिकी - शरीर के आभ्यन्तर सूक्ष्म संचार से,
2. अधिकरणिकी - शरीर के बाह्य सूक्ष्म संचार से,
3. प्रादेषिकी - सूक्ष्म कषायों के अस्तित्व से,
4. परितापनिकी- शरीर से कष्ट पहुंचाने पर,
5. प्राणातिपातिकी - जीव हिंसा हो जाने पर, -भगवती सूत्र, ठाणांग सूत्र

आरंभिकी आदि पांच क्रिया-

1. आरंभिकी - हिंसा की प्रवृति और संकल्प से,
2. परिग्रहिकी - किसी में भी मोह ममत्व रखने से,
3. माया प्रत्यया - क्रोध मान माया लोभ करनेसे या इनके उदय से,
4. अप्रत्याख्यानिकी - पदार्थों का या पापों का त्याग न करने से
5. मिथ्यात्व - खोटी मान्यता एवं खोटी श्रद्धा, प्ररूपणा से, -भगवती सूत्र, ठाणांग सूत्र

दृष्टिजा आदि आठ क्रिया-

1. दृष्टिजा - किसी भी पदार्थ को देखने से,
2. स्पर्शजा - किसी भी चीज को छूने से,
3. निमित्तिकी - किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में सोचने बोलने से, अथवा सहयोग करने से
4. सामन्तोपनिपातिकी - प्रशंसा की चाहना से या प्रशंसा करने से,
5. स्वहस्तिकी - अपने हाथ से कार्य करने पर,
6. नैसृष्टिकी - कोई भी वस्तु फेंकने से,
7. आज्ञापनिकी - कोई भी कार्य की आज्ञा देने से,
8. विदारनी - किसी वस्तु को फाड़ने तोड़ने से, -ठाणांग सूत्र

अनाभोग आदि सात क्रिया–

1. अनाभोग - अनजानपने से पाप प्रवृति होने पर,

2. अनवकांक्षा - उपेक्षा से, लापरवाह वृत्ति से,

3. प्रेम प्रत्यया - किसी पर राग भाव करने से,

4. द्वेष प्रत्यया - किसी पर द्वेष भाव करने से,

5. प्रयोग प्रत्यया - मन वचन काया की प्रवृत्तियों से,

6. सामुदानिकी - सामुहिक प्रवृत्तियों एवं चिंतन से,

7. इर्यापथिकी - वीतरागी को योग प्रवृत्ति से, -ठाणांग सूत्र

इन पच्चीस क्रियाओं में सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म एवं विभिन्न प्रकार की स्थूल सभी क्रियाओं का समावेश किया गया है। वीतरागी मनुष्यों को अपनी समस्त प्रवृत्तियों में केवल पच्चीसवीं क्रिया ही लगती है। शेष संसारी जीवों को उक्त 24 क्रियाओं में से कई क्रियाएं लगती है, इन क्रियाओं से हीनाधिक विभिन्न मात्रा में जीव कर्म बन्ध करता है यह जान कर जितना संभव हो उन क्रियाओं से बचने का मोक्षार्थी को पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

श्रावक के 21 गुण–

1. श्रावकजी 8 तत्व, 25 क्रिया का जाणकार होवे।

2. धर्म करणी में किसी के साथ की आकांशा नहीं।

3. धर्म क्रिया में किसी का हस्तक्षेप नहीं।

4. जिन धर्म में शंका, कंखा, (कांक्षा) वितिगिच्छा लावे नहीं।

5. लद्धियट्ठा, गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विनिच्छियट्ठा होवे। ये सूत्रादि का ज्ञान धारण कर निर्णय करे, प्रमाद करे नहीं।

6. श्रावकजी हाड ने हाड री मींजी (रोम-रोम) धर्म में रंगायमान रहवे।

7. ''मेरा आयुष्य अस्थिर है, जिन धर्म सार है।'' ऐसी चिंतवणा करे।

8. श्रावकजी स्फटिक रत्न जैसा निर्मल रहे, कूड़ कपट रखे नहीं।

9. घर का द्वार दान के लिए खुला रखे।

10. एक मास में 6 पौषध करे। आठम 2, चौदस 2, पक्खी का 2, इस भांति 6 पौषध करे।

11. श्रावकजी राजा का रणवास में, राजा का भण्डार में, साहूकार की दुकान में जावे तो प्रतीतकारी होवे।

12. लिया व्रत पच्चक्खाण निर्मल पाले, दोष लगावे नहीं।

13. 14 प्रकार को सूझतो दान साधु, साध्वी को बहरावे।

14. श्रावकजी धर्म का उपदेश देवे, प्रमाद करे नहीं।

15. तीन मनोरथ सदा चिंतवे, प्रमाद करे नहीं।

16. श्रावकजी 4 तीर्थ का गुणग्राम करे, अन्यतीर्थं का गुणग्राम नहीं करे।

17. श्रावकजी नया सूत्र सिद्धांत सुने प्रमाद नहीं करे।

18. किसी को धर्म के प्रति श्रद्धा हुई हो तो, उसे सहयोग देवे, ज्ञान सिखावे।

19. दोनों वक्त कालोकाल प्रतिक्रमण करे, प्रमाद नहीं करे।

20. सर्व जीवों से मैत्री भाव रखे, वैर विरोध राखे नहीं।

21. यथा शक्ति तपस्या करे एवं ज्ञान सीखने में मेहनत करे।

श्रावक के इक्कीस लक्षण-

1. अल्प इच्छा - इच्छा-तृष्णा को कम करने वाला हो।
2. अल्प आरम्भी - हिंसाकारी प्रवृत्तियों को कम करने वाला हो।
3. अल्प परिग्रही - परिग्रह को कम करने वाला हो।
4. सुशील - आचार-विचार की शुद्धता रखने वाला शीलवान हो।
5. सुव्रती - ग्रहण किये हुए व्रतों का शुद्धता पूर्वक पालन करने वाला हो।
6. धर्मनिष्ठ - धर्म कार्यों में निष्ठा रखने वाला हो।
7. धर्मवृत्ति - मन वचन काया से धर्म मार्ग में प्रवृत्ति करने वाला हो।
8. कल्प उग्रविहारी - उपसर्ग आने पर भी मर्यादा के विरूद्ध कार्य न करने वाला हो।
9. महासंवेग - निवृत्ति मार्ग में लीन रहने वाला हो।
10. उदासीन - संससार की प्रवृत्तियों के प्रति उदासीनता रखने वाला हो।
11. वैराग्यवान - आरंभ परिग्रह को छोड़ने की इच्छा रखने वाला हो।
12. एकांत आर्य - निष्कपटी, सरल स्वभावी हो।
13. सम्यग्मार्गी - सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के मार्ग पर चलने वाला हो।
14. सुसाधु - आत्म-साधना करने वाला हो।
15. सुपात्र - सद्गुण एवं सम्यग्ज्ञान को सुरक्षित रखने वाला हो।
16. उत्तम - सद्गुणों से युक्त एवं सद्गुणानुरागी हो।
17. क्रियावादी - शुद्ध क्रिया करने वाला हो।
18. आस्तिक - देव-गुरू-धर्म के प्रति श्रद्धानिष्ठ हो।

19. आराधक - जिन आज्ञा के अनुसार धर्म की आराधना करने वाला हो।

10. प्रभावक - जिन शासन की प्रभावना करने वाला हो।

11. अरिहंत शिष्य - अरिहन्त भगवान के प्रति श्रद्धाभक्ति करने वाला एवं उनके बताए मार्ग पर चलने वाला हो।

श्रावक के इक्कीस गुण-

1. अक्षुद्र - गंभीर स्वभावी हो।
2. रूपवान - सुन्दर, तेजवी और सशक्त शरीर वाला हो।
3. प्रकृति सौम्य - शांत, दांत, क्षमावान और शीतल स्वभावी हो।
4. लोकप्रिय - इहलोक परलोक के विरूद्ध कार्य न करने वाला हो।
5. अक्रूर - क्रूरता रहित, सरल एवं गुणग्राही हो।
6. भीरू - लोकापवाद, पाप कर्म एवं अनीति से डरने वाला हो।
7. अशठ - चतुर एवं विवेकी हो।
8. सुदक्षिण - विचक्षण एवं अवसर का ज्ञाता हो।
9. लज्जालु - कुकर्मों के प्रति लज्जाशील हो।
10. दयालु - परोपकारी एवं सभी जीवों के प्रति दयाशील हो।
11. मध्यस्थ - अनुकूलता, प्रतिकूलता में समभाव रखने वाला हो।
12. सुदृष्टि - पवित्र दृष्टि वाला हो।
13. गुणानुरागी - गुणों का प्रेमी एवं प्रशंसक हो।
14. सुपक्षयुक्त - न्याय और न्यायी का पक्ष लेने वाला हो।
15. सुदीर्घ दृष्टि - दूरगामी दृष्टि वाला हो।
16. विशेषज्ञ - जीवादि तत्वों का एवं हिताहित का ज्ञाता हो।
17. वृद्धानुग - गुणवृद्ध एवं वयोवृद्ध का आज्ञापालक हो।
18. विनीत - गुणीजनों गुरूजनों के प्रति विनम्र हो।
19. कृतज्ञ - किये हुए उपकार को नहीं भूलने वाला हो।
20. परहित कर्त्ता - वचन, मन, काय से दूसरों का हित करने वाला हो।
21. लब्धलक्ष्य - लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधिकाधिक शास्त्रों का ज्ञान करने वालो हो।

नोट- अलग-अलग अपेक्षा से पूज्यनीय श्रमणों ने भिन्न भिन्न प्रकार से 21 गुणों का संकलन किया है। इस में कुल 4 प्रकार से 21 गुणों का संकलन दिया है।

अन्तकृत दशा सूत्र

परिचय-

यह आठवा अंग सूत्र है। इसमें संयम स्वीकार करके मोक्ष जाने वाली नब्बे आत्माओं का वर्णन है। इस सूत्र में आठ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में क्रमशः दस, आठ, तेरह, दस, दस, सोलह, तेरह, दस अध्ययन है। कुल नब्बे अध्ययन है। उपलब्ध यह सूत्र नव सौ (900) श्लोक प्रमाण में है।

बावीसवें अरिष्टनेमि भगवान् के शासन के (51) (इक्कावन) जीवों का वर्णन करने के बाद चैबीसवें भगवान् महावीर स्वामी के शासन के (39) (उनचालीस) जीवों का इस सूत्र में वर्णन है। राजा, राजकुमार, राजराणियों, श्रेष्ठी-पुत्रों एवं मालाकार (माली), बाल, युवक, प्रौढ़ एवं वृद्ध अनेक वय वालों के संयम, तप, श्रुत अध्ययन, ध्यान, आत्म दमन, क्षमा-भाव आदि आदर्श गुणों युक्त वैराग्य पूर्ण जीवन का वृतांत इस सूत्र में अंकित है। नब्बे मुक्तात्माओं के अतिरिक्त सुदर्शन श्रावक, कृष्ण वासुदेव एवं देवकी राणी की जीवन की एक झांकी भी अंकित है जिसमें तीनों को वीतराग वाणी के प्रति दृढ़ श्रद्धावान एवं प्रियधर्मी द्दढ़धर्मी बताया गया है। इस सूत्र के रचियता स्वयं सुधर्मा गणधर है। उपासक दशा सूत्र के समान प्रारम्भ से इस सूत्र में भी दस अध्ययन ही थे ऐसा ठाणांग समवायांग सूत्र एवं अनेक ग्रन्थों में आये वर्णनों से ज्ञात होता है। नंदी सूत्र के रचना के समय इस सूत्र का नब्बे अध्ययनात्मक यह स्वरूप मौजूद था अर्थात् नंदी सूत्र कर्ता देववाचक श्री देवद्धिगणि क्षमा-श्रमण ने अथवा उनके समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती बहुश्रुत पूर्वधर श्रमण भवगंत ने इस सूत्र का यह प्रारूप पूर्व श्रुत आदि से संकलित किया होगा। कथाओं एवं जीवन चारित्रों के माध्यम से इस सूत्र में अनेक शिक्षाप्रद, जीवन-प्रेरक तत्त्वों का मार्मिक रूप रूप से कथन किया गया है। अतः अनेक अपेक्षा से यह सूत्र पाठकों के लिए एवं विशेष कर व्याख्याताओं व श्रोताओं के लिए भी रूचिकर आगम है। इसी- लिए स्थानकवासी परम्परा में प्रति वर्ष पर्यूषण पर्व के आठ दिनों में इस सूत्र का व्याख्यान सभा में वांचन एवं श्रवण किया जाता है। अंगों में यह आठवां अंग है, इसके आठ वर्ग है, पर्यूषण के दिन भी आठ हैं एवं आठ कर्मों को ही क्षय करने का साधक का प्रमुख लक्ष्य है। इस प्रकार संख्या मिलान करके भी इस सूत्र का पर्यूषण में वांचन श्रवण से सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

प्रथम दिन-

प्रारंभिक व्याख्यान- भाग्यशाली जीवों को ही शास्त्र का श्रवण प्राप्त होता है। उत्तरा, अ. 3 में धर्म के चार अंगों की दुर्लभता कही गई है जिसमें जिनवाणी का श्रवण भी जीव को दुर्लभ कहा है। चौथे आरे में भी विरले ही भाग्यशाली लोग तीर्थंकर प्रभु की वाणी का श्रवण कर पाते हैं। अन्य अनेकों लोग तो आलस्य प्रमाद एवं मिथ्यात्व भावना के कारण वंचित ही रह जाते हैं। अतः इस पंचम आरे में महान पुण्यवानी का जोर हो उसे ही शास्त्र श्रवण का संयोग मिलता है। धर्म एवं मोक्ष की आधार शिला भी धर्म श्रवण ही है। भगवती सूत्र में कहा भी है-

सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्णेवए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी।।

अर्थ– शास्त्र श्रवण के अनंतर सामान्य ज्ञान होता है उसके चिंतन से विशेष ज्ञान और फिर प्रत्याख्यान एवं संयम ग्रहण किए जाते हैं, जिससे आश्रव रूकता है।फिर क्रमशः तप एवं निर्जरा से अक्रिया अवस्था होती है। अक्रिय बना जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि मोक्ष प्राप्ति, संयम स्वीकार एवं आत्म ज्ञान विज्ञान ये सभी उपलब्धि धर्म श्रवण के पश्चात ही संभव है। इसलिए भगवती के उक्त सूत्र में सर्व प्रथम धर्म श्रवण का उपदेश है। उपलब्ध बत्तीस आगमों में आठ दिन में पूर्ण हो सकने से एवं रोचक तथा प्रेरक आगम रूप में होने से पूर्वाचार्यों ने इस अंतगड़ सूत्र को व्याख्यान में वांचन करना प्रारम्भ किया है जो सैकड़ों वर्षों से निरंतर चल रहा है। इस सूत्र में ऐसे ही 90 चारित्रात्माओं का वर्णन है जिन्होंने उसी भव में समस्त कर्मों का और संसार का अंत कर दिया। इसी कारण इस सूत्र का ''अंतकृत'' ऐसा नाम भी सार्थक है। इस सूत्र में वर्णित सभी साधु साध्वी ने जीवन के अंतिम क्षणों में केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया, और उन्ही अंतिम क्षणों में सिद्ध गति को भी प्राप्त किया अर्थात् केवली पर्याय में विचरण किसी ने भी नहीं किया था। धर्म ध्यान के इन आठ दिनों में जीवन संस्कारित बने, गृहस्थ जीवन में भी त्याग वैराग्य की वृद्धि होवे, विवेक बढ़े, विचार व प्रवृतियां शुद्ध बने एवं प्रबल प्रेरणाओं से संयम धारण करने का दृढ़ आत्म संकल्प बने, यही हमारा शास्त्र वांचन एवं श्रवण का लक्ष्य होना चाहिए । रूचिपूर्वक शास्त्र श्रवण करने से एवं यथासमय उपस्थित होकर निरंतर और परिपूर्ण शास्त्र श्रवण करने से सही आनंद आता है इसलिए श्रोताजन समय का अवश्य ध्यान रखेंगे।

प्रथम–वर्ग

प्रथम अध्ययन

गौतम–

तीन खण्ड के स्वामी श्री कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नाम की राजधानी थी। जो 96 माइल (12 योजन) लम्बाई में और 72 माइल (9 योजन) चैड़ाई में बसी हुई थी। उस नगरी का निर्माण प्रथम देवलोक के धनपति कुबेर नामक देव की बुद्धि से हुआ था। उसका घटनाक्रम इस प्रकार है।

द्वारिका निर्माण का इतिहास– कृष्ण के द्वारा कंस वध होने के अनंतर उसकी पत्नी जीवयशा ने अपने पिता जरासंध प्रति वासुदेव के पास शिकायत की । क्रुद्ध होकर जरासंघ ने समुद्र विजय आदि यादव गणों को आदेश दिया कि कृष्ण को मेरे सुपुर्द कर दें, अन्यथा यादवों का नाश कर दूंगा। जरासंघ के आतंक से यादवों ने गुप्त रूप से दक्षिण तरफ प्रयाण किया बीच में पीछा करने के लिए जरासंघ का पुत्र कालकुमार सेना लेकर गया किन्तु देव माया से वह छला गया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। यादव सकुशल सौराष्ट पहुंच गये । योग्य स्थान देखकर श्री कृष्ण ने तेला किया उसमें धनपति वेश्रमण देव का आराधन स्मरण किया। देव उपस्थित हुआ एवं कृष्ण जी के निवेदन पर उसने अपने अभियोगिक देवों को आदेश-निर्देश दिया और नगरी का निर्माण करवाया। उसमें अनेक बड़े बड़े भव्य दरवाजे बनाये गये थे । उसके कारण उसका नाम द्वारावती रखा गया। आगे चलकर यही द्वारिका कहलाने लगी। उस नगरी का कोट (प्राकार) स्वर्णमय था । उसके बूर्ज गोखड़े आदि अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित थे ।

कृष्ण वासुदेव की समृद्धि– कालांतर से कृष्ण का प्रतिवासुदेव के साथ युद्व हुआ। जरासंघ युद्व में स्वयं के चक्र से कृष्ण के हाथों से मारा गया ।उसके बाद श्री कृष्ण जी तीन खंड के अधिपति वासुदेव राजा बने। उनकी राज्य ऋद्धि ऐश्वर्य

इस प्रकार था-समुद्रविजय प्रमुख दस उनके पूज्यनीय राजा थे। बलदेव प्रमुख पांच महावीर पदधारी थे। प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ कुमार पदवर्त्ती थे। सांब प्रमुख साठ हजार दुर्दान्त पदधारी थे। महासेन प्रमुख 65 हजार सेनापति पदवर्त्ती थे। वीरसेन प्रमुख 21 हजार ''वीर'' पद प्रतिष्ठित थे। उग्रसेन प्रमुख 19 हजार राजा उनकी आज्ञा में थे। रूकमणी प्रमुख 16 हजार राजराणियां उनके राज्य में थी। अनंगसेना प्रमुख हजारों गणिकाएं उनके राज्य में थी। अन्य अनेक युवराज, सेठ, सार्थवाह आदि प्रजागण का एवं तीन खंड रूप अर्द्ध भरत क्षेत्र का आधिपत्य स्वामित्व करते हुए एवं विपुल सुख भोगते हुए श्री कृष्ण वासुदेव द्वारिका में रहते थे।

गौतमकुमार का जन्म- कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नगरी में अंधक वष्णि राजा रहता था। उसके धारिणी नाम की राणी ने एक बार सिंह को अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए स्वप्न में देखा । राजा से निवेदन किया। स्वप्न पाठकों ने अत्यंत तेजस्वी और यशस्वी पुत्र रत्न की उत्पत्ति का शुभ संदेश सुनाया नौ मास व्यतीत होने पर पुत्र का जन्म हुआ । उसका नाम गौतम रखा गया, गौतम कुमार का बाल्यकाल सुखपूर्वक व्यतीत हुआ । कलाचार्य के पास अध्ययन किया ।यौवन वय में आठ योग्य कन्याओं के साथ उसका एक ही दिन पाणिग्रहण हुआ । रम्य प्रसाद में वह मानुषिक भोगों का उपयोग करते हुए रहने लगा।

गौतम कुमार की दीक्षा- एक बार विचरण करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान द्वररिका नगरी में पधारे। चार जाति के देव, कृष्ण वासुदेव एवं नागरिक जन भगवान के समवसरण में उपस्थित हुए। गौतमकुमार भी भगवान के समवसरण में आए। भगवान ने सम्पूर्ण परिषद् को धर्मोपदेश सुनाया। परिषद् चली गई। गौतम कुमार ने भगवान से निवेदन किया कि मैं माता-पिता से अनुमति प्राप्त कर आपके पास दीक्षित होना चाहता हूं। भगवान की स्वीकृति प्राप्त कर गौतम कुमार घर पहुचा । माता-पिता के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की और अनुमति मांगी। दीक्षा की बात सुनकर माता-पिता को मोह भाव के कारण अत्यन्त दुःख हुआ। अनेकविध समझाने का प्रयत्न किया किन्तु गौतम कुमार की विचारधारा में कोई अंतर नहीं आया उसने माता-पिता की अंतिम इच्छा पूर्ण करने के लिए एक दिन का राज्य ग्रहण कया। फिर संपूर्ण वैभव त्याग कर भगवान की सेवा में संयम ग्रहण करने के लिए उपस्थित हो गया। परिषद के समक्ष गौतम ने भगवान से निवेदन किया कि हे भगवन्! यह सारा ही संसार जरा मरण रूप अग्नि से जल रहा है, इसमें से मैं अपनी आत्मा का निस्तार करना चाहता हूँ अतः आप मुझे संयम प्रदान करें।

गौतम मुनि का संयम तप एवं अध्ययन- भगवान अरिष्टनेमि ने उसके माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर, गौतम कुमार के भावों को यथाविध जानकर उसे संपूर्ण सावद्य योग का त्याग रूप सामायिक चरित्र प्रदान किया अर्थात् विधिपूर्वक दीक्षा का पाठ पढ़ाया और योग्य शिक्षा-दीक्षा देकर उसे अध्ययन के लिए स्थविर भगंवत (उपाध्याय) के पास रखा। वहां उसने आवश्यक सूत्र एवं ग्यारह अंग सूत्रों का कण्ठस्थ अध्ययन पूर्ण किया। साथ ही अनेक प्रकार के उपवास आदि मासखमण पर्यन्त के तप से आत्मा को भावित किया। ग्यारह अंग का अध्ययन समाप्त होने पर गौतम अणगार ने भगवान से आज्ञा लेकर भिक्षु की बारह पड़िमाओं का आराधन किया। भिक्षु की पड़िमा में आठ महिने तक अकेले विचरण किया जाता है। इसका विस्तृत वर्णन दशाश्रुत स्कंध सूत्र में है। भिक्षु प्रतिमा पूर्ण होने के बाद गौतम अणगार ने गुणरत्न संवत्सर तप करने की आज्ञा लेकर सोलह महिनों में उसकी आराधना की। इस तप के प्रथम मास से निरंतर उपवास, दूसरे

मास में निरंतर बेले एवं क्रमशः करते बढ़ाते हुए सोलह-सोलह की तपस्या की जाती है। दिन में उत्कटुक आसन से बैठकर आतापना ली जाती है। रात्रि में वस्त्र रहित होकर वीरासन से ध्यान लगाया जाता है। यह तप चार सौ अस्सी दिन में पूर्ण किया जाता है जिसमें 407 दिन तपस्या के और 73 दिन पारणे के होते हैं।

गौतम मुनि की मुक्ति– इस प्रकार बारह वर्ष की संयम पर्याय में शत्रुंजय पर्वत पर एक मास के संलेखना संथारे से संपूर्ण कर्मो को क्षय करके मोक्षगामी बने अर्थात जिस प्रयोजन से नग्न भाव, मुंड भाव, केश लोच, नंगे पांव भ्रमण, ब्रह्मचर्य व्रत, भिक्षा वृत्ति, लाभ, अलाभ, आक्रोश, वध आदि परीषह एवं उपसर्ग स्वीकार किए थे एवं स्नान, दंत मंजन, जूते, छत्र आदि का त्याग किया था, उस प्रयोजन को इसी भव में पूर्ण कर लिया।

2 से 10 तक शेष नौ अध्ययन– गौतम के समान ही शेष नव (1) समुद्र (2) सागर (3) गंभीर (4) स्तिमित (5) अचल (6) कांपिल्य (7) अक्षोभ (8) प्रसेनजित (9) विष्णुकुमार का वर्णन है। अर्थात् दसों का सांसारिक परिचय, सुखसमृद्धि एवं साधना जीवन लगभग एक सरीखा है। सभी ने बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय में विविध तप एवं ग्यारह अगों के ज्ञान के साथ बारह भिक्षु पड़िमाओं का आराधन किया एवं गुणरत्न संवत्सर तप भी किया। अन्तिम समय में केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष धाम पहुंचे।

दूसरा वर्ग–

इस वर्ग में आठ अध्ययन है जिसमें– (1) अक्षोभ (2) सागर (3) समुद्र (4) हिमवंत (5) अचल (6) धरण (7) पूरण (8) अभिचन्द्र इन आठ राजकुमारों का वर्णन है जो कि गौतम कुमार के सदृश है। अंतर केवल यह है कि इन आठों की दीक्षा पर्याय सोलह वर्ष की हुई। ये भी अंत में एक महिने के संथारे से शत्रुं-जय पर्वत पर सिद्ध हुए। दोनों वर्गों में आए नामों में चार नाम परस्पर समान है। दस दशार्ह में वसुदेवजी को छोड़कर नवों का नाम इन अठारह् अध्ययनों में मिलता है। इस समय समान नाम देने की प्रथा विशेष से ऐसा होना संभव है।

शिक्षा प्रेरणा–

दोनों वर्गों में कुल (18) राजवंशी पुरूषों का जीवन वर्णन पूर्ण हुआ। भोगमय जीवन को प्राप्त करके पुनः संयम जीवन में अग्रसर हो जाना, इस प्रकार का संयोग भी भाग्यशाली आत्माओं को ही प्राप्त होता है। ऐसे चरित्र नायकों का आगमिक वर्णन सुनकर प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा को अपने जीवन में प्रेरणा लेनी चाहिए एवं आलस्य प्रमाद को छोड़कर व्रतों या महाव्रतों में अग्रसर होना चाहिए।

1. प्रत्येक मोक्षाभिलाषी श्रमणोपासक की यह प्रमुख अभिलाषा होनी चाहिए कि एक दिन मैं भी अणगार बनूं।

2. श्रावक जीवन एक अधूरी धर्म करणी है। जीवन में परिवार-पोषण, व्यापार-धन्धे, वैभव-उपयोग एवं कुटुम्बी-मोह आदि अनेक प्रमाद लगे हुए है।

3. मुनि जीवन मानव भव की सर्वोच्च अवस्था है। आत्म धर्म की सर्वोत्कृष्ट साधना है।

4. संयम धारण करके उसका जिनाज्ञानुसार पालन करना, यही मोक्ष प्राप्ति का सच्चा राजमार्ग है।

5. भव भ्रमण के धक्के खाते खाते मानव, संसार के किनारे एवं मोक्ष के निकट पहुंच गया है।

6. यदि अवसर चूक गया तो पुनः चौरासी के चक्कर तैयार है अतः 'एवं धक्का और दो, संसार को छोड़ दो'।

7. सगे भाईयों का नाम एक समान नहीं दिया जाता है अतः दोनों वर्गों में वर्णित राजकुमार सगे भाई नहीं थे ऐसा समझना उपयुक्त है।

दूसरा दिन

तीसरा वर्ग-

इस वर्ग में तेरह अध्ययन है। जिसमें तेरह राजकुमारों का वर्णन है।

1 से 6 अध्ययन- अनिकसेन आदि- प्राचीन काल में भद्दिलपुर नामक नगर था। वहां नाग नामक गाथपति (सेठ) रहता था। उसके सुलसा नाम की भार्या (सेठाणी) थी। उसने सुन्दर गुण सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम अनिकसेन रखा गया। बाल्यकाल, शिक्षा ग्रहण, यौवन वय में प्रवेश एवं पाणिग्रहण आदि यथासमय सुखपूर्वक सम्पन्न हुए। बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं के साथ वह मानुषिक सुख भोगते हुए रहने लगा।

एकदा अरिहंत अरिष्ठनेमि का नगरी के बाहर श्री-वन उद्यान में पधारना हुआ। अनिकसेन भगवान् की सेवा में गया, उपदेश सुना। उपदेश की वैराग्य धारा उसके अन्तर में उतर गई। संयम स्वीकार करने का दृढ़ संकल्प किया एवं प्रथम अध्ययन में वर्णित गौतम के समान माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके भगवान् की सेवा में दीक्षित हुआ। जीवन-शिक्षाएं ग्रहण की एवं संयम तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए बारह अंगों का कंठस्थ अध्ययन किया। 14 पूर्व धारी बना। गौतम अणगार के समान ही भिक्षु पड़िमा, गुण-रत्न संवत्सर तप की आराधना की। बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय में महिने के संथारे से संपूर्ण कर्मों को क्षय किया।

इसी तरह अनन्तसेन कुमार, अनिहत कुमार, विद्युत कुमार, देवयश कुमार और शत्रु सेन कुमार आदि भी पांचों श्रेष्ठि कुमार नाग गाथपति के पुत्र सुलसा के अंगजात सगे भाईयों का वर्णन है। सभी ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेकर 20 वर्ष तक संयम पालन किया और अन्त में सर्व कर्म क्षय कर शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए। इस प्रकार छः अध्ययन पूर्ण हुएः

सातवां अध्ययन-

द्वारिका नगरी में वसुदेव राजा (श्री कृष्णजी के पिता) रहते थे उनके सारणकुमार नामक पुत्र था। योवन काल में उसका पचास कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। उसने भी सम्पूर्ण वैभव का त्याग करके अरिहंत अरिष्ठनेमि के पास संयम अंगीकार किया। चौदह पूर्वों का अध्ययन (कंठस्थ ज्ञान) किया। शेष वर्णन गौतम कुमार के समान है। बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय और मास खमण के संथारे से मुक्ति धाम को प्राप्त किया, इस प्रकार दो वर्गों में 18 और तीसरे वर्ग में सात जीवों

में कुल 25 जीवों का सुख पूर्वक मुक्ति गमन का वर्णन हुआ। अब तीसरे वर्ग का उपसर्ग युक्त वर्णन वाला आठवां अध्ययन प्रारम्भ होता है।

आठवां अध्ययन गजसुकमाल- छः भाई मुनियों का पारणा- अरिहंत अरिष्ठनेमि का विचारण करते हुए द्धारिका नगरी में पदार्पण हुआ। भगवान् की आज्ञा लेकर पूर्व वर्णित अनिकसेन आदि छहों भाई अपने बेले के पारणे के लिए द्वारिका नगरी में गये। छहों ने दो-दो के तीन सिघाड़े बनाये। उनमें से एक सिघाड़ा घूमते हुए देवकी राणी के आवास पर पहुंच गया।

मध्यम तीर्थंकर के साधु-साध्वी राजकुल में गोचरी जा सकते है। अतः देवकी के घर जाना उन्हें कल्पनीय ही था। देवकी राणी आदर सत्कार विनय भक्ति एंव प्रसन्नता पूर्वक मुनि द्वय को रसोई घर में ले गई। सिंहकेशरी नामक मोदकों को थाल में भरा और मुनियों की इच्छानुसार बहराया। तत्पश्चात् पुनः विनय-व्यवहार पूर्वक उन्हें विदा किया ।थोड़ी देर में घूमते हुए उन भाइयों का दूसरा सिंघाड़ा भी संयोग वश देवकी राणी के यहां पहुंच गया। राणी ने उन्हें भी भाव-पूर्वक मोदक बहरा कर विदा किया।

तीसरा सिंघाड़ा भी देवकी के घर- संयोग वश तीसरा सिघाड़ा भी वहीं पहुंच गया।देवकी राणी ने अपना अहोभाग्य समझा और भक्ति पूर्वक रसोई घर में जाकर उसी विधि से थाल भर कर केसरी सिंह मोदक बहराए। फिर देवकी राणी को यह आभास हुआ कि वे ही दोनों मुनि बारंबार भिक्षा के लिए आ रहे है ? इस आशंका का कारण यह था कि वे छहों भाई दिखने में लगभग सरीखें ही दिखते थे, जिसमें अपरिचित व्यक्ति को भ्रम होना सहज था।

शंका और समाधान- देवकी राणी ने तीसरे सिंघाड़े को विदाई देते हुए विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि हे देवानुप्रिय ! क्या श्रीकृष्ण वासुदेव की राजधानी में श्रमण निर्ग्रन्थों को बराबर भिक्षा नहीं मिलती है ? जो एक ही घर में घूम-घूम कर बारंबार आना पड़ रहा हैं। देवकी के शंका युक्त वाक्यों के उच्चारण से मुनि उसके अन्तरंग आशय को समझ गये कि दो-दो के सिंघाड़े से तीन बार में हम छहों भाई देवकी के घर पर आ गये हैं। सरीखे वर्ण रूप आदि के कारण देवकी राणी को यह भ्रम हो रहा है कि वे दोनों मुनि मोदकों के लिए पुन-पुनः घूम कर वापिस आ रहे है तो इन मुनियों को ऐसा करने की क्या आवश्यकता हुई? द्वारिका नगरी में बहुत घर है, बहुत भिक्षा मिल सकती है। मुनि ने समाधान करते हुए स्पष्टीकरण किया कि हम छः भाई भद्दिलपुर नगर के श्रेष्ठि पुत्र थे। छहों का रूप लावण्य वय आदि सरीखा है। पचास-पचास पत्नियों का एवं सुख वैभव का त्याग कर अरिहंत अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हुए हैं। दीक्षा के दिन से ही आजीवन बेले-बेले का तप करते हैं। साथ ही अनेक प्रकार के तप से संयम की अराधना कर रहे है। आज हमारे छहों भाईयों के एक साथ बेले का पारण आया। भगवान की आज्ञा लेकर हम दो-दो के तीन सिंघाड़ों में निकले है। सहज स्वाभाविक आपके घर तीनों सिंघाड़ों का पहुंचना हो गया हैं। इसलिए हे देवकी राणी ! पहले आये वे मुनि अन्य थे और हम अन्य मुनि है। द्वारिका में भिक्षा नहीं मिले यह बात नहीं। न ही हम पुनः पुनः आए हैं। एक सरीखे सगे भाई होने से आपको ऐसा आभास हुआ है। इस तरह समाधान करके मुनि चले गये। इस वार्ता के बीच जो कुछ समय लगा उसमें देवकी ने मुनियों के अलौकिक रूप लावण्य को देखा। उसके चिंतन से उसे पूर्व की एक घटना और उसकी वार्ता याद आ गई। वह इस प्रकार है-

देवकी की दूसरी शंका और भ. अरिष्टनेमि द्वारा समाधान- एक बार अतिमुक्तक मुनि ने बताया था कि ''तूं आठ अलौकिक नल कुबेर के समान पुत्रों को जन्म देगी वैसे पुत्रों को पूरे भरत में जन्म देने वाली अन्य कोई भी स्त्री नहीं होगी'' किन्तु मुझे साक्षात् दिख रहा है कि मैंने तो वैसे आठ पुत्रों को जन्म दिया ही नहीं है और दूसरी स्त्री ने ही ऐसे अलौकिक छः पुत्रों को जन्म दिया है। अतः क्या मुनि की बात मिथ्या गई है ? इस प्रकार की आशंका उसके मस्तिष्क में घूमने लगी। समाधान के लिए वह भगवान् अरिष्ठनेमि की सेवा में पहुंची। वंदन नमस्कार किया। तदनन्तर अरिष्ठनेमि भगवान् ने स्वतः ही देवकी के मन की शंका प्रकट करते हुए उसे कहा कि हे देवकी ! आपको यह शंका हुई है ? देवकी ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया। भगवान् ने उसका समाधान करते हुए फरमाया- भद्दिलपुर नगरी में नाग गाथपति के सुलसा नाम की भार्या है। उसे बचपन से ही किसी निमित्तवेत्ता ने बता दिया था कि उसके मरे हुए पुत्र होंगे। अतः बचपन से ही हरिणेगमेषी देव की भक्ति पूजा करती थी। देव उस पर प्रसन्न हो गया। देव ने उसके हित के लिए अपने अवधिज्ञान में उपयोग लगा या और तुम्हें देखा। फिर ऐसा उपाय किया कि तुम्हारे और सुलसा के गर्भ धारण का और प्रसूति का समय समान हो गया। तुम्हारे जन्म दिए हुए पुत्रों को देव अपनी शक्ति से क्षणभर में सुलभा के पास पहुंचा देता और उसके मृत पुत्रों को तुम्हारे पास रख देता। दैविक प्रक्रिया के कारण तुम्हें मालुम नहीं पड़ता। इसलिए हे देवकी ! ये छहों अणगार वास्तव में सुलसा के पुत्र नहीं तुम्हारे ही पुत्र है। अतः मुनि की भविष्य वाणी गलत नहीं हुई है।

देवकी का पुत्र प्रेम- भगवान से समाधान सुनकर देवकी बहुत खुश हुई। छः अणगारों के पास आई उन्हें वंदन नमस्कार किया। इस प्रकार के मुनि दर्शन में उसका अत्यन्त मोह भाव, वात्सल्य भाव था। वह अति दीर्घ दृष्टि से मुनियों को निरखने लगी और अपने पुत्र होने का अनुभव करने लगी। इस विचार परिणति से एवं पुत्र प्रेम से उसके स्तनों से दूध झरने लगा। हर्ष से उसके सारे अंग प्रत्यंग विकसित हो गये। कपड़े और आभूषण तंग होने लगे। बहुत देर तक इस प्रकार देखती हुई खड़ी रही। फिर वंदन नमस्कार कर भगवान् के पास चली गई। भगवान् को भी वंदन नमस्कार कर अपने भवन में आ गयी। शय्या पर विश्राम करते हुए उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ-

मोह-भावों का अतिरेक एवं आर्त्तध्यान- ''मैने छः पुत्रों को जन्म दिया किन्तु उनका मुंह भी नहीं देखा। सातवां पुत्र कृष्ण हुआ तो इसका बचपन भी मैंने नहीं देखा। अतः मैं बहुत ही अधन्य अपुण्य हूं, अभागी हूं कि मैंने एक भी पुत्र के बचपन का सुख नहीं देखा, उनका लालन-पालन नहीं किया। जगत की वे माताएं धन्य हैं जो अपने पुत्र के बचपन के अनेक प्रकार के बाल्य भाव सुखों का अनुभव करती हैं, उन्हें लाड़ प्यार करती हैं, उन्हें खिलाती पिलाती हैं, स्तनपान कराती है, अपनी गोद में रखती है। मैंने ऐसा कुछ भी सुख नहीं देखा। ऐसे अलौकिक पुत्रों को जन्म देना भी मेरा निरर्थक गया और यह कृष्ण वासुदेव तीन खंड का स्वामी है यह भी छः मास में आता है अर्थात् इसे मेरे पास आने की और बैठने की फुरसत ही कहां है ?

इस प्रकार मोह भावों से प्रेरित बनी देवकी राणी संकल्प विल्कप करते हुए आर्त्त ध्यान में निमग्न हो गई और अपने इच्छा एवं पुत्र मोह में डूब कर राजसी वैभव को भूल कर संतान दुःख का अनुभव करने लगी।

कृष्ण वासुदेव माता के पास- संयोग से कृष्ण वासुदेव दूसरे दिन सुबह माता के चरण वंदन के लिए भवन में पहुंच गये। माता को इस प्रकार आर्त्त ध्यान में देखा। उन्होंने माता को प्रणाम किया किन्तु देवकी राणी दुःख में निमग्न थी।

उसने कृष्ण के सामने भी नहीं देखा, न ही उसे कुछ आशीर्वचन कहा न उसके आने से प्रसन्न हुई। वह अपने ही विचार श्रृंखलाओं में खोई थी। कृष्ण ने आग्रह पूर्वक माता को दुःख का कारण पूछा, देवकी ने सारे घटना चक्र एवं मनोगत संकल्प का स्पष्टिकरण श्रीकृष्ण के समक्ष रख दिया। मुनियों के गोचरी आने से लेकर आर्त्तध्यान तक की सारी हकीकत सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव समझ गये कि आठ पुत्र की बात तो सही होगी अतः अभी मेरे एक भाई अवश्य होगा। फिर भी हरिणेगमेषी देव इधर-उधर परिवर्तन न कर दे इसका उपाय कर लेना चाहिए। कृष्ण वासुदेव ने दृढ़ निश्चय पूर्वक माता को आश्वासन दिया कि मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा कि मेरे आठवां छोटा भाई होगा और तूं उसके बचपन का बाल क्रीड़ाओं का अनुभव करेगी। माता को पूर्ण आश्वस्त करके कृष्ण वासुदेव पौषधशाला में गये। विधि पूर्वक पौषध ग्रहण किया और तेले का पच्चक्खाण कर हरिणेगमेषी देव की मन में आराधना करने लगे।

देवदर्शन एवं देवकी का प्रसन्न चित्त– समय पूर्ण होने पर देव प्रकट हुआ और श्रीकृष्ण से याद करने का कारण पूछा। कृष्ण वासुदेव ने पौषध पार कर अपना आशय स्पष्टकरते हुए कहा कि मुझे सहोदर छोटा भाई दो। देव ने श्रीकृष्ण वासुदेव से कहा कि हे देवानु-प्रिय ! तुम्हारे छोटा भाई होगा जो देवलोक से च्यव कर आएगा और योवन वय में प्रवेश करते ही संयम लेकर आत्म कल्याण करेगा। (श्रीकृष्ण वासुदेव का भाई मांगने का आशय स्पष्ट था कि फिर पुनः कहीं हरिणेगमेषी देव हरण करे अन्यत्र नहीं ले जाय अतः उसी से मांग लेना चाहिए। देव के शब्दों में भी स्पष्ट था कि मैं कोई देने वाला नहीं हूं किन्तु एक जीव देवलोक से च्यव कर आएगा और तुम्हारा भाई होगा।) कृष्ण वासुदेव हरिणेगमेषी देव को विदा कर माता के पास आए और प्रणाम कर माता को कहा कि निश्चय ही मेरे छोटा भाई होगा। इस प्रकार इष्ट कांत प्रिय मनोज्ञ वाक्यों से माता को संतुष्ट कर श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी राज्य सभा में चले गये। देवकी देवी का आर्त्तध्यान समाप्त हो गया। वह प्रसन्नचित होकर सुख पूर्वक समय व्यतीत करने लगी।

शिक्षा प्रेरणा–

(1) सुख या दुःख का विशेष आधार स्वयं के संकल्प-विकल्प ही बनते हैं।

(2) मोह भी बढ़ाने से बढ़ता है और घटाने से घट जाता है। उसकी भी प्रमुख आधार शिला स्वयं के ज्ञान-अज्ञान, विवेक-अविवेक, वैराग्य एवं आसक्ति भाव है।

(3) माता और पुत्र का सम्बन्ध दोनों का है फिर भी छहों पुत्र विरक्त रहे और देवकी ने मोह भावों की वृद्धि की।

(4) देवकी की उम्र भी कोई कम नहीं थी। एक हजार वर्ष के आस-पास की वय में भी उसने पुत्र प्राप्ति की एवं उसके लड़कपन की तीव्र अभिलाषा की। यह उसके मोह भावों का अतिरेक ही था।

(5) पुत्र की मातृ भक्ति हो तो एक पुत्र भी समय पर विपत्ति एवं मनोवेदना को दूर कर सकता है। कृष्ण ने अपने सारे राज्य कार्य एवं सुख वैभव को गौण करके माता की संवेदना को दूर करने हेतु उसी समय से तीन दिन की निराहार पौषध साधना प्रारम्भ करदी और माता की चिंता को पूर्णतः मिटा करके फिर अपने कार्य में लगे।

(6) मुनियों का स्वतंत्र गोचरी रूप अलग अलग सिंघाड़ा से जाना, एक ही विशिष्ट प्रख्यात घर में अज्ञातवश तीनों सिंघाड़ों का पहुंचना, इत्यादि वर्णन विशेष मननीय है। इस विवरण से उस समय की मुनियों की विशिष्ट भिक्षा समाचारी का अनुमान किया जा सकता है।

(7) देवकी राणी का स्वंय के हाथों भक्ति पूर्वक बिना किसी तर्क-वितर्क या आदेश प्रत्यादेश के तीनों सिंघाड़ों को आहार का बहराना उसकी विशिष्ट धार्मिकता को प्रकट करता है। ऐसी धर्म परायणता होते हुए भी उसने तीनों सिंघाड़ों को प्रतिलाभित किया। इससे यह भी स्पष्ट है कि मुनि का दुबारा या तिबारा आना दोषप्रद या अकल्पनीय नहीं था क्योंकि ऐसा होता तो वह दूसरे सिंघाड़े को गोचरी बहराने के पहले ही सूचित कर देती। किन्तु उसने तीनों सिंघड़ों को हर्ष भाव युक्त दान दिया उसके बाद प्रश्न किया। इससे यह सपष्ट होता है कि मुनि पर उसे आसक्ति की आशंका हुई। इसी लिए प्रश्न रूप में निवदेन किया और चौदहपूर्वधारी मुनि ने भी अपनी अनासक्ति और उत्कृष्ट वैराग्य का बोध कराने वाला ही उत्तर दिया।

(8) सुलसा सेठाणी ने वर्षों तक पानी फूल अग्नि आदि के आरंभ से भक्ति करके हरिणेगमेषी देव की आराधना कर अपना मनोरथ पूर्ण किया और कृष्ण वासुदेव ने निर्वद्य निराहार तीन दिन के पोषध से उसी हरिणेगमेषी देव से अपनी मनो कामना पूर्ण की। देव किसी को पुत्र देता नहीं है किंतु भवितव्यता हो तो संयोग मिला सकता है या जानकारी दे सकता है कि पुत्र होगा।

तीसरा दिन

गजसुकुमाल का जन्म- सुख पूर्वक काल व्यतीत करते हुए एक बार देवकी राणी ने अपने मुंह में सिंह के प्रविष्ट होने का स्वप्न देखा। स्वप्न पाठकों ने उसका परिणाम यह बताया कि देवलोक से च्यव कर एक भाग्यशाली जीव गर्भ में आया है। देवकी ने योग्य विधि व्यवहार में गर्भ काल पूर्ण किया। नौ मास बाद पुत्र का जन्म हुआ, खुशियां मनाई गई, अपराधियों, कैदियों को मुक्त किया गया। दस दिन का प्रमोद घोषित किया जिसमें ऋण या कर आदि माफ किए गये। बारहवें दिन सुकोमल होने से उसका नाम गजसुकुमाल दिया गया। देवकी ने अपनी सारी मनोकामनाएं पूर्ण की। ''गजसुकुमाल'' का बाल्य काल व्यतीत हुआ। शिक्षण काल में उसने विद्याभ्यास किया एवं क्रमशः तरूण अवस्था में प्रवेश किया।

गजसुकुमाल की सगाई- विचरण करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि का द्वारिका में पदार्पण हुआ। कृष्ण वासुदेव अपने छोटे भाई गजसुकमाल को साथ लेकर भगवान् की सेवा में जाने के लिए साज-सज्जा के साथ निकले। जाते हुए श्रीकृष्ण ने राजमार्ग पर सहेलियों के साथ सोने की गेंद से खेलते हुए सोमा कुमारिका को देखा। उसके रूप लावण्य यौवन को देख श्री कृष्ण अत्यंत प्रभावित हुए तथा अपने सेवकों से उसका परिचय प्राप्त किया और उसके पिता सोमिल ब्राह्मण से गजसुकुमाल के लिए सोमा की मांगणी की। सोमिल ब्राह्मण के स्वीकार करने पर उस सोमा को कुमारी कन्याओं के अंतः पुर में रख दिया गया। अर्थात् गजसुकमाल कुमार के लिए अन्य भी अनेक कुमारियों को जहां रखा गया था उस भवन मैं सोमा को भी रख दिया। कुंवारी कन्याओं को श्रीकृष्ण वासुदेव ने अपने यहाँ इकट्ठा किया इसमें उनका कोई दीर्ध दृष्टिकोण रहा होगा अथवा उस समय की ऐसी प्रथा रही होगी। जैसे एक ही समय 50-100 कन्याओं का पाणिग्रहण हुआ करता था।

गजसुकुमाल का वैराग्य- श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि के समवसरण में पहुंचे। अरिहंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव एवं गजसुकुमाल युक्त संपूर्ण परिषद को धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनकर कृष्ण सहित परिषद् लौट गई। गजसुकुमाल को भगवान् का उपदेश अत्यन्त रूचिकर हुआ। वैराग्य भाव जागृत हुए, भगवान् से वंदन नमस्कार कर

अपनी भावना व्यक्त की और भगवान् से ''अहा सुहं देवाणुप्पिया'' इस शब्द से दीक्षा लेने की स्वीकृति प्राप्त की। घर आकर माता-पिता से निवेदन किया कि मैंने भगवान् की वाणी सुनी जो मुझे अत्यन्त रूचिकर लगी। अतः आपकी आज्ञा होने पर भगवान् के समीप दीक्षा लेना चाहता हूं। देवकी राणी को पुत्र के दीक्षा लेने संबंधी वचन अत्यन्त अप्रीति कर लगे और सुनते ही पुत्र विरह के दुःख से महान् दुःखाभिभूत होकर धड़ाम से गिर पड़ी। अंतः पुर में रहे परिजनों ने उसकी सार संभाल की। जल एवं हवा के प्रयोग से उसे स्वस्थ किया। कुछ स्वस्थ हुई देवकी राणी उठी और रोते, क्रंदन करते हुए पुत्र को इस प्रकार कहने लगी-

माता-पिता और गजसुकुमाल का संवाद- हे पुत्र। तूं हमारा बहुत ही लाडला पुत्र है, क्षण मात्र भी तुम्हारा वियोग हम सहन नहीं कर सकते। अतः जब तक हम जीवित है तब तक तुम संसार में रहो एवं विपुल मानुषिक सुखों का उपभोग करो उसके बाद तुम भले ही अरिहंत अरिष्टनेमि के पास संयम ग्रहण कर लेना ।प्रत्युत्तर में गजसुकुमाल ने मानुषिक भोगों की असारता, मनुष्यायु की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए कहा कि हे माता पिता ''यह किसे पता है कि कौन पहले चला जाएगा और कौन पीछे रहेगा'' अतः हे माता पिता। मैं तो अभी ही आपकी आज्ञा प्राप्त कर दीक्षित होना चाहता हूं। माता की मोह दशा के अतिरेक युक्त वातावरण (मूर्च्छा आदि) का वैरागी गजसुकुमाल पर कोई असर नहीं हुआ । माता-पिता ने ऋद्धि वैभव से उसे आकर्षित करना चाहा, किन्तु उसका भी असर नहीं हुआ। तब उन्होने संयम की भीम भयानकता एवं कठिनाईयों का वर्णन करते हुए कहा कि हे पुत्र। तूं बहुत सुकुमाल है, संयम पालन करना, लोह के चने चबाना है, समुद्र को भुजाओं से तैरना है, तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है, बालु के कवल के समान संयम नीरस है अथात् इन्द्रिय जन्य कोई भी सुखानुभव वहां पर है ही नहीं। आधाकर्मी आदि दोषों से रहित भिक्षा द्वारा आहार प्राप्त करना, घर-घर फिरना और दुष्कर ब्रह्मचर्य का आजीवन पालन करना, हे पुत्र! बहुत ही कठिन है। ग्रामानुग्राम पैदल चलना, लोच करना, गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास आदि बाईस परीषह सहन करना बहुत ही कठिन है अतः हे पुत्र! तुम अभी दीक्षा मत लेओ। तुम्हारा शरीर संयम के योग्य नहीं हैं। तुम अत्यंत सुकुमाल हो, अगर दीक्षा लेना ही हो तो यौवन वय व्यतीत होने के बाद दीक्षा लेना। संयम की कठिनाईयों को सुनकर भी गजसुकुमाल का वैराग्य पूर्ववत् रहा उसने उत्तर में कहा कि हे माता-पिता! इस लौकिक पिपासा में पड़े जो सामान्य जन है उनके लिए यह निग्रन्थ प्रव्रज्या भले ही कष्टप्रद हो सकती है किन्तु जिसे इस लौकिक पौद्गलिक सुख की किंचित भी आशा लालसा या अभिलाषा नहीं है, उसके लिए संयम के आचरण और परीषह उपसर्ग कुछ भी कष्टप्रद या दुष्कर नहीं हैं। अतः हे माता पिता! आपकी आज्ञा होने पर मैं दीक्षा लेना चाहता हूं। **श्रीकृष्ण का समझाना एवं राज्याभिषेक-** माता-पिता किसी भी प्रकार से उसके विचारों को परिवर्तित नहीं कर सके। तब कृष्ण वासुदेव वहां आए और गजसुकुमाल कुमार का आलिंगन किया, उसे प्रेम से अपने गोद में बिठलाया और कहा कि तुम मेरे सगे छोटे भाई हो तुम अभी भगवान् के पास दीक्षा मत लो, मैं तुम्हें महान् राज्याभिषेक के साथ द्वारिका का राजा बनाऊंगा। कुमार ने मौन रहकर श्रीकृष्ण के वचनों को स्वीकार नहीं किया एवं पुनः अपना निवेदन प्रस्तुत कर दिया। माता-पिता और कृष्ण वासुदेव गजसुकुमाल के विचारों को किंचित भी नहीं बदल सके, तब उसे एक दिन के लिए राज्य लेने का और राजा बनने का आग्रह किया। उचित अवसर देखकर कुमार ने मौन पूर्वक स्वीकार किया। राज्यभिषेक की तैयारियां की गई। महोत्सव पूर्वक राज्यभिषेक करके माता-पिता और कृष्ण ने अपनी मंशा (अभिलाषा) पूर्ण की। **गजसुकुमाल की दीक्षा-** तदनंतर श्रीकृष्ण आदि ने नये राजा गजसुकुमाल से आदेश मांगा । हे राजन्!

फरमाइये क्या आदेश है ? गजसुकुमाल ने दीक्षा की तैयारी का आदेश दिया। आदेशनुसार दीक्षा की तैयारी हुई उत्सव पूर्वक गजसुकुमाल को भगवान् के समवसरण में शिविका के द्वारा लाया गया। माता-पिता गजसुकुमाल को आगे करके भगवान् से कहा कि हम यह शिष्य भिक्षा आपको दे रहे है, आप इसे स्वीकार करो। भगवान् के स्वीकार करने पर गजसुकुमाल भगवान् को वंदन नमस्कार करके ईशान कोण में गया। आभूषण अलंकार वस्त्र आदि गृहि वेष-भूषा का त्याग किया और संयम की वेश-भूषा अंगीकार की। फिर भगवान की सेवा में उपस्थित होकर प्रव्रजित करने के लिए निवेदन किया। भगवान् ने गजसुकुमाल को दीक्षा पाठ पढ़ाया और संयम की एंव आवश्यक क्रियाओं के करने की विधि बताई। इस प्रकार अब गजसुकुमाल समिति गुप्तिवंत एवं महाव्रतधारी अण्गार हो गया।

भिक्षु पड़िमा की आज्ञा- दिन के पिछले भाग में गजसुकुमाल मुनि भगवान् के पास आए वदंन नमस्कार कर भगवान् से निवेदन किया कि आपकी आज्ञा हो तो मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महा भिक्षु पड़िमा (भिक्षु की बारहवीं पड़िमा) धारण करना चाहता हूं। त्रिकालदर्शी भगवान् ने उसे सहज ही आज्ञा दे दी । एक नव-दीक्षित मुनि का आज्ञा मांगना और भगवान् का आज्ञा देना तथा अकेले ही मुनि का श्मशान के लिए प्रयाण करना इत्यादि उस समय कैसा अद्भुत वातावरण रहा होगा, जिसकी कल्पना मात्र हमारे लिए रोमांचकारी बन जाती है किन्तु त्रिकालदर्शी प्रभु को और अन्य लोगों को ऐसा कुछ भी आभास नहीं हुआ होगा ।

नवदीक्षित मुनि श्मशान में- नव दीक्षित मुनि अकेले ही श्मशान में पहुंच गये। कायोत्सर्ग करने के स्थान की प्रतिलेखना की एवं आज्ञा ग्रहण की। फिर स्थंडिल भूमि की प्रतिलेखना करके निश्चित स्थान में आकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खडे रहकर एक रात्रि की महाप्रतिमा अंगीकार की और आध्यात्म भाव में लीन बन गये।

मारणांतिक उपसर्ग- सौमिल ब्राह्मण यज्ञ की सामग्री के लिए जंगल में गया था। लौटते समय वह उस श्मशान के निकट से निकला संध्या का समय हो चुका था। लोगों का आगमन बंद सा हो गया था। श्मशान की तरफ दृष्टि पड़ते ही उसे ध्यानस्थ मुनि दिखे। उन्हें देखकर सौमिल ने पहिचान लिया कि यह वही गजसुकुमाल है जिसके लिए मेरी पुत्री की श्रीकृष्ण ने मांगा की एवं कुंवारे अंतः पुर में उसे रख दी है।सौमिल को क्रोध आया पूर्व बैर भाव जगा और बदला लेना ठान लिया। उसने चौतरफ नजर लगाई कि कोई भी व्यक्ति तो नहीं दीख रहा है? तुरंत गीली मिट्टी से मुनि के मस्तक पर पाल बांध दी और चिता से घधकते अंगारे मिट्टी के ठीबड़े में लाकर निर्दयता पूर्वक मुनि के मस्तक पर डाल दिए। फिर भयभीत होता हुआ वहां से शीघ्र चला गया ।

मुनि की समभावों से मुक्ति- मुनि को ध्यान एवं कायोत्सर्ग किए अधिक समय हुआ ही नहीं था कि मारणांतिक उपसर्ग उपस्थित हो गया। मुनि ने तो कष्टों को आगे होकर निमंत्रण दिया था। शरीर में भंयकर दुस्सह वेदना उत्पन्न हुई। मुनि समभावों में और आत्म-भावों में लीन रहे। ''देह विनाशी, हूं अविनाशी'' के घोष को सत्य रूप से आत्मा में बुलंद कर दिया सौमिल ब्राह्मण पर किसी भी प्रकार का रोष नहीं करते हुए एवं अंतरात्मा में भी उसके प्रति रोष न लाते हुए अपने निज कर्मों का विचार करते हुए, विचारो की श्रेणी को विशुद्ध विशुद्धतर बनाया। धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान में पहंचे। कर्म दलिकों का क्षय कर केवलदर्शन उपार्जित किया एंव आयुष्य कर्म के क्षय होने पर संपूर्ण कर्म क्षय कर सिद्व परमात्मा भाव को प्राप्त किया। निकटवर्ती देवों ने पंच दिव्य प्रकट किए और सम्यक् अराधना का महोत्सव किया ।

आदर्श जीवन एवं शिक्षा प्रेरणा–

(1) सौलह वर्ष की वय में एंव एक दिन अर्थात् कुछ ही घंटों की दीक्षा पर्याय से मुनि ने आत्मा कल्याण साध लिया। दृढ़ता, सहन-शीलता, क्षमा के द्वारा मुनि ने लाखों भवों के पूर्व संचित कर्मों का मिनटों में क्षय कर दिया। घर कुटुम्ब परिवार का त्याग करने के बाद शरीर के ममत्व का भी त्याग करना, संयमाराधना के लिए शरीर को जीवित अवस्था में यों विसर्जित कर देना, कोई कम महत्व की बात नही है। अच्छे-अच्छे अभ्यासी साधक भी यहां आकर गड़बड़ा जाते हैं। किन्तु धन्य है उन नवदीक्षित मुनि को, कृष्ण वासुदेव के भाई होते हुए एक दिन की दीक्षा में भी ऐसा आदर्श उपस्थित कर दिया कि जिससे प्रेरणा पाकर कई मुमुक्षु प्राणी अपने आत्मोत्थान में अग्रसर होने की महान् उपलब्धि प्राप्त कर सकते हैं।

(3) शूरवीर पुरूष सिंह की वृत्ति से चलते हैं। सिंह के समान ही वीरता के साथ संयम ग्रहण करते हैं, प्रतिज्ञा ग्रहण करते हैं और संकट आने पर भी सिंह के समान उस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

(4) सिंह वृत्ति और श्वान वृत्ति के विषय में इस प्रकार कहा जाता है सिंह बंदूक की गोली पर नहीं झपटता है किन्तु उसकी आवाज से मूल स्थान को पहिचान लेता है और उसे ही अपना लक्ष्य बनाता है। किन्तु कुत्ते को कोई लकड़ी से मारे तो वह लकड़ी को ही पकड़ने की कोशिश करता है। अतः हमें दुःख के मूल भूत स्वयं के कर्मों का विचार करना और समभाव में स्थिर रहना, यह सिंह वृत्ति है और दुःख के क्षणिक निमित्त भूत जो कोई भी प्राणी है, उस पर रूष्ट होना या बदला लेना, यह श्वानवृत्ति है। प्रत्येक मुमुक्षु आत्माओं को गजसुकुमाल के जीवन से सिंहवृत्ति का आदर्श सीखना चाहिए। ''देहं वा पातयामि कार्य वा साधयामि'' का दृढ़ संकल्प होना चाहिए। तभी मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

(5) भौतिक इच्छाओं का त्याग और जीवन का भोग दिए बिना सहज ही मुक्ति मिल जाना संभव नहीं है। अतः मोक्ष की प्राप्ति के लिए हम गजसुकुमाल मुनि का आदर्श सामने रखकर अपने जीवन को जीएं तथा ऐसी वीरता के संस्कारों से आत्मा को बलवान बनावें।

सभी सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीप ही देत बुझाय।।1।।

(6) स्वयं के संस्कार यदि मजबूत है, बलवान है तो सभी संयोग हितकर हो जाते हैं। सौमिल ब्राह्मण सरीखे निर्दयी व्यक्ति का और धधकते अंगारों का संयोग भी मुक्ति प्राप्त करा सकता है। अतः हम अपनी साधना को बलवती बनाऐंगें और सहनशीलता को धारण करेंगे, तभी हमारा ऐसे महापुरूषों का जीवन चरित्र सुनना सार्थक बनेगा। कषाय भावों से मुक्त बन जाना यही मोक्ष प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ एवं सफल साधना है।

(7) पूर्व भव-घटना ऐसी बनी कि बड़ी बहु के पुत्र नहीं हुआ। छोटी बहु के पुत्र हुआ। अतः बड़ी बहु बहुत समय से शोक के पुत्र का खात्मा करने का उपाय और मौका देख रही थी। एक समय बच्चे के मस्तक पर अत्यधिक फोड़े फुंसियां हो गई। छोटी बहु का कोई उपाय सफल नहीं हुआ, तब उसने बड़ी बहु को पूछा। मौका आया जानकर उसने गर्मागर्म बाटियां सिर एक बांधने का उपाय बता दिया औ कह दिया कि बच्चा रोवे तो भी उसे शीघ्र खोलना नहीं। वैसा ही किया गया। बच्चे के प्राण निकल गये। वही सौत का जीव गजसुकुमाल अणगार बना। आगम में कहा है कि गजसुकुमाल

मुनि ने लाखों भव के अर्जित कर्मों का कर्जा चुकाया। उसे ही प्रचलित भाषा में एवं पद्य में ९९ लाख भव पूर्व का कहा जाता है। यथा-

सौतेली मां बन सौत के सुत सिर, बाटिया चढ़ा के प्राण हरा।
निन्याणु लाख भवों के बाद में, गजसुकुमाल बन कर्ज भरा।।
चढ़ा सौमिल को क्रोध अपार है, डाले सिर पे धधकते अंगार है।। नहीं बचा।।

(8) रहस्य-संभव है लोगों को यह कहना पड़ जाय कि कृष्ण ने अपने भाई के प्रति कोई संसारिक कर्तव्य का पालन नहीं किया एवं शीघ्र दीक्षा ही दिला दी। ऐसी बात का स्वतः समाधान हो जाये कि उन्होंने तो सगाई एवं शादी की पूर्ण तैयारी कर रखी थी। एवं भगवान् की सेवा में जाते समय भी सोमिल ब्राह्मण की कन्या सोमा की मांगणी करके उसे कुंवारे अंतः पुर में रखवाया था। पद्य में भी कहा-सौवीं सोमिल कन्या, रूप देख श्री कृष्ण जी महल धरे। ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण ने कुल एक सौ (100) कुंवारी कन्याओं का संग्रह कर लिया था।

श्रमणोपासक के आध्यत्मिक गुणों की अभिवृद्धि के लिए उपासकदशा सूत्र का सारांश का अध्ययन अवश्य करे।

चौथा दिन

भगवान अरिष्टनेमि से कृष्ण की वार्ता-

गजसुकुमाल अणगार की दीक्षा के दूसरे दिन कृष्ण वासुदेव अरिष्टनेमि के एवं अपने भाई सहित सभी मुनियों के दर्शन करने भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। भगवान् का दर्शन वंदन किया। अन्य मुनियों का भी दर्शन किया। इधर-उधर देखा किन्तु अपने भ्राता गजसुकुमाल मुनि के दर्शन नहीं हुए तो भगवान् से ही पूछ लिया कि भंते! गजसुकुमाल अणगार कहां है ? भगवान् ने कृष्ण वासुदेव से कहा कि गजसुकुमाल मुनि ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है अर्थात् वे मोक्ष पधार गये हैं। कृष्ण वासुदेव न पुनः प्रश्न किया कि भंते! किस प्रकार गजसुकुमाल अणगार ने अपना अर्थ सिद्ध कर लिया ? तब भगवान् ने बारहवीं भिक्षु पड़िमा की आज्ञा मांगने से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक सारी हकीकत सुना दी। सौमिल ब्राह्मण का नाम नहीं बता कर इन शब्दों में कहा कि एक पुरूष वहां आया और उसने इस प्रकार किया। हे कृष्ण! इस प्रकार गजसुकुमाल ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया।

कृष्ण वासुदेव का कोप- कृष्ण वासुदेव ने यह वृतान्त सुनकर भगवान् के सन्मुख रोष भरे शब्दों में प्रश्न रखा कि हे भगवा-! ऐसा हीन पुण्य दुष्ट व्यक्ति कौन था जिसने मेरे सगे छोटे भाई का अकाल में ही प्राण हरण कर लिया ? भगवान् ने कृष्ण को शांत करते हुए कहा कि हे कृष्ण! तुम उस पुरूष पर गुस्सा-द्वेष मत करो क्योंकि उस पुरूष ने तो तुम्हारे भाई गजसुकुमाल अणगार को सहायता प्रदान की है।

सोमिल की सहायकता दृष्टांत द्वारा- कृष्ण ने पुनः प्रश्न कर दिया कि भंते! उसने सहायता कैसे की ? भगवान् ने समाधान करते हुए फरमाया-हे कृष्ण! जब तुम आज दर्शन के लिए आ रहे थे, मार्ग में एक वृद्ध पुरूष अपने घर के बाहर पड़े ईट के बहुत बड़े ढ़ेर में से एक-एक ईट लेकर घर में ले जा कर रख रहा था। उसे देख कर तुमने उसके ढ़ेर में से हाथी पर बैठे-बैठे ही एक ईट उठाई और उसे घर में डाल दी। तुरन्त ही अन्य राजपुरूषों के द्वारा सारा ढ़ेर उसके घर में

पहुँचा दिया गया उस बुड्ढ़े व्यक्ति का चक्कर काटना और सारी परेशानी समाप्त हो गयी। उसका दिनों और धंटों का काम मिनटों में पूरा हो गया। यह तुम्हारा प्रयत्न उस वृद्ध के लिये सहाय भूत बना। उसी प्रकार उस पुरूष ने गजसुकुमाल अणगार के लाखों भव पूर्व के संचित कर्मों को उदीरणा कर क्षय करने में सहायता प्रदान की है जिससे शीघ्र ही मिनटों में संसार भव प्रपंच समाप्त हो गया।

हत्यारे को जानने की उत्कंठा– कृष्ण वासुदेव को बिना मन के ही क्रोध को शांत करना पड़ा। फिर भी अन्दर दबे मोह और कषाय के कारण वे भगवान् से फिर पृच्छा करते है कि भते! मैं उस व्यक्ति को कैसे जान सकूंगा ? भगवान् ने फरमाया कि अभी द्वारिका नगरी में जाते समय जो व्यक्ति अचानक तुम्हारे सामने आकर भयभीत होकर स्वतः ही गिर कर मर जाएगा, तब तुम जान लेना कि यह वही पुरूष है। यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने भगवान को बंदन नमस्कार किया और नगरी में जाने के लिए प्रस्थान किया।

सौमिल की मृत्यु– उधर उस सौमिल ब्राह्मण के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि कृष्ण वासुदेव भगवान् के दर्शन करने गये है और अरिष्टनेमि भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। वे अवश्य कृष्ण को मेरे कुकृत्य की जानकारी दे देंगे। तब कृष्ण वासुदेव रूष्ट होकर मुझे न मालुम क्या सजा देंगे, किस कुमौत से मारेंगे, इस भय से भयाक्रान्त होकर वह घर से भाग निकला कि कृष्ण के वापिस आने तक मैं कहीं छिप जाऊं।

भाई की मृत्यु के दुःख से कृष्ण वासुदेव का शीघ्र ही लौटना हो गया था। सौमिल का समयानुमान गलत हो गया। कृष्ण वासुदेव शांति से नगरी में अन्य मार्ग से प्रवेश कर रहे थे। कोई भी प्रकार की आवाज नहीं होने से सौमिल ब्राह्मण को कुछ भी पता नहीं लग सका और वह अचानक कृष्ण के सामने पहुंच गया। उसके मन में आशंका और भय तो था ही कृष्ण को सामने निकट देखकर वह वहीं हार्टफेल (मूर्च्छित) होकर गिर पड़ा और मर गया। उसे देखकर कृष्ण वासुदेव समझ गये कि यही दुष्ट सौमिल मेरे भाई का हत्यारा है। उन्होंने चांडालों के द्वारा रस्सी से खिंचवा कर शव नगर के बाहर फिकवा दिया और उस भूमि जल सिंचन कर शुद्ध करवाई। इस प्रकार सौमिल ब्राह्मण स्वतः अपने कर्मों के फल का भागी बना, मरकर नरक में गया।

शिक्षा प्रेरणा–

(1) वीतरागी भगवान् अरिष्टनेमि ने सौमिल ब्राह्मण के कुकृत्य को भी कृष्ण के सन्मुख गुण रूप में रखा।

(2) महापुरूषों की संगति से प्रचण्ड कोप भी निष्फल हो जताा है।

(3) कुकर्म करते हुए व्यक्ति भविष्य का विचार नहीं करता है और कुकृत्य करने के बाद भयभीत बनता है एवं चिंतन करता है किन्तु पीछे सोचना उसका निरर्थक ही होता है। अतः पूर्व चिंतन के साथ ही कर्त्तव्य किया जाय जिससे पीछे पछतावा न हो। सौमिल यदि पहले ही यह चिंतन कर लेता कि ''मैं छिप कर भी कुकृत्य करूंगा सर्वज्ञ भगवान् तो जान ही लेंगे'' तो वह घोर पाप कृत्य से बच जाता। कहा भी है कि-

सोच करे सो सुघड नर, कर सोचे सो फूड ।
सोच कियां मुख नूर है, कर सोचे मुख धूड।।

(4) कृष्ण ने सौमिल की कन्या को गजसुकुमाल के लिए कुंवारे अंतःपुर में ही तो रखा था। गजसुकुमाल के दीक्षा ले लेने पर भी कुंवारी कन्या का अन्य किसी के साथ भी पाणिग्रहण हो सकता था। प्रचण्ड गुस्सा करने एवं मुनि घात करने जैसी कोई बात नहीं थी किन्तु वर्तमान में कोई खास कारण न भी हो फिर भी पूर्व भव के उत्कृष्ट वैर का निमित्त मिल जाता है। सौमिल के कोप का भी प्रमुख कारण पूर्वभव का वैर ही था। गजसुकुमाल के जीव ने सौमिल के मस्तक पर गर्मागर्म बाटियां बंधवा कर उसके प्राण हरण करवाए थे और उसकी खुशी मानी थी। वे ही कर्म उदय में आए थे। उसे गजसुकुमाल ने अपने कर्म का कर्ज चुकाना सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह घटना लाखों भव पूर्व की थी। इसी आशय से सूत्र में कहा गया है कि लाखों भवों के संचित कर्मों को सौमिल ने उदीरणा करवाई और क्षय करने में निमित्त बना।

(5) पापी आदमी अपने पाप के भार से स्वतः ही सौमिल के समान दुःखी बनता है और लोक में निदित होता हे। परमात्मा किसी को दुःखी नहीं करता है। कहा भी है-

राम न किस को मारता, सबसे मोटा राम ।
आप ही आप मर जात है, कर-कर खोटा काम ।।

नवमा अध्ययन-सुमुख-

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव के भाई बलदेव राजा थे। उनके सुमुख नामक पुत्र था। प्रथम अध्ययन में वर्णित गौतम के समान इसका सम्पूर्ण वर्णन है। पिछली वय में इसने भी अरिहंत अरिष्टनेमि के पास दीक्षा धारण की। ''गौतम'' के समान ही तप संयम का आराधन किया। बीस वर्षकी दीक्षा पर्याय एवं मासखमण के संथारे में उन्हें केवल-ज्ञान केवल-दर्शन उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

शेष चार अध्ययन-

इसी तरह दुर्मुख और कूपदारक का वर्णन है। ये तीनों सगे भाई उसी भव में मुक्ति गामी हुए। दारूक और अनादृष्टि का वर्णन भी इसी प्रकार है। ये दोनों वसुदेवजी के पुत्र और कृष्ण के भाई थे।

9 से 13 अध्ययन में वर्णित पांचों यादव कुमारों ने पिछली वय में 20 वर्ष संयम का आराधन कर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

चौथा वर्ग-

1 से 10 अध्ययन-जालि आदि-

इस वर्ग में दस राजकुमारों का वर्णन है। 1. जालि कुमार 2. मयालि कुमार 3. उवयाली कुमार 4 पुरिससेन 5. वारिसेण ये पांच वसुदेवजी के पुत्र और कृष्णजी के भाई थे। 6 प्रद्युम्न कुमार श्री कृष्ण व रूक्मणी का पुत्र था। 7 सांब कुमार श्री कृष्ण और जांबवती का पुत्र था, 8 अनिरूद्र कुमार-प्रद्युम्न और वेदर्भी का पुत्र था, 9 सत्यनेमि और 10 दृढनेमि ये दोनों समुद्रविजयी के पुत्र और अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् के सगे भाई थे। इन दोनों ने पिछली वय में अरिष्टनेमि के पास

संयम ग्रहण किया। द्वारदशांगी का अध्ययन किया अर्थात् 14 पूर्व धारी बने और सौलह वर्ष की दीक्षा पर्याय में एवं मासखमण के संथारे से शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए। चार वर्गों के 41 यादव पुरूषों के मोक्ष जाने का वर्णन पूरा हुआ अब पांचवे वर्ग में कृष्ण की पटराणियों एवं पुत्र बधुओं का वर्णन किया जाएगा।

पांचवां वर्ग-

प्रथम अध्ययन-पद्मावती-

द्वारिका नगरी के बाहर उद्यान में विराजमान भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन करने के लिए कृष्ण वासुदेव अपने विशाल समूह के साथ गये। कृष्ण की पउावती राणी भी अपने धार्मिक रथ में बैठकर भगवान् के दर्शनार्थ गई। सारी परिषद् समवसरण के रूप में एकत्रित हो गई। भगवान ने कृष्ण-पद्मावती तथा अन्य सम्पूर्ण परिषद् को लक्ष्य करके प्रवचन दिया, प्रवचन सुनकर कृष्ण की पटराणी पद्मावती संसार से विरक्त हो उठी उसने सम्पूर्ण वैभव त्याग कर संयम ग्रहरण करने का निर्णय कर लिया। भगवान् के समक्ष अपनी भावना को व्यक्त किया कि कृष्ण वासुदेव की आज्ञा प्राप्त करके मैं आपके पास दीक्षा लेना चाहती हूँ। भगवान् ने स्वीकृति दे दी।

कृष्ण के भगवान् अरिष्टनेमि से प्रश्नोत्तर- परिषद् प्रवचन सुनकर लौट चुकी थी। कृष्ण वासुदेव वहीं ठहरे। भगवान् को वंदन नमस्कार किया एवं अपनी जिज्ञासा का समाधान करना चाहा उन्होंने भगवान् से पूछा कि भते! इस द्वारिका नगरी का विनाश किस कारण से होगा ? प्रत्युत्तर में भगवान् ने इस प्रकार स्पष्ट समाधान कर दिया कि-सुरा (मदिरा) अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कोप के निमित्त से इस द्वारिका का विनाश हो जाएगा। यह सुनकर कृष्ण वासुदेव को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि धन्य है उन जालि मयालि आदि कुमारों को जिन्होंने सम्पूर्ण वैभव का त्याग कर अरिहंत अरिष्टनेमि के पास संयम धारण कर लिया है। मैं अधन्य अकृतपुण्य हूं जो मानुषिक कामभोगों में फंसा हुआ हूँ। अभी तक भी मैं भगवान् के पास संयम नहीं ले सका हूँ और एक दिन मेरे देखते ही द्वारिका का विनाश हो जाएगा। भगवान् ने कृष्ण को संबोधन करते हुए कहा कि हे कृष्ण! सभी वासुदेव पूर्व भव में निदान करके ही वासुदेव बनते हैं और उस निदान के तीव्र रस के कारण कोई भी वासुदेव दीक्षा अङ्गीकार नहीं कर सकते। इस पर कृष्ण की जिज्ञासा आगे बढ़ी और उसने अपने भविष्य को जानना चाहा।

समाधान करते हुए भगवान् ने कहा- ''द्वीपायन कृषि के कोप के कारण द्वारिका के जलकर नष्ट हो जाने पर माता-पिता और पारिवारिक जनों से रहित राम बलदेव के साथ तुम पांडु मथुरा जाने के लिए प्रस्थान करोगे। कोशांबी वन में पहुंच कर वट-वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिला पर पीले वस्त्र से शरीर को ढंक कर विश्राम करोगे तब जरा कुमार के द्वारा फैंका गया बाण तुम्हारे बाएं पैर में लगेगा उस समय तुम वहां से काल करके तीसरी पृथ्वी में जन्म लोगे। भगवान् के श्री मुख से आगामी भव को जानकर कृष्ण वासुदेव खिन्न मन होकर आर्त्तध्यान करने लगे व विलाप करने लगे। तब भगवान् ने श्री कृष्ण को सम्बोधन करते हुए कहा कि हे कृष्ण! तुम इस तरह आर्त्तध्यान मत करो, तुम वहां से काल करके आगामी भव में मेरे समान ही तीर्थंकर बनोगे। वहाँ सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करोगे। अपना कल्याणकारी भविष्य सुनकर श्री कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। खुशी में इतने हर्ष-विभोर हो गये कि वहां भगवान् के सन्मुख अपनी खुशी को प्रकट करते हुए सिंहनाद किया खुशी के भाव उनके यह थे कि मैं भी एक ही भव करके तीर्थंकर बनूंगा और मोक्ष प्राप्त करूंगा

अर्थात् कृष्ण वासुदेव के भव में ही उन्होंने अपनी उत्कृष्ट धर्म भावना एवं धर्मदलाली से तीर्थंकर गौत्र का बंध कर लिया था। जिससे वे तीसरे भव में आगामी उत्सर्पिणी काल में इसी भरत क्षेत्र में बारहवें ''अमम'' नाम के तीर्थंकर होंगे।

कृष्ण की धर्म-दलाली- इस प्रकार की उतार-चढ़ाव की वार्तालाप के बाद कृष्ण वासुदेव भगवान् को वंदन नमस्कार करके द्वारिका में आए। सिंहासन पर आरूढ़ होकर अपने राजकीय पुरूषों को यह आदेश दिया कि द्वारिका नगरी में तिराहे-चैराहे आदि में तीन-तीन बार यह घोषणा करवाओ कि ''इस द्वारिका नगरी का विनाश होने वाला है, जो भी राजा, राजकुमार, राणियां, सेठ, सेनापति आदि भगवान् के पास दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहें तो उनकी वासुदेव श्री कृष्ण की तरफ से आज्ञा है वे अपने पीछे की किसी भी जिम्मेदारी की कोई भी चिंता न करें। उसकी सभी व्यवस्था राज्य की तरफ से होगी। दीक्षामहोत्सव भी स्वयं श्री कृष्ण वासुदेव करेंगे। कृष्ण की आज्ञानुसार नगरी में घोषणा करदी गई। कई भाग्यशाली आत्माओं ने उस सूचना का लाभ उठाया।''

पद्मावती की दीक्षा- कृष्ण की पटराणी पद्मावतीदेवी भी विरक्त हो चुकी थी। उसने भी संयम ग्रहण करने की आज्ञा मांगी। कृष्ण वासुदेव ने सहर्ष अनुमति दे दी और बड़े समारोह के साथ अपने ही हाथों पद्मावती का दीक्षा महोत्सव किया। भगवान् के सन्मुख पद्मावती को लाये और निवेदन किया कि हे भगवान्! यह मुझे प्राणों से भी अति प्यारी पद्मावती देवी है। यह संसार से उद्विग्न विरक्त हो चुकी है, अतः इसे मैं आपको शिष्यणी रूप में भिक्षा देता हूं आप इसे स्वीकार करें।

तब अरिहंत अरिष्टनेमि ने उसे दीक्षा प्रदान की और यक्षिणी आर्या (साध्वी प्रमुखा) को शिष्यणी रूप में सुपुर्द किया। पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से संयम विधि का ज्ञान किया। ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया एवं विविध तपस्याओं से अपनी आत्म-साधना करने लगी। बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। अन्त में मास खमण के संथारे से सम्पूर्ण कर्म क्षय कर उसी भव से सिद्ध-बुद्ध मुक्त बन गई।

अध्ययन 2 से 10 तक-

इसी तरह कृष्ण की अन्य राणियां 2 गौरी, 3 गांधारी, 4 लक्ष्मणा, 5 सुसीमा, 6 जाम्बवती, 7 सत्यभामा और 8 रूक्मणी ने भी संयम स्वीकार कर 20 वर्ष में सिद्ध गति को प्राप्त किया। इसी प्रकार कृष्ण वासुदेव के पुत्र शाम्बकुमर की दोनों पत्नियां 9 मूलश्री और 10 मुलदत्ता, कृष्ण की आज्ञा लकर दीक्षित हुई। क्योंकि शाम्बकुमार पहले ही दीक्षित हो चुके थे। उन्होंने भी 10 वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन कर आत्म-कल्याण किया। इस प्रकार इस वर्ग के दस अध्ययनों में दस राणियों के मुक्तिगमन का वर्णन पूर्ण हुआ।

शिक्षा-प्रेरणा-

(1) तीर्थंकर भगवान् का संयोग मिल गया, नगरी के जलने की घोषणा कर दी गई, फिर भी सैकड़ों-हजारों नर-नारी द्वारिका में ही रह रहे है, दीक्षा अङ्गीकार नहीं करते है और वहीं पर जल-भुन कर भस्म हो जाते है। यह जीवों के भारी कर्मा होने की एक अवस्था है। भगवान् के प्रति एवं धर्म के प्रति श्रद्धा-आस्था रखने वाले भी कई जीव दीक्षा नहीं ले सके। तात्पर्य यह है कि-सयंम की भावना और सुन्दर संयोग हर किसी को नहीं मिल पाता हैं।

(2) मनुष्य भव को पाकर अपने सामर्थ्य अनुसार मौके पर धर्म का लाभ अवश्य ले लेना चाहिए। प्रमाद-आलस्य एवं उत्साह हीनता की गफलत में नहीं रह जाना चाहिए। जैसे कि श्री कृष्ण ने जान लिया कि मुझे संयम तो प्राप्त होने का नहीं है तो भी अन्यों को संयम लेने की प्रेरणा एंव सहयोग रूप दलाली करने के अवसर का लाभ प्राप्त कर लिया। द्वारिका विनाश का निमित्त भी अत्यन्त प्रेरक था। ऐसे ही श्रद्धा के एवं धर्म-दलाली के कर्त्तव्यों से उन्होने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था।

(3) उस वातावरण में श्री कृष्ण ने अपनी आठ पटरानियों को सहज ही में दीक्षा की आज्ञा दे दी थी। आज हम सभी जानते हैं कि यह जीवन चंचल है, आयुष्य एक दिन टूटने वाला है, किन्तु आलस्य प्रसाद और मोह के वश होकर धर्माराधन के कर्त्तव्य को भुला रहे है या भविष्य के भरोसे छोड़ रहे है। प्रस्तुत प्रकरण के श्रवण से हमें अपने जीवन में नया मोड़ लाना चाहिए । व्रत या महाव्रतों में अग्रसर होना चाहिए ।

(4) कृष्ण वासुदेव के जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ावों को जानकर यह समझना चाहिए कि ये बाह्य वैभव भी जब तक पुण्यवानी का शुभ संयोग है तभी तक जीव को साथ देते हैं। श्री कृष्ण का एक समय वह था जब बुलाते ही देव ने आकर द्वारिका की रचना कर दी, सुस्थितदेव ने लवण समुद्र पार करा दिया, गजसुकुमाल भाई होने की सूचना भी देव ने ही दी थी। किन्तु पुण्यवानी का उतार आया तो नगरी का एक व्यक्ति सौमिल ही गजसुकुमाल नव-दीक्षित मुनि और कृष्ण के भाई के, अरिष्टनेमि भगवान् के वहाँ विराजते हुए भी जीवित ही प्राण हरण कर लेता है एवं जो द्वारिका सदा तीर्थंकर मुनियों से पावन रहने वाली थी, प्रथम देवलोक के देवों के द्वारा निर्मित थी, उसे एक सामान्य देव जलाकर भस्म कर देता हैं। यह सब पुण्य एवं पाप-कर्मों के उदय से प्राप्त फल है। कर्मों की विचित्र अवस्थाओं को जान कर ऐसे कर्मों से सदा के लिए मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।

सम्यक्त्व के लक्षण–

शान्त हो आवेग सारे, शान्ति मन में व्याप्त हो,।
मुत्त होने की हृदय में, प्रेरणा पर्याप्त हो।
वृत्ति में वैराग्य, अन्तर भाव में करूणा रहे।
वीतराग वाणी सही, यों अटल आस्था नित रहे।

पांचवां दिन

छट्ठा वर्ग–

पांच वर्गों में बावीसवें तीर्थंकर के शासनवर्ती मोक्षगामी 51 जीवों का वर्णन किया गया है। आगे के तीनों वर्गों में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के शासन के 39 जीवों के मोक्ष जाने का वर्णन है। इस छठे वर्ग में 13 अध्ययन हैं, जिसमें सेठों का एवं अर्जुनमाली का तथा अतिमुक्त राजकुमार अर्थात् एवंता मुनि का जीवन वर्णन है।

पहला-दूसरा अध्ययन-मकाई-किंकम-

प्राचीन काल में राजगृह नामक नगर था। श्रेण्कि वहां का राजा था। मकाई सेठ उसी नगरी में रहता था। वह धनाढ्य एवं अत्यन्त समृद्ध था। एक बार भगवान महावीर स्वामी का वहां पदार्पण हुआ। मकाई सेठ भी भगवान के समवसरण में गया। भगवान के दर्शन किये, वंदन नमस्कार कर उपदेश श्रवण किया। उसका वह दिन धन्य हो गया, वह धर्म रंग में रंग गया। संयम लेने की उत्कट भावना जगी। घर आकर ज्येष्ठ पुत्र को संपूर्ण घर की जिम्मेदारी संभला दी। पुत्र ने महोत्सव के हजार पुरूष उठावे वैसी शिविका में बिठाकर भगवान के समवसरण में पहुंचाया। यथासमय भगवान ने दीक्षा का पाठ पढ़ाया। सेठ अब मकाई अणगार हो गया। संयम की विधियों को सीखकर वह समिति गुप्तिवंत बन गया। उसने सौलह वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया। ग्यारह अंग सूत्रों को कंठस्थ धारण किया। भिक्षु पड़िमा और गुण रत्न संवत्सर आदि विशिष्ट तपस्याएँ कीं। अन्य भी उपवास से लेकर मासखमण तक की तपस्याओं से अपने संयम की आराधना की। अन्त में एक महिने के संथारे में सम्पूर्ण कर्मों का क्षय किया एवं श्रेष्ठ सिद्ध गति को प्राप्त किया। मकाई सेठ के समान ही किंकम सेठ का भी वर्णन है। दीक्षा पर्याय, तपस्या, श्रुत ज्ञान आदि सभी समान है। अन्त में किंकम सेठ ने भी सम्पूर्ण कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया।

तीसरा अध्ययन-अर्जुन माली-

राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वहां ''अर्जुन'' नामक एक मालागार (माली) रहता था। जो ऋद्धि सम्पन्न था। उसके स्वयं का एक बहुत विशाल फूलों का बगीचा था। उस अर्जुन के बंधुमति नामकी स्त्री थी, जो स्त्री के सर्वगुणों लक्षणों से सुसम्पन्न थी। अर्जुन माली के उस पुष्पाराम-पुष्पवाटिका के पास में ही एक ''मुद्गरपाणि'' नामक यक्ष का मन्दिर था, उसमें मुद्गर पाणि यक्ष की प्रतिमा थी। अर्जुन माली की अनेक पीढ़ियों से उस यक्ष की पूजा की जाती थी। वह अर्जुन भी फूल इकट्ठे करके अच्छे-अच्छे फूलों को अलग चुन कर उस यक्ष की प्रतिमा को पुष्पार्षण करता था। पंचांग नमकर उसे प्रणाम करता, उसकी स्तुति-गुणगान करता, फिर फूल एवं मालाएं लेकर राज्य मार्ग में बैठकर आजीविका करता था।

ललिता गोष्ठी- उसी नगर में 'ललिता' नामक एक गोष्ठी थी। जो कि वर्तमान भाषा में 'गुण्डों की टोली' रूप में थी। उसमें जो प्रमुख पुरूष थे, वे राजा श्रेणिक के बाल मित्र थे। पूर्व प्रेम एवं वचनबद्ध होने के कारण राजा ने उन्हें सब प्रकार से छूट दे रखी थी। जिससे उनकी उद्दंडता बहुत बढ़ चुकी थी। नागरिक जन उनसे परेशान थे और वे गोष्ठी के लोग भी नगरी में प्रसिद्ध और परिचित हो चुके थें। लोग उनसे शंकित रहते हुए दूर ही रहते थे। जनता के द्वारा शिकायत करने पर भी राजा पूर्व प्रतिज्ञा बद्व होने से उन्हें नहीं रोक सका। अतः बेरोकटोक उनके कुकृत्य चलते रहते थे।

महोत्सव- एक बार नगर में कोई आनन्द का महोत्सव था। अर्जुनमाली ने सुबह जल्दी उठकर बंधुमति भार्या को भी साथ में लिया। क्योंकि फूलों की बिक्री विशेष होने वाली थी। माली-मालण दोनों बगीचे में आये, बहुत सारे फूल इकट्ठे किये। छबड़ियां भरीं और मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा के लिए कुछ चुने चुनाए सुन्दर फूल अलग लिए।

गोष्ठी के गुण्डों का उपद्रव- दोनों यक्षायतन की तरफ रवाना हुए। ललिता गोष्ठी के 6 पुरूष पहले से उस मन्दिर में पहुंच गये थे और इच्छित खेल-खेल रहे थे। अर्जुनमाली को सपत्नीक आते हुए देखा और आपस में विचार किया कि अर्जुनमाली को बांधकर हम उसकी भार्या के साथ विपुल भोगों का उपभोग करें। मंत्रणा के अनुसार वे छहों प्रवेश के बड़े दरवाजे के पीछे छिप गये । अर्जुनमाली और बंधुमति ने मन्दिर में प्रवेश किया, प्रणाम किया, फूल चढ़ाए और फिर पंचांग झुकाकर अर्थात् घुटने टेककर प्रणाम किया। उसी समय वे छहों पुरूष एक साथ निकले और उसको उसी दशा में बांधकर रख दिया और वे सभी बंधुमति मालिन के साथ इच्छित भोग भोगने लगे। आंखों के सामने इस तरह का कुकृत्य अर्जुन पड़ा-पड़ा देखता रहा। क्योंकि आवाज देने पर भी उन गुण्डों के सामने कोई भी नहीं आता। उसके मन में यक्ष के प्रति अश्रद्धा के संकल्प उठने लगे कि अरे ! बाप-दादा-पड़दादों से पूजित यह प्रतिमा केवल काष्ठ ही है। इसमें यदि यक्ष होता तो क्या वह मेरी इस आपत्ति में भी मदद नहीं करता ? इस तरह वह मन ही मन कुढ़ रहा था कि यक्ष का उधर उपयोग लग गया और अर्जुन के इन अश्रद्धा के संकल्पों को उसने जान लिया ।

यक्ष का उपद्रव- अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह वहां उपस्थित हुआ, अर्जुन के शरीर में प्रवेश किया, तड़ातड़ बन्धन तोड़े और काष्ठ की उस प्रतिमा के हाथ में रखें एक मण 22) सेर अर्थात् 57 किलो के लोहे का मुद्गर उठाया। मुद्गर लेकर क्रमशः छहों पुरूषों को मुद्गर की चोट से मौत के घाट उतार दिया और फिर यक्षा अवस्था में ही उसने बंधुमति भार्या को भी मौत के घाट उतार दिया। अर्जुन के शरीर से यक्ष नहीं निकला। अतः यक्षाविष्ट पागल बना वह अर्जुन राजगृह नगर के बाहर चौतरफ घूमता हुआ छः प्रतिदिन पुरूष और एक स्त्री को मारने लगा। राजा श्रेणिक भी यक्ष के सामने कुछ भी उपाय नहीं कर सका। नगर में घोषणा करवा दी कि कोई भी व्यक्ति किसी भी काम के लिए नगर के बाहर नहीं जाएगा। क्योकिं नगर के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुनमाली मुद्गर लेकर घूम रहा है। और मुद्गर की चोट से स्त्री पुरूषों को मार देता हैं। इस तरह उसमें पांच महिना और तेरह दिन में 1141 स्त्री पुरूषों का प्राणात किया। यह संख्या मूल पाठ में नहीं है किन्तु श्रेणिक चारित्र में मिलती हैं।

भगवान का पदार्पण- विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी का राजगृही नगरी के बाहर पदार्पण हुआ। गुणशील बगीचे में ठहरे। नगर के लोगों को मालुम पड़ा किन्तु यक्षाविष्ट अर्जुन के भय से कोई भी भगवान की सेवा में जाने के लिए तत्पर नहीं हुआ। सभी आपस में एक-दूसरे को मना करने लगे।

सुदर्शन श्रावक की अद्भुत प्रभु भक्ति- उस नगरी में सुदर्शन श्रावक रहता था। जो श्रावक के आगम वर्णित सभी गुणों से युक्त था। दृढ़ धर्मी, प्रियधर्मी था। जब उसने भगवान के आगमन की वार्ता सुनी तो दर्शन करने भगवान की सेवा में जाने का संकल्प किया। माता-पिता से आज्ञा मांगी। उत्तर-प्रत्युत्तर हुए पिता का कहना था कि यहीं से भगवान को वंदन कर लो बाहर यक्ष का प्रकोप है, प्रभु केवलज्ञानी हैं, तुम्हारा वंदन स्वीकार कर लेंगे। किन्तु सुदर्शन के उत्तर में दृढ़ता थी कि जब नगर के बाहर ही भगवान पधार गये है तो उनकी सेवा में जाकर ही दर्शन करना चाहिए। घर बैठे तो सदा करते ही है। अत्यन्त आग्रह करने पर आज्ञा मिल गई। नगर के बाहर अर्जुन का उपद्रव तो था ही। कई धर्म प्रेमी श्रद्धालु लोग इसी आशा में थे कि कोई न कोई धर्मवीर मार्ग खोलेगा। सुदर्शन को जाते देखकर कईयों को आशा बंधी। क्योकि नगर में भी उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। धीर वीर, गंभीर, अल्पभाषी, सुदर्शन अकेला ही नगर के बाहर निकला गुणशील बगीचे में जाने

की दिशा में ही मार्ग में यक्षाविष्ट अर्जुनमाली का पड़ावस्थान अर्थात् मुद्गरपाणि का यक्षा यतन आया। अर्जुन ने दूर से सुदर्शन को अपनी और आते देखा। वह उठा और सुदर्शन की तरफ मुद्गर घुमाते हुए चला।

भक्ति की अनुपम शक्ति– सुदर्शन ने यक्षाविष्ट अर्जुन को आते देखा तो वहीं ठहर गया शान्ति से भुमि का प्रमार्जन कर बैठ गया। अरिहंत सिद्धों को नमस्कार करके सागारी संथारा धारण कर लिया। उपसर्ग से मुक्त होने का आगार रखा। यक्षाविष्ट अर्जुन निकट आया और देखा कि सुदर्शन पर मुद्गर का प्रहार नहीं हो रहा है तो उसने चौतरफ घूम-घूम कर मुद्गर से मारने का प्रयत्न किया किन्तु मुद्गर आकाश में स्तंभित ही रहा, नीचे नहीं गिरा। तब यक्ष सुदर्शन के सम्मुख आकर एक टक से उसे देखने लगा। फिर भी कुछ जोर नहीं चला तो वह यक्ष अर्जुन के शरीर से निकलकर मुद्गर लेकर चला गया।

उपद्रव समाप्ति– यक्ष के निकल जाने से अर्जुन का दुर्बल बना शरीर भूमि पर गिर पड़ा। उपसर्ग समाप्ति जानकर सुदर्शन श्रमणोपासक अपने व्रत प्रतिज्ञा से निवृत्त हुआ। अर्जुन की सार संभाल की। थोड़ी देर में ही स्वस्थ होकर वह उठ गया और उसने सुदर्शन से पुछा कि तुम कौन हो और कहां जा रहे हो ? उत्तर में सुदर्शन ने अपना गंतव्य प्रकट किया। अर्जुन भी भगवान के दर्शन करने के लिए साथ हो गया। खबर फैलते देर नहीं लगी। नगरी के लोगों ने मुद्गर को जाते हुए देख लिया। सुदर्शन और अर्जुन के पीछे लोगों के झुण्ड के झुण्ड भी भगवान के दर्शन करने चले। सुदर्शन एवं अर्जुन सहित परिषद जम गई। भगवान ने विशाल परिषद में धर्मोपदेश दिया ।

अर्जुन की दीक्षा– अर्जुनमाली का अन्धकार मय जीवन भगवान की वाणी से प्रकाशमय बन गया। वीतराग धर्म की उसे श्रद्धा रूचि हुई। संयम लेना ही उसने जीवन में सार्थक समझा। बंधुमति उसकी भार्या मर ही चुकी थी, सन्तान उसके थी ही नहीं। भगवान के समक्ष अपने संयम के भाव प्रकट किये। भगवान की स्वीकृति मिल गयी। उसी समय लोच किया, वस्त्र परिवर्तन किये और भगवान की सेवा में पहुंचे । श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उसे संयम का पाठ पढ़ाया। यहां पर आज्ञा लेने का वर्णन नहीं हैं उसका कारण यह हो सकता है कि कि संक्षिप्त करने में या लिपि काल में वह वाक्य कभी रह गया हो। अर्जुनमाली का कोई भी पारिवारिक सदस्य परिषद में हो तो उसकी अथवा राजा की आज्ञा से भी दीक्षा दे दी होगी।

अर्जुन अणगार के परिषह उपसर्ग– अर्जुन अणगार ने संयम विधि समाचारी का संक्षेप में ज्ञान किया। आजीवन निरन्तर बेले-बेले पारणे करने की प्रतिज्ञा ली अर्थात् दीक्षा लेते ही बेले की तपस्या प्रारम्भ कर दी। गोचरी भी किसी मुनि द्वारा लाई हुई नहीं की। प्रथम पारणे में भी भगवदाज्ञा लेकर स्वयं ही गया । राजगृही में ही अर्जुनमाली ने 1141 मनुष्यों का प्रणान्त किया था। आज वही अर्जुन अणगार उसी नगरी में भिक्षा के लिए चला।मार्ग में चलते समय और किसी भी घर में प्रवेश करते समय उसके पास कई बालक, जवान, वृद्व, स्त्री ,पुरूष आदि आकर इस प्रकार बोलते कि- इसने मेरे पिता को मारा, इसने मेरी माता को मारा, इसने मेरी पत्नि को मारा, इसने मेरे पुत्र को मारा, इसने मेरे भाई को मारा, मेरी बहिन को मारा इत्यादि कहते, कई ताड़ना-तर्जना करते, कई हिलना खिंसना करते, कोई मारते पीटते धक्का देते, कई पत्थर फेंकते, कई घर से पकड़ कर निकाल देते । उन सबको समभाव से सहन करते हुए मन में भी किसी के प्रति कुछ भी रोष न करते हुए झुंझलाहट एवं आर्त्तध्यान से मुक्त होकर शांत गम्भीर भावों के साथ अर्जुन अणगार ने बेले के पारणे में भिक्षार्थ भ्रमण किया। इस प्रकार की परिस्थिति में राजगृही नगरी में उन्हें बहुत कठिनाई से आहार पानी मिला। जो कुछ भी मिला उसी में

संतोष कर उद्यान में लौट गये। भगवान के पास पहुंचकर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया, दोषों की आलोचना की एंव आहार दिखाया। फिर भगवान की आज्ञा लेकर राग द्वेष के भावों से रहित होकर उस आहार पानी का सेवन किया।

अर्जुन अणगार की मुक्ति– अर्जुन अणगार ने इसी प्रकार छः महिने तक शुद्ध संयम का पालन किया। बेले-बेले के पारणे से एवं समभावों से ही उन्होंने अपने कर्म बन्धनों के वृन्द समाप्त किए। अल्प दीक्षा पर्याय से एवं पन्द्रह दिन के संथारे से अर्जुन मुनि ने सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया।

शिक्षा–प्रेरणा–

(1) गलत आज्ञा या वचन को निभाने का आग्रह करना उचित नहीं कहा जा सकता। उससे अत्यन्त अहित होता जानकर परिवर्तित कर देना ही विवेक व्यवहार कहलाता है। अन्यथा वह दुराग्रह हानिकर ही होता है।ललित गोष्ठी पर अंकुश नहीं लगाने से राजा श्रेणिक की राजधानी के नागरिक लोगों में अशांति बढ़ी। राजा की भी इज्जत घटी और सैकडों का जन संहार हुआ।अतः खोटी अहितकर प्रतिज्ञा या वचन का कभी भी आग्रह नहीं रखना चाहिए।

(2) तीर्थंकर भगवान के पधारने के बाद उस क्षेत्र में रहा हुआ उपद्रव या रोगान्तक किसी भी निमित्त से शान्त हो जाता है। अर्जुन का उपद्रव भी सुदर्शन श्रावक के निमित्त से दूर हुआ। मूल कारण तो भगवान के पधारने का ही समझना चाहिए। इसी कारण दैविक शक्ति भी स्तब्ध हो गई।

(3) किसी भी व्यक्ति के भूतकाल के जीवन से वर्त्तमान में घृणा करना सज्जनता नहीं किन्तु दुर्जनता हैं। दिशा पलटते ही व्यक्ति की दशा पलट जाती है। भूत की दृष्टि से व्यक्ति को देखते रहना यह मानव की एक तुच्छ एंव मलिन वृत्ति है। व्यक्ति का कब कितना विकास हो सकता है इसका भी विवेक रखना चाहिए। पापी से पापी प्राणी का जीवन भी परिवर्तित हो सकता हैं। प्रदेशी राजा, अर्जुनमाली, प्रभव-चोर इत्यादि अनेकों उदाहरण हैं।

कवि के शब्दों में –

घृणा पाप से हो, पापी से नहीं कभी लवलेश।
भूल सुझा कर न्याय मार्ग में करो यही यत्नेश ।।

-यही है महावीर संदेश ।।

(4) किसी भी धार्मिक व्यक्ति से या मानव मात्र से अथवा तो किसी भी प्राणीमात्र से घृणा करना, उसकी निन्दा करना यह निम्न दर्जे के पुरूषों का काम हैं। सज्जन और विवेकी धर्मीजन का यही कर्त्तव्य है कि वह किसी भी व्यक्ति से घृणा या निन्दा का व्यवहार न करें। पाप या पापमय सिद्धान्त की निंदा या नफरत रखना तो गुण की गिनती में है वहीं पापी से या किसी व्यक्ति से घृणा करना अवगुण है अधार्मिकता है।

(5) भगवान् ने सैकड़ों मानवों के हत्यारे अर्जुन से किंचित भी घृणा छुआछुत नहीं किया। भगवान तो दूर की बात, किन्तु उनका एक उपासक वह भी उसे दुष्ट हत्यारा आदि कह कर नहीं दुत्कारता है किन्तु उसकी तत्काल सेवा परिचर्या करता है। उसको भगवान् के समवसरण में अपने साथ लाता है और भगवान् उसे उसी दिन उसी हालत

में अपनी श्रमण सम्पदा में ले लेते हैं। इस दृष्टान्त से हमें हृदय की उदारता विशालता की आदर्श शिक्षा को जीवन में उतारना चाहिए एवं तुच्छता संकीर्ण मानसता आदि अवगुणों को तिलांजलि देना चाहिए ।

(6) अर्जुन ने अल्प समय में ही अपने जीवन और विचारों को तीव्र गति से मोड़ दिया । आज हमें भी अपनी साधना में मान अपमान, ईर्ष्या-देष, कषाय आदि प्रवृत्तियों को उपशमन करने में एवं अपनी आत्मा को समभावों में और सहज भावों में सलग्न करने में ढ़ील या देर नहीं करनी चाहिए। वर्षों की धर्म जीवन पर्याय या श्रमण पर्याय हो जाय फिर भी हम कहीं तो अशान्त बन जाते है, कहीं अपने मान अपमान की बातें करते है, कहीं दूसरों के व्यवहार की चर्चा करते है, किसी की निन्दा तिरस्कार में रस लेते, किसी पर रूष्ट हो जाते तो किसी पर तुष्ट हो जाते हैं। जीवन के किंचित सुखमय क्षणों में हम कभी फूले नहीं समाते तो कभी मुर्झा कर म्लान उदासीन बन जाते है। यह सब मार्ग से भटकना हैं। केवल साधु वेश या द्रव्य चर्चा मात्र है। इससे संयम की सफलता या धर्म जीवन की सफलता नहीं हो सकती है।

(7) हमारे आत्म प्रदेश के कण कण में एवं व्यवहारिक जीवन में धार्मिकता, उदारता, सरलता, नम्रता, शान्ति, क्षमा, विचारों की पवित्रता एवं पापी- धर्मी सभी के प्रति सहज स्वाभाविकता का व्यवहार आएगा, तभी अर्जुन एवं गजसुकुमाल सरीखे उदाहरण सुनने का हमें सही सच्चे अर्थों में लाभ प्राप्त होगा।

(8) चाहे गृहस्थ जीवन हो या संयम जीवन, धर्म के आचरणों से हमारे जीवन में शान्ति, प्रेम, मैत्री, माध्यस्थ भावों की और समभावों की वृद्धि होनी चाहिए। इसके विपरीत यदि किसी के प्रति भी अशान्ति, अप्रेम, अमैत्री, विपरीत भाव और विषम भावों की प्राप्ति होती है तो समझना चाहिए कि आत्मा में धर्म का सही परिणमन नहीं हो पाया है अपितु यह धर्माचरण केवल दिखने का द्रव्य आचारण मात्र है। यह जानकार प्रत्येक मुमुक्षु प्राणी को धर्म का सही लाभ और सच्चा आनन्द प्राप्त करने के लिए आत्मा को सदा सुसंस्कारों से भावित करते रहना चाहिए। अपने अवगुणों को छांट-छांट कर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए और आत्म गुणों की वृद्धि करते रहना चाहिए।

(9) सुदर्शन श्रावक के जीवन से धर्म प्रेम की उत्कृष्टता, दृढ़ता, एवं निर्भीकता की क्षिक्षा लेनी चाहिए। गंभीरता और विवेक तथा संकट में भी शान्ति के साथ संथारा करने की शिक्षा भी लेनी चाहिए।

(10) एक ही उत्तम व्यक्ति पूरे नगर को सुखी और घर को स्वर्ग मय बना देता है और अधर्मी व्यक्ति सारे नगर को संकट मय और घर को नरक बना देते हैं। अतः अपनी जिम्मेदारी जहां तक भी है वहां पर कभी भी किसी के भी कुसंस्कार या अन्याय अनीति नहीं बढ़ने पावे इसका विवेक अवश्य रखना चाहिए।

(11) ललित गोष्ठी के कर्तव्यों से नागरिक जन परेशान हो गये थे और अन्त में यक्ष के उपद्रव से भारी संकट ग्रस्त बन गये थे।

(12) सुदर्शन श्रमणोसक के कर्तव्य से नगरी में हर्ष-हर्ष हो गया। श्रेणिक राजा की चिंता भी मिट गई और अर्जुन का भी बेड़ा पार हो गया।

(13) हमें भी भगवान की वाणी रूप शास्त्र श्रवण एवं गुरु भगवन्तों का ज्ञानियों का शुभ संयोग मिल गया है, अतः हमारा भी बेड़ा पार हो जाना चाहिए। जो भी साधक धर्माचरण और भावों की विशुद्धि बढ़ा कर आत्मोन्नति करेंगे, उनका अवश्य ही बेड़ा पार हो जाएगा।

श्रावक भावना-

धन्य है मुनिवर जो महाव्रत पालते सद्भाव से।
सर्व हिंसा त्याग कर वे जी रहे सम भाव से।
है महाव्रत साध्य मेरा किन्तु अभी दुःसाध्य है।
अणुव्रत का मार्ग मुझको सरल और सुसाध्य है।

छठवां दिन

छठवां वर्ग-4 से 14 अध्ययन-

प्रथम अध्ययन में वर्णित ''मकाई सेठ'' के समान 4. काश्यप 5. क्षेमक 6. धृतिधर 7. कैलाश 8. हरिचन्दन 9. वारत्तक 10. सुदर्शन 11. पूर्ण भद्र 12. सुमन भद्र 13. सुप्रतिष्ठित 14. मेघ इन ग्यारह गाथपति सेठों का गृहस्थ जीवन, वैराग्य भगवान महावीर के पास दीक्षा, ग्यारह अंग का ज्ञान एवं तप, संथारा तथा मोक्ष जाने तक का वर्णन है। विशेषता यह है कि-

4. काश्यप सेठ राजग्रही नगरी का निवासी था उसकी सौलह वर्ष की संयम पर्याय थी। 5. क्षेमक सेठ और 6. धृतिधर सेठ कांकदी के निवासी थे, दीक्षा पर्याय 16. वर्ष की थी। (7.8) कैलाश सेठ और और हरिचन्दन सेठ साकेत नगर के निवासी थे, बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय थी। 9. वारत्तक सेठ राजगृही का निवासी था, बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय थी। (10-11) सुदर्शन सेठ और पूर्णभद्र सेठ वाणिज्यग्राम नामक नगर के निवासी थे और दीक्षा पर्याय पांच वर्ष की थी। 12. सुमन भद्र सेठ श्रावस्ती का निवासी था, उसकी दीक्षा पर्याय अनेक वर्षों की थी। 13. सुप्रतिष्ठित सेठ श्रावस्ती का निवासी था, सतावीस वर्ष की उसकी दीक्षा पर्याय थी। 14. मेघ नामक सेठ राजगृही का निवासी था, बहुत वर्षों की उसकी दीक्षा पर्याय थी। ये सभी विपुल पर्वत पर एक महिने के संथारे से सिद्ध हुए।

पन्द्रहवां अध्ययन-एवंता मुनिवर-

पोलास पुरी नगरी में विजय राजा राज्य करता था। उनके श्रीदेवी नामक राणी ने एक सुन्दर सुकुमाल पुत्र को जन्म दिया।जिसका नाम अतिमुक्तकुमार रखा। इन्हें एवंता कुमार के नाम से भी जाना जाने लगा।

गौतम गणधर और एवंता बालक का संयोग-

भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए उस नगरी में पधारे ।एक दिन भगवान के प्रथम गणधर गौतम स्वामी बेले के पारणे के लिए नगरी में गोचरी पधारे। एवंता कुमार का अभी बाल्यकाल था। कलाचार्य के पास अध्ययन के लिए नहीं भेजा गया था। अतः आठ वर्ष या इसके लगभग की ही उम्र थी । वह अपने समवयस्क बालक-बालिकाओं के साथ घर

से निकलकर राज भवन के निकट ही क्रीड़ा स्थल में अर्थात् खेलने के मैदान में आकर खेलने लगा। गौतम स्वामी उस खेल के मैदान के पास से निकले। खेलते हुए एंवता की दृष्टि गौतम अणगार पर पड़ी। उसका चित्त खेल छोड़कर उधर खिंच गया। वह गौतम अणगार के निकट पहुंच गया और पूछने लगा कि-आप कौन है और क्यों घूम रहे हैं। गौतम गणधर ने बालक की बात पर उपेक्षा नहीं की। बराबर उत्तर दिया कि हम श्रमण निर्ग्रंथ है अर्थात् जैन साधु है और भिक्षु द्वारा आहार-पानी लाने के लिए घरों में भ्रमण करते है। एवंता कुमार सही आशय समझ गया, अविलम्ब उसने निवेदन कर दिया कि-चलिए आप मेरे घर, मैं आपको भिक्षा दिलवाता हूं। ऐसा कहकर गौतम गणधर की अंगुली पकड़ ली और अपने घर ले जाने लगा।

श्रीदेवी का सुपात्र दान एवं व्यवहार- एवंता की माता श्रीदेवी ने दूर से ही गौतम स्वामी को आते हुए देख लिया, अति हर्षित हुई। आसन से उठाकर सामने आई। गौतम स्वामी के निकट आकर तीन बार आवर्त्तन करते हुए वंदन नमस्कार रूप अभिवादन किया। फिर रसोई घर में ले गई। प्रसन्नता और विवेकपूर्वक यथेच्छ आहार पानी गौतम स्वामी को बहराया और उन्हें सम्मान पूर्वक विदाई दी। एवंता कुमार यह सब देखकर मन में खुश हो रहा था कि मैं जिनको घर में लाया हूँ वे मेरे पिता राजा से भी बहुत बड़े उच्च व्यक्ति हैं जिनका मेरी माता ने भक्तिपूर्वक स्वागत एवं प्रणाम किया।

एवंता की जिज्ञासा एवं भगवान् के दर्शन- गौतम स्वामी घर से निकल कर ज्यों ही बाहर जाने लगे तो एवंता ने तुरन्त पूछ लिया कि आप कहां रहते हो ? कहां जावोगे ? गौतम स्वामी ने एवंता के प्रश्न की उपेक्षा न करते हुए स्पष्टीकण किया कि-नगर के बाहर श्रीवन बगीचे में हमारे धर्मगुरू धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान हैं, वहां हम रहते हैं, वहीं मैं जा रहा हूँ। एवंता कुमार को आनन्द तो आ ही रहा था गौतम स्वामी के दर्शन एवं व्यवहार से। अतः उसने निवेदन किया कि मैं भी आपके साथ भगवान के चरण वंदन करने चलता हूं। गौतम स्वामी ने मुनि भाषा में स्वीकृति दे दी। एवंता कुमार गौतम स्वामी के साथ भगवान की सेवा में पहुंचा, विधिवत वंदन किया और भगवान के समीप बैठ गया। गौतम स्वामी भगवान को आहार दिखाकर अपने स्थान में चले गये।

एवन्ता को वैराग्य- भगवान ने अवसर देखकर एवन्ता को प्रमुख लक्ष्य करके और भी वहां पर उपस्थित श्रोताओं को वैराग्यमय धर्मोंपदेश दिया। भगवान के सरल सीधे वाक्य एवंता के गले उतर गये। उसका वह दिन और संयोग धन्य हो गया। अल्प समय की संगति ने उसके दिल में संयम लेने का दृढ़ संकल्प भर दिया। उसके अन्तर तह तक वैराग्य का रंग-रम गया। भगवान से संयम की स्वीकृति लेकर एवंता घर पहुंचा। माता-पिता को सम्पूर्ण वृत्तांत कहा। माता बहुत खुश हुई और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अन्त में दीक्षा लेने की बात भी उसने कह दी।

माता के साथ संवाद-

श्रीदवी-माता उसे उपेक्षा पूर्वक कहने लगी कि अभी तो 'तू नासमझ नादान है, अभी तू क्या जाने धर्म में और दीक्षा मे। यों कह कर उसे टालने का व्यवहार किया। किन्तु एवंता कुमार वास्तव में निर्भीक बालक था। उसने अपरिचित गौतम स्वामी से भी हिचक नहीं रखी, तो माता के सामने कुछ भी संकोच वह क्यों करे। उसने तुरन्त ही अपनी बात रख दी।

एवन्ता- हे माता ! आप मुझे नासमझ कह कर टालना चाहती हो, किन्तु हे माता ! मैं ''जो जानता हूँ सो नहीं जानता हूं और जो नहीं जानता हूं वह जानता हूं।'' माता वास्तव में टालना चाहती थी किन्तु एवंता के इन वाक्यों ने माता को उलझा दिया। वह भी इन वाक्यों का अर्थ नहीं समझ सकी और एवंता से ऐसे परस्पर विपरीत वाक्यों का अर्थ पूछने लगी। एंवता ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी से शिक्षा पाई थी और स्वयं भी बुद्धि निधान हस्ती थी। माता का समाधान करते हुए उसने कहा-

एवन्ता- 1. हे माता-पिता-मैं जानता हूं कि जा जन्मा है सो अवश्य मरेगा, अतः मैं भी मरूंगा अवश्य किन्तु ''कब, कहां, किस तरह मरूंगा यह मैं नहीं जानता हूं। अर्थात् क्षण भंगुर यह विनश्वर मनुष्य शरीर कब छूट जायगा, कब मृत्यु होगी, यह मैं नहीं जानता हूं।

2. हे माता-पिता! मैं यह नहीं जानता हूं कि मरकर कहां जाऊंगा, किस गति या योनि में जन्मना पड़ेगा, किन्तु यह मैं जानता हूं कि जीव जैसा कर्म इस भव में करेगा उसी के अनुसार उसे फल प्राप्त होगा तदनुसार ही उसे वैसी गति और योनि में उत्पन्न होना होगा। अर्थात् जीव स्वकृत कर्मानुसार ही नरक स्वर्ग आदि चतुर्गति में जन्मते हैं, यह मैं जानता हूं।

उत्तर का सार- अतः हे माता-पिता! क्षण विनश्वर इस मानव भव में शीघ्र धर्म व संयम का पालन कर लेना ही उपयुक्त है। जिससे इस क्षणिक मानव भव का अप्रमत्तता से उपयोग हो जायेगा और मरने पर भी उससे सद्‌गति का ही परिणाम बनेगा अर्थात् संयम धर्म की आराधना से जीव स्वर्ग या मुक्तिगामी ही बनता है अन्य सब दुर्गति के मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं इसलिये है माता-पिता! मैं श्रमण भगवान महावरी स्वामी के पास दीक्षित होना चाहता हूं आप मुझे आज्ञा (स्वीकृति) प्रदान करें। इस प्रकार एवंता ने अपने वाक्यों की सत्यता सिद्ध कर दी कि-

1. जो मैं जानता हूं वह नहीं जानता हूं और 2. जो नहीं जानता हूं, वह जानता हूं ''जं चेव जाणामि, तं चेव ण जाणामि और जं चेव ण जाणामि. त चेव जाणामि।''

एवन्ता राजा- अन्य प्रकार से भी माता-पिता ने उसे समझाने का और टालने का प्रयत्न किया। किन्तु एवन्ता की रूचि व लगन अन्तर की समझ पूर्वक थी। उसका निर्णय सबल था। अतः माता-पिता उसके विचार परिवर्तित करने में निष्फल रहे। तब उन्होंने केवल अपने मन की सन्तुष्टी के लिए उसे एक दिन का राज्य दिया अर्थात् उनके राज्याभिषक करने की खुद की इच्छा, तमन्ना पूरी की। एवंता एक दिन के लिये राजा बना किन्तु बालक होते हुए भी उसकी दिशा बदल चुकी थी। उस बाल राजा ने माता-पिता के पूछने पर अपनी दीक्षा के सम्बन्धी आदेश दे दिया।

एवन्ता की दीक्षा- माता-पिता ने अपनी रूचि अनुसार उसका दीक्षा महोत्सव किया और भगवान की सेवा में ले जाकर शिष्य की भिक्षा अर्पित की अर्थात् उस बाल कुमार एवन्ता को दीक्षित करने की स्वीकृति दे दी। भगवान ने उसको दीक्षा पाठ पढ़ाया। उसे योग्य विधि से संक्षेप में संयमाचार का ज्ञान एवं अभ्यास कराया गया।

एवन्ता मुनि की द्रव्य नैया तिरी- एक दिन वर्षावास में वर्षा बरसने के बाद श्रमण शौच निवृत्ति के लिए नगर के बाहर जा रहे थे, एवन्ता भी साथ हो गया। नगर के बाहर कुछ दूरी पर उसे अपनी पातरी और जल देकर बिठा दिया और वे श्रमण कुछ दूर आगे चले गये। कुमार श्रमण शौच निवृत्त होकर सूचित स्थान में आकर रूक गया और श्रमणों का

इन्तजार करने लगा। जहां वह रूका हुआ था वहां एक तरफ वर्षा का पानी मंदगति से बहकर जा रहा था। उसे देख एवन्ता मुनि का क्षण भर के लिये बाल्य भाव जाग उठा। उसमें वह संयम अवस्था एवं उसकी विधि को भुला गया। आस-पास की मिट्टी ली, पानी के बहाव को रोक दिया, रूके हुए पानी में अपनी पातरी छोड़ दी और उसको धक्का देते हुये इस प्रकार बोलने लगा कि-''मेरी नाव तिर रही है, मेरी नाव तिर रही है।'' इस प्रकार वह वहां खेलते हुये समय व्यतीत करने लगा थोड़ी देर में अन्य श्रमण भी शोच निवृत्त होकर आ पहुंचे। दूर से ही उन्होंने कुमार श्रमण के खेलने की प्रवृत्ति को देख लिया। निकट आये जब तक एवंता मुनि अपने खेल से निवृत्त होकर उनके साथ हो लिए।

स्थविरों का समाधान- श्रमणों के मानस में एवंता मुनि का वह दृश्य चक्कर काट रहा था। वे भगवान के पास पहुंचे और प्रश्न कर लिया कि भंते! आपका अंतेवासी शिष्य एवंता कुमार श्रमण कितने भव करके मोक्ष जाएगा ? भगवान ने उत्तर में कहा कि हे आर्यों यह कुमार श्रमण एवंता इसी भव में मोक्ष जाएगा। आप लोग इससे किंचित भी नफरत, घृणा, कुतुहल-भाव न करके, सम्यक् प्रकार से इसे शिक्षित करो और संयम क्रियाओं से इसे अभ्यस्त करो। अर्थात् किसी प्रकार की गलती कर लेने पर हीन भावना या उपेक्षा न लाते हुए बाल श्रमण की बराबर सार संभाल, विवेक ज्ञान दान, सेवा आदि करो, किन्तु हीलना, निन्दा, खिंसना, गर्हा या अपमान आदि न करो। भगवान के वचनों को स्वीकार करते हुए श्रमणों ने अपनी भूल स्वीकार की श्रमण भगवान को वन्दना नमस्कार किया एवं एवंता मुनि का ध्यान पूर्वक संरक्षण संवर्धन करने लगे। और भत्ति पूर्वक योग्य आहार पानी आदि से वैयावृत्य करने लगे।

एवंता मुनि का मोक्ष-

एवंता मुनि ने यथा समय ग्यारह अंगों का अध्ययन कंठस्थ किया। विविध तपस्याओं में अपनी शक्ति का विकास किया भिक्षु की बारह पड़िमाएं और गुणरत्न-संवत्सर तप का आराधन किया बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय का पालन करते हुए एक मास के संथारे से उन्होने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय किया और मोक्ष में विराजमान हो गये ।

शिक्षा प्रेरणा-

(1.) भाग्यशाली हलुकर्मी जीवों को सहज ही सुसंयोग और धर्मा-चरण की प्राप्ति हो जाती है और सम्यक् पुरूषार्थ के द्वारा वे अपने प्राप्त उस सुसंयोग को सफल कर लेते हैं। हमें भी मानव भव, शास्त्र श्रवण, मुनि सेवा आदि का सुअवसर प्राप्त हुआ हैं। इसे अधिक से अधिक सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान एवं वैराग्य के द्वारा आलस्य, लापरवाही एवं उपेक्षा के भावों को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

(2.) एक नन्हा सा बालक भी जीवन और धर्म के सार पूर्ण तथ्य को सरलता से समझ सकता है और उसका सही विश्लेषण कर सकता हैं। तो क्या हम इस छोटी सी बात को भी हृदयंगम नहीं कर सकते कि- जन्मा है उसे मरना अवश्य पड़ेगा, कब कैसे मौत आयेगी ? इसका किसी को कुछ पता नहीं हैं ? जीव जैसे आचरण करेगा उसी के अनुसार भविष्य की गति होगी यह भी निश्चित हैं। इस मामूली सी बात को हमें लक्ष्य देकर बाल मुनि का आदर्श सामने रखकर समझने का प्रयत्न करना चाहिए एवं योग्यता या अवसर के अनुसार जीवन सुधार में, धर्माचरण में और भविष्य को कल्याण मय बनाने में, यत्किंचित पुरूषार्थ बढ़ाते रहना चाहिए।

(3.) **बुद्धिमत्ता, उपज और उत्साह-** 1. खेल छोड़ कर एक रास्ते चलते महात्मा से उनका परिचय पूछना किन्तु उनकी खिल्ली नहीं उड़ाना 2. भिक्षा की बात जानते ही अपने घर ले जाने का निवेदन करना 3. भिक्षा लेकर निकलते मुनि से विवेक पूर्वक उनका निवास पूछना 4. निवास और भगवान का परिचय मिलते ही तत्काल साथ ही चल देना 5. भगवान की सेवा में पहुंचकर सविधि वन्दना करना 6. शांति से बैठ जाना, 7. धर्म और संयम की रूचि को भगवान् के समक्ष रखना, 8.माता पिता से स्वयं ही आज्ञा प्राप्ति के लिये निवेदन करना। 9. भगवान से मिले ज्ञान के सार के आधार से चमत्कारिक उत्तर देना 10. बहते पानी में नाव तिराने के लिए पहले रेत से पानी को रोक कर फिर पातरी तिराने के लिए पानी में छोड़ना। ऐसा नहीं करते तो उसके पीछे पीछे भागना पड़ता। 11. श्रमणों को आते हुए देखकर उस खेल से तुरन्त निवृत्त होकर चलने के लिए तैयार हो जाना।

(4.) वर्षा के मौसम में भी सन्तों के शौच निवृत्ति के लिए बाहर जाने का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत अध्ययन में है।

(5.) बाल दीक्षा का एकांत विरोध करना अनागमिक है। विवेक की सर्वत्र आवश्यकता स्वतः सिद्ध है। अनेकांत सिद्धांत को पाकर किसी भी व्यवहार प्रवृत्ति में एकान्त आग्रह नहीं रखना चाहिए। 8 वर्ष, 16 वर्ष, पिछली अन्तिम वय अर्थात् हजार वर्ष की उम्र में भी केवल 10-20 वर्ष संयम पालन के उदाहरण इसी आगम में है। सेठ, राजा, राणी, राजकुमार, माली के दीक्षित होने एवं मोक्ष जाने के उदाहरण इस आगम में है। अन्य आगमों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र के संयम ग्रहण कर मोक्ष जाने का वर्णन है। अतः आगम आज्ञा के अतिरिक्त कोई भी एकांत आग्रह रखना या करना भगवदाज्ञा में नहीं है। वह केवल व्यक्तिगत आग्रह ही रह जाता है।

(6) उत्कृष्टाचार के नाम से अनुदारता, संकीर्ण-वृत्ति, घृणा-भाव एवं तुच्छता-पूर्ण जो भी प्रवृत्तियां समाज में श्रमणों द्वारा की जाती है, उन्हें इस अध्ययन की निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

1. एवन्ता का गौतम स्वामी को खेल के मैदान से निमन्त्रण देकर साथ ले जाना। 2. आचार्य से भी विशिष्ट महत्वशाली गणधर पदवी वाले गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ कर चलना, 3. बच्चे को घर बताने साथ चलने देना 4. उपाश्रय में भी साथ चलने की स्वीकृति देना 5. बालमुनि को कच्चे पानी का संघट्टा करने पर भी उसके साथ अभद्र व्यवहार नहीं करना, 6. भगवान् के द्वारा भी बालमुनि को बुलाकर नहीं डांटना, अपितु श्रमणों को ही सेवा भाव के लिए एवं सार-संभाल, शिक्षण, संरक्षण के लिए प्रेरणा करना। ये सब उदारता पूर्ण व्यवहार चिंतन मनन करने योग्य है। इससे उदार भावों की वृद्धि करने में प्रेरणा मिलती है और से उदार भावों के व्यवहार से कई जीवों को उन्नति करने का अवसर एवं सुसंयोग मिलता है। साथ ही ऐसी वृत्ति से मानव में समता भाव की वृद्धि होती है।

(7) माता ने एवन्ता को अकेले ही बगीचे में जाने दिया कुछ भी रोक टोक नहीं की। गौतम स्वामी या सन्त कोई उसे पुनः घर पहुंचाने नहीं आए। अतः नामसझ उम्र नहीं थी एवं अंगुली पकड़ कर चलने की प्रवृत्ति से उन्हें अधिक उम्र का भी नहीं माना जा सकता। सवा आठ वर्ष वाले बालक को दीक्षा देने का विधान भी आगम में है। अतः एवंता के मुनि बनने की उम्र आठ नव वर्ष के लगभग ही समझनी चाहिए। मूल पाठ में उम्र का अलग से कोई भी स्पष्टीकरण नही है।

(8) इस अध्ययन से हमें भी जीवन में संयम ग्रहण की प्रेरणा लेनी चाहिए। एक बालक भी मानव भव का इतना मूल्यांकन कर सकता है तो हम प्रौढ़ वय में पहुंचे है और श्रावक का दूसरा मनोरथ भी संयम लेने का सदा रहता ही है। अतः उसे सफल करने का भी कभी प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे ऐसे आर्दश दृष्टांत सुनकर तो अवश्य ही जीवन में कोई नया मोड़ लाना चाहिए और आध्यात्म मार्ग में कदम आगे बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प करना चाहिए।

- पर-निंदा, अवगुण-अपवाद करना भी पन्द्रहवां पाप है।
- अठारह पाप का त्यागी किसी की भी व्यक्तिगत निंदा हीलना करता है, तो वह भी पापी श्रमण बनता है। वह भी सावद्य योग का सेवन करने वाला संयम भ्रष्ट बनता है।
- पर निंदा करना पीठ का मांस खाने की उपमा वाला है। अतः आत्मार्थी मुनि पर निंदा के पाप से प्रति क्षण बचने के लिए सावधान रहे।
- किसी भी साधु या गृहस्थ की आशातना अवहेलना करने पर साधु साध्वी चौमासी प्रायश्चित्त के दोषी होते हैं।

-निशीय सूत्र उद्देशा-13 एवं 15

सातवां दिन

सोलहवां अध्ययन–अलक्ष राजा–

वाराणसी नाम की नगरी थी। अलक्ष नामका वहां राजा राज्य करता था। वह भगवान् का परम भक्त श्रमणोपासक था। एक बार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। अलक्ष राजा कोणिक की भांति अपने ऋद्धि एवं परिवार सहित भगवान् के दर्शन करने गया एवं भगवान् का धर्मोपदेश सुना। उपदेश सुनकर राजा विरक्त हो गया। अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य भार सौंप कर भगवान् की सेवा में दीक्षित हो गया। संयम तप का पालन करते हुए अलक्ष राजर्षि ने ग्यारह अङ्गो का ज्ञान कंठस्थ किया। पूर्व वर्णित भिक्षु पडिमा एवं गुणरत्न संवत्सर तप का भी आराधन किया। अनेक वर्षों तक की संयम पर्याय का पालन कर वे राजर्षि मास खमण के संथारे से विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए। इस अन्तगड सूत्र में इस एक अध्ययन में ही राजर्षि के मोक्ष जाने का स्पष्ट वर्णन है। पिछली वय में दीक्षा ली फिर भी 11 अङ्ग का अध्ययन कंठस्थ किया। इससे यह ध्रुव सिद्धान्त मान्य करना चाहिए कि जिनशासन में दीक्षित प्रत्येक श्रमण श्रमणी के लिए आगम ज्ञान का कंठस्थ करना एक आवश्यक एवं प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता था। चाहे राजा दीक्षा ले या राणी। केवल अल्प उम्र (संयम पर्याय) वाले अर्जुन मुनि एवं गजसुकुमाल मुनि के अध्ययन का वर्णन नहीं है। शेष सभी ने 11 अङ्ग या 12 अङ्ग का कंठस्थ ज्ञान किया था।

सातवां वर्ग

पहला अध्ययन-नंदा राणी-

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसके अनेक राणियां थीं। अर्थात् नंदा आदि तेरह राणियां, काली आदि दस एवं चेलना, धारणी आदि राणियां थीं। एक-बार भगवान् महावीर स्वामी का वहां पर्दापण हुआ। नंदा राणी ने भगवान् का उपदेश सुना दीक्षा लेने की अन्तरभावना दृढ़ बनी। श्रेणिक राजा की आज्ञा लेकर भगवान् के पास दीक्षित हुई। भगवान ने उसे चंदना आर्या के सुपुर्द किया। उस नंदा श्रमणी ने बीस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया। ग्यारह अंगों का अध्ययन कंठस्थ किया। गुणरत्न संवत्सर तप किया। अन्य भी मास खमण तक की अनेक तपस्याएं कीं। अन्त में एक महिने के संथारे से उपाश्रय में ही सिद्ध हुई। साध्वियां पर्वत पर जाकर संथारा नहीं करती हैं। साध्वियां ग्यारह अंग का अध्ययन करती हैं। बारहवेंअंग का अध्ययन केवल श्रमण ही करते हैं। इसी प्रकार बारह भिक्षु पडिमा केवल श्रमण ही धारण करते हैं, श्रमणियाँ नहीं करती हैं। क्योंकि श्रमणी अकेली नहीं रह सकती, श्रमण अकेले रहते हैं। बारह भिक्षु प्रतिमा में अकेले रहना आवश्यक होता है। भिक्षु की बारह प्रतिमा नव पूर्व धारी ही धारण कर सकते हैं ऐसी प्ररूपणा करने की एक परम्परा चल पड़ी है किन्तु इस अंतगड़ सूत्र में केवल ग्यारह अंग के अध्ययन करने वाले कई श्रमणों ने बारह भिक्षु पड़िमा का आराधन किया ऐसा वर्णन है। अतः साधु के अकेले रहने के लिए और भिक्षु पडिमा धारण करने के लिए नव पूर्व के ज्ञान की प्ररूपणा शुद्ध नहीं है एवं आगम सम्मत भी नहीं है। अन्य विविध तपस्याएं साध्वी कर सकती है जिनका वर्णन आगे आठवें वर्ग में है।

अध्ययन 2 से 13-

नन्दा के वर्णन के समान ही श्रेणिक की अन्य बारह राणियों का वर्णन जानना चाहिए सभी ने श्रेणिक की मौजूदगी में दीक्षा ली। बीस वर्ष तक संयम पालन करके मोक्ष प्राप्त किया। उनके नाम इस प्रकार है-

2 नन्दवती 3 नन्दोत्तरा 4 नन्दश्रेणिका 5 मरूता 6 सुमरूता 7 महामरूता 8 मरूदेवा 9 भद्रा 10 सुभद्रा 11 सुजाता 12 सुमानषिका 13 भूतदत्ता।

यह सातवां वर्ग पूर्ण हुआ। आठवें वर्ग में श्रेणिक की काली आदि दस राणियों का वर्णन है, जिन्होने श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक की आज्ञा लेकर दीक्षा ली थी।

आठवां वर्ग

प्रथम अध्ययन-काली राणी-

कोणिक- चम्पानगरी में कोणिक राजा राज्य करता था। कोणिक, श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना राणी का आत्मज था। वह पिता श्रेणिक के काल कर जाने के बाद अपनी राजधानी राजगृही को बदलकर चम्पानगरी में आकर शासन संभालने लगा। अतः अब उसके राज्य की राजधानी चम्पानगरी थी। कोणिक राजा राज संचालन में योग्य एवं कुशल राजा था। माता के प्रति भी उसकी विनय भक्ति थी एवं भगवान महावीर स्वामी का भी वह अनन्य भक्त था। धर्म

के प्रति भी उसका अनुराग था। किन्तु पूर्व भव में तीव्र रस का निदान उसने कर लिया था। उसके कारण इस भव में भी नरकगामी होने से उदय एवं भवितव्यता वश कुसंस्कार उसकी बुद्धि पर हावी हो जाते थे।

पूर्व भव निमित्तक कुसंस्कार– उन्हीं कुसंस्कारों के प्रबल प्रवाह में उसने पिता को कैद में रख दिया था अल्प समय में ही माता चेलना की प्रेरणा से उसे सद्‌बुद्धि आ गई थी। किन्तु श्रेणिक की मृत्यु की भवितव्यता ऐसी ही थी कि कोणिक तो पिता की भक्ति से उनके पास उनके बंधन काटने जा रहा था किंतु भ्रम वश श्रेणिक ने उल्टा अर्थ लिया और अंगुठी में रहे जहर प्रयोग से अपने प्राण त्याग दिये। कोणिक को अत्यन्त पश्चाताप हुआ उसी दुःख के असह्य होने के कारण ही उसने राजगृही नगरी को छोड़ दिया था।चम्पानगरी में उसका शासन बड़ा ही शान्ति से एंव धर्म भाव से व्यतीत हो रहा था। फिर उसके ऊपर कुसंस्कार हावी हो गये। हार और हाथी के लिए सगे भाईयों से एवं नाना श्री चेड़ा राजा से युद्ध किया। उस युद्व में उसके दस भाई काल कवलित हो गये। उनके दसों की माताएं अपने पुत्रों के मृत्यु दुःख से विरक्त होकर भगवान के पास दीक्षित हुई। उन्हीं दस राणियों का वर्णन इस आठवें वर्ग में किया जा रहा है। ये कोणिक की छोटी माताएं थी।

काली राणी की विरक्ति– किसी एक समय विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी का चम्पानगरी में पदार्पण हुआ। उस समय कोणिक चेड़ा राजा से युद्व करने के लिए कालकुमार आदि दस भाइयों को साथ लेकर गया हुआ था। दस दिन में एक-एक करके दसों भाई चेड़ा राजा के बाण से मारे गये। काली राणी भगवान के समवसरण में गई उपदेश श्रवण के अनन्तर उसमें भगवान से पूछा कि हे भंते! मेरा पुत्र काल-कुमार कोणिक के साथ युद्ध में गया है मै पुनः उसे देख सकूंगी। अर्थात् वह सकुशल पुनः लौट पाएगा ? भगवान ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि तुम्हारा पुत्र युद्ध में चेड़ा के हाथ से मारा गया है। और मरकर चौथी नरक में उत्पन्न हुआ हैं। यह सुनकर काली राणी को पुत्र वियोग का अत्यन्त दुःख हुआ। उसके पति वियोग और पुत्र वियोग दोनों का निमित्त कोणिक ही बना था। उसे संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई । कुछ समय के बाद उसने कोणिक की आज्ञा लेकर भगवान के पास संयम अंगीकार किया। चंदना आर्या के समीप उसने तप संयम की अराधना की। ग्यारह अंग का शास्त्र ज्ञान कंठस्थ किया। पूर्व वर्ग में वर्णित नन्दा आदि के समान इसने भी विविध तपस्याएं की।

रत्नावली तप– रत्नावली नामक एक विशेष तप की काली आर्या ने अराधना की। जिसमें तपस्या की परिपाटी का चार लड़ा हार बना कर आत्मा को सुशोभित किया। उस तपस्या में उसे कुल पांच वर्ष दो महिने बावीस दिन लगे। रत्नावली तपस्या के तप इस प्रकार हैं।

1. उपवास . बेला . तेला . आठ बेले
2. फिर उपवास . बेला . तेला से लेकर क्रम से सोलह तक
3. फिर चैंतीस बेले
4. उसके बाद सौलह . पन्द्रह . चैदह यों क्रमशः उपवास तक
5. फिर आठ बेले फिर तेला . बेला . उपवास

यह एक परिपाटी लड़ी पूर्ण हुई। यह सारी तपस्या लगातार की अर्थात् बीच में एक दिन पारण करके अगले दिन अगली तपस्या प्रारम्भ कर दी गई। इनमें कभी भी बीच में दो दिन लगातार आहार नहीं किया जाता हैं। इस एक लड़ी में

384 दिन तप के 88 दिन पारणे के कुल 472 दिन लगे अर्थात् एक वर्ष 3 महिने 22 दिन एक लड़ी में लगे। इस तरह चार बार सभी तपस्या करके चार लड़ी पूर्ण की जाती है। उसमें विशेषता यह होती है कि-

1. पहली परिपाटी में पारणे में सभी प्रकार का कल्पनीय आहार लिया जा सकता है।

2. दूसरी परिपाटी में धार विगय का त्याग किया जाता है। केवल साग रोटी आदि जैसी तैयार है वैसी लेना किन्तु अलग से घी दूध दही नही लेना, तेल की तली चीजे नहीं लेना और किसी भी प्रकार की मिठाइयां गुड़ शक्कर नहीं लेना, इसे ''विगय वज्ज'' तप कहते हैं। इसमें अचित्त निर्दोष फल मेवे मुखवास का त्याग नहीं होता हैं।

3. तीसरी परिपाटी में पारणे में ''निवी तप'' किया जाता हैं। इसमें घी आदि विगयों के लेप मात्र का भी त्याग होता है अर्थात् चुपड़ी हुई रोटी और बघारा हुआ साग भी इसमें नहीं लिया जाता हे। शेष किसी भी प्रकार उबला या सिका अचित्त आहार लिया जाता हैं।इसमें फल मेवे या मुखवास का भी त्याग होता है।

4. चौथी परिपाटी में उपरोक्त सम्पूर्ण तपस्या क्रम से करते हुए पारणे में आयबिल तप किया जाता है इसमें लूखा विगय रहित खाद्य पदार्थ पानी में धोकर अथवा पानी में कुछ देर रख कर फिर खाया जाता है।

इस प्रकार काली राणी ने पांच वर्ष दो महीने बावीस दिन निरंतर तप किया जिसमें उसने 1536 दिन चैविहार की तपस्या की 352 दिन आहार किया। आहार के दिनों में भी उसमें आयं बिल, निवी तप भी किये। इस प्रकार काली राणी ने कुल आठ वर्ष के दीक्षा काल में विभिन्न तपस्याओं के अतिरिक्त यह रत्नावली तप किया। राजराणी होते हुए भी पिछली वय में दीक्षा लेकर काली आर्या ने शरीर का ममत्व छोड़ा और ऐसे विकट तपोमय जीवन के साथ शास्त्र ज्ञान भी ग्यारह अंगों का कण्ठस्थ किया और आठ वर्ष की अल्प दीक्षा पर्याय में संपूर्ण कर्म क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त किया

काली आर्या का जीवन तप संयम से धन्य हो गया। जिसके पति और पुत्र दोनों दुर्गति के मेहमान बन गये फिर भी उसने अपने जीवन को आर्त्तध्यान में नहीं लगाकर धर्म ध्यान में लगाया एवं उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया। ऐसे आदर्श जीवन से प्रेरणा पाकर हमें भी अधिक से अधिक तप संयम एवं ज्ञान की अराधना में अपना जीवन लगाकर दुर्लभ मनुष्य भव को सार्थक कर लेना चाहिए।

काली राणी की आठ वर्ष में उपलब्धि-

(1) 11 अंग शासत्रों का कंठस्थ ज्ञान (2) रत्नवली तप 1888 दिन का (3) मासखमण तक के तप (4) एक महिने का संथारा एवं मुक्ति। -गुणरत्न संवत्सर तप

आठवां दिन

दूसरा अध्ययन-सुकाली राणी-

काली राणी का प्रथम अध्ययन में वर्णन किया गया है उसके समान ही सुकाली राणी का भी दीक्षा लेने तक का वर्णन हैं।संयम तप की ग्यारह अंग का अध्ययन आदि भी काली आर्या के समान सुकाली आर्या का हैं।विशेषता यह है कि

इसका पुत्र सुकाल कुमार था। उसकी युद्ध में मृत्यु हुई , उस निमित्त से यह विरक्त हुई। इसने संयम पर्याय में 'रत्नावली तप'' के स्थान पर ''कनकावली तप'' किया। जिसमें कुल समय पांच वर्ष नौ महिने और अठारह दिन लगे।

कनकावली तप- रत्नावली तप से कनकावली तप में थोड़ा सा अंतर है। शेष सभी तपस्या एवं पारणों की समानता हैं। रत्नावली में जब एक साथ आठ बेले या 34 बेले किये जाते है। उसकी जगह इस कनकवली तप में आठ तेले और 34 तेले किये जाते है इसके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं है। अतः सारी तपस्या एवं पारणों का वर्णन रत्नावली तप के समान ही समझ लेना चाहिए। इसमें भी चार परिपाटी की जाती है पारणे में क्रमशः नीवी आयंबिल आदि किये जाते है। 8 +8 +34 = 50 × 4 = 200 यों दो सौ बेले की जगह दो सौ तेले करने से कुल दो सौ दिन इस तपस्या में अधिक लगते है अर्थात् 6 महिने 20 दिन अधिक लगते है। अतः इस कनकवली तप में 1736 दिन तपस्या के है जब रत्नावली तप में 1536 दिन तपस्या के है। पारणे के दिन दोनों तपस्याओं में 352 समान ही है।

इस प्रकार सुकाली आर्या ने नव वर्ष संयम पर्याय का पालन किया अन्त में एक महिने की संलेखना-संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों को क्षय किया एवं सिद्ध गति को प्राप्त किया।

तीसरा अध्ययन-महाकाली राणी-

इसका भी वैराग्य प्राप्ति और दीक्षा तक सारा वर्णन काली राणी के समान समझना। कनकावली रत्नावली तपों के स्थान पर इसने ''लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप'' किया। इस तप में भी चार परिपाटी और उनके पारणों का वर्णन कनकावली रत्नावली के समान है।

लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप- इसकी तपस्या के वर्णन करने में भी एक प्रकार से मानसिक क्रीड़ा होती है अर्थात् तपस्या करते एक कम करो फिर दो बढ़ाओं फिर एक कम करो फिर दो बढ़ाओ यथा-

1.	उपवास	+	बेला	+	उपवास	+	तेला	+	बेला	+	चौला
	1		2		1		3		2		4
2. फिर	3	+	5	+	4	+	6	+	5	+	7
3. फिर	6	+	8	+	7	+	9				

4. इसके बाद एक अठाई मध्यम स्थानीय तप।
5. फिर 9 से प्रारंभ करके उल्टे क्रम से उपवास तक तप को नीचे उतारा जाता है। यह एक परिपाटी पूरी होती है। इसी तरह तपस्या की चार परिपाटी की जाती है। इस तपस्या में कुल समय दो वर्ष अठाईस दिन (748 दिन) कुल लगते हैं। जिसमें तपस्या के दिन कुल 616 होते और पारणे के दिन 132 होते है। महाकाली आर्या ने लघुसिंह निष्क्रीडित तप की सूत्र वर्णन अनुसार पालना आराधना की। शेष दीक्षा पर्याय में अन्य विविध तपस्याएँ कीं। कुल दस वर्ष इसने संयम का पालन कर आत्म कल्याण किया।

चौथा अध्ययन-कृष्णा राणी-

दीक्षा आदि का वर्णन काली राणी के समान है। विशेष तप में कृष्णा आर्या ने ''महासिंह निष्क्रिीडित तप'' किया। जिसमें तपस्या करने का तरीका एक घटा कर दो बढ़ाना वह लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप के समान ही है। अंतर यह है कि जिसमें तपस्या का क्रम सौलह तक चढ़ाना फिर बीच में 15 करके सौलह से लेकर एक उपवास तक उतारना होता है। लघुसिंह निष्क्रिड़ित में अधिकतम 9 तक तपस्या होती है, ओर महासिंह निष्क्रीड़ित में अधिकतम सौलह की तपस्या होती है अतः इसमें लगभग तीन गुना अधिक समय लग जाता है। अर्थात् 1388 दिन तपस्या के और 244 दिन पारणे के और कुल 2232 दिन इस महासिंह निष्क्रीडित तप में लगते हैं। कृष्णा आर्या ने ग्यारह वर्ष संयम पालन कर मोक्ष प्राप्त किया।

पांचवां अध्ययन-सुकृष्णा राणी-

संयम ग्रहण, शास्त्र अध्ययन, तप एवं मोक्ष प्राप्ति तक का वर्णन पहले अध्ययन के समान है। विशेष में सुकृष्णा आर्या ने चार भिक्षु पिड़माएं धारण कीं। उनके नाम इस प्रकार हैं-

1. सप्त सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा 2. अष्ट अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा 3. नव नवमिका भिक्षु प्रतिक्षा 4. दस दसमिका भिक्षु प्रतिमा।

इन चारों पड़िमाओं में उपवास करना जरूरी नहीं होता है। गोचरी में आहार लेने की दत्तियों का संख्या में अभिग्रह किया जाता है। दत्ती का मतलब एक बार में एक धार से संलग्न रूप से जितना आहार या पानी लिया जाय या दिया जाय उसे एक दत्ती कहते हैं। इसमें दाता एक बार में एक रोटी या एक चम्मच आहार दे दे तो उसे एक दत्ती कहते हैं वैसे ही पानी भी एक धार से जितना देदे उतना एक दत्ती होता है।

भिक्षु प्रतिमा की विधि- सप्त सप्तमिका में प्रथम सप्ताह में हमेशा एक दत्ती आहार और एक दत्ती पानी लेना। दूसरे सप्ताह में हमेशा दो दत्ती आहार और दो दत्ती पानी लेना, तीसरे सप्ताह में तीन दत्ती यों ही सातवें सप्ताह तक में सात दत्ती आहार और सात दत्ती पानी ग्रहण किया जा सकता हैं। इस प्रकार इस तप में 49 दिन लगते हैं।अष्ट अष्टमिका में आठ अठवाड़े लगते है अर्थात् 64 दिन लगते हैं। इसमें एक से लेकर 8 दत्ती तक वृद्धि की जाती है। नव नवमिका में नव नवक लगते है इसमें पहले नवक में एक दत्ती और क्रमशः बढ़ाते हुए नवमें में 9 दत्ती आहार एवं नव दत्ती पानी लिया जाता है। यों इसमें कुल 81 दिन लगते हैं। दस दसमिका में दस दसक लगते है जिससे कुल 100 दिन होते है। इसमें दत्ती की संख्या एक से लेकर दस तक बढ़ाई जाती है अर्थात् पहले दसक (दस दिन) में एक दत्ती अहार और एक दत्ती पानी लिया जाता हैं। अंत में दसवें दस दिनों में दस दत्ती आहार और दस दत्ती पानी लिया जा सकता हैं।इस तपस्या में कही गई दत्तियों से कम दत्ती आहार या कम दत्ती पानी लिया जा सकता है किन्तु अधिक एक भी दत्ती नहीं की जा सकती ।इस तपस्या में उपवास बेला आदि कोई भी तपस्या की जा सकती है किन्तु इसके दत्ती का जो क्रम होगा, पारणे में उसका पालन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार सुकृष्णा आर्या ने सूत्र निर्दिष्ट पद्धति से इन चार भिक्षु पड़िमाओं की अराधना की एवं 12 वर्ष संयम पालन कर मोक्ष प्राप्त किया।

छठवां अध्ययन-महाकृष्णा राणी-

महाकृष्णा राणी ने तेरह वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया एवं विशेष में लघु सर्वतोभद्र तप किया । उसकी एक परिपाटी में 75. दिन तपस्या व 25 दिन पारणा यों कुल 100 दिन लगते है और चार परिपरटी में 400 दिन लगते है। यह महा-कृष्णा आर्या भी उसी भव में सर्व कर्म क्षय करके मुक्तिगामी बन गई।

लघु सर्वतोभद्र तप- इसमें उपवास से लेकर पांच तक की तपस्या की जाती हैं। अगली लड़ी पहली लड़ी के माध्यम अंक की तपस्या से प्रारम्भ की जाती हैं।

तपस्या का क्रम इस प्रकार है-

(1)	**उपवास**	+	**बेला**	+	**तेला**	+	**चैला**	+	**पंचोला**
	1		2		3		4		5
(2)	3	+	4	+	5	+	1	+	2
(3)	5	+	1	+	2	+	3	+	4
(4)	2	+	3	+	4	+	5	+	1
(5)	4	+	5	+	1	+	2	+	3

यह एक परिपाटी है। चार परिपाटी और पारणे का क्रम रत्नावली तप के समान है।

सातवां अध्ययन-वीर कृष्णा-

वीर कृष्णा राणी ने दीक्षा लेकर चौदह वर्ष तक संयम का पालन किया। 'महासर्वतोभद्र' नामक विशेष तप किया। इस तप में उपवास से लेकर सात तक की तपस्या लघुसर्वतोभद्र तप के समान की जाती है। इसकी एक परिपाटी में 196 दिन तपस्या के 49 दिन पारणे के यों कुल 245 दिन होते हैं। चार परिपाटी में कुल 950 दिन अर्थात् 2 वर्ष 8 महीनें 20 दिन लगते हैं। तपस्या का क्रम इस प्रकार है-

(1)	1	+	2	+	3	+	4	+	5	+	6	+	7
(2)	4	+	5	+	6	+	7	+	1	+	2	+	3
(3)	7	+	1	+	2	+	3	+	4	+	5	+	6
(4)	3	+	4	+	5	+	6	+	7	+	1	+	2
(5)	6	+	7	+	1	+	2	+	3	+	4	+	5
(6)	2	+	3	+	4	+	5	+	6	+	7	+	1
(7)	5	+	6	+	7	+	1	+	2	+	3	+	4

यों एक परिपाटी होती है। इसी प्रकार चार परिपाटी होती है। इस तप की आराधना करके वीरकृष्णा आर्या ने अन्य तप, संयम, स्वाध्याय, अध्ययन आदि से आत्मा को भावित करते हुए अंत में एक महिने की संलेखना-संथारा किया और सिद्ध गति को प्राप्त किया।

आठवा अध्ययन-रामकृष्णा राणी-

रामकृष्णा राणी ने संयम ग्रहण कर उसका पन्द्रह वर्ष तक पालन किया, अंत में सिद्धगति को प्राप्त किया। सम्पूर्ण वर्णन काली राणी के समान है। इसने ''भद्रोत्तर'' नामक विशेष तपस्या की। इसमें पंचोला से लेकर नौ तक की तपस्या होती है। उपवास से चौले तक की तपस्या इसमें नहीं की जाती है। इसकी एक परिपाटी में 6 मास 20 दिन और चार परिपाटी में 2 वर्ष 2 मास 20 दिन लगते हैं। इसमें तपस्या का क्रम इस प्रकार है-

(1)	5	+	6	+	7	+	8	+	9
(2)	7	+	8	+	9	+	5	+	6
(3)	9	+	5	+	6	+	7	+	8
(4)	6	+	7	+	8	+	9	+	5
(5)	8	+	9	+	5	+	6	+	7

यह एक परिपाटी हुई। इस प्रकार चार परिपाटी की जाती है। पारणों का क्रम पहले के समान आयंबिल तक है।

नमवा अध्ययन-पितृसेन कृष्णा-

पितृसेन कृष्णा रानी ने सौलह वर्ष संयम का पालन किया। उसने विशेष तप में ''मुक्तावली'' नामक तपस्या की। इस तप में उपवास से लेकर बढ़ाते हुए सोलह तक की तपस्या होती है प्रत्येक तपस्या के बीच में पुनः पुनः एक उपवास किया जाता है। फिर दुबारा सौलह उपवास से लेकर एक उपवास तक क्रमशः उतरते हुए तपस्या की जाती है। और प्रत्येक तपस्या के बीच में एक उपवास किया जाता है। यथा-

(1) उपवास + बेला + उपवास + तेला यों क्रमशः बढ़ते हुए उपवास + सौलह

(2) फिर बीच में एक उपवास

(3) फिर 16 + 1 + 15 + 1 + 14

1 यों क्रमशः घटाले हुए अन्त में बेला + उपवास

यह एक परिपाटी हुई। इसी तरह चार परिपाटी की जाती है। एक परिपाटी में 345 दिन लगते हैं, और चार परिपाटी में 1380 दिन अर्थात् 3 वर्ष 10 महीने लगते हैं, जिसमें पारणे के दिन कुल 240 है तपस्या के 1140 दिन है। पितृसेन कृष्णा आर्या ने यथा विधि इस मुक्तावली तप की अराधना की। बाद में अन्य विविध तपस्याएं भी की । ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन कंठस्थ किया। अन्त में एक महिने की संलेखना संथारा से सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई।

दसवां अध्ययन-महासेन कृष्णा-

महासेन कृष्णा राणी का भी दीक्षा आदि वर्णन काली राणी के समान है। सत्तरह वर्ष की संयम पर्याय में महासेन कृष्णा आर्या ने ग्यारह अंग शास्त्र कंठस्थ किये ।विविध तपस्याएं की ''आयंबिल वर्धमान तप'' नामक विशेष उग्र तपस्या की। इस तप में एक आयंबिल से लेकर सौ आयंबिल तक संलग्न किये जाते है पारणे की जगह उपवास किया जाता है-
यथा-

(1) एक आयंबिल + फिर उपवास + 2 आयंबिल + फिर उपवास 3 आयंबिल + फिर उपवास यों बढ़ाते हुए 98 आयंबिल + फिर उपवास 99 आयंबिल + फिर उपवास 100 आयंबिल और एक उपवास। यह एक परिपाटी से ही आयंबिल वर्धमान तप पूरा हो जाता है। इस तप में कुल समय 14 वर्ष 3 महिना 20 दिन लगते हैं जिसमें 100 उपवास किये जाते हैं शेष 14 वर्ष और 10 दिन आयंबिल किये जाते हैं। इस सम्पूर्ण तपस्या के 14 वर्षों में कभी भी विगय या उसका लेप मात्र भी उपयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार महासेन कृष्णा ने 17 वर्ष की दीक्षा में सार्धिक 14 वर्ष तक तो इस तप की ही आगम विधि अनुसार आराधना की। शेष समय में भी मासखमण तप की विविध तपस्याएं की। शक्ति क्षीण हो जाने पर संलेखना सथारा ग्रहण किया। एक महीने तक संथारा चला। फिर अंतिम समय में चार घातीकर्म क्षय होने पर केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ एवं अल्प समय में आयु समाप्त होने से सम्पूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई। जिसके लिये संयम ग्रहण किया गया था पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति का पालन, लोच, नंगे पैर चलना, स्नान नहीं करना, दातौन नहीं करना आदि आचार एवं नव वाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था, उस अपने प्रयोजन को सिद्ध कर लिया।

उपसंहार-

इस प्रकार इस सूत्र में 90 जीवों ने संयम ग्रहण करके उसके छोटे बड़े सभी विधि विधानों का पूर्ण पालन किया एवं अपने लक्ष्य में सफल हुए अर्थात् इन आत्माओं ने उसी भव में मोक्ष गति को प्राप्त कर लिया। इस अन्तिम आठवें वर्ग में श्रेणिक की विधवा राणियों के उग्र तप पराक्रम का वर्णन किया गया है। जीवन भर उन्होंने राज राणी अवस्था की सुकुमारता में समय व्यतीत किया था। अंतिम अल्प वर्षों में अपने जीवन का एक अलौकिक परिवर्तन कर दिखाया। वास्तव में वैराग्य और संयम ग्रहण का सार ही यही है कि श्रुतज्ञान, तप और संयम में आत्मा को तल्लीन बना देना चाहिए। दर्शवकालिक सूत्र में कहा है कि- ''अन्तिम वय में भी संयम ग्रहण करने वाले को यदि तप संयम क्षमा और ब्रह्मचर्य अत्यन्त प्रिय है अर्थात् इन्हीं में आत्मा को एक-मेक कर देता है तो वह शीघ्र ही कल्याण कर लेता है''। काली आदि अनेक राणियों का तथा अन्य भी अनेक जीवों का वर्णन आगमों में उपलब्ध है। इस आदर्श को सम्मुख रखकर प्रत्येक श्रावक को अपने दूसरे मनोरथ को सफल करने का प्रयत्न करना चाहिए अर्थात् जब भी अवसर मिले, भावों की तीव्रता बढ़े, तब शीघ्र ही परिस्थितियों को सुलझा कर, संयम मार्ग में अग्रसर होना चाहिए।

मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख एवं अंतिम साधन –

अंतगड़ सूत्र के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का अथवा संसार प्रपंच से छूटने का प्रमुख साधन है 1. सम्यग् श्रद्धा के साथ संयम लेना 2. शास्त्र कंठस्थ करना एवं 3. तपस्या में अपनी सारी शक्ति लगा देना। मोक्ष का अन्तिम साधन तप है। भावपूर्वक, वैराग्यपूर्वक ओर विवेकपूर्वक एवं गुरू आज्ञापूर्वक किया गया तप कर्म रोगों का समूल नाश करने के लिये अचूक या रामबाण औषध है। अतः संयम एवं अध्ययन के अतिरिक्त बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के तपों का मोक्ष प्राप्ति में अनन्य योगदान है ऐसा समझ कर तपोमय जीवन जीना चाहिए।

सम्पूर्ण सूत्र के आदर्श–

(1) शास्त्र श्रवण एवं धर्म श्रद्धा का सार है मानव जीवन में अवश्य संयम ग्रहण करना चाहिए।

(2) राजा और माली, सेठ और राजकुमार, बालक और युवा एवं वृद्ध तथा राणियों की दीक्षा से परिपूर्ण यह आदर्श सूत्र सभी को बिना किसी रोक-टोक के संयम का प्रबल प्रेरक है।

(3) संयम के सुअवसर बिना तीन खण्ड के स्वामी महार्द्धिवान् शक्तिसम्पन्न श्रीकृष्ण वासुदेव भी स्वयं को अधन्य अकृतपुण्य अभागा होने का अनुभव करते हैं एवं संसार में विशाल कार्य क्षेत्र होते हुए भी समय-समय पर भगवान् की सेवा में उपस्थित होते रहते हैं। वे अपने नागरिक जनों को संयम लेने की खुली प्रेरणा-घोषणा करके धर्म दलाली करते हैं। उनके जीवन के ऐसे अनेक पहलू हैं जो हमारे लिये आदर्श श्रोत हैं।

(4) सुदर्शन श्रावक की गंभीरता, दृढ़ता और उनकी धर्मानुरागता अनुकरणीय है।

(5) एवंता बाल मुनि के संयम ग्रहण का वर्णन हमारे धर्म जीवन में आलस्य और कमजोरी या भय को हटाने में अत्यन्त प्रेरक प्रसंग है।

(6) गजसुकुमाल राजकुमार का शादी हेतु रखी कन्याओं का त्याग, राजसी वैभव का त्याग और प्रथम दीक्षा दिन में अपूर्व क्षमा और समभाव का आदर्श, हमारे कषायों झगड़ों को एवं कलुषता को दूर करने का एक श्रेष्ठतम मार्ग दर्शक है। धैयवान गम्भीर और सहनशील बनने का परम पथ प्रदर्शक है।

(7) अर्जुन माली की क्षमा भिक्षुओं को संयम जीवन के क्षण क्षण में याद करने योग्य है जिससे अनुपम समभाव समाधि का लाभ प्राप्त हो सकता है।

(8) गौतम स्वामी और भगवान् महावीर के एवन्ता के साथ किये गये व्यवहार से हमें अपने जीवन में उदारता एवं विशालता को स्थान देना चाहिए। किसी के प्रति घृणा या तिरस्कार के भाव नहीं होने चाहिए।

(9) समय लेकर सूत्रों का आगम कथित कंठस्थ ज्ञान अवश्य करना चाहिए। बाल वृद्ध सभी के लिये यह आवश्यक नियम है। प्रस्तुत सूत्र में अल्प दीक्षा पर्याय के कारण अर्जुन माली और गजसुकुमाल को छोड़कर स्त्री पुरूष बाल, वृद्ध सभी ने शास्त्रों का विशाल कंठस्थ ज्ञान हासिल किया था।

(10) संयम जीवन में तपस्या का अत्यधिक सन्मान होना चाहिए अर्थात् तप रहित या तप से उपेक्षित संयम जीवन वास्तविक फलदायी नहीं बन सकता है। ब्रह्मचर्य एवं स्वास्थ्य रक्षा के लिये तथा सम्पूर्ण इन्द्रिय एवं मनोनिग्रह के लिये उपवास आदि तपस्याएं नितान्त आवश्यक है, ऐसा समझना चाहिए। तपस्या के बिना इन सब की आराधना अधूरी रह जाती है। तपस्या के लिए अभ्यास से ही साधक का अन्तिम जीवन संलेखना संथारे की सफलता को प्राप्त करता है।

।। अंतकृत दशा सूत्र सारांश समाप्त।।

नोट- विस्तृत जानकारी के लिये ब्यावर सैलाना आदि स्थलों से प्रकाशित विवेचन युक्त अंतकृत दशा सूत्र का अध्ययन करना चाहिये।

तपस्या

आठवां वर्ग -

अध्ययन	राणी	तप	एक परिपाटी समय		
			वर्ष	मास	दिन
1.	काली	रत्नावली	1	3	22
2.	सुकाली	कनकावली	1	5	12
3.	महाकाली	लधुसिंह निष्क्रीडित-	-	6	7
4.	कृष्णा	महासिंह निष्क्रीडित	1	6	18
5.	सुकृष्णा	सप्त सप्तमिका	0	0	41
		अष्ट अष्टमिका	0	0	64
		नव नवमिका	0	0	81
		दस दसमिका	0	0	100
		भिक्षु पडिमा			
6.	महा कृष्णा	लघुसर्वतो भद्र	0	0	100
7.	वीर कृष्णा	महासर्वतो भद्र	0	8	5
8.	राम कृष्णा	भद्रोत्तर	0	6	20
9.	पितृसेन कृष्णा	मुक्तावली	0	11	15
10.	महासेन कृष्णा	आयंबिल वर्धमान तप	14	3	20

विवरण-यंत्र-

चार परिपाटी समय			पारणे	तप विवरण
वर्ष	मास	दिन		
5	2	28	88/352	उपवास से सोलह तक बीच में 8+8+34 बेले
5	9	18	88/352	उपवास से सोलह तक बीच में 8+8+34 तेले
2	-	28	33/132	उपवास से नव तक एक घटाना दो बढ़ाना
6	2	12	61/244	उपवास से सोलह तक एक घटाना दो बढ़ाना
	चारों का समय		×	एक से सात तक दत्ती प्रतिज्ञा
0	9	24		एक से आठ तक दत्ती प्रतिज्ञा
				एक से नव तक दत्ती प्रतिज्ञा
				एक से दस तक दत्ती प्रतिज्ञा
0	0	400	25/100	उपवास से पंचोले तक 5 लड़ी
1	1	10	अथवा	अगली पंक्ति बीच के अंक से शुरू करते हुए
2	8	20	49/196	उपवास से सात तक 7 लड़ी बीच के अंक से शुरू करते हुए
2	2	20	25/100	पंचोले से नव तक 5 लड़ी बीच के अंक से शुरू करते हुए
3	10	0	60/240	उपवास से सोलह तक फिर सोलह से उपवास तक
				सभी के बीच में उपवास
-	-	-	×	एक आयबिल फिर उपवास दो आयंबिल फिर उपवास यों बढ़ते बढ़ते
				100 आयंबिल और फिर उपवास।
				कुल 5050 आयंबिल एवं 100 उपवास होते हैं।

गुण रत्न संवत्सर तप-

तपस्या	संख्या	दिन
उपवास	15	30
बेले	10	30
तेले	8	32
चोले	6	30
पंचीले	5	30
छः	4	28
सात	3	24
आठ	3	27
नव	3	30
दस	3	33
ग्यारह	3	36
बारह	2	26
तेरह	2	28
चैदह	2	30
पंद्रह	2	32
सोलह	2	34
		कुल दिन = 480 = 16 महीने

भिक्षु की बारह पड़िमा-

पहली से सातवीं एक एक महीना = 1 × 7 = 7 मास

आठवीं से दसवीं एक एक सप्ताह = 1 × 3 = 3 सप्ताह

ग्यारवी-बेला = 2 + 1 = 3 दिन

बारहवी-तेला = 3 + 1 = 4 दिन

योग- 7 मास 28 दिन

कृष्ण का जीवन जैन आगमों में

जैन परम्परा में श्री कृष्ण सर्वगुणसम्पन्न, श्रेष्ठ, चरित्रनिष्ठ, अत्यन्त दयालु, शरणागतवत्सल, धीरे, विनयी, मातृभक्त, महान् वीर, धर्मात्मा, कर्तव्यपरायण, बुद्धिमान, नीतिमान् और तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी वासुदेव थे। समवायांग में उनके तेजस्वी व्यक्तित्व का जो चित्रण है, वह अद्भुत है, वे त्रिखण्ड के अधिपति अर्धचक्री थे। उनके शरीर पर एक सौ आठ प्रशस्त चिह्न थे। वे नरवृषभ और देवराज इन्द्र के सदृश थे, महान् योद्धा थे। उन्होंने अपने जीवन में तीन सौ साठ युद्ध किये, पर किसी भी युद्ध में वे पराजित नहीं हुए। उनमें बीस लाख अष्टापदों की शक्ति थी। किन्तु उन्होनें अपनी शक्ति का कभी भी दुःरूपयोग नहीं किया। वैदिक परम्परा की भांति जैन परम्परा ने वासुदेव श्रीकृष्ण को ईश्वर का अंश या अवतार नहीं माना हैं। वे श्रेष्ठतम शासक थे। भौतिक दृष्टि से वे उस युग के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक थे। किन्तु निदानकृत होने से वे आध्यात्मिक दृष्टि से चतुर्थ गुणस्थान से आगे विकास न कर सके। वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि के परम भक्त थे। अरिष्टनेमि से श्री कृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे तो आध्यात्मिक दृष्टि से अरिष्टनेमि ज्येष्ठ थे। (एक धर्मवीर थे तो दूसरे कर्मवीर थे, एक निवृत्तिप्रधान थे तो दूसरे प्रवृत्तिप्रधान थे।) अतः जब भी अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारते तब श्री कृष्ण उनकी उपासना के लिए पहुंचते थे। अन्तकृद्दशा, समवायांग, ज्ञाताधर्म कथा, स्थानांग, निरयावलिका, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन आदि आगमों में उनका यशस्वी व तेजस्वी रूप उजागर हुआ हैं। आगमों के व्याख्या-साहित्य में निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका ग्रन्थों में उनके जीवन से सम्बधित अनेक घटनाएं है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं के मूर्धन्य मनीषियों ने कृष्ण के जीवन प्रसंगों को लेकर सौ से भी अधिक ग्रंथों की रचनाएं की हैं। भाषा की दृष्टि से वे रचनाएं प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, राजस्थानी व हिन्दी में हैं। प्रस्तुत आगमों में श्रीकृष्ण का इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व निहारा जा सकता हैं। वे तीन खण्ड़ के अधिपतिं होने पर भी माता-पिता के परमक्त थें। माता देवकी की अभिलाषापूर्ति के लिए वे हरिणेगमेषी देव की अराधना करते हैं। भाई के प्रति भी उनका अत्यन्त स्नेह हैं। भगवान् अरिष्टनेमि के प्रति भी अत्यन्त निष्ठा हैं। जहां वे रणक्षेत्र में असाधारण पराक्रम का परिचय देकर रिपुमर्दन करते है वज्र से भी कठोर प्रतीत होते है, वहां एक वृद्ध व्यक्ति को देखकर उनका ह्दय अनुकम्पा से द्रवित हो जाता है और उसके सहयोग के लिए स्वयं भी ईट उठा लेते हैं। द्वारिका विनाश की बात सुनकर वे सभी को यह प्रेरणा प्रदान करते है कि भगवान अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो। दीक्षितों के परिवार के पालन पोषण आदि की व्यवस्था मैं करूंगा। स्वयं महारानियां-पुत्रवधुएं और पौत्र जो भी प्रवज्या के लिये तैयार होते है, उन्हें वे सहर्ष अनुमति देते है। आवश्यचूर्णि में वर्णन है कि वे पूर्ण रूप से गुणानुरागी थे। कुत्ते के शरीर में कुलबुलाते हुए कीड़ो की और दृष्टि न ड़ाल कर उसके चमचमाते हुए दातों की प्रशंसा की, जो उनके गुणानुराग का स्पष्ट प्रतीक है। श्री कृष्ण वासुदेव आगामी उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में 12 वें 'अमम' नामक तीर्थंकर बनेगे। वहां सम्पूर्ण कर्म क्षय करके सिद्ध परमात्मा बनेगे ।

व्याख्यान-सामग्री-

आत्म स्वरूप एवं आत्म नियंत्रण
अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पा में नंदणं वणं। -उत्तरा. अ. 20

अर्थ– मेरी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी है, मेरी आत्मा ही नरक का कूट शाल्मलि वृक्ष है। मेरी आत्मा ही स्वर्ग की कामधेनु है और मेरी आत्मा ही अनुपम आनंद दाता नन्दन वन हैं।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।। उत्तरा. अ. 20

अर्थ– आत्मा ही सुःख-दुःख को उत्पन्न करने वाला है और आत्मा ही उनका विनाश करने वाला हैं। सदाचारी सन्मार्ग पर लगा हुआ आत्मा ही अपना मित्र है और कुमार्ग पर लगा हुआ -दुराचारी आत्मा ही अपना शत्रु हैं।

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा। -उत्तरा. अ. 20

अर्थ– अपनी दुरात्मा जो अनर्थ करता है वह कंठ को छेदने वाला अर्थात् गला काटने वाला प्राणहारी शत्रु भी नहीं कर सकता।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।। -उत्तरा. अ. 1

अर्थ– आत्मा का ही दमन करना चाहिए। आत्मा का दमन करना ही बड़ा कठिन है। आत्मा का दमन करने वाला ही इन लोक में और परलोक में सुखी होता है।

वरं में अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
महां परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य।। -उत्तरा. अ. 1

अर्थ– दूसरों के द्वारा बन्धन और वध करके दमन किया जाना हितकर नहीं है किन्तु संयम और तपस्या द्वारा स्वयं ही आत्मा का दमन करना श्रेष्ठ है।

मन के गुलाम मत बनो किन्तु मन के मालिक बनो।
इन्द्रियों के दास मत बनो इन्द्रिय विषयों में मत ललचाओ।

अर्थ– आत्मा राजा है, मन एवं इन्द्रियां उसकी प्रजा है, राजा का प्रजा के अधीन बनना एक दुर्दशा है। अतः मन एवं इन्द्रियों पर हमारा नियंत्रण होना चाहिए।

जे गुणे से मूल ठाणे, जे मूल ठाणे से गुणे।
अर्थ– जो इन्द्रियों के विषय हैं वे ही संसार की जड़ है।

अर्थ– इन्द्रिय सुखों में आनन्द मानना पुद्गलानंदीपन है। संसार के दुखों से छूटना है तो आत्मानन्दी बनें।

कर्म फल और उपदेश

तेणे जहा संधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।। -उत्तरा. 4

अर्थ- रंगे हाथ पकड़ा जाने वाला चोर अपने दुष्कृत्य का फल (वध बंधन आदि) अवश्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार संसार में प्राणी को अपने किये हुए कर्मों का फल इस भव में अथवा पर भव में बिना भोगे छुटकारा नहीं मिलता।

संसारमावण्ण परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, न बंधवा बंधवयं उवेंति।। उत्तरा. 4

अर्थ- संसार में रहे हुए जीव दूसरों के लिए भी-जो पाप कर्म करते हैं, उस कर्म फल को भोगेने का जब समय आता है तब कौटुम्बिकजन-भाईचारा नहीं निभाते हैं अर्थात् उस कर्म के फल में हिस्सा नहीं बंटाते हैं। सम्पूर्ण फल सवयं की आत्मा को ही भोगना पड़ता है।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइयो,
न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।

इक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।। -उत्तरा. 13

अर्थ- उस पाप-कर्म के फल रूप में प्राप्त दुःख को ज्ञाति-जन नहीं बांट सकते और न मित्र मंडली, पुत्र पौत्र और भाई आदि ही बांट सकते हैं। पाप-कर्म करने वाला स्वयं अकेला ही दुःख भोगता है, क्योंकि कर्म तो करने वाले के साथ ही जाते हैं।

चिच्चा दुपयं चउप्पयं च,
खित्तं गिहं धणधण्णं च सव्वं।

सकम्मबीओ अवसो पयाइ,
परं भवं सुन्दरं पावगं वा।। उत्तरा. 13

अर्थ- नौकर, पशु, धन, मकान, जमीन-जायदाद आदि समस्त पदार्थों को छोड़कर यह जीव एक दिन चला जाता है। केवल अपने किये हुए जो सुन्दर या खराब कर्म हैं, उनको ही साथ ले जाता है, और कुछ भी नहीं ले जाता है।

धर्म प्रेरणा-वैराग्य भावना

जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे।। -दशवै. 8

अर्थ- जब तक वृद्धावस्था नहीं आ जाती है, जब तक रोग नहीं घेर लेते हैं और जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जाती है, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए अर्थात् ये स्थिति पैदा न हो उसके पहले ही धर्माचरण कर लेना चाहिए।

एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति, सिज्झिस्संति तहावरे।।

अर्थ– जिनेश्वर भगवान द्वारा उपदिष्ट यह धर्म ध्रुव है, नित्य है, और शाश्वत है। इस धर्म के आचरण से अनन्त जीव सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं तथा भविष्य में सिद्ध होंगे।

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाई।
जेसिं पियो तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं च।। -दशवै. 4

अर्थ– पिछली वय में-वृद्धावस्था में भी संयम को प्राप्त करने वाले शीघ्र आत्म कल्याण कर लेते हैं, जो कि तप संयम, क्षमा तथा ब्रह्मचर्य की सही आराधना में लग जाते हैं, तल्लीन बन जाते हैं।

दुमपत्तए पंडुरए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए।। -उत्तरा. 10

अर्थ– हे गौतम! जैसे रात्रि-दिन समय बीतने पर वृक्ष का हरा पत्ता पीला या सफेद होकर गिर पड़ता है इस प्रकार मनुष्यों का जीवन अस्थिर है। अतः हे गौतम! एक समय मात्र का भी प्रमाद न करो।

कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जोवियं, समयं गोयम! मा पमायए।। -उत्तरा. 10

अर्थ– हे गौतम! जैसे कुश की नौंक पर लटकती हुई ओस की बूंद थोड़ी ही देर ठहरती है, इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी अस्थिर है। इसलिए एक समय मात्र भी प्रमाद न करो।

इइ इत्तरियम्मि आउए जीवियए बहुपच्चवायए।
बिहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम! मा पमायए।। -उत्तरा. 10

अर्थ– यह अत्यन्त अल्पकालीन जीवन भी अनेक प्रकार की आपत्तियों एवं विघ्नबाधाओं से परिपूर्ण है। अतएव पूर्वोपार्जित कर्म रूपी रज को नष्ट करने में हे गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत करो।

दुल्लहे खलु् माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढ़ा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम! मा पमायए।। -उत्तरा. 10

अर्थ– हे गौतम! प्राणियों को दीर्घकाल व्यतीत होने पर भी मनुष्य भव की प्राप्ति होना कठिन है, क्योंकि कर्मों के फल प्रगाढ़ हैं अर्थात् कर्मों की विचित्र विडंबना से जीव नाना योनियों में भटकता रहता है। इसलिए हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद न करो।

अरइ गंडं विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं समय गोयम! मा पमायए।। -उत्तरा. 10

अर्थ– हे गौतम! फोड़ा-फुंसी घूमड़े, गंडमाल, हैजा तथा विविध प्रकार के रोगातंक उत्पन्न होकर इस शरीर को नष्ट भ्रष्ट करते रहते हैं। इसलिए हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

वोच्छिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम! मा पमायए।। -उत्तरा. 10

अर्थ- हे गौतम! जैसे शरद कमल का फूल कीचड़ और पानी से ऊपर अलग रहता है, उसी प्रकार तू अपने सम्पूर्ण स्नेह को त्याग कर दे। सब प्रकार के स्नेह से रहित होकर समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

असंखयं जीविय मा पमायए,
जरोवणीयसस हु णत्थि ताणं।

एयं वियाणाहि जणे पमत्ते।
किं नु विहिंसा अजया गहिंति ? -उत्तरा. 4

अर्थ- आयु टूट जाने पर फिर जुड़ नहीं सकता। इसलिए प्रमाद न करो। वृद्वावस्था प्राप्त हुए पुरूषों को कोई भी शरण-दाता नहीं होता है अर्थात् उनहें मृत्यु से बचाने में कोई भी पुरूष सामर्थ्यवान नहीं है। यह भलीभाति समझ लो कि प्रमादी, हिंसक और अयतना से प्रवृत्ति करने वाले-अजितेन्द्रिय पुरूषों को दुर्गति में जाते समय कोई भी शरण नहीं दे सकेगा।

सुत्तेसु यावि पडिबुद्वजीवी, ण वीससे पंडिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारण्डपक्खीव चरेऽप्पमत्तो।। -उत्तरा. 4

अर्थ- बुद्विमान ज्ञानी विवेकवान पंड़ित पुरूष को संसार के प्रमाद में एवं सुप्त अज्ञानी मनुष्यों में विश्वास नहीं करना अर्थात् उनका अनुकरण नहीं करना। क्योंकि काल भंयकर है और शरीर निर्बल है अतएव भारंड पक्षी की भांति सदा अप्रमत्त-सावधान होकर विचरण करना चाहिए।

सव्वं विलविअं गीअं, सव्वं नट्टं विडंवियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा।। -उत्तरा. 13

अर्थ- सारे गीत विलाप के समान है, समस्त नाटक-नृत्य विडम्बना रूप है और सब आभूषण भार रूप होते है और सभी प्रकार के कामभोग दुःखदायी एवं दुखों की वृद्वि कराने वाले हैं।

डहरा वुड्ढा य पासह, गब्भत्था वि चयंति माणवा।
सेणे जह वट्टयं हरे, एवमाउखयम्मि तुट्टई।। -सूय. 2

अर्थ- बालक, वृद्व और यहां तक कि गर्भस्थ मनुष्य भी मृत्यु को प्राप्त करते है जैसे बाज पक्षी तीतर को मार डालता है, उसी प्रकार आयु का क्षय होने पर मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता हैं। इसका भली भांति चिंतन करो।

कषाय त्याग-समभाव-
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु।। -उत्तरा. 19

अर्थ- त्रस और स्थावर सभी प्राणियों पर जो समभाव रखने वाला होता है वही महात्मा हैं।

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निदापसंसासु, तहा माणावमाणओ।। -उत्तरा. 19

अर्थ- लाभ और अलाभ में, सुख और दुःख में, जीवन और मरण में, निन्दा और प्रशंसा में, मान और अपमान में, समभावी होना ही सम्यग्ज्ञानी का या महात्मा का लक्षण हैं।

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।।
वासीचंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा।। -उत्तरा. 19

अर्थ- जिसे न इस लोक की चाहना है न परलोक की। जैसे चन्दन वृक्ष काटने वाले और पूजा करने वाले दोनों को सुगन्ध ही देता है, वैसे ही जो दुःख देने वाले और सुख देने वाले दोनों पर समपरिणामी होता है, किसी का बुरा नहीं सोचता है, नहीं करता है, वह महात्मा है।

वचन सहना-

सक्का सहेउं आसाइ कंटया, अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए, वईमए कण्णसरे स पुज्जो।। -दशवै. 9

अर्थ- किसी प्रकार की आशा चाहना से तो लोहमय कांटे या तीर को भी उत्साह-पूर्वक सहन किया जा सकता है, किन्तु बिना किसी प्रकार की आशा के, कानों में तीर के समान लगने वाले वचन-रूपी बाणों को जो सहन कर लेता है, वह पूजनीय है।

मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कंटया,
अओमया ते वि तओ सुउद्धरा।
वाया दुरूत्ताणि दुरूद्धराणि,
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि।। -दशवै. 9

अर्थ- कांटे-कीलें आदि तो केवल मुहुर्त मात्र ही दुःख देते है और वे सरलता से बाहर निकाले भी जा सकते है, किन्तु दुर्वचना-रूपी कांटे वैर बढ़ाने वाले होते है एवं महा भंयकर है। उनका निकलना बड़ा ही कठिन होता है।

समावयता वयणाभिघाया, कण्णं गया दुम्मणियं जणंति।
धम्मुत्ति किच्चा परमग्ग सूरे, जिइंदिए जो सहई स पुज्जो ।। -दशवै. 9

अर्थ- शब्द-रूपी बाण कान में आते ही मन को, विचारों को दूषित करने वाले होते है किन्तु जो जितेन्द्रिय, संयमरत, संग्राम के अग्रभाग में रहे योद्वा के सामने वीर साधक 'अपना धर्म है' ऐसा समझ कर उन वचनों को सम्यक् रूप से सहन कर लेता है,वह महान् आत्मा है, पूज्य है।

कषाय निग्रह–

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिचंति मूलाइं पुणब्भवस्स।। -दशवै. 8

अर्थ– क्रोध और मान तथा माया और लोभ इनका यदि निग्रह नहीं किया जाय किन्तु बढ़ाया जाय तो ये बढ़ते हुए चारों कषाय पुनर्जन्म के मूल का सिंचन करते है अर्थात् जन्म-मरण को बढ़ाते हैं।

मान–

जे या वि अप्पं वसुमंति मत्ता,
संखाय वायं अपरिक्ख कुज्जा।
तवेण वा हं सहिउत्ति मत्ता,
अण्णं जणं पस्सति बिंबभूयं ।। -सूय. अ. 13 गा. 8

अर्थ– अपने-अपको संयमवान् मान कर और ज्ञानी समझ कर जो बिना विचारे ही वाद-विवाद करता है, अथवा मैं महान् तपस्वी हूं, ऐसा मानता है और दूसरों को केवल परछाई मात्र समझता है अर्थात् दूसरों को कुछ भी नहीं गिनती है। वह कभी भी आत्मा-समाधिभाव को प्राप्त नहीं कर सकता ।

पूयणट्ठी जसोकामी, माण– सम्माणकामए ।
बहुं पसवइ पावं, मायासल्लं च कुव्वई ।। -दश. 5

अर्थ– जो अपनी पूजा-प्रतिष्ठा, यश, मान-सम्मान की अभिलाषा रखता है, वह बहुत पापों का उपर्जन करता है और उसके लिये अनेक प्रकार के झूठ-कपट के आचरण करता है वह सच्चा आत्मा-साधक नहीं हैं।

लोभ–

कसिणं पि जो इमं लोगं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया।। -उत्तरा. 8

अर्थ– यदि किसी एक मनुष्य को धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण यह समसत लोक दे दिया जाय तो उससे भी वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार लोभ-आत्मा की कभी भी पूर्ति नहीं हो सकती।

जाह लाहो तहा लोहो, लाहो लोहो पवड्ढई।।

अर्थ– ज्यों-ज्यों मनुष्य लाभ बढ़ाता है त्यों-त्यों लोभ संज्ञा आगे से आगे बढ़ जाती है।

सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंख्या।
नरस्सलुद्धस्स न तेहि किंचि,
इच्छाहु आगाससमा अणंतिआ।। -उत्तरा. 9

अर्थ- कैलाश पर्वत के समान सोने-चाँदी के असंख्य पर्वत हों और वे मिल जाए तो भी लोभी मनुष्य को उससे संतोष-तृप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि इच्छाएं तो आकाश के समान अनन्त हैं- असीम है।

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे।। -उत्तरा. 9

अर्थ- शालि, यव और पशुओं तथा धन के भंडार से भरी हुई पृथ्वी भी मनुष्य की तृष्णा शान्त करने में समर्थ नहीं है। ऐसा जानकर परिग्रह वृत्ति का त्याग करके तप संयम का आचरण करना चाहिए।

कषाय का फल-

अहे अयह कोहेणं, माणेणं अहमा गई।
माया गइ पडिग्घाओ लोहाओ दुहओ भयं।। -उत्तरा. 9

अर्थ- आत्मा क्रोध से अधोगति में जाता है, मान से भी अधम गति की प्राप्ति होती है, माया सुगति में बाधा पहुंचाती है और लोभ से दोनों ही भव बिगड़ जाते हैं अर्थात लोभी व्यक्ति यहां वहां सर्वत्र दुःख ही दुःख प्राप्त करता है।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो।। -दशवै. 8

अर्थ- क्रोध प्रीति-प्रेम को नष्ट करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी कुछ नष्ट कर देता है अर्थात् लोभ सबसे अधिक बुरा है।

कषाय विजय-

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायामज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे। -दशवै. 8

अर्थ- उपशम-शान्ति भाव से क्रोध का नाश करना चाहिए। नम्रता-लघुता से मान को जीतना चाहिए। सरलता से माया को और सन्तोष से लोभ को जीतना चाहिए।

परीषह जय-

अक्कोसेज्जा परे भिक्खु, न तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले।। -उत्तरा. 2

अर्थ- यदि कोई पुरूष भिक्षु पर आक्रोश करे तो उस पर भिक्षु को क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध करने पर वह स्वयं उस बाल-अज्ञानी के समान हो जाता है, अतएव भिक्षु कभी भी क्रोध न करे।

समणं संजयं दंतं, हणेज्जा कोवि कत्थइ।
नत्थि जीवस्स नासो त्ति, एवं पेहिज्ज संजए।। -उत्तरा. 2

अर्थ- यदि कभी कोई पुरूष संयमनिष्ठ, इन्द्रिय विजेता श्रमण को ताड़ना करे या मारे पीटे तो संयमी पुरूष ऐसा विचार करे कि-'जीव का कदापि नाश नहीं हो सकता।'

ज्ञान की आवश्यकता-

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजए।
अन्नाणी किं काही, किंवा नाहीइ छेयपावगं।।-दशवै. 4

अर्थ- किसी भी विषय का पहले ज्ञान होना चाहिए फिर उस विषय में प्रवृत्ति करनी चाहिए। सभी व्रत नियम संयम इसी के आधार से सुशोभित होते हैं। अज्ञानी व्यक्ति क्या करेगा ? कर्तव्या-कर्तव्य को क्या समझेगा ? अतः विधि नियम का ज्ञान करना भी आवश्यक होता है।

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोचचा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणई सोच्चा, जं छेयं तं समायरे।। -दशवै. 4

अर्थ- धर्म श्रवण करने से ही जीव पाप और धर्म को समझता है। जानने के बाद ही हितकर या कल्याणकर आचरणों को स्वीकार किया जा सकता है।

जहा सूई ससुत्ता पडिया वि ण विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ।। -उत्तरा. 29

अर्थ- जैसे धागा सहित सूई गिर जाने पर भी गुमती नहीं है, खोती नहीं है। इसी प्रकार जो सही रूप से शास्त्रों का ज्ञाता बन जाता है वह संसार में नहीं भटकता है, कष्ट नहीं पाता है।

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढ़ा, संसारम्मि अणंतए।। -उत्तरा. 6

अर्थ- संसार में जितने भी अज्ञानी प्राणी होते हैं, वे सब दुःखों की परंपरा बढ़ाते रहते हैं। वे भोले प्राणी अनंत संसार में बारंबार भ्रमण करके कष्ट भोगते रहते हैं।

सुयस्स आराहणयाएणं भंते! जीवे किं जणयई ?
सूयस्स आराहणयाएणं अण्णाणं खवेइ, ण य संकिलिस्सइ। -उत्तरा. 29

अर्थ- श्रुतज्ञान की सम्यग् आराधना से जीव क्या प्राप्त करता है ? श्रुतज्ञान की सम्यग् आराधना करने वाला जीव अज्ञान का क्षय करके ज्ञान को प्रकट करता है। वह सम्यग् ज्ञान सम्पन्न जीव संसार में कहीं भी सक्लेश को प्राप्त नहीं करता है अर्थात् कभी भी किसी भी परिस्थिति में दुःखी नहीं बनता है। वह हर परिस्थिति में सम्यग् चितन से शान्ति एवं समभाव को प्राप्त कर लेता है।

प्रथम ज्ञान पीछे क्रिया यह जिन मत का सार।
ज्ञान हित क्रिया करे तो उतरे भव पार।

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे य पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं।। -उत्तरा. 9

अर्थ- काम-भोग तीर एवं कांटों के समान है, काम-भोग विष तुल्य है तथा काम-भोग दृष्टि विष सर्प के समान महा दुःखप्रद है। काम-भोग की अभिलाषा मात्र से ही जीव काम-भोगों का सेवन न करते हुए भी दुर्गति में जाते हैं। (यथा-रावण, मणिरथ आदि।)

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अनिगामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण हु कामभोगा। -उत्तरा. 14

अर्थ- काम-भोग क्षणभर के लिए और अत्यल्प मात्रा में सुख देने वाले हैं और परिणाम में बहुत समय तक विपुल दुःखों को देने वाले है वे संसार से मुक्ति प्राप्त करने के विरोधी है और दुःख-रूपी अनर्थों की खान है।

जहा किंपागफलाणं परिणामो न सुन्दरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो।। -उत्तरा. 19

अर्थ- जैसे किंपाक फल अर्थात् जहरीले मीठे फल के भक्षण का परिणाम अच्छा नहीं होता है। उसी प्रकार भोगे हुए काम भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता है। अर्थात् मोह-कर्म के बंध एवं संसार भ्रमण के हेतु रूप होता है।

भोगामिसदोसविसन्ने, हियनिस्सेयस-बुद्धिवोच्चत्थे।
बाले य मन्दिये मूढ़े बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि।। उत्तरा. 8

अर्थ- जिस प्रकार श्लेष्म में मक्खी फंस जाती है मांस खंड की पिपासा से मच्छ आदि जाल में फस जाते हैं। उसी तरह हित एवं कल्याण को नहीं समझने वाले अज्ञानी मंद बुद्धि प्राणी भोगों में आशक्त होकर कर्म बंध में फंस जाते हैं और संसार में ही दुःख पाते रहते हैं।

दुपरिच्चया इमेकामा, नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं।
अह संति सुववया साहू, जे तरंति अतरं वणिया व।। उत्तरा. 8 गा. 6

अर्थ– कायर पुरूषों के द्वारा इन काम भोगों को छोड़ना अत्यन्त कठिन है। वे इन्हें सरलता से त्याग नहीं सकते। किन्तु जो सुव्रती साधु हैं वे इस अपार संसार-सागर को वणिक की तरह तर जाते हैं अर्थातृ विषय-भोग का सर्वथा त्याग कर देते हैं।

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पइ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ।। उत्तरा. 25

अर्थ– भोग भोगने से कर्मों का बंध होता है। अभोगी कर्मों से लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है, अभोगी संसार से मुक्त हो जाता है।

नेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए, अहित्थिओ बालमणोहराओ।। -उत्तरा. 32

अर्थ– अज्ञानी प्राणियों के मन को हरने वाली स्त्रियों से बचना जितना कठिन है, संसार में और कोई भी कार्य इतना कठिन नहीं है।

एए य संगे समइक्कमित्ता, सुदुत्तरा चेव भवंति सेसा।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा।। उत्तरा. 32

अर्थ– इस स्त्री प्रसंग के त्याग में जो सफल हो जाता है। उसके लिए फिर संयम के सभी नियम सुगम हो जाते हैं। जैसे महासमुद्र को पार कर लेने वाले के लिए गंगा नदी का पार करना कुछ भी कठिन नहीं होता है।

कामाणुगिद्धिप्पभव खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्संतगं गच्छइ वीयरागो।। -उत्तरा. 32

अर्थ– कामासक्ति से उत्पन्न होने वाला दुःख देवों सहित सम्पूर्ण लोक के प्रणियो को लगा हुआ हैं। वीतराग वाणी की अराधना करने वाला पुरूष शारीरिक और मानसिक समस्त कामानुराग का अन्त कर देता हैं।

देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करेति तं।। -उत्तरा. 16

अर्थ– दुष्कर आचरण रूप ब्रह्मचर्य व्रत की अराधना करने वाला ब्रह्मचारी पुरूष इतना महान् आत्मा बन जाता है कि देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी देव गणों के लिए भी वह वंदनीय पूजनीय हो जाता हैं।

विविध विषय–

विनय-कर्त्तव्य-निंदा-विवेक-अहिंसा

मूलाउ खंधप्पभव दुमस्स, खंधाउ पच्छा समुविंति साहा ।
साहप्पसाहा विरूहंति पत्ता तओ, से पुप्फं च फलं रसो य।। -दशवै. 9

अर्थ– वृक्षके मूल से ही स्कन्ध अर्थात् तना उत्पन्न होता है, तदनन्तर क्रमशः शाखा प्रशाखा पत्ते फूल-फल लगते है और फलों में रस उत्पन्न होता हैं।

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
जेरग कित्तिं सुयं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ।। -दशवै. 9

अर्थ– इसी प्रकार धर्म का भी मूल विनय है और उसी से क्रमशः धर्म का अन्तिम रस मोक्ष प्राप्त होता है तथा विनय से ही कीतिं, श्रुत, श्लाघा एवं कल्याण की प्राप्ति होती हैं।

समयाए समणो होई, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ,तवेण होइ तावसो।। -उत्तरा. 25

अर्थ– समभाव से श्रमण-साधु होता है, बहमचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है, तपस्या करने को तपस्वी होता है।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्धो हवइ कम्मुणा।। -उत्तरा. 25

अर्थ– जीव अपने कर्म से अर्थात् आचरणों से ही ब्राह्मण होता है क्षत्रिय होता है, वैश्य होता है और अपने कर्तव्यों से ही शुद्र होता हैं।

जे परिभवइ परं जणं, संसारे पारियत्तइ महं।
अदु इंखिणिया उ पाविया, इति संखाय मुणी न मज्जइ।। -सूय.. 2

अर्थ– जो दूसरों का पराभव-तिरस्कार करता है, हीलना निंदा करता है, वह चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता हैं। 'पराई निंदा करना, एक पापाचरण है,' ऐसा जानकर मुनि अभिमान नहीं करे अर्थात् स्वयं की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा न करें।

जहा कुम्मे सअंगाइ, सए देहे समाहरे।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।। -सूय. 8

अर्थ– जैसे कछुवा अपने अंगों को अपने शरीर में संकुचित कर लेता हैं। इसी प्रकार बुद्विमान पुरूष अध्यात्म भावना से अपनी पाप प्रवत्तियां को सुकुचित कर ले अर्थात् अध्यात्म में रमण करते हुए सम्पूर्ण पापों से दूर हो जावें।

एवं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एतावंतं वियाणिया।। -सूय.11

अर्थ– ज्ञानी होने का सार ही यह है कि किसी जीव की हिंसा न करना। अहिंसा ही आगम का मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। आध्यात्म का प्रमुख अंग है और अहिंसा ही आत्म-विज्ञान है।

संबुज्झमाणे उ णरे मईमं, पावाउ अप्पाणं निवट्टएज्जा।
हिंसप्पसूयाइं दुंहाइं मत्ता, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि।। -सूय.10

अर्थ- संसार के सम्पूर्ण दुःख हिंसादि पापों से ही उत्पन्न होते हे तथा ये पाप-कार्य वैर का अनुबन्ध कराने वाले और महाभय को उत्पन्न करने वाले होते है, ऐसा जानकर एवं समझ कर बुद्विमान पुरूष सदा पापों से अपनी आत्मा को दूर हटावे।

सम्यक्त्व स्वरूप एवं महत्त्व-

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरूणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं।। -आव.

अर्थ- जीवन-पर्यन्त अर्हन्त भगवान मेरे देव है, सच्चे साधु मेरे गुरू हैं, जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्त्व (धर्म) ही वास्तविक तत्त्व (धर्म) हैं, इस प्रकार सही श्रद्वा रखना ही सम्यक्त्व है इसे ही मैं स्वीकार करता हूँ।

टिप्पणी- यहां बहुवचन है एवं व्यक्तिगत नाम नहीं हैं। अतः जो कोई एक गुरू का नाम खोल कर समकित लेते है या देते हैं। तथा गुरू एक सेवा अनेक, ऐसा आगम निरपेक्ष कुवाक्य रटते है या रटाते हैं। वे वास्तव में अज्ञान दशा में डूब रहे हैं।

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।।
वावण्णकुदंसणवज्जणा, इय सम्मत्तसद्दहणा।। -आव.

अर्थ- (1) जिनेश्वर कथित तत्त्वों का सिद्वान्तों का ज्ञान बढ़ाना (2) ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानी जनों की संगति सेवा करना (3.4) प्राप्त सम्यक्त्व को खराब करने वालों की तथा मिथ्यादृष्ट्यिों की संगति नहीं करना, ऐसा करने से सम्यक्त्व की सुरक्षा एवं पुष्टि होती हैं।

1. हीनाधिक संयम का पालना करने वाले सम्यग्दृष्टि साधुओं की संगति या सेवा भक्ति का यहां निषेध नहीं हैं। जो श्रमण श्रमणोपासक ऐसा निषेध करके श्रावक समाज में रागद्वेष फैलाते है यह जिन शासन के विपरीत है। एंव समाज में रागद्वेष फैलाते हैं। आगम में तो मिथ्यादृष्टि एवं कुदर्शनी की संगति नहीं करने का निर्देश हैं। किन्तु संयम समाचारी में विभिन्नता वाले सम्यग्दृष्टि श्रमणों की संगति या सेवा भक्ति का निषेध नहीं है, यह उक्त पाठ से स्पष्ट है। अतः ऐसी प्ररूपणा करने वाले मन गढ़ंत अति प्ररूपणा दोष के भागी होते हैं।

कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे।। -उत्तरा. 23

अर्थ- दूषित सिद्धान्त वाले सभी मतानुयायी कुमार्ग में चलने वाले हैं। जिनेश्वर भगवान द्वारा कहा हुआ मार्ग ही सन्मार्ग हैं। यही उत्तम श्रेष्ठ मोक्ष मार्ग हैं।

तहिआणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं विआहियं।। -उत्तरा. 28

अर्थ- जीव आदि जो नव तत्व हैं उनका स्वतः या दूसरे के सहयोग से ज्ञान करना एवं उन पर भावपूर्वक श्रद्धा करना, इसे ही सम्यक्त्व कहते है।

नत्थि चरितं सम्मत्तविहूणं। -उत्तरा. 28

अर्थ- सम्यग्दर्शन के अभाव में सम्यक चारित्र नहीं होता अर्थात् श्रद्धान बराबर नहीं है तो संयम भी नहीं रहता हैं।

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न होंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं।। -उत्तरा. 28

अर्थ- सम्यक्त्व-रहित व्यक्ति का ज्ञान, ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना चारित्र के गुण नहीं होते । चारित्र के बिना कर्मों से छुटकारा नहीं होता और कर्मों से मुक्त हुए बिना निर्वाण प्राप्त नहीं होता हैं।

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी।। -उत्तरा. 36

अर्थ- जो जीवों जिनेश्वर भगवान् के वचनों में पूर्ण श्रद्धावान हैं और जो अन्तःकरण से जिन वचन के अनूसार अनुष्ठान करते है उसी में तल्लीन बन जाते है वे मिथ्यात्व रूपी मल से एवं कर्म मल से रहित होकर तथा संक्लेश से दुःखों से, संसार प्रपंचों से रहित होकर परित्त संसारी बन जाते है।

मोक्ष मार्ग-

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एवं मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छंति सोग्गइं।। -उत्तरा. 28

अर्थ- ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप-इस मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए जीव सिद्धि रूप सद्गति का लाभ करते हैं।

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।। -उत्तरा. 28

अर्थ- आत्मा, ज्ञान से ही जीव आदि भावों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता हैं। चारित्र से नवीन कर्मों का आगमन रोकता है और तप से कर्मों की निर्जरा करता है।

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य सखएणं,
एगतं सोक्खं समुवेइ मोक्खं ।। -उत्तरा. 32

अर्थ– सम्पूर्ण ज्ञान को प्रकट करने से, अज्ञान और मोह को दूर करने से तथा राग और द्वेष का पूर्ण रूप से क्षय करने से, प्राणी एकांत सुख रूप मोक्ष गति को प्राप्त करता है।

सुक्कमूले जहा रूक्खे, सिच्चमाणं न रोहति।
एंव कम्मा ण रोहंति, मोहणिज्जे खयं गए।। -उववाई

अर्थ– जिसकी जड़ सूख गई है वह वृक्ष सींचने पर भी हरा-भरा नहीं होता। इसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षीण हो जाने पर कर्मों की पुनः उत्पत्ति नहीं होती-कर्मबंध नहीं होता।

जहा दड्ढाणं बीयाणं, ण जायंति पुणंकुरा।
कम्मबीएसु, दड्ढेसु न जायंति भवंकुरा।। -उववाई

अर्थ– जैसे जले हुए बीजो से फिर अकुर उत्पन्न नहीं होते, उसी प्रकार कर्मरूपी बीजों के जल जाने पर भव भ्रमण रूप अंकुर उत्पन्न नहीं होता।

क्रोध के वश, घमंड़ के वश, कपट या लोभ लालच के वश में बोली गई सम्पूर्ण भाषा सावध भाषा है अतः भिक्षु को इनका त्याग करना चाहिए एवं विवेक रखना चाहिए। -आचा. श्रुत. 2 अ. 4

पाप करने के कारण–

(1) खुद के जीने के लिए (2) यक्ष कीर्ति के लिए (3) आई हुई आपत्ति दुःख को मिटाने के लिए संसारी लोग पाप करते हैं। (4) और कई भ्रमित बुद्धि वाले जन्म मरण से छूटने के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए, धर्म समझ कर भी जीव हिंसा करते हैं वे फल फूल-जल, एवं अग्नि के जीवों की हिंसा करते हैं एवं उसे धर्म क्रिया समझते हैं।
-आचा. श्रुत. 1 अ. 1 उद्दे. 1

अणुत्तरोपपातिक सूत्र

प्रस्तावना–

जैन धर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की वाणी है। सर्वज्ञों द्वारा कथित तत्व ज्ञान, आत्म ज्ञान तथा आचार व्यवहार का सम्यक् परिबोध आगम, शास्त्र या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। ''अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणा'' तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान गणधर उसे सूत्र रूप में ग्रंथित करके व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं।

जैन आगम साहित्य भारतीय साहित्य की विराट निधि का अनमोल भाग है। अर्थ के प्ररूपक साक्षात तीर्थंकर होने के कारण वह मौलिक और प्रमाणिक है। द्वादशांगी सूत्र अंग प्रविष्ट है तथा इनके आधार पर स्थविर जिस साहित्य की रचना करते हैं, वह अनंग प्रविष्ट-अंग बाह्य आगम कहा जाता है।

सूत्र नाम– प्रस्तुत अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र का द्वादशांगी के नवमें अंग का आगम सारांश है। उत्तम-प्रधान विमान को अनुत्तर विमान कहते हैं। सौधर्म ईशान आदि बारह स्वर्गों के ऊपर नव गैवेयक विमान है। उनके ऊपरे विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध ये पांच अनुत्तर विमान हैं। जो साधक अपने उत्कृष्ट तप संयम की साधना से इनमें जन्म पाते हैं, उनको 'अनुत्तरोपपातिक' कहते हैं। 'दशा' शब्द अवस्था या दस संख्या का सूचक है। अन्य वर्णनों से ऐसा भी ध्वनित होता है कि कभी इस सूत्र के कुल दस अध्ययन ही थे।

सूत्र विषय– वर्तमान में उपलब्ध इस सूत्र में तीन वर्ग हैं और कुल 10+13+10=33 अध्ययन हैं। जिसमें पहले और दूसरे वर्ग के 23 ही अध्ययनों में श्रेणिक राजा के 23 पुत्रों का वर्णन है।

इस सूत्र में वर्णित तेतीस ही जीवों ने अपार सुख वैभव एवं अपनी विवाहित स्त्रियों का त्याग कर चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के पास संयम स्वीकार किया और अन्त में एक मास के पादपोपगमन संथारे से अणुत्तर विमान के देव भव को प्राप्त किया। देव भव के अनन्तर वे सभी मनुष्य बन कर मुक्ति प्राप्त करेंगे।

अनुत्तरोपपातिक सूत्र के प्रमुख पात्र धन्य कुमार काकंदी की भद्रा सार्थवाही के पुत्र थे। उन्होंने अपरिमित सुखसमृद्धि को त्याग कर श्रमण जीवन स्वीकार किया, बेले बेले तप के साथ आचाम्ल पारणा स्वीकार कर अनेक स्वैच्छिक प्रतिबन्ध-अभिग्रह धारण किये थे। स्वयं श्री वीर प्रभु ने श्रेणिक महाराज के समक्ष कहा था की 14000 शिष्य परम्परा में धन्य अणगार उत्कृष्ट तपोमूर्ति हैं, इस प्रकार धन्य अणगार नव मास की अल्पावधि में ही उत्कृष्ट साधना कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। वहां से च्यवन कर वे मनुष्य जन्म पाकर तप संयम की साधना के द्वारा सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे।

सूत्र वर्णित तेतीस महान आत्माओं के नाम-

प्रथम वर्ग- 1. जालि, 2. मयालि, 3. उपजालि, 4. पुरुषसेन, 5. वारिसेन, 6. दीर्घदंत, 7. लष्टदंत, 8. वेहल्ल, 9. वेहायस, 10. अभयकुमार।

दूसरा वर्ग- 1. दीर्घसेन, 2. महासेन, 3. दुष्टदन्त, 4. गूढदन्त, 5. शुद्धदन्त, 6. हल्ल, 7. द्रुम,

8. द्रुमसेन, 9. महाद्रुमसेन, 10. सिंह, 11. सिंहसेन, 12. महासिंहसेन, 13. महापुण्यसेन ।

तीसरा वर्ग- 1. धन्य, 2. सुनक्षत्र, 3. ऋषिदास, 4. पेल्लक, 5. रामपुत्र, 6. चन्द्रिक, 7. पृष्टि मात्रिक 8. पेढ़ाल पुत्र, 9. पौष्टिल्ल, 10. वेहल्ल।

गति- 17 आत्माएं सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुई। 16 आत्माएं शेष चार अणुत्तर विमान में उत्पन्न हुई।

संयोजक
विमल कुमार नवलखा

अणुत्तरोपपातिक सूत्र

प्रथम वर्ग

जालि कुमार-

प्रारंभिक जीवन- चौथे आरे में राजगृह नामक ऋद्धि संपन्न नगर था। वहां श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उसके धारिणी नाम की राणी थी। एक बार उसने अर्द्ध निद्रा में सिंह का शुभ स्वप्न देखा। कालांतर से उसके पुत्र हुआ जिसका नाम जाली कुमार रखा। यौवन वय प्राप्त होने पर उसका आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ।

विवाह के बाद पिता ने भवन आदि सभी प्रकार की वस्तुएं आठ-आठ की संख्या में तथा आठ करोड़ सोने चांदी की मोहरें आदि उस जालीकुमार को प्रीतिदान रूप में दी जिसे उसने आठों पत्नियों में विभक्त कर दिया एवं श्रेष्ठ प्रासादों में (महलों में) नाटक गीत आदि का और मनुष्य सम्बन्धी सुखों का उपभोग करता हुआ रहने लगा।

वैराग्य भाव- एक बार विचरण करते हुए वहां भगवान महावीर स्वामी पधारे। नगरी के लोग, दर्शन, वंदन, पर्युपासना करने के लिए गये। श्रेणिक राजा भी भगवान की सेवा में गया। जाली कुमार को भी भगवान के आगमन की जानकारी हुई वह भी भगवान की सेवा में पहुंचा। सर्वज्ञ भगवान की वैराग्यपूर्ण धर्म-देशना सुनकर उसकी आत्मा संसार से विरक्त हो गई। घर पहुंच कर माता-पिता से आज्ञा प्राप्त की एवं भगवान की सेवा में उपस्थित होकर संयम अंगीकार किया।

संयमी जीवन- संयम पर्याय में आवश्यक सूत्र के अध्ययन के बाद उसने ग्यारह अंग शास्त्रों का अर्थ सहित ज्ञान कंठस्थ उपार्जित किया। **''गुणरत्न संवत्सर''** विशिष्ट तप का आराधन किया। भिक्षु की बारह प्रतिमाओं की आराधना की।

पंडित मरण- अंतिम समय निकट जानकर भगवान के पास उपस्थित हुआ एवं संथारा करने की आज्ञा प्राप्त की। तदनंतर उसने भगवान की अनुमति से स्वयं पुनः महाव्रतारोपण किया और स्थविर भगवंतों के साथ ''विपुल'' पर्वत पर धीरे-धीरे चढ़कर योग्य स्थान में पहुंच कर पादपोपगमन संथारा कर लिया। एक महिने तक संथारा चला। फिर उसके दिवंगत हो जाने पर स्थविर भगवंतों ने परिनिर्वाण का कायोत्सर्ग किया एवं उनके परिशेष उपकरण लेकर भगवान की सेवा में पहुंचे। भगवान को वंदन नमस्कार कर जाली अणगार के दिवंगत होने का संदेश दिया और उसके उपकरण भगवान की सेवा में उपस्थित किए।

भविष्य- तदनंतर गौतम गणधर के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने कहा कि जाली कुमार **''विजय''** नामक प्रथम अणुत्तर विमान में बत्तीस सागरोपम की स्थिति में देव बना है और फिर वहां का आयु पूर्ण कर मानव भव प्राप्त करके संपूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त होगा।

दस अध्ययन का परिचय– इसी तरह शेष नव ही भाईयों का वर्णन है। वे सभी श्रेणिक के पुत्र थे। सात की माता धारिणी थी वेहल्ल और वेहायस दो की माता **''चेलना''** थी। अभयकुमार की माता **'नन्दा'** थी।

प्रथम पांच के 16 सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय थी। फिर तीन की बारह वर्ष और अंतिम दो की पांच वर्ष की कुल दीक्षा पर्याय थी।

प्रथम के पांच अध्ययन में वर्णित अणगार क्रमश– 1 विजय, 2 वैजयंत, 3. जयंत, 4. अपराजित, और 5 सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। आगे के पांच अणगार क्रमशः सर्वार्थ सिद्ध, अपराजित, जयंत, वैजयंत और विजय नामक अणुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। अर्थात् पहले और दसवें अणगार प्रथम **''विजय''** अणुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। अंत में जालीकुमार के समान सभी जीव महाविदेह क्षेत्र में मानव भव प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करेंगे।

अभयकुमार– इस वर्ग के दसवें अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि श्रेणिक का बुद्धि निधान पुत्र प्रधान मंत्री अभयकुमार भगवान के पास दीक्षित हुआ। उसके दीक्षित होने के पूर्व का रोचक वृत्तान्त कथा ग्रन्थों में इस प्रकार मिलता है।

दीक्षा लेने की भावना– एक बार अभयकुमार ने भगवान से उपदेश श्रवण करने के बाद प्रश्न किया कि हे भंते! आपके शासन में अंतिम मोक्षगामी राजा कौन होगा ? भगवान ने उत्तर दिया उदाई राजा मेरे पास दीक्षित हो चुका है वहीं अंतिम मोक्षगामी राजा है। इस उत्तर से अभयकुमार ने निर्णय किया कि मुझे राजा नहीं बनना, किन्तु उसके पूर्व ही दीक्षित हो जाना चाहिए क्योंकि राजा बनूंगा तो मोक्ष नहीं जा सकूंगा। श्रेणिक राजा ने उसे दीक्षा की आज्ञा नहीं दी किन्तु अत्यंत आग्रह करने पर कह दिया कि ''जिस दिन मैं तुम पर रूष्ट होकर कह दूं कि **''दूर हट जा''** मुझे अपना मुंह न दिखा उसी दिन तू श्रमण बन जाना''। विनयंवत बुद्धि संपन्न प्रिय पुत्र के लिए इस प्रकार के कथन का प्रसंग असंभव सा था।

एक बार राजा श्रेणिक और चेलना राणी नदी के किनारे से निकले। कड़ाके की सर्दी का समय था। वहां उन्होंने एक साधनामय ध्यानस्थ योगी मुनि के दर्शन किए और अपने राजभवन में आ गये।

दीक्षा की आज्ञा– रात्रि के समय राजा श्रेणिक राणी चेलना के भवन में सोये थे। चेलना का हाथ नींद में ओढ़ने से बाहर रह गया और ठंडी से ठिठुर गया। रानी की नींद उचट गई और हाथ की वेदना के साथ उस ध्यानस्थ मुनि का स्मरण हो आया। उसके मुंह से अचानक निकल पड़ा कि **''वे क्या करते होंगे''**। सर्दी के कारण राजा की निद्रा भंग हो जाने से ये शब्द उसने सुन लिए और उसे रानी के चरित्र में अविश्वास हो गया। सुबह होते ही अभयकुमार को यह आदेश दिया कि चेलना रानी के महल को जला दो। ऐसा कहकर स्वयं भगवान के दर्शन करने चला गया। अभयकुमार ने रानियों को और बहुमूल्य पदार्थों को महलों से निकाल लिया और फिर महल में आग लगा दी।

भगवान के उपदेश श्रवण के बाद श्रेणिक ने पूछकर यह जान लिया कि चेलना का चारित्र कलंक रहित है। भगवान ने फरमाया महाराज चेटक की 7 पुत्रियां हैं, सभी महान् चरित्रवान है। अपने आदेश का पश्चाताप करते हुए राजा शीघ्र लौटा। अभयकुमार मार्ग में मिल गया और राजा के पूछने पर महल जला देने की बात कही। खेद के कारण अनायास ही राजा के मुंह से ये शब्द निकल पड़े यहां से ''दूर हट जा'' मुझे कभी भी अपना मुंह मत दिखाना। उसी समय अभय भगवान की सेवा में पहुंच गया और दीक्षित हो गया।

वेहल्ल वेहायस– इस वर्ग के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि जनसंहारक महायुद्ध के निमित्त भूत हार और हाथी के नष्ट हो जाने के बाद वेहल्ल और वेहायस दोनों राजकुमार भगवान के पास दीक्षित हो गये थे और वे तप संयम की आराधना करके अणुत्तर विमान में उत्पन्न हए। यह दोनों ही कोणिक राजा के सगे भाई और चेलना रानी के पुत्र थे।

दूसरा वर्ग

तेरह अध्ययनों का संक्षिप्त परिचय–

इस वर्ग में 13 अध्ययन हैं जिसमें दीर्घसेन आदि श्रेणिक के पुत्र और धारणी के अंगजात तेरह जीवों का वर्णन है। ये सभी सगे भाई थे। यौवन वय में पत्नियों का त्याग कर भगवान के पास दीक्षित हुए और सौलह वर्ष तक संयम तप का पालन किया। अन्त में एक महिने के संथारे से काल करके अणुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। इनके श्रुत अध्ययन का एवं तप आदि का सारा वर्णन जाली कुमार के समान है।

इन तेरह में से क्रमशः दो ''**विजय**'' अणुत्तर विमान में दो वेजयन्त में और दो जयंत में दो अपराजित अणुतर विमान में उत्पन्न हुए। शेष अन्तिम पांचों सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। तेरह ही भाई देवायु पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे एवं यथासमय संयम तप का आचरण कर सम्पूर्ण कर्मों से और भव प्रपंच से मुक्त हो जायेंगे।

तीसरा वर्ग– धन्ना अणगार

प्रारम्भिक जीवन– प्राचीन काल में कांकदी नाम की समृद्ध नगरी थी। वहां जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगरी में भद्रा नाम की सेठाणी रहती थी। उसके धन्यकुमार नामक पुत्र था जो अनेक श्रेष्ठ लक्षणों और गुणों से सम्पन्न था।

बड़े ही आनन्द के साथ पांच धायों के लालन पालन से उसका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। फिर कलाचार्य के पास रहकर 72 कलाओं में और अनेक भाषाओं में एवं शास्त्रों में पारंगत हुआ। माता ने उसके लिए तेतीस भवन तैयार करवाए और बहुत आडंबर और समारोह के साथ उसका विवाह बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं के साथ करवाया।

वह धन्यकुमार अपार धन वैभव का एवं मनुष्य सम्बन्धी सुखों का उपभोग करते हुए 32 स्त्रियों के साथ आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करने लगा।

दीक्षा की भावना– एक समय काकंदी नगरी में भगवान् महावीर स्वामी पधारे। नागरिक जन दर्शनार्थ भगवान् की सेवा में पहुंचे। धन्यकुमार भी पैदल चलकर भगवान के समवसरण में उपस्थित हुआ। उपदेश सुनकर धन्यकुमार श्रद्धान्वित होकर संसार से विरक्त हो गया एवं भगवान् के समीप उसने भद्रा माता से आज्ञा प्राप्त करके संयम लेने की भावना व्यक्त की।

आज्ञा प्राप्ति– तदनंतर उसने घर आकर माता के सामने अपनी भावना रखी। माता पुत्र मोह के कारण दीक्षा लेने के वचन सुनते ही मुर्च्छित हो गई। थोडी देर से आश्वस्त होकर विलाप करते हुए वह पुत्र को समझाने लगी कि हे पुत्र! अभी दीक्षा मत ले। हमारे काल कर जाने के बाद दीक्षा लेना। हम क्षण भर भी तुम्हारा वियोग नहीं देख सकते।

धन्यकुमार माता को निवेदन करता है कि हे माता! मनुष्य जीवन क्षण भंगुर है, ये कामभोग अवश्य त्यागने योग्य है। कौन पहले या पीछे मर जाय यह भी ज्ञात नहीं होता है। अतः मैं अभी ही संयम ग्रहण करूंगा। फिर बिना इच्छा के ही माता ने दीक्षा की आज्ञा दी। उस नगरी के राजा जितशत्रु ने स्वयं ही विशाल अभिषेक के साथ उसका दीक्षा महोत्सव किया जिस प्रकार कृष्ण महाराज ने थावच्चा पुत्र का दीक्षा महोत्सव किया था।

संयमी जीवन– भगवान् के समीप पहुंच कर धन्यकुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया एवं भगवान् ने उसे राजा एवं माता की आज्ञा से दीक्षा पाठ पढ़ाया। धन्यकुमार अब धन्ना अणगार बन गया।

विशिष्ठ तप साधना– दीक्षा ली उसी दिन से धन्ना अणगार ने आजीवन बैले-बैले पारणा करने की प्रतिज्ञा धारण की तथा पारणे के लिए भी कठोरतम प्रतिज्ञा धारण की। अर्थात् पारणे में आयंबिल करना और उसमें रूक्ष आहार भी ऐसा ग्रहण करना जिसे कि अन्य कोई भी याचक नहीं लेना चाहे, ऐसा फेंकने योग्य आहार मिले तो ही लेना। इस प्रकार अभिग्रह कर पारणे के लिए घूमते हुए उन्हें कभी पानी नहीं मिलता तो कभी आहार भी नहीं मिलता।

जो कुछ भी मिलता उसी में पूर्ण सन्तुष्ट होकर धन्ना अणगार किसी प्रकार का खेद न करते हुए समभावों से विधिपूर्वक आहार करते थे। इस प्रकार के उत्कट तप के द्वारा उनका शरीर केवल अस्थिपंजर (हड्डियों का ढांचा) सा हो गया। उनके उस तपोमय शरीर के एक-एक अंग उपांग का उपमायुक्त विस्तृत वर्णन सूत्र में किया गया है। अन्त में बताया है कि वे धन्ना मुनि तपस्तेज की शोभा से अत्यन्त शोभित हो रहे थे।

धन्ना अणगार ने आवश्यक सूत्र एवं ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया एवं तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए भगवान् के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

(**टिप्पण–** नौ महिने की दीक्षा में 11 अंगों का अध्ययन संभव नहीं है। दीक्षा पूर्व अध्ययन संभव नहीं है। दीक्षा पूर्व अध्ययन हो तो संभव है अथवा यह 11 अंग का घोष पाठ मात्र है जो प्रति नकलों से आया है अतः अशुद्ध है।)

सभी श्रमणों में श्रेष्ठ- एक बार भगवान् राजगृही नगरी में पधारे। राजा श्रेणिक दर्शन करने के लिए आया। धर्मोपदेश सुनने के बाद उसने यह पृच्छा की कि हे भंते! गौतम अणगार सहित 14 हजार मुनियों में सबसे अधिक दुष्कर करणी करने वाला अणगार कौन है? उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि वर्तमान में धन्ना अणगार सबसे दुष्कर करणी करने वाला है और महान निर्जरा करने वाला है।

यह सुनकर श्रेणिक अत्यन्त हर्षित हुआ एवं धन्ना अणगार के समीप आकर उसे धन्य-धन्य कहते हुए उसका गुणग्राम किया और उसे भक्ति पूर्वक वंदन नमस्कार किया और पुनः भगवान को वंदन नमस्कार करके अपने महलों में चला गया।

पंडितमरण– कालांतर से धन्ना अणगार ने भी जालीकुमार के समान ही विपुल पर्वत पर चढ़कर संलेखना संथारा किया और नव मास की दीक्षा का पालन कर एक मास के संथारे से काल करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ। वहां तेतीस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा।

आदर्श जीवन से शिक्षा– प्रस्तुत अध्ययन से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि आत्म-कल्याण की इच्छा से संसार का त्याग करने के बाद साधक को कहीं भी ममत्व नहीं करना चाहिए और अन्यत्र किधर भी न भटकते हुए शरीर का भी ममत्व त्याग कर तप संयम में पुरुषार्थ करना चाहिए। इस प्रकार करने पर ही संयम ग्रहण करने के उपक्रम को सार्थक बनाया जा सकता है।

जो साधक घर छोड़कर भी पुनः इधर-उधर के ममत्व चक्कर में फंस जाता है, तप-संयम में पुरुषार्थरत नहीं बनता है, वह कहीं का भी नहीं रहता है उसके यह लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं। अतः धन्ना अणगार आदि के आदर्शों को सामने रखकर ही प्रत्येक मुमुक्षु आत्माओं को अपना संयम जीवन सफल बनाना चाहिए।

शेष अध्ययन– सुनक्षत्र आदि शेष नौ का वर्णन भी धन्ना अणगार के समान है। नगरी, माता का नाम और दीक्षा पर्याय में कुछ अन्तर है। वे सभी तप, संयम की उत्कृष्ट आराधना करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

इस वर्ग में 9 महिने और 6 महिने की दीक्षा पर्याय के साथ भी ग्यारह अंगों के अध्ययन का वर्णन विशेष मननीय है।

तीसरे वर्ग में वेहल्लकुमार के अतिरिक्त 9 के पिता मौजूद नहीं थे, दीक्षा के पूर्व ही दिवंगत हो गये थे। ऐसा सूत्र के वर्णन से स्पष्ट होता है।

प्रथम वर्ग में श्रेणिक के प्रसिद्ध वेहल्ल वेहायस का वर्णन है। दूसरे वर्ग में भी ''**हल्ल**'' नाम आया है और तीसरे वर्ग में भी एक ''**वेहल्ल**'' नाम आया है। ये सभी भिन्न-भिन्न हैं, उपलब्ध सूत्र पद्धति में नाम साम्यता हो जाना सहज संभव है।

नोट– विस्तृत विवेचन के लिए विदुषी साध्वी श्री डा. मुक्तिप्रभा जी म.सा. द्वारा संपादित एवं आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा प्रकाशित इस सूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

।। अणुत्तरोपपातिक दशा सूत्र का सारांश समाप्त ।।

प्रश्नव्याकरण सूत्र

प्रस्तावना–

द्वादशांगी में यह दसवां अंग सूत्र है। इसके पूर्व छठवां सातवां आठवां नवमा अंग सूत्र कथा प्रधान शास्त्र है और इसके बाद भी ग्यारहवां अंग विपाक सूत्र कथा प्रधान शास्त्र है। किन्तु उपलब्ध इस दसवें अंग शास्त्र में पांच आश्रव और पांच संवर का विस्तार पद्धति से वर्णन है।

ऐतिहासिक विचारणाएं–

नंदी सूत्र एवं ठाणांग-समवायांग सूत्र में इस सूत्र का विषय परिचय कुछ अन्य ही है जो उपलब्ध सूत्र से किंचित भी सुमेल नहीं खाता है।

इतिहासज्ञ, चिंतक एवं अन्वेषक विद्वानों ने इस विषय में कई विचार उपस्थित किए हैं किन्तु उन सब को मिलाकर भी पूर्ण निर्णयात्मक कोई परिणाम नहीं आता है।

देववाचक श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण या अन्य सूत्रकार आचार्यों ने मौलिक आगमों में उस समय की आगम परिवर्तन की परिस्थितियों का कोई उल्लेख नहीं किया है न ही उस समय ऐसे ऐतिहासिक संकेत लिखने की पद्धति थी। वह समय केवल सूत्र निर्माण का ही युग था। सूत्रों की व्याख्या या परिचय या ऐतिहासिक लेखन का युग बहुत बाद में क्रमशः प्रगति करने लगा है। इसी कारण कल्पनाओं के उडान भरने के अतिरिक्त निर्णय कुछ भी नहीं हो पाया है।

नूतन विचारणा–

बुद्धि जीवी व्यक्तियों के लिए एक नूतन चिंतन प्रस्तुत है कि छठ्ठे से ग्यारहवें अंग शास्त्र तक सभी कथा प्रधान शास्त्रों के बीच में यह दसवां अंग भी कथा प्रधान होना विशेष उपयुक्त होता है। बीच में चमत्कारी विद्याओं से परिपूर्ण इस सूत्र के होने का कोई संगत कारण ध्यान में नहीं आता है।

दूसरी बात यह है कि द्वादशांगी में ग्यारह अंग शास्त्रों का प्रत्येक आत्मार्थी साधु साध्वी अध्ययन (कंठस्थ) करते हैं। बारहवें दृष्टिवाद के अध्ययन की योग्यता हर किसी की नहीं होती है। वह विशेष पात्र को ही दिया जाता है एवं साध्वियों के लिए भी उसका अध्ययन पूर्ण निषिद्ध है।

अतः आगमकार श्री गणधर प्रभू के द्वारा सामान्य सभी साधकों को अध्ययन कराए जाने वाले आगम में चमत्कारी विद्याओं के गुंथन करने की कल्पना करना एवं अन्य विद्वानों के द्वारा उसके दुरुपयोग की आशंका से निकलवाना, उचित नहीं माना जा सकता। इसमें गणधर प्रभु की प्रतिष्ठा हानि भी होती है।

अतः आचारांग का आठवां अध्ययन हो अथवा संपूर्ण प्रश्न व्याकरण सूत्र, इन्हें चमत्कारी विद्याओं के कारण लोप करना बताना, एक भ्रमित चलपड़ी परंपरा मात्र है। वास्तव में दीमक लगने आदि किसी भी कारण से ये सूत्र या अध्ययन

विकृ त बन गये है। त्रुटित हो गये हैं जिनको कि पुनः संपादित करना कठिन होने पर उसे विच्छेद कह दिया गया है और पूर्णतः नया रुप ही दे दिया गया है। इस संदर्भ में कई विद्वानों का मन्तव्य है कि उस त्रुटित प्रश्न व्याकरणसूत्र के अनेक विभाग बने हैं, जो आज उत्तराध्ययन, जयपाहुड एवं ऋषिभाषित आदिशास्त्र के रुप में उपलब्ध है।ठाणांग में सूचित अध्ययनों के नाम से भी इस बात को बल मिलता है।

विचारणा सार- प्रश्न व्याकरण सूत्र के नाम और उसके अर्थ से अनेक कल्पनाएं उद्भूत हुई है। वास्तव में ग्यारह अंग सामान्य साधु साध्वी सभी के अध्ययन योग्य शास्त्र है। उनमें से यह दसवां अंग शास्त्र है। इसमें चमत्कारिक विद्याओं की अपेक्षा आचार या धर्मकथा का विषय होना ही संगत प्रतीत होता है। बारहवां अंग विशाल है। एवं विविध विषयों का भंडार है जिसका विशिष्ट साधक ही अध्ययन करते हैं। उसमें ही चमत्कारिक विद्याओं आदि का वर्णन होता है।

उपलब्ध स्वरुप-

वर्तमान में उपलब्ध इस आगमों के दो श्रुत स्कं ध है। दोनों में पांच पांच अध्ययन है। जिसमें हिंसादि पांच आश्रवों का और अहिंसा आदि पांच संवर का क्रमश वर्णन किया गया है अन्य कोई विषय या चर्चा इसमें नहीं है। उपलब्ध यह सूत्र 1256 श्लोक प्रमाण माना गया है।

उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी ने जैनागम साहित्य मनन और मीमींसा ग्रंथ में इस सूत्र का अर्थ इसके विषय से इस प्रकार सम्बंधित किया है- जिस सूत्र में अहिंसा सत्य-असत्य आदि धर्म अधर्म रुप विषयों की चर्चा है, वह प्रश्न व्याकारण कहा जा सकता है।

संस्करण-

इस सूत्र पर नवांगी टीकाकार श्री अभयदेव सूरि की संस्कृत टीका उपलब्ध है। वर्तमान में यह आचार शास्त्र है फिर भी इसकी भाष्य चूर्णी निर्यक्ति आदि व्याख्याएं नहीं है। हिन्दी गुजराती अनुवाद व्याख्याएं नहीं हैं। हिन्दी गुजराती अनुवाद व्याख्याएं अनेक जगह से प्रकाशित हैं। पूज्य श्री धासीलालजी म. सा. द्वारा संपादित संस्कृत टीका भी उपलब्ध है। विशेष में पंजाबी प. रत्न श्री अमरमुनि द्वारा संपादित सुंदर प्रकाशन उपलब्ध है। संस्कृति रक्षक संघ सैलाना एवं आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से भी सूत्र का अनुवाद विवेचन प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार इस सूत्र की भाषा विशेष क्लिष्ट सामासिक होते हुए भी इसका विशेष प्रचार हुआ है जिसका प्रमुख कारण है कि यह आचार शास्त्र है।

आगम सारांश के प्रावधान के अनुसार भी इस सूत्र का सारांश तैयार किया गया जो सरल और संक्षिप्त पद्धति से संकलित किया गया है। आवश्यक ज्ञेय अनेक तत्वों को इस सारांश में देने का प्रयास किया गया है फिर भी विस्तारभय एवं सामान्य पाठकों को अपेक्षित रखने से अनेक तत्त्व नहीं लिये जा सके हैं। फिर भी अपने लक्ष्यानुसार संपादित यह सारांश के रूप में स्वाध्यायियों के कर कमलों में पहुंच रहा है। आशा है कि अधिकतम स्वाध्यायी इससे लाभान्वित होंगे।

-विमल कुमार नवलखा

प्रश्न व्याकरण सूत्र

प्रथम सूत्र स्कंध

पहला अध्ययन (हिंसा)

हिंसा का स्वरुप-

हिंसा के स्वरुप को समझाने के लिए 22 विशेषण हैं वे इस प्रकार हैं- (1) हिंसा प्रथम पाप होने से पाप रुप है। (2) उग्र होने से जीव हिंसा करता है अतः यह प्रचंड है। (3) रौद्र परिणामों से होती है अतः रुद्र है। (4) क्षुद्र असहिष्णु तुच्छ प्रकृति के एवं संकीर्ण मानस वालों से हिंसा की जाती है अतः यह क्षुद्र है। (5) अचानक बिना विचारे या विवेक हीनता से की जाती है। (6) अनार्य पुरुषों द्वारा आचरित होती है। (7) पाप की घृणा रहित निर्घृणा है। (8) क्रूर रुक्ष होने से नृशंस है। (9) महा भयकारी है अर्थात् जिसकी हिंसा की जाती है वह भी भय से व्याप्त होता है, हिंसा को देखने वाला भी भय से व्याप्त होता है और हिंसा करने वाला भी अपने भूत भविष्य वर्तमान किसी भी भय से व्याप्त होकर हिंसा करता है। (10) यह प्रत्येक प्राणी को भयकारी है अर्थात् प्राणी मात्र को मृत्यु का भय होता है। (11) मृत्यु से बढ़कर अन्य कोई भय नहीं है अतः यह हिंसा अति भयकारी है। (12) भय को उत्पन्न करने वाली है। (13) त्रास-क्षोभकारी है, पीड़ा उत्पन्न करने वाली है (14) जीवों के लिए अन्यायकारी है। (15) उद्वेग-घबराहट करने वाली है। (16) दूसरों के प्राणों की परवाह नहीं करने वाली है। (17) तीन काल में भी हिंसा, धर्म नहीं हो सकती है अतः यह निर्धम है। (18) दूसरों के जीवन की परवाह नहीं होती अतः यह निष्पिपास है। (19) करुणा रहित होने से निष्करुणा है। (20) हिंसा नरक गति को प्राप्त कराने वाली है। (21) आत्मा को महा मोह में डालने वाली होने से महा मोह भय प्रवर्त्तक है। (22) मरण रुप होने से जीवों को विमन बनाने वाली है। संहिता के स्वरूप की विविध अपेक्षाओं को बताने वाले विशेषण है।

हिंसा के नाम-पर्यायवाची शब्द-

1. प्राणवध, 2. शरीर से (जीव का) उन्मूलन, 3. अविश्वास, 4. हिंस्य-विहिसा, 5. अकृत्य, 6. घात, 7. मारण, 8. वधना, 9. उपद्रव (वधकारी), 10. अतिपाल, 11. आरंभ समारंभ, 12. आयुष्य का उपद्रव, 13. मृत्यु, 14. असंयम, 15. कटक-मर्दन, 16. व्यपरमण (प्राणों से जीव जुदा करना), 17. पर भव में पहुंचाने वाली, 18. दुर्गति में गिराने वाली दुर्गति प्रपातक, 19. पाप कोप (पाप के प्रति उत्तेजित कराने वाली), 20. पाप लोभ (पाप के प्रति प्रेरित लुब्ध करने वाली), 21. छविच्छेद, 22. जीवंत कर, 23. भयंकर, 24. ऋणकर (ऋण चढ़ाने वाली), 25. वज्र (आत्मा को भारी करने वाली), 26. परिताप आश्रव, 27. विनाश, 28. निर्यापन (प्राण समाप्त करने वाली), 29. लुंपन, 30. गुणों की विराधक।

हिंसकों के पाप कार्य–

पापासक्त करुणाहीन एवं अन्य प्राणियों को पीड़ा पहुंचाने में आनन्द अनुभव करने वाले पुरुष जलचर जीव-मच्छ, कच्छ, मेंढक, ग्राह, सुंसुमार आदि जीवों की घात करते हैं। स्थलचर- हाथी, घोड़े, गाय, बकरे, खरगोश, हिरण आदि की घात करते हैं। उरपरिसर्प- सांप आदि। भुजपरिसर्प- नेवले, चुहे आदि और खेचर- चिड़ी, कबूतर, तोता, हंस, मुर्गा आदि पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करते हैं। बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय आदि विविध दीन हीन प्राणियों की पापी पुरुष हिंसा करते हैं।

हिंसा के प्रयोजन–

पापी प्राणी इन-इन कारणों हेतुओं से निजी स्वार्थों को लेकर जीवों की हिंसा करते हैं।

- चमड़ा, मांस, खून, नख, दांत, आंत, सींग आदि शरीर अवयवों के लिए पंचेन्द्रिय जीवों का घात करते हैं।
- शहद के लिए मधुमक्खियों का हनन करते हैं।
- शरीर की सुविधा के लिए खटमल, मच्छर आदि का हनन करते हैं। इसी प्रकार अपने स्वार्थ के लिए चुहे उदई (दीमक), अनाज के जीव, सर्प, कुत्ते, बिच्छु आदि प्राणियों का विनाश करते हैं।
- रेशम आदि वस्त्रों के लिए अनेकानेक द्विन्द्रिय कीड़ों की घात करते हैं।
- अन्य अनेक प्रयोजनों से त्रस प्राणियों की घात करते हैं तथा पृथ्वी पानी आदि स्थावर जीवों के आश्रय में रहे हुए अनेक त्रस जीवों की जानकर या अनजान से हिंसा करते रहते हैं। वे अज्ञानी प्राणी इन असहाय त्रस जीवों को, स्थावर जीवों को एवं स्थावर के आश्रय में रहे त्रस जीवों को नहीं जानते हैं। कई प्राणियों का वर्ण आदि आश्रयभूत पृथ्वी आदि के समान ही होता है अतः इनमें से कई तो नेत्रों से भी दिखाई नहीं देते हैं।

स्थावर जीवों की हिंसा का प्रयोजन–

- खेती के लिए कुं आ, बावड़ी, तालाब व झील बनाने के लिए, मकान निर्माण कार्य के लिए, बर्तन उपकरण बनाने के लिए तथा आजीविका के लिए कई प्रकार के खनिज पदार्थों का उत्पादन या व्यापार करने के लिए पृथ्वी कार्य के जीवों की हिंसा की जाती है।
- स्नान, भोजन बनाने, पीने, धोने आदि सफाई की प्रवृत्तियों में गृह कार्यों में गमनागमन, नावादि में चलने या जल में तेरने आदि से अपकाय के जीवों की हिंसा की जाती है। पानी स्वयं जीवों के शरीर से बना होता है उसके उपयोग से उन जीवों का विनाश होता है।
- भोजन बनाने, दीपक आदि जलाने एवं प्रकाश करने के लिए या ठंडी में तापने के लिए एवं किसी भी पदार्थ को जलाने के लिए अग्निकाय के जीवों की विराधना (हिंसा) की जाती है।

- धान्यादि को साफ करने, हवा करने, फूंक देने, झूला, वाहन का उपयोग या अन्य कार्य एवं शारीरिक विविध प्रवृत्तियों से वायुकाय की विराधना की जाती है।
- अनेक उपकरण, शस्त्र, मकान एवं भोजन सामग्री तथा औषध भेषज आदि के लिए वनस्पति जीवों की विराधना की जाती है।

इस प्रकार संसार के समस्त प्राणी अपने जीवन की विविध आवश्यकताओं के लिए स्थावर जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा एवं वनस्पति के जीवों की हिंसा करते रहते हैं।

हिंसक जीवों का मानस-

हिताहित के विवेक से शून्य स्ववश या परवश होकर, क्रोध से प्रेरित होकर या अन्य कषाय मान माया लोभ, राग, द्वेष स्वार्थ, मोह के वशीभूत होकर, हंसी विनोद हर्ष शोक के आधीन होकर और कितने ही अज्ञानी धर्मलाभ के भ्रम से भी त्रस स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं।

धीवर, अनार्य, म्लेच्छ एवं शुद्र तथा हिताहित के विवेक से रहित प्राणी पंचेन्द्रिय त्रस प्राणियों की घात करते हैं। इनके अतिरिक्त जो जीव अशुभ परिणाम लेश्या वाले हैं वे सन्नी असन्नी पर्याप्त अपर्याप्त जीवों का हनन करते हैं।

हिंसा का परिणाम-

उक्त विविध हिंसा कृत्यों में सलंग्न जीव उन कृत्यों का जीवन भर त्याग नहीं करता है एवं उसी हिंसक अवस्था में ही मर जाता है तो उसकी दुर्गति होती है जिससे वह नरक गति में या तिर्यञ्च गति (पशु योनि) में उत्पन्न होता है जहां संपूर्ण जीवन दुःख ही दुःख में व्यतीत करता है।

नरक के दुःख-

1. वहां सदा घोर अंधकार रहता है।
2. उम्र कम से कम दस हजार वर्ष की होती है। उत्कृष्ट असंख्य वर्षों की अर्थात् 33 सागरोपम की होती है।
3. भूमि का स्पर्श एक साथ हजार बिच्छु, डंक देवे वैसा होता है।
4. सर्वत्र भूमि पर मांस, रुधिर, पीव, चर्बी आदि घृणास्पद वस्तुओं जैसे पुदगलों का कीचड़ सा बना रहता है।
5. भवनपति जाति के परमाधामी देव वहां जाकर नैरयकों को औपद्रविक दुःख देते रहते हैं और वे देव उसमें ही आनंद मानते हैं।
6. अन्याय गलियों के कुत्तों की तरह वे नैरयिक एक-दूसरे को देखते ही झगड़ते हैं और आपस में वैक्रिय शक्ति से दारुण दुःख देते हैं।

7. नरकावास सदा उष्ण एवं तप्त रहते हैं और कई नरकावास महाशीतल बर्फ की चट्टानों से भी अत्यधिक शीत होते हैं।

8. वहां नैरयिक सदा महान् असाध्य राज रोगों से ग्रसित रहते हैं। बुढ़ापे से भी सदा व्याप्त रहते हैं।

9. तलवार की धार के समान भूमि का स्पर्श तीक्ष्ण होता है।

10. वहां लगातार दुःख रुप वेदना चालू रहती है पलभर के लिए भी नैरयिकों को चैन नहीं मिलती है।

11. वहां सदैव दुस्सह दुर्गन्ध व्याप्त रहती है।

12. शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाने पर भी वे मरते नहीं हैं पुनः शरीर जुड़ जाता है किन्तु वेदना भयंकर होती रहती है।

13. वहां उन्हें कोई भी त्राणशरण भूत नहीं होता है स्वयं ही वे अपने कृ त कर्मों को परवश होकर और रो रो कर भोगते हैं। शारीरिक और मानसिक महान व्यथा से पीड़ित होते रहते हैं।

परमाधामी देवों द्वारा दिया जाने वाला दुःख–

* ऊपर ले जाकर पटक देते हैं।
* शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर के भाड़ में पकाते हैं।
* रस्सी से लातों से घूसों से मारते हैं।
* आंते, नसें, आदि बाहर निकाल देते हैं।
* भाला आदि में पिरों देते हैं।
* अंगोपांगों को फाड़ देते हैं चीर देते हैं।
* कड़ाही में पकाते हैं।
* नारकी जीव के शरीर को खंड-खंड कर के उस मांस को गर्मागर्म करके उसे ही खिलाते हैं।
* तलवार की धार सरीखे तीक्ष्ण पत्तों के ऊपर गिराकर तिलतिल जैसे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं।
* तीखे बाणो से हाथ, कान, नाक, मस्तक आदि विभिन्न शरीरावयवों को भेद देते हैं।
* अनेक प्रकार की कुंभियों में पकाते हैं।
* बालू रेत में चने की तरह भून डालते हैं।
* मांस रुधिर पीव उबले तांबे शीशे आदि अत्युष्ण पदार्थों से उबलती उफनती वैतरणी नदी में नैरयिकों को फेंक देते हैं।

* वज्रमय तीक्ष्ण कंटकों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष पर इधर से उधर खींचते हैं तब वे करुण आक्रंदन करते हैं।
* दुःख से घबराकर भागते नेरयिकों को वाड़े में बंद कर देते हैं। वहां वे भयानक ध्वनि करते हुए चिल्लाते हैं।

2. रोटी की तरह सेका जाता है, टुकड़े-टुकड़े करके बलि की तरह फेंक दिया जाता है, फंदा डाल कर लटका दिया जाता है। सूली में भेद दिया जाता है। भर्त्सना की जाती है अपमानित किया जाता है। पूर्व भव के पापों की घोषणा करके वधक को दिए जाने वाले सैकड़ों प्रकार के दुःख दिए जाते हैं।

3. दुःख से संतप्त नारक जीव इस प्रकार पुकार करते हैं- हैं बंधु । हे स्वामिन। हे भ्राता। अरे बाप। हे तात। हे विजेता। मुझे छोड़ दों, मै मर रहा हूं, मैं दुर्बल हूं, मै व्याधि से पीड़ित हूं, आप क्यों निर्दय हो रहे हो, मेरे ऊपर प्रहार मत करो, और थोड़ा सांस तो लेने दो, दया कीजिए, मै जरा विश्राम ले लूं, मेरा गला छोड़ दीजिए, मैं मर रहा हूं, इस तरह दीनता पूर्वक प्रार्थना करता है।

4. परमाधामी उसे लगातार पीड़ा पहुंचाते हैं। प्यास से पीडित होकर पानी मांगने पर तप्त लोहा सीसा पिघाल कर देते हैं और कहते हैं लो ठंडा पानी पिओ और फिर जबरदस्ती मुंह फाड़कर उनके मुख में सीसा उंडेल देते हैं। इस तरह परमाधामी उन्हें घोरातिघोर मानसिक शारीरिक दुःख और वाचिक प्रताड़ना करते रहते हैं।

5. जाज्वल्यमान तप्त लोहमय रथ में बैल की जगह जोत कर चलाया जाता है, भारी भार वहन कराया जाता है, कं टकाकीर्ण मार्ग में तप्त रेत में चलाया जाता है।

6. वे नारकी जीव स्वयं भी विविध शस्त्रों की विकु र्वणा करके परस्पर अन्य नैरयिकों के महादुःखों की उदीरणा करते रहते हैं।

7. भेड़िया, चीता, बिलाव, सिंह, व्याघ्र, शिकारी कु त्ते, कौवे आदि के रुप बनाकर भी नैरयिकों पर परमाधामी देव आक्रमण करते रहते हैं। शरीर को फाड़ देते हैं, नाखूनों से चीर देते हैं, फिर ढंक, कंक, गिद्ध बने नरकपाल उन पर झपट पड़ते हैं। कभी जीभ खेंच लेते हैं, कभी आंखें बाहर निकाल देते हैं। इस प्रकार की यातनाओं से पीड़ित नारक जीव कभी ऊपर उछलते हैं, कभी चक्कर काटते हैं एवं किं कर्तव्य विमूढ़ बन जाते हैं। इस प्रकार वे नारकजीव अपने पूर्व कृत हिंसक प्रवृत्तियों का दारुण फल भोगते हैं।

8. इन भयानक करुणाजनक यातनाओं को जानकर विवेकी पुरुष को मानव भव में बेभान बन कर हिंसा कृ त्यों में तल्लीन नहीं होना चाहिए किन्तु सावधान होकर अहिंसक जीवन जीने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए।

तिर्यंच योनि (पशु जीवन) के दुःख-

पापों से भारी बने जीव तिर्यञ्च योनि में भी दुःखों से व्याप्त रहते हैं। प्राणियों में परस्पर जन्म जात बैरभाव होते हैं। कु त्ता, बिल्ली, चूहा, तीतर, बाज, कबूतर आदि जीव जीव भक्षक बने रहते हैं। रात-दिन एक-दूसरे को ताकते रहते हैं। हिंसक मांसाहारी प्राणी तो अन्य जीवों के भक्षण से ही अपना उदर पोषण करते हैं। कई जीव भूख प्यास व्याधि की वेदना

का कुछ भी प्रतिकार नहीं कर पाते है। कई पशुओं को गर्म श्लाकाओं से डांभा जाता हैं, मार पीट की जाती है, नपुंसक बनाया जाता है, भार वहन कराया जाता है एवं चाबुकों से मार-मार कर अधमरा कर दिया जाता है। इन सारी यातनाओं को चुपचाप सहन करना पड़ता है। उद्दंडता करने पर और अधिक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। कई मांसाहारी लोग पशु-पक्षियों का अत्यन्त निर्दयता पूर्वक वध करते हैं। बकरे, मुर्गे, गाय, भेड़ आदि के मांस को बेचने का धंधा करने वाले कसाई भी इनका प्राणांत प्रतिदिन करते रहते है। इस प्रकार मूक पशु भयावह यातनाओं को भोगते हैं। पशु जीवन मात्र ही कष्टों से परिपूर्ण है।

कई जीव मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पतंगा आदि चौरेन्द्रिय योनि में दुःख पाते हैं। कई कीड़ों मकोड़े आदि तेइन्द्रिय जीव बन कर अज्ञान दशा में दुःख पाते ही रहते हैं। इसी तरह लट, गिंडोला, कृ मि आदि द्विन्द्रिय योनि में जीव दुःख पाते हैं। पांच स्थावर पृथ्वी,पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति की विविध योनियां में जीव बेभान अवस्था में दुःख भोगते रहते हैं।

पाप कर्म से भारी बने जीव मनुष्य भव को प्राप्त करके भी अंधे, लंगड़े, कुबड़े, गूंगे, बहरे और कोढ़ आदि रोगों से व्याप्त हीनांग विकलांग, कुरुप, कमजोर, शक्ति विकल, मूर्ख, बुद्धि-विहीन, दीन- हीन, गरीब होकर दुःख भोगते हैं।

इस प्रकार हिंसक जीव कु गतियों में भ्रमण कर दुःख भोगते रहते हैं।

दूसरा अध्ययन- मृषावाद या झूठ

मृषावाद का स्वरुप-

दूसरा आश्रव द्वार है- असत्य, वचन, मिथ्यावचन। यह गुण, गरिमा रहित, हल्के चंचल उतावले लोगों द्वारा बोला जाता है। यह व्यथोत्पादक, दुखोत्पादक, अपयशकारी एवं वैरोत्पादक है। हर्ष, शोक, राग, द्वेष और मानसिक संक्लेश को देने वाला, शुभफल से रहित, धूर्तता और अविश्वसनीय वचनों की प्रचुरता वाला,नीच-जनों से सेवित है, यह नशंस-क्रूर एवं निंदित है व अप्रीतिकारक है। समस्त साधुजनों और सत्पुरुषों द्वारा निंदित है, दूसरों को पीड़ा करने वाला है, कृ ष्ण लेश्या वाले इसका प्रयोग करते हैं। यह दुर्गतिवर्धक एवं चिर-परिचित है, निरंतर साथ चलने वाला है, भव भ्रमण कराने वाला है। इसका कठिनाई से अंत होता है अर्थात् मुश्किल से छूटता है।

असत्य के पर्यायवाची शब्द-

1. अलीक, 2. शठ, 3. अन्याय (अनार्य), 4. मायामृषा, 5. असत्क, 6. कूटकपट-अवस्तुक, 7. निरर्थक अपार्थक, 8. विद्वेष-गर्हणीय, 9. अनृजुक-सरलता रहित, 10. माया-चारमय, 11. वंचना, 12. मिथ्या पश्चात् कृ त्य-पीछे कर देने योग्य त्याज्य, 13. साति अविश्वास का कारण, 14. उछन्न-स्वदोष पर गुण आच्छादक, 15. उत्कूल-सन्मार्ग से गिराने वाला, 16. आर्त्त, 17. अभ्याख्यान, 18. किल्विष, 19. वलय-चक्करदार, गोलमाल, 20. गहन, 21. मन्मन-अस्पष्ट, 22. नूम-ढंकने वाला, 23. नियडि-छिपाने वाला, 24. अप्रत्यय, 25. असमय, 26. झूठी प्रतिज्ञा का कारण, 27. विपक्ष, 28. अपधीक-निंदित मति से उत्पन्न, 29. उपधि अशुद्ध मायाचार से अशुद्ध, 30. अपलोप-वास्तविक स्वरुप का लोपक। इन नामों से असत्य के अनेक रुप प्रकट होते हैं।

झूठ बोलने वाले-

1. पापी, संयम विहीन, अविरत, कपट, कुटिल, कटुक, चंचल चित्त वाले, क्रोध, लोभ, हास्य भय के अधीन बने, व्यापारी, जुआरी, व्यसनी, शिल्पी, चोर, चुगलखोर, कारीगर, ठग, धूर्त, चोर, डाकू, राजकर्मचारी, साहूकार, ऋणि, अविचारक, बुद्धिमान, मूरख, मिथ्या मति, कुलिंगी, निरंकुश, यदा तदा बोलने वाले, ये लोग सभी असत्य बोलने वाले हैं।

2. नास्तिक, वादी-शून्यवादी, पंचस्कंध वादी, बौद्ध, मनजीव वादी, वायुजीव वादी, अंडे से संसारोत्पति मानने वाले, असद्भाववादी, ईश्वर कर्तृत्ववादी, एकात्मवादी, अकर्तृत्ववादी, यदृच्छावादी, स्वभाववादी, विधिवादी, नियतिवादी, पुरुषार्थवादी, कालवादी ये सब मिथ्यावादी हैं, एकांत भाषण करने या अनर्गल अतर्क -संगत भाषण करने से मिथ्याभाषी है।

3. अनेक प्रकार के मिथ्या आक्षेप लगाने वाले, ईर्ष्या द्वेष वश स्वार्थ वश झूठ बोलते हैं। ये गुणों की परवाह न कर असत्य भाषण में कुशल, दूसरों के दोषों को मन से कल्पित कर बोलने वाले, अत्यन्त दृढ़ कर्मों से आत्मा को वेष्टित करते हैं।

4. कई लोग धन के लिए, कन्या के लिए, भूमि के लिए, पशुओं के लिए झूठ बोलते हैं। झूठी साक्षी देते हैं। इस प्रकार अधोगति में ले जाने वाला मिथ्या-भाषण करते रहते हैं।

5. कई लोग पापकारी सलाह या पाप कार्यों के प्रेरणात्मक वचन बोल कर हिंसा को प्रोत्साहन देते हैं उनके वे हिंसक वचन भी असत्य वचन कहे गये है। क्योंकि परपीड़ाकारी वचन सत्य नहीं कहे जा सकते है।

6. कई लोग जिम्मेदारी से, नासमझी से, लोभ से या क्रूरता से अथवा स्वार्थ से हिंसक आदेश उपदेश निर्देश करते हैं, वह भी असत्य वचन की गिनती में आता है। इस में त्रस स्थावर सभी जीवों के घातक आदेश प्रत्यादेश का समावेश होता है।

7. युद्ध संबंधी सारे आदेश प्रत्यादेश भी अलीक वचन में समाविष्ट है।

8. ये सब असत्य एवं हिसंक वचन, वचन क्रिया की अपेक्षा द्वितीय आश्रव है और जीव को विविध गतियों में वीभत्स यातनाओं को देने वाले हैं।

मृषावाद का भयानक फल-

1. सभी प्रकार के उपरोक्त असत्य वचन हिंसक वचन असत्याक्षेप आदि का प्रयोग करने वाले, प्रथम आश्रव द्वार में विस्तार से कही गई नरकादि दुर्गतियों की यातनाएं दीर्घकाल तक प्राप्त करते हैं। उसके अतिरिक्त निम्न अवस्थाएं भी प्राप्त करते हैं।

2. वे मनुष्य भव में पराधीन जीवन एवं भोगोपभोगों की सामग्री से रहित जीवन पाते हैं। उनकी चमड़ी बिवाई दाद खुजली आदि से फटी रहती है, पीड़ित रहती है। कु रुप और कठोर स्पर्श वाले होते हैं। अस्पष्ट और विफल वाणी वाले

होते हैं, रतिविहीन मलिन और सारहीन शरीर वाले होते हैं, उनका सत्कार नहीं होता है, वे दुर्गन्ध से व्याप्त, अभागे, अकांत, अनिष्ट-स्वर वाले, धीमी और फटी आवाज वाले होते हैं। वे दूसरों के द्वारा सताये या चिढ़ाये जाते हैं। वे जड़, बधिर, गूंगे, अंधे और तोतले बोलने वाले होते हैं। विकृ त इन्द्रियों वाले एवं कु ल गोत्र या कार्य से नीच होते हैं। उन्हें नीच लोगों का नौकर या दास बनना पड़ता है। सर्वत्र निंदा एवं धिक्कार के पात्र होते हैं, वे दुर्बुद्धि होते हैं, लौकिक और लोकोत्तर आगम सिद्धान्तों के श्रवण एवं ज्ञान से रहित होते हैं और धर्म बुद्धि से भी रहित होते हैं।

3. इस प्रकार ये झूठाबोले लोग कर्म विपाक से असत्य की अग्नि में जलते हुए अधिकाधिक अपमान निंदा दोषारोपण चुगली फूट को प्राप्त करते हैं। गुरुजनों , बंधुओं, स्वजनों, मित्रों द्वारा तीक्ष्ण वचनों से अनादर पाते रहते हैं। मन को संताप देने वाले, जीवनपर्यन्त नहीं मिटने वाले, आरोपों, मिथ्या आरोपों को प्राप्त करते हैं। मर्मवेधी तर्जनाओं, झिड़कियों और तिरस्कार को प्राप्त करते हैं। मृषावाद के परिणाम स्वरुप उन्हें अच्छा भोजन वस्त्रादि भी नसीब नहीं होता है।

4. तात्पर्य यह है कि मृषावादी कहीं पर भी आदर सम्मान नहीं पाते। शरीर से वचन से आकु ल व्याकु ल रहते हैं। झूठे दोषारोपण प्राप्त कर संताप संक्लेश की ज्वालाओं में निरन्तर जलते रहते हैं। दीनता दरिद्रता उनका भवोभव पीछा नहीं छोड़ती है। लोगों के भी घृणा निंदा के पात्र बने रहते हैं। ऐसे दारूण दुःख अनेक भवों तक भुगतने पड़ते हैं।

5. इस प्रकार के मृषावाद के कटुक परिणाम को जानकर विवेकी पुरुषों को मन की क्षणिक झूठी संतुष्ठी देने वाले असत्या-चरण को पूर्ण रुपेण तिलांजली देनी चाहिए। यहां असत्य त्याग पर एक कथा परिपेक्षणीय है जिसे समझकर जीवन को सत्य पर दृढ़ प्रतिज्ञ बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। (देखें परिशिष्ट-2)

तीसरा अध्ययन अदत्तादान (चोरी)

जो वस्तु वास्तव में अपनी नहीं है, परायी है, उसे उसके स्वामी की स्वीकृति अनुमति के बिना लेना एवं अपने अधिकार में कर लेना, अदत्तादान है, चौर्यकर्म है। यह तीसरा अधर्मद्वार या आश्रवद्वार है।

अदत्तादान-चोरी का स्वरुप-

यह दूसरों के हृदय को जलाने वाला, मरणभय युक्त है। पर धन में मूर्च्छा लोभ ही इसका मूल है। रात्रि रुप अकाल में सेव्य है। चोर के निवास छिपने के स्थान भी पर्वत गुफादि विषम होते हैं। कलुषित अधोगति दायक बुद्धि वालों का, अनार्य पुरुषों का यह आचरण है। कीर्ति प्रतिष्ठा को धूमिल करने वाला, राजा आदि के द्वारा विपत्ति दंड दिया जाने वाला, मनुष्यों को ठगने वाला, धोखा देने वाला, निर्दयता पूर्ण कृत्य है। राजपुरुषों, चौकीदार, कोतवाल, पुलिस आदि से रोका जाने वाला साधु पुरुषों से निंदित गर्हित है। प्रियजनों, मित्रों में वैरभाव, वैमनस्य, फूट पैदा कराने वाला कृत्य है। दुर्गति देने वाला भवभ्रमण कराने वाला चिरकाल से परिचित दुष्त्याज्य है। अंत में परिणाम में भयंकर दुखदाई है।

अदत्तादान के पर्यायवाची शब्द-

1. चौरिक्य, 2. परहड़, 3. अदत्त, 4. क्रूरकर्म, 5. परलाभ, 6. असंजम, 7. परधन गुद्धि, 8. लोलुपता, 9. तस्करत्व, 10. उपहार, 11. हस्त लघुत्व- कुत्सित हाथ उठाऊ हाथ, 12. पाप कर्म, 13. स्तैन्य, 14. हरण-विप्रणास, 15. परधन ग्राहक, 16. धनलुंटक, 17. अप्रत्यय, 18. अवपीड़-पीड़ोत्पादक, 19-21. आक्षप प्रक्षेप सविक्षेप-पर वस्तु पर झपटना छीनना, फेंक देना इधर उधर कर देना, नष्ट कर देना, 22. कूटता-बेइमानी, 23. कुलमसि कलंक कारी, 24. कांक्षा-तीव्र इच्छा चाहना, 25. लालपना प्रार्थना निंदित लाभ की अभिलाषा, 26. व्यसन-विपत्तियों का कारण, 27. इच्छामूर्च्छा, 28. तृष्णागृद्धि, 29. निकृति कर्म कपटाचरण, 30. अपराक्ष दूसरों की नजर बचाने का कृत्य।

चौर्य कर्म के विविध प्रकार-

1. कोई छिपकर चोरी करते, कोई सामने से प्रहार आक्रमण करके, मंत्र प्रयोग करके भी चोरी करते, कोई धन लुटते, कोई पशु, तो कोई स्त्रियों या पुरुषों का अपहरण करते। कोई राहगीरों को लूटते तो कोई शस्त्रों के बल राज खजानों को लूटते।

2. महान धन संपत्ति एश्वर्य के स्वामी राजा लोग भी असंतोष वृत्ति के शिकार होकर दूसरों के धन की लालसा से एक-दूसरे राज्य पर आक्रमण कर महासंग्राम के द्वारा जन संहार करवा कर दूसरों का धन लूटकर आनंद मानते हैं। यह धन के लोभ की अंधता है, उनके विवेक नेत्र बंद हो जाते हैं।

3. कई जंगल में पहाड़ों में अटवी में रहने वाले सेकड़ों सशस्त्र चोर होते हैं। इनके सेनापति भी होते हैं। ये आसपास के राज्यों में चोरियां करते रहते हैं। मनुष्यों का घात करते हैं। समय पर राज-सैन्य का सामना करके परास्त करते हैं।

4. कई डाकू लोग पर धन के लिए जहां तहां आक्रमण करते हैं, समुद्री डाकू भी लूटमार करते हैं, जहाजों को भी नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं।

5. कई दया से शून्य ह्रदयी, परलोक की परवाह नहीं करने वाले, गांव, नगर आदि को ही लूट खसोट मारकाट कर उजाड़ देते हैं।

6. ये विविध प्रकार के चोर पाप कर्मों का संचय करते हैं जिसको नरकगति में भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता है। जंगल आदि में भटकते फिरते हैं। वहां पर भी वे भूख प्यास थकान से पीड़ित होते हैं, कभी मांस, शव (मूर्दा), कंदमूल आदि जो मिला खाकर गनीमत समझते हैं, वे सदा घबराए, चिंतित, भयाक्रांत और आकुल व्याकुल बने रहते है।

7. इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि यहां इस आश्रव द्वार में स्थूल चौर्यकर्म का वर्णन है जिसका कि श्रावक त्याग करता है। किन्तु श्रमण के त्याग करने योग्य सूक्ष्म अदत्त का यहां कथन नहीं किया गया है। उस अदत्त से भी कर्मबंध और आश्रव तो होता ही है किन्तु यहां जिस वीभत्स पाप आश्रव की और स्थूल अदत्त चौर्य कर्म की अपेक्षा है उसमें अतिचार रुप स्तैन्य कर्म का या सूक्ष्म अदत्त का समावेश नहीं है।

चौर्य कर्म का इस भविक दुःख परिणाम-

1. चौर्य कर्म करते हुए जब पकड़ लिया जाता है तब बंधनों से बांधा जाता है, मारा-पीटा जाता है, अधिकारियों को सौपा जाता है, कारागार में ठूंस दिया जाता है, वहां डांट-फटकार, गर्दन पकड़ना, धक्के देना, पटकना, ताड़ना- तर्जना आदि की जाती है। वस्त्र छीन लिए जाते हैं, हथकड़ी, बडी, खोड़ा, सांकल से बांधा जाता है। पीजरों, भोंयरो में जकड़ कर डाल दिया जाता है। अंगों में कीलें ठोक देना, बैलों की जगह जोतना या गाड़ी के पहियों से बांध देना, खंभें से चिपकाना, उलटा लटकाना इत्यादि बंधनों आदि से पीड़ित किए जाते हैं।

2. सूईयां चुभोई जाती हैं, वसूले से शरीर को छीला जाता है। क्षार पदार्थ लाल मिर्च आदि छिड़के जाते हैं। लोहे के नोकदार डंडे उनके छाती, पेट, गुदा, और पीठ में भोंक देते हैं। इस तरह चौर्य कर्म करने वालों के अंग-प्रत्यंग चूर-चूर कर दिए जाते हैं। यमदूतों के समान कारागार के कर्मचारी मारपीट करते हैं। इस प्रकार वे मंद पुण्य अभागे चोर जेल में थप्पड़ों, मुक्कों, चर्म-पट्टों, तीक्ष्ण-शस्त्रो, चाबुकों, लातों, मोटे रस्सो, बेंतों के सेकड़ों प्रहारों से पीड़ित होकर मन में उदास, खिन्न हो जाते हैं, मूढ़ बन जाते, उनका टट्टी पेशाब, बोलना, चलना-फिरना बंद कर दिया जाता है। इस प्रकार की यातनाएं वे अदत्त चौर्य कर्म करने वाले पापी प्राप्त करते हैं।

3. ये चोर 1) इन्द्रियों का दमन नहीं कर सकने से, इन्द्रियों के दास बनने से, 2) धन लोलुप होने से 3) शब्दादि स्त्री विषयों में आसक्त होने से तृष्णा में व्याकुल होकर धन प्राप्ति में ही आनंद मान कर चौर्य कर्म करते हैं किन्तु जब राज पुरुषों द्वारा पकड़ लिए जाते है तब उन्हें प्राण दंड की सजा दी जाती है। नगर में प्रसिद्ध स्थलों व चौराहों पर लाकर मार पीट की जाती है।

4. घसीटा जाता है, फांसी पर ले जाया जाता है दो काले वस्त्र पहनाए जाते हैं, विविध प्रकार से अपमानित किया जाता है, तिल-तिल जितने खुद के शरीर के टुकड़े काट कर जबरन खिलाए जाते हैं, इस प्रकार नगर में घूमा कर नागरिक जनों को दिखाया जाता है, पत्थर आदि से पीटा जाता है, फिर उन अभागों को शूली में पिरो दिया जाता है जिससे उसका पूरा शरीर चिर जाता है। वध्य स्थान में कईओं के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं, वृक्ष की शाखाओं पर टांग दिया जाता है, हाथ पैरों को कसकर बांध दिया जाता है, पर्वत पर से फेंक दिया जाता है, हाथी के पैर के नीचे कुचल कर कचूमर कर दिया जाता है। कइयों के कान नाक दांत अंडकोश उखाड़ दिए जाते हैं, जीभ खींच कर बाहर फेंक दी जाती है। किसी के अगोपांग काट कर देश निकाला दे दिया जाता है। कई चोरों को आजीवन कै द में रखकर यातना दी जाती है। और अंत में वे वहीं मर जाते हैं। इतना दुर्दशा यहां मनुष्य लोक में चोर भोगते हैं। यदि वे चोर पहले ही ऐसी यातनाओं की कल्पना कर लेते और चौर्य कर्म न करते तो दुखी नहीं होना पड़ता। वहां उन्हे कोई भी शरण नहीं देता है। इतने से भी क्या हुआ अभी तो उनको नरकादि दुर्गतियों की वेदना भोगना और अवशेष रहता है। वहां से वह बुरी मौत मर कर क्लिष्ट आर्त्त परिणामों से नरक गति में उत्पन्न होता है। प्रथम आश्रव द्वार में कही गई वीभत्स वेदनाओं को वहां नरक में भोगता है। फिर क्रमशः भवोभव नरक तिर्यञ्च गति में दुःख भोगता ही रहता है। अवशेष कर्म वाला वह कभी मनुष्य भी बनता है तो वहां सुख भोग सामग्री एवं धन आदि उसे लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलता हैं। कड़ा श्रम उद्यम करने पर भी सदा

असफलता ही हाथ लगती है। न उन्हें सुख नसीब में होता न, शांति। केवल दुःख और दीनता में ही जीवन व्यतीत करता है।

5. इस प्रकार अदत्तादान के पाप से भारी कर्मा बने वे बेचारे विपुल दुःखों की आग में झुलसते रहते हैं। ऐसे अदत्त पाप और उसके विपाक परिणाम को जानकर विवेकी पुरुषों को सुखी होने के लिये परधन धूल बराबर समझ कर नेक नीति से प्राप्त स्वयं की संपत्ति में ही संतुष्ट और सुखी रहना चाहिए। मौत स्वीकार करना पड़ जाय तो भी चौर्य कर्म को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

चौथा अध्ययन-अब्रह्मचर्य

अब्रह्मचर्य स्वरुप-

चौथा आश्रव द्वार है- अब्रह्म कु शील। इसका देवों में, मनुष्यों में, पशुओं में अर्थात् समस्त संसार के प्राणियों में साम्राज्य है अर्थात् सभी प्राणी इसकी कामना अभिलाषा से व्याप्त है। यह प्राणियों को फंसाने में कीचड़ के समान है, पाश एवं जाल के समान है। आत्मा को पतित करने वाला, अनेक अनर्थों का मूल, दोषों का उत्पादक, संसार का वर्धक है। मोह कर्म की संतति को बढ़ाने वाला, तप-संयम का विघातक, बाधक, आत्मशक्ति से कायर एवं निम्न जनों द्वारा सेवित, जरा मरण रोग-शोक का भाजक है, वीत-राग एवं वीतराग के मार्ग पर चलने वाले श्रमण श्रमणियों के लिए त्याज्य एवं निदित है। वध बंधन की दशाओं को प्राप्त कराने वाला, परिवार परिचय और संसार प्रवाह का वर्धक एवं पोषक है। अनादि परिचित अभ्यस्त दूषण है, आत्म विकार रुप है। दृढ़ मनोबल एवं संकल्प होने पर भी कठिनाई से इसका अंत होता है अर्थात् इसका त्याग करना और उसमें सफल होना अत्यंत दुष्कर है। स्त्री वेद पुरुष वेद और नपुंसक वेद इसके चिन्ह है, अलग-अलग रुप है। कर्त्तव्य के बोध को, हिताहित के विवेक को नष्ट करने वाला है। बुद्धि को विपरीत या भ्रष्ट करने वाला है, अधर्म का मूल एवं मोक्ष साधना का बिल्कुल विपक्ष विरोधी है।

अब्रह्म के तीस पर्यायवाची शब्द-

1) अब्रह्म 2) मैथुन 3) चरंत (सर्वत्र व्याप्त) 4) संसर्गिक 5) सेवनाधिकार 6) संकल्पी 7) संयम बाधक 8) दर्प- इन्द्रियों केपुष्ट होने से उत्पन्न होने वाला 9) मूढ़ता 10) मनः संक्षोभ 11) अनिग्रह 12) विग्रह 13) विघात (आत्मगुण) 14) विभंग 15) विभ्रम (बुद्धि विभ्रम) 16) अधर्म 17) अशीलता 18) ग्राम धर्म तप्ति-इन्द्रिय पोषक 19) रति क्रीड़ा 20) राग चिंता 21) काम भोग मार 22) वैर 23) रहस्य 24) गुह्य 25) बहुमान(बहुत मान्य है) 26) ब्रह्मचर्य विघ्न 27) व्यापात्ति-आत्मा के स्वभाविक गुणों का विनाशक 28) विराधना 29) प्रसंग (आसक्ति का कारण) 30) कामगुण।

ये तीस इसके गुण निष्पन्न नाम है। इन पर विचार करने से अब्रह्मचर्य के स्वरूप का, इसके उत्पन्न होने के कारणों तथा उससे होने वाली हानियों का बोध हो जाता है। अब्रह्मचर्य का मूल मन में उत्पन्न होने वाला एक विशेष प्रकार

का विकार भाव है। यह विकार भाव आत्मस्वरुप की उपलब्धि का, उसके साधन तप संयम का विघातक है। यह चारित्र को पनपने नहीं देता है अपितु उसमें विघ्न उत्पन्न करता है।

जब शरीर पुष्ट होता है इन्द्रियां बलवान बन जाती है तो काम वासना के विकार भावों को उत्पन्न होने का अवसर मिलता है। अतः ब्रह्मचर्य की आराधना करने वाले साधकों को विविध तपश्चर्या द्वारा इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना, शरीर को बलिष्ट नहीं बनाना, जिव्हेन्द्रिय को काबू में रखना और पौष्टिक आहार का वर्जन करना अनिवार्य है।

अब्रह्मसेवी- काम वासना के चंगुल में फंसे हुए मोहित मति चारों जाति के देव भवनपति व्यंतर ज्योतिष्क वैमानिक तथा मनुष्य और तिर्यच जलचर, थलचर, खेचर ये सभी स्त्री पुरुष के रुप में परस्पर मैथुन (अब्रह्म) सेवन करते हैं और आत्मा को मोहनीय कर्म के बंधन में ग्रस्त करते हैं।

मनुष्यों में महाऋद्धि एश्वर्य के स्वामी राजा चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, मांडलिक राजा आदि विपुल भोगोपभोग की सामग्री से सम्पन्न, जीवन भर कुशील का सेवन करके भी अतृप्त रहकर ही मरण को प्राप्त होते हैं। इनकी उम्र उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व वर्षों की होती है युगलिक मनुष्य जिनकी उम्र 3 पल्योपम उत्कृष्ट होती है, उसमें भी सारी उम्र यौवन अवस्था रहती है, उनके रोग बुढ़ापा व्यापार कृषि आदि कोई विघ्न नहीं होते हैं। असंख्य वर्षों तक विषय भोगों का सेवन करके भी अतृप्त अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

स्त्री के निमित्त से पुरुष को और पुरुष के निमित्त से स्त्री को विकार भावों की उत्पत्ति होती है। कोई अति लुब्ध बने परस्त्री में आसक्त होकर गुप्त रुप से अबंभ का सेवन करते हैं। परस्त्री लपटता प्रकट होने पर बुरी तरह मारे जाते हैं। मैथुन वासना में आसक्त पशु भी आपस में लड़कर एक दूसरे को मार देते हैं। परस्त्री गामी, अपने नियम, समाज की मर्यादा, आचार-विचार को भंग कर देते हैं। यहां तक कि धर्म संयम में लीन ब्रह्मचारी पुरुष मैथुन संज्ञा के वशीभूत होकर क्षण भर में चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं। बड़े-बड़े यशस्वी और प्रसिद्ध ब्रह्मचारी भी कुशील सेवन से अपयश अपकीर्ति के भागी बन जाते हैं। परस्त्रीगामी अपना इहलोक परलोक दोनों ही बिगाड़ देते हैं। अर्थात् सर्वत्र भयाक्रांत एवं दुःख ही दुःखमय अवस्था में काल व्यतीत करते हैं। यथा- रावण, मणिरथ, पद्मरथ आदि।

प्राचीन काल में अब्रह्म के कारण स्त्रियों के लिए बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं, खून की नदियां बही हैं। यथा- सीता, द्रोपदी, रुक्मणी, पदमावती, तारा, कं चना, अहिल्या, स्वर्णगुलिका, विधुन्मती, रोहिणी आदि। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक सैंकड़ों, कलह द्वंद, भी मैथुन एवं स्त्रियों के निमित्त से हुए हैं और होते ही रहते हैं।

अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम-

मोह के वशीभूत प्राणी अब्रह्म में आसक्त होकर मृत्यु समय अशुभ परिणामों से नरक तिर्यंच गति में जाता है। जहां विभिन्न दारुण वेदनाओं का अनुभव करता है। चार गति 24 दंडक रुप संसार अटवी में बारंबार परिभ्रमण करता है। अब्रह्म का फल अतिशय दुःखजनक है। क्षणमात्र का दिखने का सुख है और अपार दुःखों का भाजन है।

परस्त्री गामी प्राणी अब्रह्म के सेवन से अपनी शांति भंग करते हैं, निंदित होते हैं, बुरी तरह मारे जाते हैं, नरकगति के मेहमान बनते हैं, आगे भी भवों -भव अब्रह्म की तृष्णा में पड़े रहते हैं, एवं भोग सामग्री से वंचित ही रहते हैं। दीर्घकाल पर्यन्त अनेक प्रकार की भीषण एवं दुःस्सह यातनाओं के भागी बनते हैं। (दुःख-विपाक सूत्र में भी अब्रह्मचर्य का दारुण विपाक अनेक कथाओं में दिया गया है।)

पांचवां अध्ययन परिग्रह

परिग्रह स्वरुप-

यह पांचवां अधर्म द्वार आश्रवद्वार है। जमीन- जायदाद, धन-संपति, खेती, सोना-चांदी, हीरा-जवाहरात, मकान-दुकान, स्त्री-पुत्र आदि कई रुपों में संसार के प्राणियों के पीछे परिग्रह लगा हुआ है। खुद का शरीर और कर्म भी जीव का परिग्रह है। इन परिग्रह स्थानों में लाभ के साथ-साथ लोभ संज्ञा की वृद्धि होती रहती है। सारे जगत का धन भी किसी लोभी व्यक्ति को मिल जाय तो उसे संतोष नहीं हो सकता है जैसे कि अग्नि में ज्यों ज्यों घी आदि सामग्री डालते जाएंगे वह बढ़ती ही जाएगी।

यह परिग्रह राजा महाराजाओं से सम्मानित है। अनेक लोगों का हृदय वल्लभ है। अत्यंत प्यारा है। मुक्ति प्राप्ति में अर्गला के समान है। ममत्व का मूल है। पापों का अन्यायों का जनक है। लोभांध व्यक्ति हिताहित का विवेक खो बैठता है। भाई भाई में, मित्र मित्र में, पिता पुत्र में, और सेठ नौकर में, यह वैर की वृद्धि कराने वाला है। हिंसा के ताण्डव महासंग्राम का निमित्त है। छोटे-बड़े सामान्य क्लेश कदा ग्रह तो परिग्रह के परिग्रह के निमित्त से यत्र तत्र होते ही रहते हैं।

परिग्रह के तीस पर्यायवाची शब्द-

1) परिग्रह 2) संचय 3) चय 4) उपचय 5) निधान 6) संभार (मंजूषा) 7) संकर 8) आदर 9) पिंड 10) द्रव्यसार 11) महेच्छा 12) प्रतिबंध 13) लोभात्मा 14) महंधिका 15) उपकरण 16) संरक्षणता 17) भार 18) संपातोत्पादक-अनर्थों का उत्पादक 19) कलह का पिटारा 20) प्रविस्तार 21) अनर्थ 22) संस्तव 23) अगुप्ति 24) आयास (खेद-प्रयास) 25) अवियोग 26) अमुक्ति 27) तृष्णा 28) अनर्थक 29) आसक्ति 30) असंतोष

इन सार्थक नामों में दोनों प्रकार के द्रव्य और भाव परिग्रह का समावेश किया गया है। ये तीस नाम परिग्रह के विराट रुप को सूचित करते हैं। शांति संतोष समाधि से जीवन व्यतीत करने वालों का परिग्रह के इन विभिन्न रुपों को भली भांति समझ कर त्याग करना चाहिए।

परिग्रहधारी-

1. चारों जाति के 99 प्रकार के देव महान् ऋद्धि के धारक है। इनमें भी इन्द्र, सामानिक, त्रायत्रिशंक, लोकपाल, अहमिद्र आदि विशेष ऐश्वर्य के स्वामी है। ये देवगण भी अपनी-अपनी परिषद सहित परिवार सहित विशाल परिग्रह के स्वामी है और उनमें अल्पाधिक मूर्च्छाभाव रखते हैं। इनके भवन, विमान, आवास, यान, वाहन, शय्या, भद्रासन,

सिहांसन, वस्त्र, आभूषण, शस्त्र अनेक प्रकार के मणिरत्न एवं उनके पात्र वैक्रिय लब्धि संपन्न अप्सराएं (देविएं) आदि स्वामित्व में होती है।

2. चैत्यस्तूप, माणवक स्तंभ, ग्राम, नगर, बगीचे, जंगल, देवालय, सरोवर, तालाब, बावड़ी, प्याऊ एवं बस्ती आदि स्थानों को ये देव ममत्व पूर्वक स्वीकार कर लेते हैं।

3. अत्यंत विपुल लोभाभिभूत इन देवों में से कई देव तिर्यक्लोक के वर्षधर (विशाल) क्षेत्र द्वीप समुद्र नदी पर्वत इक्षुकार, दधिमुख, शैल, कूट आदि में रहते हैं। ये सभी प्रकार के देव उक्त महान त्रद्धि के स्वामी वैक्रिय लब्धि एवं देवांगनाओं युक्त होकर विपुल ऐश्वर्य का अनुभव उपभोग भोग असंख्य वर्षों तक करते हुए भी तृप्ति को प्राप्त नहीं करते हैं और अतृप्तावस्था में ही वहां से मर कर अन्य गति में चले जाते हैं। परिग्रह की लालसा में देवगण भी तृप्त नहीं हो सकते तो मनुष्यों का या अन्य प्राणियों का तो कहना ही क्या?

4. अकर्म भूमि में रहने वाले युगलिक मनुष्य और कर्म भूमि में रहने वाले चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, मांडलिक राजा, सामान्य राजा, राज्य कर्मचारी, मंत्री, राजकु मार, सेठ, साहुकार, सेनापति, पुरोहित, सार्थवाह आदि महान ऋद्धि संपत्ति से एवं मनोज्ञ भोगोपभोग की सामग्री से सम्पन्न होते हैं। मनोहर मनोज्ञ ललनाओं स्त्रियों एवं पुत्र परिवार से सम्पन्न होते हैं। उनके भी धन-धान्य, पशु, भंडार, व्यापार, मकान, जमीन-जायदाद, आभूषण, वस्त्र, हीरा, पन्ना, माणिक, मोती, सोना, चांदी, जवाहारात, यान, वाहन, रथ, पालकी आदि सुख सामग्री होती है। दास दासी नौकर आदि जिनकी सेवा में हाजिर रहते हैं। वे भी महा परिग्रह के स्वामी ममत्व लोभ लालसा की अग्नि के शांत नहीं होने से अंत में अतृप्त पणे ही मर जाते हैं अर्थात् वे भी अपने विशाल परिग्रह सुख भोग से संतुष्ट तृप्त नहीं हो पाते तो सामान्य प्राणियों का तो कहना ही क्या?

5. अन्य भी अनेक सामान्य मनुष्य तिर्यञ्च अपने अपने प्राप्त परिग्रह धन संपति कुटुम्ब परिवार स्त्री पुत्र सुख भोग सामग्री में, खान-पान वस्त्र उपकरण मकान दुकान आदि में तथा जीवन के जो भी साधन और यह शरीर है इसमें ममत्व मूर्च्छा रखते हैं अप्राप्त की सदा लालसा चाहना उनको बनी रहती है। ये भी लालसा की आग शांत न होने से महापरिग्रही कहे जाते हैं और अतृप्त असंतुष्ट ही मर जाते हैं।

6. और भी कई लोग परिग्रह संग्रह के लिए कई प्रकार की (64) विद्याए (72) कलाएं सीखते हैं। असि-मसि-कृषि कर्म करते हैं, विविध व्यापार वाणिज्य खेती कारखाने आदि सैकड़ों उपाय करके धन संग्रह करने के लिए जीवन पर्यन्त इधर-उधर भ्रमण करते रहते है एवं मानो नाचते रहते हैं।

7. परिग्रह संग्रह के लिए कई लोग अनेक हिंसक कृत्य करते हैं, झूठ अनैतिक कृत्यों का सेवन करते हैं, क्रोध मान माया लोभ कलह झगड़ा वैर विरोध बढ़ाते रहते हैं। इच्छा तृष्णा गृद्धि लोभ में ग्रस्त रहते हैं।

8. इस प्रकार इस परिग्रह के पाश में समस्त संसार के प्राणी फंसे हुए हैं।

परिग्रह पाप का कटु परिणाम-

परिग्रह में आसक्त बने हुए प्राणी उनके उपार्जन में उपभोग में एवं संरक्षण में अनेक प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करके कर्म संग्रह करते रहते हैं। वे इस लोक में भी सुगति सन्मार्ग और सुखशांति से नष्ट-भ्रष्ट होते हैं, अज्ञान मोह अंधकार में डूबतें रहते हैं, लोभ के वश में पड़े हुए विवेक विकल होकर भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि कष्टों को सहन करते हैं। अंत में वह सारा परिग्रह परवशपने छोड़कर तथा उसके ममत्व आसक्ति से बद्ध कर्मों के साथ नरकगति तिर्यञ्चगति आदि संसार अटवी में परिभ्रमण करते हैं और महान् दुःखों को भोगते रहते हैं।

विवेकवान विज्ञजनों को इस परिग्रह लोभ तृष्णा के पाश से मुक्त रहकर आत्मा की दुर्दशा से सुरक्षा कर लेनी चाहिए। अनादि काल से संसार में यह परिग्रह का प्रपंच लगा हुआ है। भवों भव में विविध परिग्रह को और स्वर्ग लोक को भी छोड़-छोड़ कर यह जीव मरता रहता है और यहां से भी छोड़कर एक दिन मर जाना पड़ेगा। अतः ज्ञान और विवेक के द्वारा स्वेच्छा से ही संतोष एवं वैराग्य भावना धारण करके इस परिग्रह का सम्पूर्ण त्यागकर लेना ही आत्मा के लिए श्रेयस्कर है। सम्पूर्ण त्याग संभव न हो तो भी आशा तृष्णा के रोक लगाकर परिग्रह की सीमा मर्यादा कर अवशेष संपूर्ण परिग्रह से निवृत्त हो जाना चाहिए। ऐसा करने से प्राणी संसार में रहते हुए भी परिग्रह के इन कटु परिणामों से मुक्त रह सकता है और इस प्रकार एक दिन संपूर्ण परिग्रह का त्यागी बन कर संसार भ्रमण से सदा के लिए मुक्त हो सकता है।

प्रथम श्रुतस्कंध का उपसंहार-

इन पाँच आश्रवों के निमित्त से जीव प्रति समय कर्म संचय करके चार गति रुप संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। कई पुण्यहीन प्राणी तो धर्म का श्रमण ही नहीं कर पाते हैं। कई मिथ्यादृष्टि अधार्मिक निकाचित बंध वाले अथवा प्रमादी धर्म का आचरण नहीं कर सकते। तीर्थंकर भगवंतों ने समस्त रोगों दुःखों का नाश करने के लिए गुण-युक्त मधुर विरेचन औषध बताई है किन्तु निःस्वार्थ भाव से और निःशुल्क दी जाने वाली इस औषध का भी कोई सेवन ही न करे उसका तो क्या किया जा सकता है? जो मतिमान विज्ञ-पुरुष इन पांच आश्रवों को समझ कर इनका त्याग करते हैं, वे एक दिन कर्म-रज से सर्वथा रहित होकर सर्वोत्तम सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त करते हैं।

परिशेष निर्देश-

सारांश में विविध ज्ञातव्य विषयों का स्वरुप स्पष्ट करते हुए भी कुछ ज्ञातव्य विषयों का समावेश नहीं किया जा सका है जो सूत्र में वर्णित है यथा-जलचर, स्थलचर खेचर के विभिन्न नाम है। अनार्य देश के 54 नाम सूचित किए है, नास्तिकवादी अनेक मतांतरियों के सिद्धान्तों का कथन है। अनेक हिंसक आदेश उपदेश प्रेरणाओं के प्रकार, युद्ध की तैयारी एवं युद्ध स्थल की विभत्सना, समुद्री डाके का विस्तृत वर्णन, संसार और समुद्र की विस्तृत उपमा, चक्रवर्ती के शुभ लक्षण उनकी ऋद्धि, बलदेव वासुदेवों की शारीरिक एवं भौतिक समृद्धि, युगलिक पुरुष के एवं स्त्री के संपूर्ण अगांपांगों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। उसके प्रशस्त 32 लक्षण भी कहें हैं।

दूसरा श्रुतस्कंध

प्रारंभिक-

प्रथम श्रुतस्कंध में पांच आश्रव द्वारों का अर्थात् हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह इन पांच मौलिक पाप स्थानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। तदनंतर इस द्वितीय श्रुतस्कंध में इन पांचों का त्याग रुप अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच संवर द्वारों का विस्तार से स्वरुप समझाया गया है।

यो अन्याय आगमों में एवं जैन साहित्य में आश्रव-संवर के अपेक्षा से अनेक भेद भी किए हैं। किन्तु यहां संक्षिप्त अपेक्षा से इन पांच भेदों में संपूर्ण आश्रवों को अंतर्भावित करते हुए वर्णन किया गया है। वास्तव में आगमों में कई तत्त्वों के भेदों की संख्या के लिए कोई भी एक दीवार नहीं होती है यथा जीवों के भेद 2 से लेकर 563 तक कह दिए जाते है। देवता के भेद 4, 24, 198 तक कह दिए जाते हैं। अतः अपेक्षा से यहां 5-5 आश्रव संवर का वर्णन होते हुए भी इनकी प्रचलित विभिन्न संख्याओं का कोई विरोध नहीं समझना चाहिए।

इस प्रकरण में संवर का वर्णन करते हुए अहिंसा आदि पांचों का स्वरुप एवं महत्व आदि बताने के साथ-साथ हिंसादि के सर्वथा त्याग रुप संवर को प्रमुखता देकर संयम के प्रमुख गुण पांच महाव्रतों का स्वरुप स्पष्ट किया गया है एवं उसका महत्व बताया गया है। उन महाव्रतों की सुरक्षा के लिए प्रत्येक महाव्रत की पांच-पांच भावनाएं अर्थात् इन महाव्रतों की सफल निर्बाध आराधना कराने वाली सावधानी रुप प्रवृत्तियां कहीं गई है। उनका यथार्थ पालन करने से ही महाव्रतों का सम्यक् पालन होता है।

जिन प्रमुख प्रवृत्तियों के माध्यम से आत्मा में कर्मों का आगमन होता है वे प्रवृत्तियां आश्रव कही जाती है और जिन सदनुष्ठानों से आत्मा में कर्मों का आगमन रुकता है, वे संवर द्वार कहे जाते हैं। इस दूसरे श्रुतस्कंध में पांच संवर द्वारों का विषद वर्णन किया है।

पांच संवर का स्वरुप-

ये पांचों संवर पांच महाव्रत रुप है, तप संयम रुप है, समस्त हितों के प्रदाता है, कर्म रज विदारक है, चतुर्गति भ्रमण को रोकने वाले हैं, सैकड़ों भवों का अंत नाश करने वाले हैं, विपुल दुःखों से छुड़ानें वाले, विपुल सुखों को प्राप्त कराने वाले हैं। कायर पुरुषों के लिए इनका आचरण दुष्कर है अर्थात् जिनका मनोबल हीन दशा में है, जो इन्द्रियों के दास हैं, मन पर नियंत्रण नहीं कर सकते, धैर्यहीन है, सहनशील नहीं है, वे प्रथम तो महाव्रतों को धारण ही नहीं करते। कदाचित धारण कर भी ले तो वे कायर पुरुष बीच में ही भ्रष्ट हो जाते, शिथिल हो जाते हैं अर्थात् साधु वेश में रहते हुए भी असाधु जीवन व्यतीत करते हैं।

किन्तु धैर्यशाली दृढ़ मनोबली सत्पुरुष, शूरवीरता से परीषह उपसर्गों का सामना करते हुए सहज और निश्चल भाव से संयम नियमों को पालते हैं। वे मन और इन्द्रियों को विवेक से अंकुश में रखते हैं। उनके लिए ये पांचों महाव्रत मोक्ष में पहुंचने के मार्ग है अथवा कर्म रज अवशेष रहे तो स्वर्ग प्रदान करने वाले हैं।

प्रथम अध्ययन-अहिंसा (महाव्रत)

अहिंसा स्वरुप-

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन तीर्थंकर भगवंतों ने संसार के समस्त जीवों की दया के लिए (अनुकम्पा के लिए) और उनकी रक्षा के लिए कहा है अर्थात् अहिंसा की प्रमुखता से ही तीर्थंकर उपदेश देते हैं। यों भी सभी महाव्रतों में मुख्य अहिंसा महाव्रत ही है इसी की सुरक्षा के लिए ही शेष चारों महाव्रत है अर्थात् शेष चारों महाव्रतों से भी अहिंसा महाव्रत की पुष्टि होती है।

ऐसा अहिंसा प्रधान, समस्त जीवों की अनुकम्पा-रक्षा प्रधान यह प्रवचन, आत्मा के लिए हितकर है, इस भव पर भव दोनों में कल्याण करने वाला है। अन्य प्रवचनों सिद्धान्तों में अणुत्तर-श्रेष्ठत्तम-सर्वोत्तम है और समस्त पापों व दुःखों को उपशांत करने वाला अर्थात् उनका अंत करने वाला है।

जिस प्रकार भयभीत के लिए शरण, पक्षियों के लिए आकाश, भूखों को भोजन, प्यासों को पानी, समुद्र में डूबते के लिए जहाज, रोग से पीड़ित को औषध और अटवी में सार्थवाहों का संघ, प्राणी को सुखावह होता है उससे भी अधिकतर यह अहिंसा भगवती त्रस स्थावर समस्त प्राणियों के लिए महान कु शल क्षेम मंगलकारी और सुखावह है।

अहिंसा भगवती के पर्यायवाची साठ नाम-

1) द्वीप त्राण शरण गति प्रतिष्ठा 2) निर्वाण 3) निर्वृति 4) समाधि 5) शक्ति 6) कीर्ति 7) कांति 8) रति 9) विरति 10) श्रुत का अंग 11) तृप्ति 12) दया अनुकंपा-कष्ट पाते, मरते या दुःख पाते प्राणियों की करुणा प्रेरित आत्म भावों से रक्षा करना यथाशक्ति दूसरे दुःख का निवारण करना। 13) विमुक्ति 14) क्षमा 15) सम्यक् आराधना 16) महत्ती-विशाल (समस्त व्रतों का समाविष्ट करने वाली)17) बोधि 18) बुद्धि को सार्थक बनाने वाली19) धृति 20) समृद्धि(सब प्रकार की संपन्नता) 21) ऋद्धि-लक्ष्मी 22) वृद्धि 23) स्थिति 24) पुष्टि 25) नंदा आनंदकारी 26) भ्रदा कल्याणकार 27) विशुद्धि 28) लब्धि 29) विशिष्ट-दृष्टि अनंकांत दृष्टि 30) कल्याण 31) मंगल 32) प्रमोद 33) विभूति-आध्यात्मिक ऐश्वर्य 34) रक्षा 35) सिद्धावास 36) अनाश्रव 37) केवलिस्थान 38) शिव 39) समिति 40) शील 41) संयम 42) सदाचार 43) संवर 44) गुप्ति 45) व्यवसाय 46) उन्नति 47) यज्ञ 48) आयतन-गुणों का घर 49) अप्रमाद 50) आश्वास-तसल्ली 51) विश्वास 52) अभय 53) अमारी 54) चोखी-भली 55) पवित्रा 56) शुचि 57) पुला 58) विमला (54.58 तक अच्छी भली, निर्मल, निष्कलंक, शुद्ध, पवित्रा आदि अर्थों व भावों के सूचक नाम हैं।) 59) प्रभाषा प्रकाशमान 60) निर्मलतरा।

विभिन्न अपेक्षाओं से परिपूर्ण ये गुण निष्पन्न नाम है। इन नामों के द्वारा अहिंसा का स्वरुप, अहिंसा का महत्व एवं अहिंसा का व्यापक अर्थ स्पष्ट होता है।

अहिंसा के धारक-

इस अहिंसा भगवती का त्रिलोक पूजित केवल ज्ञान दर्शन के धारक समस्त जगत के जीवों के प्रति वात्सल्य भाव धारण करने वाले तीर्थंकर प्रभू ने सम्यक् रुप से कथन किया है।

अनेक विशिष्ट ज्ञानी, लब्धि धारी, विविध तपोनिरत तपस्वी धीरमति अतिशय लोकोत्तर बुद्धि सम्पन्न, आहार विहार में अतिशय संपन्न, नित्य शील स्वाध्याय ध्यान में लीन, महाव्रत धारी, समिति गुप्तिवंत, छःकाय के रक्षक नित्य अप्रमत्त रहने वाले, श्रेष्ठ, मुनिवरों ने स्वयं तीर्थंकर भगवंतों ने इस अहिंसा भगवती का सम्यक् पालन किया है अर्थात् यह जिनेश्वरों द्वारा प्ररुपित एवं आसेवित तथा अनेकानेक महामुनियों द्वारा आसेवित है।

अन्य भी ऐसे या सामान्य अनंत जीवों ने अहिंसा महाव्रत का आराधन किया है, वर्तमान में लाखों जीव कर रहे हैं और भविष्य में भी अनतानंत जीव इस अहिंसा महाव्रत का परिपूर्ण पालन कर मुक्ति प्राप्त करेंगे।

अहिंसकों-महाव्रत धारियों की आहार चर्या-

शरीर और आयुष्य को धारण करने के लिए मनुष्य मात्र को आहार की आवश्यकता होती है। बिना आहार के दीर्घकाल तक संयमचर्या का आराधन नहीं हो सकता। अतः जिनेश्वर भगवंतों ने पूर्ण असावद्य-पाप रहित अहिंसक वृत्ति आहार के लिए निर्दिष्ट की है। वह इस प्रकार है-

अहिंसक मुनि को पृथ्वी पानी अग्नि हवा वनस्पति आदि स्थावर एवं समस्त त्रस प्रणियों के प्रति पूर्ण संयम एवं दया अनुकम्पा के लिए निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए। वह आहार नव कोटि से शुद्ध होना चाहिए- (1.3) साधु स्वयं आहार के लिए हिंसा न करे, न कराए, न ही अनुमोदन करे (4.6) स्वयं आहार न पकावे, न पकवावे, पकाने का अनुमोदन भी न करे, (7.9) स्वयं न खरीदे, न खरीदवाए, खरीद कर देने वाले का अनुमोदन भी न करे, ये नव कोटियां है। मन वचन काया तीनों योगों से इसका शुद्ध पालन करे। उद्गम, उत्पादना और एषणा के यों 42 दोषों से रहित शुद्ध आहार प्राप्त करे। 42 दोषों का स्पष्टीकरण विपाक सूत्र के परिशिष्ट में देखें। पूर्णतया जीव रहित अचित्त एवं निःशंक आहार पानी की गवेषणा करनी चाहिए।

आहार ग्रहण करने के लिए गृहस्थ के घर धर्म कथा न कहे। शुभाशुभ सूचक लक्षण स्वप्न फल ज्योतिष निमित्त आदि का कथन न करें। जादू मंतर आदि चमत्कारों का प्रयोग न करे। किसी का वंदन सन्मान सत्कार आदि करके भिक्षा प्राप्त न करें। किसी की भी हीलना निंदा तिरस्कार न करे, किसी को भयभीत करना या ताड़ना- तर्जना करना आदि न करें, अभिमान मायाचार गुस्सा या दीनता न करे, मित्रता प्रार्थना (गुणग्राम) या सेवा करके आहार की प्राप्ति नहीं करनी चाहिए।

अज्ञात स्थानों घरों से (जहां साधु के जाने के पूर्व उसके आने की कोई जानकारी या तैयारी नहीं हो वहां से) भिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। भिक्षा ग्रहण करने में किसी प्रकार का आसक्ति भाव, द्विष्ट भाव (नाराजी भाव) न हो, दीन

भाव, उदासी भाव न हो, हताश व हीन भाव न हो, दयनीय न बने, किसी प्रकार के खेद का अनुभव कर खेद खिन्न न बने, घबराया हुआ थका हुआ सा न बने अर्थात् परेशानी का अनुभव न हो किन्तु संयम निर्वाह, चारित्र निर्माण, विनय क्षमा आदि गुण वृद्धि की चेष्टा से युक्त होकर, साधु को आहार पानी की गवेषणा करनी चाहिए।

इस प्रकार साधु की आहार प्राप्ति भी द्रव्य एवं भाव से पूर्ण अहिंसक, असावद्य पूर्ण पाप रहित, कही गई है। इसका यथार्थ पालन करने से ही भिक्षु पूर्ण अहिंसक बनता है।

अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएं-

महाव्रतों की रक्षा के लिए, सम्यक् आराधना के लिए ये भावनाएं कही गई हैं इनका सावधानी पूर्वक पालन करने से ही संयम की आराधना या सफलता सम्भव है।

प्रथम भावना-ईर्या समिति-

खड़ा होना, बैठना, चलना या अन्य प्रवृत्ति करना विवेक युक्त हो। चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि को सावधानी पूर्वक देखकर चलें, चलने में प्रत्येक त्रस स्थावर प्राणी की दया में तत्पर होकर फूल पत्तें कोंपल, कंद, मूल, मिट्टी, पानी, बीज, छिलके, दूब, हरी घास आदि को बचाते हुए यातना के साथ चलें। किसी भी प्राणी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। निंदा गर्हा नहीं करनी चाहिए। उनकी हिंसा छेदन भेदन नहीं करना चाहिए। उन्हें व्यथित नहीं करना चाहिए। लेश मात्र भी किन्ही जीवों को भय या दुःख नहीं पहुंचाना चाहिए।

इस प्रकार साधु ईर्या समिति में मन वचन काय से भावित होकर मलिनता रहित संक्लेश रहित एवं निरतिचार चारित्र का पालन करें।

दूसरी भावना मनः समिति-

मन से कभी भी पापकारी अधार्मिक क्रू र वध बंधन भय मरण आदि से किसी को पीड़ित करने के चिंतन नहीं करे किन्तु निर्मल पवित्र संक्लेश रहित मन के परिणाम रखें। मन को सदा स्वच्छ शांत और सम भाव में रखें।

तीसरी भावना वचन समिति-

पापकारी परिणतियों से युक्त होकर किंचित भी सावद्य भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए अर्थात् कठोर, कर्कश, छेदकारी, भेदकारी, मर्मयुक्त, पाप-प्रेरक, गृहस्थ को आओ जाओ आदि की प्रेरणा युक्त वचनों का प्रयोग नहीं करना, क्रोध मान माया लोभ के वशीभूत होकर नहीं बोलना। हास्य विनोद, भय, वाचालता, विकथा में प्रेरित मति से वचन प्रयोग न करना। इन सब का पूर्ण ध्यान रखते हुए अत्यावश्यक, मृदु (मधुर) असावद्य विवेक युक्त भाषा बोले। किसी को किंचित भी पीड़ाकारी हो ऐसा वचन न बोलें।

चौथी भावना एषणा समिति-

पूर्वोक्त शुद्ध निर्दोष गवेषणा करके भिक्षा- मधुकरी वृत्ति से आहार लेकर गुरु के पास आवे। गमनागमन का प्रतिक्रमण करे। गुरु के समक्ष आलोचना करके आहार दिखावें। फिर अप्रमत्त भाव से पुनः दोषों की निवृत्ति के लिए कायोत्सर्ग प्रतिक्रमण करे, फिर शांत भाव युक्त सुखासन से बैठकर कुछ समय शुभ योग ध्यान स्वाध्याय में समय व्यतीत करते हुए धर्म मन, अविमन, सुखमय, अविग्रहमन, समाधिमन श्रद्धासंवेग निर्जरा युक्त मन, जिन वचन के प्रति प्रगाढ़ वत्सलता युक्त मन वाला होकर अर्थात् पूर्ण पवित्र प्रसन्न मन हो कर खड़े होवे गुरु रत्नाधिक को क्रम से निमंत्रण करे (दूर हो तो खड़े होवे एवं अत्यन्त निकट ही बैठे हो तो बैठे बैठे ही श्रद्धा भक्ति विनय युक्त होकर निमंत्रण करे) एवं भाव पूर्वक देवे। फिर उचित आसन पर बैठे। संपूर्ण शरीर का प्रमार्जन कर हाथ का प्रमार्जन करे। फिर मूर्च्छा भाव गृद्धि भाव से रहित होकर आकु लता लोलुपता लालसा रहित परमार्थ बुद्धि वाला होकर भिक्षु ज्ञाता सूत्र कथित दृष्टांतों के चिंतन को उपस्थित करते हुए आहार करे।

आहार करते समय मुंह से चव-चव, सुड़-सुड़ आवाज न करते हुए विवेक पूर्वक खावे, जल्दी-जल्दी उतावल से न खावे, अत्यन्त धीमें आलस्य आदि करते हुए न खावे अथवा बीच में, कार्यों में समय व्यतीत न करे, भोजन को भूमि पर न गिराते हुए चौड़े पात्र में यतना पूर्वक एवं आदर पूर्वक भोजन करे।

रस वृद्धि हेतु संयोग मिलाना आहार की निंदा प्रशंसा करना अर्थात् आहार के प्रति अत्यंत ग्लान भाव या अति हर्ष भाव आदि न करे, जैसा मिला है वैसा विरक्त भाव से खावें। मर्यादित खावे अर्थात् गाड़ी की धुरी में तेल देने या घाव पर मल्हम लगाने के समान, केवल संयम निर्वाह के लिए, जितना आवश्यक हो, उतना आहार करे। इस प्रकार आहार समिति का भिक्षु समुचित रुप से निरतिचार पालन करे।

यह साधु की भोजन विधि कही गई है। अन्य भी इस विषयक वर्णन दशवैकालिक सूत्र उत्तराध्ययन सूत्र ज्ञाता सूत्र आदि में कहा गया है, उन समस्त विधि विवेक नियमों का ज्ञान कर के भाव पूर्वक यथार्थ रुप से पालन करना चाहिए।

पांचवी भावना-आदान निक्षेपणा समिति-

संयम की रक्षा के लिए अथवा गर्मी सर्दी जीव जंतु मच्छर आदि से शरीर की रक्षा के लिए भिक्षु, वस्त्र, पात्र, पाट, संथारा, रजोहरण, मुखवस्त्रिका को उनमें राग द्वेष न करते हुए धारण करे। उन उपकरणों को यतना से रखे यतना से उठावे, उभय काल यतना से प्रतिलेखन करे आवश्यक होने पर यतना से झिड़कावे (खंखेरे) यतना से प्रमार्जन करें। दिन में रात में सदा अप्रमत्त भाव से अर्थात् सावधानी पूर्वक ही सभी प्रवृत्ति करे।

यहां उपलक्षण से परठने की समिति भी समझ लेनी चाहिए। अर्थात् मल, मूत्र, श्लेष्म आदि शरीर से निष्कासित पदार्थ को यतना से, विवेक पूर्वक, किसी को दुगंछा घृणा न आवे, इस तरह परठे। परठने की भूमि किसी के स्वामित्व में है तो उसकी आज्ञा प्राप्त करे। किसी के स्वामित्व में न हो तो शक्रेन्द्र की आज्ञा से उसकी याचना कर फिर वहा परठे। उत्तराध्ययन सूत्र अ. 26 में कही विधि से एवं निशीथ सूत्र कथित विधि एवं दोषों का विवेक रखते हुए परठना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम महाव्रत की पांच भावना में पांचों समितियों का सम्यग् आराधन सूचित किया गया है। मन की पवित्रता रखने की प्रेरणा की गई है। तात्पर्य यह है कि हमारे भाव पूर्ण अहिंसक हो और प्रवृत्ति भी सम्यक् हो यही इन पांच भावनाओं का उद्देश्य है।

इस प्रकार पांच भावनाओं युक्त प्रथम संवर द्वार प्रथम महाव्रत अहिंसा का स्वरुप है। इसका सदा मृत्युपर्यन्त पालन करना चाहिए।

दूसरा अध्ययन-सत्य (महाव्रत)

सत्य स्वरुप-

यद्यपि अहिंसा की आराधना मोक्ष मार्ग में प्रमुख है तथापि उसकी समीचीन एवं संपूर्ण आराधना के लिए सत्य की आराधना भी नितांत आवश्यक है। सत्य अहिंसा को अलंकृत करता है, सुशोभित करता है। अतः असत्य का त्याग करके सत्य को पूर्ण रुप से स्वीकार करना चाहिए।

सत्य वचन दूसरा संवर द्वार है, यह शुद्ध निर्दोष है, पवित्र व्रत है। समस्त उपद्रवों से रहित है, प्रशस्त विचारों से उत्पन्न होने वाला, सुस्थिर कीर्ति वाला, उत्तम कोटि के देवों एवं श्रेष्ठ मानवों से मान्य किया गया है, सद्गति पथ का प्रदर्शक है, यह सत्य व्रत लोक में उत्तम है।

सभी के लिए हितकर है, महा पुरुषों द्वारा स्वीकृत है। सत्य सेवी ही सच्चा तपस्वी और नियम निष्ठ हो सकता है। सत्य की समग्र भावपूर्वक आराधना करने वाले भीषण से भीषण विपत्ति में भी आश्चर्य जनक रुप से सहज छटकारा पा जाते हैं।

सत्य के प्रभाव से विद्याएं एवं मंत्र सिद्ध होते हैं। सत्य सागर से भी अधिक गंभीर और मेरु से भी अधिक स्थिर होता है। सूर्य से अधिक प्रकाशमान एवं चन्द्र से भी अधिक सौम्य है।

सत्य होते हुए भी वर्जनीय- 1. जो संयम का विघातक हो, 2. जिसमें हिंसा या पाप का मिश्रण हो, 3. फूट डालने वाला हो, 4. अन्याय का पोषक हो, 5. दोषारोपण रुप हो, 6. विवादपूर्ण हो, 7. जो लोक में निंदनीय हो, 8. भीलीभांति देखा सुना जाना न हो, 9. आत्म प्रंशसा और पर निंदा रुप हो, 10. जिससे शिष्टाचार का उल्लंघन हो, 11. द्रोह युक्त हो, 12. जिससे किसी को भी पीड़ा उत्पन्न हो, वैसा सत्य भी आश्रव युक्त है, वह सत्य महाव्रतधारी के लिए त्याज्य है।

सत्य न होते हुए सत्य- 1. किसी देश विशेष में जो शब्द प्रसिद्ध हो जैसे- माता को आई, नाई को राजा यह जनपद सत्य है। 2. बहुत लोगों ने जिस शब्द को प्रयोग मान्य कर लिया यथा पटराणी को देवी यह सम्मत सत्य है। 3. जिसकी मूर्ति हो उस नाम से कहना अथवा शतरंज की गोटियों को हाथी घोड़ा कहना, यह स्थापन सत्य है। 4. जिसका जो नाम रख दिया वह गुण न भी हो, यथा नाम है लक्ष्मी, किन्तु है भिखारण, यह नाम सत्य है। 5. साधु के गुण न हो फिर

भी वेष हो उसे साधु कहना, यह रुप सत्य है। 6. किसी अपेक्षा विशेष से छोटा-बड़ा कहना, यह अपेक्षा (प्रतीत्य) सत्य है। 7. लोक व्यवहार में जो वचन रुढ़ हो जाता, यथा-गाँव आ गया गाँव तो आता है नहीं, फिर भी बोलना, यह व्यवहार सत्य है। 8. किसी गुण की मुख्यता हो उसकी अपेक्षा कथन करना यथा-अनेक रंग होते हुए भी मुख्य रंग का कहना, अनेक गुण होते हुए भी एक प्रमुख अवगुण होने से अवगुणी कह देना, यह भाव सत्य है। 9. संयोग के कारण उस नाम से कहना यथा- दंड धारण से दंडी, यह संयोग सत्य। 10. समानता के आधार पर उपमा लगा देना यथा- चरणकमल, मुख चन्द्र आदि ये शब्द प्रयोग करने से सत्य महाव्रत दूषित नहीं होता है।

भाषा ज्ञान- प्राचीन प्रसिद्ध छः भाषा कही गई है- 1. प्राकृत, 2 संस्कृत, 3. मागधी, 4. शौरसेनी, 5. पैशाची, 6. अपभ्रंश। गद्य और पद्य के भेद से इनके दो-दो प्रकार हैं। भाषा शुद्धि के लिए 16 प्रकार का वचन ज्ञान आवश्यक है। 1-3. एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, 4-6. स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग और नपुंसक लिंग 7-9. भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्यकाल 10. प्रत्यक्ष वचन-यह सज्जन है। 11. परोक्ष वचन वह गुणवान है। 12-15. प्रशंसाकारी या दोष प्रकट करने वाले वचन की चौभंगी 16. आध्यात्म वचन-मन की बात अचानक प्रकट हो जाना सहसा बोल जाना। ''कोठे सो होठे'' की उक्ति चरितार्थ हो जाना।

इस प्रकार विवेक एवं ज्ञान युक्त भाषा का प्रयोग करने वाला ही सत्य महाव्रत का आराधक होता है।

सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएं

पहली भावना चिंत्यभाषण-

जल्दी-जल्दी सोच-विचार किए बिना सहसा नहीं बोलना, चपलता से नहीं बोलना, कटुक नहीं बोलना फरुष, पीड़ाकारी, सावद्य नहीं बोलनाः इन का विचार करके हितकारी, परिमित, शुद्ध, संगत, अविरोधी, विवक्षित अर्थ को स्पष्ट करने वाली, विचार पूर्वक समय प्रसंग के अनुसार, संयती को सत्य भाषा ही बोलनी चाहिए।

बिना विचारे बोलने पर कई बार असत्य भाषा का प्रयोग हो जाता है और कई बार भीषण अनर्थ उत्पन्न हो जाता है। भलीभांति विचार करके बोलने वाले को पश्चाताप करने का अवसर नहीं आता है, उसे लांछित नहीं होना पड़ता है और उसका सत्य व्रत अखंडित रहता है।

दूसरी भावना अक्रोध- किसी के प्रति क्रोध भाव नहीं होना, क्योंकि क्रोध भावना में रहा हुआ व्यक्ति झूठ, चुगली, कटुवचन बोलता है। कलह, वैर, विवाद करता है, सत्य सदाचार विनय गुण का नाश करता है, क्रोधाग्नि में जलता हुआ व्यक्ति भाषा में अनेक प्रकार के दोषाचारण करता है। अतः द्वितीय महाव्रत के आराधक भिक्षु को क्रोध नहीं करना चाहिए एवं निरंतर क्षमा से भावित अंतः करण वाला होकर रहना चाहिए।

क्रोधी का विवेक विलुप्त हो जाता है। सत् असत् का भान नहीं रहता है। पागल सा बन जाता है अतः क्रोध का त्याग करना क्रोध वृत्ति पर विजय प्राप्त करना श्रमण के लिए परम आवश्यक है।

तीसरी भावना निर्लोभता- लोभ का अर्थ है अप्राप्त की चाहना और प्राप्त में आसक्ति। लोभी व्यक्ति यश, कीर्ति, सुख, सुविधा, ऋद्धि वैभव, आदर सत्कार सम्मान, प्रतिष्ठा भोग उपभोग की आवश्यक सामग्री के लिए एवं अन्य भी अनेक प्रयोजनों से असत्य भाषण मिश्र भाषण करता है अतः भिक्षु को उक्त किसी भी विषय में लोभ नहीं करना चाहिए। लोभी व्यक्ति मिथ्या भाषण करता है। लोभ भी झूठ बोलने का एक प्रमुख कारण है। अतः निर्लोभता से अंतः करण को भावित करना चाहिए।

चौथी भावना निर्भयता- भयभीत नहीं होना, निर्भय बनना। डरपोक, भीरु व्यक्ति अनेक भयों से भयग्रस्त बनता रहता है। वह स्वयं डरता और दूसरों को भी डरा देता है। भीरु व्यक्ति ग्रहण किए व्रत नियम प्रतिज्ञा का पूर्ण वहन नहीं कर सकता है, उसे छोड़ बैठता है। अतः किसी भी व्यक्ति से किसी भी संयोग या परिस्थिति से अथवा रोग, संकट, दुःख, मृत्यु आदि से भी भयभीत नहीं होना चाहिए। इष्ट-वियोग, अनिष्ट- आक्रोश, उपालंभ के संयोग से भी भयभीत नहीं होना चाहिए।

भय आत्मशक्ति के विकास में बाधक है, हिम्मत को तहस नहस कर देता है, समाधि का विनाशक है, संक्लेश को पैदा करने वाला है। यह सत्य पर स्थिर नहीं रहने देता है। स्वयं भी सन्मार्ग पर नहीं चल सकता, दूसरों को चलने में भी बाधक बनता है। भयभीत बना व्यक्ति भय से बचने के लिए हिंसा या झूठ का सहारा लेता है। उसमें सरलता नष्ट होती है जिससे झूठ प्रपंच करता है। वास्तव में भय करने से कोई रोग, आपत्ति, प्रतिकूल संयोग हटते नहीं है। भय कोई प्रतिकूल संयोग की औषध नहीं है जिससे कि वे नष्ट हो जाय। अतः आत्मा को भयभीरु न बनाकर सरल सत्यनिष्ट निडर धैर्यवान बनाना चाहिए। तभी सत्य महाव्रत की सही आराधना हो सकती है। अतएव सत्य भगवान के आराधक को चाहिए कि अपने अंतःकरण को चित्त की स्थिरता से, धैर्य, सरलता एवं निर्भयता से सदा भावित करते रहना चाहिए।

पांचवी भावना हास्य त्याग-

महाव्रत धारी श्रमण को हास्य हंसी विनोद का सेवन नहीं करना चाहिए। वैसे प्रसंग आ जावे तो मौन का अलंबन लेना चाहिए। हंसोड़ व्यक्ति अशोभनिक और अशांतिजनक शब्दों का प्रयोग करते हैं। किसी का परिहास उसके अपमान तिरस्कार का कारण भी बनता है। हंसी में दूसरों की निंदा तिरस्कार प्रिय लगता है, उसमें आनंद आता है, इस कारण हास्य पर पीड़ाकारी है, विकथाओं की वृद्धि कराने वाला है। शरीर के अंगों को विकृत निश्चेष्ट बनाने वाला है।

हास्य में एक दूसरे की गुप्त बात प्रकट करके निन्दा की जाती है। इस प्रकार यह हास्य वृत्ति सत्य एवं संयम की विनाशक है, पर भव में भी गति को बिगाड़ने वाली है। अतः सत्य महाव्रत धारी को हास्य विनोद का त्याग करके अधिकतम मौन व्रत स्वीकार करके अपने अंतःकरण को गंभीरता सरलता एवं सत्यनिष्ठता से भावित करते रहता चाहिए।

हास्य में सत्य को भी विकृत करना पड़ता है नमक मिर्च लगा कर बोलना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि हास्य में असत्य का सहारा आश्रय लिया जाता है। इसलिए सत्यव्रत के संरक्षण के लिए हास्य वृत्ति का परिहार करना भी नितांन्त आवश्यक समझना चाहिए।

तप संयम में प्रगतिशील साधु भी यदि हास्यवृत्ति में पड़ जाता है। वह कुतुहल प्रिय बन जाता है और देवगति में भी वह किल्विषिक आदि हीनतम स्तर को प्राप्त करता है। संयम का विराधक बन जाता है।

ये असत्य बोलने के मुख्य पांच कारण कहे गये हैं। इनका त्याग करना एवं इनके त्याग में आत्मा को भावित करते रहना चाहिए। असत्य से बचने का यही सीधा एवं सरल उपाय है। इसलिए सत्य व्रत के आराधक को, 1. सदा गहरा विचार करके निरवद्य मृदु वचन बोलना, 2-3. क्रोध लोभ आदि कषायों के वशीभूत होकर नहीं बोलना, 4-5. भय और हास्य वृत्ति का सहारा भी नहीं लेना अपितु विचारकता, शांति, निर्लोभता, मौन, गंभीरता धारण करना चाहिए।

इन पांच भावनाओं से पुष्ट होकर यह सत्य संवर द्वार आत्मा को आश्रव रहित बनाने में पूर्ण सफल होता है।

तीसरा अध्ययन-अचौर्य (महाव्रत)

अचौर्य स्वरुप- 1. यह तीसरा संवर द्वार है। इसमें चोरी करने का, बिना दिये कोई वस्तु लेने का अथवा बिना आज्ञा प्राप्त किए कोई भी वस्तु लेने का त्याग किया जाता है। संपूर्णतः त्याग करने वाला महाव्रत धारी कहा जाता है। इसमें पर द्रव्य की अनंत तृष्णा का निग्रह हो जाता है। आश्रवों का निरोध हो जाता है। इसका पालन करने वाला निर्भय हो जाता है अर्थात् चोरी और अदत्त से उत्पन्न आपत्तियों से रहित हो जाता है। इसके अभ्यास से संयमशील साधक के हाथ-पांव भी संयमित हो जाते हैं वे अदत्त अननुज्ञात का स्पर्श भी नहीं करते। ऐसे इस अस्तेय महाव्रत का अनेक उत्तम पुरुषों ने सेवन किया, इसे परम श्रेष्ठ धर्माचरण रुप में मान्य किया है।

2. इस महाव्रत का आराधक ग्रामादि में कहीं भी पड़ी हुई खोई हुई, किसी की भूली हुई वस्तु हो तो स्वयं उसे उठाता भी नहीं है न किसी को कहता है। उसके लिए सोना, मणि, रत्न, पत्थर, धूल एक सरीखा होता है। किसी में भी आकर्षण या कुतुहल प्रलोभन नहीं होता है। इस प्रकार वह लोक में विचरण करता है।

3. जंगल में खेत में मार्ग में कोई पत्र पुष्प फल घास तृण पत्थर रेत आदि ऐसी छोटी या बड़ी, अल्प या बहुत वस्तु को वह बिना किसी के दिये या किसी की आज्ञा प्राप्त किए बिना ग्रहण नहीं करता है अर्थात् वह अचित तृण की आवश्यकता होने पर भी अदत्त या अननुज्ञात नहीं लेता है। किसी समय में वह व्यक्तिगत मालिकी से रहित वस्तु की शक्रेन्द्र की आज्ञा लेकर ग्रहण करता है।

4. अस्तेय महाव्रतधारी मकान, पाट, आहार, वस्त्र, पात्र अन्य समस्त उपकरण भी किसी के द्वारा देने पर ही ग्रहण करता है। दूसरों का अवगुण अपवाद नहीं करता है, किसी के गुणों का निषेध नाश नहीं करता है। दूसरे के नाम से कोई वस्तु प्राप्त नहीं करता है। किसी के दान में अंतराय नहीं करता है। किसी की चुगली नहीं करता है एवं किसी के साथ मत्सर भाव नहीं रखता है। ये सूक्ष्म अदत्त के त्याग की अपेक्षा कथन है। इस महाव्रत में जीव-अदत्त, तीर्थंकर अदत्त का भी त्याग होता है।

5. जो श्रमण शय्या संस्तारक या भंडोपकरण विधि युक्त ग्रहण नहीं करता, साधर्मिकों में संविभाग नहीं करता, स्वयं संग्रह कर लेता है। (1) शक्ति होते हुए तप नहीं करता है। (2) व्रतों का पालन बराबर नहीं करता है, (3) रुप (वेश)

की मर्यादा भंग करता है, (4) अन्य किसी भी समाचारी का भंग करता है (5) भावों की विशुद्धि पूर्ण रुपेण न रखकर कलुषता मत्सरता, हर्ष-विषाद, राग-द्वेष, निंदा विकथा आदि करता है अर्थात् जो तप का, व्रत का, रुप का, आचार का और भावों का सम्यक् आराधक नहीं बनता है याने तत्संबंधी भगवदाज्ञा में पुरुषार्थ नहीं करता है, आपस में बोल-चाल, कलह, क्लेश, वाद-विवाद, वैर, विरोध करता है, असमाधि भाव पैदा करता है, बारंबार गुस्सा करते रहता है, ऐसे लक्षणों वाले साधक भगवदाज्ञा के आराधक नहीं हैं, वे इस अस्तेय व्रत का सम्यक् आराधन नहीं कर सकते।

6. इन उक्त दोषों का त्याग करके जो आहार पानी उपधि-भंडोप करण को सम्यक् विधि से प्राप्त कर, बाल ग्लान तपस्वी साधर्मिक साधुओं की सेवा भक्ति करता है, आचार्य उपाध्याय आदि पूज्य पुरुषों की विनय भक्ति सेवा करता है, सदा उनके चित्त की आराधना करता है, निर्जरा के लक्ष्य से दस प्रकार की वैयावृत्य सेवा करता है, बिना दिए या बिना आज्ञा मकान आदि, आहार आदि कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं करता है, क्लेश वैरभाव कषाय, निंदा कपट, प्रपंच नहीं करता है, किसी का कुछ भी विपरीत अप्रिय नहीं करता है अथवा किसी को दान धर्म से विमुख नहीं करता है, ऐसा साधक इस अस्तेय व्रत का सम्यक् आराधक होता है।

7. इस प्रकार का यह जिनेश्वर कथित तीसरा महाव्रत आत्मा के हितकर है। आगामी भव में शुभ फलदायी है। भविष्य में कल्याणकारी है पापों को और पाप फल को शांत करने वाला है। इस महाव्रत की सुरक्षा एवं सफल आराधना के लिए निम्न पांच भावनाएं कही गई है-

अचौर्य महाव्रत की पांच भावना

प्रथम भावना निर्दोष उपाश्रय-

ग्रामादि में विचरण करते हुए निवास करने के लिए जिस किसी मकान में ठहरना हो वह प्याऊ है या मंदिर (देवालय), बगीचा है या गुफा, कारखाना है या दुकान, यानशाला या मंडप, शून्यगृह है या श्मसान में बना स्थान है, ऐसा कोई भी मकान है, उनमें सचित पानी मिट्टी बीज आदि बिखरे न हो, हरी दूब वनस्पति मार्ग में न हो, कीडी, मकड़ी, मकोड़े आदि त्रस जीवों की बहुलता न हो, लघुनीत बड़ीनीत परठने के जगह की वहां सुविधा हो, गृहस्थों के अपने लिए बना हो, स्त्री आदि के निवास से रहित हो, अन्य भी कल्प मर्यादाओं से पूर्ण उपयुक्त हो, वहां साधु को ठहरना चाहिए।

किन्तु जो आधाकर्म आदि दोषों से युक्त हो, साधु के लिए उसमें अनेक प्रकार की तैयारी सफाई परिकर्म (छाबना लीपना आदि) कार्य किए हों, अंदर पड़े सचित्त पदार्थों को या अत्यधिक सामान को अथवा अधिक भारी उपकरण को हटाया हो, मकान कमरा खाली किया हो, जिसमें कि असंयम (विराधना) बढ़ती हो ऐसे उपाश्रय (मकान) साधु को ग्रहण नहीं करने चाहिए। अन्य आगम (आचारांग आदि) में भी इनका निषेध किया गया है।

इस प्रकार विविक्त (स्त्री आदि रहित) वास और शय्या के विवेक से आत्मा को भावित करना चाहिए, क्लेश कदाग्रह पाप कर्मों से निवृत्त रहना चाहिए, दत्त और अनुज्ञात ही लेना चाहिए।

दूसरी भावना निर्दोष संस्तारक-

उपाश्रय मकान आज्ञा लेने के अतिरिक्त वहां रहे घास पाट आदि संस्तारक रुप कोई उपकरण की आवश्यकता हो तो उसकी आज्ञा भी अलग से लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मकान की आज्ञा लेने से वहां रहे अन्य सभी पदार्थ की आज्ञा लेना नहीं समझ लेना चाहिए अर्थात् वहां रहे अन्यान्य उपकरणों की अथवा पत्थर रेत आदि की पृथक आवश्यकतानुसार आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार अवग्रह ग्रहण समिति से दत्त और अनुज्ञात ग्रहण करने की रुचि से आत्मा को भावित करना चाहिए।

तीसरी भावना शय्या परिकर्म वर्जन-

शय्या संस्तारक मकान आदि के लिए कोई छेदन भेदन आरंभ के कार्य न करें न करावे। मकान को सम, विषय, या हवा वाला अथवा हवा रहित आदि करावे नहीं, या ऐसा करने की अभिलाषा रखे नहीं। डांस मच्छर आदि प्राणियों को क्षुभित करे नहीं, त्रास पहुंचावे नहीं। यतना से दूर करने के अतिरिक्त कुछ न करे। इस तरह संयम, संवर, समाधि की प्रमुखता वाला बनकर, कषाय एवं इन्द्रिय निग्रह की प्रधानता वाला बने। धैर्य के साथ इन उक्त स्थितियों में समभाव रखे, आध्यात्म ध्यान में लीन रहे, समिति युक्त होकर एकत्व आदि भावनाओं से भावित रहता हुआ, संयम, धर्म एवं अस्तेय महाव्रत का पालन करे। इस प्रकार शय्या समिति योगों से आत्मा को भावित करते हुए प्राप्त शय्या में समपरिणामी बने।

चौथी भावना अनुज्ञात भक्तादि-

अनेक श्रमणों के लिए जो सामुहिक आहार लाया गया है,उसमें खाने का पूर्ण विवेक रखना चाहिए। अर्थात् उसमें स्वादिष्ट मनोज्ञ शाक आदि स्वयं पहले या अधिक या शीघ्र नहीं खाना चाहिए। दूसरों को किसी भी प्रकार का परिताप संक्लेश असमाधि न हो अंतराय न हो ऐसा विवेक से, चंचलता रहित, खाना चाहिए जिससे तीसरे व्रत में कोई दोष न लगे। इस प्रकार सामुहिक आहार प्राप्त समिति में आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करते हुए दत्त अनुज्ञात ग्रहण की रुचि वाला बने तथा क्लेश आदि पापों के करने कराने से विरत बने।

पांचवी भावना साधार्मिक विनय-

साधर्मिक सहवर्त्ती साधुओं के प्रति विनय वंत रहे एवं उनके उपकरणों के प्रति भी विनय विवेक रखे। उनके तप के पारणे में विनय विवेक रखे। वाचना स्वाध्याय आदि में देने लेने पूछने में, बाहर जाने आने में उनके प्रति विनय प्रवृत्ति रखें अर्थात् प्रत्येक कार्य पूछ कर एवं विनय शिष्टाचार युक्त करे। इस प्रकार अन्य सभी संयम योग में साधर्मिक के साथ पूर्ण विनय प्रवृत्ति करनी चाहिए। विनय भी आभ्यंतर तप है और तप ही संयम में प्रधान धर्म है।अतः गुरु साधर्मिक तपस्वी का पूर्ण विनय करना चाहिए। इस तरह विनय विवेक से भावित अंतः करण वाला बने।

ये तीसरे महाव्रत की पांच भावना युक्त उपरोक्त सभी वर्णन अदत्त महाव्रत की सूक्ष्मता एवं भावात्मकता से परिपूर्ण है। अर्थात् विनय, सेवा भक्ति न करना, सामुहिक आहार आदि का अविवेक से उपयोग करना भी अस्तेय महाव्रत की

विराधना करना है। योग्यायोग्य मकान संस्तारक के विषय में कोई भी संकल्प या प्रवृत्ति करना भी अदत्त है, आधाकर्म या परिकर्म दोष युक्त मकान का उपयोग करना भी अदत्त है। तृण कंकर मिट्टी आदि भी याचना अनुज्ञा बिना ग्रहण करना अदत्त है, समुह में रहते हुए सेवा भाव या सेवा प्रवृत्ति नहीं रखना भी अदत्त है। शक्ति अनुसार तप व्रत पालन समाचारी पालन आदि में कमी करना भी अदत्त है, कलह कदाग्रह विवाद विकथा कषाय करना, माया प्रपंच, परनिंदा, तिरस्कार चुगली करना भी अदत्त है। मत्सर भाव वैरभाव रखना और दिनभर खाते रहना भी अदत्त है।

उक्त वर्णित पूर्ण सूक्ष्मता और विशालता को समझ कर परिपूर्ण सावधानी के साथ इस तीसरे अस्तेय महाव्रत रुप संवर द्वार का मन वचन काया से पालन करना चाहिए।

चौथा अध्ययन- ब्रह्मचर्य (महाव्रत)

यह चौथा संवर द्वार है। पांच महाव्रतों में यह महाव्रत विशेष स्थान रखता है। अनेक विध तपो में भी ब्रह्मचर्य उत्तम श्रेष्ठ तप कहा गया है। प्रस्तुत अध्ययन मे ब्रह्मचर्य को भगवान शब्द से उपमित किया है।

ब्रह्मचर्य की महिमा-

यह ब्रह्मचर्य ज्ञान दर्शन चारित्र तप विनय सम्यक्त्व आदि गुणों का मूल है। अनेक यम नियमों में प्रमुख नियम है। इसकी विद्यमानता में मनुष्य का अंतःकरण स्थिर हो जाता है अर्थात् ब्रह्मचर्य की सम्यक आराधना से अस्थिर चित वृत्ति नहीं रहती है। गंभीरता की वृद्धि होती है। सरलात्मा साधु जनों द्वारा सेवित है, सौम्य शुभ कल्याणकर है, मोक्ष का परम मार्ग और सिद्ध गति का घर रूप है, शूरवीर धीर पुरुषों द्वारा विशुद्ध आराधित है, यह खेद से रहित निर्भय और रागादि के लेप से कर्म बंध संग्रह से रहित है, चित शांति का स्थान है, दुर्गति को रोकने वाला सद्गति का पथ प्रदर्शक है, लोक में उत्तम महाव्रत है।

यह पद्म सरोवर की पाल भित्ति के समान, गाड़ी के आरों व धूरा के समान, वृक्ष के स्कंध के समान, महानगर के कोट दरवाजे एवं उनकी अर्गला के समान, ध्वजा की डोरी के समान है एवं विशुद्ध अनेक गुणों से सुसंपन्न है अर्थात उक्त सरोवर आदि जैसे पालि आदि से ही सुरक्षित होते हैं, पाली आदि के विनष्ट होने से वे नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य महाव्रत के आधार से ही सभी महाव्रत सुरक्षित है। इसकी अखंडता में ही सभी महाव्रतों की अखंडता टिक सकती है। ब्रह्मचर्य के विनाश में विनय, शील, तप, नियम सभी गुण समूह का वास्तव में विनाश हो जाता है। ऊपर का परिवेश मात्र रह सकता है। इस तरह ब्रह्मचर्य भगवान ही सभी व्रतों में सर्वोपरि महत्ववान है, प्राण स्वरूप है।

यह ब्रह्मचर्य महाव्रत सरल शुद्ध स्वभावी मुनियों द्वारा सेवित तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट वैरभाव कषायभाव से मुक्त कराने वाला, सिद्ध गति के दरवाजे को खोलने वाला, नरक तिर्यच आदि दुर्गति का अवरोध करने वाला है। सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनाने वाला है अर्थात ब्रह्मचर्य के अभाव में सारे सदनुष्ठान सार हीन से हो जाते हैं। यह सभी गुणों की सम्यक् आराधना कराने वाला है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से साधक नरेंद्र देवेंद्रों के भी नमस्करणीय सम्मानीय- पूज्यनीय बन जाता है। जो ब्रह्मचर्य का पूर्ण शुद्ध पालन करता है, वही यथार्थ श्रमण है, ब्राह्मण है, सच्चा तपस्वी वास्तविक साधु, ऋषि, मुनि, सयंती और भिक्षु है।

ब्रह्मचर्य के विघातक आचार-

स्नान मंजन त्याग, जल मैल धारण अधिकतम मौन व्रत का पालन (अर्थात मौन व्रत धारण करना भी संयम ब्रह्मचर्य की साधना में आवश्यक अंग है) केश लोच, क्षमा, इंद्रिय दमन, इच्छा निरोध, अल्प वस्त्र या वस्तु रहित रहना, भूख-प्यास सहन करना, नम्र रहना, सर्दी गर्मी सहन करना, काष्ठ या भूमि पर शयन, भिक्षार्थ भ्रमण, लाभालाभ, मान अपमान निंद्रा में तटस्थ रहना, डांस मच्छर के कष्ट सहन करना, अनेक नियम अभिग्रह तपस्याएं करना, यों अनेक गुणों एवं विनय से आत्मा को भावित करना। इस तरह आचरण करने से ब्रह्मचर्य व्रत स्थित दृढ़ होता है अर्थात् उसकी पूर्ण शुद्धि रहती है।

इस तरह यह ब्रह्मचर्य का रक्षण जिनोपदिष्ट है। इसका शुद्ध पालन आत्मा के लिए इस भव में परभव में कल्याणकर है एवं संपूर्ण कर्मों और दुःखों को शांत समाप्त करने वाला है। इस चतुर्थ महाव्रत की सुरक्षा हेतु पांच भावनाएं हैं। वे इस प्रकार है-

ब्रह्मचर्य महाव्रत की पांच भावनाएं

प्रथम भावना विविक्त शयनासन-

चतुर्थ महाव्रत की आराधना करने वाले श्रवण को ऐसे स्थानों में नहीं ठहरना चाहिए जहां पर स्त्रियां रहती हो, स्त्रियों के बैठने का, बातें करने का या अन्य कुछ भी कार्य करने का स्थान हो जहां स्त्रियां समीप में रहती हो, उनका संसर्ग बढ़ता हो, उनके श्रंगार मल मूत्र विसर्जन के स्थान अथवा मोह वर्धक वार्त्ता या प्रवृत्ति करने के स्थान निकट या सामने हों, ऐसे स्त्री सामीप्य एवं संसर्ग वाले स्थानों में ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिए। ब्रह्मचारिणी साध्वी को ऐसे पुरुष सामिप्य एवं संसर्ग वाले स्थानों में नहीं रहना चाहिए।

दूसरी भावना स्त्री कथा वर्जन- ब्रह्मचारी साधक को स्त्रियों के बीच बैठकर वार्तालाप करने से बचना चाहिए। स्त्रियों की कामुक चेष्टाओं का, विलास,हास्य आदि का, स्त्रियों की वेशभूषा का, उनके रुप सौन्दर्य विवाह, हास्य आदि का वर्णन करना, सुनना या वाचन करना आदि प्रवृतियों से बचना चाहिए। इस प्रकार के कथन एवं श्रवण भी मोह के वर्धक बन सकते हैं। ऐसे वर्णनों का वाचन चिंतन भी नहीं करना चाहिए। ब्रह्मचारिणी साध्वी को पुरुष संबंधी उक्त विषयों का वाचन श्रवण या विवेचन करने से बचना चाहिए।

तीसरी-भावना रुप त्याग- ब्रह्मचर्य साधक को चक्षु इन्द्रिय को पूर्ण रुपेण नियंत्रण में रखना आवश्यक है। विविध कामराग बढ़ाने वाले, मोह जनक, आसक्ति जागृत करने वाले दृश्यों चित्रों को देखने से विरक्त- उदासीन रहना चाहिए। स्त्रियों के पास बैठकर या खड़े रहकर अथवा दूर से ही उनके हास्य बोलचाल हाव-भाव क्रीड़ा, नृत्य गायन, रुपरंग, हाथ पैर आदि की बनावट, नयन, लावण्य, यौवन, शरीर सौष्ठव, स्तन, गुह्य प्रदेश, वस्त्र, आभूषण, केश, मुख, ललाट आदि पर दृष्टिपात नहीं करना चाहिए। स्वतः कभी दृष्टि चली जाय तो तत्क्षण हटा लेना चाहिए। टकटकी लगाकर नहीं देखना चाहिए। इस प्रकार विवेक रखने से नैत्रों के द्वारा मन में मोह भाव उत्पन्न नहीं होता है। साध्वी के लिए पुरुष के रुप संबंधी उक्त सारे विषय समझ लेनें चाहिए।

चौथी भावना भुक्त भोगों का स्मरण त्याग- मस्तिष्क में गृहस्थ जीवन की कई घटनाओं एवं दाम्पत्य जीवन की वृत्तियों के संस्करण संचित रहते हैं। उन समस्त संस्मरणों से मुनि को सदैव बचते रहना चाहिए। कभी वे स्मृति पट पर उपस्थित हो भी जाय तो भी उसके प्रति आकर्षण लगाव न होकर ज्ञान एवं वैराग्य के द्वारा घृणा अरुचि खेद के संस्कार जागृत रहने चाहिए। जो बाल दीक्षित हों उन्हें दूसरों के दाम्पत्य जीवन संबंधी संस्मरणों को स्मृति पट पर नहीं आने देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि स्वाध्याय ध्यान संयम योग अनुप्रेक्षा आदि में सदा तल्लीन रहना चाहिए। ज्ञान एवं वैराग्य से आत्मा को सदा भावित करते हुए उपरोक्त आत्म विकास करते रहना चाहिए।

पांचवी भावना- सरस स्वादिष्ट आहार त्यागः-ब्रह्मचर्य का आहार के साथ घनिष्ठ संबंध है।

1. बलवर्धक इन्द्रियोत्तेजक- आहार ब्रह्मचर्य का विघातक होता है। जिव्हा इन्द्रिय पर पूर्ण रुप से नियंत्रण करना, निरतिचार ब्रह्मचर्य पालन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिव्हालौलुप, सरस स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करने वाला, इस व्रत का सम्यक् आराधन नहीं कर सकता है। अतः दूध, दही, घी मक्खन, मीठा नमकीन आदि पदार्थों के सेवन या बारंबार सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है।

2. साधक को आहार की मात्रा का भी पूर्ण रुप से ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। भरपेट कभी कोई भी चीज नहीं खाना चाहिए, नही पीना चाहिए। सदा उणोदरी से पेट को हल्का रखना चाहिए। कम खाना, कम बार खाना और कम पदार्थ खाना इस नियम का अवश्यक पालन करना चाहिए।

3. तीसरी बात आहार के संबंध में यह है, कि ब्रह्मचर्य साधक को सदा निरंतर नहीं खाना चाहिए। प्रति दिन लगातार भोजन नहीं करना चाहिए, बीच-बीच में उपवास आदि तपस्या करते रहना चाहिए। जो साधक इन उक्त पांचों भावनाओं का अनुपालन भली भाँति करता है, वह ब्रह्मचर्य महाव्रत की साधना में सफल हो सकता है।

पांचवां अध्ययन अपरिग्रह (महाव्रत)

1. यह पांचवा संवर द्वार है। परिग्रह संसार भ्रमण का प्रमुख कारण है। इसका त्याग करने वाला, साथ ही ममत्व भाव का, आसक्ति भाव का त्याग करने वाला, इन्द्रिय एवं कषायों का संवर नियंत्रण करने वाला तथा जो जिनेश्वर भगवंतों द्वारा प्ररुपित सभी तत्त्वों की, एक से लेकर तेतीस तक के बोलो की पूर्ण निश्चल श्रद्धा करता है, इनमें शंका नहीं करता है, अन्य सिद्धान्तों की आकांक्षाओं से रहित बनता है, ऋद्धि आदि गर्व एवं निदान से रहित होकर निर्लोभी बनता है, मूढ़ता का त्याग कर ज्ञान एवं विवेक धारण करता है, सभी प्रकार के लोभ का त्याग कर मन वचन और काया से संवृत बनता है, वह अपरिग्रही श्रमण है, वहीं सच्चा भिक्षु है।

2. मंदर मेरु के शिखर चूलिका के समान है मोक्ष मार्ग का शिखर भूत चरम संवर स्थान है। श्रेष्ठ वृक्ष की उपमा से युक्त है, जिसमें सम्यक्त्व मूल है अनाश्रव और मोक्ष इसका सार है।

3. अपरिग्रही साधक किसी भी ग्राम नगर आदि को किसी भी दास दासी पशु वाहन सोना चांदी मकान जमीन जायदाद को सम्पत्ति को ग्रहण न करे, उसे अपनी न समझे, उसमें ममत्व मूर्च्छा न करे, किसी भी छोटे बड़े पदार्थ, व्यक्ति,

स्थान को मेरा मेरा ऐसा न कहे न समझे। संयम में आवश्यक ज्ञान दर्शन चारित्र में सहायक एवं शरीर के संरक्षक अत्यावश्यक उपकरणों पदार्थों के अतिरिक्त छत्र उपानह (जूता) आदि न रखे। दूसरों के चित्त को लुभान्वित करे, आकर्षित करे, ऐसे बहुमूल्य उपकरण भी न रखे।

4. आहार औषध भेषज आदि के लिए पुष्प, फल, बीज, कंद आदि कोई भी सचित्त पदार्थ ग्रहण न करें। क्योंकि श्रमण सिंहों के लिए तीर्थंकर भगवंतों ने ये सब सचित पदार्थ त्याज्य कहे हैं। इनके ग्रहण से जीवों की योनि का विनाश होता है अर्थात् जीव हिंसा होती है।

5. सुविहित परिग्रह त्यागी भिक्षु को अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ उपाश्रय में या अन्य घर में या जंगल में नहीं रखना चाहिए अर्थात् अपनी निश्रा में मानते हुए कहीं भी खाद्य पदार्थ नहीं रखने चाहिए।

6. अनेक प्रकार के एषणा दोषो, सावद्य कर्मों से युक्त आहार ग्रहण करना भी अपरिग्रही श्रमण को नहीं कल्पता है। 42 दोष के अतिरिक्त निम्न दोषों का भी वर्जन करना चाहिए। 1. रचित, 2. पर्यवजात, 3. दानार्थ, 4. पुण्यार्थ, 5. वनीपकार्थ, 6. श्रमणार्थ, 7. पश्चातकर्म 8. पूर्व कर्म, 9. नित्यकर्म, 10. अतिरिक्त, 11. मौखर्य, 12. स्वयं ग्रहण।

रचित बीज आदि निकालना, कूटना पीसना, आदि किंचित भी आरंभ जनक कार्य करके वस्तु तैयार करना।

पर्यवजात-वस्तु को सुधारना, ठीक करना, साफ करना, यथा- मूंगफली, चने साफ करके रखना आदि।

दान के लिए, पुण्य के लिए, भिखरियों के लिए और पांच प्रकार के भिक्षाचर श्रमणों को दाने देने के लिए, बनाया गया आहार।

आहारादि लेने के पहले या पीछे गृहस्थ द्वारा हाथ बर्तन आदि जल से धोना।

साधुओं को बहराना किसी ने नित्य कर्म बना लिया हो अर्थात् सदाव्रत की तरह नित्य दिया जाने वाला आहार।

उचित आहार की मात्रा से अधिक बहराना या अधिक लेना, जिससे कि पीछे कम पड़ने पर नया आरंभ किया जाय या सचित्त पदार्थ खाये जाय तथा साधु को ज्यादा मात्रा में खाना पड़े या परठना पड़े, यह अतिरिक्त दोष है।

वाचालता करके अर्थात् बहुत बातें करते हुए आहार लेना या देना।

स्वयं खाद्य पदार्थ लेना अर्थात् गृहस्थ की आज्ञा से स्वयं उनके बर्तन में से आहार लेना। पानी स्वयं के हाथ से लेने का विधान आचारांग सूत्र में है। अतः उसका यहां निषेध नहीं समझना।

7. इन दोषों से रहित 42 दोषों से रहित एवं नव कोटि परिशुद्ध आहार ग्रहण करना। आहार करते समय भोजन विधि के अर्थात् परिभोगेषणा के 5 दोषों का पूर्णतया परित्याग करना। छः कारण से ही आहार करना, कारण न हो तो आहार नहीं करना और आहार त्याग के छः कारण उपस्थित होने पर आहार नहीं करना अर्थात् आहार का त्याग करना।

8. सुविहित श्रमण को भगवंत की आज्ञा में विचरण करते हुए कभी विविध कष्टकारी मारणांतिक रोग आतंक उपस्थित हो जाय तो भी औषध-भेषज भक्तपान का संग्रह करना नहीं कल्पता है।

9. पात्र, पात्र झोली, पात्र केसरिका, पात्र रखने का मांडला, पटल (अस्तान), रजस्त्राण (गरणा), रजोहरण, गोच्छग (पूंजणी), चद्दर, चौलपट्टक, मुंहपति आदि ये साधु के प्रमुख (औघिक) उपकरण है। ये भी निर्दोष ग्रहण करना एवं राग द्वेष रहित धारण करना। इनका प्रतिलेखन यथा समय करना एवं इन्हें यतनापूर्वक उठाना, रखना और उपयोग में लेना। इस प्रकार ये उपकरण धारण करते हुए भी अपरिग्रह महाव्रत का पालन होता है।

10. आभ्यंतर परिग्रह त्याग- कषाय कलुषता, स्नेह, ममत्व, मोह, भाव, आसक्ति भाव, आकांक्षा लालसा से रहित बने। चंदन के समान समपरिणामी, हर्ष शोक से रहित बने, दीर्घ कषाय, रंज भाव, नाराजी आदि गांठो से रहित बने। सब के प्रति वात्सल्य भाव रखे, सरल बने। सुख-दुःख में निर्विषयी बने अर्थात् पौद्गलिक सुख या दुःख, कुछ भी होवे उसको अपना चिंतन अनुभव का विषय नहीं बनावे, उपेक्षा रखकर अपने संयम योगों में, स्वाध्याय, ध्यान, सेवा आदि में संलग्न रहे।

ऐसे द्रव्य भाव अथवा आभ्यंतर ब्राह्य परिग्रह से मुक्त पंच महाव्रतों का सम्यग् आराधन करने वाले श्रमण निर्गन्थ की अनेक उपमाएं है। यथा-

11. निर्ग्रन्थों की उपमाएं- शंख के समान निरंजण। कांस्य पात्र के समान निर्लेप कछुए के समान गुप्तेंद्रिय। कमल पत्र के समान संसार से अलग(निर्लेप) चन्द्र के समान सौम्य, सूर्य के समाप तेजस्वी। मेरु पर्वत के समान अड़ोल अकं प। समुद्र के समान गंभीर। पृथ्वी के समान सहनशील। गोशीर्ष चंदन के समान शीतल सुगंधित सांप के समान एकाग्र दृष्टि। सिंह के समान दुर्जय, भारंड पक्षी के समान अप्रमत्त। आकाश के समान निरावलंबन। पक्षी के समान स्वतंत्र। हवा के समान अप्रतिहत गति बेरोकटोक चलने वाला। इत्यादि 31 उपमाएं हैं।

12. ये अपरिग्रही श्रमण विचरण काल में छोटे गांवों में एक रात एवं नगरों में पांच रात से अधिक नहीं रहते हुए अनासक्त निर्मोह भाव से विचरण करे। यह श्रमणों का आदर्श मार्ग है। कल्प की अपेक्षा स्थविर कल्पी सामान्य साधु का विचरण काल में उत्कृ ष्ट कल्प 29 दिन का है। साध्वी का 58 दिन का है एवं पड़िमाधारी का एक या दो दिन का है। इससे अधिक पड़िमाधारी कहीं भी नहीं ठहरते। जिनकल्पी के लिए अर्थागम में वर्णन है कि वे संयम में एवं परिचर्या में बाधा न पड़े तो 29 दिन के पहले किसी भी क्षेत्र से विहार नहीं कर सकते?

इस सूत्र से अर्थ भ्रम भी होता है कि गांवों में सात दिन और नगरों में 29 दिन रहना कल्पता है किन्तु यह आगम सम्मत नहीं है। कल्प तो 29 दिन का ग्रामादि सभी क्षेत्रों का बृहत्कल्प सूत्र में बताया है।

पड़िमाधारियों के लिए यह सूत्र है ऐसा आशय कहना भी अनुपयुक्त है। क्योंकि उनके तो पांच रात्रि कहीं भी ठहरने का विकल्प होता ही नहीं है। एक या दो रात का ही विकल्प है।

अपरिग्रह महाव्रत की पांच भावनाएं-

इस अपरिग्रह महाव्रत की सुरक्षा के लिए भाव की अपेक्षा से पांच भावनाएं कही गई है। क्योंकि द्रव्य परिग्रह तो साधु के होता ही नहीं है। भाव में भी पांच इंद्रियों के विषय शब्दादि की आसक्ति, रागद्वेष का समावेश किया गया है।

प्रथम भावना-श्रोतेन्द्रिय संयम-

वादिंत्रों के शब्द, आभूषणों के शब्द, स्त्रियों के शब्द, हास्य रुदन आदि। प्रशंसा वचन, एवं ऐसे ही मनोज्ञ सुहावने वचन सुनने में साधु को आसक्त नहीं होना, अप्राप्त की आकांक्षा नहीं करना, लुब्ध नहीं होना, प्रसन्न नहीं होना। ऐसे मनोज्ञ शब्दों का स्मरण और विचार भी नहीं करना।

आक्रोश वचन, कठोर वचन, अपमानित करने वाले वचन, रुदन, क्रंदन, चीत्कार अभद्र शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए, हीलना निंदा नहीं करनी चाहिए, किसी को भला बुरा नहीं कहना चाहिए। इस प्रकार श्रोतेन्द्रिय संयम की भावना से भावित अंतः करण वाला बने।

दूसरी भावना चक्षु इन्द्रिय संयम-

अनेक प्रकार के आभूषण, वस्त्र, वस्तुएं, सजावट, दृश्य, ग्रामादि, भवन, महल, आदि, नर- नारी समूह, स्त्रियां, नृत्य, नाटक, खेल आदि सुहावनें रुपों में आसक्ति नहीं करना, उन्हें देखने के लिए लालायित नहीं होना।

अमनोज्ञ रुपों को देखकर घृणा भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए। द्वेष निंदा तिरस्कार भी नहीं करना चाहिए। इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय संयम की भावना से भावित अंतःकरण वाला बनना चाहिए।

तीसरी भावना घ्राणेन्द्रिय संयम- फूल, इत्र, खाद्य पदार्थ, धूप आदि अनेक सुगन्धित पदार्थों की खुशबू, फल चन्दन की सुगंध आदि नासिका को प्रिय लगने वाली सुगंध में आसक्त नहीं होना, उनकी चाहना नहीं करना, उनमें खुश नहीं होना किंतु उपेक्षा भाव रखना। कलेवर, गटर, पाखाना आदि दुर्गंध फैलाने वाले असुहावने पदार्थों में द्वेष घृणा नहीं करना किन्तु सुसंवृत होकर धर्माचरण करना।

चौथी भावना रसनेन्द्रिय संयम- अनेक प्रकार की मिठाइयां, लवण, रस युक्त पदार्थ, विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, विगय, महाविगय आदि मनोज्ञ पदार्थों में आसक्त नहीं होना उनकी चाहना नहीं करना। अनेक प्रकार के अमनोज्ञ खाद्य पदार्थों में घृणा निंदा द्वेष अप्रसन्नता नहीं करनी चाहिए।

पांचवी भावना-स्पर्शेन्द्रिय संयम-

शीतल मनोज्ञ कोमल सुहावने आसन शयन वस्त्र मालाएं शरीर को सुख और मन को आनंद देने वाले ऐसे सुहावने स्पर्शों में श्रमण को आसक्त नहीं होना चाहिए।

अनेक वध, बंधन, मार-पीट, उष्ण शीत कष्ट, कंटक, तीर, छेदन, भेदन, भूमि स्पर्श, तृणस्पर्श, कंकर, पत्थर इत्यादि अमनोज्ञ स्पर्शों में श्रमण रुष्ट नहीं होवे, निंदा न करे, अप्रसन्न नहीं होवे। इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय भावना से भावित अंतः करण वाला होकर संयम में विचरण करे।

उपसंहार– शब्द आदि पांचों इन्द्रिय विषय समय-समय पर प्राप्त होते रहते हैं। उससे इन्द्रियों को बंद करके या ढ़क करके नहीं रखा जा सकता किन्तु उनमें आसक्त नहीं होना, उनकी चाहना नहीं करना और राग और द्वेष दोनों विकृत भावों को न होने देना। उपेक्षा भाव तटस्थ भाव में लीन होकर इन्द्रियातीत बन कर संयम का सच्चा आनंद प्राप्त करना चाहिए।

नोट– विशेष जानकारी के लिऐ आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से संपादित एवं संस्कृति रक्षक सैलाना संघ से संपादित तथा अन्य भी अनेक संस्करणों वाले इस सूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

।। प्रश्न व्याकरण सूत्र का सारांश समाप्त।।

परिशिष्ट-1

भावनाओं का तुलनात्मक परिचय-

प्रथम महाव्रत- 1. आचरांग में चौथी भावना आदान-निक्षेप समिति है। पांचवी भावना है देखभाल कर आहार करना, 2. समवायांग में चौथी भावना-प्रकाश युक्त चौड़े स्थान में चौड़ें पात्र में आहार करना। पांचवी भावना आदान निक्षेपण समिति है। 3. प्रश्न व्याकरण में चौथी भावना परिपूर्ण ऐषणा समिति है अर्थात गवेषणा एवं परिभोगेषणा का पूर्णतया पालन करना। पांचवी भावना आदान निक्षेपण समिति है- सार-तीन भावना का क्रम समान है चौथी पांचवी में क्रम भेद है। समवायांग प्रश्न व्याकरण में समान क्रम है। एषणा समिति के विषय का कथन तीनों में भिन्न है।

तीसरा महाव्रत-

प्रश्न व्याकरण में- 1. निर्दोष उपाश्रय गवेषणा, 2. निर्दोष संस्तारक गवेषणा, 3. शय्या का परिकर्म त्याग, 4. साधारण पिंड विवेक से खाना, 5. साधार्मिक की विनय सेवा भक्ति करना। आचारांग में-1. निर्दोष उपाश्रय गवेषणा, 2. आज्ञा पूर्वक आहार करना, 3. उपाश्रय की सीमा का स्पष्टीकरण, 4. तृण काष्ठ आदि प्रत्येक चीज की आज्ञा लेना पृथक पृथक पुनः पुनः आज्ञा लेने का अभ्यास होना। 5. साधार्मिक के उपकरणादि आज्ञा लेकर ग्रहण करना।

समवायांग में- 1. निर्दोष उपाश्रय गवेषणा, 2. सीमा का स्पष्टीकरण, 3. तृण काष्ठादि की आज्ञा, 4. साधार्मिक के उपकरण की आज्ञा, 5. साधारण पिंड आज्ञा और विवेक युक्त खाना। सार- आचारांग समवायांग में विषय समान है क्रम भिन्न है। प्रश्न व्याकरण में विषय भी भिन्न है। क्रम भी भिन्न है।

चौथा महाव्रत-

समवायांग प्रश्न व्याकरण में क्रम एवं विषय समान है। आचारांग में क्रम भिन्न है। विविक्त शयनासन आचारांग में अंतिम है। और दोनों सूत्र में आदि में है अन्य कोई अंतर नहीं है।

दूसरा महाव्रत- तीनों सूत्रों में क्रम एवं विषय समान है। यथा- 1. विचार कर बोलना, 2. क्रोध त्याग, 3. लोभ त्याग, 4. भय त्याग, 5. हास्य त्याग।

पांच महाव्रत- तीनों सूत्रों में क्रम और विषय समान है। शब्दादि पाँच इंद्रिय विषयों की आसक्ति एवं चाहना का त्याग।

क्रम भेद होने में लिपि दोष की अधिक संभावना है तथा अपेक्षा से विवक्षा से एवं विस्तृत कहने से भी विषय भेद हो जाना संभव है।

साधु साध्वियों को पांच महाव्रत की इन 25 भावनाओं पर नित्य नियमित आत्म चिंतन करते रहना चाहिए।

पांच महाव्रत और पांच समिति संबंधित सूत्र में कहे सभी नियमों का इमानदारी से श्रद्धा पूर्वक दृढ़ता के साथ पालन करना चाहिए।

3. जो भी श्रमण शास्त्रोक्त इन विधि नियमों का द्रव्य आचार एवं भाव शुद्धि के आदेशों का, किंचित भी पालन नहीं करता है उसे स्पष्ट शब्दों में आगम कारों ने ''चोर-चोर'' इस संज्ञा से सूचित किया है। अतः साधकों को सदा यह चिंतन करना चाहिए कि यदि हमें चोर कहलाने में शर्म आती हो तो भगवदाज्ञा का चोर बनना भी नहीं चाहिए। क्योंकि चोर बनना और चोर कहलाने में शर्म करना यह नादानता है। अंदर बाहर एक होना यही साधना का सार है। जैसे हो वैसे दिखो सरल बनो।

परिशिष्ट-2 असत्य त्याग (कथा)-

बसंतपुर नाम का नगर था। वहां अरिमर्दन राजा राज्य करता था। मति सागर उसका प्रधान था। उस नगर में धनदत्त सेठ रहता था। अपने गुणों से उसने नगर भर में बहुत ख्याति प्राप्त की थी। उसके मणि सागर नामक पुत्र था, वह भी सभी लक्षणों एवं गुणों से सुसंपन्न था।

इकलौता पुत्र होने से उसे आजादी मिली हुई थी। दोस्तों के साथ घूमता फिरता था। उसके साथी लोग बुरे संस्कारों के थे। खोटी संगत से वह भी आवारा सा घूमने लगा। उस संगति में उसने चोरी करने का व्यसन ग्रहण कर लिया, अन्य दुर्गुणों से वह बचा रहा। चोरी के अवगुण में अत्यंत सिद्धहस्त हो गया और उसे यह आदत सी बन गई।

पिता को इस बात की जानकारी हो गई की मणिसागर चोरियां करके घर में सामान धन-संपत्ति भर रहा है। उसने उसे अपने पास बुलाया एवं बड़े प्यार से उसे अपने हृदय के उद्गार कहने लगा। बेटे। आजकल तुम क्या कर रहे हो, किस कमाई से घर भर रहे हो? बोलो अपने घर में क्या कमी है। धन दत्त के समझाने पर पुत्र ने उत्तर दिया। पिताजी में आपका पुत्र नहीं कपूत हूं। नालायक हूं। मैंने हमेशा चोरी करना और लोगों का खजाना खाली करना अपना प्रमुख कार्य बना लिया है। यह मैं धन लाभ से नहीं करता हूं परन्तु मेरी आदत बन गई है, अब मैं इसका त्याग नहीं कर सकता हूं। इसके अतिरिक्त और आप जो कहो वह सब स्वीकार कर सकता हूं।

पिता ने पुनः जोर देकर समझाने का एवं चोरी छुड़वाने का प्रयत्न किया किंतु सफलता नहीं मिली। सेठ ने विचार किया इस रोग का मूल कारण है कुसंगत। अतः सुसंगत ही इसका उपाय है। यह सोच कर पिता ने कहा कि हितकर वचन नहीं मानना यह ठीक नहीं है, फिर भी दूसरी बात तो मेरी मान ले। मणिसागर ने कहा- चोरी के अतिरिक्त आप जो आज्ञा दे वह सब मुझे स्वीकार है। किसी भी प्रकार की आनाकानी नहीं करूंगा।

सेठ ने उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा जानकर कह दिया कि मेरे मित्र मतिसागर राजा के प्रधानमंत्री हैं। रोज उनके पास जाओ और कुछ समय उनकी सेवा संगति करो। इसमें किंचित भी भूल नहीं करोगे, यह पक्का नियम ले लो, बस यह मेरी आखिरी कहना मान लो। मणिसागर ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। रोज सुसंगत में रहने लगा कुछ समय बाद धनदत्त चल बसा मणि सागर बड़ा आनंद से रहने लगा चोरियां करने का क्रम उसने जारी रखा। वह चोरी करने में इतना सिद्धहस्त बन गया

कि कोई भी उसका पता नहीं लगा सकता और ना उसे पकड़ सकता। प्रतिदिन नगर में चोरियां होने से लोगों ने मिलकर प्रधान के पास निवेदन किया। प्रधान ने चिंतन किया कि नगर में फिजूल बिना मर्यादा का खर्चा करने वाला कौन है। सोचते हुए उसे मणिसागर का ध्यान आया कि उसके कमाई कम है और ऊलजलूल खर्च है। अतः यहीं चोरों का सरदार है।

मंत्रीश्वर ने प्रेम से मणि सागर को अपने पास बिठाकर कहा कि मेरे मन में बड़ा आश्चर्य है कि क्यों तुम लोगों का धन हरण करते हो क्यों यह अधर्म कार्य करते हो? तुम्हारे पास बहुत दौलत पड़ी है, फिर यह व्यसन क्यों?

मणि सागर को बड़ा आश्चर्य हुआ दिमाग चक्कर खाने लगा कि मंत्रीश्वर को यह मालूम कै से पड़ गया? अब क्या करना? झूठ बोलूं तो भी यह बुद्धि निधान है, अनुभवी है, और झूठ चलेगा भी नहीं। यह सोच अपनी चोरी करने की आदत को स्वीकार कर लिया की आपका कथन सच्चा है परंतु यह दुर्व्यसनी आपका बच्चा है। मैं चोरी का पूरा आदी हूं अतः आप मुझे इसके लिए कभी ना कहना। मंत्री हैरान सा हो गया कि यहां अपने दुर्गुण पर भी अटल है, किंतु स्पष्ट वादी भी है। अतः मंत्री ने उसे कह दिया जाओ। अवसर पाकर तुम्हारा उचित उपाय किया जाएगा। मणिसागर के जाने के बाद मंत्री को खबर मिली कि नगरी में धर्मघोष आचार्य पधारे हैं, मंत्री बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने मणि सागर को सूचना करवा दी कि कल सुबह हम साथ में गुरु दर्शन के लिए जाएंगे। उसने बिना किसी आनाकानी के मंत्री का कथन स्वीकार किया।

प्रातःकाल होते ही दोनों गुरु दर्शन कर उनके समीप में यथा स्थान बैठ गए। अन्य भी नगर के लोगों से सभा स्थल भर गया। मुनिराज ने जनता की भावना देखकर व्याख्यान प्रारंभ किया। धर्म की दुर्लभता, त्याग व्रत का महत्व बताते हुए पांच आश्रवों का विषय लिया और क्रमशः चोरी पर उपदेश देने लगे।

चोर अपनी चतुराई से द्रव्य हरण कर आनंद पाते हैं किंतु जब कभी रंगे हाथ पकड़ा जावे तो फिर उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। वह सुख से नींद नहीं ले सकता। लुकना छिपना करता रहता है। अपयश कमाता है, लोगों को दुःख देता है, सब ही हाय, दुराशीष लेकर मरता है, वैर बंध करके दुर्गति में नानाविध दुःख पाता है।

यह सुनते- सुनते मणि सागर का चेहरा फीका हो गया। मंत्रीश्वर ने भी इशारा किया कि गुरुदेव का फरमान स्वीकार कर लेना अब ऐसा अवसर मत चूकना। हाथ जोड़ कर चोरी के पच्चक्खान कर लो। उसने स्पष्ट जवाब दे दिया कि एक बार कहो चाहे लाख बार, मैं इसे नहीं छोड़ सकता और कहो जो सब कुछ मान सकता, चाहे प्राण भी दे दूं ।

मंत्रीश्वर ने उसे वचनबद्ध करके गुरुदेव से झूठ बोलने का त्याग करवा दिया। मणिसागर ने भी दृढ़ नियम ले लिया। चोरी का कर्म उसका बराबर चलता रहा। जनता ने देखा मंत्रीश्वर ने सुनकर कुछ भी उपाय नहीं किया है, अब तो शिकायत राजा के पास करनी चाहिए। इकट्ठे होकर नगर के प्रमुखजन राजा के पास गए, अपनी व्यथा सुनाई। राजा ने आश्वासन दिलाया कि समझ लो आज से चोर गया, निडर होकर रहो।

रात्रि में वेष परिवर्तन कर पहरेदारी के लिए चला, चोर भी दो नौकर को साथ लेकर आज राजकोष में चोरी करने चला। संयोगवश मार्ग में राजा उन्हें मिल गया पूछा इतनी रात में कहां जा रहे हो ? कौन हो तुम? मणि सागर को झूठ बोलना

तो था नहीं उसने उत्तर दिया कि हम तीनों चोर हैं आपको कहना है सो कह दो और करना हो सो कर लो। राजा ने फिर पूछ लिया कि कहां चोरी करोगे यह भी बता दो। चोर ने निडरता से सच कह दिया कि आज राजा के भंडार में चोरी करेंगे। राजा मन ही मन बोलता है कि वहां कोई तुम्हारी नानी का घर है जो शीघ्र घुस जाओगे। राजा समझ लिया कोई पागल दिमाग के हैं। उन्हें मजाक से कह दिया जाओ जाओ यह पड़ा खास रास्ता समय मत गवांओं, जाओ तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं, रत्नों से भंडार भरे हैं। आज अमूल्य अवसर है बेड़ा पार कर लो। ऐसी मंगलवाणि राजा की सुनकर उसे शगुन मानकर, चोर खुश-खुश हो गए। राज भंडार के पास पहुंचे। पहरेदारों को नींद आ रही थी। वही उन्हें रोकने वाला नहीं मिला। मंत्रित जल डालकर ताले तोड़ अंदर प्रवेश किया। घूम घूम कर सारा धन देखा। तीन बड़ी पेटियां जेवरात की भरी देखी दो पेटियां लेकर दोनों नौकरों ने के सिर पर रखवा दी। बाकी सारा धन और खुले दरवाजे छोड़कर निकल गए। मार्ग में पुनः गस्त लगाते हुए वहीं राजा मिले पूछताछ की, राजा ने देख लिया कि इतने जल्दी राज भंडार से या अन्य कहीं से भी चोरी करके नहीं आ सकते। सच्चा उत्तर देने पर राजा समझ गया कि ये वही तीनों है। इन दिमाग फैलों से बातें करके व्यर्थ ही समय गंवाना है। ऐसा मन में सोच कर राजा ने कह दिया जाओ भाइयों खूब माल उड़ाओ चोरी का और मौज करो। चोर सत्य बोलने का फल देख लिया। राजा रात भर घूमता रहा कहीं भी चोर नहीं मिला। सुबह होते ही खबर मिली कि राज भंडार के ताले टूट गए हैं पहरेदार एवं खंजाचियों ने अपनी सारी वार्ता राजा को सुना दी। दो पेटी की जगह तीन पेटी की चोरी होने की बात जाहिर कर दी। राजा मन ही मन पछताने लगा कि सत्य बोल कर चोर मुझे भी ठग गया। समय पर मंत्रीश्वर आए राजा को चिंतातुर देखकर कारण पूछा राजा ने अपनी रात की सारी घटना सुना दी और कहा कि अब कोई ऐसी अकल लगाओ कि जिसे चोर सन्मुख आ जाए। मंत्री ने उपाय सोच कर कहा कि नगर के सभी लोगों को उपवन में बुलाओ फिर एक दरवाजे से सभी निकले और उन्हें पूछा जाए कि क्या व्यापार करते हो। नगर में घोषणा करवा दी गई सभी लोग आ गए मणिसागर भी सज धज कर आ गया एक एक करते हुए मणि सागर का नंबर लगा।

राजा उसे देख कर बड़े प्रेमधर पूछने लगा कि श्रेष्ठि पुत्र। आजकल क्या व्यापार करते हो। जवाहरात का व्यापार करते हो या आढ़त का, भाड़ा अथवा ब्याज से कमाई करते हो। मणिसागर अगर अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ था वह बोला- आपने जितने कार्य कहे हैं मैं उनमें का एक भी कार्य नहीं करता हूं। चोरी ही मेरा कार्य है, दूसरे व्यापारी सब मेरे लिए ही धंधा करते हैं, मुझे व्यापार करने की कोई जरूरत नहीं है।

राजा ने पूछा महीने में कितनी बार चोरी करते हो? उसने स्पष्ट उत्तर दिया कि 30 बार अर्थात् सदा ही चोरी करना मेरा प्रमुख कार्य है। उसकी स्पष्टवादिता पर राजा हैरान था। उसने पूछा अच्छा बताओ कल रात्रि में कहां चोरी की, कौन मिला और क्या चोरी की? उत्तर में सारी सत्य हकीकत बतादी। राजा ने पूछा यह चोरी करके सत्य बोलना कैसे सीखा। कह दिया गुरुकृपा हो गई, असत्य बोलने का त्याग कर दिया तब से सत्य बोलता हूं, प्राण भले ही क्यों ना निकल जाए। राजा ने उसे छोड़ दिया कल बुलाऊंगा। पुण्य और पाप दोनों को जितना अधिक छिपाया जाता है वह कई गुना बढ़ कर सामने आता है। राजा ने खजांचियों को बुलाया और पूछा बताओ कितनी पेटियां चोरी में गई? दबी जबान से सभी बोले तीन। राजा ने तलवार निकाल कर कहा सच बोलो नहीं तो अभी देता हूं तुमको जन्म नवीन। भय के मारे सत्य बात कह दी। राजा ने सभी खजांचियों को अत्यंत अपमानित करके देश निकाला दे दिया।

दूसरे दिन मणिसागर को बुलाया। सम्मान सहित राजा ने अपने पास से सिंहासन पर बिठाया और कहा कि अब यह चोरी करना भी त्याग कर दो। मणिसागर का वही उत्तर था जो अपने पिता और मंत्री को दिया था। तब राजा ने उसे प्रधानमंत्री का पद दिया, जिसे वचनबद्ध होने के कारण उसे स्वीकार करना ही पड़ा।

कुछ दिन बीतने के बाद एक समय राजा पूछ लेता है कहां मंत्री स्वर अब चोरी का धंधा कैसे चल रहा है? उसने कहा अब क्या खाक चोरी करूं, फुर्सत एक क्षण भी नहीं मिलती। राजसिपाही सदा साथ लगे रहते हैं। मुझे अकेले कभी भी कहीं भी नहीं जाने देते हैं।

कालांतर से वे ही धर्मघोष आचार्य वहां पधारे, उपदेश सुनकर मणि सागर ने 12 व्रत स्वीकार किए। श्रावक धर्म की शुद्धि आराधना की और देव गति को प्राप्त किया।

इस प्रकार सुसंगत पाकर और सत्य पर अटल रह कर मणि सागर ने अपने जीवन के अवगुण को भी गुण में परिवर्तित कर दिया एवं सुख का भागीदार बना। हमें भी उनके जीवन से दृढ़ सत्य प्रतिज्ञ बनकर आत्म कल्याण की साधना करनी चाहिए। असत्य का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।
जांके हृदय सांच है ताके हृदय आप ।।

परिशिष्ट-3

आत्मोत्थान के चिंतन कण एवं
आत्म शान्ति का सच्चा मार्ग
सोही उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।।

सरलता गुण से युक्त आत्मा की शुद्धि होती है। सरलता गुण से शुद्ध बनी आत्मा में ही धर्म ठहरता है।

-उत्तरा. अ. 3 गा. 11

सरलता गुण की प्राप्ति के लिये या कपट प्रपंच से अलग रहने के लिये निम्नोक्त बातों को स्मरण में रखना चाहिए।

1. मेरी आत्मा तो जानती ही है मेरे कपट झूठ को। 2. अरिहंत सिद्ध भगवान भी जान रहे हैं। 3. नये कर्म का बंध हो रहा है। 4. पाप छिपाया ना छिपे, छिपे न कर्म विपाक। दाबी दूबी ना कहे, रुई लपेटी आग। अर्थात छिपाया हुआ पाप का फल ज्यादा बढ़कर प्रगट होगा इस भव में या परभव में। 5. सफाई पेश कर दूसरों को भ्रम में रखना वास्तव में आत्मा के साथ ठगाई है। 6. इज्जत और यश रखने की भी मात्र भ्रमणा है। वास्तव में आत्मा भारी होकर ज्यादा बिगाड़ को प्राप्त करती है। 7. उच्च क्षयोपशम वाले बुद्धिमान अनुभवी सही बात को जान लेते है। 8. अपने अवगुण को ढंकने वाली आत्मा अंदर ही अंदर बड़ी अशांति को प्राप्त करती है। इस प्रकार के चिंतन से सरलता गुण को धारण करना चाहिए।

दृष्टांत- तपस्या के लिये की गई माया भी मल्लिनाथ भगवान के जीव को मिथ्यात्व में पहुंचा देती है और उसका फल स्त्री रुप से भोगना पड़ता है।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय णासणो।
माया मिताणि णासेई, लोहो सव्व विणासणो।।

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाशक है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी गुणों का नाशक है। -दशवैकालिक अ. ८

अपने अंदर रहे अनेक अवगुणों और गुणों की कमियों को बारंबार स्मृति व चिंतन में लेते रहने से मान की कमी रुप नम्रता अंतर में जागृत होती है। जिससे अपमान अपयश में भी कोई ग्लानि या अशांति नहीं होती है। निंदा या अपयश श्रवण की क्षमता बढ़ती है। तब से क्रोध के उत्पत्ति की जड़ कमजोर बनती जाती है।

अपने अनेक गुणों को सदकार्यो को भी बारंबार स्मृति में रखते रहने से मान की पुष्टि होती है। मान की मजबूती होते रहने से वह क्रोध व अशान्ति का प्रेरक होता है। निंदा या अपयश श्रवण की क्षमता नहीं बढ़ने देता है। अल्प अपमान या अपयश में भी ग्लानि व अशांति स्फुरित होती है।

क्रोध के मूल में मान छिपा रहता है, अतः मान की जड़ को पुष्ट न करते हुए कमजोर करते रहना चाहिए। अनेकों अधिक गुणवानों का चिंतन कर अंतरंग मन में स्वयं के अनेक छोटे -बड़े अवगुणों का स्मरण करते रहना चाहिए। साथ ही अपने को बहुत पिछड़ा व तुच्छ समझते रहना। ऐसे संस्कारों को सदा जागृत रखते रहना चाहिए। इस तरह से अपमान सहने की क्षमता बढ़ती ही जायेगी।

किसी के द्वारा आक्षेप लगा देने पर या गलती कहने पर अंतर मन में उसे महान् उपकारी समझना चाहिए। उसके वचनों को सही तरीके से व शुद्ध भावों से ग्रहण करना चाहिए।

फिर उसमें अपनी ही गलती सोचना और कुछ भी अंश में गलती ध्यान में आ जाना चाहिए।क्योंकि कहने वाला अपना समय शक्ति को निरर्थक व्यय करने रुप पागल दिमाग का प्रायः नहीं होता है। यह अपने मान संस्कार को अलग हटाकर सोचना चाहिए।

फिर भी कोई गलती ध्यान में न आवे तो भी अपने ऊपर से भार हटा दूं ऐसा सोचकर कोई जवाब न देना, सफाई पेश न करना, किन्तु भाव व वचन से आदर सहित उसके वचन को सुनकर रह जाना। मुस्कराहट मात्र से श्रवण कर सामने वाले को किसी भी प्रकार से अपमानित नहीं करना चाहिए।

यदि कहने वाला कुछ उत्तर की आशा से कहता हो, कुछ जानकारी या स्पष्टीकरण सुनना चाहता हो तो उसे उपकारी हितेषी समझते हुए, उस पर नाराज न होते हुए, किन्तु उसके प्रति प्रसन्नता के भाव रखते हुए, उनकी बात को आदर देते हुए, ऐसे उचित और सीमित शब्दों में कहना कि उसे समझ में भी आ जाय और वह भी किसी प्रकार के

अपमान का अनुभव न करे। किन्तु उसके कथन को मूल से ही उखाड़ फेंकने की कोशिश हो, ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अन्यथा दोनों की अशान्ति होना संभव रहती है।

यदि सामने वाला उत्तर न चाहे और अपने को जानकारी करानी हो तो उसके कथन पूर्ण होने पर उसे पूछ कर सुनने की इच्छा हो तो उपरोक्त सूचनाओं का ध्यान रखते हुए सीमित व शांत शब्दों में जानकारी दी जा सकती है। यदि कहने वाले की आत्मा उस समय शान्ति में न हो तो अन्य समय अवसर देख कर एकांत में प्रेम व आत्मीयता के साथ योग्य शब्दों से नम्रता के साथ कहा जा सकता है। योग्यता ही न हो या सुनना ही न चाहे तो अपने को संतोष रखकर उपेक्षा कर देनी चाहिए। माध्यस्थ भाव उपस्थित रखकर उस विषय या कार्य को परिवर्तित कर देना चाहिए अथवा प्रसन्न मुद्रायुक्त, क्षमा याचना युक्त, अनुनय के शब्दों से खुद अलग हो जाना या उन्हें अलग होने का कह देना चाहिए।

किन्तु कुछ भी अविवेक आवेश को प्रकट नहीं होने देना चाहिए। उनकी शिक्षा या उपालंभ या आक्षेप वचनों को निराधार करने के लिये विसंवाद नहीं करना चाहिए। ऐसा करना अपनी अयोग्यता व अशांति का प्रतीक होता है। उत्तर सुनने की जिज्ञासा हो तो अपना भाव या स्पष्टीकरण शान्ति से कहना चाहिये। अन्यथा सुना-अनसुना कर देना ही पर्याप्त होता है। ऐसा करने से अपना भविष्य उन्नत एवं शांत बनता है।

सभी को खुश रखना चाहिए किन्तु अपने वचन व्यवहार से किसी को अपमानित या अशांत न होना पड़े, यह ध्यान रखना अपना परम कर्त्तव्य समझना चाहिए।

व्यक्तियों में प्रायः गुण एवं अवगुण अनेकों होते हैं। किन्तु जिसकी जिस समय जैसी दृष्टि होती है, जैसा स्वयं का उपादान होता है तथा जैसी स्वयं की योग्यता होती है, तदनुसार उसे अनुभव हो सकता है।

अशांति या गुस्सा होने में दो कारण मुख्य बनते है- 1 निंदा आदि प्रवृत्तियों से स्वयं का मान भंग होने पर
2 दूसरों की गलती का चिंतन वेग मस्तिष्क में बढ़ जाने पर।

समाधान उपाय- 1. स्वयं की गलतियों व अवगुणों के समूह को स्मृति पट पर ताजा रखते हुए अंतरंग मान संज्ञा को मृत प्रायः रखना तथा अपने से अत्यधिक गुण वालों को स्मृति में रख कर स्वयं को अत्यन्त लघु दर्जे वाला सोचते रहना चाहिए।

2. दूसरों के सम्पर्क में आने वाले के गुण समूह से अपने मस्तिष्क को स्वस्थ रखना और दूसरों की गलती को अपने मस्तिष्क में संग्रहित होने ही नहीं देना। देखा सुना सभी को अनदेखा अनसुना कर देना। उपेक्षा के चिंतनों को उपस्थित रखना । यथा- ''अलग अलग क्षयोपशम होते हैं, अलग अलग स्वभाव और विवेक होता है, संसार के भोले प्राणियों से क्या क्या संभव नहीं हैं, जिसकी जैसी भवितव्यता है, किसी के कुछ भी व्यवहार फरसना से अपनी आत्मा को भारी नहीं बनाना है, गिरि सर दीसे मुकु र में, भार भीजवों नाय, दर्पण में पहाड़ का प्रतिबिंब आवे या समुद्र का, वह उससे भारी या गीला नहीं होता है। इसी तरह मुझे सावधान रहना है। दूसरों की गलती को सोचने में एवं चर्चा वार्त्ता करने में कोई भी शान्ति समाधि उन्नति संभव नहीं है, इत्यादि।''

अतः दूसरों की गलती रूप कचरे को शीघ्र ही एक तरफ अलग कर देना और स्वयं की सूक्ष्म उत्तम कमी को भी खोज कर सावधान रहना तथा सोचना कि उपादान कारण तो कुछ भी किसी भी प्रकार से मेरा ही है, तभी कोई संयोग मिला है और निमित्त भी किसी भी व्यवहार से मैंने ही बिगड़ा होगा उसे ही खोजना सोचना चाहिए साथ ही गंभीर तथा शांत रहना, स्वयं की प्रसन्न मुद्रा की हानि कभी नहीं करना चाहिए, अशांत नहीं बनना चाहिए यही अपनी समस्त साधना का सार है।

ज्ञानी व्यक्ति अवगुणों से स्वयं की रक्षा करता है और खुद की रक्षा के साथ अन्य को भी अवगुणों कर्मबंधों से बचा सकता है। ज्ञानी कभी असमाधि, संक्लेश, मानसिक दुःख का अनुभव नहीं करता है। वह सदा शांत प्रसन्न एवं गंभीर रहता है। चंदन वृक्ष तो सुगंध से भरा होता है, काटने पर भी सुगंध देता है कोई द्वेष से काटे तो भी वही व्यवहार रखता है। वैसे ही ज्ञानी आत्मा सदा शांति ही शांति बिखेरता है। अशांति एवं अप्रसन्नता उसमें होनी ही नहीं चाहिए। तभी ज्ञानादि साधनाओं की सही सफलता है।

कोई ज्ञानी होकर भी अशांत या असमाधि में उपस्थित हो जाता है तो उसकी वह ज्ञान आराधना सही नहीं है, विधि से प्राप्त नहीं है या विधि से उसका आत्म परिणमन नहीं है या उसका विधिपूर्वक उपयोग करना उसे नहीं आता है। जैसे कुत्ते के गले में रत्नों का हार, गधे पर चंदन का भार उसके लिए उपयोगी नहीं होता है। उल्टा ग्रहण किया शस्त्र अहितकर हो जाता है उसी तरह उसका ज्ञान उसे लाभदायक ना होकर नुकसान कारी भी हो जाता है। मान और अशांति वर्धक हो जाता है। अपने को सुपात्र ज्ञानी बनाएं रखकर समाधि मय शांत एवं प्रसन्न ही रहना चाहिए किंतु अपात्र ज्ञानी की गिनती में न आवें यह ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि उत्तरा. अ. 29 में कहा है कि श्रुत ज्ञान की आराधना करने वाला कभी संक्लेश प्राप्त नहीं करता है।

विनय (नम्रत) जिन शासन का मूल है, विनय ही मोक्ष तक पहुंचाने वाला है। विनय सहित क्रिया ही धर्म व तप की गिनती में होती है। विनय रहित आत्मा को कोई तप या धर्म प्राप्ति संभव नहीं है।

विणओं जिण सासण मूलो, विणओं निव्वाण साहगो।
विणओं विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो।।

किसी के द्वारा किसी प्रकार की शिक्षा, उपालंभ या प्रेरणा या भूल अवगुण बताए जाने पर उसे सुनकर जो गुस्सा करता है उस व्यक्ति से नाराज होता है, उसे अपमानित करता है और स्वयं असमाधि को प्राप्त करता है । वह व्यक्ति मानव घर में आती कोई लक्ष्मी को डंडे के जोर से बाहर से धकेलता है। कहा भी हैं :-

विणयम्मि जो नवाएण, चोइयो कु प्पइ णरो।
दिव्य सो सिरिं एज्जंति डंडेण पडिसेहए।। -दशवै.अ.9

कभी भी किसी समय अपनी शांति भंग होने का आभास हो तो स्वयं की आत्मा का, प्रकृति का, विचारों का, दमन करना। दूसरे के ऊपर आदेश,हुक्म, करने में शांति संभव नहीं रहती हैं। कहा भी है-

अप्पाचेव दमेयव्वो।

अप्पा दंतों सुही होई, अस्सि लोए परत्थ य।। -उत्तरा.अ. 1

आत्मा का ही दमन करना चाहिए- आत्मा दमन करने वाला ही इस भव एवं परभव में सुखी होता है। अतः खुद के स्वभाव को क्षमता को, परिवर्तन परिवर्धन करना चाहिए किंतु दूसरे के स्वभाव को मुड़ा कर आत्म शांति पाने के लिए परेशान और अशांत नहीं होना चाहिए।

अतः अपनी इच्छाओं का दमन करना मन में कर्मों का विचार करना कि मेरे कृत कर्मों के परिणाम से यह अवसर उत्पन्न हो रहा है, इन परीक्षा की घड़ियों में महा निर्जरा का लाभ, शांति के द्वारा होने वाला है। बांध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां न छूड़ाया। इस तरह आत्म चिंतन एवं आत्मदमन पूर्वक संयम के आनंद में रमण करना, एकत्व भावना आदि आत्मानंद अनुभवते रहना चाहिए, धधकते जाज्वल्यमान अंगारे भी आत्मानंद को नहीं छीन सकते, विकराल राक्षस तनिक भी अशांत तक नहीं कर सकता, यदि खुद की ज्ञान चिंतन शक्ति सावधान है।

निमित्त रूप में आने वाले वाचिक या कायिक कचरे के ग्राहक ही नहीं बनना चाहिए किंतु ऐसा विचार करना कि जैसा इनका और अब मेरा उदय भाव एवं फरसना है वह हो रहा है मैं क्यों अशांत चिंतन करु। इसका जैसा स्वभाव है वैसा ही व्यवहार कर सकता है - जैसी जापे वस्तु है वैसी दे दिखलाएं। उसका बुरा ना मानिए, वो लेन कहां पर जाए ।। मेरे यदि अशुभ कर्म, अपयश, अशांत आदि का उदय है तो अधैर्य अशांति करने की अपेक्षा धैर्य एवं शांति से ही काम लेना लाभप्रद होगा।

जो जो पुदगल फरसना निश्चय फरसे सोय।
ममता समता भाव से कर्म बंध क्षय होय।।

मुझे नए कर्मबंध नहीं बढ़ाना है । मैं अपनी सावधानी शांति में मस्त रहूं। जो जैसा करेंगे वैसा भुगतेंगे। मैं किन-किन गलती रूप कचरे को अपने दिमाग में भरुं। प्रत्येक के पुण्य पाप अलग-अलग है, क्षयोपशम भी न्यारे न्यारे हैं, अपने उदय के आधीन होकर प्राणी फिर नए कर्म बांध रहे हैं, क्षमा के पात्र हैं, दया के पात्र हैं, खुद ही दुखी होने का भविष्य बना रहे हैं। उन्हें मैं कुछ कह कर विशेष दुखी क्यों बनाऊं? मरते को और मारकर मैं क्यों पाप कर्म का भागी बनूं ये सोच कर उसे माफ कर देना। उसके गलती रूप कचरे को अपने दिमाग में स्थान देना ही नही, निकाल फेंकना, उपेक्षा करके भुला देना। सुना अनसुना, देखा अनदेखा कर देना। अपने उपादान कर्म को मुख्य करके निमित्त को गौण समझ कर अपनी शांति सुरक्षित रख लेना।

किसी के प्रति अपने दिमाग में नाराजगी नहीं आने देना। आ जाए तो रहने नहीं देना, निकाल देना। गुण अवगुण प्रत्येक प्राणी में होते हैं, मैं किस-किस के दोष देखूं। अपने अशुभ कर्मों का उदय हो तो अच्छा व्यक्ति भी खराब व्यवहार कर सकता है। एक व्यक्ति अनेक के साथ मित्र सा व्यवहार करता है, वही किसी के साथ खराब व्यवहार भी कर सकता है। मुझे अपनी आराधना के लिए किसी के प्रति नाराजगी और प्रसन्नता नहीं दिखाना है, क्षमा कर देना है और किसी भी

तरह शीघ्र शांति भाव तैयार कर लेना है और यदि कभी कहीं वचन प्रयोग आदि रूप से अपनी गलती हुई हो तो अशुभ दशा से मेरी गलती हुई ऐसा स्वीकार करते हुए अन्य की आत्मा को शांति पहुंचाते हुए क्षमा याचना करके उभय की शांति कर लेना चाहिए। खुद ने वचन काया कुछ भी अशुभ नहीं किया हो तो उसे मन से क्षमा कर देना और अपनी शांति रखना ही पर्याप्त समझ लेना। यदि वचन काया खुद में भी अशुभ प्रवृत्त किए हो तो जागृति आने के बाद पश्चाताप युक्त उसमें क्षमा मांगना भी आराधना के लिए आवश्यक होता है। अतः क्षमा करना तथा आवश्यक हो तो क्षमा मांगना नाराजी न रखकर प्रसन्न हो जाना। प्रत्येक प्राणी के प्रति शुभ भाव, शुभ व्यवहार करना, यहां तक की अहित करने वाले को आत्म हितैषी (निर्जरा निमित्तक) मान कर, हो सके तो उसका भी और उपकार ही करना। अपकार और अहित तो कभी किसी का सोचना ही नहीं।

किसी के निमित्त से या बिना निमित्त कायिक और मानसिक कैसा भी दुःख आवें, घबराना नहीं चाहिए किंतु यह विचार करना चाहिए कि-

न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सइ।।

मेरा यह दुःख सदा रहने वाला नहीं है। दशवै. चूलिका 1, विचारे कितने प्राणी असंख्य वर्षों तक भयंकर दुःख भुगत रहे हैं तो मेरा या मानसिक या कायिक दुःख तो कितना है? अर्थात बहुत कम है। इसे तो धैर्य एवं ज्ञान आत्म से पार पाना बहुत सरल है। इसमें घबराने की आवश्यकता नहीं है।

पलिओवमं झिज्झई सागरोवमं, किं पुण मज्झ इमं मणो दुहं।।

इस प्रकार जिनवाणी रुपी संबल के द्वारा अपनी आत्मा की दुःख से सुरक्षा करनी चाहिए। सदा समभाव रूप आत्म समाधि में रमण करते हुए सुख का भी अनुभव करना चाहिए।

राई मात्र घट बध नहीं, देख्या केवल ज्ञान।।

यह सोचकर आन्तर्ध्यान से दूर रहना चाहिए और स्वाध्याय ध्यान में ही लीन रहना चाहिए।

दूसरों के द्वारा अशुद्ध व्यवहार किए जाने पर या करने की संभावना में दुःखी या अशांत न होना। दूसरों की प्रकृति व्यवहार कैसा भी हो वह सावधान ज्ञानी आत्मा का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। अपने शुभ कर्मों का उदय है तो कुछ नहीं होगा। उनका व्यवहार भी अच्छा बन जाएगा। सुखी रहने का सही उपाय आत्मा आत्मदमन ही है।

शांति से सहन करने में निर्जरा और परम आनंद प्राप्त होता है। प्रतिकार करने में कर्म बंध और दुःख परंपरा की वृद्धि होती है। किसी भी प्राणी को अपने वाणी या काया से दुःख पहुंचाना पाप है। अतः स्वयं को शांत सहनशील क्षमावान बना लेना पर्याप्त है, आप भला तो जग भला तथा एक ही साधे सब सधे अर्थात स्वयं आत्मा की शांति रखना आत्मा दमन करना सीख लिया, यह साधना कर ली तो सभी क्रिया कि स्वतः ही सफलता होने वाली है। कोई कोई अशुद्ध व्यवहार

वाला दुष्ट प्रकृति से ही पेश आवे, कुछ भी सुनना समझना न चाहे या समझने के लिए पूर्ण अयोग्य आत्मा हो तो उस पर अपार करुणा का श्रोत बहाकर अशुद्ध व्यवहार तनिक भी नहीं करना चाहिए।

जब कभी बिल्कु ल अबोध बालक या पागल व्यक्ति सामने आकर अनर्गल प्रलाप या आक्षेप करदे या कायिक कष्ट देवे तो कुछ भी अशान्ति प्रायः नहीं होती और हम अपना बचाव व उपेक्षा करके निकल चलते है। ठीक उसी तरह ऐसे खराब प्रकृ ति के व्यक्ति का प्रसंग आने पर भी सुना-अनसुना करना, उपेक्षा करना, गम खाना, शांत रहना, प्रतीकार की भावना न आने देना, क्षमा कर उससे निवृत्त हो जाना। मध्यस्थ व करुणा भाव रखकर सब कुछ भुला देना।

उसके प्रति भी शुभ विचार ही करना कि बिचारे अशुभ उदय के जोर में बहे जा रहे है, अज्ञान से दुखी बन रहे हैं, इनके शुभ कर्म का उदय होकर इन्हें सद्बुद्धि पैदा हो, अपना हित सोच कर शांत और सुखी बने ऐसी सद्भावना ही अपने हृदय में आने देना। मेरे तो अशुभ कर्मों का उदय है जो मैं इसे समझा कर सही मार्ग पर नहीं ला सकता हूं। यह मेरी लाचारी है। फिर भी ज्ञान के द्वारा अपनी सुरक्षा तो कर सकता हूं। मेरे अशाता वेदनीय का उदय प्रबल है या अपयश नाम कर्म का उदय होने से यह संयोग मिला है।

बांध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां न छड़ाय।।

इस प्रकार समभाव पूर्वक सिंह वृत्ति (मूल कर्म को देखना) से सहन कर लेना चाहिए। किन्तु कभी भी श्वानवृत्ति नहीं करना चाहिए कि इसने मेरा ऐसा कर दिया, यह क्यों कह दिया, निंदा कर दी, आक्षेप लगा दिया, अपमान कर दिया, मै ऐसा कर दूं, यह कर सकता हूं इसका इलाज कर दूं, इत्यादि नहीं सोचना। स्वयं के कर्मोदय मूल है, यही सोचना। यही वीतराग वाणी मिलने का सार है। सदा परदृष्टि हटा कर स्वदृष्टि बना कर आत्मगुणों का विकास करते हुए आत्म शान्ति प्राप्त करना चाहिए।।

परिशिष्ट-4

पर सुधारक बनने के लिए-

आत्म साधना, आत्म शांति, यह साधना का मुख्य हेतु है। फिर भी अपनी साधना से खुद का हित साधते हुए अन्य का हित साधा जाय तो वह आत्म लाभ और निर्जरा का हेतु है।

किसी को शिक्षा या उपालंभ देने की योग्यता हर कोई में नहीं होती है। उसका तरीका भी हर कोई को नहीं आ सकता, तथा ऐसे पुण्यकर्म भी स्वयं के होना प्रत्येक व्यक्ति के लिये संभव नहीं है। अतः अपनी पूर्ण योग्यता मालूम पड़ने पर ही यह कार्य किया जा सकता है।

व्यक्ति में पात्रता कितनी है यह देख कर ही शिक्षा दी जाती है और अपनी योग्यता और सद्भावना तैयार की जाती है। परिणाम उल्टा आने पर उस व्यक्ति पर नाराजी के भाव न आने चाहिए, उसके प्रति सद्व्यवहार या निंदा करने रुप अवगुण अपने आचरण में नहीं आना चाहिए। उस व्यक्ति के गुणों का पलड़ा अपने दिमाग में भारी बनाकर अनुकंपा भाव

युक्त क्षमा करके उसके प्रति कलुषित विचार तनिक भी नहीं आने देना चाहिए किन्तु अपनी असफलता का खेद होना चाहिए।

सामने वाले की समाधि कायम रह सकेगी या नहीं इसका भी पूरा ख्याल होना चाहिए। मेरे द्वारा इसका हित ही होगा ऐसी पूर्ण आशा होनी चाहिए। अन्यथा उपेक्षा कर देना हितकर होता है। सामने वाले व्यक्ति के हृदय में अपने प्रति कैसा स्थान है यह जान लेना भी आवश्यक होता है। यदि अपने प्रति उसके रोष भाव है, नाराजी है, अपनी अनेक प्रवृत्तियों से वह खिन्न है, अपने बोलने मात्र से ही जिसे चिड़चिड़ाट (अशांति) होती है, ऐसे व्यक्ति को कुछ भी कहना आदि कार्य तो मात्र अपनी गलत आदत का पोषण करना ही होता है। ऐसी अयोग्य आत्मा के लिये अपना समय व शक्ति का उपयोग कर दोनों का अहित करना समझदारी नहीं है। आगमों में ऐसे व्यक्ति को समझाना दुष्कर कहा है।

कहा भी है- **दीनी पण लागी नहीं, रीते चूल्हे फूंक, गुरु बिचारा क्या करे, चेले में है चूक।।**

बिना अग्नि के खाली चूल्हे में फूंक देने वाला अपने मुख को राख से भरता है और हंसी का पात्र बनता है। उसी तरह अयोग्य व्यक्ति के लिये किया गया पुरुषार्थ भी हानिकर होता है। उपादान के बिना निमित्त से लाभ नहीं हो सकता।

स्वयं को भी सद्भावना और सद्व्यवहार के द्वारा दूसरे के हृदय में स्थान प्राप्त करना चाहिए। उनके प्रति पूर्ण आत्मीयता और हित भावना होनी चाहिए। शांतिपूर्वक और मृदु शब्दों का प्रयोग करने का अभ्यास होना चाहिए। हृदय में अनुराग आदर भाव रहना चाहिए। तभी पात्रता का विचार करके दी गई शिक्षा सफल कार्य कर सकती है तथा उससे निर्जरा और उभय की शांति का लाभ हो सकता है।

स्वयं की योग्यता बनाये बिना या सोचे बिना हर कोई सुधारक बनने की चाहना कर ले, अपनी योग्यता को शुद्ध करने का कुछ भी लक्ष्य न रखे तो वह स्वपर का अहित साधने वाला होता है। उसे तो स्वचिंता ही कर के आत्म शांति का उपाय करना चाहिए।

शिक्षा देने का या गलती बताने का तरीका उपालंभ रुप में नहीं होना चाहिए। आक्रोश वचन रुप न होना चाहिये। अनेकों के सामने नहीं कहना चाहिए। किन्तु एकांत में शांत वचनों से शिक्षा रुप में होना चाहिए। गलती करने के कुछ समय बाद में शांत प्रसंग देख कर कहना चाहिये। कहने में वाक्य का प्रारम्भ उसके प्रतिसद्भावना व्यक्त करने से या उसके गुण कथन से होना चाहिए। उसके हित की या उन्नति की आकांक्षा बताते हुए होना चाहिए। या शुभ परिणाम का लाभ बताते हुए होना चाहिए।

अत्यन्त आवश्यक होने पर योग्यता देखकर तत्काल भी कहा जा सकता है। पूर्ण योग्य पात्र हो तो आवश्यक होने पर किसी भी तरह कहा जा सकता है।

विचार यह रहे कि इनकी यह प्रवृत्ति सुधरे, मैं कुछ सहयोगी बन सकूं। ऐसा सोच कर सही तरीके से मदद करना। स्वयं को सुधारक न समझ कर मददगार समझना। शक्ति अनुसार कर्त्तव्य पालना करना तथा अपने समभाव को अक्षुण्ण रखना।

मित्ति में सव्व भूएसु।

संसार के समस्त प्राणियों के साथ मेरी मित्रता है यह भाव सदा बनाये रखना चाहिये। इति शुभम्।।

परिशिष्ट-5

विविध-श्रमण-गुण-प्रेरणा

- ✲ आगमांश- समयाए समणो होई -उत्तरा 15
- ✲ अप्पमत्तो परिव्वए -उत्तरा 6

पमत्ते बहिया पास अप्पमत्ते सया परक्कमेज्जासि-आचा. अ. 5 उ. 2 उट्ठिए नो पमाए -आचा. अ. 5 उ. 2

- ✲ जयं चरे जयं चिट्ठे -दशवै. 4
- ✲ अदु इंखिणिया हु पाविया -सुय. अ. 2 उ.2
- ✲ सव्वामगंधं परिण्णाय निरामगंधो परिव्वए -आचा. श्रु. 1 अ. 2 उ. 5
- ✲ णाणेण मुणि होई -उत्तरा 25
- ✲ बंभचेरेण बंभणो -उत्तरा 25
- ✲ सोहि उज्जुयभूयस्स -उत्तरा 3
- ✲ अमायं कु व्वमाणे वियाहिए -आचा. अ. 1 उ. 3
- ✲ खंत्तिक्खम -उत्तर. 21, खमासमणो -आव.
- ✲ अणिकओ परिव्वए -उत्तरा 2
- ✲ तेण वुंच्चति साहुणो -दश. 1, साहवो तो चियतेण -दश. 5

भावानुवाद-

1. समन- सदा समभावी बनो, विषम भाव दूर रखो।
2. श्रमण- आलसी मत बनो उद्यमशील बनो, अप्रमत्त भाव में लीन करो। प्रमत्त भाव से दूर रहो।
3. संयत- 6 काया जीवों की यतना से प्रत्येक प्रवृत्ति करो।
4. निर्ग्रन्थ- राग, द्वेष, कलुषता, घृणा, निंदा, नाराजी की गांठे छोड़ों।
5. भिक्षु- गवेषणा विधि में उपेक्षा न करो, ईमानदारी रखो।
6. मुनि- ज्ञान की उत्कृष्ट खप रखो, स्वाध्याय में लगे रहो।
7. ब्राह्मण- ब्रह्मचर्य का शुद्ध पालन करो। कम खाओ। तप करो।

8. ऋजु (अंजु)- साफ दिल सरल स्वभाव रखो, कपट प्रपंच छोड़ो।

9. क्षमाश्रमण- शांत बनो, क्षमा करो, गम खाओ, सहन करो।

10. अणगार- घर रहित बनो। मेरे घर मेरे गाँव ऐसा मत करो।

11. साधु- श्रेष्ठ कर्तव्य करो। किसी का बुरा मत करो।

अकरणीय-

1. किसी भी गांव घर या गृहस्थ में ममत्व न करें अर्थात् उन को मेरे-मेरे न कहें।

2. विभूषा वृत्ति न करे अर्थात् अच्छा दिखने हेतु शरीर उपकरण को नहीं सजावें एवं संग्रह वृत्ति भी न करें।

3. किसी भी साधु से घृणा न करें, स्वयं शिथिलाचारी न बने।

4. किसी की निंदा तिरस्कार न करें।

5. कभी भी शोक संताप न करें।

करणीय-

1. बाड़ सहित ब्रह्मचर्य का शुद्ध पालन करें।

2. आहार-पानी, मकान, पाट, वस्त्र-पात्र आदि की शुद्ध गवेषणा करें।

3. गमनागमन आदि प्रवृत्ति विवेकपूर्ण रखें, ऊपर से न फेंके।

4. भाव और भाषा को सदा पवित्र रखें अर्थात् मृदुभाषी, पवित्र हृदयी, सरल शांत स्वभावी बने। सदा प्रसन्न रहें।

5. आगम स्वाध्याय वाचना आदि की वृद्धि करें। एकत्व भावना एवं तपस्या में लीन बने रहें। आगमों को अर्थ सहित कण्ठस्थ करे।

विपाक सूत्र

प्रथम श्रुतस्कंध- दुःख विपाक-

प्रथम अध्ययन

मृगापुत्र- प्राचीनकाल में मृगग्राम नाम का नगर था। वहां विजयक्षत्रिय नामक नरेश था। मृगादेवी उसकी रानी थी। मृगारानी ने ऐसे जीव को जन्म दिया, जो महान पाप कर्मों के उदय से प्रभावित था। वह जन्म से ही अंधा और बहरा था। उसके आंख, कान, नाक, हाथ पांव आदि अवयव थे ही नहीं, केवल उनके निशान थे। शर्म के मारे एवं पति की आज्ञा से मृगादेवी उसका गुप्त रूप से पालन-पोषण करती। एक भोंयरे में उसे बंद करके रखा था। उस कुमार को गर्भ में ही भस्मक नामक व्याधि हो गई की, जिससे आहार करने के तुरन्त पश्चात उसके शरीर से पीप शोणित बन कर बाहर आ जाता था।

रानी का यह प्रथम पुत्र था। उसके बाद में चार पुत्र और हुए। जो सुंदर सुडौल और रूप संपन्न राजकुमार थे।

मृगापुत्र को देखने गौतम स्वामी का आगमन :- एक बार उस नगरी में भगवान महावीर स्वामी पधारे। परिषद् मे राजा भी था तो एक दीन हीन जन्मान्ध व्यक्ति भी आया था। जिसे अन्य व्यक्ति छोटी गाड़ी में बिठाकर खींचकर इधर-उधर ले जाता था । उसे देखकर गौतमस्वामी ने पूछा भंते! ऐसा दुःखी प्राणी और भी कोई है? उत्तर में भगवान ने भोंयरे में रहे मृगापुत्र का वर्णन किया। गौतम स्वामी को उसे देखने की भावना हुई एवं भगवदाज्ञा लेकर चले।

मृगारानी ने आदर देकर भिक्षा के असमय में आने का कारण पूछा। गौतम स्वामी ने अपना मन्तव्य ज्ञात कराया। मृगारानी ने अपने चार सुंदर सुसज्जित पुत्रों को उपस्थित किया। गौतम स्वामी ने स्पष्ट किया कि मेरा प्रयोजन इन पुत्रों से नहीं किन्तु गर्भ गृह (भोंयरे) में रखे तुम्हारे प्रथम पुत्र से है।

मृगारानी ने साश्चर्य पूछ लिया कि मेरी इस गुप्त बात को आपने किस रहस्य ज्ञानी से जाना? उत्तर में गौतम स्वामी ने भगवान महावीर के अतिशय ज्ञान का परिचय देते हुए कहा कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य भगवान महावीर स्वामी हैं उनके द्वारा मैंने जाना है और उसे देखने आया हूं।

मृगारानी ने उसके भोजन का गाड़ा भर साथ लिया और गौतम स्वामी को साथ लेकर भोंयरे के पास पहुंची। दरवाजा खोलते ही असह्य दुर्गन्ध आई। दोनों ही नाक ढंक कर अंदर गये, मृगारानी ने उस पुत्र के पास आहार रखा। बड़ी आसक्ति से शीघ्र ही उसने सारा आहार खा लिया। तत्काल वह आहार परिणमन होकर खून और रस्सी के रूप में बाहर आया उसे भी वह चाट गया। यह लोमहर्षक वीभत्स एवं दयनीय दृश्य देखकर गौतम स्वामी भगवान महावीर की सेवा में लौटे। उसकी दुर्दशा का कारण पूछा- तब भगवान ने उसके पूर्व जन्म का विवरण इस प्रकार बतलाया-मृगापुत्र का **पूर्वभव-इकाई राठोड़-** भारतवर्ष में शतद्धार नरेश का प्रतिनिधि विजयवर्द्धमान नामक खेट का शासक '' **ईकाई**'' नामक राष्टकूट (राठोड़) था। यह राष्टकूट अत्यन्त अधर्मी, अधर्मानुयायी, अधर्मनिष्ठ, अधर्मदर्शी, अधर्मप्रज्वलन, एवं अधर्माचारी था। आदर्श शासक में जो विशिष्टताएं होनी चाहिए उनमें से एक भी उसमें नहीं थी। इतना ही नहीं, वह प्रत्येक दृष्टि से भ्रष्ट और अधम शासक था। सब तरह से प्रजा का अधिक से अधिक उत्पीड़न करने में ही वह आनंदानुभूति करता

था। वह रिश्वतखोर था और निरपराध जनों पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें तंग किया करता था। रात-दिन पाप-कृत्यों में तल्लीन रहता था।

तीव्रतर पापकर्मों के आचरण का तात्कालिक फल यह हुआ कि कुछ समय के पश्चात् उसके शरीर में एक साथ सोलह कष्टकारी असाध्य रोग उत्पन्न हो गए। इन रोगों के फलस्वरूप **''हाय-हाय''** करता वह चल बसा। अपने पापों के विपाक को भोगने के लिए वह प्रथम नरक में नारक के रूप में उत्पन्न हुआ। नरक में एक सागरोपम की लम्बी आयु भोगने के पश्चात् वह मृगापुत्र के रूप में जन्मा है।

मृगापुत्र का भविष्य-

मृगापुत्र के अतीत की यह कहानी सुनने के बाद गौतम स्वामी ने उसके भविष्य के विषय में पूछा। भगवान ने मृगापुत्र का भविष्य बतलाते हुए फरमाया- 1. यहां से छब्बीस वर्ष की आयु पूर्ण कर प्रथम नरक में उत्पन्न होगा। 2. वहां एक सागरोपम तक नरक के दुःख भोग करके सिंह की पर्याय में जन्म लेगा। इस पर्याय में भी वह अतीव अधर्मी होगा। 3. सिंह-पर्याय का अन्त होने पर वह पुनः प्रथम नरक में जन्मेगा। 4. नरक से निकल का सरीसृप-रेंग कर चलने वाला जन्तु होगा। 5. तत्पश्चात् दूसरे नरक में उत्पन्न होगा। 6. फिर पक्षी योनि में जन्म लेगा। 7. पश्चात् तीसरी नरकभूमि में। फिर 8. पुनः सिंह पर्याय में। 9. तदनन्तर चौथी नरक में। फिर उरगजाति में। 10. पांचवें नरक में। 11. स्त्री के रूप में पापाचार सेवन कर, 12. छठी तमः प्रभा नरक भूमि। 13. मनुष्यपर्याय में- नर के रूप में अधर्म सेवन कर, 14. तमस्तमः प्रभा नामक सातवीं नरक में। तदनन्तर लाखों बार जलचर जीवों की साढ़े बारह लाख कुलकोटियों में। तत्पश्चात् चतुष्पदों में, उरपरिसर्पों में,भुजपरिसर्पों में, खेचरों में चतुरिन्द्रियों में तेइन्द्रियों, बेइन्द्रियों में, कटुक रस वाले वनस्पति-वृक्षों में, वायुकाय, अप्काय, तेजस्काय, तथा पृथ्वीकाय में लाखों-लाखों बार उत्पन्न होकर मृत्यु को प्राप्त करेगा। इतना दीर्घकालिक भवभ्रमण करने और असीम-अपार वेदनाएं भोगने के अनन्तर बैल के रूप में जन्मेगा। तत्पश्चात् उसे मनुष्यभव की प्राप्ति होगी। मनुष्य भव में संयम की आराधना करके प्रथम स्वर्ग में उत्पन्न होगा। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

प्रेरणा एवं शिक्षा-

1. शासन के माध्यम से प्राप्त सत्ता का दुरूपयोग करने वालों, रिश्वतखोरों, प्रजा पर अनुचित कर भार लादने वालों और इस प्रकार के पापों का आचरण करने वालों के भविष्य का यह एक निर्मल दर्पण है। आज के वातावरण में प्रस्तुत अध्ययन और आगे के अध्ययन भी अत्यन्त उपयोगी और शिक्षाप्रद है।

2. पति की आज्ञा से मृगारानी ने दुःस्सह दुर्गन्ध युक्त उस पापी पुत्र की भी सेवा परिचर्या की थी। यह कर्तव्य निष्ठता एवं पतिपरायणता का अनुपम आदर्श है।

3. पापी अधर्मिष्ठ जीव स्वयं दुखी होता है एवं अन्य को भी दुःखी करता है। जैसे खाद्य सामग्री में पड़ी मक्खी।

4. सत्ता के नशे में या अपने पुण्यवानी के नशे में, व्यक्ति कुछ भी परवाह नहीं करता है। भविष्य का या कर्म बंध का विचार भी नहीं करता है। फिर भी दुःखदायी परिणामों को तो उसे भोगना ही पड़ता है।

अतः छोटे बड़े किसी भी प्राणी को मानसिक वाचिक या कायिक कष्ट पहुंचाना स्वयं के लिए दुःख के पहाड़ तैयार करना है। यथा इक्काई राठोड़ के जीव की अमानवीयता एवं सारा अभिमान, क्रूरता आदि मृगालोढे के दुःख मय जीवन में और अनेक दुःखी भवों के रूप में परिवर्तित हो गए।

संयम ग्रहण करने के बाद भी जो अपने ज्ञान और क्रिया तथा पुण्यवानी में उन्मत्त होकर अपना उत्कर्ष करते हैं और हीन भावों से दूसरों का अपकर्ष निंदा (तिरस्कार) करके आनंद मानते हैं एवं अपने द्रव्य चारित्र में ही प्रमत्त भावों से पर पीड़ाकारी भाव या भाषा का प्रयोग करते हैं। उन्हें प्रस्तुत अध्ययन पर चिंतन कर जीवन को सम्यग् और शांत बनाना चाहिए।

5. मृगारानी धर्मनिष्ठा थी किन्तु भगवान महावीर का सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने का पूर्ण परिचय उसे नहीं हुआ था।

6. सौंदर्यपूर्ण दृश्यों को देखने की आसक्ति साधु के लिए अकल्पनीय है। किन्तु गंभीर ज्ञान, अनुप्रेक्षा, अन्वेषण आदि हेतु से जानने देखने की जिज्ञासा होना अलग वस्तु है। दोनों को एक नहीं कर देना चाहिए। पुद्गलानंदी एवं इन्द्रियाशक्ति से साधु को बचना चाहिए। किन्तु गंभीर ज्ञान एवं अनुप्रेक्षा के माध्यम के लिए बहुश्रुत-गीतार्थ के निर्णय एवं निर्देशानुसार किया जा सकता है। यथा-गौतम स्वामी आज्ञा लेकर मृगापुत्र (मृगा लोढ़ा) को देखने अकेले ही रानी के साथ भोंयरे में गये।

7. परवश पणे जीव कैसे वीभत्स दारूण कष्ट सहन कर लेता है। यह जानकर जो व्यक्ति ज्ञान एवं वैराग्य से तप व सयंम के नगण्य कष्टों को सहन कर ले, वह सदा के लिए जन्म मरणरूपी दुःख संकट के सांसारिक चक्कर से छूट जाता है।

दूसरा अध्ययन

उज्झितक-

वाणिज्यग्राम में विजयमित्र सार्थवाह के उज्झितक नाम का पुत्र था। वह सर्वांग सुंदर एवं रूप सम्पन्न था। समय संयोग से उज्झितक के माता-पिता दोनों ही कालधर्म को प्राप्त हो गये। धन विनष्ट हो गया। कुछ लोगों ने और राजकर्मचारियों ने उसे घर से बाहर निकाल दिया।

उज्झितक दुर्व्यसनों में- वह उज्झितक सार्थवाह पुत्र नगर में भटकता हुआ अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों का शिकार बन गया। जुआ खेलना, शराब पीना, चोरियां करना आदि प्रवृतियों में समय व्यतीत करते हुए वह कामध्वजा वैश्या के वहां पहुंच गया। वहां वह वैश्या के साथ सुखपूर्वक मनुष्य सम्बन्धी विषय भोगों का उपभोग करने लगा।

एक समय वहां के मित्र नामक राजा की रानी के उदर शूल रोग उत्पन्न हो गया तब राजा ने उस उज्झितक को वैश्या के घर से निकलवा दिया और स्वयं कामध्वजा गणिका के साथ मानुषिक विषय भोगों का उपभोग करने लगा।

उज्झितक भी वैश्या में आशक्त बना कभी मौका देखकर पुनः वहां पहुंच गया और गुप्त रूप से भोग भोगते हुए रहने लगा।

उज्झितक पर राजा का कोप- एक बार राजा ने उसे वहां देख लिया। गुस्से में राजा ने कर्मचारियों द्वारा उसे पकड़वा लिया एवं शूली पर चढ़ा देने का आदेश दे दिया। राजा के आदेशानुसार राजकर्मचारी उसे बांधकर, विभिन्न प्रकार से मारपीट करते हुए, नगर में घुमाते हुए ले गए और अंत में उसी दिन शूली पर चढ़ा दिया।

उस समय भगवान महावीर स्वामी का वहां पदार्पण हुआ। गौतम स्वामी बेले का पारणा करने हेतु भिक्षा लेने नगर में गये। मार्ग में उन्होंने नाक-कान कटे हुए, हाथों को मोड़कर पीठ पीछे रस्सी से बांधे हुए, बेड़ियां पहिने, शरीर का तिल-तिल जितना मांस तोड़ कर उसे खिलाया जा रहा था अथवा पक्षियों को खिलाया जा रहा था, सैकड़ों पत्थरों चाबुकों से मारे जाते हुए उस उज्झितक को देखा। भगवान की सेवा में पहुंचकर उन्होंने उसकी वीभत्स दुःखमय अवस्था का कारण पूछा।

भगवान ने उसके पाप कृत्य युक्त पूर्व भव का इस प्रकार वर्णन किया-

उज्झितक का पूर्व भवः इस जम्बूद्वीप में हस्तिनापुर नामक नगर था। सुनंद वहां का राजा था। उसके बहुत ही बड़ी गौशाला थी। जहां अनेक पशु निर्भय होकर रहते थे और वहीं प्रचुर भोजन पानी पाते थे। उसी नगर में भीम नामक कोतवाल रहता था जो अधर्मिष्ट स्वभाव का था।

एक बार उसकी पत्नी उत्पला ने पाप बुद्धि वाले एक पुत्र को जन्म दिया उसका नाम गौत्रासक रखा। उसका मुख्य स्वभाव पशुओं को दुःख देना, मारना, काटना, हीनांग कर देना था। वह हमेशा अर्द्धरात्रि में उठ कर गौशाला में जाता और पशुओं को संत्रस्त करके आ जाता था एवं उसी में आनंद मानता था। साथ ही मांस एवं मदिरा के सेवन में मस्त रहता था।

इस प्रकार के क्रूर आचरण वाला वह 500 वर्ष की आयु पूर्ण कर दूसरी नरक में उत्पन्न हुआ। वहां से तीन सागर की स्थिति पूर्ण कर यहां यह उज्झितक कुमार बना और अपने पूर्वकृत अवशेष कर्मों को इस प्रकार दारूण दुःख के रूप में भोग रहा है।

उज्झितक का पूर्व वृत्तांत सुनकर भविष्य के विषय में गौतम स्वामी ने पूछा। भगवान ने उज्झितक का भविष्य बतलाते हुए फरमाया-

आगामी भव- 1 आज ही शाम को 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर शूली पर मृत्यु को प्राप्त करेगा। 2. प्रथम नरक में जन्म लेगा फिर 3. पापीष्ट बंदर बनेगा, तदनंतर। 4 वैश्या पुत्र प्रियसेन नामक .कृत नपुंसक होगा। वहां इक्कीस वर्ष की उम्र में मर कर 5. प्रथम नरक में उत्पन्न होगा एवं मृगापुत्र के समान नरक तिर्यंच गति में भव भ्रमण करेगा। 6. अंत में भैंसा बनेगा। 7. वहां से काल करके श्रेष्ठि पुत्र होगा। 8. सयंम पालन कर प्रथम देवलोक में जाएगा। 9. वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

प्रेरणा-शिक्षा-

1. जन्म-जन्मांतर तक भी पापाचरण के संस्कार चलते रहते हैं। इसी प्रकार धर्म संस्कारों की भी अनेक भव तक परम्परा चलती है।

2. मांसाहार में आसक्त व्यक्तियों की एवं निरपराध भोले पशुओं को संत्रासित करने वालों की, उस भव में और भवोभव में विचित्र विडंबनाएं होती है।

बूचड़ खाने खोलने वाले एवं चलाने वाले कितने भी मस्त दिखाई देते हो किंतु वे निश्चित ही कर्म फल प्राप्ति के समय दीन-हीन एवं दुःखी अवस्था प्राप्त करेंगे।

3. संसार में **''जिसकी लाठी उसकी भैंस''** की उक्ति प्रचलित है, वह यहां घटित हुई है। राजा ने कामध्वजा वैश्या को अपने स्वाधीन रखने के लिए उज्झितक को उसके घर से निकलवा दिया और अंत में मृत्युदंड की सजा भी दे दी।

4. निमित्त कुछ भी हो सकता है किन्तु मूलभूत कारण स्वयं के पूर्वकृत कर्मों का उदय तो रहता ही है। उज्झितक भी पूर्व पापों के तीव्र उदय से ही राजा द्वारा दंडित किया गया था।

5. कथा की विभिन्न घटनाओं को जानकर विरक्ति एवं अनुभव की वृद्धि करनी चाहिए। किन्तु किसी भी घटना को पढ़ने सुनने में खुशी नाराजी या राग-द्वेष अथवा हर्ष-शोक नहीं करना चाहिए किंतु गंभीर चिंतन पूर्वक स्वजीवन के सुधार की प्रेरणा लेनी चाहिए।

तीसरा अध्ययन

अभग्नसेन- प्राचीन काल में पुरिमताल नामक नगर था। महाबल वहां का राजा था। नगरी से कुछ दूर चोरपल्ली थी। जिसमें विजय चोर 500 चोरों का सेनापति रहता था। वह महा अधर्मी था। खून से उसके हाथ रंगे रहते थे। पुरिमताल नगर के लोगों को एवं अन्य आसपास के लोगों को वह संत्रस्त करता रहता था। उसके काल धर्म प्राप्त हो जाने पर उसका पुत्र अभग्नसेन चोरों का सेनापति बना। वह भी पिता के समान अति क्रूर एवं अधर्मी था।

अभग्नसेन चोर को पकड़ने के उपाय- एक बार नगरवासियों ने संत्रस्त होकर महाबल राजा से अभग्नसेन चोर सेनापति की शिकायत की। राजा ने अपने कोतवाल को आदेश दिया- ''चोर पल्ली पर आक्रमण कर दो और जीवित ही अभग्नसेन को पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो।'' कोतवाल सेना सहित गया, युद्ध हुआ, चोरों की जीत हुई। कोतवाल ने आकर राजा से निवेदन किया और कहा कि शक्ति से उसे पकड़ना संभव नहीं है।

राजा ने उसे धोखे से पकड़ने का निर्णय लिया। उसके चोरों को अनेक प्रकार की सामग्री भेजने लगा। फिर सेनापति को भी समय-समय पर अमूल्य भेंट भेजने लगा। एक बार दस दिन का प्रमोद महोत्सव मनाया, जिसमें चोरों को भी आमंत्रित किया। चोर सेनापति ने पुरिमताल नगरी में आना स्वीकार किया। सम्मानपूर्वक उसे ठहरने का स्थान दिया गया। फिर उसके डेरे पर खाद्य सामग्री एवं अनेक विशिष्ट मदिराएं भेजी। चोर खा पीकर मस्त हुए, नशे में बेभान बने। तब राजा ने अवसर देखकर नगर रोध करके उसे पकड़वा लिया।

अभग्नसेन की दुर्दशा- बंधन से बुरी तरह बंधे हुए अभग्नसेन को अनेक प्रकार के प्रहारों से दंडित करते हुए नगर में घुमाया। 18 चौराहों पर उसकी दुर्दशा की गई। उसके माता आदि अनेक पारिवारिक जनों को उसके ही सामने

चौराहों में मारकर उनका मांस उसे जबरन खिलाया गया और खून पिलाया गया। अठारह चौराहों पर ऐसा दृश्य करके उसके समस्त स्वजन परिजनों को मौत के घाट उतार दिया गया और फिर उसे भी सूली पर चढ़ा दिया गया।

गौतम स्वामी भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए किसी चौराहे में उसकी ऐसी दुर्दशा देख कर भगवान से जाकर पूछने लगे कि वह पुरुष ऐसे वीभत्स महान दुःखों का भागी क्यों बना, क्या पाप उसने पूर्व भव में किए ? भगवान ने गौतम स्वामी से उसका पूर्व भव इस प्रकार कहा-

पूर्वभवः इसी पुरिमताल नगरी में ''निर्णय'' नामक अण्डों का व्यापारी रहता था। वह अनेक प्रकार के पशुओं पक्षियों के अंडों का व्यापार करता था। वह अंडों को भून कर पका कर अनेक नौकरों के द्वारा राज मार्ग में बिक्री कराता था और स्वयं भी उन पके अंडों को खाने में और शराब पीने में आनंद का अनुभव करता था।

इस प्रकार की पापमय प्रवृत्ति करते हुए एक हजार वर्ष की आयु पूर्ण होने पर बहुत पापकर्मों से भारी बना हुआ, वह तीसरी नरक में उत्पन्न हुआ और वहां से सात सागरोपम की आयु पूर्ण कर, यह अभग्नसेन चोर सेनापति बना है। राजा के द्वारा छल पूर्वक पकड़ा जाकर आज महान् दुःख मय वेदना पा रहा है।

अभग्नसेन का भविष्य- अतीत की कहानी सुनने के बाद भविष्य जानने की जिज्ञासा गौतम स्वामी को हुई। पूछने पर भगवान ने अभग्नसेन का भविष्य इस प्रकार बतलाया-

1. आज ही शूली पर सेंतीस वर्ष की उम्र में मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगा। 2. फिर मृगापुत्र के समान भवभ्रमण करेगा। 3. अंत में बनारस में सूअर बनेगा। 4. शिकारियों द्वारा मारा जाकर श्रेष्ठी पुत्र होगा। 5. संयम स्वीकार कर देवलोक में उत्पन्न होगा। 6. फिर महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगा।

प्रेरणा-शिक्षा-

1. अंडों का व्यापार एवं आहार, पंचेन्द्रिय की हिंसा, शराब का सेवन, इन प्रवृत्तियों वाला जीव प्रायः नरकगामी ही होता है।

2. चोर्य वृत्ति भी पापकारी प्रवृत्ति है। चोरों का यह जीवन भी भयाक्रांत और संकट पूर्ण रहता है और परभव तो महान् अंधकार पूर्ण ही होता है।

3. विवेकी पुरुष इन अवस्थाओं में बचे एवं प्राणियों से शिक्षा लेकर धर्म मय जीवन बनाकर शीघ्र ही संसार भ्रमण से मुक्त होने में प्रयत्नशील बनें।

चौथा अध्ययन

शकट कुमार- साहंजणी नाम की नगरी में महाचन्द्र राजा के सुषेण नामक प्रधान था। उसी नगरी में सुभद्र सार्थवाह के शकटकुमार नामक पुत्र था जो सुंदर एवं रूप सम्पन्न था। दुर्भाग्यवश उसके माता-पिता दोनों ही काल कर गये। उज्झितक के समान इसे भी घर से निकाल दिया गया। भटकता हुआ वह उसी नगरी में सुदर्शना वैश्या के यहां पहुंच गया एवं वहीं पर भोगों में आसक्त होकर रहने लगा।

एक बार सुषैन मंत्री ने वैश्या के घर से उसे निकलवा दिया एवं वैश्या को अपनी पत्नी के रूप में रख लिया।

कभी मौका देखकर वह शकटकुमार भी मंत्री पत्नी वैश्या के घर में प्रविष्ट हो गया अर्थात् सुदर्शना के पास पुनः पहुंच गया। संयोगवश मंत्री का वहां आना हो गया। शकट रंगे हाथ पकड़ा गया। मंत्री ने उसे राजा के पास उपस्थित किया और कहा कि इसने मेरे अंतःपुर में प्रवेश करने का अपराध किया है। राजा ने उसका दंड प्रधान के सुपुर्द कर दिया। शकट और सुदर्शना दोनों को बांध कर चौराहों में मारते पीटते नगर में घूमाया गया।

गौतम स्वामी का नगरी में भिक्षार्थ पदार्पण हुआ। दोनों की दुर्दशा देखी। भगवान की सेवा में पहुंच कर घटना का वर्णन किया एवं दयनीय दशा का कारण पूछा। भगवान ने उसके पूर्व भव का वर्णन इस प्रकार किया-

पूर्वभव- इस भारतवर्ष में छगलपुर में छण्णिक नामक कसाई रहता था जो धनाढ्य एवं अधर्मी था। स्वयं वह सैंकड़ों हजारों पशु रखता था। मुख्यतः उसके बकरों के मांस का व्यापार था फिर भी मृग, गाय, बैल, खरगोश, सूअर,सिंह, मयूर, महिष आदि का मांस भी बेचता था।

पशुओं के मांस को पकाकर वह नौकरों के द्वारा नगर में बिक्री करवाता था। स्वयं भी पकाए गये मांस को खाने में एवं मदिरा आदि के सेवन में तत्पर रहता था। ऐसे पाप कर्म की प्रवृत्तियों के आचरण को उसने अपना सर्वोत्तम कर्तव्य समझ रखा था। अतः क्लिष्ट कर्मों का उपार्जन कर, सात सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर, चौथी नरक में उत्पन्न हुआ। वहां दस सागरोपम की उम्र तक कष्टमय जीवन बिता कर यहां यह शकटकुमार बना है। वैश्या में आसक्त होने से एवं पूर्वकृत कर्मों के उदय से उसकी अब यह दुर्दशा हुई है।

भविष्य- 1. चैराहों में घूमाकर दोनों को वध स्थान में ले जाया जाएगा और वहां तप्त लोह प्रतिमा से आलिंगन कराया जाएगा। इस प्रकार आज ही मर कर दोनों प्रथम नरक में उत्पन्न होंगे। 2. वहां से निकल कर दोनों मातंग कुल में युगल रूप में उत्पन्न होंगे। दोनों का नाम वहां पर भी शकट और सुदर्शना रखा जाएगा। यौवनवय प्राप्त होने पर दोनों भाई-बहिन, पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे। वहां भी वह शकट अनेक पाप कर्मों का उपार्जन कर प्रथम नरक में उत्पन्न होगा।

3. फिर मृगा पुत्र के समान संसार भ्रमण करते हुए अंत में मच्छ बन कर मारा जाएगा। 4. वहां से श्रेष्ठी पुत्र बन कर संयम ग्रहण करेगा। 5. फिर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा। 6. वहां से महाविदेह में जन्म लेकर मुक्त हो जाएगा।

प्रेरणा शिक्षा-

1. इस अध्ययन में भी मांसाहार, पंचेन्द्रिय वध, वैश्या गमन, एवं मद्यपान आदि दुर्व्यसनों का कटु परिणाम बताया गया है। अत्यंत भाग्यशाली जीवों को ही व्यसन मुक्त जीवन प्राप्त होता है।

2. व्यसनी व्यक्ति के लिए धर्माचरण दुष्कर और दुर्लभ होता है। अतः हमें स्वयं का जीवन तो पूर्ण व्यसन मुक्त रखना ही चाहिए, साथ ही अपने परिवार के बालक-बालिकाओं को बचपन से व्यसन मुक्त रहने की प्रेरणा एवं हिदायत करते रहना चाहिए। बचपन में दिए गये संस्कार प्रायः जीवन भर रहते हैं।

3. दुर्गति एवं नरक गमन में प्रमुख कारण दुर्व्यसन ही है। दुर्व्यसनी व्यक्ति के सद्‌गति की आशा रखना केवल स्वप्न देखने के समान है। व्यसन ये हैं-

1. जुआ, शिकार (पंचेन्द्रिय हिंसा) मांसाहार, मदिरापान, वैश्या, परस्त्री, चोरी।

2. भांग, बीड़ी सिगरेट, ताश, सिनेमा, गुटका, जरदा, तम्बाकू, इत्यादि का सेवन भी व्यसन विभाग ही है। चाय, काफी, पान आदि का प्रतिबद्ध और अमर्यादित सेवन भी व्यसन के अन्तर्गत समझना चाहिए।

पांचवां अध्ययन

वृहस्पति दत्त-

कोशम्बी नगरी में शतानीक राजा के उदायन नामक राजकुमार था। सोमदत्त वहां का राजपुरोहित था। उसके वृहस्पतिदत्त सर्वांग सुंदर पुत्र था।

राजा के काल धर्म को प्राप्त हो जाने पर उदायन राजा बना और वृहस्पतिदत्त पुरोहित बना। वह पुरोहित उदायन राजा का बाल मित्र भी था। पुरोहित कर्म करता हुआ वह राजा के सभी स्थानों में इच्छानुसार बेरोकटोक गमनागमन करने लगा। अंतःपुर में भी समय असमय में जाने लगा।

इस प्रकार अंतःपुर में बार बार जाते जाते कभी वह राजरानी पद्मावती देवी में आसक्त हो गया और उसके साथ यथेच्छ भोग भोगते हुए समय व्यतीत करने लगा।

किसी समय उदायन राजा ने प्रत्यक्ष उसे पद्मावती देवी के साथ देख लिया। प्रचंड क्रोध में लाल होकर राजा ने उसे मृत्युदंड ''**शूली**'' का आदेश दिया। राजा के आदेश के अनुसार उसे विकट बंधनों से बांधकर बुरी तरह मारते-पीटते, स्वयं का मांस तोड़ तोड़ कर खिलाते हुए एवं यह घोषणा करते हुए, नगर में धुमाया। ''**वृहस्पतिदत्त**'' स्वयं के अपराध से एवं कुकर्म से दुःखी हो रहा है इसे कोई भी दुःख नहीं दे रहा है स्वयं ही दुःखी बन कर मर रहा है।

प्रभु महावीर के प्रथम शिष्य गौतम अणगार ने गोचरी में भ्रमण करते हुए इस प्रकार के दारूण दृष्य को देखा तो उन्हें जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उपाश्रय में आकर भगवान से वह दृष्ट निवेदन करके उस व्यक्ति के इस प्रकार दुःखी होने का कारण पूछा। उत्तर में भगवान ने इस प्रकार फरमाया-

पूर्वभव- प्राचीन काल में सर्वतोभद्र नामक नगर था। वहां जितशत्रु राजा के महेश्वरदत्त नामक पुरोहित था। वह राजा की राज्य वृद्धि के लिए हमेशा एक-एक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के बालक का हृदय निकाल कर उससे शान्ति होम करता था। अष्टमी, चतुर्दशी को दो-दो बालक चैमासी को 4-4 बालक छम्मासी को 8-8 बालक, और संवत्सरी को सोलह-सोलह ब्राह्मण के, क्षत्रिय के, वैश्य के और शूद्र के बालकों का हृदय निकालवा कर उससे शान्ति होम करता था। राजा कभी किसी युद्ध के लिए प्रयाण करता तब वह बृहस्पति दत्त 108-108 ब्राह्मण आदि के पुत्रों का होम करता था। संयोगवश ऐसा करने से राजा सदा विजयी रहा एवं कभी संकट में नहीं फंसा। इसलिए राजा को उस पर विश्वास हो गया था।

इस प्रकार के अति रूद्र, वीभत्स पाप कर्म करते हुए उसके तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये।

अंत में अधार्मिक क्लिष्ट परिणामों में काल करके पाप कर्मों से भारी बना वह पांचवीं नरक में गया। वहां सत्तरह सागरोपम जितने काल तक उसने नरक की महान् यातनाएं भोगी। वहां से मरकर यह वृहस्पतिदत्त पुरोहित बना है। अपने पूर्व कृत अवशेष कर्म भोग रहा है।

भविष्यः आज ही शाम को 64 वर्ष की उम्र में शूली पर मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगा। क्रमशः सभी नरकों में और एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियों में मृगापुत्र के समान भव-भ्रमण करेगा।

अंत में हस्तिनापुर में मृग होगा। जाल में फंस कर मारा जाएगा।

वहां से मर कर श्रेष्ठिपुत्र होगा। संयम लेकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा। फिर महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगा।

प्रेरणा-शिक्षा-

1. होशियार एवं रूप सम्पन्न जीव भी जब गुप्त रूप से घोर पाप कर्म सेवन करता है, तो एक दिन उसके पाप का घड़ा अवश्य फूट जाता है। तब फिर अचिन्त्य कष्टों का शिकार होकर पश्चाताप करता है एवं दुःखी होता है। कहा भी है-

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हंसाय।।

2. रूई में लपेटी हुई आग जिस तरह छिप नहीं सकती, उसी तरह गुप्त पाप भी एक दिन कई गुना होकर प्रकट हो जाता है।

3. पाप कर्म जीव को भवों भव दुःख देते रहते हैं। अतः मनुष्य भव, बुद्धि विवेक को पाकर उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए। जीवन को सुंदर एवं धार्मिक बनाना चाहिए। जिससे इस भव, पर भव, भवोभव में शान्ति एवं सुख की प्राप्ति हो सके।

छठवां अध्ययन

नंदीवर्द्धन-

मथुरा नगरी में श्रीदाम नामक राजा राज्य करता था। उसके नन्दिवर्द्धन नाम का पुत्र था। वह सर्वांग सुंदर एवं लक्षण सम्पन्न था। उसे यथा समय युवराज बना दिया गया किन्तु राजा श्रीदाम की उम्र लम्बी थी। अतः युवराज साठ वर्ष का हो गया तो भी उसे राज्य नहीं मिला।

राज्य लिप्सा उसकी तीव्रतम हो उठी। उसने राजा के मरण की वांछा शुरू कर दी एवं मारने के उपाय भी सोचने लगा। कोई अन्य उपाय न मिलने पर उसने राजा के हजामत करने वाले नाई को आधे राज्य का लोभ देकर राजा के गले में छुरा भोंक देने का सुझाव दिया।

नाई ने एक बार स्वीकार तो कर लिया किन्तु फिर डर गया और भय के मारे उसने जाकर राजा से सारा वृतान्त कह सुनाया। राजकुमार पर अत्यन्त कुपित हुआ और उसे पकड़वा कर मृत्युदंड घोषित कर दिया।

राज पुरुषों द्वारा बांधा जाकर उसे अनेक कष्ट (यातनाएं) देते हुए राज मार्ग में घुमाया गया। चौराहे पर उसे तप्त सिंहासन पर बिठाकर लोहे, तांबे व शीशे आदि के अत्युष्ण जल से सिंचन करते हुए उसका राज्याभिषेक किया। लोहे की तप्त हार मालाएं पहिनाई।

ऐसा दारूण दुःख वह वहां भोग रहा था। उस समय गौतम स्वामी का उधर से निकलना हो गया। कष्टमय महान् दुःखी उस मनुष्य को देख कर उन्हें विचार उत्पन्न हुआ एवं भगवान के समीप पहुंच कर निवेदन करते हुए उसके दुःखी होने का कारण पूछा। उत्तर में भगवान ने उसके पूर्व भव का इस प्रकार कथन किया-

पूर्वभव में दुर्योधन जेलर- सिंहपुर नगर में सिंहरथ राजा राज्य करता था। उसके दुर्योधन नाम का एक जेलर था, जो महान अधर्मी एवं संक्लिष्ट परिणामी था। उसके पास दंड देने के अनेक प्रकार के साधन मौजूद थे, जिनके नाम सूत्र में विस्तार से दिए गये हैं।

राज्य के अपराधी, चोर, लुटेरे, घातक, लम्पट आदि कोई भी व्यक्ति जेल में आते, उन्हें वह निर्दयतापूर्वक अनेक प्रकार से रोमांचकारी यातनाएं देता था।

1. किसी को हाथी, घोड़े, ऊंट, भैंसे, बकरे, आदि जानवरों के मूत्र का पान करवाता। 2. किसी को तप्त तांबा, लोहा व शीशा आदि पिला देता। 3. किसी को विभिन्न प्रकार के बंधनों से मजबूत बांधकर दुःख देता। सांकलों से बांधता शरीर को मोड़ता सिकोड़ता, शस्त्रों से चीरता फाड़ता। 4. किसी को चाबुक आदि से मार मार कर अधमरा कर देता। हड्डियां तुड़वा देता, चूर-चूर करवा देता। 5. उल्टे लटकवा कर गोते खिलवाता, छेदन करता, क्षार मिश्रित तेलों से मर्दन करवाता। 6. अनेक मर्म स्थानों में कील ठुकवा देता। 7. हाथ पांव की अंगुलियों में सूईयां ठुकवा कर उससे भूमि खुदवाता। 8. गीले चमड़े से शरीर बंधवा कर फिर धूप में बिठाता और फिर चर्म सूखने पर उसे खुलवाता।

इस प्रकार के बहुत पापकर्म करते हुए उसके 3100 वर्ष व्यतीत हुए एवं मरकर छट्ठी नरक में उत्पन्न हुआ। वहां से 22 सागरोपम तक दुःख भोग कर यह राज पुत्र नंदिवर्द्धन बना। यहां भी यह अवशेष कर्म भोग रहा है।

आज ही 60 वर्ष की वय में मर कर प्रथम नरक में जाएगा एवं घोर दुःख भोगते हुए संसार भ्रमण करेगा। अंत में मच्छ बन कर मारा जाएगा और फिर श्रेष्ठी पुत्र बन कर संयम ग्रहण करेगा।

वहां से प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा। फिर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध बुद्ध मुक्त हो जाएगा।

प्रेरणा शिक्षा-

1. दूसरों को दुःख देने में आनंद मानने वाला, स्वयं भी प्रतिफल में दुःख प्राप्त करता है। किसी को अपराध में दंड देना एक राज्य कर्तव्य तो है, किन्तु उसमें प्रमोद मानना एवं अत्यधिक रस लेना, जीवों को दारूण दुःख दे कर प्रसन्न होना,

उसमें तल्लीन-दत्त चित्त होना, कलुषित परिणामों का सूचक है। ऐसे कलुषित परिणाम स्वयं की आत्मा के लिए ही महान् अपराध है। जिसका फल स्वयं को ही भोगना पड़ता है।

2. अतः अधिकार एवं सांसारिक कृत्यों में भी आसक्ति, तल्लीनता और परिणामों की कलुषितता नहीं रखना। किन्तु वहां भी ज्ञान विवेक एवं आत्म जागृत अवस्था रखते हुए सावधानी से रहना चाहिए। पाप को पाप समझना चाहिए।

सातवां अध्ययन

उम्बरदत्त–

पाटलि खंड नामक नगर मे सिद्धार्थ राजा रहता था। उसी नगरी में सागरदत्त सार्थवाह भी रहता था उसके गंगदत्ता नाम की भार्या थी। उसके मरे हुए पुत्र ही जन्मते थे। किसी समय रात्रि में उसे संकल्प विकल्पों में एक उपाय सूझ गया। तदनुसार पति की आज्ञा लेकर उसने नगर के बाहर उम्बरदत्त यक्ष के यक्षायतन में महोत्सव के साथ स्त्रियों के समूह से पूजन किया एवं पुत्र की याचना की और पुत्र होने पर उसके दान भण्डार भरने का आश्वासन देकर उस यक्ष की मनौति की। फिर घर लौटकर सुखपूर्वक रहने लगी।

कालान्तर से उसने एक पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम उस यक्ष की स्मृति में उम्बरदत्त रखा। छोटी उम्र में ही उम्बरदत्त के माता-पिता काल धर्म को प्राप्त हो गये। उसका धन लोगों ने एवं राज पुरुषों ने लेकर उसे घर से बाहर निकाल दिया। वह इधर-उधर कुसंगत में भटकने लगा, दुर्व्यसनी बन गया। तीव्र पाप कर्मोदय से उसके शरीर में एक साथ सोलह रोग उत्पन्न हो गये।

उम्बरदत्त के अशुभ कर्मोदय– खुजली, कोढ़, सूजन, जलोदर, भगन्दर, बवासीर, अर्श, खांसी, दमा आदि प्रसिद्ध रोगों से वह ग्रस्त हो गया। उसके हाथ पांव की अंगुलियां सड़ रही थी। नाक और कान गल रहे थे। सारे शरीर में घावों में से खराब पानी पीप बहता था। विविध वेदना से वह कष्टोत्पादक करूणाजनक एवं दीनता पूर्ण शब्द पुकार रहा था। असहाय बना वह इधर-उधर नगर में भटकता फिरता था। उसके पास खाने-पीने के लिए मिट्टी का ठीबड़ा और सिकोरे का टुकड़ा था। मक्खियों के झुंड उसके साथ चलते थे। घर-घर में भीख मांग कर वह अपने जीवनयापन करता था।

गौतम स्वामी ने बेले के पारणे के लिए नगरी में पूर्व के दरवाजे से प्रवेश किया। वहां उन्होंने उस दुःखी व्यक्ति को देखा। दूसरे बेले के पारणे में दक्षिण के दरवाजे से वे नगरी में गये, तीसरे बेले के पारणे में पश्चिम से और चौथे पारणे में उत्तर के दरवाजे से पाटलिखंड नगर में उन्होंने प्रवेश किया। संयोगवश उन्होंने चारों रास्तों में उस दुःख संतप्त उम्बरदत्त को देखा। उनके चित्त में जिज्ञासा तीव्र हुई एवं उसके विषय में भगवान से पूछ लिया कि इसने ऐसे कौन से पाप कर्म किए जिसका ऐसा विपाक अनुभव कर रहा है। उत्तर में भगवान ने फरमाया-

पूर्वभव धन्वंतरी वैद्य– इसी जम्बूद्वीप के भारत क्षेत्र में विजयपुर नगर में धन्वंतरी नामक राज वैद्य था। वह कनकरथ राजा के अंतःपुर में, एवं नगर में सेठ, गरीब, सभी के रोगों का उपचार करता था।

उपचार एवं उसके पथ्य में वह लोगों को मच्छ,कच्छ, ग्राह, मगर, सुंसुमार आदि जलचरों का तथा बकरा, भेड़, सुअर, मृग, खरगोश, गाय एवं भैंस आदि पशुओं के मांस का आहार करने के लिए प्रेरित करता।

कईयों को वह वैद्य धन्वंतरी तीतर, बतख, लापक, कबूतर, कूकड़े, मयूर के मांसाहार की प्रेरणा किया करता था। स्वयं भी वह धन्वंतरी वैद्य उक्त प्रकार के मांस को पकाकर भून कर खाया करता था एवं पांच प्रकार की मदिरा का बारंबार सेवन करता था। इस प्रकार पापकर्म की वृति से उसने 32 सौ वर्ष की उम्र व्यतीत की और मरकर छट्ठर नरक में गया। वहां 22 सागरोपम तक महान् नरक वेदनाओं को भोग कर उम्बरदत्त कुमार बना है एवं अपने पुराने अवशेष कर्मों को भोग रहा है।

भविष्य-

72 वर्ष की आयुष्य इस दुःखमय जीवन में व्यतीत करके यह प्रथम नरक में उत्पन्न होगा। संसार भ्रमण करते हुए अंत में हस्तिनापुर में कूकड़ा बनकर मारा जाएगा। फिर श्रेष्ठि पुत्र बनकर संयमाराधन करेगा। तब प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।

प्रेरणा शिक्षा-

1. मद्य-मांस के सेवन करने वालों की बुद्धि एवं अनुभव तदनुरूप बन जाता है। एक कुशल वैद्य होकर भी धन्वंतरी लोगों को पाप मुक्त करने के स्थान पर पाप में जोड़ने वाला बना। वह उन्नत बनने की कला प्राप्त कर जीवों की दया अनुकम्पा वृद्धि कर सकता था। किन्तु पाप मति के प्रभाव से प्रभावित बने हुए उसने और अधिक पाप कृत्यों की वृद्धि की।

2. अज्ञानी जीव निर्जरा एवं पुण्य प्राप्ति के स्थान पर कर्म बंध एवं पाप सेवन कर अपना ही जीवन बिगाड़ लेते हैं। ज्ञानी व्यक्ति साक्षात कर्म बंध के स्थानों में भी महानिर्जरा एवं मुक्ति लाभ कर लेते हैं। अतः मुमुक्षु प्राणियों को अपने जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति को ज्ञान और विवेक से कसौटी करते हुए सही, हितकर, योग्य, निर्णय लेकर ही उसमें प्रयत्नशील रहना चाहिए।

3. जगत में कई प्रकार की सावद्य निर्वद्य चिकित्सा विधिएं हैं तथा प्राकृतिक चिकित्सा, जल, मिट्टी, स्वमूत्र और उपवास चिकित्साएं भी प्रचलित एवं शास्त्रों ग्रंथों में वर्णित है। शास्त्र आचारांग में कहा गया हे कि पापकारी चिकित्साओं का कभी भी आचरण नहीं करना चाहिए।

4. भिक्षु के लिए तो आगम का यही घोष है कि उसे तो रोगांतक आ जाने पर आहार त्याग कर उपवास चिकित्सा करके ही द्रव्य एवं भाव रोगों से मुक्ति पाना चाहिए। घरेलु उपचार के कई नुस्खे भी निरवद्य होते हैं। सावद्य चिकित्सा मुनियों के लिये अनाचार अर्थात् सर्वथा अनाचरणीय है।

आठवां अध्ययन

शौरिकदत्तः-

शौर्यपुर नामक नगर में शौर्यदत्त नामक राजा राज्य करता था। शौर्यावतंसक उद्यान में शौर्य नामक यक्ष का यक्षायतन था। उसी नगरी में समुद्रदत्त नामक मच्छीमार रहता था। उसकी पत्नी समुद्रदत्ता मरे बालकों को जन्म देने वाली थी। शौर्य यक्ष की मनौति से उसे एक जीवित पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम शौर्य दत्त (शौरिकदत्त) रखा।

समुद्रदत्त मच्छीमार महान निर्दयी एवं अधर्मी था। एक समय वह काल धर्म को प्राप्त हुआ। उसका पुत्र भी महान अधर्मी और मच्छीमार बना। उसके अनेक नौकर यमुना नदी में नोकाओं से जाकर अनेक मच्छियों के ढेर इकट्ठे करते। फिर उन्हें सुखाकर भूनते एवं बिक्री करते। शौर्यदत्त स्वयं भी मत्स्यमांस एवं विविध मदिराओं का सेवन करते हुए अधर्ममय जीवन व्यतीत करता था।

मांसाहारी के गले में मछली का कांटा-

एक बार मत्स्य का आहार करते समय उस शौर्यदत्त (शौरिकदत्त) के गले में मत्स्य का कांटा फंस गया। अनेकों उपचार करने भी कोई वैद्य अथवा बुद्धिमान उस कंटक को नहीं निकाल सके। इस कारण वह महत्ति असाध्य वेदना अनुभव करने लगा और दुःखपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। दुःख ही दुःख में वह सूख कर अस्थिपंजर मात्र शेष रह गया। वह खून रस्सी और कीड़ों का बारंबार वमन भी करता था।

संयोगवश गौतम स्वामी बेले के पारणा में आहार लेकर उस बस्ती के बीच से निकल रहे थे। शौरिकदत्त पर उनकी दृष्टि पड़ी। वह कंटक वेदना से दीनता पूर्वक आक्रंदन कर रहा था। उसे देखते ही उन्हें लगा कि अहो! यह पुरुष नरकतुल्य वेदना का अनुभव कर रहा है।

उसके पूर्वभव की पृच्छा करने भगवान ने इस प्रकार वर्णन किया-

पूर्वभवः नंदिपुर में मित्र राजा के श्रियक नामक एक रसोईया था। उसके मच्छीमार, व्याध और पक्षीघातक नौकर थे, जो उसे अनेक प्रकार के मांस लाकर देते थे। वह रसाईया अनेक जलचर, स्थलचर और खेचर जीवों के मांस के छोटे, बड़े, लम्बे, गोल अनेक आकारों में टुकड़े करके अनेक विधियों से पकाता था, अर्थात् अग्नि से, बर्फ से, धूप से, हवा से पकाता था। कभी काले, नीले, लाल बनाता तो कभी आंवला, द्राक्ष, कबीठ, अनार आदि के रस से संस्कारित करता था।

इस प्रकार की तल्लीनतापूर्वक भोजन विधि से व्यंजन तैयार कर राजा को प्रसन्न करता था। स्वयं भी वह उन व्यंजनों को आनंदानुभव करते हुए खाता था एवं पांच प्रकार की शराब का बारंबार सेवन करता था।

इस प्रकार के पापमय जीवन से उसने 33 सौ वर्ष व्यतीत किए एवं मरकर छट्ठी नरक में उत्पन्न हुआ। वहां 22 सागरोपम तक नरक दुःख भोग कर यह शौरिकदत्त बना और यहां इस तरह की दारूण नरक तुल्य वेदना में मरकर पहली नरक में उत्पन्न होगा।

भविष्य- वहां से निकल कर मृगापुत्र के समान संसार भ्रमण करेगा। अंत में मच्छ बन कर मारा जाएगा और फिर श्रेष्ठी पुत्र बनकर संयम ग्रहण करेगा। वहां से प्रथम देवलोक में जाएगा। फिर महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति प्राप्त करेगा।

प्रेरणा-शिक्षा-

1. संसार में नौकरी व्यापार आदि आवश्यक कार्य करने भी पड़े तो उसमें तल्लीन नहीं होना चाहिए एवं अत्यन्त गृद्धि भाव से आनंद नहीं मानना चाहिए। क्योंकि ऐसे परिणामों से अत्यन्त दुःखदायी कर्मों का बंध होता है यथा-श्रियक रसोईये ने कर्म बंध किया।

2. वर्तमान में ही मस्त बने रहने वाला एवं भविष्य का विचार नहीं करके यथेच्छ पाप प्रवृत्ति करने वाला अपना भविष्य अत्यन्त संकटमय बना लेता है।

3. पांच प्रकार की मदिरा के नाम सूत्र में ये हैं- सुरं, महुं, मेरगं, जाइं, सीधुं।

4. जीव दूसरों को खुश करने के लिए भी पाप कर्म का सेवन करते हैं किन्तु कर्मों का उदय होने पर उसका फल स्वयं को ही भुगतना पड़ता है।

नवमां अध्ययन

देवदत्ता-

रोहीतक नामक नगर में वैश्रमणदत्त राजा राज्य करता था। उसके श्री देवी रानी थी एवं पुष्पनंदी राजकुमार था। उसी नगर में दत्त नामक एक सेठ रहता था उसके देवदत्ता नाम की एक पुत्री थी। वह जब तरूण अवस्था में आई और अपनी सहेलियों के साथ राजमार्ग में खेल रही थी, उस समय राजा वैश्रमणदत्त उस राजमार्ग से अश्व क्रीड़ा के लिये निकला।

देवदत्ता कन्या के रूप लावण्य को देखकर उसका चित्त आकर्षित हुआ और अपने पुत्र पुष्पनंदी के लिए उसकी मांगणी भेज दी। दत्त सेठ ने राजा की मांगणी स्वीकार कर ली और दोनों का राजसी वैभव से विवाह हुआ और वे सुखपूर्वक रहने लगे।

राजा की मातृभक्ति- कालान्तर से वैश्रमण राजा काल धर्म को प्राप्त हो गया। पुष्पनंदी अब राजा बन गया। पिता के काल कर जाने पर वह अपनी माता श्रीदेवी की अत्यन्त भक्ति करने लगा। श्रीदेवी करीब सौ वर्ष की वृद्धा हो चुकी थी। अतः पुष्पनंदी का बहुत कुछ समय माता की सेवा, देख-रेख में लग जाता था। इस कारण देवदत्ता रानी को उस राजा के साथ ऐशो आराम एवं विलासमय जीवन में पूर्ण संतुष्टी नहीं हो पाती थी। उसे श्रीदेवी सासु का जीना भी खटकने लगा।

राणी द्वारा राजमाता की निर्मम हत्याः उसी उधेड़बनु के संकल्प विकल्प में वह उसे मारने का अवसर देखने लगी। एक समय श्रीदेवी सुखपूर्वक सोई हुई थी। देवदत्ता ने लोहे का डंडा गर्म किया उसे संडासी से पकड़ा और लाकर श्रीदेवी की सास के गुदा द्वार में जोर से घुसेड़ दिया। श्रीदेवी को अचानक तीव्र वेदना हुई एवं जोर से चिल्लाती हुई तत्काल मर गई।

आवाज सुनकर श्रीदेवी की दासियां आई। मार्ग में देवदत्ता को उस कमरे से निकलते देखा और श्रीदेवी के पास में आने से उन्हें मालूम पड़ा कि यह तो निष्प्राण हो गई है।

राणी की दुर्दशा- राजा से दासियों ने जाकर घटित का निवेदन किया। अत्यंत दुःखपूर्वक माता के मृत्यु कर्म से निवृत्त होने के बाद पुष्पनंदी राजा ने अपनी रानी देवदत्ता को राज पुरुषों से पकड़वाया और तीव्रतम मृत्यु दण्ड घोषित कर दिया, उसे बंधनों में जकड़ दिया गया, कान, नाक काट दिए गये, हाथों में हथकड़ियां एवं गले में लाल फूलों की माला पहनाई गई। वध सूचक वस्त्रयुगल पहनाए गये। शरीर को लाल गेरू से पोत दिया गया। इस प्रकार के करूण दृष्य के साथ उसको मारते पीटते अनेक तरह की यातना देते हुए एवं उद्घोषणा करते हुए कि ''यह अपने ही कर्मों से दुःखी हो रही है, दूसरा कोई इसको दुःख नहीं दे रहा है,'' शूली चढ़ाने के स्थान पर ले जाने लगे।

इधर संयोग वश गौतम स्वामी गोचरी के लिए भ्रमण करते हुए राजमार्ग से निकले और अनेक पुरुषों आदि की भीड़ के अंदर उस नरकतुल्य दुःख भोगती हुई स्त्री को देखा। भिक्षा लेकर भगवान के समीप पहंचे और निवेदन किर पूछा हे भंते! उस स्त्री ने ऐसे क्या कर्म किए, जिससे मनुष्य भव में ऐसे दारूण दुःखों को भोग रही है। भगवान ने उसका पूर्व भव वृत्तांत सुनाते हुए कहाः-

देवदत्ता महारानी का पूर्वभव- इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सुप्रतिष्ठ नामक नगर था। वहां का राज महासेन के एक हजार रानियां थीं। उसने अपने पुत्र सिंहसेन का पांच सौ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण करवाया और यथेच्छ प्रीतिदान एवं भोग उपभोग सामग्री दी। सिंहसेन सुखपूर्वक रहने लगा।

कालान्तर से राजा कालधर्म को प्राप्त हुआ। सिंह सेन राजकुमार राजा बन गया। बहुत समय बीतने के बाद संयोगवश राजा अपनी प्रमुख रानी श्यामा में अत्यन्त आसक्त हो गया और उसने दूसरी रानियों की उपेक्षा कर दी। दुःखी होकर उन स्त्रियों ने अपनी माताओं से अपना दुःख कह दिया। सभी की माताओं ने मिलकर श्यामा को विष या शस्त्र आदि से मारने का निर्णय किया। बात गुप्त न रह सकी। क्रमशः श्यामा रानी को और फिर राजा सिंहसेन को मालुम पड़ी। राजा ने उपाय ढूंढ लिया, उन सब रानियों की माताओं को स्वागत पूर्वक निमंत्रण दिया। अपने नगर में बुलाकर निवास स्थान दिया। एक विशाल कूटाकार शाला में ठहरा दिया। खाने पीने आदि की सारी व्यवस्था कर दी। अर्द्ध रात्रि में राजा उठा और अपने पुरुषों के साथ वहां गया। दरवाजे बंद करवा कर चारों तरफ से आग लगवा दी। वे 499 ही माताएं करूण क्रंदन करती हुई वहां जलकर मृत्यु को प्राप्त हुई। सिंहसेन राजा ऐसे पापकर्मों से जीवन व्यतीत करता हुआ 24 सौ वर्ष की उम्र में मरा और छठवीं नरक में उत्पन्न हुआ। वहा 22 सागरोपम जितने काल तक महान् नरक दुःख भोग कर यह देवदत्ता के रूप में जन्मा है। वही देवदत्ता स्त्री राजमार्ग में वीभत्स दुःखमय समय व्यतीत कर रही है। आज ही वह शूली पर मरकर प्रथम नरक में उत्पन्न होगी एवं अनेक दुःखमय भव भ्रमण करेगी।

अंत में गंगपुर नगर में हंस बन कर मारी जावेगी। फिर श्रेष्ठी पुत्र होकर संयमाराधन कर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगी। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगी।

प्रेरणा शिक्षा-

1. स्वार्थ एवं भोग की लिप्सा इतनी खतरनाक होती है कि व्यक्ति सारे सम्बन्ध भूल जाता है और क्रोध में अभितप्त व्यक्ति वीभत्स घोर कृत्य कर लेता है। इसलिए ये तीनों अंधे कहे गये हैं- क्रोधांध, कामांध, स्वार्थान्ध। ये अंधे

पुरुष भविष्य को अंधकारमय बना कर नरक निगोद आदि में दीर्घकाल तक भटकते रहते हैं। देवदत्ता, सिंहसेन, पुष्पनंदी आदि भी इसी प्रकार के उदाहरण है।

2. देवदत्ता पूर्व भव के अशुभ कर्मों से व्याप्त बुद्धिवाली थी। इसी कारण **''विनाश काले विपरीत बुद्धि''** हुई थी। अन्यथा तो उसे 80 वर्ष भोग भोगते हुए पूर्ण हो चुके थे। अब भी भोग लिप्सा से सास को निर्दयतापूर्वक मारना उसके लिए एक निरर्थक का अकाज ही था। उससे उसे सुफल के स्थान दुष्फल ही मिला। ''हाथ भी जले होले (चने) भी नहीं मिले'' ऐसी उक्ति चरितार्थ हुई। निरर्थक ही वह सब के लिए दुखदाई बनी। सास ने करूण वेदना पाई। खुद बेमोत करूण क्रंदन करते, नरक सरीखी वेदना एवं अपमान भोगते हुए मरी और पति से पत्नी हत्या का पाप करवाया और नगरी के अनेक लोगों के कर्मबंध का निमित्त बनी।

इस प्रकार एक ही अधर्मी पापी व्यक्ति कईयों का बिगाड़ करने वाला हो जाता है। उसके यह भव, पर भव दोनों ही निंदित होते हैं।

3. संसार के स्वार्थपूर्ण और क्लेश युक्त संबन्धों और परिणतियों का यहां जीवित चित्रण किया गया है। एक व्यक्ति 499 सासुओं को जीवित जला देता है तो एक अस्सी वर्ष की बहु सौ वर्ष की सासु को बुरी तरह मार देती है। पति अपनी पत्नी को कितना कठोर दंड दे सकता है। राजघराने का मिला हुआ सुख साज भी एक दिन कितना भयंकर दुःखदाई नरक तुल्य बन जाता है। यह जानकर दुर्लभ मानव भव का स्वागत धर्माचरण से करके जीवन सफल कर लेना चाहिए। समय रहते स्वयं ही चंचल लक्ष्मी एवं परिवार संयोगों का त्याग कर संयम तप में पुरुषार्थ कर लेना चाहिए। तभी मानव भव का मिलना वास्तव में सार्थक होता है।

4. कर्तव्य निष्ठा का एक अनुपम आदर्श भी इस अध्ययन में अंकित किया गया है। पुष्पनंदी राजा स्वयं अस्सी वर्ष की वय तक भी अपनी सौ वर्ष की उम्र वाली माता की अनेक प्रकार की सेवा परिचर्या में अपना अधिकतम समय व्यतीत करता था। यह राजा भगवान के शासन काल में हुआ था। माता-पिता की सेवा के लिए प्रेरणा देने वाला यह सजग एवं सजीव उदाहरण है। पुष्पनंदी राजा ने जिन धर्म स्वीकार किया या नहीं इस सम्बन्ध में प्रस्तुत अध्ययन में कोई संकेत नहीं है।

दसवां अध्ययन

अंजुश्री-

पूर्वभव- प्राचीन काल में भारत वर्ष में इन्द्रपुर नाम का नगर था। वहां पर पृथ्वी श्री नाम की एक वेश्या रहती थी। वह नगर के सेठ सेनापति राजकर्मचारी राज्य वर्गीय पुरुषों आदि नागरिक जनों को वशीकरण आदि चूर्णों से वशवर्ती बनाकर उनके साथ मनुष्य सम्बन्धी भोगों का अत्यन्त आसक्ति पूर्वक उपभोग करती थी। वह उसी को अपना कर्तव्य और आनन्द मानती थी। इस प्रकार के जीवन से उसने (3500) पेंतीस सौ वर्ष व्यतीत किए। अंत में भोगाशक्ति के फलस्वरूप वह छठवीं नरक में उत्पन्न हुई। बावीस सागरोपम तक नरक दुःख भोग कर वर्द्धमान नगर में धनदेव सार्थवाह की पुत्री बनी। यहां उसका नाम अंजुश्री रखा। यौवन वय प्राप्त होने पर वहां का राजा विजयमित्र उस पर मोहित हो गया। धनदेव

सार्थवाह से अंजुश्री की याचना की। धनदेव ने राजा की मांगणी स्वीकार की। दोनों की शादी हो गई। अंजुश्री राजा की रानी बनकर सुखपूर्वक रहने लगी।

पाप कर्मों का उदय– कुछ समय पश्चात् ही उस अजूंश्री रानी के पूर्व कर्म के भोगाशक्ति से संग्रहित अवशेष पापकर्मों का उदय हुआ। उसकी योनि में शूल वेदना उत्पन्न हुई। अंजुश्री असह्य वेदना से दीनतापूर्वक करूण क्रंदन करने लगी। राजा ने अनेक उपचार कराए। सर्वत्र घोषणा करवा कर कुशल वैद्यों को आमंत्रित किया। ईनाम घोषित किए। अनेक अनुभवी बुद्धिमान वैद्य आदि आए। कई उपाय किए किन्तु सभी के प्रयत्न निष्फल रहे।

अंजुश्री असहाय सी होकर करूण आर्त्त विलाप क्रंदन करते हुए काल व्यतीत करने लगी। उस दुस्सह महावेदना से उसका औदारिक शरीर क्षीण हो गया। मांस, खून सूख कर वह अत्यन्त कृश हो गई।

एक बार गौतम स्वामी राजा की अशोक वाटिका के पास से गोचरी के लिए भ्रमण करते हुए निकले। अंजुश्री करूण शब्दों में वहीं पड़ी-पड़ी कराह रही थी। उसकी आवाज को सुनकर गौतम स्वामी ने उधर दृष्टि की। देखा एक राजरानी हड्डियों और चमड़ी की पुतली सी बन रही है एवं दारूण दुःख से अभिभूत होकर विलाप कर रही है। गौतम स्वामी ने कर्मों की विचित्र दशा का प्रत्यक्ष चित्रण अनुभव किया एवं भगवान के समीप पहुंच कर उसके इस जीवन का एवं पूर्वभव का परिचय पूछा। भगवान के श्रीमुख से उसके पूर्वभव की भोगाशक्ति और व्यथा का स्पष्टीकरण सुनकर भावी जीवन के विषय में भी पृच्छा की। भगवान ने इस प्रकार फरमाया-

भविष्य– अंजुश्री इस असह्य वेदना में संत्रस्त रहती हुई नब्बे वर्ष की उम्र में मरेगी। प्रथम नरक में उत्पन्न होगी। फिर वहां से नरक तिर्यंच आदि योनियों में मृगापुत्र के समान भव भ्रमण करेगी। अंत में मयूर बनकर व्याध के द्वारा मारी जाएगी। फिर श्रेष्ठी पुत्र बनकर संयम स्वीकार करेगी। संयम तप की आराधना कर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगी। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर उसी भव से मुक्ति प्राप्त करेगी।

प्रेरणा शिक्षा–

1. कोई भी तीव्रतम वेदना प्रायः लम्बे समय तक नहीं टिकती है किन्तु कभी किसी के प्रगाढ़ कर्मों का उदय हो तो ऐसा हो भी जाता है। यथा- अंजुश्री की योनि शूल वेदना।

2. भोगविलास इन्द्रिय विषयों के सुख या आनंद जीव के लिए मीठे जहर के समान है। कवि ने कहा भी है-

मीठे मीठे काम भोग में फंसना मत देवाणुप्रिया ।
बहुत-बहुत कड़वे फल पीछे, होते हैं देवानुप्रिया ।।

आगम में भी कहा है-

''संसार मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण हु काम भोगा।

अर्थात्– ये काम भोग मोक्ष के विरोधी एवं अनर्थों की खान के समान है।

अतः इनसे विरक्त होकर सदा के लिए भोगों का त्याग कर देने वाला पुरुष संसार सागर से तिर जाता है।

3. व्यक्ति अपने घर परिवार का, सत्ता का या धन का अहंभाव घमंड करता रहता है, किन्तु तीव्र पाप कर्मोदय होने पर ये कोई भी त्राणभूत शरणभूत नहीं होते हैं। जीवन में धर्म के संस्कार न हों तो वह जीव ऐसे दुःख से महान् दुःखी बनता है और आर्त्तध्यान एवं संकल्प विकल्पों में मरकर आगे भी दुःख परंपरा को बढ़ाता है।

4. किन्तु यदि जीवन को धर्म संस्कारों आचरणों से भावित एवं अभ्यस्त किया हो तो ऐसी विकट दुःख मय घड़ियों में भी व्यक्ति कर्मों का एवं आत्मा का बोध स्मृतिपट पर लाकर शान्ति से उन कर्मों को चुका कर आगे का भविष्य कल्याणमय बना सकता है।

5. अतः यथावसर संयोगवश जीवन को धर्म संस्कार मय बनाने का भी लक्ष्य रखना चाहिए। धर्म के संस्कार एवं आत्मबोध जीव को दुःख में भी सुखी रहने की अनुपम कला देने वाला है। संकट की घड़ियों में भी अंतर्मन में प्रसन्नचित्त रहना धर्म ही सिखाता है।

6. धर्म आचरण के अभ्यास एवं चिंतन से अनंत आत्मशक्ति एवं उत्साह जागृत होता है। ऐसा व्यक्ति कर्मोंदय को अंजुश्री के समान रो रोकर नहीं भुगतता है किन्तु गजसुकुमाल, अर्जुनमाली आदि की तरह शान्तिपूर्वक अपने कर्ज को चुकाकर सुखी बन जाता है।

7. इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख विपाक में हिंसक, क्रूर, भोगाशक्त, स्वार्थान्ध, मांसाहारी एवं शराब खोरों के जीवन चित्रण से इन कृत्यों का कटु परिणाम बताया गया है एव शुद्ध, सात्विक, व्यसन मुक्त एवं पाप मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा की गई है।

।। प्रथम श्रुत स्कंध दुःख विपाक सूत्र समाप्त ।।

द्वितीय श्रुतस्कंध-सुखविपाक

प्रथम अध्ययन

सुबाहुकुमार-

हस्तीशीर्ष नामक नगर में अदीनशत्रु राजा राज्य करता था। उसके धारिणी प्रमुख एक हजार रानियां थीं। धारिणी रानी के सुबाहुकुमार नामक पुत्र था। अध्ययन काल में उसने पुरुषों की बहत्तर कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। यौवन वय प्राप्त होने पर माता-पिता ने पांच सौ श्रेष्ठ कन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह किया। अखूट धन प्रीति दान में दिया एवं 501 भव्य सुंदर महल तैयार करवा कर दिए। वहां सुबाहुकुमार सुखपूर्वक रहने लगा।

भगवान की सेवा में सुबाहुकुमारः किसी समय विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी उस हस्तीशीर्ष नगर में पधारे। परिषद धर्मोपदेश श्रवणार्थ उपस्थित हुई। जितशत्रु राजा भी आया एवं सुबाहुकुमार भी। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। राजा एवं नगरवासी उपदेश श्रवण कर पुनः नगर में लौटे।

सुबाहु कुमार ने भगवान से वंदन नमस्कार करके निवेदन किया कि हे भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन-वीतराग धर्म की श्रद्धा प्रतीति-रूचि करता हूं। आपके श्री चरणों में जो भी राजा, राजकुमार, राजकर्मचारी, सेठ, सेनापति महाव्रत धारण कर अणगार बने हैं, उन्हें धन्य है। मैं उनकी तरह घर का त्याग कर संयम ग्रहण नहीं कर सकता हूं किन्तु गृहस्थ जीवन में रहते हुए श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करना चाहता हूं।

तदनंतर उसने अपनी योग्यता एवं रूचि अनुसार मर्यादाएं धारण कर भगवान से श्रावक व्रत स्वीकार किए।

अब सुबाहुकुमार के जीवन में दूसरा मोड़ आ गया था। वह ऐश आराम के साथ कुछ समय धर्म साधना में लगाने लगा। महिने में अष्टमी, चतुर्दशी, पूनम, अमावश के दिन प्रतिपूर्ण पौषध कर आत्म-जागरण करने लगा।

सुबाहुकुमार के वैभव एवं सौम्यता से गौतम स्वामी का चित्त आकृष्ट हुआ। उन्होंने भगवान से पृच्छा की कि सुबाहुकुमार देखने में बड़ा ही इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, सौम्य एवं सौभाग्यशाली लगता है, साधुजनों को भी प्रिय, आनंदकारी, मनोहर लगता है तो पूर्व भव में इसने ऐसा क्या काम किया है? क्या दिया, क्या खाया, क्या गुण उपलब्ध किए और किनके पास में आर्यधर्म श्रवण कर उसका अनुपालन किया, जिससे यह ऐसा आकर्षक एवं स्नेह पात्र बन गया है?

सुबाहुकुमार का पूर्वभव- हस्तिनापुर नगर में सुमुख नामक धनाढ्य गाथापति (सेठ) रहता था। धर्मघोष स्थविर विचरण करते हुए वहां पधारे, सुदत्त अणगार के मास खमण का पारणा था, पारणे के लिए गुरु की आज्ञा लेकर स्वयं नगर में गये। भ्रमण करते हुए वे सुमुख गाथापति के घर पर पहुंच गये।

सुमुख सेठ ने मुनिराज को भिक्षार्थ घर में आते हुए दूर से ही देख लिया। देखते ही वह हर्षित हुआ। आसन से उठा, पांव से पादुकाएं (पगरखी) निकाली, मुंह के सामने वस्त्र का उत्तरासंग लगाया। कुछ चलकर सामने गया, हाथ जोड़कर तीन बार आवर्त्तन के साथ वंदन नमस्कार किया एवं मुनिराज को भोजन गृह में लाया।

''**आज मैं मुनिराज को पर्याप्त आहार दान करूंगा**'' इस विचार से अत्यन्त प्रसन्न होता है, देते समय भी बहुत हर्षित होता है और देने के बाद भी बड़ा आनंद विभोर होकर अपने आप को कृतकृत्य होने का अनुभव करता है। इस प्रकार- 1. त्रैकालिक भाव विशुद्धि से, 2. लेने वाले मासखमण के तपस्वी भवितात्मा अणगार का संयोग मिलने से एवं 3. घर में सहज निष्पन्न निर्दोष प्रासुक आहार का दान देने से सुमुख सेठ ने अपना संसार भ्रमण सीमित कर दिया अर्थात् उसे सम्यग् दर्शन की प्राप्ति हुई।

सुपात्र दान से पंचदिव्यः उसके घर में पंच दिव्य प्रगट हुए। 1. स्वर्ण वृष्टि हुई, 2. पुष्प वृष्टि हुई, 3. ध्वजा फहराई, 4. देवदुंदुभी बजी, और 5. ''**अहो दानं-अहो दानं**'' की आकाश में दिव्य वाणी हुई। यह चर्चा सारे नगर में फैल गई और सर्वत्र सुमुख गाथापति के नाम की सराहना की जाने लगी।

सुमुख ने यथासमय मनुष्यायु का बंध किया और वहां से अनेक वर्षों की आयु पूर्ण करके यहां सुबाहुकुमार के रूप में जन्म लिया। सुपात्र दान के सर्वांग सुन्दर संयोग से उसने इस प्रकार की ऋद्धि संपदा एवं शरीर संपदा प्राप्त की है। इसी कारण से यह देखने में सभी को वल्लभ लगता है।

सुबाहुकुमार श्रमणोपासक- यह वर्णन सुनकर गौतम स्वामी ने अगला प्रश्न भी पूछ लिया कि भंते! सुबाहुकुमार गृह त्याग कर कभी आपकी सेवा में अणगार बनेगा। भगवान ने फरमाया कि कुछ समय श्रावक व्रतों का पालन करने के बाद संयम धारण करेगा। यथासमय भगवान ने वहां से विहार कर दिया।

श्रमणोपासक के श्रेष्ठ सभी गुणों से संपन्न वह सुबाहुकुमार जिस समय पौषध करके आत्म-जागरण कर रहा था। उस समय ऐसे मनोगत संकल्प उठे कि वह क्षेत्र धन्य है, जहां भगवान विचरण कर रहे हैं। वे भव्य जीव धन्य हैं जो भगवान के पास संयम या श्रावक व्रत स्वीकार कर रहे हैं। यदि भगवान विहार करते हुए यहां पधारें तो मैं भी संयम ग्रहण करूं।

दीक्षा- सुबाहुकुमार के मनोगत भावों को जानकर भगवान विचरण करते हुए वहां पधारे। माता-पिता की आज्ञा लेकर सुबाहु दीक्षित हो गया। समिति गुप्ति वंत अणगार बन गया। उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन (कंठस्थ ज्ञान) किया, विविध तपस्याएं की और अंत में सुबाहु अणगार एक महिने के संथारे से स्वर्गवासी हुए। सुबाहुकुमार क्रमशः सात मनुष्य भवों में संयम की आराधना करेगा और बीच में पहला, तीसरा, पांचवां, सातवां, नवमा, ग्यारहवां देवलोक एवं सर्वार्थसिद्ध अणुत्तर विमान यों सात देव के भव करेगा। उसके बाद चौदहवें एवं इस भव के साथ पंद्रहवें भव में संयम तप की आराधना करके मुक्ति प्राप्त करेगा।

शेष नौ अध्ययन- दूसरे से लेकर दसवें अध्ययन तक सभी में नगरी आदि के नामों का अंतर है। शेष सारा वर्णन एक सरीखा है। इसलिए संक्षिप्त पाठ से ही अध्ययन सूचित कर दिए हैं। अर्थात् जन्म, बचपन, कला-शिक्षण, पाणिग्रहण, सुखभोग, धर्म श्रवण, श्रावक व्रत आत्म-जागरण, संयम ग्रहण, तप, अध्ययन, देव-मनुष्य के 15 भव एवं मोक्ष का वर्णन एक समान समझ लेना चाहिए।

पूर्व भव का वर्णन भी सुबाहुकुमार के समान है। **यथा–** गौतम स्वामी की पृच्छा, सेठ का भव, मासखमण के पारणे में मुनि का आगमन, शुद्ध भावों से दान, दिव्य-वृष्टि मनुष्यायु का बंध इत्यादि। पहले दूसरे तीसरे एवं दसवें अध्ययन में पंद्रह भवों के बाद मोक्ष जाने का वर्णन है और शेष छः अध्ययनों में उसी भव में मोक्ष जाने का वर्णन है। सूत्र वर्णन शैली से अध्ययनों में इस प्रकार के अंतर होने का कोई कारण ज्ञात नहीं होता है अर्थात् उपासकदशा, अंतगडदशा, अणुत्तरोपपातिक एवं इसी सूत्र के दुःख विपाक अध्ययनों के समान इन अध्ययनों में भी भव परंपरा का वर्णन एक समान ही होना चाहिए।

अतः ऐसी संभावना की जा सकती है कि संक्षिप्त पाठ में कभी लिपि दोष से यह भिन्नता आ गई होगी अर्थात् ''**जाव सिज्झिस्सइ**'' के स्थान पर ''**जाव सिद्धे**'' लिखने की भूल चल पड़ी हो। इस भूल को मान्य (सुधार) करने पर उक्त सभी सूत्रों के अध्ययन वर्णनों की एकरूपता रह सकती है। तत्व केवली गम्यं। परन्तु इसके निर्णय के लिए खोजपूर्वक प्राचीन प्रतियों का अध्ययन करना चाहिए।

प्रेरणा शिक्षाा–

1. भाग्यशाली आत्माएं प्राप्त पुण्य सामग्री में जीवन भर आशक्त नहीं रहती हैं किंतु एक दिन उससे विरक्त होकर उसका त्याग कर देती है।

2. संयम स्वीकारने का अवसर जब तक न आवे तब तक श्रावक व्रतों को अवश्य धारण कर लेना चाहिए। दशों अध्ययन में वर्णित राजकुमारों ने विपुल भोगमय जीवन के होते हुए भी संपूर्ण बारह व्रत स्वीकार किए थे। वे राजकुमार होते हुए भी महिने के छः पौषध भी धारण करते थे। अंत में शक्ति रहते संयम भी ग्रहण किया।

3. भुक्त भोगी जीवन के अनंतर दीक्षा लेने वाले उक्त सभी राजकुमार संयम ग्रहण करने के बाद ग्यारह अंगों के अध्येता-कंठस्थ धारण करने वाले बने थे। आज भी श्रमणों को ऐसे आदर्शों को सम्मुख रख कर आगम अध्ययन अध्यापन का प्रमुख लक्ष्य रखना चाहिए आगम निर्देशानुसार संघ में अध्ययन की सुव्यवस्था करनी चाहिए।

4. पौषध में श्रावक को आत्मगुण विकास की धर्म जागरणा करनी चाहिए।

5. सुपात्र दान देने से सम्यक्त्व की प्राप्ति और संसार परित करना, समझना चाहिए। क्योंकि संसार परित्तीकरण सम्यक्त्व प्राप्ति के अनंतर होता है और सम्यक्त्व प्राप्ति के समय या सम्यक्त्व की मौजुदगी के समय कोई भी मनुष्य मनुष्यायु का बंध नहीं करता है। यह भगवती सूत्र में वर्णित सैद्धान्तिक तत्त्व है। अतः जीवन के अन्य क्षणों में आयु बंध मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है।

संक्षिप्त पाठों में, वर्णन पद्धति में कभी दूरवर्ती वर्णन भी निकट हो जाते हैं और निकटवर्ती वर्णन भी दूर हो जाते हैं यह स्वाभाविक है किन्तु अर्थ करने में या समझने में आगम अनुभवी विद्वानों को विवेक रखना आवश्यक समझना चाहिए।

संक्षिप्त पाठों के विषय में या वर्णकों के विषय में इस प्रकार की विवेक बुद्धि नहीं रखने पर अनेक आगम स्थलों में कई असमन्वय एवं शंकाएं उद्भूत हो सकती है, जिनका कोई समाधान नहीं होगा। अतः उक्त दृष्टिकोण रखना ही श्रेयस्कर है।

सार– सुपात्र दान आदि के समय समकित की प्राप्ति होती है और अन्य क्षणों में पहले या पीछे सम्यक्त्व के अभाव में मनुष्यायु का बंध होता है।

6. दस ही अध्ययनों में वर्णित मासखमण के तपस्वी मुनि पारणा लेने गुरु आज्ञा लेकर स्वयं ही गये,यह एक आगमिक श्रेष्ठ पद्धति रही है जिसका दिग्दर्शन अनेक आगमों में मिलता है। आज इसे ही अवगुण रूप समझा जाता है अर्थात् स्वतंत्र गोचरी करना साधु का आदर्श गुण न माना जाकर अवगुण और हेय माना जाता है। जिससे अनेक उत्तमोत्तम साधनाओं का, अभिग्रहों को स्वतः विच्छेद हो रहा है।

अतः इन आगम वर्णनों का सम्यक् अनुचिंतन कर गुण रूप में इन परंपराओं का सम्यक्तया पुनरूत्थान करना चाहिए। विशेष जानकारी के लिए सूयगडांग सूत्र के परिशिष्ट का अवलोकन कीजिए।

7. घर में मुनिराज के गोचरी पधारने पर किस शालीनता से विधिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। यह इन अध्ययनों में वर्णित सुदत्त सेठ आदि से सीखना चाहिए। आजकल मुनिराज के घर में पधारने पर जो अतिभक्ति या अभक्ति अविवेक एवं दोषयुक्त व्यवहार किया जाता है उसमें संशोधन करना चाहिए। जिससे श्रावक श्राविकाएं भी दोष मुक्त हो सके।

अर्थात् मुनिराज को बुलाकर लाना नहीं, स्वतः ही आने की आशा या अपेक्षा रखनी चाहिए।

घर के निकट आने पर, घर में आवाज देना, सचित्त पदार्थों को इधर-उधर करना, देय पदार्थों में अन्यान्य प्रवृत्ति करना, अकल्पनीय को कल्पनीय करना इत्यादि प्रवृत्तिएं नहीं करनी चाहिए। जो चीजें जिस अवस्था में है एवं देय पदार्थ भी जो जिस अवस्था में है उसमें उतावल या अतिभक्ति से कुछ भी परिवर्तित न करते हुए शान्ति और विवेक पूर्वक जो भी देय पदार्थ कल्पनीय स्थिति में पड़े हैं उन्हें ही शुद्ध सरल भावों से मुनिराज की आवश्यकता, इच्छा एवं निर्देशानुसार बहराने (देने) चाहिए।

इस विषय में ऐषणा के संकलित 42 दोषों का एवं गोचरी सम्बन्धी अन्य विवेक व्यवहारों का भी श्रावक को यथायोग्य ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इनका स्पष्टीकरण आगे परिशिष्ट में पढ़ें।

8. गोचरी के लिए पधारे मुनिराज के स्वागत रूप में जो यहां वंदन नमस्कार का वर्णन है, उससे तीन बार उठ बैठकर पंचांग झुका कर वंदन करना नहीं समझ लेना चाहिए। ऐसा करना अविधि एवं अविवेक कहलाएगा क्योंकि पंचांग नमा कर सविधि वंदना गोचरी या मार्ग गमन के समय नहीं किया जाता है। वहां तो केवल विनय व्यवहार एवं आदर सत्कार ही अपेक्षित होता है। यहां सूत्र में भी हाथ जोड़ कर तीन आवर्त्तन करके मस्तक झुका कर **''मत्थएण वंदामि''** ऐसा दूर से करने का ही आशय रहा हुआ है।

मुनिराज को रोकना, तीन बार उठ बैठ करना या चरण स्पर्श करना आदि विधि यहां अपेक्षित नहीं है, ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि गोचरी के समय इस प्रकार मुनिराज को रोकना एवं उन्हें विलंब करना अविवेक एवं आशातना रूप होता है।

सार- गोचरी एवं मार्ग में मुनिराज का कुछ दूर से ही आवर्त्तन पूर्वक स्वागत अभिनंदन एवं अभिवादन करना चाहिए।

9. आसन छोड़ना, पगरखी (जूते चप्पल) खोलना, मुंह के सामने वस्त्र का उत्तरासंग लगाना, ये विनय-वंदन के आवश्यक अंग है। सुमुख गाथापति आदि ने घर पर पधारे मुनिराज का विनय करने के लिए भी इन नियमों का पालन किया था। अतः मुनिराजों की सेवा में पहुंचना हो तो उत्तरासंग लगाने का कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिए। उत्तरासंग लगाये बिना मुनिराज की सेवा में जाना श्रावकाचार के विपरीत आचरण है।

10. सुपात्र दान देने में त्रेकालिक हर्ष होना चाहिए- 1. दान देने का अवसर सुसंयोग प्राप्त होने पर, 2. दान देते वक्त, 3 एवं दान देकर निवृत्त हो जाने पर।

11. सुपात्रदान की तीन शुद्धि 1. दाता के भाव शुद्ध हो। विवेक-वान हो एवं वह मुनि के नियमों के अनुसार शुद्ध अवस्था में भी हो। 2. लेने वाले मुनिराज सम्यक् ज्ञान, सम्यग् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र तप के पालन करने वाले आत्मार्थी। सुश्रमण हों, 3. देय वस्तु अचित्त एवं कल्पनीय हो, उद्गम एवं एषणा दोषों से रहित हो।

12. उक्त तीन शुद्धि एवं तीन हर्ष हों और दीर्घ तपस्या का पारणा हो तो वहां देवता खुश होकर पांच दिव्य प्रकट करते हैं।

13. पांच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि में देवकृत अचित्त पुष्प समझना चाहिए।

14. श्रावक स्वयं तो गृहस्थ जीवन में रहता है फिर भी मुनि बनने का सदा अनुमोदन करता है, उन्हें धन्य-धन्य समझता है। श्रावक के दूसरे मनोरथ के रूप में वह संयम प्राप्ति के अवसर की चाहना एवं प्रतिक्षा करता है।

नोट- विस्तृत जानकारी के लिए आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त विपाक सूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

।। विपाक सूत्र समाप्त ।।

परिशिष्ट-1

पाप-पुण्य विचारणा

कार्मणवर्गणा के पुद्गल, जीव के साथ बद्ध होने के पहले सभी समान स्वभाव वाले होते हैं, किन्तु जब उनका जीव के साथ बन्ध होता तो उनमें जीव के योग के निमित्त भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव उत्पन्न हो जाते हैं। वही स्वभाव जैनागम में "**कर्मप्रकृति**" के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी प्रकृतियां मूल में आठ है और फिर उनके अनेकानेक अवान्तर भेद-प्रभेद हैं।

विपाक की दृष्टि से कर्म प्रकृतियां दो भागों में विभक्त की गई है-अशुभ और शुभ। ज्ञानावरणीय आदि चार घातिकर्मों की सभी अवान्तर प्रकृतियां अशुभ है। अघातिकर्मों की प्रकृतियां दोनों भागों में विभक्त हैं- कुछ अशुभ और कुछ शुभ। अशुभ प्रकृतियां पापप्रकृतियां कहलाती हैं, जिनका फल-विपाक जीव के लिए अनिष्ट, अकांत अप्रिय एवं दुःखरूप होता है। शुभ कर्म-प्रकृतियों का फल इससे विपरीत यानी इष्ट,कान्त, प्रिय और सांसारिक सुख को उत्पन्न करने वाला होता है। दोनों प्रकार के फल विपाक को सरल, सरस और सुगम रूप में समझाने के लिए विपाकसूत्र के ये दृष्टान्त अत्यन्त उपर्युक्त हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि पाप और पुण्य दोनों प्रकार की कर्मप्रकृतियों का सर्वथा क्षय होने पर ही मुक्ति की प्राप्ति होती है, तथापि दोनों प्रकार की प्रकृतियों में कितना और कैसा अंतर है, यह तथ्य विपाक सूत्र में वर्णित कथानकों के माध्यम से समझा जा सकता है।

दुःखविपाक के कथानायक मृगापुत्र आदि भी अन्त में मुक्ति प्राप्त करेंगे और सुखविपाक में उल्लिखित सुबाहुकुमार आदि को भी मुक्ति प्राप्त होगी। दोनों प्रकार के कथानकों की चरम स्थिति एक सी होने वाली है। तथापि उससे पूर्व संसार परिभ्रमण का जो चित्रण किया गया है, वह विशेषरूप से ध्यान देने योग्य है। पापाचारी मृगापुत्र आदि को दिल दहलाने वाली, घोरतर, दुःखमय दुर्गतियों में से दीर्घ-दीर्घतर काल तक गुजरना होगा। अनेकानेक बार नरकों में, एकेन्द्रियों में तथा दूसरी अत्यन्त विषम एवं दुःख दायी योनियों में दुस्सह वेदनाएं भुगतनी होगी, तब ही कहीं जाकर उन्हें मानव-भव पाकर सिद्धि की प्राप्ति होगी।

पुण्य की प्रबलता में सुखमय जीवन-

सुखविपाक के कथानायक सुबाहुकुमार आदि को भी दीर्घकाल तक संसार में रहना होगा किन्तु उनके दीर्घकाल का अधिकांश भाग स्वर्गीय सुखों के उपभोग में अथवा सुखमय मानवभव में ही व्यतीत होने वाला है। वे घोर अनिष्टकारी दुःखदायी कर्मों का उपार्जन नहीं करते है। अतः दुःखों से दूर ही रहते है।

पुण्यकर्म के फल से होने वाले सुखरूप विपाक और पापाचार के फलस्वरूप होने वाले दुःखमय विपाक की तुलना करके देखने पर ज्ञात होगा कि पाप और पुण्य दोनों बन्धनात्मक होने पर भी दोनों के फल में अंधकार और प्रकाश जैसा अन्तर है। अतः संसार भ्रमण काल में समय व्यतीत करने की अपेक्षा से पुण्य उपादेय है और पाप हेय है।

यह सत्य है मुमुक्षु साधक एकांत संवर और निर्जरा के कारण भूत वीतराग भाव में रमण करना ही उपादेय मानता है फिर भी स्वभावतः उनके साथ पुण्य प्रकृतियों का संग्रह भी हो जाता है।

अतः संयमी जीवन में पुण्य संचय के लक्ष्य की आवश्यकता नहीं है। वह संवर निर्जरा के साथ स्वतः जुड़ा रहता है किन्तु गृहस्थ-जीवन आरंभ एवं परिग्रह में व विषय कषाय में संलग्न होता है अतःवहां संवर निर्जरा के साथ-साथ जीवन में पुण्य कर्म भी उपादेय हो जाते हैं। यों देखा जाय तो संसार में पुण्य साथ है तो उसके सब कुछ साथ है। पुण्य की प्रबलता है तो अनेक अपराध भी दब जाते हैं और व्यक्ति सर्वत्र सफलता ही प्राप्त करता है और यदि पुण्य की प्रबलता नहीं है तो अनेकों गुण एवं प्रयत्न भी निस्तेज एवं निरर्थक हो जाते हैं। एक कवि ने ठीक ही कहा है-

जब लग जिसके पुण्य का पहुंचे नहीं करार ।
तब लग उसको माफ है अवगुण करे हजार ।।
पुण्य क्षीण जब होत है उदय होत है पाप।
दाजे वन की लाकड़ी प्रजले आपो आप।।

मानव भव को प्राप्त कर आध्यात्म धर्म का संयोग मिल जाय तब तो सोने में सुगंध है किन्तु वहां तक पहुंचने में कुछ भी अंतराय हो तो जीवन में शुभ कर्म एवं पुण्य कर्म से वंचित तो नहीं रहना चाहिए। इसी आशय से चित्तमुनि ने संभूति राजा से धर्माचरण की आशा छूट जाने पर उसे शुभ कर्म, आर्य कर्मों की प्रेरणा इन शब्दों में की-

''जइ तंसि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायः।''

सारः मुक्ति प्राप्ति की सर्वोत्कृष्ट साधना के अवसर के पूर्व पुण्य एवं शुभ कर्म भी उपादेय है एवं आत्मा को अपेक्षाकृत सुख-शांति देने वाले होते हैं किन्तु आसक्ति का विष वहां भी हेय ही समझना चाहिए।

परिशिष्ट-2

सूत्र में प्रयुक्त सरीखे शब्दों का अर्थ

इष्ट- जो चााहने योग्य हो, जिसकी इच्छा की जाय, वह इष्ट होता है।

इष्टरूप- अत्यधिक इष्ट अर्थात् तद्‌रूप।

कांत- इष्टरूपता भी अन्यान्य कारणों से होती हैं, उसमें एक कारण है-कांत रमणीय सुन्दर।

कान्तरूप- अत्यन्त सुंदर।

प्रिय- प्रेम का उत्पादक जो हो वह प्रिय प्रीतिजनक।

प्रियरूप- अत्यन्त प्रीतिजनक।

मनोज्ञ- मनोज्ञरूपः-मनोनुकूल मन भावन स्वभाव वृति वाला।

मनोम, मनोरूप- दीर्घकालीन मनोज्ञता।

सोम- सौम्य स्वभाव वाला।

सुभग- वल्लभता वाला।

सुरूप- सुडौल सुंदराकार शरीर।

प्रियदर्शन- जिसका दर्शन प्रियकर हो।

परिशिष्ट-3

कर्म की अवस्थाएं

कर्म की विभिन्न अवस्थाएं हैं। मुख्य रूप से उन्हें ग्यारह भेदों में विभक्त कर सकते हैं। 1. बन्ध, 2. सत्ता, 3. उद्वर्तन-उत्कर्ष, 4. अपवर्तन-अपकर्ष, 5. संक्रमण, 6. उदय, 7. उदीरणा, 8. उपशमन, 9. नियति, 10. निकाचित और 11. अबाधाकाल ।

(1) बन्ध- आत्मा के साथ कर्म-परमाणुओं का सम्बन्ध होना, क्षीर-नीरवत् एकमेक हो जाना बंध है।

(2) सत्ता- बद्ध कर्म अपना फल प्रदान कर जब तक आत्मा से पृथक नहीं हो जाते तब तक वे आत्मा से ही सम्बद्ध रहते हैं। इसे जैन दार्शनिकों ने ''**सत्ता**'' कहा है।

(3) उद्वर्तन-उत्कर्ष- आत्म परिणामों में कषाय की तीव्र एवं मंद धारा के अनुसार कर्म की स्थिति और अनुभाग-बंध होता है उसके पश्चात् समय-समय पर होने वाले भाव-विशेष के कारण उस स्थिति एवं रस में जो वृद्धि होती है वह उद्वर्तन-उत्कर्ष है।

(4) अपवर्तन-अपकर्ष- पूर्वबद्ध कर्म स्थिति एवं अनुभाग को उद्वर्तन से विपरीत अर्थात् न्यून कर देना अपवर्तन-अपकर्ष है।

इन दोनों अवस्थाओं का सारांश यह है कि संसार को घटाने-बढ़ाने का आधार पूर्वकृत कर्म की अपेक्षा वर्तमान अध्यवसायों पर भी विशेष आधारित है।

(5) संक्रमण- एक प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि का दूसरे प्रकार के कर्म परमाणुओं की स्थिति आदि के रूप में परिवर्तित हो जाने की प्रक्रिया को संक्रमण कहते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन के लिए कुछ निश्चित मर्यादाएं हैं अर्थात् अमुक-अमुक में ही आपस में परिवर्तन होता है। वह संक्रमण चार प्रकार का है-(1) प्रकृति-संक्रमण (2) स्थिति-संक्रमण (3) अनुभाव-संक्रमण (4) प्रदेश-संक्रमण।

(6) उदय- कर्म का फल प्रदान ''**उदय**'' है। यदि कर्म अपना फल देकर निर्जीण हो तो वह फलोदय विपाकोदय है और फल दिये बिना ही उदय में आकर नष्ट हो जाय तो वह प्रदेशोदय है।

(7) उदीरणा- नियत समय से पूर्व कर्म का उदय में आना ''**उदीरणा**'' है। जैसे समय के पूर्व ही प्रयत्न से आम आदि फल पकाये जाते हैं वैसे ही साधना के द्वारा बद्ध कर्म को नियत समय से पूर्व भोग कर क्षय किया जा सकता है। सामान्यतः यह नियम है कि जिस कर्म का उदय होता है उसी के सजातीय कर्म की उदीरणा होती है।

(8) उपशमन- कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी उदय में आने के लिए उन्हें अक्षम बना देना ''**उपशम**'' है अर्थात् कर्म की वह अवस्था जिसमें उदय अथवा उदीरणा संभव नहीं हो किन्तु उद्वर्तन, अपवर्तन् और संक्रमण की संभावना हो, वह '' उपशमन '' है जैसे अंगारे को राख से इस प्रकार आच्छादित कर देना जिससे वह अपना कार्य न कर सके। किन्तु जैसे आवरण के हटते ही अंगारे जलने लगते हैं वैसे ही उपशम भाव के दूर होते ही उपशान्त कर्म उदय में आकर अपना फल देना प्रारम्भ कर देते हैं।

(9) निधति- जिसमें उद्वर्तन अपवर्तन होना संभव हो किंतु उदीरणा या संक्रमण नहीं हो सकता हो वह ''**निधत्त**'' है।

(10) निकाचित- जिसमें उद्वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण एवं उदीरणा इन चारों अवस्थाओं का अभाव हो वह ''**निकाचित**'' है अर्थात् आत्मा ने जिस रूप में कर्म बांधा है, प्रायः उसी रूप में भोगना पड़ता है। भोगे बिना उसकी निर्जरा या परिवर्तन नहीं होता है।

(11) अबाधाकाल- कर्म बंधने के पश्चात् अमुक समय तक फल न देने की अवस्था का नाम ''**अबाधाकाल**'' है। इस काल में प्रदेशोदय भी नहीं होता है। अबाधाकाल को जानने का प्रकार यह है कि जिस कर्म की स्थिति जितने सागरोपम की है, उतने ही सौ वर्ष का अबाधाकाल होता है। जैसे-ज्ञानावरणीय की स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम की है तो अबाधाकाल तीस सौ (तीन हजार) वर्ष का है। भगवती सूत्र में अष्ट कर्म-प्रकृतियों का अबाधाकाल बताया है और प्रज्ञापना सूत्र में उनकी उत्तर-प्रकृतियों का भी अबाधाकाल स्पष्ट किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को उक्त आगम देखने चाहिए।

अबाधाकाल में निषेक रचना- सात कर्मों के अबाधाकाल जितने स्थिति बंध के साथ प्रदेश बंध नहीं होता है। आयुष्य कर्म में अबाधाकाल के स्थिति बंध के साथ प्रदेश बंध अर्थात् कर्म पुद्गलों का भी बंध होता है।

अतः सात कर्मों के अबाधकाल की निषेक रचना में और आयुष्य कर्म के अबाधाकाल की निषेक रचना में कुछ अंतर होता है। इस कारण सात कर्मों के अबाधाकाल में प्रदेशोदय नहीं होता है किंतु आयुष्य कर्म के अबाधाकाल में प्रदेशोदय होता है। अतः प्रदेशोदय दो आयुष्य का एक साथ हो सकता है विपाकोदय एक आयुष्य का ही होता है।

जीव अपना जितना आयुष्य शेष रहने पर अगले भव का आयुष्य बांधता है उतने समय का ही आयुकर्म का अबाधाकाल होता है। यह आयुष्य कर्म का अबाधाकाल उत्कृष्ट 1/3 उम्र जितना हो सकता है।

परिशिष्ट-4

पुरुषार्थ से भाग्य में परिवर्तन हो सकता है-

वर्तमान में हम जो पुरुषार्थ करते हैं, उसका फल अवश्य ही प्राप्त होता है। भूतकाल की दृष्टि से उसका महत्व अधिक भी है और कम भी। वर्तमान में किया गया पुरुषार्थ यदि भूतकाल में किये गये पुरुषार्थ से दुर्बल है तो वह भूतकाल के किये गये पुरुषार्थ पर नहीं छा सकता। यदि वर्तमान में किया गया पुरुषार्थ भूतकाल के पुरुषार्थ से प्रबल है तो वह भूतकाल के पुरुषार्थ को अन्यथा भी कर सकता है, बदल सकता है।

यदि कर्म की केवल बंध और उदय ये दो ही अवस्थाएं होती तो बद्ध कर्म में परिवर्तन को अवकाश नहीं होता, किन्तु अन्य अवस्थाएं भी है। **यथा-** (1) उद्वर्तन (2) अपवर्तन (3) उदीरणा (4) संक्रमण।

उद्वर्तन अपवर्तन से कर्मों की स्थिति और रस बढ़ घट सकता है, उदीरणा से कर्मों को तप आदि से जल्दी क्षय कर दिया जाता है। संक्रमण से शुभकर्म अशुभ में और अशुभ कर्म शुभ में परिवर्तित हो जाते हैं। ये चार कर्म अवस्थाएं मानव या प्राणी के लिए पुरुषार्थ से भाग्य को परिवर्तन करने में अनुपम अवसर (चांस) देने वाली है। अतः व्यक्ति को कर्माधीन होकर हताश नहीं होना चाहिए। अनेकांत सिद्धान्त में ऐसी एक से एक कड़िएं हैं, जिनसे नई चेतना मिलती है। इसी कारण पांच समवायों में पुरुषार्थ को व्यवहार प्रधान कहा गया है। फिर भी कहीं भाग्य की जीत भी सुरक्षित रहती है।

कर्मों की कुछ अवस्थाएं ऐसी भी होती है जिसमें पुरुषार्थ से भी परिवर्तन संभव नहीं होता है। वह कर्मों की ''निकाचित'' अवस्था कहलाती है।

इस प्रकार सफलता की आशा की गुंजाइश होने से मानव को पुरुषार्थरत रहना चाहिए। भाग्य के भरोसे हताश होकर नहीं बैठना चाहिए। कहा भी है-

उद्यमेन हि सिद्धयंति कार्याणि न मनोरथै।
परिश्रम ही सफलता की कुंजी है।

- शरीर सुंदर मिलना अंगोपांग योग्य मिलना, सशक्त मिलना अथवा कमजोर मिलना, बेडोल शरीर मिलना, कान आंख के साधन कमजोर मिलना, यह सब नाम कर्म के उदय संयोग से होता है।
- मिले शरीर से कष्ट पाना या सुखी रहना, रोग भुगतना, अंगोपांग टूटना अथवा उम्र भर कोई भी रोग कष्ट न आना, यह सब वेदनीय कर्म के उदय संयोग से होता है।
- आंख में चश्मे का, कान में मशीन का, संयोग मिल जाना, यह ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्म क्षयोपशम के संयोग से होता है।
- कैसे भी कर्म संयोग में दुःखी नहीं होना, सदा प्रसन्न रहना सम परिणामों में रहना, यह चारित्रमोहनीय कर्म के रति अरति प्रकृति के क्षयोपशम संयोग से होता है।
- चारित्र मोह का क्षयोपशम भी शुभ पुरुषार्थ संवर पुरुषार्थ से होता है। यही चारित्र मोह का आदर्श क्षयोपशम महात्माओं को सम परिणामी बनने में बहुत सहयोगी होता है।
- समभावों में रमण करना ही साधना का प्रमुख लक्ष्य है।

परिशिष्ट-5

एषणा के 42 दोष-उद्गम के 16 दोष-

(1) व्यक्तिगत किसी साधु के निमित्त अग्नि, जल आदि का आरंभ करके कोई वस्तु बनाना ''**आधाकर्म दोष**'' है।

(2) साधुओं के किसी एक या अनेक समूह की अपेक्षा से अग्नि, पानी आदि का आरंभ करके कोई वस्तु तैयार करना ''**उद्देशिक दोष**'' है।

(3) प्रथम दोष (आधार कर्म) युक्त पदार्थ का लेप मात्र भी जिस किसी निर्दोष आहार में लग जाय तो वह आहार ''**पूतिकर्म दोष**'' वाला कहा जाता है।

(4) गृहस्थ स्वयं के लिए साधुओं के लिए अर्थात् दोनों के मिश्रित उद्देश्य से अग्नि पानी का आरंभ करके कोई वस्तु तैयार करे तो वह वस्तु ''**मिश्र जात**'' दोष वाली होती है।

(5) अचित्त एवं निर्दोष वस्तु को लम्बे समय के लिए साधु के निमित्त स्थापित कर दे और अन्य किसी काम में नहीं ले या किसी को भी नहीं दे, केवल श्रमण के लिए देना निश्चित कर दे तो वह वस्तु ''**ठवणा**''- स्थापना दोषयुक्त कही जाती है। यह घर की उपयोगी वस्तु की अपेक्षा है किन्तु घर के उच्छिष्ट (फैंकने) योग्य अचित जल को मुनियों के लिए संभाल कर रखा जाता है, उसे स्थापना दोष नहीं समझना चाहिए। यह तो श्रमणोपासक का विवेक कर्तव्य है।

(6) कोई भी वस्तु गृहस्थ के लिए बनने वाली है उस के समय में मुनि के निमित्त परिवर्तन करे अर्थात् सहज बनने के समय से कुछ पहले बनावे या कुछ देर से बनावे तो यह पाहुडिया- प्राभृतिक दोष कहलाता है।

(7) अग्नि या दीपक जलकार प्रकाश करके देना यह ''**पाओअर दोष**'' है।

(8) साधु के निमित्त से कोई भी वस्तु खरीदे तो यह ''**क्रीत**'' दोष है।

(9) साधु के लिए किसी से कोई वस्तु उधार लाकर रखना यह ''**प्रामृत्य दोष**'' है।

(10) साधु के लिए एक वस्तु दूसरी वस्तु से अदल-बदल करना यह ''**परिवर्तन दोष**'' है।

(11) साधु के निमित्त कोई भी वस्तु कहीं दूर जाकर के लाना या घर से उपाश्रय में लाना, दुकान से घर में लाना, ग्रामांतर से लाना यह ''**अभिहड दोष**'' है अर्थात् साधु के लिए विशेष गमनागमन करके लाई गई वस्तु ''**अभिहड दोष**'' वाली होती है। घर में तीन कमरे जितनी दूरी से कोई भी वस्तु लाकर देना अभिहड दोष नहीं है अथवा स्वयं के लिए कोई गमनागमन करे उसमें ही साधु के लिए किसी कल्पनीय पदार्थ को ले आवे तो यह अभिहड दोष'' नहीं है।

(12) ढ़क्कन खोलने में या सील तोड़ने में यदि जीव विराधना हो तो उसे खोल कर देना ''**उद्भिन्नदोष**'' है।

(13) गिरने पड़ने की संभावना से युक्त निसरणी आदि लगाकर ऊंचे या नीचे से कोई वस्तु लाकर देना ''**मालोहड दोष**'' है।

(14) कोई किसी से जबरन छीन कर या अनिच्छा से किसी की वस्तु लेकर साधु को दे तो यह ''**आछिन्न दोष**'' है।

(15) जिसकी वस्तु है उसको पूछे बिना ही कोई लेकर के देवे तो ''**अनिसृष्ट दोष**'' है। अर्थात् यह अदत्त दोष है।

(16) गृहस्थ के लिए अग्नि आदि के आरंभ से निष्पन्न होने वाली वस्तु में साधु के निमित्त कुछ मात्रा अधिक कर देना, बढ़ा देना, यह ''**अध्यवपूर्वक दोष**'' है।

उत्पादन के 16 दोष-

(1) बच्चों की रखवाली संभाल करके आहार प्राप्त करना ''**धातृपिण्ड दोष**'' है।

(2) संदेशवाहक का काम करके आहार प्राप्त करना ''**दूती पिंड दोष**'' है।

(3) निमित्त बताकर आहार प्राप्त करना ''**निमित्त पिंड दोष**'' है।

(4) अपना परिचय एवं गुण बताकर आहार प्राप्त करना ''**आजीवक पिंड दोष**'' है।

(5) दान का फल कहते हुए, दाता को आशीर्वचन कहते हुए भिखारी की तरह दीनता करके आहार प्राप्त करना ''**वनीपक पिंड दोष**'' है।

(6) औषध उपचार बताकर आहार प्राप्त करना ''**चिकित्सा पिंड दोष**'' है।

(7) कुपित होकर अथवा कुपित होने का भय दिखा कर आहार प्राप्त करना ''**क्रोध पिंड दोष**'' है।

(8) भिक्षा न देने पर घमंडपूर्वक कहना ''**मैं भिक्षा लेकर रहूंगा**''। फिर बुद्धि प्रयोग द्वारा घर के अन्य सदस्य से भिक्षा प्राप्त करना ''मान पिंड दोष'' है।

(9) रूप वेश बदल बदल कर छलपूर्वक भिक्षा प्राप्त करना ''**माया पिंड दोष**'' है।

(10) इच्छित वस्तु मिलने पर विवेक न रखते हुए अतिमात्रा में लेना। इच्छित वस्तु नहीं मिले वहां तक घूमते रहना, अन्य कल्पनीय वस्तु भी नहीं लेना ''**लोभ पिंड दोष**'' है।

(11) दाता के गुणग्राम प्रशंसा करके आहार प्राप्त करना या आहार लेने के बाद गुणानुवाद करना ''**पूर्व पश्चात् संस्तव दोष**'' है।

(12) विशिष्ट साधना विधि से प्राप्त हुई विद्या के निमित्त से आहार प्राप्त करना ''**विद्या पिंड दोष**'' है।

(13) जाप करने से सिद्ध मंत्र के निमित्त से आहार प्राप्त करना ''**मंत्र पिंड दोष**'' है।

(14) वशीकरण आदि चूर्ण के निमित्त से आहार प्राप्त करना ''**चूर्ण पिंड दोष**'' है।

(15) पादलेप, अंजन प्रयोग, अंतर्धान क्रिया आदि के निमित्त से आहार प्राप्त करना ''**जोगपिंड दोष**'' है।

(16) गर्भपात आदि पाप कृत्य सूचत कर आहार प्राप्त करना ''**मूलकर्म दोष**'' है।

एषणा के दस दोष-

(1) देय अचित्त वस्तु संघट्टा आदि के कारण कल्पनीय है या अकल्पनीय है ऐसी सशंक अवस्था में साधु का लेना या दाता का देना ''**शंकित दोष**'' है।

(2) पानी से गीले हाथ चम्मच आदि से आहार देना या लेना ''**मृक्षित दोष**'' है।

(3) अचित्त देय वस्तु सचित्त पर रखी हो या सचित्त के निकट अनंतर संघट्टे में रखी हो वह लेना या देना ''**निक्षिप्त दोष**'' है।

(4) अचित्त देय वस्तु के ऊपर सचित्त वस्तु रखी हो उसे हटा कर देना या लेना ''**पिहित दोष**'' है।

(5) किसी बर्तन से सचित्त वस्तु खाली करके उससे आहार देना या लेना ''**साहरित दोष**'' है।

(6) बालक, अंधे व्यक्ति एवं गर्भवती स्त्री या विराधना करते हुए देने वाले व्यक्ति से आहार लेना और उसका देना ''**दायक दोष**'' है।

(7) कुछ सचित्त हो और कुछ अचित्त हो ऐसे मिश्र पदार्थ लेना या देना ''**मिश्रदोष**'' है।

(8) शस्त्र परिणत हुए बिना ही या पूर्ण शस्त्र परिणत हुए बिना ही फल, मेवे, पानी आदि पदार्थ लेना या देना ''**अपरिणत दोष**'' है।

(9) सचित्त नमक, पृथ्वी खार, मिट्टी आदि या वनस्पति के सचित्त चूर्ण, चटनी या टुकड़े आदि से लिप्त हाथ या चम्मच से आहार लेना या देना ''**लिप्त दोष**'' है।

(10) आहार या पानी को भूमि पर गिराते हुए देवे उसे ग्रहण करे तो यह ''**छंदित दोष**'' है।

इन दोषों का एवं विवेक रख कर सुपात्र दान देना चाहिए।

घर का विवेक-

(1) घर में खाना बनने एवं खाने का स्वाभाविक ही सही समय होना चाहिए।

(2) घर में निपजने वाले या रहने वाले अचित्त खाद्य पदार्थ सही योग्य स्थान पर ही रखने चाहिए।

(3) सचित्त अचित्त वस्तुओं के रखने की व्यवस्था घर में अलग-अलग होनी चाहिए।

(4) भोजन गृह में या देय वस्तु के कक्ष में सचित्त वस्तुएं अस्त-व्यस्त नहीं रखना चाहिए।

(5) घर के कक्षों में, गमनागमन के मार्ग में सचित्त पदार्थों को नहीं बिखरने का विवेक होना चाहिए। बच्चों को एवं घर के प्रत्येक सदस्य को इस प्रकार के संस्कार देने चाहिए।

(6) रसाई घर में उपयोग में आने वाला सचित्त जल विवेक से योग्य स्थान में रखना चाहिए।

(7) हरी सब्जी काटने, सुधारने आदि के लिए मार्ग में न बैठ कर एक तरफ बैठना चाहिए।

(8) कोई भी सचित्त पदार्थ, सचित्त कचरा घर में बिखर जाय तो उसे साफ सफाई करने में आलस्य व लापरवाही नहीं करनी चाहिए।

(9) घर का मुख्य दरवाजा भिक्षा के समय अंदर से बंद नहीं रखना चाहिए।

(10) घर के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को भिक्षा सम्बन्धी सुसंस्कारों से भावित एवं अभ्यस्त करते रहना चाहिए।

(11) भिखारी आदि को घर के आगे अधिक समय तक खड़ा नहीं रहना पड़े ऐसा विवेक रखना चाहिए।

(12) अग्नि, चूल्हे आदि पर निष्पन्न भोजन जैसे- साग,रोटी, दूध आदि को सचित्त पर या सचित्त के संघट्टे में न रख कर योग्य स्थान पर रखना चाहिए।

(13) दिन भर बीड़ी, सिगरेट पीना, पान खाते रहना, सचित्त पदार्थ खाते रहना या भोजन करते समय सचित्त पदार्थ खाना या संघट्टे में रख कर बैठना, अविवेक प्रवृतियां हैं, ऐसी आदतें छोड़नी चाहिए अन्यथा सुपात्रदान का अवसर प्राप्त होने पर भी लाभ से वंचित रहना पड़ता है।

(14) निःस्वार्थ भक्ति भाव से एवं निर्जरा के लिए,घमंड, कपट का त्याग करके, विवेक पूर्वक शुद्ध-सरल भावों से, दान देना चाहिए।

(15) अन्य भी अनेक दोष एवं विवेक हैं जिनकी जानकारी दशवैकालिक सूत्र, आचारांग सूत्र एवं आवश्यक सूत्र आदि से जान लेनी चाहिए।

नोट- इन विधि नियमों का चाट घर में योग्य स्थान पर लगाकर रखना चाहिये।

सूत्रों के श्लोक प्रमाण एवं उपधान-

क्र.सं.	नाम	श्लोक	उपधान तप
1.	आचारांग सूत्र	2500	50
2.	सूयगडांग सूत्र	2100	30
3.	ठाणांग सूत्र	3770	18
4.	समवायांग सूत्र	1667	3
5.	भगवती सूत्र	15752	186
6.	ज्ञाता धर्म कथा सूत्र	5500	33
7.	उपासक दशा सूत्र	812	14
8.	अंतगड़दशा सूत्र	900	12
9.	अणुत्तरोपपातिक सूत्र	292	7
10.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	1250	14
11.	विपाक सूत्र	1216	24
12.	उववाई सूत्र	1200	3
13.	रायप्पसेणीय सूत्र	2078	3

14.	जीवाभिगम सूत्र	4700	3
15.	पन्नवणा सूत्र	7787	38
16.	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	4146	10
17.	चन्द्र-सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	2200	3
18.	उपांग सूत्र (निरयावलिकादि)	1109	7
19.	निशीथ सूत्र	1815	10
20.	दशाश्रुतस्कंध सूत्र	750	
21.	वृहत्कल्प सूत्र	473	20
22.	व्यवहार सूत्र	835	
23.	उत्तराध्ययन सूत्र	2100	29
24.	दशवैकालिक सूत्र	700	15
25.	नंदी सूत्र	700	3
26.	अनुयोग द्वार सूत्र	1899	10
27.	आवश्यक सूत्र	125	8

ज्ञातव्य- यह बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ का परिमाण बताया गया है अर्थात् 32 अक्षरों का एक श्लोक होता है और आचारांग सूत्र का मूल पाठ ऐसे 2500 श्लोक जितना है। इसी प्रकार सभी सूत्रों का श्लोक परिमाण कहा गया है।

यह परिमाण किसी समय माप करके आंका गया है। इसमें काल क्रम से कुछ हीनाधिक होना भी संभव है। संक्षिप्त विस्तृत पाठों के कारण से भी फर्क हो सकता है। अतः जहां उस सूत्र का श्लोक परिमाण बताया गया है वहां ध्यान रख कर ऐसा सूचित किया गया है कि इतने श्लोक परिमाण यह सूत्र माना जाता है।

उपधान- प्रत्येक सूत्र के गुरुगम वाचनी के साथ या बाद में कुछ तप करना आवश्यक होता है। क्योंकि ज्ञान की आराधना में उपधान करना आवश्यक माना गया है। आगमों में साधु और श्रावक दोनों के श्रुत अध्ययन और उसके उपधान का विधान वर्णन आता है। प्रमाण के लिये देखें नंदी सूत्र।

यह जो उपधान तप की संख्या बताई गई है वह आयंबिल करने की संख्या है। यदि उपवास करना हो तो 2 आयंबिल = एक उपवास होता है।

नोट- उक्त श्लोक परिमाण एवं उपधान संख्या में कई मतांतर प्राप्त होते हैं। कुछ परिश्रम करके शुद्ध संख्या देने का लक्ष्य रखा गया है।

औपपातिक सूत्र

प्रस्तावना-

संसार सागर के भव चक्र में से छुटकारा पाने की लालसा प्रत्येक भव्य प्राणी में होती है। इसमें देव, गुरू एवं शास्त्र अनन्य सहयोगी हैं। तीर्थंकर महाप्रभु के सदुपदेश से गणधर भगवंतों ने 12 अंगों की रचना की। तत्पश्चात् मूर्धन्य आचार्य भगवंतों ने इसी आधार पर अनेक रचनाएं प्रस्तुत की, जिन्हें अंग बाह्य रचनाओं में शामिल किया गया। नंदी सूत्र में अंगप्रविष्ट और अंग बाह्य ये दो प्रकार आगम के कहे हैं तथा अंग बाह्य के भी दो विभाग किए हैं- कालिक और उत्कालिक। यह प्रस्तुत औपपातिक सूत्र उत्कालिक अंग बाह्य सूत्र है। प्रचलित परंपरा में यह प्रथम उपांग सूत्र माना जाता है। उपांगों की संख्या भी बारह मानी जाती है। उपांग और उपांगों की संख्या ये दोनों ही भ्रम से प्रचलित हुई एक कल्पना ही है। वास्तव में 'उपांग सूत्र' नामक एक स्वतंत्र सूत्र है। उनके निरियावलिका आदि पांच वर्ग है। भ्रम से उन्हें ही पांच उपांग सूत्र मानकर एवं औपपातिक आदि सात सूत्र जोड़कर बारह सूत्र उपांग कहे जाने लगे हैं। साथ ही इन्हें 12 अंग सूत्रों से सम्बन्धित करने की विचारणा भी प्रस्तुत की जाती है। किन्तु इन्हें भ्रम पूर्ण असत्कल्पना मात्र ही समझना चाहिए।

औपपातिक का अर्थ है नारक एवं देवों में उपपात-जन्म और सिद्धि। इस औपपातिक सूत्र का विषय दो अध्याय के रूप में माना जाता है। प्रथम का नाम समवसरण है, दूसरे का नाम उपपात है। प्रथम अध्याय में नगरी उद्यान, चैत्य, वृक्ष, राजा, भगवान महावीर का शरीर, उनकी शिष्य सम्पदा, परिषद में देव मनुष्य एवं नरेंद्र का आगमन, मौलिक उपदेश, व्रत धारण, शिष्य सम्पदा, परिषद विसर्जन आदि वर्णन है। दूसरे अध्याय रूप विभाग में असंयत जीवों का, परिव्राजकों का एवं कुश्रमणों का देवों में उत्पन्न हाने का वर्णन है सुश्रमणों एवं सुश्रावकों का आचार, गुण एवं आराधना का वर्णन है। अन्त में आराधक सुव्रती जीवों की देवगति एवं सिद्धगति, केवली समुद्घात, सिद्ध स्वरूप एवं सुखों का वर्णन है।

विशेषताएं-

इसमें एक ओर जहां सामाजिक, राजनैतिक, नागरिक चर्चाएं हैं तो दूसरी ओर धार्मिक, दाशनिक, सांस्कृतिक तथ्यों का सुन्दर प्रतिपादन है। इस सूत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भगवती आदि अंग आगमों में भी इस सूत्र को देखने का संकेत किया है। इसका कारण यह है कि यहां अनेक विषयों का विस्तार से वर्णन है जिनका कि अन्य सूत्रों में संक्षिप्त कथन है। इसमें श्रमण भगवान महावीर के समस्त अंगोंपांगों का उपमायुक्त वर्णन है। समवसरण का भी सजीव चित्रण हुआ है। भगवान की उपदेश विधि भी यहां सुरक्षित है। तप का सुन्दर विश्लेषण भेद-प्रभेदों द्वारा किया गया है। इसमें वैदिक और श्रमण परंपरा के परिव्राजकों, तापसों एवं श्रमणों की आचार संहिता भी दी गई है। उसी बीच अम्बड़ सन्यासी का रोचक वर्णन है। अन्त में सिद्धावस्था का सांगोपांग स्वरूप समझाया गया है। इस सूत्र का परिमाण 1200 श्लोक प्रमाण माना गया है।

संस्करण–

इस सूत्र के समय समय पर अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। जिसमें अभयदेव सूरि कृत संस्कृत टीका, आचार्य श्री घासीलालजी म. सा. कृत संस्कृत टीका एवं अनेक हिन्दी, गुजराती अर्थ युक्त प्रकाशन हुए हैं। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से विवेचन युक्त सुन्दर प्रकाशन अभी अभी हुआ है। प्रस्तुत आगम सारांश में भी इस सूत्र का सारांश देने का उपक्रम किया गया है। जो पाठकों के कर कमलों में पहुंचाया गया है।

संयोजक
विमलकुमार नवलखा

औपपातिक सूत्र

प्रथम समवसरण अध्याय

(1) चम्पानगरी का वर्णन– अंग देश की राजधानी चम्पानगरी महान वैभवशाली, समृद्ध एवं सुरक्षित नगरी थी। नागरिक जन एवं आगंतुकों के लिए आनन्द देने वाली थी। मनुष्यों की घनी आबादी थी। गायों, भैंसों, भेड़ों, मुर्गों, सांडों, पशु-पक्षियों आदि की नगरी में प्रचुरता थी। नगरी के बाहर के रास्तों के किनारे इक्षु, जौ, शालि के खेत आये हुए थे। आमोद-प्रमोद के अनेक साधनों से युक्त वह नगरी थी।

चोर, डाकू, लुटेरे, रिश्वतखोर, जेब काटने वाले, चूंगी वसूल करने वाले इत्यादि उस नगरी में नहीं थे। अतः वह सुख शांतिमय एवं उपद्रव मुक्त नगरी थी। भिक्षुओं के लिए वहां भिक्षा सुख पूर्वक मिल जाती थी। सघन बस्ती होते हुए भी वह शान्तिमय थी।

नट, नर्तक, पहलवान, मल्ल, मुक्केबाज, मस्करी करने वाले, कथा करने वाले, उछलने कूदने वाले, रास गाने वाले, बांस पर खेल दिखाने वाले, वाद्य बजाने वाले, मनोविनोद करने वाले अनेक जनों से वह नगरी परिपूर्ण थी।

वह नगरी बाग बगीचे, कुएं, बावड़ी, तालाब, आदि जल श्रोतों से परिपूर्ण थी। उस नगरी के चैतरफ विस्तीर्ण और गहरी खाई थी।

धनुषाकार परकोटे से घिरी हुई थी। परकोटा भी कंगूरे, अट्टालिकाओं, बारियों एवं सघन दरवाजों-नगर द्वारों तथा तोरणों से सुशोभित थी। वह नगरी योग्य शिल्पाचार्यों से निर्मित थी एवं अनेक विध शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण थी।

बाजार, व्यापार क्षेत्र, शिल्पियों, कारीगरों के आवास से नगरी सुख सुविधा पूर्ण थी। उस नगरी में अनेक तिराहे, चौराहे और अनेक रास्तों के स्थान दुकानों से सुसज्जित थे। हाथी घोड़ो रथ शिविका, पालखी, डोली यान गाड़ियां आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। उत्तम विशाल स्वच्छ भवनों से वह नगरी शोभायमान थी।

इस प्रकार के वैभव युक्त वह नगरी अनिमेष दृष्टि से देखने योग्य थी, चित्त को प्रसन्न करने वाली थी, दर्शनीय स्थल के सदृश थी, मनोज्ञ थी एवं मन में बस जाने वाली थी।

(2) पूर्ण भद्र चैत्य का वर्णन– चम्पानगरी के उत्तर पूर्व दिशा में बाहर की ओर एक यक्षायतन था, पूर्व काल से चला आ रहा यह यक्षायतन पूर्ण भद्र चैत्य के नाम से सुप्रसिद्ध था। यह लोगों के मनोतियां मानने का, चढ़ावा चढ़ाने का स्थान था और कुछ लोंगों के आजीविका का साधन भी था। यह छत्र, घंटा, ध्वजा, पताका युक्त था। यहां की भूमि गोबर से लीप पोत कर स्वच्छ रखी जाती थी, गोलोचन और लाल चन्दन के छापे लगे रहते थे, ताजे फूल और लम्बी मालाएं लटकी रहती थी, लोबान धूप आदि हरदम महकता था, यहां नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मुक्केबाज, मंख, तूंबी, वीणा वादक, पुजारी, भाट आदि जमे रहते थे। अनेक नगरवासी एवं जनपद वासियों में उसकी कीर्ति फैली हुई थी। उस यक्षायतन को अनेक लोग चन्दन आदि से अर्चनीय, स्तुति आदि द्वारा वंदनीय एवं नमन पूर्वक नमस्करणीय मानते थे। वस्त्रादि से

सत्कार करने योग्य, मन से सम्मान देने योग्य, कल्याण रूप अर्थात् कामनाओं को पूर्ण करने वाला, मंगलमय, अवांच्छनीय स्थितियों को मिटाने वाला, दैवी शक्ति युक्त, लोगों की अभिलाषाओं को जानने वाला एवं विनयपूर्वक उपासना करने योग्य मानते थे। दिव्य सत्य एवं सत्यफल देने वाला मानते थे। बहुत से लोग वहां अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए अर्चना करते एवं उसके नाम से हजारों व्यक्ति दान देते थे। यह पूर्णभद्र देव दक्षिण दिशा के यक्ष जातीय व्यंतरों का स्वामी इन्द्र है।

(3) वनखण्ड (बगीचे) का वर्णन– पूर्णभद्र यक्षायतन चारों और से विशाल वनखंड से घिरा हुआ था। वृक्ष लता आदि की सघनता आदि कारणों से वह वनखंड कहीं काली आभा वाला, कहीं नीली, हरी आभा वाला दिखता था। शीतल एवं स्निग्ध वातावरण वाला था। सुन्दर वर्ण आदि उत्कृष्ट गुणों से युक्त था। उन वृक्षों की छाया भी उक्त गुणों से युक्त थी। सघन छाया के कारण वह वन खण्ड महामेघ समूह की छाया के समान रमणीय आनन्द दायक लगता था।

(4) वृक्षों का वर्णन– उस वन खण्ड के वृक्ष उत्तम मूल, कन्द, स्कंध, शाखा, प्रशाखा (टहनियों) पत्ते पुष्प फल तथा बीज से युक्त थे। वृक्षों का प्रत्येक अंग सुन्दर सुडोल और मन मोहन था, इनके पास मोहकता के कारण आये विविध पक्षियों की आवाज एवं भ्रमरों की गुंजन कर्ण प्रिय थी, इनकी सुगंध और छाया आनन्ददायी थी। वे वृक्ष फूलों और फलों से आपूर्ण रहते थे एवं पत्तों एवं फलों से लदे रहते थे। उनके फल स्वादिष्ट निरोग एवं निष्कंटक होते थे। वहां विभिन्न प्रकार की सुंदर ध्वजाएं फहराती रहती थी। उस वन खण्ड में चौकोर गोल एवं लम्बी बावड़ियां थी। उसमें जाली झरोखों से युक्त सुन्दर जालघर बने हुए थे। वे वृक्ष अत्यन्त तृप्तिकारक विपुल सुगन्ध छोड़ते थे जिसकी महक दूर दूर तक जाती थी।

वह वन खण्ड अनेकानेक पुष्प गुच्छ, लताकुंज, मंडप, विश्राम स्थान एवं सुन्दर मार्गों से युक्त था। वहां कई प्रकार के झंडे लगे थे। वे वृक्ष रथों, वाहनों, डोलियों, पालखियों को ठहराने के लिए उपयुक्त विस्तार वाले थे।

इस प्रकार वे वृक्ष रमणीय, मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप-मनोज्ञ, प्रतिरूप-मन में बस जाने वाले थे।

(5) अशोक वृक्ष का वर्णन– इस वन खण्ड के बीचो-बीच सुंदर और विशाल अशोक वृक्ष था। वह सुन्दर गोलाकार विकसित था तथा उसका तना अनेकों धनुष प्रमाण अर्थात् काफी मोटा था, कन्द, पत्ते, प्रवास सुन्दर आकार में थे, नये पत्तों की ताम्र वर्णी चमक मन मोहक थी। सभी ऋतुओं में फूलों, मंजरियों, पत्तों से युक्त रहता था। पुष्प और फलों के कारण झुका हुआ नमा हुआ रहता था। तोते, मोर, मैना, कोयल, चकोर, तीतर, बटेर, बतख, सारस, हंस आदि पक्षियों के मधुर स्वरों से गुंजित था। भ्रमरों, मधुमक्खियों के समूह तथा मकरन्द शहद के लोभ से आये भ्रमरों की मस्ती देखते नजर आती थी, यह स्थान मदमस्त, चित्त को प्रसन्न कर देने वाला था। यह अशोक वृक्ष रमणीय, सुखप्रद, दर्शनीय, मनोज्ञ-मनोरम एवं मन में बस जाने वाला था। वह अशोक वृक्ष तिलक, लकुच, क्षत्रोप, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोद्र धव, चन्दन, अर्जुन, नीम, कुटज, कदम्ब, सव्य, पनस, दाड़िम, शाल, ताल, तमाल, प्रियक, प्रियंगु, पुरोपग, राजवृक्ष, नन्दिवृक्ष इत्यादि अनेक वृक्षों से घिरा हुआ था। वे वृक्ष भी उत्तम कोटि के थे एवं विविध लताओं से परिमंडित थे। वे लताएं सर्व ऋतुओं में फूलती थी।

(6) शिलापट्टक का वर्णन– अशोक वृक्ष के नीचे तने के पास चबूतरे की तरह जमी हुई मिट्टी पर स्थित एक शिलापट्टक था। लम्बाई, चैड़ाई और ऊंचाई समुचित प्रमाण में थी। चमचमाता हुआ यह काला रूप लिए शिलापट्टक आठ

कोनों वाला था, चिकना और कांच के समान साफ था। मनुष्य, मगर, पक्षी, सांप, किन्नर, अष्टापद, हाथी, घोड़े, बैल, भेड़िये, वनलता, पद्मलता के चित्रों से चित्रित था। स्पर्श करने पर बड़ा कोमल लगता था। आकार में सिंहासन जैसा था एवं सुखप्रद, दर्शनीय, मनोज्ञ एवं अति मनोज्ञ था।

(7) चम्पाधिपति कूणिक राजा का वर्णन- चम्पा नगरी का राजा कूणिक था। जो महा हिमवान पर्वत के समान महत्ता प्रधानता विशिष्टता युक्त था। उसके अंग पूर्णतः योग्य लक्षणों से युक्त थे। बहुत लोगों द्वारा सम्मानित और पूजित था। अनुशासनवर्ती अन्यान्य राजाओं द्वारा उसका राजतिलक हुआ था। स्वभाव से करूणाशील, मर्यादाओं की स्थापना एवं पालना कराने वाला था। सबके लिए अनुकूल स्थितियां बनानेवाला एवं उन्हें स्थिर बनाये रखने वाला था। मनुष्यों में इन्द्र के समान था। राष्ट्र के लिए पितृतुल्य, प्रतिपालक, हितकारक, कल्याणकारक, पथप्रदर्शक था। वैभव, सेना, शक्ति आदि की अपेक्षा से मनुष्यों में श्रेष्ठ था। सिंह के समान बलिष्ट एवं निर्भय था, बाघ के समान शूर, क्रोध में सर्प तुल्य, श्वेतकमल जैसा कोमल हृदयी, गंध हस्ती के समान अजेय था। उसके राज्य में बड़े बड़े विशाल भवन, आसन, रथ, घोड़े, सवारियां, वाहन आदि बड़ी मात्रा में थे। विपुल सम्पत्ति सोना चांदी के भडार थे। दास दासियां, गाय-भैंसे, भेंड़ें, विपुल खजाना, अन्न भंडार, शस्त्र भंडार प्रभूत सेना थी। वह समृद्ध, प्रभावयुक्त एवं सुप्रसिद्ध था। उसने सीमावर्ती राजाओं को स्वाधीन कर रखा था। विरोध रखने वालों को नष्ट प्रायः कर दिया था, उनका मान भंग कर दिया था, देश से निकाल दिया था अर्थात् अपने प्रभाव से उन्हें पराजित कर दिया था। इस प्रकार वह राजा अकाल, महामारी, उपद्रवों के भय से रहित, क्षेमकारी, विघ्नरहित राज्य का शासक था।

(8) धारणी महाराणी का वर्णन- कोणिक राजा के धारणी नाम की देवी (राणी) थी। उसके हाथ पैर सुकोमल थे। सभी इंद्रियां प्रतिपूर्ण थी। सौभाग्य सूचक उत्तम रेखाएं (लक्षण) तिल, मस आदि (व्यंजन) चिन्हों से युक्त थी। शील, सदाचार, पतिव्रत्य आदि गुणों से सम्पन्न थी। दैहिक फैलाव, वजन, ऊंचाई आदि की दृष्टि से परिपूर्ण, श्रेष्ठ तथा सर्वांग सुन्दरी थी। उसका आकार चन्द्र के समान सौम्य एवं प्रिय था। वह परम रूपवती थी। उसके देह का मध्य भाग (कमर) का विस्तार हथेली जितना एवं पेट पर पड़ने वाली तीन प्रशस्त रेखाओं से युक्त था। कानों में कुंडल शोभायमान थे। उसका मूख शरत् पूर्णिमा के चन्द्र के सदृश निर्मल परिपूर्ण तथा सौम्य था। उसकी वेशभूषा मानों श्रृंगार का घर रूप थी। उसकी चाल, हंसी, बोली, कृति एवं दैहिक चेष्टाएं समूचित थी। लालित्यपूर्ण आलाप-संलाप में वह चतुर थी। समुचित लोक व्यवहार में वह कुशल थी। इस प्रकार वह मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप थी। कोणिक राजा के साथ पांचों इंद्रिय जन्य मनुष्य सम्बन्धी सुखों का समुचित अनुभव करती थी।

(9) प्रवृत्ति निवेदक- कोणिक राजा ने प्रचुर वेतन पर एक ऐसा व्यक्ति नियुक्त कर रखा था जो भगवान महावीर स्वामी की प्रतिदिन की विहार क्रम आदि प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में जानकारी देता था। उस प्रवृत्ति निवेदक व्यक्ति ने अपनी तरफ से भोजन तथा वेतन पर अन्य अनेक व्यक्ति नियुक्त कर रखे थे जो भगवान की प्रतिदिन की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में जानकारी देते रहते थे।

(10) कूणिक की राज्य सभा- कूणिक राजा का बहिर्वर्ती राज्य सभा भवन था। उसमें अनेक गण नायक विशिष्ट जन समूह के नेता, उच्च आरक्षि अधिकारी, अधीनस्थ राजा, ऐश्वर्यशाली एवं प्रभावशाली पुरूष या युवराज, राज्य

सम्मानित स्वर्णपट्टधारी विशिष्ट नागरिक, जागीरदार, बड़े परिवारों के प्रमुख, मंत्रीगण, महामंत्री-प्रधान, ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य-राज्यधिष्ठायकराज्यकार्यों में परामर्शक, सेवक-राज्य सभा में निकटतम सेवारत पुरूष (चेडपीढमध्य), नागरिक, व्यापारिक, सेठ-मस्तक पर स्वर्ण पट्ट धारण करने वाले, सेनापति, सार्थवाह, दूत (संदेशवाहक), संधिपाल (सीमा रक्षक)- इन विशिष्ट पुरूषों से घिरा हुआ वह राज्य सभा भवन में सिंहासन पर शोभायमान होता था।

(11) भगवान महावीर स्वामी का वर्णन- श्रमण भगवान महावीर स्वामी धर्म की आदि करने वाले स्वयं संबुद्ध तीर्थंकर थे, पुरूषोत्तम आदि णमोत्थुणं पठित गुणों से युक्त थे। अरहा-पूज्यनीय, रागादि विजेता, केवल ज्ञान युक्त, सात हाथ की ऊंचाई से युक्त, समचौरस संस्थान एवं वज्र-ऋषभनाराच संहनन से युक्त, शरीर के अंतर्वर्ती पवन के उचित वेग से युक्त, निर्दोष गुदाशय युक्त, कबूतर के समान पाचन शक्ति वाले थे। पेट और पीठ के नीचे के दोनों पार्श्व तथा जंघाएं सुन्दर सुगठित थी। उनका मुख कमल सुरभिमय निश्वास से युक्त था। उत्तम त्वचा से युक्त, निरोग, उत्तम प्रशस्त अत्यन्त श्वेत मांस युक्त, जल्ल, मल, एवं दाग आदि से वर्जित शरीर था। अतएव निरूवलेप, स्वच्छ, दीप्ति से उद्योतित प्रत्येक अंगोपांग थे। उत्तम लक्षणमय उन्नत मस्तक था, मुलायम काले चमकीलें घुंघराले घने केश मस्तक पर थे। छत्राकार मस्तक का शिखर, फोड़े फुंसी घाव के चिन्हों से रहित, अर्द्ध चन्द्र समललाट, पूर्ण चन्द्र सममुख, सुहावने कान, पुष्टकपाल, कुछ खींचे हुए धनुष के समान सुन्दर टेढ़ी भोहें, पुंडरीक कमल के समान सफेद नयन, पद्मकमल के समान विकसित आंखें, गरूड़ की चोंच की तरह लम्बी, सीधी उन्नत नाशिका, बिम्ब फलके सदृश होठ एवं दांतों की श्रेणी, शंख या गाय के दूध के समान सफेद थी। दांत अखंड परिपूर्ण सुन्दराकार थे। जिब्हा और तालु तप्त स्वर्ण समान लाल थे। दाढ़ी मूंछ के बाल अवस्थित रहते थे। ढुड्डी मांसाल सुगठित थी। ग्रीवा गर्दन चार अंगुल चौड़ी उत्तम शंख के समान त्रिवली युक्त थी। उत्तम हाथी सम कंधे, गोल लम्बी भुजाएं, ठोस स्नायु, नागराज के समान विस्तीर्ण दीर्घ बाहु, ललाई युक्त हथेलियां, उन्नत कोमल सुगठित हाथ, निश्छिद्र अंगुलियां थी। उनकी हथेली में चन्द्रसूर्य चक्र दक्षिणावर्त्त स्वस्तिक आदि की संसूचक शुभ रेखाएं थी। उनका वक्षस्थल-सीना स्वर्ण शिला के तल के समान स्वच्छ, प्रशस्त, समतल विशाल था एवं स्वस्तिक चिन्ह युक्त था, मांसलता के कारण रीड़ की हड्डी दिखाई नहीं देती थी। शरीर स्वर्ण के समान दीप्त, सुन्दर, रोग रहित, सुनिष्पन्न एवं उत्तम पुरूष के 1008 लक्षण युक्त था। पार्श्वभाग-पसवाडे नीचे की और क्रमशः संकडे थे। छाती एवं पेट पर रोम राज़ी थी। उदर के नीचे के दोनों पार्श्व सुनिष्पन्न थे। मत्स्य जैसा उदर था। उनकी नाभि गोल, सुन्दर एवं विकसित थी। उत्तम सिंह की कमर के समान गोल घेराव लिए उनकी कमर थी।

उत्तम घोड़े के सुनिष्पन्न गुप्तांग की तरह गुह्य भाग था। उनका शरीर मल मूत्र विसर्जन की अपेक्षा से निर्लेप था। हाथी की सूंड की तरह गठित जंघाए थी। घुटने अति सुन्दर डिब्बे के ढकने के समान थे। हरिणी की पिडलियों के समान उतार सहित गोल पिंडलियां थी। उनके पांव के टखने सुन्दर सुगठित निगूढ़ थे। पांव मनोज्ञ बने हुए थे। पैरां की अंगुलियां क्रमशः आनुपातिक रूप में सुन्दर थी। नख तांबे के समान लाल थे। पगथलियां लाल कमल के पत्ते के समान सुकुमार कोमल थी। उसमें रेखाओं से पर्वत, नगर, मगर, सागर तथा चन्द्र रूप उत्तम चिन्ह एवं स्वस्तिक आदि मंगल चिन्ह अंकित थे। उनका रूप असाधारण था, उनका तेज निर्धूम अग्नि के समान था। वे प्राणातिपात आदि आश्रव रहित, ममता रहित, अकिंचन थे। निरूपलेख-कर्म बंध से रहित थे। निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेष्टा, धर्म शासन के नायक, चैतीस अतिशयों, पेंतीस सत्यवचनातिशयों

से युक्त थे। आकाशगत चक्र, छत्र, चंवर, स्वच्छ स्फटिक से बने पाद पीठ युक्त सिंहासन और धर्मध्वज, ये उनके आगे चल रहे थे। इस प्रकार से श्रमण भगवान महावीर 14000 साधु, 36000 साध्वियों के परिवार सहित आगे चलते हुए सुख शांति पूर्वक एक गांव से दूसरे गांव विहार करते हुए चम्पानगरी के बाहरी उपनगर में पहुंचे।

(12) सूचना एवं वन्दन– कूणिक को अपने सेवक द्वारा सूचना मिली कि जिनकी आप आकांक्षा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, जिनके नाम सुनने मात्र से हर्षित हो जाते हैं, वे ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर चम्पानगरी के उपनगर में पधारे है। यह सुनकर कूणिक राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए, उनके रोम रोम खिल गये। वे आदर पूर्वक सिंहासन से उतरे, पादुका, छत्र, चंवर, तलवार एवं मुकुट आदि राजचिन्हों को उतार कर जिस ओर भगवान महावीर विराज रहे थे, उधर 7-8 कदम चलकर भक्ति भाव से युक्त हाथ जोड़े और बायां घुटना ऊंचा करके बैठे तीन बार मस्तक भूमि पर लगाकर, पहले सिद्धों को और फिर भगवान महावीर स्वामी को णमोत्थुणं के पाठ से वंदन नमस्कार किया। तत्पश्चात राजा पूर्व की ओर मुंह करके सिंहासन पर बैठा और एक लाख आठ रजत मुद्राएं पारितोषिक रूप में सेवक को प्रदान की। उसे उत्तम वस्त्रादि से सत्कार कर कहा हे देवानुप्रिय! जब प्रभु चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य में पधारें तब सूचित करना दूसरे दिन भगवान महावीर स्वामी शिष्यों के साथ पूर्णभद्र चैत्य में पधार गये।

(13) भगवान महावीर की संपदा– भगवान महावीर के चौदह हजार अन्तेवासी शिष्य थे, उनमें से कई राजा, महाराजा, मंत्री, महामंत्री, सेठ, सार्थवाह, कुमार, राजकर्मचारी, सुभट, योद्धा, सेनापति, अधिकारी, सेठ, इभ्य सेठ आदि उत्तम जाति कुल गुण वाले थे। जिन्होंने सांसारिक भोग संबंधी सुखों को किंपाक फल के समान दुःखदायी जानकर, जीवन को जल बुद-बुदे के समान, ओस बिन्दु के समान, चंचल, नाशवान, जानकर प्राप्त सांसारिक ऋद्दि-संपदा, घर परिवार को त्यागकर सम्पत्ति का त्याग एवं वितरण या दान करके सम्पूर्ण सम्पदा को मानों वस्त्र पर लगी रज के समान झाड़ कर, त्याग कर, मुंडित होकर, श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समीप आत्म कल्याण साधना के लिए श्रमण दीक्षा अंगीकार की। उनमें से कईयों को दीक्षित हुए आधा महिना, एक महिना, दो, तीन, चार महिना हुआ था। कईयों को और अधिक महिने एवं वर्ष हुए थे अर्थात् विभिन्न दीक्षा पर्याय वाले अनेकानेक श्रमण थे। कई श्रमण मति एवं श्रुत यो दो-दो ज्ञान धारण करने वाले थे। कई अवधिज्ञानी, मनःपर्यव ज्ञानी एवं कई केवल ज्ञान दर्शन के धारी, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। कई श्रमण मनोबल, कई काय बल, कई वचन बल के उत्कृष्ट धारक थे। कई खेलोषधि आदि लब्धिजन्य विशेषताओं के धारक थे। कई कोष्ठ बुद्धि, बीज बुद्धि, पट बुद्धि, पदानुसारी बुद्धि के धनी थे। कई कानों के अलावा दूसरी इंद्रियों से शब्दग्रहण करने में सक्षम थे, और कई ऐसी अनेक विशेषताओं लब्धियों से युक्त थे। कई रत्नावली कनकावली, एकावली, लघुसिंह निष्क्रीडित, महासिंह निष्क्रीडित, भद्र प्रतिमा, महा भद्र प्रतिमा, सर्वतो भद्र प्रतिमा, आयंबिल वर्द्धमान तप के धारक थे। कई ॠजुमति, विपुलमति-मनः पर्यवज्ञान के धारक थे। कई आकाशगामिनि विद्या के या वैक्रिय लब्धि के धारक थे।

(14) स्थविरों के गुण– भगवान महावीर के अन्तेवासी कई स्थविर भगवंत (ज्ञान चारित्र में वृद्ध) जाति सम्पन्न, बल सम्पन्न, विनय सम्पन्न, ज्ञान संपन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, लज्जा सम्पन्न, लाधव-निरहंकार भाव (कषाय भाव रहित) सम्पन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, इन्द्रिजयी, निद्राजयी, परिहजयी जीवन मरण के भय से रहित, संयम गुण प्रधान, करण प्रधान, चारित्र प्रधान, इस प्रकार के यतिधर्म

युक्त निग्रह प्रधान, निश्चय प्रधान आर्जव, मार्दव, लाधव सम्पन्न, सान्त, दान्त, गुप्ति प्रधान, विद्या, मंत्र, वेद, ब्रह्मचर्य, नय, नियम, सत्य, शौच, कीर्ति, लज्जा, तप, अनिदान अल्प उत्सुक, अनपम मनोवृत्ति युक्त थे। वे वीतराग महाप्रभु के प्रवचन को प्रमाण भूत मानकर चलते थे।

(15) गुण निष्पन्न अणगार– भगवान महावीर के अंतेवासी बहुत से अणगार साधु थे, वे ईर्या, भाषा, ऐषणासमिति युक्त, भंडोपकरण रखने में एवं मल-मूत्र त्यागने में यतना युक्त थे। वे मन वचन काया से गुप्त थे। ब्रह्मचारी, अकिंचन, निरूपलप, क्रोध, द्वेष, राग, प्रेम प्रशंसा से रहित, निग्रंथ, शंख के समान निरंगण, वायु के समान अप्रतिहत, दल कपट रहित, कछुए की भांति गुप्तेंद्रिय, सौम्य, कोमल, तेज युक्त, लेश्यायुक्त, समुद्र सम गम्भीर, मेरू सम अप्रकम्प, परिषहों में अचल, भारण्ड पक्षी सम अप्रमत्त, हाथी सम शक्तिशाली, सिंह के समान अपराजेय, पृथ्वी समशील, उष्ण, अनुकूल प्रतिकूल सहन करने में सक्षम, ज्ञान तथा तप से दीप्त थे। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की आसक्ति रहित थे। वे साधु वर्षावास के चार महिने छोड़कर आठ महिनों में गांव में एक रात, नगर में पांच रात (दिवस क्रम से एक सप्ताह और पांच सप्ताह यानि उनतीस दिन) निवास करते थे। चन्दन की तरह अपना अपकार करने वाले पर भी उपकार की वृत्ति रखते थे, अनासक्त थे, मोक्षाभिगामी और कर्मों का नाश करने वाले थे। ये निर्ग्रंथ मुनि 6 प्रकार का बाह्य तप और 6 प्रकार का आभ्यन्तर तप यों 12 प्रकार के तप में से यथा योग्य विविध तप करने वाले थे। इस प्रकार के तप संयम में आत्मा को भावित करने वाले गुण सम्पन्न भगवान के अंतेवासी शिष्य थे।

टिप्पण– 1.बारह प्रकार के तप का सामान्य वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र सारांश अध्ययन 30 में है। भेदानुभेद एवं विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र सारांश श. 25 उद्देश्य 6 में है। तपस्याओं का वर्णन अंतगड सूत्र सारांश में देखें तथा पड़िमाओं का वर्णन व्यवहार सूत्र एवं दशा श्रुत स्कंध सूत्र सारांश में देखें। प्रस्तुत सूत्र के पाठ में भी 12 प्रकार के तप का भेदानुभेद युक्त वर्णन है जो आगे परिशिष्ट में दिया गया है।

(16) अणगारों की ज्ञानाराधना– कई श्रमण आचारांग सूत्र को कंठस्थ धारण करने वाले थे। कई श्रमण सूत्रकृतांग, ठाणांग, समवायांग आदि को कंठस्थ धारण करने वाले थे और कई श्रमण ग्यारह अंग सूत्र अथवा सम्पूर्ण द्वादशांगी को धारण करने वाले थे। वे श्रमण वहां उद्यान में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग छोटे-बड़े समूह में विभक्त होकर बैठे थे। कोई वाचना देते-आगम पढ़ाते, पढ़ते, कोई प्रश्नोत्तर शंका समाधान करते, कोई स्वाध्याय का पुनरावर्त्तन करते, कई चिंतन मनन करते, कई अनेक-विध धर्मकथा करते थे एवं कई विशिष्ट आसन से स्थित होकर ध्यान में लीन बन रहे थे। वे संसार को महान् समुद्र की उपमा वाला समझ कर उसके भव भ्रमण रूप भय से उद्विग्न होकर विरक्त भाव में लीन रहने एवं संयम तप को धर्म नौका समझ कर उसके द्वारा आत्मा की सम्यक रूप में रक्षा करते हुए मोक्ष प्राप्ति हेतु सम्यक् प्रयत्न करते थे।

(17) समवसरण में देवों का आगमन– चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में भगवान समवसृत हुए पधारे। भवनपति असुर कुमारदेव अपनी ऋद्धि संपदा एवं दिव्य रूप से भगवान की सेवा में पहुंचे। भगवान को तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन नमस्कार किया एवं विनय सहित सामने हाथ जोड़े हुए पर्यूपसना करने लगे। नागकुमार आदि शेष नवनिकाय के देव भी समवसरण मे आये इसी विधि से पर्यूपासना करने लगे। इसी प्रकार पिशाच, भूत आदि एवं आणपन्निक आदि

व्यंतर देव आये। बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनिश्चर, राहू, धूमकेतु, बुध एवं अंगारक तथा अन्य ग्रह नक्षत्र तारा चल अचल सभी प्रकार के ज्योतिष विमान वासी देव समवसरण में आये। सौधर्म ईशान आदि 12 देवलोकों के वैमानिक देव अपनी ऋद्ध सम्पदा द्युति से युक्त अपने अपने यान विमानों में आये और वंदन नमस्कार कर विनय भक्ति सहित पर्यूपासना करने लगे। अर्थात् उपदेश सुनने के लिए बैठ गये। इन सभी देवों के साथ उनकी देवियां भी समवसरण में आई ऐसा समझ लेना चाहिए।

(18) जन समुदाय का समवसरण में आगमन- चम्पानगरी के चौराहों, तिराहों, द्वारों, गलियों से मनुष्यों की आवाजें धर्म के आद्य प्रवर्तक भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए हमारे चम्पा नगर के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में पधारे हैं, समवसृत हुए हैं, हे देवानुप्रियों! जिन भगवान का नाम सुनना भी बहुत बड़ी बात है, उनके सम्मुख जाना, दर्शन करना, वंदन नमस्कार कर भगवद्वाणी का लाभ लेना, पर्युपासना करना तो निश्चय ही अपूर्व बात है, वे महाप्रभु मंगल हैं, तीर्थं रुप हैं, कल्याणकर हैं देवरूप हैं, चलें उनकी पर्युपासना करें, हमारे भव-भव के संचित कर्म क्षय होंगे, हमें मोक्ष लाभ मिलेगा। यों चिंतन कर वे सभी सज्जन नित्य क्रिया से निवृत्त होकर उत्तम वस्त्र अलंकारादि से युक्त हुए। आरक्षक अधिकारी, उनके पुत्रादि, राजा के मंत्रिमंडल के सदस्यगण परामर्श मंडल के सदस्य, क्षत्रिय, राजकर्मचारी, ब्राह्मण, भाट, योद्धा, लिच्छवीवंशी, मल्लवी वंशी, इक्ष्वाकुवशी, कुरूवंशी, सैनिकों, मल्ल गणराज्य के सदस्य ऐश्वर्यशाली प्रभावशाली पुरूषों, विशिष्ट नागरिकों, जागिरदारों, श्रेष्ठियों, सेठों, सेनापतियों, सार्थवाहों ने निर्णय किया कि हम भगवान के समक्ष वन्दन नमस्कार कर उपासना करेंगे, धर्म लाभ लेंगे, व्रत अंगीकार करेंगे, इत्यादि विचार धारण कर कई घोड़ों पर, हाथियों पर, शिविकाओं में, पालखियों में अथवा पैदल चलकर वे लोग मधुर घोष (आवाज) करते हुए नगरी के बीच से निकले, जहां पूर्णभद्र चैत्य था वहां समवसरण में आकर भगवान को वंदन नमस्कार कर पर्युपासना करने लगे।

(19) महाराज कूणिक का समवसरण में आगमन- राजा कूणिक के दरबारी प्रवृत्ति निवेदक को जब भगवान के पदार्पण की सूचना ज्ञात हुई, वह भी नित्य क्रिया से निवृत होकर राजा कूणिक के दरबार में उपस्थित हुआ, प्रणाम कर भगवान के पदापर्ण की सूचना दी, हर्षित होकर राजा यथाविधि णमोत्थुंण देकर सिंहासन पर आरूढ्ढ हुआ एवं प्रवृत्ति निवेदक को साढ़े बारह लाख रजत मुद्राएं प्रीतिदान स्वरूप दी, उत्तम वस्त्रादि से सत्कार किया। उसके बाद राजा कूणिक ने सेना नायक को बुलाया और आदेश दिया कि मेरे लिए हस्तिरत्न को सुसज्जित करो, रानियों के लिए पालखियां सजाओ, रास्तों पर चैराहों तिराहों पर पानी का छिड़काव कर सुगंधित इत्र वगैरह का छिड़काव करो, नगरी को स्वच्छ निर्मल सुगंधित करके तोरण मालाओं आदि से सुसज्जित करो, और मुझे सूचित करो, फिर मैं भगवान को वन्दन करने जाऊं। वह अधिकारी सेना नायक आज्ञानुसार कार्य करके हाजिर हुआ चतुरंगिणी सेना सजाने की एवं नगरी को सुसज्जित करने की तथा यान आदि सजाने की राजा कूणिक को सूचना दी। राजा कूणिक ने व्यायाम आदि से तेल मालिश आदि कर्म से निवृत्त होकर स्नानादि कर के बहुमूल्य वस्त्र परिधान धारण कर पवित्र मालाएं धारण की, गोलोचन चन्दन का लेप कर इत्र आदि लगाकर मणियों से जड़े सोने के गहने पहने, गले में नवलडा हार पहना, बाहु, कंकण, करघनी, मुद्रिकाएं, कुंडन और मुकुट धारण कर, उत्तरीय पहना और स्वर्णाभूषणों से युक्त तथा कोरंट की माला से आव्रत राजा मानो कल्पवृक्ष हो, ऐसा लग रहा था। विशाल जन समुदाय की जय जय कार के बीच साज सज्जा के साथ हस्तीरत्न पर आरूढ़ हुआ। चारों और चंवर ढुलाए जाने लगे। उस समय ऐसा मनोरम दृश्य लगता था जैसे कि चारों ओर बादलों से निकला हुआ तारों

नक्षत्रों के बीच आकाश को देदीप्यमान करने वाला चन्द्र अवस्थित हो। उसके बाद स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य, दर्पण ये आठ मंगल रवाना किये, उसके बाद जल से भरे कलश झारियां, दिव्य छत्र, पताका, चंवर और ऊंची उठी हुई फहराती विजय वैजयन्ति विजय ध्वजा लिए राजपुरूष चले, बाद में आज्ञा पालक छत्र आदि उत्तम सिंहासनादि लेकर चले, लाठीधारी भालाधारी आदि सैनिक चले, 108 उच्च जाति के घोड़े रवाना किये, 108 हाथी रत्न रवाना किये, 108 रथ रवाना किये। अर्द्ध भरत को जीतने में सक्षम ऐसे महाबलधारी, चक्रवर्ती तुल्य, बिम्बसार पुत्र राजा कूणिक ने पूर्णभद्र चैत्य की तरफ प्रस्थान किया। उसके पीछे चतुरंगिणी सेना अभिवादन, प्रशस्ति, जय जय कार करती हुई चल रही थी रास्ते में नगर जनों ने अपूर्व उत्साह के साथ स्वागत किया। स्वागत गान गाते ग्राम एवं नगरवासी अभिनन्दन कर रहे थे। उनके अभिनन्दन को हाथ ऊंचा उठाकर झेलता हुआ, कुशल पूछता हुआ राजा कूणिक चम्पा के बीच से गुजर कर, पूर्णभद्र चैत्य में जहां भगवान थे वहां समवसरण में आया, आकर भगवान के अतिशयों को निहारा, हाथी को ठहराकर, नीचे उतरा। तलवार, छत्र मुकुट चंवर आदि राजचिन्हों को अलग किया, जूते उतारे सजीव पदार्थ अलग किये, मान सूचक अजीव पदार्थ भी अलग किये, बिना सिले वस्त्र का उत्तरासन्न लगाकर उत्तरीय की तरह कंधे पर डालकर, धर्म नायक पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़कर एवं मन को एकाग्र करते हुए यों पांचों नियमों का अनुपालन कर राजा कूणिक भगवान के समक्ष गया। तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा कर वंदना नमस्कार किया, मनवचन-काया से पर्युपासना की, हाथ पैर सिकोड़कर, पालथी मारकर, सुनने की अपूर्व इच्छा से भगवान की ओर मुंह करके हाथ जोड़े स्थित रहा।भगवान जो फरमाते हैं वही सत्य है, परमार्थ है, इच्छित है ऐसा ही है भंते, जैसा आप कर रहे हैं वही इच्छित प्रतीच्छित हे भंते ! इस प्रकार अनूकूल वचन बोलते हुए तीव्र धर्मानुराग में अनुरक्त होकर राजा पर्युपासना करने लगा।

(20) राणियों का आगमन- सुभद्रा आदि राणियां भी दासियों के बीच घिरी हुई अपने रथों में आरूढ हुई। चम्पा के बीच में निकल कर पूर्णभद्र चैत्य में आकर भगवान के अतिशय देखकर अपने रथों से नीचे उतरी। 1. सचित का त्याग 2. अचित अयोग्य का त्याग 3. देह की विनम्रता के साथ झुकना 4. भगवान पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़ना 5. मन को एकाग्र करना, इस पांच अभिगमों के साथ भगवान को तीन बार वंदना की एवं राजा कूणिक को आगे रखकर परिजनों सहित भगवान की पर्युपासना की।

(21) भगवान की धर्मदेशना- भगवान महावीर ने राजा कूणिक, सुभद्रा आदि रानियों एवं देव मनुष्यों की विशाल परिषद को धर्मोपदेश दिया। धर्मदेशना सुनने के लिए साधु साध्वी एवं देवगण तथा सैकड़ों श्रोताओं के समूह उपस्थित थे। मधुर, गंभीर स्वर युक्त भगवान ने स्पष्ट उच्चारण युक्त अक्षरों में श्रोताओं की सभी भाषाओं में परिणत होने वाली, एक योजन तक पहुंचने वाले स्वर में, अर्द्धमागधी भाषा में धर्म का कथन किया। उपस्थित सभी आर्य अनार्य जनों को अग्लान भाव से, बिना भेदभाव के धर्म का आख्यान किया। भगवान द्वारा फरमाई अर्द्धमागधी भाषा उन सभी आर्य अनार्य श्रोताओं के अपनी अपनी भाषाओं में बदल गई। धर्म देशना इस प्रकार है-

यह समस्त संसार एक लोक है, इसके बाहर अलोक का अस्तित्व है। इसी प्रकार जीव, अजीव, बंध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा आदि तत्त्व है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक-नैरयिक, तिर्यंचयोनिक जीव, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्ध परिनिर्वाण, परमशान्ति, परिनिर्वृत्ति इन सबका लोक में अस्तित्व है।

प्राणातिपात, मृषावाद, चोरी, मैथुन और परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य (चुगलि) परपरिवाद, रति-अरति, माया-मृषा, एवं मिथ्यादर्शन शल्य ये सभी 18 पाप है।

प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, क्रोध से विरत, मान से विरत, लोभ से विरत, प्रेम से विरत, द्वेष से विरत, कलह से विरत, अभ्याख्यान से विरत, पैशुन्य से विरत, पर-परिवाद से विरत, अरिति-रतिसे विरत, माया मृषा से विरत एवं मिथ्या दर्शन शल्य विवेक, यों 18 पाप से निवृत्ति भी लोक में होती है। सभी पदार्थों में अस्तिभाव अपने-अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से अस्तित्व को लिए हुए, है, सभी नासितभाव पर-द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से नास्तित्व को लिए हुए है। किन्तु वे भी अपने स्वरूप से है। दान, शील, तप आदि उत्तम कर्म उत्तम फल देने वाले हैं। पापमय कर्म दुःखमय फल देने वाले हैं। जब पुण्य पाप का स्पर्श करता है, बंध करता है। जीव उत्पन्न होते हैं। संसारी जीवों का जन्म मरण है, शुभकर्म और अशुभकर्म दोनों फल युक्त है, निष्फल नहीं होते।

निग्रथ प्रवचन का महात्म्य– यह निर्ग्रंथ प्रवचन मय उपदेश सत्य है, अणुत्तर है, केवली द्वारा भाषित अद्वितीय है, सर्वथा निर्दोष है, प्रतिपूर्ण है, न्याय संगत है, प्रमाण से अबाधित है, माया शल्यों का निवारक है, सिद्वि का मार्ग-उपाय है, मुक्ति-कर्म क्षय का हेतु है, निर्वाण-पारमार्थिक सुख प्राप्त करने का मार्ग है, निर्वाण-पद के लिए जन्म मरण के चक्र रूप संसार से प्रस्थान करने का मार्ग यही (आगम) है। वास्तविक पूर्वापर विरोध से रहित अर्थात कुतर्कों से अबाधित हैं। यह विच्छेद रहित है, सब दुःख को क्षीण करने का सही उत्तम मार्ग है, इससे स्थित जीव सिद्वि-सिद्वावस्था को प्राप्त करते है, केवल ज्ञानी होते है, जन्म मरण से मुक्त होते हैं। परम शांतिमय हो जाते हैं, सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं। जिनके एक ही मनुष्य भव धारण करना बाकी रहा है, ऐसे निर्ग्रंथ प्रवचन के आराधक किन्हीं देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, वहां अत्यन्त विपुल ऋद्धियों से पूर्ण लम्बी आयु वाले देव होते है वे असाधारण रूपवान होते हैं।

जीव चार कारणों से नरक का बंध करते है- (1) महा आरंभ, (2) महा परिग्रह (3) पंचेन्द्रिय वध (4) मांस भक्षण ।

जीव चार कारणों से तिर्यंच योनि का बंध करते है- (1) माया पूर्ण आचरण (2) असत्य भाषण युक्त मायाचरण (3) उत्कंचनता (धूर्तता) (4) वंचनता (ठगी) ।

जीव चार कारणों से मनुष्य योनि से उत्पन्न होते है- (1) प्रकृति भद्रता (2) प्रकृति विनीतता (3) करूणाशीलता (4) ईर्ष्या का अभाव ।

जीव चार कारणों से देव योनि से उत्पन्न होते है- (1) सराग संयम (2) संयमासंयम (3) अकाम निर्जरा (4) बाल तप ।

नरक में जाने वाले नैरयिक विविध दुःखमय वेदना पाते है, तिर्यंच में शारिरिक मानसिक संताप प्राप्त करते है, मनुष्य जीवन अनित्य है। व्याधि, वृद्धावस्था, मृत्यु और वेदना आदि कष्टों से व्याप्त हैं। देव लोक में देव ऋद्धि और अनेक दैविक सुख प्राप्त करते हैं। इस प्रकार चार गति, सिद्ध और छज्जीवनिकाय के जीव अलग अलग हैं। कई जीव कर्म बंध करते है, कई उससे मुक्त होते है, कई परिक्लेश पाते हैं। किन्तु अनासक्त रहने वाले कई व्यक्ति दुःखों का अन्त करते है।

आर्तध्यान से पीड़ित चित्त वाले जीव दुःख प्राप्त करते है किन्तु वैराग्य को प्राप्त करने वाले जीव कर्मदल को ध्वस्त कर देते हैं। राग पूर्वक किये गये कर्मों का विपाक पाप पूर्ण होता है, धर्माचरण द्वारा कर्म से सर्वथा रहित होने पर ही जीव सिद्धावस्था प्राप्त करते हैं।

धर्माचरण दो प्रकार का हैं- (1) आगार धर्म (2) अणगार धर्म ।

अणगार धर्म में सम्पूर्ण रूप से सर्वात्म भाव से सावद्य कर्मों का परित्याग करता हुआ मानव मुंडित होकर मुनि अवस्था में प्रव्रजित होता है, संपूर्णतः प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह एंव रात्रि भोजन से विरत होता हें यह अणगार सामायिक संयम धर्म है , इस धर्म की शिक्षा में उपस्थित होकर आगम प्रमाण की प्रमुखता से प्रवृत्ति करने वाले साधु-साध्वी आज्ञा के आराधक होते हैं।

आगार धर्म 12 प्रकार का है- 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत।

पांच अणुव्रत- स्थूल प्राणातिपात का त्याग, स्थूल मृषावाद का त्याग, स्थूल अदत्तादान का त्याग, स्वदार संतोष एवं इच्छा परिमाण।

तीन गुणव्रत- दिशाओं में जाने की मर्यादा, उपभोग परिभोग परिमाण, अनर्थदंड विरमण।

चार शिक्षाव्रत- सामायिक, देशावकाशिक (नित्य प्रवृत्तियों में निवृत्तिभाव की वृद्वि का अभ्यास), पोषध, अतिथिसंविभाग । अंतिम समय में संलेखना-आमरण अनशन की आराधना पूर्वक देह त्याग करना, श्रावक जीवन की साधना का पर्यवसन हैं। यह आगार सामायिक धर्म-गृहस्थ धर्म हैं। इस धर्म के अनुसरण में प्रयत्नशील आगम आज्ञा को आगे रख कर प्रवृत्ति करने वाले श्रावक श्राविका आज्ञा के आराधक होते हैं।

इस प्रकार सिद्वांतों का कथन, आचार धर्म, गति बंध, 18 पाप एवं उनका त्याग, श्रावक व्रत एवं उसकी आराधना तथा मुक्ति गमन तक का पूर्ण एवं व्यापक विश्लेषण युक्त यह भगवान का एक प्रवचन-व्याख्यान सदा-सदा मननीय हैं।

(22) परिषद विसर्जन- विशाल मानव परिषद ने श्रमण भगवान से धर्म देशना सुनी। उसमें से कई हलुकर्मी जीवों ने श्रमण दीक्षा अंगीकार की एवं कई मुमुक्षु आत्माओं ने श्रावक के 12 व्रतों को स्वीकार किया । शेष परिषद में से कइयों ने भगवान को वन्दना नमस्कार किया और कहा कि आप द्वारा सुकहित सुभाषित सुविनीत सुभावित निर्ग्रंथ प्रवचन श्रेष्ठ हैं। आपने धर्म की व्याख्या करते हुए जो विश्लेषण किया समझाया, विरति या निवृत्ति का निरूपण किया, पाप कर्म न करने की विवेचना की, दूसरा कोई श्रमण या ब्राह्मण हमारी दृष्टि में नहीं है, जो ऐसा उपदेश विवेचना एवं विश्लेषण कर सके। इस प्रकार क्रमशः परिषद् विसर्जित हो गई। तत्पश्चात कूणिक आसन से उठा, तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, वंदना नमस्कार कर उपरोक्त श्रद्वा-कीर्त्तन के भाव व्यक्त करके राजधानी की ओर लोट गया। रानियां भी उठी वंदना कर गुणग्राम कर राजभवनों की और लौट गई ।

द्वितीय उपपात अध्याय

(1) गौतम स्वामी का वर्णन- प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम श्रमण भगवान महावीर स्वामी के प्रथम ज्येष्ठ शिष्य थे। सात फुट करीब उनकी अवगाहना-ऊंचाई थी। समचतुरस्त्र संस्थानमय, वज्रऋषभनाराच संहनन युक्त उनका यह शरीर था अर्थात् उत्तम सुडोल शरीर की आकृति थी एवं उनका शरीर अनुपम श्रेष्ठ शक्ति से सम्पन्न भी था। गौर वर्ण था। वे कठोर एवं विपुल तप करने वाले थे। साधना में सशक्त, विशाल गुणों के धारक, कठोरतम ब्रह्मचर्य व्रत की विशुद्व पालना करने वाले थे। शरीर ममत्व के पूर्ण त्यागी थे। तेजोलेश्या आदि विविध लब्धियों को धारण करने वाले थे। वे अवधिज्ञानी एवं मनः पर्यवज्ञानी श्रमण शिरोमणी थे। द्वादश अंग के धारी, 14 पूर्वधारी अद्वितीय मतिश्रुत ज्ञानी थे। वे श्रमण गौतम तीर्थंकर प्रभु महावीर स्वामी के दृष्टि क्षेत्र में विशिष्ट ध्यान मुद्रा के आसन से आसीन होकर ध्यान में सदा लीन रहा करते थे। वह ध्यान उनका अनुप्रेक्षा एवं प्रेक्षा ध्यान होता था। उन अनुप्रेक्षाओं एवं प्रेक्षाओं के माध्यम से कई जिज्ञासाएं प्राप्त कर वे श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास अविलम्ब पहुंच जाते थे एवं विनयावनत होकर समाधान प्राप्त कर लेते थे। उन्हीं समाधानों का प्रकरण कुछ इस प्रकार

(2) पाप कर्म का बंध- असंयत अविरत पापकमों का त्याग नहीं करने वाला, विविध पाप क्रियाएं करने वाला, इन्द्रियों का संवरण नहीं करने वाला, एकांत पापी, अज्ञानी, भाव निद्रा में सुप्त जीव, प्रमुखतः पाप कर्मों का ही उपार्जन करता है एवं मोह वर्धक पाप कर्मों का उपार्जन करता हैं। मोह कर्म का वेदन करते हुए भी जीव पुनः पुनः मोहनीय कर्म का बंध करता हैं। अंततोगत्वा दसवें गुणस्थान में जाने के बाद ही मोह कर्म का बंध रूकता है फिर केवल वेदनीय कर्म का ही बंध होता हैं।

(3) असंयत की गति- ये असंयत जीव जो त्रस प्राणियों की घात में लगे रहते है वे मरकर नरक में जाते हैं। जो त्रस प्राणियों की घात में लीन नहीं रहते उनमें से कई जीव देव भी बन सकते है और कई अन्य गतियों में भी जा सकते हैं। देव गति में कौन कौन कैसे अज्ञानी असंवृत जीव जाते है उनका स्वरूप इस प्रकार हैं-

(4) अकाम कष्ट से गति- जो अज्ञानी प्राणी किसी प्रकार की धार्मिक भावना प्रेरणा के बिना, अशुभ कर्मों के उदय से एवं परिस्थिति से भूख, प्यास, सहन करते है, ब्रह्मचर्य पालते है, स्नान नहीं करते, सर्दी गर्मी सहन करते, डांस मच्छर जन्य कष्ट एवं मैल पसीना आदि जन्य परिताप-कष्ट सहन करते है, वे अल्प समय या अधिक समय तक इस प्रकार के दुःख भोग कर व्यंतर जाति के भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि देव बनते हैं। वहां वे दस हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हैं। उनका देव बनना धर्म के आराधना की कोटि में नहीं किन्तु वह केवल संसार भ्रमण की कोटि में ही हैं।

(5) दारूण दुःख से गति- जो किसी प्रकार के अपराध में आने से राजपुरूषों द्वारा विभिन्न यातनाएं पाकर मृत्यु को प्राप्त करते है, विरोध भाव वालों के द्वारा बुरी मौत मार दिये जाते है, जो स्वतः दुःख से घबराकर किसी भी तरह आत्मघात कर लेते है, अचानक घटनाग्रस्त होकर बुरी मौत मर जाते हैं। ये सब बुरी मौत से मरने वाले रौद्र ध्यान एवं संक्लिष्ट परिणामों में न मरे और सहज सामान्य भावों में आर्तध्यान में मरे तो व्यंतर देवों में उत्पन्न होते हैं। वहां 12 हजार वर्ष की उत्कृष्ट उम्र प्राप्त करते हैं। जघन्य दस हजार वर्ष प्राप्त करते हैं। इनका वह देव भव भी भव भ्रमण रूप ही होता हैं।

(6) भद्र स्वभाव से गति- जो स्वभाव से भद्र , उपशांत, अल्प क्रोध मान, माया, लोभ की प्रवृति वाले है, नम्र सरल, विनीत स्वभाव वाले है, माता-पिता की सेवा करते है, उनकी आज्ञा का लोप नहीं करते है, अल्प इच्छा वाले, अल्प परिग्रही अल्प आरंभ समारंभ-पाप की प्रवृत्तियां करने वाले एवं स्वाभाविक ही अल्प प्रवृत्तियों से जीवन निर्वाह करने वाले हैं, वे व्रत नियम धर्माचरण धर्म का ज्ञान न करते हुए भी देव गति में जाते हैं। वे व्यन्तर जाति के देव बनते हैं एवं अधिकतम 14 हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हैं। इनका भी यह देव भव संसार भ्रमण में ही हैं।

(7) अकाम (अनिच्छा से प्राप्त) कष्ट से स्त्रियों की गति- जो स्त्रियां पति से त्यक्त हो, बाल विधवा हो, जो राज अंतः पुर में रहती हो, पति परदेश में रहता हो, दूसरा पति नहीं करती हो, परिस्थितिवश खाना पीना पहचाना आदि सुख भोग न करती हो, संयोग न मिलने से श्रृंगार, स्नान, धूप माला आदि का उपयोग नहीं करती हो, मैल पसीना भूख प्यास सर्दी गर्मी डांस मच्छर आदि के कष्ट सहन करती हो, अल्प परिग्रह एवं अल्प आरंभ समारंभ से ही जिसका जीवन चल रहा हो, अल्पेच्छाएं हो, इस प्रकार अकाम ब्रह्मचर्य के पालन करने एवं कष्ट सहन करने से वे व्यंतर देव रूप में जन्म लेती हैं। वहां 60 हजार वर्ष की अधिकतम उम्र प्राप्त करती है। उसका यह देव भव धर्माराधना का न होकर संसार भ्रमण के चक्र का ही एक भव होता हैं।

(8) खाद्य द्रव्यों के त्यागी आदि बाल जीवों की गति- एक दिवस के भोजन में पानी के अतिरिक्त एक द्रव्य लेने वाले दो द्रव्य लेने वाले, यों तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नव, दस, एंव कोई ग्यारह द्रव्य खाद्य पदार्थ के लेने वाले, गो-सेवा का विशेष व्रत एवं प्रदर्शन करने वाले, गृहस्थ धर्म-अतिथि सेवा, दान आदि से युक्त गृहस्थ धर्म को ही श्रेष्ठ कल्याणकारी मानने वाले एवं उनका अनुसरण करने वाले, धर्म शास्त्र सुनाने वाले कथा वाचक, भक्तिमार्गी, अनात्मवादी, क्रिया विरोधी, वृद्व -तापस, श्रावक-धर्म शास्त्र के श्रोता बाह्मण आदि, नौ विगय एवं मद्यमांस के त्यागी जो केवल सरसों के तेल विगय खाने वाले होते हैं। वैसे मनुष्य अल्पैच्छा, अल्प परिग्रह, अल्प पाप प्रवृत्तियों से जीवन चलाने वाले वहां से मरकर व्यंतर देवों में अधिकतम 84 हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हैं। बाल भाव एवं अज्ञान दशा के कारण वे धर्म के आराधक नहीं होते हैं। अतः उनकी यह देव अवस्था भी भव भ्रमण की एक अवस्था हैं।

(9) वानप्रस्थ साधकों की गति- गंगा नदी के किनारे वानप्रस्थ तापस रहते है। उनमें कई अग्नि होत्री होते है, कई वस्त्र-धारी, कई पृथ्वी शयन वाले, श्राद्ध करने वाले, पात्र धारण करने वाले, कुंडी धारण करने वाले, फल भोजन करने वाले (फलाहारी), पानी में एक बार या बार-बार डुबकी लगाकर स्नान करने वाले, पानी में डूबे रहकर स्नान करने वाले, मिट्टी आदि से देह को रगड़ कर स्नान करने वाले, गंगा के दक्षिणी तट पर रहने वाले, उत्तरी तट पर रहने वाले, शंख बजाकर भिक्षा लेने वाले, गंगातट पर खड़े रहकर आवाज करके भिक्षा लेने वाले, बहुत लम्बे समय तक केवल एक ही मृग या हाथी आदि का मांस खाने वाले, दंड को ऊंचा करके चलने वाले, दिशाप्रोक्षी दिशाओं में जल छिडक कर फल फूल इकट्ठे करने वाले एवं प्राप्त आहार में से दान करके खाने वाले, गुफावासी, जल तट वासी, जल वासी-पानी में निवास करने वाले, वृक्ष के नीचे रहने वाले, केवल जलाहारी, केवल वायु भक्षी, शैवाल, मूल, कंद, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज का आहार करने वाले, गिर पड़े हुए ही मूल कन्द आदि मिले तो ही उनका आहार करने वाले, पंचाग्नि ताप से शरीर को आतापित करने वाले ।

ये साधक विविध प्रकार के नियम युक्त वानप्रस्थ पर्याय का पालन कर उत्कृष्ट ज्योतिष देवों में उत्पन्न होते हैं। वहां उनकी एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की उम्र होती है। ये भी बाल भाव एवं अज्ञान दशा में होने के कारण अर्थात् शुद्व निष्पाप (निर्वद्य) धर्म को नहीं समझने से धर्म के आराधक नहीं होते । अतः उनका वह प्राप्त देव भव भी मोक्ष हेतुक नहीं होता है, संसार भ्रमण रूप ही होता हैं।

(10) कांदर्पिक श्रमणों की गति- जो श्रमण प्रव्रजित होकर नानाविध हास-परिहास या हंसी मजाक में, उटपटांग आलाप -संलाप में, भांड वत काय चेष्टा कर अन्यों को हंसाने में, गान युक्त क्रीड़ा में एवं नृत्य वृत्ति में विशेष अभिरूचि रखकर प्रवृत्त होते है एवं उन्हीं में आनन्द मानते हुए मस्त रहते है। इस प्रकार मोह रूप एवं मोह वर्धन दशा में रहते हुए आलोचना प्रतिक्रमण न करने से वे भी श्रमण धर्म के आराधक नहीं अपितु विराधक होकर प्रथम सौधर्म देवलोक में कांदर्पिक हास्य प्रिय एवं नौकर देवों के रूप में उत्पन्न होते हैं। वहां उनकी एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की स्थिति होती हैं।

(11) परिव्राजकों की गति- परिव्राजकों के अनेक प्रकार होते है- 1. पच्चीस तत्वों को मानने वाले एवं अनात्मवादी अनीश्वर वादी सांख्य मतावलम्बी (पांच महाभूत, ग्यारह इंद्रिय, पांच तन्मात्राएं एवं पुरूष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार) 2. हठ योग अनुष्ठाता योगी 3. महर्षि कपिल के मतावलंबी **4. भृगुऋषि की परपंरा के अनुयायी-** भार्गव 5. गुफा पर्वत आश्रम देवस्थान में रहने वाले केवल भिक्षा के लिए बस्ती में आने वाले- हंस परिव्राजक 6. नदी तट या नदी संगम स्थानों पर रहते वे परमहंस। मृत्यु समय में वस्त्र घास आदि का भी त्याग कर देने वाले 7. गांव में एक रात शहर में पांच रात ठहरने वाले एवं प्राप्त भोगों को स्वीकार करने वाले ''बहूदक'' 8. गृहस्थावस्था में रहते हुए क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का त्याग करने वाले कुटीव्रती या कुटीचरी 9. नारायण में भक्तिशील परिव्राजक-कृष्ण परिव्राजक तथा आठ ब्राह्मण परिव्राजक एवं आठ क्षत्रिय परिव्राजक है-

आठ बाह्मण परिव्राजकों के नाम- 1 कर्ण 7 करकंड 8 अम्बड 4 पाराशर 5 कृष्ण 6 द्वैपायन 7 देवगुप्त 3 नारद ।

आठ क्षत्रिय परिव्राजक के नाम- 1 शीलधी 2 शशिधर 3 नग्न 4 भग्नक 5 विदेह 6 राजराज 7 राजराम 8 बल ।

ये परिव्राजक चारों वेद, इतिहास, निघंटु छः अंगों में निष्णात, व्याकरण, ज्योतिष आदि बाह्मण योग्य शास्त्रों ग्रन्थों में सुपरिपक्क ज्ञान युक्त होते हैं। ये परिव्राजक दान धर्म की एवं स्वच्छता मूलक धर्म की प्ररूपणा विश्लेषण कर युक्ति पूर्वक समझाते हैं और यह कथन करते है कि हर चीज की हम मिट्टी से एवं जल से शुद्वि कर के पवित्र आचरण कर पवित्र बनाते है। स्नान आदि से देह को पवित्र बनाकर हम और हमारे मतानुयायी स्वर्गगामी होंगे ।

(12) परिव्राजकों की आचार प्रणाली- (1) बावडी, तालाब, नदी आदि में प्रदेश नहीं करते मार्ग में आजाय उसकी छूट (2) संपूर्ण वाहन प्रयोग का त्याग (3) हाथी घोड़े, गधे आदि की सवारी का भी त्याग, परवश बलात् का आगार (4) सभी प्रकार के खेल नृत्य कुतुहल मनोरंजन वीणा वादिंत्र और दर्शनीय स्थलों, पदार्थों को देखना सुनना उन्हें

अकल्पनीय होता हैं। (5) हरी वनस्पति को स्पर्श करना, रगडना, तोड़ना , शाखाओं-पत्तों आदि को ऊंचा करना या मोडना उन्हें अकल्पनीय होता हैं। (6) सभी प्रकार की विकथाएं एवं हानिप्रद निरर्थक कथाएं करना उन्हें अकल्पनीय होता है। (7) तुम्बा, लकड़ी एवं मिट्टी इन तीन के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के पात्र और पात्र बंधन नहीं रखते (8) अंगूठी से लेकर चूडामणी पर्यन्त किसी भी प्रकार के आभूषण पहनना उन्हें निषिद्व होता हैं। (9) गेरूए रंग के वस्त्र के अतिरिक्त किसी भी रंग के वस्त्र परिव्राजकों को नहीं कल्पते हैं। (10) किसी भी प्रकार की फूल मालाएं वे परिव्राजक नहीं पहनते, केवल कर्णपूर (कनेर) फूल की माला की छूट (11) गंगा की मिट्टी के लेप के अतिरिक्त चन्दन केसर किसी भी प्रकार का लेप शरीर पर नहीं करते (12) परिव्राजकों को पीने के लिए एक सेर जल एवं हाथ पांव पात्र आदि धोने के लिए चार सेर पानी ग्रहण करना कल्पता हैं । स्वच्छ निर्मल बहता हुआ एवं छाना हुआ जल लेना कल्पता है। वह जल भी कोई गृहस्थ दे तो ले सकते हैं बिना दिये स्वयं नहीं ले सकते ।

इस प्रकार के आचार का पालन करते हुए वे उत्कृष्टतम पांचवें देवलोक में उत्पन्न होते है वहां उनकी दस सागरोपम की उम्र होती हैं। शुद्व निष्पाप (निर्वद्य) धर्म से अनभिज्ञ अज्ञात होने के कारण ये भी धर्म के आराधक नहीं होते हैं।

(13) अम्बड परिव्राजक के शिष्य- उक्त परिव्राजकों में ब्रह्मण परिव्राजक में अम्बड का कथन है उस अम्बड परिव्राजक का जीवन वृत्तांत अंश इस प्रकार हैं।

अम्बड परिव्राजकों के सात सौ शिष्य थे। विचरण करते हुए एक बार उसे श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा का अवसर प्राप्त हो गया। निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रवण कर उसे श्रावक के बारह व्रत धारण करने की रूचि हो गई । भगवान ने उसे श्रावक व्रत धारण करवाये। इस प्रकार अम्बड परिव्राजक निर्ग्रन्थ ने प्रवचन स्वीकार कर श्रावक धर्म का पालन करते हुए परिव्राजक पर्याय में विचरण करने लगा। उसने यथासमय अपने शिष्यों को भी प्रतिबोध देकर बारह व्रत धारी श्रावक बना दिया । गृहस्थ जीवन स्वीकार न करते हुए वे परिव्राजक चर्या से विचरण करते रहे। ऐसा करने में उनके श्रावक व्रतों की अराधना में कोई भी रूकावट नहीं आई थी। अम्बड परिव्राजक स्वयं कई बार अकेले ही विचरण करते रहते थे।

एक बार अम्बड के सात सौ शिष्यों ने कंपिलपुर से पुरिमताल-नगर के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में लिया हुआ जल समाप्त हो गया। जेठ महिने की भीषण गर्मी थी सभी प्यास से संतप्त हो गये। खोज करने पर भी संयोगवश वहां पानी देने वाला नहीं मिल सका । सभी का निर्णय एक ही था कि आपत्ति काल में भी अदत्त जल ग्रहण नहीं करेंगे। गंगा नदी के पास में भी पहुंच गये किन्तु वहां मनुष्य का आवागमन गर्मी के कारण बंद हो चुका था। अंत में सभी ने नदी की बालू रेत में पादपोपगमन संथारा ग्रहण करने का निर्णय कर लिया ।

अपने सभी प्रकार के विविध भण्डोपकरण वस्त्र पात्र आदि 14 उपकरणों का त्याग किया, फिर बालूरेत पर ही पल्यंकासन से बैठ कर दोनों हाथ जोड़ कर सिद्व भगवन्तों को णमोत्थुणं के पाठ से वंदन किया, फिर दूसरी बार णमोत्थुणं के पाठ से श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदन किया, तदनंतर अपने धर्मगुरू धर्माचार्य अम्बड सन्यासी को भाव पूर्वक नमस्कार किया।

फिर इस प्रकार उच्चारण किया कि पहले हमने अम्बड परिव्राजक के समीप जीवन भर के लिए स्थूल हिंसा झूठ चोरी परिग्रह का त्याग किया था एवं सम्पूर्ण कुशील का त्याग किया था। अब हम श्रमण भगवान महावीर के समीप (परोक्ष साक्षी से) सम्पूर्ण हिंसा झूठ चोरी आदि अठारह पापों का जीवन पर्यन्त त्याग करते है। चारों प्रकार के आहार का त्याग करते हैं और अति प्रिय इस शरीर का भी पूर्ण रूप से त्याग करते हैं। इस प्रकार विस्तृत विधि पूर्वक 'बड़ी-संलेखना' के पाठ से पादपोपगमन संथारा आजीवन अनशन धारण कर समाधि पूर्वक समय व्यतीत करने लगे। यथासमय आयु पूर्ण कर वे सभी 700 शिष्य पांचवे देव लोक में दस सागरोपम की स्थिति में उत्पन हुए। ये अम्बड़ के शिष्य धर्म के आराधक हुए, क्योंकि उन्होंने परिव्राजक पर्याय में रहते हुए भी निष्पाप निर्वद्य धर्म को समझा था एवं शक्ति प्रमाणे धारण भी किया था।

(14) अम्बड परिव्राजक– अम्बड सन्यासी परिव्राजक पर्याय में अकेले ही विचरण करता था। साथ ही श्रावक के बारह व्रतों का पालन भी करता था। बेले बेले का निरंतर तप करने से एवं यथा समय आतापना लेना आदि साधनाओं के पालन करने से उसे वैक्रिय लब्धि एवं अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया था। अपने बल शक्ति से लोगों को विस्मित आकर्षित करने के लिए वह एक साथ सौ घरों में ठहर जाता, निवास करता एवं सौ घरों में भोजन करता। इस बात के प्रचार से लोगों में चर्चा भी होने लगी। वैसी चर्चा गणधर गौतम स्वामी को भी भिक्षाचरी में सुनने को मिली थी।

इस प्रकार विचरण करता हुआ वह अम्बड सन्यासी निर्ग्रन्थ प्रवचन में अटूट श्रद्धा रखता हुआ श्रावक पर्याय का पालन करता हुआ ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूपेण पालन करता था एवं परिव्राजक पर्याय के उपरोक्त नियमों का भी पालन करता था। विशेषता यह है वह आधाकर्मी, उद्देशिक, मिश्र, क्रीत, पूतिकर्म, अध्यवपूर्वक, उधार, अनिसृष्ट, अभिहड, स्थापित, रचित दोषों से युक्त आहार ग्रहण नहीं करता था, कंतार भक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लान भक्त, बादलिक भक्त, पाहुणक भक्त आदि दोष वाला आहार पानी ग्रहण नहीं करता था। कंद मूल पत्र पुष्प फल बीज भी ग्रहण नहीं करता था। उसने चार प्रकार के अनर्थदण्ड का जीवन पर्यन्त त्याग कर दिया था।

पीने के लिए एवं हाथ पैर पात्रादि धोने के लिए दो सेर पानी ग्रहण करता था तथा स्नान के लिए वह 4 सेर से अधिक पानी ग्रहण नहीं करता था। पानी ग्रहण के संपूर्ण नियमों का भी वह पालन करता था।

अम्बड सन्यासी अरिहंत एवं अरिहंत भगवान के श्रमणों के अतिरिक्त किसी को भी वन्दन नमस्कार (सविधि गुरूवंदन) नहीं करता था।

इस प्रकार अम्बड परिव्राजक अपने पूर्व वेश एवं चर्या के साथ श्रावक व्रतों की आराधना कर मृत्यु के समय एक महिने के संथारे से आयु पूर्ण कर पांचवे देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां उसकी उम्र दस सागरोपम की है। वह भी धर्म का आराधक हुआ।

देव भव पूर्ण होने पर अम्बड का जीव महाविदेह क्षेत्र में उत्तम कुल में जन्म लेगा। दृढ प्रतिज्ञ नाम रखा जायेगा। 72 कला में पारंगत होगा। यौवन वय प्राप्त होने पर माता पिता उसे भोगों का निमंत्रण करेंगे किन्तु वह उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। श्रमण निर्ग्रन्थों के पास दीक्षा अंगीकार करेगा। अनेक वर्ष संयम पर्याय का शुद्ध आराधन करेगा। जिससे उसे केवल ज्ञान दर्शन की प्राप्ति होगी फिर अनेक वर्ष केवली पर्याय में विचरण कर संपूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा।

सिद्ध बुद्ध मुक्त होने के लिये ही श्रमण संयम साधना के इन निम्न कठोरतम नियमों का पालन करता है- (1) नग्न भाव-शरीर संस्कार त्याग (2) मुण्डभाव-गृह एवं ममत्व परिग्रह त्याग (3) स्नान नहीं करना (4) दांतौन आदि नहीं करना (5) केश लुंचन-मस्तक दाढ़ी मूंछ के समस्त बाल हाथ से खींच कर उखाड़ना (6) अखंड ब्रह्मचर्य पालन (7) सचित त्याग (8) जूते आदि त्याग (9) भूमि पर सोना अथवा पाट या काष्ट खंड पर सोना (10) घर-घर से भिक्षा लाना (11) लाभालाभ में संतुष्ट रहना (12) दूसरों के द्वारा की गई हीलना निंदना खिंसना गर्हा ताडन तर्जन पराभव तिरस्कार, व्यथा परिताप इन सब स्थितियों में समभाव एवं प्रसन्नता में स्थिर रहते हुए अन्य ऊंचे नीचे राग द्वेषात्मक कोई भी संकल्प विकल्प नहीं करना, अन्य भी छोटी बड़ी इन्द्रिय विरोधी कष्ट कर स्थितिएं, 22 परिषह, देव मनुष्य तिर्यञ्च कृत उपसर्ग आदि को समभाव से स्वीकार कर शांत प्रसन्न रहना इत्यादि मन के एवं तन के प्रतिकूल स्थितियों का प्रतिकार न करते हुए उस अवस्था में ज्ञाता दृष्टा रहकर समभाव रखना।

ये सब मन के एवं तन के कष्ट साध्य नियमों को साधक कर्मों से सर्वथा मुक्त होने के लिये ही धारण करता है।

(15) गुरू प्रत्यनीक श्रमणों की गति- जो श्रमण निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रव्रजित होने के बाद कालांतर से अंहभाव में आकर आचार्य उपाध्याय कुल गण गुरू आदि का तिरस्कार अकीर्ति करते हैं निर्ग्रन्थ प्रवचन के विपरीत प्ररूपण कर खुद भ्रमित होते हैं अन्यों को भी भ्रमित करते है। इस प्रकार अभिनिवेशिक मिथ्यात्व युक्त श्रमण पर्याय का पालन करते हैं। वैसे साधक मृत्यु समय उन दोषों का आलोचना प्रतिक्रमण किऐ बिना आयु पूर्ण कर उत्कृष्ट छठे देवलोक में किल्विषिक (घृणित) देवों के रूप में तेरह सागरोपम की उम्र में उत्पन्न होते हैं। ये मिथ्या मति होने से बाल भाव के कारण धर्म के आराधक नहीं होते। अतः उनका वह देव भव संसार भ्रमण में ही समझना चाहिए।

(16) आजीविक (गौशाला) मतावलम्बी की गति- आजीविक श्रमण कोई दो घर के अंतर या तीन चार पांच छः सात घर के अंतर से भिक्षा लेते, कोई केवल कमल डंठल लेवे, कोई प्रत्येक घर से भिक्षा लेने वाले, आकाश में बिजली चमके तब भिक्षा नहीं लेने वाले, मिट्टी के बहुत बड़े बर्तन में प्रविष्ट होकर तप करने वाले इत्यादि विविध विहार चर्या एवं तप करने वाले गोशालक मतावलंबी काल कर उत्कृष्ट 12वें देवलोक मे उत्पन्न होते हैं। वहां उनकी उत्कृष्ट 22 सागरोपम की उम्र होती है। ये भी मिथ्यात्वाभिभूत अज्ञान दशा में होने से धर्म के आराधक नहीं होते हैं।

(17) आत्मोत्कर्षक कुशील श्रमणों की गति- जो श्रमण निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रव्रजित होकर कालांतर से महिमा-पूजा, मान-प्रतिष्ठा के अभिभूत होकर स्वयं का गुणानुवाद एवं दूसरों का अवगुण अपवाद करते करवाते हैं एवं डोरा धागा रक्षा पोटलिका, यंत्र मंत्र तन्त्र आदि चमत्कार पूर्ण वृत्तियों से लोगों को आकर्षित करते हैं। इस प्रकार के कुशील आचरणों से युक्त हो कर श्रमण पर्याय का भी पालन करते हैं। ऐसे साधक, मृत्यु पर्यन्त इन दोषों का परित्याग, आलोचना प्रतिक्रमण आदि नहीं करके आयुष्य पूर्ण कर जाते है वे उत्कुष्ट बारहवें देवलोक में आभियोगिक-नौकर देवों के रूप में उत्पन्न होते हैं। वहां उनकी उत्कृष्ट 22 सागरोपम की उम्र होती है। ये साधक शुद्ध निरतिचार संयम की आराधना नहीं करने के कारण संयम धर्म के विराधक ही कहे गये हैं।

(18) निन्हवों की उत्पत्ति- जो श्रमण निर्ग्रन्थ धर्म के प्रव्रजित होकर बाद में अहं भाव में आकर तीर्थंकर के ज्ञान एवं सिद्धांत की उपेक्षा कर स्वयं का मनमाना एवं सिद्धांत विपरीत प्ररूपण करता है। कुतर्क एवं बुद्धि बल से खुद के

अभिनिवेशिक मिथ्यात्व को पुष्ट करता है। साथ ही दूसरों को भी असत् प्ररूपणा से भावित करता है, मिथ्या मत में जोड़ता है वह लिंग एवं बाह्याचार से श्रमण पर्याय में रहता है। ऐसा साधक अशुद्ध द्रव्य श्रमणाचार का पालन करने से, मिथ्यात्व भावों के होते हुए भी उत्कृष्ट नवग्रैवेयक देव में 31 सागरोपम की उम्र में उत्पन्न होता है।

वर्तमान में 24 वें तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर के शासन में निम्न निन्हव हुए हैं-1.जमाली 2.तिष्यगुप्ताचार्य 3.आषाढाचार्य के शिष्य 4. अश्वमित्र 5. गंगाचार्य 6.रोहगुप्त 7.गोष्ठामाहिल। इन्होंने जिनोक्त-आगमोक्त सिद्धान्तों के विपरीत प्ररूपण चलाया था। यथा-

(1) बहुरतवाद- कार्य की सम्पन्नता बहुत समयों में होती है, क्रियमाण को कृत नहीं कहा जा सकता, इस विचार धारा वाले जमालि थे। भगवान महावीर के जामाता थे, वैराग्य से दीक्षित हुए, एक समय स्वतंत्र विहार की आज्ञा मांगी भगवान कुछ बोले नहीं तो भी 500 श्रमण साथियों के साथ विहार कर दिया। कठोर चर्या एवं तपस्याएं की। एक बार जमालि श्रावस्ती नगरी में पित्तज्वर से पीड़ित हुआ, असह्य वेदना थी, बिछोना बिछाने का साधुओं को निर्देश दिया, एक एक पल भी भारी लग रहा था, साधुओं से पूछा बिछोना तैयार है ? साधु बोले हां तैयार है, जमालि रूक नहीं पा रहा था, तत्काल देखा-बिछौना तो बिछाया जा रहा था। उसने विचार किया कार्य एक समय में नहीं बहुत समय में निष्पन्न होता है। भगवान महावीर भी ऐसा ही कहते हैं कि क्रियमाण को कृत कहना यह तो बडी भूल चल रही है। वेदना शान्त होने पर भी वे विचार स्थिर हो गये। जमाली भगवान महावीर के समीप गया वहां भगवान से एवं गौतम स्वामी से वार्तालाप हुआ, जमाली ने जिद नहीं छोडी एवं अलग चल पड़ा। कुछ शिष्य उसके साथ में चले गये एवं कुछ भगवान के पास ही ठहर गये। यह घटना भगवान के केवलज्ञान प्राप्ति के 14 वर्ष बाद हुई।

(2) जीवप्रादेशिकवाद- एक प्रदेश भी कम होवे जीवजीवत्वयुक्त नहीं कहा जा सकता। अन्तिम प्रदेश से पूर्ण होने पर ही जीव-जीव कहलाता है। अतः वह एक प्रदेश ही वस्तुतः जीव है। उसके प्रवर्त्तक तीष्यगुप्ताचार्य थे। वे भगवान के मोक्ष प्राप्ति के 16 वर्ष बाद हुए।

(3) अव्यक्तवाद- साधु आदि के संदर्भ में यह सारा जगत अव्यक्त है। अमुक साधु है या देव, कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके प्रवर्त्तक आचार्य आसाढ के शिष्य माने जाते हैं, आचार्य आसाढ़ श्वेताम्बिका नगरी में थे, शिष्यों को योग साधना सिखा रहे थे, आकस्मिक देहांत हो गया। देव बने, शिष्यों का अभ्यास रूके नहीं इस विचार से मृत शरीर में पुनः प्रवेश किया, अल्प समय में ही वह सब क्रिया हो गयी। किसी को भान नहीं रहा, शिष्यों का अभ्यास पूर्ण कर के देव रूप में देह से निकले, श्रमणों को सारी स्थिति सुनाकर क्षमायाचना की, कि देवरूप असंयत होते हुए भी मैंने संयतात्माओं से वंदन नमस्कार करवाया, यह कह वे अपने स्थान चले गये, श्रमणों के चित्त में सदा के लिए संदेह व्याप्त हो गया कि कौन देव है ? कौन साधु ? यह अव्यक्त है। श्रमण व्यवहार छोड़कर वे दुराग्रह ग्रस्त हो गये। उन श्रमणों ने यह वाद चलाया। वीर निर्वाण के 114 वर्ष बाद यह मत चला।

(4) सामुच्छेदिक वाद- कौण्डिल नामक आचार्य थे, उनके शिष्य थे अश्वमित्र। शिष्य को पूर्व का ज्ञान सिखा रहे थे। पर्याय स्वरूप का प्रकरण चल रहा था। प्रथम समय के नारक समुच्छिन्न होंगे फिर दूसरे समय के नारक समुच्छिन्न होंगे। द्रव्य की अपेक्षा वही नारक जीव उस समय की पर्याय मे रहेगा। उस समय पर्यायात्मक दृष्टि से ही समुच्छिन्नता का कथन

था किन्तु अश्वमित्र ने यह पकड़ लिया। नारक आदि भवों का एकान्ततः प्रतिक्षण समुच्छेद विनाश होता रहता है उसने यह प्ररूपण चलाया था। वीर निर्वाण के 220 वर्ष बाद में यह मत चला।

(5) **द्वैक्रियवाद-** शीतलता और उष्णता दो या अनेक क्रियाओं की अनुभूतियां एक ही समय में एक व्यक्ति को हो जाती है-यह द्वैक्रियवाद है। गंगाचार्य इसके प्रवर्त्तक थे। गंग मुनि धनगुप्त के शिष्य थे, वे एक बार अपने गुरू की सेवा में जा रहे थे। मार्ग में उल्लुका नदी के जल को चलकर पार कर रहे थे। सिर पर सूर्य की उष्णता का एवं पानी में रहे पैरों को शीतलता का अनुभव हो रहा था, गंग मुनि सोचते लगे, आगमों में बताया है एक साथ दो क्रियाओं की अनुभूति नहीं होती, पर मैं तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। भगवान के निर्वाण प्राप्ति के 228 वर्ष बाद यह निन्हव हुआ। आगम तत्त्व यह है कि एक साथ दो क्रियाओं का अनुभव हो सकता है किन्तु एक सूक्ष्म समय में जीव को एक क्रिया का ही अनुभव होता है।

(6) **त्रैराशिक वाद-** जीव, अजीव, नो जीव (जीव भी नहीं अजीव भी नहीं) ऐसा त्रेराशिकवाद आचार्य रोहगुप्त ने स्वीकार किया। ये अन्तरंजिका नामक नगरी में आचार्य श्री गुप्त की सेवा में जा रहे थे, पोट्टशाल परिव्राजक मार्ग में अपनी विद्याओं से चमत्कार बता रहा था, वाद हेतु सब को चुनौति दे रहा था। रोहगुप्त ने चुनौति स्वीकार की पौट्टशाल वृश्चिकी, सर्पी, मूषिकी विद्याएं साधे हुए था। श्री गुप्त आचार्य ने रोहगुप्त को मयूरी, नकुली विडाली विद्याएं सीखा दी। पौट्टशाल ने चालाकी की, उसने रोह गुप्त के सिद्धान्त को ही अपना पक्ष बना कर रख दिया कि जगत में राशियां दो हैं-जीव, अजीव। रोहगुप्त खंडन नहीं कर सकेगा, इस नीति से उसने कहा था। हालांकि रोहगुप्त भी दो राशि मानते थे, पर उसकी बात मान लेने से पराजीत होना पड़े, इसलिए प्रतिपक्ष बना कर कहा कि जगत में तीन राशियां है जीव, अजीव, नोजीव। तर्क के साथ सिद्ध कर विजय हुआ। गुरू श्री गुप्त ने कहा यह वाद अच्छा नहीं किया। अतः पुनः राज सभा में जाकर प्रतिवाद करो, परन्तु अब तो प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका था। गुरू आज्ञा का पालन नहीं कर सका। फिर उसने त्रैराशिकवाद चलाया। वीर निर्वाण के 544 वर्ष बाद यह निन्हव हुआ।

(7) **अबद्धिकवाद-** ''कर्म जीव के साथ बंधता नहीं किन्तु कुंचक की तरह स्पर्श मात्र करके साथ लगा रहता है।'' गोष्ठामाहिल इस मत के प्रवर्त्तक थे। दुर्बलिका पुष्यमित्र आर्य रक्षित के उत्तराधिकारी थे, विन्ध्य नामक शिष्य को कर्म प्रवाद के बंधाधिकार का अभ्यास करा रहे थे वे समझा रहे थे कि जैसे दीवार पर सटाई गई गीली मिट्टी दीवार से चिपक जाती है वैसे ही कुछ कर्म आत्मा के साथ चिपक जाते है, दीवार पर सटाई हुई सूखी मिट्टी दीवार का स्पर्श कर नीचे गिर जाती है, उसी प्रकार कुछ कर्म स्पर्श मात्र करते हैं, गाढ़ रूप नहीं बंधते। गोष्ठामाहिल ने सुना तो अपेक्षा की उपेक्षा कर शंकित हो गया कि यदि आत्मा और कर्म एकाकार हो जाएं तो वे पृथक नहीं हो सकते, अतः यही न्याय संगत है कि कर्म आत्मा के साथ नहीं बंधते, स्पर्श मात्र करते हैं, पुष्यमित्र ने उन्हें बहुत समझाया पर वे अपनी धुन पर अडिग रहे फिर गोष्ठामाहिल ने अबद्धिकवाद का प्रवर्त्तन किया। वीर निर्वाण के 609 वर्ष बाद यह सातवां निन्हव हुआ।

(19) **सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय श्रावक की गति-** पांचों जाति के सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय को यथा योग्य चिंतन मनन गवेषण करने से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होता है। उससे प्राप्त ज्ञान एवं विवेक के द्वारा वे श्रावक व्रतों को स्वीकार कर अपनी योग्यता क्षमतानुसार पालन करते हैं। सामायिक पौषधापवास आदि भी अनुकूलतानुसार करते हैं। वे श्रमणोपासक पर्याय का पालन करते हुए समाधि पूर्वक आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट आठवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं। वे निर्ग्रन्थ प्रवचन एवं

श्रावक धर्म के आराधक होते हैं। आठवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं, वहां देवलोक में उनकी उत्कृष्ट 18 सागरोपम की उम्र होती है। वे उत्कृष्ट 15 भव से अधिक संसार भ्रमण नहीं करते हैं।

(20) श्रमणोपासक मनुष्यों की गति- कई मनुष्य धर्म प्रेमी, धर्म श्रद्धा वाले, धर्मानुयायी, धार्मिक वृत्ति एवं धर्म संस्कारों वाले, सदाचारी तथा संतोषी होते हैं, अल्पारंभ अल्प परिग्रह से जीवन चलाते हैं, वे हिंसा आदि मिथ्यात्व पर्यन्त 18 ही पापों के देशतः (कुछ) त्यागी होते हैं और कुछ अंशों में उनके 18 ही पाप खुले रहते हैं अर्थात् उनकी मर्यादाएं होती हैं।

इसी प्रकार आरंभ-समारंभ, करण-करावण, भोजनादि पकाना-पकवाना, पदार्थों को कूटना-पीसना, किसी को मारना ताड़ना तर्जना, वध-बंधन करना, किसी को पीड़ा देना आदि क्रिया के भी अंशतः त्यागी होते हैं एवं कुछ मर्यादा युक्त आगार भी होते हैं। स्नान अभ्यंगन विलेपन उबटन श्रृंगार अलंकार माला एवं मनोज्ञ शब्द रूप गंध रस स्पर्श के सुखों के देशतः त्यागी एवं मर्यादित सावद्य योगों के देशतः त्यागी और मर्यादित आगार वाले होते हैं।

ऐसे श्रमणोपासक जीव अजीव तत्त्व के ज्ञाता, पुण्य पाप को अनुभव पूर्वक समझे हुए, आश्रव संवर निर्जरा बंध मोक्ष के विषय में कुशल, देव दानव किसी से भी धर्म से नहीं डिगने वाले, निर्ग्रन्थ प्रवचन सिद्धान्तों के अर्थ परमार्थ के ज्ञाता होते हैं। उनकी हाड़-हाड़ की मज्जा धर्म प्रेम के अनुराग से अनुरक्त होती है। निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही जीवन में वे अर्थ परमार्थ रूप समझते हैं। शेष सभी कृत्य आत्मा के लिए निष्प्रयोजन रूप समझते हैं। दान देने की पूर्ण मनोवृत्ति वाले होते हैं। इस कारण उनके घर के दरवाजे खुले ही रहते अथवा अन्दर से बंद नहीं होते। कोई भी उन श्रावकों के घर से खाली नहीं जाता है। विशेष प्रयोजन बिना वे अंतःपुर या किसी के घर में प्रवेश नहीं करते, महीने के छः प्रतिपूर्ण (संपूर्ण सावद्य योग त्याग रूप) पौषध करते हैं, श्रमण निर्ग्रन्थों को कल्पनीय आहार पानी वस्त्र पात्र रजोहरण औषध भेषज एवं मकान पाट घास आदि परम भक्ति भाव एवं विवेक के साथ प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक पर्याय में विचरण करते हैं। अंतिम समय में यथावसर संलेखना संथारा स्वीकार करते हैं।

आलोचना प्रतिक्रमण से शुद्धि एवं भाव समाधियुक्त पंडित मरण को प्राप्त कर उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हैं। वहां उनकी 22 सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है। वे श्रमणोपासक धर्म के आराधक होते हैं, वे उत्कृष्ट 15 भव से अधिक संसार भ्रमण नहीं करेंगे अर्थात् मोक्षगामी हो जाऐंगे।

निर्ग्रंथ सुश्रमणों की गति-

श्रमण निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ धर्मी, धर्मानुरागी, धार्मिक जीवन जीने वाले होते हैं। 18 ही पापों के पूर्णतः त्यागी होते हैं अर्थात वे 1.हिंसा 2. झूठ 3. चोरी 4. कुशील 5. परिग्रह के पूर्ण त्यागी होते हैं 6. गुस्सा 7. घमण्ड 8. माया-कपट-प्रपंच के त्यागी होते हैं 9- लोभ लालच 10- राग 11. द्वेष से परे रहते हैं 12. झगड़े कलेश करना 13. कलंक आक्षेप लगाना 14. चुगली करना 15. दूसरों का अवगुण अपवाद निंदा-तिरस्कार करना उनके लिए सर्वथा त्याज्य होता है 16. हर्ष शोक अर्थात मनोज्ञ प्रसंग में फूले न समाना और अमनोज्ञ प्रसंगों में म्लान उदास हो जाना उन्हें योग्य नहीं होता है अर्थात् सदा गंभीर एवं प्रसन्न मुद्रा में रहना उनका आचार होता है। 17. कपट सहित झूठ, ठगाई, धूर्त्ताई के वे सम्पूर्ण त्यागी होते हैं। 18. खोटी श्रद्धा

प्ररूपणा अर्थात् जिनाज्ञा से हीनाधिक विपरीत समझने मानने एवं बोलने के भी वे पूर्णतः त्यागी होते हैं। इस प्रकार इन 18 पापों त्याग के साथ साथ ही वे करण-करावण, पचन-पचावन आरम्भ-समारंभ, कूटना-पीसना, पर-परिताप कारी कृत्यों के एवं स्नान, शरीर सुश्रुषा, माला, अलंकार आदि प्रवृत्तियों के भी वे पूर्णतः त्यागी होते हैं। शब्द रूप आदि इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्त होने या विशेष प्रवृत्त होने के भी वे पूर्णतः त्यागी होते हैं।

ऐसे वे अणगार पांच समिति से समित होते हैं अर्थात् समितियों में यत्नशील होते हैं, तीन गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियों को वश में करने वाले, विषयों में अनासक्त, नियमोपनियम युक्त ब्रह्मचर्य का परिपालन करने वाले, निर्ममत्वी, अकिंचन, भाव ग्रन्थियों से रहित एवं आश्रव रहित होते हैं। कर्म बंध से रहित होते हैं। वे सूत्रोक्त 22 उपमाओं के गुणों से सम्पन्न होते हैं। निर्ग्रन्थ प्रवचन को अर्थात् जिनाज्ञा एवं शास्त्राज्ञा को ही प्रमुखता देकर जीवन की मानसिक, वाचिक तथा कायिक प्रवृत्ति करने वाले होते है।

इस प्रकार की विहार चर्या से विचरण करते हुए कई श्रमणों को केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न होता है और वे अनेक वर्षों तक केवल पर्याय में विचरण करते हैं फिर भक्त प्रत्यास्थान संलेखना संथारा ग्रहण कर संपूर्ण कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

कई श्रमण जीवन पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में ही विचरण करते हैं और अंतिम जीवन में संलेखना संथारा करके अन्तिम अवस्था में केवल ज्ञान दर्शन प्राप्त कर सिद्ध हो जाते हैं।

एवं कई श्रमण संयम का आराधन कर उत्कृष्ट सर्वार्थ सिद्ध अणुत्तर विमान में उत्पन्न होते हैं। वहां उनकी उत्कृष्ट 33 सागरोपम की उम्र होती है वहां से एक भव मनुष्य का प्राप्त कर वे सिद्ध बुद्ध मुक्त हो जाते हैं।

धर्म के आराधक श्रमण श्रमणोपासक जघन्य पहले देवलोक में 2 पल की उम्र में जाते है एवं धर्म के विराधक यहां वर्णित उक्त सभी जघन्य भवनपति या व्यन्तर में 10 हजार वर्ष की उम्र में जाते हैं अथवा अन्य तीन गतियों में भी जाते हैं। उत्कृष्ट गति सभी की अपने अपने उक्त वर्णन में कहीं गई है।

केवली समुद्घात– सभी केवली भगवान केवली समुद्घात नहीं करते हैं। जिन केवलियों के छः महिनों से अधिक उम्र शेष रहते केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया हो वे कोई भी केवली केवली-समुद्घात नहीं करते हैं।

छः महिनों से अल्प उम्र शेष रही हो जब अथवा जीवन के अंतिम क्षणों में केवल ज्ञान होने वाले जिन केवलियों के आयु आदि कर्मों की अत्यधिक असमानता हो तो वे केवली उन कर्मों को सम अवस्था में करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं और जिनके स्वभावतः कर्मों की ऐसी असमानता न हो वे केवली समुद्घात नहीं करते हैं।

केवली समुद्घात में आत्म प्रदेश शरीर से बाहर निकल कर क्रमशः सम्पूर्ण लोक जितनी अवगाहना में फैल कर क्रमशः पुनः शरीरस्थ हो जाते हैं। इस समस्त प्रक्रिया में कुल आठ (सूक्ष्म) समय लगते हैं।

यह केवली समुद्घात योग निरोध अवस्था के अधिकतम अन्तर्मुहुर्त पहले हो जाती है। फिर केवली सम्पूर्ण योगों का निरोध करके शरीर के दो तिहाई अवगाहना में आत्म प्रदेशों को अवस्थित कर देते हैं। उस अवस्थित अवस्था में पांच लधु

अक्षर उच्चारण जितना समय वे केवली रहते हैं। उसे 14वां गुणस्थान कहा गया है। इतने समय बाद वे अयोगी केवली सम्पूर्ण कर्म क्षय कर एवं औदारिक तैजस कार्मण तीनों शरीरों का त्याग कर सदा के लिए शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।

सिद्धों का स्वरूप- जिस प्रकार अग्नि से जले हुए बीजों की पुनः अंकुर रूप में उत्पति नहीं होती, उसी प्रकार संपूर्ण कर्म बीज के जल जाने के कारण सिद्धों की पुनः संसार में उत्पत्ति रूप आवागमन नहीं होता है।

वस्त्र-ऋषभ-नाराच संहनन वाला एवं सभी आकृतियों वाला मनुष्य सिद्ध बन सकता है। जघन्य दो हाथ, उत्कृष्ट 500 धनुष वाला मनुष्य सिद्ध बन सकता है। जघन्य साधिक आठ वर्ष (गर्भ सहित नौ वर्ष) उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की उम्र वाला सिद्ध बन सकता है।

सभी देवलोकों से ऊपर सिद्ध शिला है, जो पृथ्वीकायमय है। 45 लाख योजन के विस्तार वाली गोलाकार है। किनारों पर मक्खी के पंख जितनी जाड़ी (मोटी) है और बीच में आठ योजन जाड़ी है नीचे की सतह समतल है ऊपर की सतह छत्राकार गोल है। वह सिद्ध शिला सर्वार्थ सिद्ध अणुत्तर विमान से 12 योजन ऊपर है। उस सिद्ध शिला से ऊपर उत्सेधांगुल के एक योजन तक लोक है उसके बाद अलोक है। लोक के अंतिम किनारे से लोक के अन्दर 333 धनुष 32 अंगुल तक के जाड़े क्षेत्र में अनंतानंत सिद्ध भगवन्त रहे हुए है। उन सभी की आत्म अवगाहना का ऊपरी किनारा अलोक से अड़ा हुआ (स्पर्श किया हुआ) है।

वे सिद्ध भगवान वहां सादि अनंत काल तक अरूपी शुद्ध आत्म स्वभाव अवस्था में स्थिर रहते हैं। सिद्धों की आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, की उत्कृष्ट 333 धनुष 32 अंगुल की होती है और मध्यम सभी अवगाहनाएं होते है। 45 लाख योजन क्षेत्र में कोई भी स्थान-प्रदेश सिद्धों से खाली नहीं है किन्तु प्रत्येक प्रदेश पर अनंत सिद्धों के आत्म प्रदेश रहे हुए हैं।

एक दीपक के प्रकाश के साथ सैकड़ों दीपक का प्रकाश भी उन्हीं आकाश प्रदेशों में रह सकता है। जब इन रूपी पुद्गल प्रकाश को रहने में भी कोई बाधा नहीं आती है तो अरूपी आत्म प्रदेश अनंत सिद्धों के एक मे अनेक व्याप्त हो कर रहे इसमें किसी भी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं रहता है अर्थात् इस तरह अनंतानंत सिद्ध भगवान निःसंदेह एक साथ रह सकते हैं।

सभी सिद्धों की अवगाहना एक सरीखी नहीं होती है। अंतिम भव में मनुष्य देह की जो अवगाहना और संस्थान होता है। उसी के दो तिहाई अंश जितनी प्रत्येक सिद्ध की अपनी अलग-अलग अवगाहना होती है।

वे वहां स्थित रहे हुए लोक अलोक के सभी भावो को द्रव्य गुण पर्यायों को केवल ज्ञान से जानते हैं एवं केवल दर्शन से देखते हैं। ये ज्ञान और दर्शन दो ही आत्म गुण सिद्धों में रहते हैं। इनका उपयोग साकारोपयोग और अणाकारोपयोग कहा जाता है।

सिद्धों के सुख का ज्ञान-

सिद्धों को जो अव्याबाध सुख प्राप्त है वह न मनुष्यों को है और न देवों को। क्योकि मनुष्य देवों का सुख बाधाओं से एवं विनाश से युक्त हैं। कल्पना से सभी देवों के जीवन भर के सभी सुख को इकट्ठा किया जाय और उसको अनंत बार वर्गावर्गित गुणन किया जाय तो भी वह मोक्ष सुख के समान नहीं हो सकता ।

अन्य कल्पना से एक सिद्व के संपूर्ण सुख को अनंत वर्ग से भाजित किया जाय जो सुख राशि भागफल के रूप में आवे वह भी इतनी अधिक होती है कि संपूर्ण आकाश में समाहित नहीं हो सकती। जैसे कोई असभ्य वनवासी पुरूष नगर के अनेक विध गुणों को सुखों को जानते समझते हुए भी अपने साथी अन्य वनवासियों को नगर की उन सुख सुविधाओं को, सामग्रियों को जंगल की किसी वस्तु से उपमा देकर या किसी सुख की उपमा देकर भी वास्तविक रूप में नहीं समझ सकता, क्योकि वहां जंगल में वैसी उपमा देने की कोई भी वस्तु नहीं है, उसी प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थकर केवल ज्ञानी भगवंत भी छद्मस्थों को संसारिक पदार्थों की उपमा देकर भी सिद्वों के पूर्ण वास्तविक सुख को स्वयं जानते हुए भी नहीं समझा सकते । केवल श्रद्वा उत्पन्न करने के लिए अपेक्षा मात्र से अंशतः समझा सकते हैं। वास्तव में सिद्वों का सुख अनुपम है, उसकी संसार में कोई सच्ची परिपूर्ण उपमा नहीं हैं। यहां भी अपेक्षा से सूक्ष्मांश में उपमा द्वारा श्रद्वागम्य कराने का प्रयत्न किया जाता है-

जैसे कोई पुरूष अपनी इच्छानुसार सर्व गुणों विशेषताओं से युक्त स्वादिष्ट भोजन कर के भूख प्यास से मुक्त होकर, अपरिमित तृप्ति इच्छित आनंद का अनुभव करता हैं। उसी प्रकार सर्व समयों में परम तृप्ति युक्त अनुपम शान्ति युक्त, सिद्व प्रभु शाश्वत विघ्न रहित, परमसुख में निमग्न रहते हैं। वे सर्व दुःखों को पार कर चुके हैं अर्थात् उन्होनें सम्पूर्ण दुःख एवं उनकी परम्परा को मूलतः नष्ट कर दिया हैं। जन्म बुढ़ापा एवं मृत्यु के बंधन से सर्वथा मुक्त हैं। अतः वे सिद्व प्रभु अनुपम सुख सागर में ही सदा काल के लिए अवस्थित रहते हैं।

नोट- विशेष एवं विस्तृत जानकारी के लिए श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर तथा अन्य संस्थाओं से प्रकाशित विस्तार युक्त औपपातिक सूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

।। औपपातिक सूत्र सारांश समाप्त ।।

परिशिष्ट-1

तप-स्वरूप

तप के प्रकार- उत्तराध्ययन सूत्र में 30 वां अध्ययन तप वर्णन का है। उसमें आभ्यन्तर बाह्य उभय तपों का वर्णन गाथाओं में किया गया है। औपपातिक सूत्र में गद्य पाठ के द्वारा अणगारों के तपगुणों के रूप में विस्तार से वर्णन किया गया है। ठाणांग में तप के भेदोपभेद के नाम कहे गये हैं और भगवती सूत्र में प्रश्नोत्तर रूप में सभी तपों का स्पष्टीकरण किया गया है। जिनका सारांश इस प्रकार है-

तप के मौलिक भेद दो हैं- 1. आभ्यंतर 2. बाह्य। दोनों के 6-6 प्रकार है। दोनों प्रकार के तपों में शरीर और आध्यात्म दोनों का पूर्ण सहयोग रहा हुआ है। फिर भी अपेक्षा विशेष से बाह्य तप से बाह्य व्यवहार की प्रमुखता स्वीकार की गई है और आभ्यंतर तप में आध्यात्म भावों की प्रमुखता स्वीकार की गई है।

तात्पर्य यह है कि ये सापेक्ष आभ्यंतर और बाह्य तप है एकांतिक नहीं है। अर्थात् काया के सहयोग बिना वैयावृत्य आदि आभ्यंतर तप नहीं हो सकते और भावों की उच्चता के बिना बाह्य तप में किया गया पराक्रम भी आगे नहीं बढ़ सकता है।

1. अनशन- नवकारसी, उपवास आदि 6 मासी तप की विविधि तप साधनाएं इत्वरिक (अल्पकालिक) तपस्याएं हैं और आजीवन संथारा ग्रहण करना जीवन पर्यन्त का तप है। आजीवन अनशन के भक्त प्रत्याख्यान और पादपोपगमन ये दो भेद हैं।

''भक्त प्रत्याख्यान'' में तीन आहार या चार आहार का त्याग किया जाता है। इसमें शरीर का परिकर्म सेवा आदि स्वयं किया जा सकता है, कराया जा सकता है। निहारिम- मृत्यु के बाद शरीर का दाह संस्कार होता भी है और नहीं भी होता है। यह सागारी भी होता है। यथा- उपद्रव आने पर या रात्रि में।

आचारांग आदि सूत्र में आजीवन अनशन का तीसरा प्रकार ''इंगिनी मरण'' कहा गया है यह मध्यम प्रकार का है अर्थात पादपोपगमन अनशन की अपेक्षा इसमें कुछ सीमित छूटें हैं। यथा- मर्यादित क्षेत्र में हाथ पांव का संकोच विस्तार करना, कुछ समय खड़े रहना या बैठना, चंक्रमण करना आदि।

''पादपोपगमन'' में निश्चेष्ट होकर ध्यान में लीन बने रहना होता है। हलन चलन भी नहीं किया जाता है। किन्तु लघुनीत, बडीनीत का प्रसंग आवे तो उठकर यथास्थान जाना आना किया जा सकता है। किन्तु संथारे के स्थान पर रहे हुए ही मलमूत्र नहीं किया जाता है। निहारिम अनिहारिम दोंनों तरह का होता है। उपसर्ग आने पर भी पादपोपगमन संथारा किया जा सकता है।

संलेखना का काल क्रम-

मुनि अनेक वर्षों तक संयम का पालन कर इस क्रमिक तप से अपनी आत्मा की संलेखना करे। यह संलेखना, संथारे के पूर्व की जाती है।

संलेखना उत्कृष्ट बारह वर्ष, मध्यम एक वर्ष तथा जघन्य छह मास की होती है।

बारह वर्ष की संलेखना करने वाला मुनि पहले चार वर्ष में विगयों का परित्याग करे। दूसरे चार वर्षों में फुटकर विचित्र तप का आचरण करे।

फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप करे व पारणे के दिन आयंबिल करे। ग्यारहवें वर्ष के पहले छः महीनों में कठिन तप न करें।

ग्यारहवें वर्ष के पिछले छः महीनों में कठिन तप करे। इस पूरे वर्ष में पारणे के दिन आयबिल करे।

बारहवें वर्ष में मुनि कोटि सहित आयंबिल करे फिर पक्ष या मास का अनशन तप करें। -उत्तरा. अ. 36

2. ऊणोदरी– इच्छा व भूख से कम खाना, कम उपकरण रखना, कम वस्तुओं का उपयोग करना ''ऊणोदरी'' तप है।

आहार ऊणोदरी का विस्तृत वर्णन छेद सूत्रों में देखें। 1 पात्र 1 वस्त्र (एक चादर) रखना उपकरण ऊणोदरी है। अथवा काम में आये हुए (गृहस्थ के उपयोग लिये) उपकरण ग्रहण करना भी उपकरण ऊणोदरी है। भाव उणोदरी के कथन में-कलह, कषाय बोलाबोली (वाक्‌युद्ध) आदि के प्रसंग में गम खाना, शांत रहना, मौन रखना, भाव उणोदरी कहा गया है। गुस्सा, घमण्ड, कपट, लोभ, लालच से आत्मा को अलग-सुरक्षित रख लेना भी, भाव उणोदरी तप कहा गया है।

3. भिक्षाचरी– गोचरी में विविध अभिग्रह करना, 7 पिंडेषणा, 7 पाणेषणा के संकल्प से गोचरी जाना। आठ प्रकार की पेटी, अर्द्धध पेटी इत्यादि आकार वाली भ्रमण विधि में से किसी विधि का संकल्प करना। द्रव्य क्षेत्र काल भाव सम्बन्धी अभिग्रह करना। द्रव्य से-खाद्य पदार्थों की संख्या, दत्ति संख्या आदि निर्धारित करना। क्षेत्र-भिक्षा के घरों की संख्या, क्षेत्र दिशा आदि की सीमा करना। काल-समय की मर्यादा करना उतने समय में ही भिक्षा लाना खाना। भाव से-दाता सम्बन्धी, देय वस्तु से सम्बन्धी, रंग व्यवहार आदि से अभिग्रह करना। शुद्ध ऐषणा समिति से प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करके गौचरी करना भी भिक्षाचारी तप कहा गया है इस संकल्प में नया अभिग्रह तो नहीं होता है किन्तु ऐषणा नियमों में अपवाद का सेवन नहीं किया जा सकता। मौन पूर्वक गोचरी करना भी भिक्षाचरी तप कहा गया है। भिक्षाचरी तप को अभिग्रह तप या वृत्ति-संक्षेप तप भी कहा जा सकता है।

4. रस परित्याग– विगयों का महागियों का त्याग करना, स्वादिष्ट मनोज्ञ पदार्थों का त्याग करना। विविध खाद्य पदार्थों का त्याग करना, खादिम स्वादिम का त्याग करना, अन्य भी मनोज्ञ इच्छित वस्तुओं के खाने का त्याग करना ''रस परित्याग तप'' है। यों संयम साधक रसास्वाद के लिये कोई भी आहार नहीं करता है। किन्तु संयम मर्यादा एवं जीवन निर्वाह के हेतु ही मर्यादित आहार करता है। फिर भी विशिष्ट त्याग की अपेक्षा यह तप होता है।

5. कायक्लेश– आसन करना, लम्बे समय तक स्थिर आसन रहना, खड़े रहना, शयनासन का त्याग करना, वीरासन आदि कष्ट प्रद आसन करना, आतापना लेना, सर्दी में शीत सहन करना, निर्वस्त्र रहना, अचेल धर्म स्वीकार करना, ये कायक्लेश तप है। संयम विधि के आवश्यक नियम पाद (पैदल) विहार, लोच करना, स्नान नहीं करना, औषध उपचार नहीं करना, भूमि शयन करना, आदि भी काय क्लेश तप रूप ही है। इसके चार भेद है-1.आसन 2.आतापना 3. विभूषा त्याग 4.परिकर्म-शरीर सुश्रुषा त्याग।

भिक्षाचर्या के 30 प्रकार–

1. द्रव्य– द्रव्यों से सम्बन्धी नियम या अभिग्रह करके आहार लेना।

2. क्षेत्र– ग्रामादि क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र सम्बन्धी वास, गली, घर आदि का अभिग्रह करके आहार लेना।

3. काल- दिन के अमुक भाग में आहार लेने का अभिग्रह करना।

4. भाव- अमुक वय, वस्त्र या वर्ण वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

5. उक्खित्त चरए- किसी बर्तन में भोजन निकालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

6. निक्खित्त चरए- किसी बर्तन में भोजन डालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

7. उ. नि. चरए- किसी एक बर्तन में भोजन लेकर दूसरे बर्तन में डालने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

8. नि. उ. चरए- किसी एक बर्तन में निकाले हुए भोजन को, दूसरे बर्तन में लेने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

9. वट्टिज्जमाण चरए- किसी के लिए थाली में परोसा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना।

10. साहरिज्जमाण चरए- अन्यत्र कहीं भी ले जाने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

11. उवणीय चरए- आहार की प्रशंसा करके देने वाली से आहार लेने का अभिग्रह करना।

12. अवणीय चरए- आहार की निन्दा करके देने वाली से आहार लेने का अभिग्रह करना।

13. उवणीय अवणीय चरए- जो आहार की पहले प्रशंसा करके बाद में निन्दा करे उससे आहार लेने का अभिग्रह करना।

14. अवणीय उवणीय चरए- जो आहार की पहले निन्दा करके बाद में प्रशंसा करे उससे आहार लेने का अभिग्रह करना।

15. संसट्ट चरए- लिप्त हाथ, पात्र या चम्मच से आहार लेने का अभिग्रह करना।

16. असंसट्ट चरए- अलिप्त हाथ, पात्र या चम्मच से आहार लेने का अभिग्रह करना। इसमें दाता और वस्तु का विवेक रखा जाता है जिससे कि पश्चातकर्म दोष न लगे।

17. तज्जाय संसट्ट चरए- देय पदार्थ से लिप्त हाथ, पात्र या चम्मच द्वारा दिये जाने वाले आहार को लेने का अभिग्रह करना।

18. अण्णाय चरए- अज्ञात स्थान (जहां भिक्षु की प्रतीक्षा न करते हों वहां) से आहार लेने का अभिग्रह करना अपनी जाति कुल बताये बिना आहार लेना। अज्ञात, अपरिचित व्यक्तियों के घरों से आहार लेना।

19. मौन चरए- मौन रखकर आहार लेने का अभिग्रह करना।

20. दिट्ठ चरए- दिखता हुआ अर्थात् सामने रखा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना।

21. अदिट्ठ चरए- नहीं दिखता हुआ अर्थात् अन्यत्र रखा हुआ, पेटी, आलमारी आदि में रखा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना।

22. पुट्ठ चरए- ''तुम्हें क्या चाहिए'' इस प्रकार पूछकर देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

23. अपुट्ठ चरए- बिना पूछे देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

24. भिक्ख लाभिए- ''मुझे भिक्षा दो'' ऐसा कहने पर देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

25. अभिक्कखलाभिए- ''भिक्षा दो'' आदि कुछ भी कहे बिना ही स्वतः देने वाले से आहार लेने का अभिग्रह करना।

26. अण्णगिलायए- आज का बना हुआ आहारादि नहीं लेने का अभिग्रह करना।

27. ओवणीयए- दाता के समीप में पड़ा हुआ आहार लेने का अभिग्रह करना।

28. परिमिय पिंडवाइए- परिमित द्रव्यों के लेने का अभिग्रह करना।

29. सुद्धेषणीए- ऐषणा में कोई भी अपवाद सेवन न करने का अभिग्रह करना।

30. संखा दत्तिए- दति का परिमाण निश्चित्त करके आहार लेने का अभिग्रह करना।

भिन्नपिण्डपातिक- खंड-खंड किये हुए पदार्थों की भिक्षा लेने वाला, अखंड पदार्थ मूंग चना आदि नहीं लेने वाला। -ठाणांग 5

रस परित्याग तप के नौ प्रकार-

1. निर्विकृतिक- विगय रहित आहार करना।

2. प्रणीत रसपरित्याग- अतिस्निग्ध और सरस आहार का त्याग करना-सादा भोजन करना।

3. आयंबिल- नमक आदि षट्रस तथा विगय रहित एक द्रव्य को अचित्त पानी में भिगोकर दिन में एक ही बार खाना।

4. आयाम सिक्थभोजी- अत्यल्प (कण मात्र) पदार्थ लेकर आयंबिल करना।

5. अरसाहार- बिना मिर्च मसाले का आहार करना।

6. विरसाहार- बहुत पुराने अन्न से बना हुआ आहार करना।

7. अन्ताहार- भोजन के बाद बचा हुआ आहार करना।

8. प्रान्ताहार- मलिचा आदि तुच्छ धान्यों से बना हुआ आहार करना।

9. रूक्षाहार- रूखा-सूखा आहार करना।

कायक्लेश तप के नौ प्रकार-

1. स्थानास्थितिक- एक आसन से स्थिर खड़े रहना। बैठना नहीं।

2. उत्कुटुकासनिक- पुट्ठो को भूमि पर न टिकाते हुए केवल पांवों के बल बैठकर मस्तक पर अंजली करना।

3. प्रतिमास्थायी- एक रात्रि आदि का समय निश्चित कर कायोत्सर्ग करना।

4. वीरासनिक- कुर्सी पर बैठे व्यक्ति के नीचे से कुर्सी निकालने पर जो स्थिति होती है, उस आसन से स्थिर रहना।

5. नैषधिक- पुट्ठे टिकाकर पालथी लगाकर बैठना एवं समय की मर्यादा करना।

6. आतापक- धूप आदि की आतापना लेना।

7. अप्रावृतक- देह को कपड़े आदि से नहीं ढ़कना, खुले शरीर रहना।

8. अकण्डूयक- खुजली चलने पर भी देह को नहीं खुजलाना।

9. अनिष्ठीवक- थूंक कफ आदि आने पर भी नहीं थूकना।

सर्व-गात्र परिकर्म एवं विभूषा विप्रमुक्त-देह के सभी संस्कार तथा विभूषा-श्रंगार आदि करने से मुक्त रहना।

1. दण्डायतिक- दंडे के समान सीधे लम्बे पैर करके सोना ।

2. लगण्डशायी- सिर और एड़ी को जमीन पर टिकाकर शेष शरीर को ऊपर उठाकर सोना। अथवा करवट से सोकर हथेली पर सिर एवं एक खड़े पांव के घुटने पर दूसरे पांव की एड़ी रखना। इस आसन में सिर रखे हाथ की कोहनी जमीन पर रहती है और एक पांव का पंजा भूमि पर रहता है, एक करवट भूमि पर रहता हैं।

3. समपादपुता- दोनो पैरों को और नितम्बों को भूमि पर टिकाकर बैठना ।

4. गोदोहिका- गाय दुहने की तरह से बैठना।

5. अप्रतिशायी- शयन नहीं करना। खड़े रहना या किसी भी आसन से बैठे रहना ।

6. प्रतिसंलीनता तप-

1. इन्द्रियों को अपने विषयों में नहीं जाने देना एंव सहज इन्द्रिय प्राप्त विषयों में राग द्वेष नहीं करना, इन्द्रिय प्रतिसंलीनता तप हैं।

2. गुस्सा घमंड कपट लोभ लालच को उत्पन्न ही नहीं होने देना, सावधान रहना एवं उदय की प्रबलता से उत्पन्न हो जाय तो उसे तत्काल विफल कर देना अर्थात ज्ञान से वैराग्य से अपने कर्तव्य का चिंतन कर, आत्म सुरक्षा के लक्ष्य को प्रमुख कर, परदोष दर्शन दृष्टि को नष्ट कर, स्वदोष दर्शन को प्रमुख कर, एहिक स्वार्थों को गौण कर, आध्यात्म विकास को प्रमुख रखकर, उन कषायों को टिकने ही नहीं देना ''कषाय प्रतिसंलीनता'' हैं।

3. बुरे संकल्प विकल्प उत्पन्न ही नही होने देना, अच्छे उन्नत संकल्पों को बढ़ाते रहना एवं मन को एकाग्र करने में अभ्यस्त होना अर्थात धीरे धीरे संकल्प विकल्पों से परे होना, ये सभी ''मन योग प्रतिसंलीनता'' हैं। इसी प्रकार खराब वचन का त्याग या अप्रयोग,अच्छे वचनों का प्रयोग, उच्चारण और मौन का अधिकतम अभ्यास, यह ''वचन योग प्रतिसंलीनता'' हैं। हाथ पांव आदि शरीर के अंग उपांगों को पूर्ण संयमित संकुचित रखना, स्थिरकाय रहना, चलना, उठना, बैठना, अंग संचालन आदि प्रवृत्तियों पर विवेक और यतना की विधि को अभ्यस्त रखते हुए अयतना पर पूर्ण अंकुश रखना ''काय प्रतिसंलीनता'' हैं। हाथ पांव मस्तक, अस्त-व्यस्त चंचलता युक्त चलाते रहना, अनावश्यक प्रवर्त्तन करना, ''काय प्रतिसंलीनता'' हैं।

4. एकांत स्थानों में रहना, बैठना, सोना, आदि चौथा ''विविक्त शयनासन''प्रतिसंलीनता तप हैं।

7. प्रायश्चित्त- प्रमाद से, परिस्थिति से या उदयाधीन होने से लगे दोषों की आलोचना आदि करना, सरलता नम्रता लघुता युक्त होकर पूर्ण शुद्धि करना यथा योग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करना मिथ्या दूष्कृत देना आदि 'प्रायश्चित तप' हैं।

8. विनय- विनय का सामान्य अर्थ नम्रता, वंदना, नमस्कार, आज्ञापालन, आदरदेना, सन्मान करना, भक्ति भाव युक्त व्यवहार करना, यह सब प्रवर्त्तन सामान्य 'विनय तप' हैं ।

विशेष अर्थ- आत्मा के कर्मों को दूर करने हेतु ज्ञान दर्शन चारित्र का आराधन कर श्रुत भक्ति अनाशातना का व्यवहार करना, मन वचन काया को प्रशस्त रख कर कर्म बंध से आत्मा को विशेषरूप से दूर करना, अप्रशस्त मन वचन व्यवहार नहीं करना भी विनय हैं। विनय के क्षेत्र काल सम्बन्धी नियम अनुष्ठानों का, व्यवहार का पालन करना भी ''विनय तप'' हैं। कायिक प्रवृत्तियां यतना पूर्वक करना प्रत्येक व्यक्ति या प्राणी के साथ सद्व्यवहार करना इत्यादि विशेष विनय के सात प्रकार है यथा- 1. ज्ञान विनय 2. दर्शन विनय 3. चारित्र 4.मन 5. वचन 6. काय विनय 7. लोकोपचार विनय हैं।

काया से उपयोग पूर्वक गमनागमन उल्लंघन-प्रलंघन, बैठना उठना भी विनय में कहा गया हैं। अविवेकी प्रवृत्तियां नहीं करना भी विनय हैं। अर्थात् सभी प्रकार की विवेक युक्त अनाश्रवी वृत्ति से व्यवहार करने वाला गुण सम्पन्न व्यक्ति विनीत कहा जाता हैं। इस प्रकार सभी उन्नत गुणों को विनय कहा जा सकता हैं। जिनका उक्त सात भेदों में समावेश हो जाता हैं। इसी अपेक्षा से उत्तराध्ययन सूत्र के पहले और गयारहवें अध्ययन में अनेक गुणों वाले को विनीत कहा गया हैं।

टिप्पण- 1.आत्म शुद्धि बिना विनय के संभव नहीं हैं। विनय व्यक्ति को अहंकार से मुक्त करता है और यह स्पष्ट है कि आत्मगत दोषों में अहंकार ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण दोष हैं। जैनागमों में विनय शब्द का तात्पर्य आचार के नियमों से भी हैं। उसके अनुसार आचार के नियमों का सम्यक् रूप में परिपालन ही विनय हैं। दूसरे अर्थ में विनय विनम्रता का सूचक हैं। इस दूसरे अर्थ का तात्पर्य है वरिष्ट एवं गुरूजनों का सन्मान करते हुए उनकी आज्ञाओं का पालन करना व उन्हें आदर प्रदान करना ।

9. वैयावृत्य- आचार्य आदि 10 संयमवान महापुरूषों की यथायोग्य सेवा करना वैयावृत्य तप हैं। 1. आचार्य 2. उपाध्याय 3. स्थविर 4. तपस्वी 5. रोगी 6. नवदीक्षित 7. कुल 8. गण 9. संघ 10. साधर्मिक श्रमण ।

इन्हें आहार, पानी, औषध, वस्त्र-पात्र, प्रदान कर शारीरिक साता पहुंचाना, वचन-व्यवहार से मानसिक समाधि पहुंचाना, वैयावृत्य तप हैं।

10. स्वाध्याय- इसके 5 प्रकार है- 1. वाचना 2. पृच्छा 3. परिवर्तना-कंठस्थ ज्ञान का पुनरावर्तन 4. अनुप्रेक्षा 5. धर्म कथा। रूचिपूर्वक आगमों का, जिनवाणी का, भगवद् सिद्धान्तों का, कंठस्थ अध्ययन करना, वांचना करना, मनन चितन अनुप्रेक्षण करना, प्रश्न प्रतिप्रश्नों से अर्थ परमार्थ को समझना एवं इस उक्त स्वाध्याय आदि से प्राप्त अनुभव को भव्य जीवों के पथ प्रदर्शन के लिये प्रसारित प्रचारित करना अर्थात् प्रवचन देना, स्वतः उपस्थित परिषद के योग्य हिता वह उद्बोधन देना, उन्हें धर्म मार्ग में उत्साहित करना, यह सब स्वाध्याय तप है (प्रेरणा करके या पत्रिका छपवा कर भक्तों को इकट्ठा कर सभा का आयोजन किया जाता है और उनकों प्रसन्न करने हेतु सम्मान माल्यार्पण किया जाता है यह स्वाध्याय तप नहीं हैं।)

11. ध्यान– स्वाध्याय आदि से प्राप्त अनुभव ज्ञान के द्वारा आत्मानुलक्षी, वैराग्य वर्धक, अनित्य भावना, अशरण भावना, संसार भावना, एकत्व भावना, अशुचि भावना आदि के द्वारा आत्मध्यान में लीन बन जाना और ज्ञान वैराग्य एवं आत्म भाव में एक मेक बन जाना, चित्त-चिंतन सारे एक ही आध्यात्म विषय में एकाग्र, स्थिर, स्थिरतम हो जाना, आत्म विकास के आत्मगुणों में पूर्ण रूपेण क्षीर नीर वत् मिल जाना, इस प्रकार समभाव युक्त आत्म विषय में एकाग्र चित हो जाना, तल्लीन बन जाना ''ध्यानतप'' हैं।

स्वाध्याय के चौथे भेद रूप अनुप्रेक्षा और ध्यान की अनुप्रेक्षा दोनों ही अनुप्रेक्षा है किन्तु है दोनों अलग-अलग। एक तत्त्वानुप्रेक्षा है तो दूसरी आत्मानुप्रेक्षा। विस्तृत नय की अपेक्षा ध्यान के चार भेद भी है यथा- 1 आर्त्त ध्यान 2 रौद्र ध्यान 3 धर्म ध्यान 4 शुक्ल ध्यान ।

नोट– ध्यान स्वरूप एवं उसके भेदप्रभेद तथा विस्तृत विचारणा आगे परिशिष्ट न. 2 में देखें।

12. व्युत्सर्ग– स्वाध्याय और ध्यान में वचन मन का प्रयोग होता है किन्तु व्युत्सर्जन तप त्याग प्रधान हैं। यह अंतिम और पराकाष्ट दर्जे का तप हैं। इसमें त्याग ही त्याग करना होता हैं। यहां तक कि स्वाध्याय और ध्यान का भी त्याग किया जाता हैं। क्यों कि स्वाध्याय ध्यान में योग प्रवर्त्तन है, अनुप्रेक्षा करना भी योग प्रवृत्ति हैं। इस व्युत्सर्ग तप में तो मन वचन काया के योगों के त्याग का ही लक्ष्य होता हैं।

द्रव्य– 1. सामुहिकता का अर्थात् गण का त्याग कर एकल विहार धारण करना ''गण व्युत्सर्ग तप'' हैं। 2. शरीर का त्याग कर कायोत्सर्ग करना अर्थात तीनों योगों का शक्य व्युत्सर्जन करना,, ''कायोत्सर्ग तप'' हैं। 3. उपधि का क्रमिक या पूर्ण रूपेण त्याग करने रूप देश अचेलत्व या पूर्ण अचेलत्व स्वीकार करना ''उपधि व्युत्सर्जन तप'' है। 4 -आहार पानी का पूर्ण रूपेण या क्रमिक त्याग करना ''भक्त पान व्युत्सर्जन तप'' हैं। द्रव्य व्युत्सर्ग तप के ये 4 प्रकार कहे गये हैं।

भाव– कषाय त्याग, कर्म बंध निवारण और संसार भ्रमण का निरोध ये भाव व्युत्सर्ग तप के तीन प्रकार हैं।

विशेष विचारणा– कायोत्सर्ग में जो लोगस्स आदि के जाप आदि की प्रवृत्ति चल रही है वह पूर्ण व्युत्सर्जन नहीं हैं। सही रूप में व्युत्सर्जन वह है जिसमें वचन और काय योग के त्याग के साथ निर्विकल्पता की साधना होती है अर्थात् इसमें मनोयोग के व्यापार का भी निरोध करने का पूर्ण लक्ष्य होता है, अनुप्रेक्षा का भी त्याग होता है, यही पूर्ण कायोत्सर्ग रूप व्युत्सर्ग तप की साधना हैं। यह ध्यान के बाद का तप हैं। ध्यान से भी इसकी श्रेणी विशिष्ट दर्जे की साधना वाली हैं।

आजकल इस साधना को भी ध्यान के नाम से प्रचारित किया जाता हैं। यथा- निर्विकल्प -ध्यान, गोयनका-ध्यान, प्रेक्षा-ध्यान, आदि। यह व्यवहार सत्य ध्यान हो गया है किन्तु वास्तविक सत्य नहीं हैं। कई लोगों का ऐसा सोचना है कि निर्विकल्पता छदमस्थ के नहीं हो सकती हैं। किन्तु उनका ऐसा एकांतिक विचार अयोग्य हैं। मनोयोग का अन्तर भी शास्त्र में बताया गया हैं। प्रगाढ निद्रा में भी मनोयोग अवरूद्ध होता ही है। एवं व्युत्सर्ग तप में योगों का व्युत्सर्जन करना भी आगम में तप रूप कहा गया हैं। इसमें मन के संकल्पों का भी व्युत्सर्जन करना समाविष्ट ही हैं। अतः उसका एकांत निषेध करना अनुपयुक्त एवं अविचारकता हैं। ध्यान की साधना से यह व्युत्सर्जन की साधना कुछ विशेष कठिन अवश्य है, किन्तु इसे असाध्य नहीं मानना चाहिये ।

ये सभी प्रकार के तप, 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र' की भूमिका के साथ ही महत्व शील होते है, अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र या चारित्रा-चारित्र नहीं है तो बिना भूमिका का तप आत्म उत्थान में, मोक्ष आराधना में महत्वशील नहीं हो सकता। अतः किसी भी छोटे या बड़े तप में ज्ञान श्रद्धान एवं विरति भाव की उपेक्षा नहीं होनी चाहियें चाहे भले ही वह उच्च ध्यान हो या परम तप व्युत्सर्ग हो।

चतुर्विध मोक्ष मार्ग की सापेक्ष साधना ही मोक्ष फलदायी हो सकती हैं। वे चार प्रकार हैं-1 सम्यग् ज्ञान 2 सम्यग श्रद्धान 3 सम्यग् चारित्र 4 सम्यग् तप। यथा-

णांण च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्गं अणुपत्ता, जीवा गच्छई सोग्गइं ।।

-उतरा. अ. 28 गा. 3

भावार्थ- इस चतुर्विध मोक्ष मार्ग को प्राप्त करके उसकी आराधना करने वाले जीव मोक्ष रूपी सद्गति को प्राप्त करते हैं।

।। इति तप स्वरूप परिशिष्ट समाप्त ।।

ध्यान स्वरूप

चार ध्यान विस्तार-

ध्यान चार- 1. आर्त्तध्यान, 2. रौद्रध्यान 3. धर्मध्यान और 4. शुक्लध्यान ।

आर्त्तध्यान के चार भेद अथवा पाये- 1.पांच इन्द्रियों तथा तीन योगों को इष्ट, साताकारी, सुखकर ऐसे पौद्गलिक इष्ट संयोग जो अप्राप्त है वे प्राप्त हो तथा जो प्राप्त है वे टिके रहें, ऐसी चिंतन की स्थिरता एकाग्रता। 2. पांच इंद्रियों तथा तीन योगों को अनिष्ट, असाताकारी दुःखकर ऐसे पौद्गलिक संयोगों का वियोग हो तथा वियोग बना रहें, ऐसी चिंतन की एकाग्रता। 3. काम-भोगों को भोगने में, आरोग्य बना रहे, जवानी बनी रहे, योग इंद्रियों का सामर्थ्य बना रहे, स्वाधीनता, सत्ता बनी रहे, उन्माद बना रहे, ऐसी चिंतन की एकाग्रता 4. इस भव में तथा आगमी भव में और भव भव में इंद्र चक्रवर्ती आदि के पद, सुख मिले, ऐसी चिंतन की एकाग्रता ।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण- चिन्ह- 1. इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग होने पर मन से शोक करना, अरति-ग्लानि-उदासीनता करना, उद्विग्न होना, संतप्त-परितप्त होना, 2. वचन से रूदन करना, विलाप करना, आक्रन्द करना, दीन वचन कहना आदि 3. काया से छाती-माथा हाथ आदि से कूटना, हाथ पैर पछाड़ना, मस्तक को झुका कर उस पर हाथ देकर बैठना, मुंह को ढंकना, 4. आंखों से अश्रुपात करना, आंखें भीगी भीगी होना, नाक से निःश्वास ढालना, मुंह से जिव्हा बाहर निकालना आदि ।

1. अनिष्ट वियोग इष्ट संयोग आदि होने पर मन से प्रसन्न होना, रति भाव का होना, मन में गुदगुदी होना, खुशी में फूलना, तृप्त परितृप्त होना, 2.वचन से गीत गाना, हास्य यावत् अट्टहास करना, बांसुरी सीटी बिगुल बजाना, खिलखिलाहट करना आदि 3. काया से मूछों पर ताव देना, हाथों से ताली बजाना, पैरों से नाचना, हाथ पैर उछालना, कूदना, भुजा आदि फटकारना, अभिनय करना, आंखों का विकसित होना, हर्ष के आंसू आना, नाक से श्वास की गति मन्थर धीमी होना, जिव्हा का ओष्ठ पर घूमना आदि ।

रौद्रध्यान के चार भेद पाये- 1. अपने इष्ट संयोग आदि के लिये निर्दोष निर्बल को दबाना, पीडित करना, दंड देना, हत्या करना युद्ध करना, 2. झूठ बोलना, विश्वासघात करना, मिथ्या कलंक दोषा-रोपण करना, झूठी साक्षी देना, 3. बड़ी चोरी करना, डाका डालना, लूटना, उसके लिए प्रेरणा सहायता देना, चोरी का माल सस्ते में लेना, न्यायोचित कर (टेक्स) की चोरी करना, चोरी करके प्रसन्न होना, 4. निर्दोष को कारावास में डालना, कन्या, परस्त्री या विधवा का अपहरण करना, बलात्कार करना, सर्राफ श्रेष्ठि बनकर धरोहर दबा कर मुकर जाना, स्वामी उपकारी का द्रोह करना आदि।

रौद्रध्यान के चार लक्षण चिन्ह- स्वजन या परजन के अनजान में प्रथम बार में किये गये छोटे अपराध पर बड़ा कोप करना, बड़ा क्रूर दंड देना, 2.बारंबार विविध प्रकार से दंड देना। 3.आरोप प्राप्त के द्वारा निर्दोषता प्रमाणित किये जाने पर भी उसे जानने समझने को उद्यत न होना, समझ में आने पर भी स्वीकार करने को तैयार न होना, 4. आरोपी के द्वारा क्षमा मांग लिये जाने के बाद भी एवं जीवन में सुधार लाये जाने के बाद भी, मरण तक उनके प्रति वैर शत्रुता बनाये रखना।

धर्म ध्यान के 4 भेद पाये- 1. तीर्थंकर देवों की आज्ञा का, संवर निर्जरा धर्म आदरने का ध्यान करे, अनाज्ञा का आश्रव का विरमण करने का ध्यान करे, 2.आज्ञा पालन से इह भव के सुख-शांति आदर आदि के लाभ तथा कर्म निर्जरा के लाभ का चिंतन करें, आज्ञा पालन न करने से इस लोक के दुःख, अशांति, अनादर आदि का तथा कर्मबन्ध एवं कर्म गुरूता का ध्यान करे 3.आज्ञापालन से परभव के पुण्यफल तथा निर्जरा का चिंतन करे तथा आज्ञा विराधना से परभव के पाप फल तथा कर्म बंध का चिंतन करे 4. आज्ञापालन से लोकाग्र, लोक मस्तक, सिद्व शिला पर सिद्वत्व प्राप्ति एवं अनुत्तर अव्याबाध सुख का चितन करे तथा आज्ञा विराधना से चौदह रज्जु परिमाण ऊर्ध्व-अधो तिर्यक्-लोक में 4 गति 24 दंडक 84 लाख जीवयोनि में परिभ्रमण, दारूण, दुःख, दुःख-परंपरा अनुबंध का विचार करे।

धर्मध्यान के चार लक्षण चिन्ह- 1. देवगुरूशास्त्र की आज्ञा आदेश अनुशासन में तथा तदनुसार क्रिया में रूचि, 2. विधि उपदेश, बोध, समझाइश में तथा उससे क्रिया धर्म में रूचि, 3.सूत्र-मूल आगम, सिद्वान्त-श्रवण, वाचन, अध्ययन, कंठस्थ करना, अध्ययन आदि में रूचि, 4. निसर्ग- ऊपर के तीनों कारणों के बिना क्षयोपशम स्वभाव से ही दृश्य पदार्थ की अनुप्रेक्षा, जातिस्मरण, ज्ञान या अवधिज्ञान से रूचि।

धर्मध्यान के चार आंलबन- 1. गुरू-शिष्य या साधर्मिक से वाचना लेना-देना, सुनना सुनाना, सीखना सिखलाना 2. जिज्ञासा स्पष्टता परीक्षादि हेतु प्रश्न पुछना,-उत्तर देना, वाद विवाद करना एवं प्रश्नोत्तर वाद विवाद सुनना 3.स्वाध्याय करना कराना, सुनना, दुहराना, पक्का करना 3.धर्मकथा कहना-सुनना, शिक्षा बोध उपदेश आज्ञा देना लेना।

धर्मध्यान के चार अनुप्रेक्षा- 1. एकत्व की अनुप्रेक्षा- संसारी जीव, कुटुम्ब, जाति समाज आदि में अनेक रूप से होते हुए भी जीव अकेला है, अकेला ही पूर्व भव से आया है, अकेला ही आगामी भव में जाने वाला है, कर्म को बांधने में संचित करने में, उदीरणा में, भोगने में, निर्जरने में अकेला आत्मा ही मुख्य कारक है, अन्य सभी उपकारक या सहकारक हैं। **2. अनित्य भावना-** जीव से जीव का , पुद्गल से पुद्गल का जीव से पुद्गल का संयोग सम्बन्ध अनित्य है, क्योकि वियोग अवश्यंभावी हैं। यथा- जीव और शरीर का जन्म-संयोग है तो मृत्यु-वियोग निश्चित हैं। लग्न के बाद वैधव्य विधुरत्व अनिवार्य हैं। संघात से स्कन्ध बनने के बाद भेद से परमाणुदशा अवश्य आती है, **3. अशरण भावना-** जब तक पुण्य है, तब तक शरीर, परिवार, धन आदि शरणभूत दिखते हैं परंतु निकाचित पापोदय के होने पर दारूण कर्म विपाक को भोगना ही पड़ता हैं। कोई भी उसने बचाने का सामर्थ्य नहीं रखता, कोई उसे ले भी नहीं सकता, उसका अंश मात्र भी नहीं ले सकता, उसे कम भी नहीं कर सकता, ''कम हो जायगा'', ऐसा वास्तविक पक्का आश्वासन भी नहीं दे सकता। **4. संसार भावना-** जो आज माता है, वह पुत्री, पत्नी, भगिनी, पुत्रवधु बन जाती है, जो पिता है, वह पुत्र, भाई पति जमाई बन जाता है, इस तरह अनुकूल सम्बन्ध भी परिवर्तशील है तथा शत्रु, शोषक, हत्यारा, विश्वासघाती भी बनता है, ये प्रतिकूल सम्बन्ध भी परिवर्तनशील हैं। अनुकूल में प्रतिकूल तथा प्रतिकूल अनुकूल में यों भी परिवर्तन चालू रहता हैं। कोई आगामी भव में तो कोई इसी भव में परिवर्तित हो जाते हैं।

शुक्ल ध्यान के चार भेद पाये- 1.धर्म ध्यान की सूक्ष्मता बढ़ाते हुए श्रुतज्ञान के शब्द से अर्थ में, या अर्थ से शब्द में संक्रान्त होना, श्रुत निर्दिष्ट द्रव्य से गुण में, गुण से पर्याय से द्रव्य में किसी भी विकल्प से संक्रान्त होना परन्तु अन्य विषयों में न जाना, उसी विषय में एकाग्र होना 2. श्रुतज्ञान के शब्द या अर्थ में , द्रव्य गुण या पर्याय में संक्रान्त हुए बिना किसी एक में ही एकाग्र होना। इसी प्रकार मन वचन काया से भी संक्रान्त हुए बिना एकाग्र होना । 3. तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान में आरूढ़ होने के बाद मन वचन काय योग का निरोध करना। 4.सूक्ष्म मन वचन काय योग का भी निरोध कर के चौदहवें गुणस्थान में मेरू पर्वत के समान सर्वथा अचल होना, आत्मप्रदेशों का भी उत्कलन न रहना।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण- 1. प्रखर, परम असाता कारक प्रखर, वेदनीय तथा मरण के प्राप्त होने पर भी ''व्यथित न होना'' 2. प्रबल चरम मोह कारक अप्सरादि के विलास, कटाक्ष, आमंत्रण आलिंगन आदि में भी ''मोह प्राप्त न करना'' 3. जीव और शरीर में पृथक्करण का अनुभव करना, विवेक भाव प्राप्त करना, जागृत रहना। 4. पृथक्करण अनुभव के अनुसार शरीर ममत्व आदि का त्याग करना, पौद्गलिक सुख-दुःख के संयोग में अंखड निर्वेद भाव में रहना। शरीर और उपधि में आशक्ति भाव का ''व्युत्सर्जन'' होना।

शुक्ल ध्यान के चार आलंबन- 1. क्रोध उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी अपूर्व ''क्षमा'' धारण करना, सोमिल ब्राह्मण के प्रसंग में 'गजसुकुमाल' के समान। 2. लोभ उदीरणा का बलवान प्रसंग उपस्थित होने पर भी अपूर्व ''लोभ मुक्त'' होना यथा- भवनपति देवों द्वारा निदान करने की प्रार्थना किये जाने पर भी लोभ मुक्त ''तामली' तापस वत्। 3.माया उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी ''सरलता'' निष्कपटता एकरूपता तीनों योगों की बनाये रखना। यथा महाबल के द्वारा माया किये जाने पर भी सरलमना छह मित्र राजर्षि के समान। 4. मान उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी ''नम्र विनीत कोमल लघु'' बने रहना, क्षत्रिय राजर्षि के द्वारा स्तुति किये जाने पर नम्र संयति राजर्षि के समान ।

शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षा- 1. व्यवहार राशि का प्रत्येक संसारी जीव सभी योनियों में अंनतीबार परिभ्रमण कर चुका है फिर भी मोह के कारण विराम की भावना नहीं आई 2. विश्व के सभी पुद्गल पदार्थ स्वभाव से या प्रयोग से शुभ से अशुभ में तथा अशुभ से शुभ में परिणत होते रहते है तो फिर उनमें एकांत राग या एकांत द्वेष क्यों करना? वीतरागता के भाव में ही रहना। 3. इस संसार के समस्त प्रवर्त्तनों में दुख का अनुभव करना यथा- ''अहो दुक्खो हु संसारो'' अर्थात् ''यह सारा संसार दुखमय है'' ऐसा चिंतन करके विरक्त रहना। दुख के मूल कारण का चिंतन करना, यथा- संसार परिभ्रमण अर्थात् जन्म मरणादि दुःख के मूल है, जन्म मरण का मूल कर्म बंध है एवं इसका मूल विषयेच्छा-भोगेच्छा है तथा इसका मूल राग, द्वेष, अर्थात मोह हैं। अतः मोह, राग, द्वेष, भोगेच्छा कर्मबंध, जन्म मरणादि दुःखों से विरक्त हो कर आत्मा का मोक्ष मार्ग तथा मोक्ष के प्रति सन्मुख होना।

इस प्रकार- 2 + 2 + 4 + 4 = 12 × 4 = 48 भेद प्रभेदों से चार ध्यान का वर्णन किया गया हैं।

आध्यात्मिक ध्यान

ध्यान- चित्त की अवस्थाओं का किसी विषय पर केन्द्रित होना ध्यान हैं। जैन परम्परा में ध्यान के चार प्रकार है- 1. आर्त्तध्यान, 2. रौद्र ध्याय 3. धर्मध्यान और 4. शुक्लध्यान । आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान चित्त की दूषित प्रवृत्तियां हैं। अतः साधना एवं तप की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं है, ये दोनों ध्यान त्याज्य है। आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दोनों महत्वपूर्ण है। इनकी विचारणा इस प्रकार है-

धर्मध्यान- इसका अर्थ है चित्त विशुद्धि का प्रारम्भिक अभ्यास । धर्मध्यान के लिये ये चार बातें आवश्यक- 1. आगम ज्ञान, 2. अनासक्ति, 3. आत्मसंयम और 4. मुमुक्षुभाव।

धर्मध्यान के चार प्रकार है-

1. आज्ञा विचय- आगम के अनुसार तत्त्व स्वरूप एवं कर्त्तव्यों का चिन्तन करना।

2. अपाय-विचय- हेय क्या है, इसका विचार करना ।

3. विपाक-विचय- हेय के परिणामों का विचार करना ।

4. संस्थान-विचय- लोक या पदार्थों की आकृत्तियों, स्वरूपों का चिन्तन करना। संस्थान- विचय धर्म-ध्यान पुनः चार उपविभागों में विभाजित है- **(अ) पिण्डस्थ ध्यान-** यह किसी तत्त्व विशेष के स्वरूप के चिन्तन पर आधारित हैं। इसकी पार्थिवी, आग्नेयी, मारूती, वारूणी और तत्त्वभू ये पांच धारणाएं मानी गई हैं। **(ब) पदस्थ ध्यान-** यह घ्यान पवित्र मंत्राक्षर आदि पदों का अवलम्बन करके किया जाता हैं। **(स) रूपस्थ-** ध्यान-राग, द्वेष मोह आदि विकारों से रहित अर्हन्त प्रभु का ध्यान करना। **(द) रूपातीत-ध्यान-** निराकार, चेतन्य-स्वरूप सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना ।

शुक्ल ध्यान- यह धर्म-ध्यान के बाद की स्थिति हैं। शुक्ल ध्यान के द्वारा मन को शांत और निष्प्रकम्प किया जाता हैं। इसकी अन्तिम परिणति मन की समस्त प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध हैं। शुक्लध्यान चार प्रकार का हैं- 1. पृथक्त्व-वितर्क-सविचार-इस ध्यान में ध्याता कभी अर्थ का चिन्तन करते-करते शब्द का और शब्द का चिन्तन करते करते अर्थ का

चिन्तन करने लगता हैं। इस ध्यान में अर्थ, व्यंजन और योग का संक्रमण होते रहने पर भी ध्येय द्रव्य एक ही रहता है। **2. एकत्व-वितर्क अविचारी-** अर्थ, व्यंजन और योग संक्रमण से रहित 'एक पर्याय-विषयक ध्यान ''एकत्व-श्रुत अविचार'' ध्यान कहलाता हैं। **3. सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाती-** मन, वचन और शरीर व्यापार का निरोध हो जाने एवं केवल श्वासोच्छ्वास की सूक्ष्म क्रिया के शेष रहने पर ध्यान की यह अवस्था प्राप्त होती हैं

4. समुच्छिन्न-क्रिया-निवृत्ति- जब मन वचन और शरीर की समस्त प्रवत्तियों का निरोध हो जाता है और कोई भी सूक्ष्म क्रिया शेष नहीं रहती उस अवस्था को समुच्छिन्न क्रिया शुक्लध्यान कहते हैं। इस प्रकार शुक्लध्यान की प्रथम अवस्था से क्रमशः आगे बढ़ते हुए अन्तिम अवस्था में साधक कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रवत्तियों का पूर्ण निरोध कर अन्त में सिद्धावस्था प्राप्त कर लेता हैं।

ध्यान स्वरूप विचारणा-

किसी भी प्रवृत्ति को करने के पूर्व उसका स्वरूप समझना आवश्यक होता है। कहा भी है-

प्रथम ज्ञान पीछे क्रिया, यह जिन मत का सार ।
ज्ञान सहित क्रिया करे, तो उतरे भव पार ।।

दशवैकालिक सूत्र अध्ययन 4 गाथा 10 में भी यही भाव कहा है और कहा गया है कि अज्ञानी अपने हित या अहित को कैसे समझ सकता है। ग्रामांतर जाना है तो उस ग्राम का मार्ग कौन सा है साथ ही अन्य ग्राम के मार्ग भी बीच में कौन से जाते हैं ? इसकी सही जानकारी करनी आवश्यक होती है। गमन करने के लिये सही मार्ग भी होते हैं और लक्ष्य से विपरीत मार्ग भी होते हैं। किसी भी कार्य को करने की सही विधि भी होते हैं, गलत विधि भी होती है। खाने के पदार्थ अच्छे भी होते हैं एवं खराब भी होते हैं। ठीक और इसी प्रकार ध्यान भी दो तरह का है- 1. शुभ 2. अशुभ।

अशुभ ध्यान के दो प्रकार है- 1. आर्त्तध्यान 2. रौद्र ध्यान शुभ ध्यान के दो प्रकार है- 1. धर्म ध्यान 2. शुक्ल ध्यान आत्मा के परिणाम-अध्यवसाय भी दो तरह के होते हैं- 1. शुभ 2. अशुभ।

आगम में कहा है कि ''सद् ध्यान में रत रहने वाले को शुद्धि होती है अथवा धर्म ध्यान में जो रत रहता है वह भिक्षु है।'' -दशवै. अ. 5

ध्यान परिभाषा- जब धर्म ध्यान या शुभ ध्यान होता है तो प्रतिपक्षी अशुभध्यान या अधमध्यान का अस्तित्व भी होता ही है, यह स्पष्ट है। अतः ध्यान की परिभाषा वही शुद्ध हो सकती है जिसमें अशुभ ध्यान और शुभ ध्यान दोनों का समावेश हो सकता है अन्यथा वह ध्यान की परिभाषा नहीं कहला सकती। जैन आगमों व ग्रन्थों में जहां भी ध्यान के भेद किये हैं या ध्यान की परिभाषा दी है उसमें यह अपूर्णता नहीं है अर्थात् उस परिभाषा में व भेदों में शुभ अशुभ दोनों ध्यानों का पूर्ण समावेश होता है। कोई भी वस्तु की परिभाषा उस पदार्थ के सम्पूर्ण अवयवों को ग्रहण न करे तो उसे सही परिभाषा नहीं कह सकते। जैन आगमानुसार ध्यान के चार प्रकार है उसमें दो आत्मा के लिये अहितकर है, त्याज्य है। दो हितकर है, ग्राह्य है। प्रत्येक ध्यान के आलंबन और लक्षण आदि भी आगमों में बताये गये हैं। इसी प्रकार के ध्यानों को समाविष्ट करने वाली तथा ध्यान और अध्यान के स्वरूप को बताने वाली ध्यान की परिभाषा इस प्रकार है-

गाढालंबण लग्गं, चित्तं निरेयणं झाणं।
सेसं न होइ झाणं, मउय-मवत्तं भमंत वा।। -आव.नि.गा, 1483

अर्थ- किसी भी गाढ़ आलंबन लगा हुआ और अकम्पमान (स्थिर) चित्त 'ध्यान' कहा जाता है। शेष जो चित्त की अवस्थाएं होती है वे ध्यान स्वरूप नहीं है यथा-1.आलंबन रहित शांत चित्त 2.अव्यक्त चित्त 3.भटकता हुआ चित्त।

जं थिरं अज्झवसाणं तं झाणं, जं चलं तय चित्तं।
तं होज्ज भावणा वा अणुप्पेहा वा अहव चिंता।। -ध्यान शतक 2

अर्थ- जो स्थिर अध्यवसाय है वह ध्यान है और जो चल अध्यवसाय है वह चित्त है। जो कि भावना स्वरूप, अनुप्रेक्षा स्वरूप व अन्य कोई चिंता स्वरूप भी हो सकते हैं। इन दोनों परिभाषाओं में शुभ या अशुभ दोनों प्रकार के ध्यानों का समावेश हो जाता है तथा ध्यान और अध्यान अवस्था का भी स्पष्टीकरण हो जाता है।

सार- शुभ या अशुभ जो भी स्थिर अध्यवसाय अवस्था है वह ध्यान है और जो अस्थिर चंचल अध्यवसाय है वह अध्यान अवस्था है। गाढ़ आलंबन युक्त अवस्था अर्थात् किसी भी एक विषय में तल्लीन अवस्था है तो ध्यान हो सकता है और जो आलंबन रहित या मंद (सुस्त-शांत) परिणाम है, अव्यक्त परिणाम (निद्रा आदि के) तथा भटकते विचार आदि है, वे कोई भी ध्यान नहीं है। वह आत्मा की अध्यान अवस्था कहलाती है। अशुभ विषयों में तल्लीन आत्मा में दो अशुभ ध्यान हो सकते हैं। शुभ विषयों में तल्लीन-एकाग्र चित्त सावधान आत्मा में दो शुभ ध्यान हो सकते हैं। अन्य अनेक अवस्थाएं जो भी है वे अध्यान रूप है। जैसा कि आवश्यक निर्युक्ति गाथा 1481-1482 में बताया है यथा-

अध्यान- प्रचला-झपकी आने की अवस्था, गाढ़ निद्रावस्था, जागृत अवस्था में भी अव्यापारित (अप्रवृत्त शांत-सुस्त) चित्त, अपर्याप्तावस्था, अव्यक्त चित्त (असन्नी के), मुर्च्छित अवस्था, नशे में बेभान अवस्था, ये सब अध्यान अवस्थाएं हैं। इन अवस्थाओं में आत्मा के शुभ अशुभ कोई भी ध्यान नहीं होता है। किसी भी विषय में तल्लीन होना और स्थिर होना यही ध्यान है।

चार ध्यान- 1. सुख दुःख के संयोग वियोग आदि विषयों में तल्लीन और स्थिर चित्त आर्त्तध्यान है। 2. अन्य के अहित करने आदि में तल्लीन और स्थिर चित्त रौद्रध्यान है। ये दोनों आत्मोन्नति के ध्यान नहीं है। अतः धर्मध्यान की साधना में इनका सावधानी पूर्वक त्याग किया जाता है। 3. इनके सिवाय आत्म लक्ष्य के किसी भी विषय मे चित्त को तल्लीन कर एकाग्र करना धर्मध्यान है। 4. उससे आगे बढ़कर सूक्ष्म व सूक्ष्मतर विषय मे केन्द्रित होने पर शुक्ल ध्यान की (प्राथमिक) अवस्था आती है। शुक्ल ध्यान के आगे की अवस्था केवलज्ञान प्राप्ति के समय एवं उसके बाद ही है जो मोक्ष प्राप्ति के कुछ सैकंड पूर्व होती है। वह योग निरोध अवस्था अंतिम ध्यान स्वरूप है। छद्मस्थ और केवली के ध्यान का स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

दो ध्यान-

अंतोमुहुत्त मेत्तं, चित्त-वत्थाण एग वत्थुम्मि।
छउमत्थाणं झाणं, जोग निरोहो जिणाणं तु।।

अर्थ- अंतर्मुहुर्त्त समय मात्र के लिये किसी भी एक वस्तु (तत्त्व) विचार में चित्त का स्थिर हो जाना यह छद्मस्थों का ध्यान है। योग निरोध करते समय एवं योग निरोध हो जाने पर जो आत्म अवस्था होती है वह केवलियों का ध्यान है। अंतर्मुहुर्त्त के बाद छद्मस्थ के कोई भी अन्य चल विचार या अन्य ध्यान हो जाता है। बहुत वस्तुओं के आलंबन की अपेक्षा विषयान्तर की अपेक्षा ध्यान लम्बे समय तक भी रह सकता है।-ध्यान शतक गाथा 4 । छद्मस्थों का ध्यान शुभ अशुभ दोनों तरह का हो सकता है और अध्यान अवस्था भी बहुत समय रहती है। केवलियों के योग निरोध अवस्था के समय शुक्ल ध्यान है शेष दीर्घकालीन उम्र अध्यान अवस्था है। इस प्रकार ध्यान को समझ कर अशुभ से शुभ ध्यान में आत्मा को तल्लीन, स्थिर करने से धर्म ध्यान की साधना की जा सकती है। आत्मा को धर्मध्यान में तल्लीन करने के आलंबन भूत विषय- 1. आत्म स्वरूप 2. कर्म स्वरूप 3. भव भ्रमण स्वरूप 4. कषाय स्वरूप 5. सिद्ध स्वरूप 6. स्वदोष दर्शन 7. पर गुण दर्शन 8. स्व दृष्टि पुष्टि (आत्म दृष्टि पोषण) 9. पर दृष्टि त्याग 10. पुद्‌गलाशक्ति त्याग 11. अकेलेपन का चिंतन-एकत्वानुप्रेक्षा, अनित्यत्व, अशरणत्व, अन्यत्व आदि चिंतन तथा जिन भाषित किसी भी तत्त्व का स्वरूप या भगवदाज्ञा का स्वरूप। विषय की पसंदगी में ध्यान यही रखना चाहिये कि उसमें शारीरिक, इहलौकिक, सुख संयोग, दुख वियोग, पर-अहित रूप, अशुभ विषय न होना चाहिये।

सार- 1. शुभ ध्यान आत्मा के लिये हितकर है महान कर्म निर्जरा का हेतु है।

2. अशुभ ध्यान कर्म बंध का हेतु है।

3. चित्त की चंचल अवस्था रुप ''अध्यान'' भी अनेक कर्मों की वृद्धि करने वाला है।

4. चित्त की शांत सुप्त अथवा अव्यक्त अवस्था रूप ''अध्यान'' मे आश्रव कम होने के साथ निर्जरा भी कम होती है। अतः इन चारों अवस्था में प्रथम अवस्था आत्मोन्नति में ज्यादा उपयोगी है। यह समझ कर महान निर्जरा के हेतु रूप शुभध्यान अर्थात् धर्मध्यान में आत्मा को जोड़ने की साधना करनी चाहिए। वर्त्तमान में प्रचलित अनेक ध्यान प्रणालियों से प्राप्त अवस्थाएं वास्तव में अध्यान रूप आत्म अवस्थाएं है ऐसा अपरोक्त प्रमाण व विवेचन से समझ में आ सकता है। वह उपरोक्त चौथी अवस्था अर्थात् दूसरी अध्यान अवस्था है। अतः मोक्ष प्राप्ति की साधना में वह विशेष गति प्रद साधना नहीं हो सकती है।

ध्यान के साथ सच्ची श्रद्धान- जैन धर्म की दृष्टि से धर्म ध्यान की साधना करने वाला मुमुक्षु सम्यग् श्रद्धान से युक्त होना चाहिये। इसके बिना सम्पूर्ण संयम तप राख के ऊपर गोबर लीपने के समान होता है। भगवद् वाणी के प्रति पूर्ण श्रद्धा के साथ यथा शक्ति भगवदाज्ञा अनुसार श्रावक के 12 व्रत रूप देश विरति धर्म में अथवा संयम रूप सर्व विरति धर्म में उसका पुरूषार्थ होना चाहिये। उस दोनों प्रकार के धर्मों के प्रति श्रद्धा निष्ठा होनी चाहिए। किन्तु ''ये तो क्रियाकांड है'', ऐसे शब्दों या भावों से आत्मा में उपेक्षावृति नहीं होनी चाहिये। श्रावकों के आगमिक विशेषणों में सर्वप्रथम विशेषण 'जीवादि पदार्थों का ज्ञाता' होना बताया गया है। सम्यक्त्व के स्वरूप में भी जीवादि पदार्थों का ज्ञान व श्रद्धान आवश्यक अंग कहा है। ध्यान तप है उसके पूर्व सम्यग् ज्ञान, सम्यग् श्रद्धान व यथा शक्ति देशविरति या सर्वविरति चारित्र आवश्यक है। इन तीन की उपस्थिति में ही तप, ध्यान आदि आत्म साधना के अंग रूप होकर विकास करा सकते हैं। अतः तप या ध्यान की साधना में अग्रसर होने वाले साधक को अपनी सम्यग् श्रद्धान व सम्यग् चारित्र की भूमिका को सुरखित रखते आगे बढ़ना

चाहिए। सामान्य ज्ञान वाले छदमस्थों की अपेक्षा ज्ञानी छदमस्थों के कथन को प्रमाण भूत मानना और विशिष्ट ज्ञान छदमस्थों की अपेक्षा सर्वज्ञानी केवल ज्ञानी वीतराग भगवान के कथन को विशेष प्रमाण भूत मानना, यह निर्णय बुद्धि रख कर शुद्ध श्रद्धा के साथ शुद्ध आचरण करना चाहिये। चारों ध्यान के जो लक्षण है तथा आलंबन है, अनुप्रेक्षाएं हैं, उनमें वर्त्तते हुए जब स्थिर अवस्था आती है, तब यह ध्यान होता है। उसके पूर्व वह साधक उस ध्यान के आलंबनादि रूप अवस्था में रहता है। आलंबन, लक्षण, भावना आदि के माध्यम से ही जब स्थिर परिणाम अवस्था होती है, तब यह शुभ या अशुभ ध्यान होता है। अतः शुभ ध्यान अवस्था प्राप्त करने के लिये उनके आलंबन आदि में रहते हुए तल्लीन व स्थिर परिणाम होने का अभ्यास करना ही धर्म ध्यान की साधना है। आलंबन रहित या शरीर के अंग अथवा श्वास के आलंबन की साधना केवल अस्थिर चित्त की स्थिरता को कम करने का उपाय मात्र है। उससे आगे बढ़कर किसी भी आत्म अनुप्रेक्षा में धर्म तत्त्वानुप्रेक्षा में अध्यवसायों, को चित्त को, स्थिर करना भगवदाज्ञा की अनुप्रेक्षा में, आत्म अहित करने वाले अपायों आश्रवों के अनुप्रेक्षा में कर्म विपाक अनुप्रेक्षण में या संसार, लोक स्वरूप के अनुप्रेक्षण में आकर अध्यवसायों को एकाग्र स्थिर करना यह आत्मोन्नति रूप तप रूप धर्मध्यान की साधना होती है। इस प्रकार समझ पूर्वक धर्म ध्यान की साधना करना ही श्रेयस्कर है। ध्यान की अन्य कोई परिभाषा करना शुद्ध नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यदि ''मन को निश्चेष्ट करना ध्यान कहा जाय'' तो वह आर्त्तध्यान में कैसे लागू होगा और धर्म ध्यान, रौद्र ध्यान कैसा होगा। ये भी तो ध्यान ही है। अतः ध्यान की अन्य कोई परिभाषा जो इन आगमोक्त चारों ध्यान में पूर्ण घटित नहीं हो सकती। यह परिभाषा अध्यान स्वरूप ही कहलायेगी। अध्ययन संक्षेप में दो प्रकार है- शांत सुप्त चित्त अवस्था और चंचल चित्त अवस्था। अन्य परिभाषाओं वाले ध्यान इन अध्यानों में समाविष्ट होंगे। आगम निरपेक्ष होकर कोई इसे पांचवां ध्यान कह दे अथवा वास्तविक ध्यान यही है शेष सब चारों अध्यान है ऐसा कहे तो यह उसका कथन आगम निरपेक्ष तथा जैन धर्म से निरपेक्ष एवं बुद्धि कल्पित कहलायेगा। इसे जैनागम या जैन धर्म के ध्यान के नाम से कहना समझना भ्रामक होगा। जैन धर्म का ध्यान ज्ञान पूर्वक ध्यान है। इसके चार प्रकार है जिसमें शुभ अशुभ दोनों का समावेश है ये चारों ध्यान चित्त की तल्लीनता व स्थिरता एकाग्रता से उत्पन्न होते हैं। दो हेय है दो उपादेय है। उन चारों के चार चार लक्षण है, चार-चार आलंबन है। धर्म ध्यान के चार विचय-चितन के मुख्य विषय है, चार अनुप्रेक्षा (आत्मभावनाएं) है, चार आलंबन है। चार रूचियें हैं। ये सभी उस ध्यान में पहुंचाने में उपयोगी द्वार है। द्वार में प्रवेश करेगा वही अंदर पहुंचेगा। ये धर्मध्यान के द्वार है। इनमें पहुंच कर अब जिस किसी विषय में तल्लीन एकाग्र होगा तो वह ध्यान दशा होगी और चल विचल होगा वह धर्मध्यान के आलंबन आदि द्वारों पर रहेगा। ध्यान के अंदर नहीं पहुंचेगा। साधु का जीवन ही आत्म साधना के लिये होता है। उसकी दिनचर्या के विषय में आगम में बताया है कि प्रथम प्रहर में सदा स्वाध्याय करना और दूसरे प्रहर में ध्यान करना। स्वाध्याय के लिये चार प्रहर कहे है। ध्यान के लिये दो प्रहर कहे हैं। गौतम स्वामी सरीखे गणधर ज्ञानी भी प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान करते थे। इस प्रकार जैनागम तो ज्ञान पूर्वक ध्यान करना ही कहते हें और वर्त्तमान ध्यान पद्धति वाले खाना, सोना, शारीरिक कृत्यों का निषेध नहीं कर के स्वाध्याय का निषेध करते हैं, यह आगम निरपेक्ष मानस वृत्ति है। ज्ञान से ध्यान की शुद्धि व वृद्धि होती है। कषायों से ध्यान की विकृति होती है। कषाय बाह्य वृति से होते हैं। ज्ञान स्वाध्याय अंतर्मुखी जागृति कारक है, वह ध्यान का सहयोगी है। आगम स्वाध्याय को राग द्वेष का मूलक नहीं कहा जा सकता। भगवदाज्ञा की कोई भी प्रवृति को राग द्वेष मूलक नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत किसी के लिये तो आश्रव के स्थान निर्जरा भूत बन सकते और वह निर्जरा के

स्थान से बंध कर सकता है किन्तु सिद्धान्त तो ज्ञान को सदा आगे रखने वाला है। राग द्वेष के मुख्य विषय-भूत-स्थल इंद्रिय-विषय, आशा, तृष्णा, हिंसादि पाप हैं। ये सब त्याज्य है। ज्ञान स्वाध्याय त्याज्य नहीं उपादेय है। यथासमय यथायोग्य वृद्धि करने योग्य है। आभ्यंतर तप है। यह ध्यान को प्राप्त कराने का आधार है, आलंबन है।

सम्पूर्ण सार- किसी भी (तत्त्व आदि के) आलंबन में तल्लीन और स्थिर चित्त की अवस्था आने पर ध्यान होता है। बिना किसी आलंबन का शांत (सुस्त) चित्त या चंचल चित्त या सुप्तचित्त अथवा अव्यक्त चित्त ध्यान नहीं कहा जाता है। वह अध्यान है। अतः किसी भी धर्म तत्त्व या आत्म तत्त्व के चिन्तन में तल्लीन होकर स्थिर होने का अभ्यास करने पर ध्यान की साधना हो सकती है। अशुभ आर्त, रौद्र के चिन्तनों में निवृत्त होकर धर्म तत्त्व के चिन्तन में आकर स्थिर होने का अभ्यास कर स्थिर हो जाना 'धर्म ध्यान' कहा जाता है।

ध्यान के आस-पास

(आवश्यक विविध तत्त्व विचारणा)

गुप्ति- मन वचन एवं काया का निग्रह करना, उन्हें अल्प अल्पतम प्रवृत्त करना, सहज आवश्यक चिन्तन के सिवाय अन्य संकल्पों का निग्रह करना, मन को अधिक अधिकतर आत्म वश में करना ''मन गुप्ति'' है। वचन प्रयोग करने की उत्पन्न इच्छाओं का निग्रह करना, अल्प अल्पतम या अत्यन्त आवश्यक होने पर ही बोलना, अन्यथा मुख या वचन पर अत्यधिक लगाम रखना ''वचन गुप्ति'' है। काया की चंचलता, इन्द्रियों की चंचलता, खाना, पीना, चलना, फिरना, मोज, शौख, देखना, सुनना आदि अनेक प्रवृत्तियों से उदासीन होकर अल्प अल्पतम सीमित काय-प्रवर्त्तन में अभ्यस्त होना 'काय गुप्ति' है।

समिति- समिति में निग्रह का विषय नहीं है। दिन रात जो भी आवश्यक कर्त्तव्य करना है, संयम कार्य, योग प्रवर्त्तन करना है, तो भले ही करते रहो, किन्तु ''जयं चरे जयं चिट्ठे'' आदि का पालन करना आवश्यक है। हर प्रवृत्ति यतना-विवेक से करना, चाहे 10 घन्टे बोलते रहो या 10 घन्टें चलते रहो या दिन रात सेवा कार्य में लीन रहो, पढ़ना पढ़ाना लिखना आदि करते रहो, इनहें विवेक से एवं संयम मर्यादा से करते रहो। इस प्रकार समिति में हर प्रवर्त्तन में विवेक रखना होता है। इसमें निग्रह की मुख्यता नहीं है।

स्वाध्याय- आगम या आगम कथित तत्त्वों का अध्ययन, स्वाध्याय, कंठस्थ करना, अर्थ समझना, जिज्ञासाओं को पूछकर हल करना, स्वयं अनुप्रेक्षण कर अर्थ परमार्थ की उपलब्धि करना, इस प्रकार से उपलब्ध हुए श्रुत या श्रुत नवनीत को यथवसर विश्लेषण कर भव्य जीवों को समझाना, ये वाचना, पृच्छा, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ये स्वाध्याय के अंग है।

ध्यान- 1. संयोग वियोग के गाढ़तर संकल्प-आर्त्तध्यान है।

2. दूसरों के अनिष्ट के अत्यन्त संक्लिष्ट संकल्प-रौद्रध्यान है।

3. आत्मलक्षी अनुप्रेक्षाएं (12 भावना आदि) या तप संयमोन्नति के अनुप्रेक्षण-धर्मध्यान है।

4. अत्यन्त शुक्ल एवं सूक्ष्मतम आत्म अनुप्रेक्षाएं करना, अनुप्रेक्षा से आत्मभाव में एकमेकता एवं दृढ़ता-स्थिरता की अवस्था होना शुक्ल ध्यान है। ये चारों ध्यान और उनकी अनुप्रेक्षाएं, आगम तत्त्व अवगाहन से भिन्न है।

ध्यान और स्वाध्याय- यद्यपि आत्म तत्त्व भी आगम विहित ही है। फिर भी ज्ञान और ज्ञान के परमार्थ का अनुप्रेक्षण स्वाध्याय है। स्वाध्याय धर्म ध्यान का आलम्बन है किन्तु ध्यान स्वाध्याय के पांच भेदों से भिन्न अलग तत्त्व, अलग तप और अलग निर्जरा भेद कहा गया है। अतः इन दोनों की भिन्नता को सही रूप से समझना चाहिये। ऐसे गहन विषय परंपरा के अर्थों में उलझने से समझ में नहीं आ सकते। परम्परा से व्यवहार में कहा जाने वाला ''धर्म-ध्यान'' तो धर्माचरण के लिए रूढ़ है। वैसे ही दूसरी प्रहर का आगम कथित ध्यान भी उन आगमों के अर्थ का चिन्तन मनन अवगाहन के लिए रूढ प्रयोग है, क्योंकि उस दूसरे प्रहर में उत्कालिक सूत्रों का स्वाध्याय करना, गुरू से अर्थ की वाचना लेना और प्रथम प्रहर में की गई स्वाध्याय के अर्थ परमार्थ का अनुप्रेक्षण करना इत्यादि विधानों से भी वह स्वाध्याय रूप ही ध्यान है। ऐसा आगम उल्लेखों से और स्वाध्याय के कहे गये पांच भेदों के वर्णन से स्पष्ट है। इसी कारण ध्यान की पोरिसी का दूसरा नाम अनेक जगह 'अर्थ-पोरूषी' कहा गया है। ध्यान तप जो स्वतन्त्र है स्वाध्याय से भिन्न है उसे स्वाध्याय की परिभाषा से और पांचों भेदों से अलग ही समझना होगा।

ध्यान कब- ध्यान तप की अपेक्षा आगमों में ''पुव्वरत्तावरत्त काल समयंसि धम्म जागरियं जागरमाणे'' तथा ''जो पुव्वरत्तावररत्त काले, संपेहए अप्पगमप्पएण'' आदि वाक्य आये हैं। तथा आगम में ध्यान की अनुप्रेक्षाएं भी स्वतन्त्र कही गई है। तात्पर्य यह है कि पुद्‌गल लक्षी या पर लक्षी अनुप्रेक्षण की तल्लीनता अशुभ ध्यान है और आत्म लक्षी संयम लक्षी अनुप्रेक्षण की तल्लीनता शुभ ध्यान है तथा तत्त्वलक्षी अनुप्रेक्षण स्वाध्याय के भेद रूप अनुप्रेक्षा है।

व्युत्सर्ग- मन वचन काया की स्थूल या शक्य सभी प्रवृत्तियों को समय की मर्यादा करके वोसिरा देना, संघ, समूह और संयोगों को वोसिरा देना, शक्य हो जितना सर्वथा त्याग करना ''व्युत्सर्ग तप'' है। इसमें कायोसर्ग का, मौन व्रत का एवं एक वस्तु या क्रिया प्रेक्षण का समावेश समझना चाहिए। स्वाध्याय या उसके अनुप्रेक्षण रुप ध्यान घंटों तक हो सकते हैं। व्युत्सर्ग रूप कायोत्सर्ग, मौन व्रत और एक वस्तु प्रेक्षण ये बहुत लम्बे समय तक शक्ति अनुसार, स्थिरता-दृढ़ता अनुसार हो सकते हैं। ध्यान क्षणिक होता है मिनट दो मिनट या उत्कृष्ट अंतर्मुहुर्त (कुछ मिनट) तक ही रह सकता है इसका समय अधिक नहीं है।

ध्यान आदि के कर्त्ता ओर आसन- सामान्य साधुओं का अधिक समय स्वाध्याय और उसके अनुप्रेक्षण रूप ज्ञान-ध्यान में व्यतीत होता है जो कि स्वाध्याय का चौथा प्रकार है। छदमस्थ-तीर्थंकर, गच्छमुक्तजिनकल्प एवं प्रतिमाधारी आदि का अधिक समय व्युत्सर्ग में व्यतीत होता है। कायोत्सर्ग व्युत्सर्ग का ही एक अंग है। जो विधि रूप से खड़े-खड़े ही किया जाता है अपवाद रूप में बैठे सोए आदि भी। स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण रूप ध्यान उत्कटुक आसन (खमासमणा देने का आसन) से करना प्रमुख विधि रूप है शेष आसन सामान्य विधि रूप है। ध्यान-पद्मासन, पर्यंकासन सुखासन उत्कटुकासन आदि यथायोग्य आसन से किया जा सकता है। स्वाध्याय भी विनय युक्त किसी भी आसन से किया जा सकता है। ''कायोत्सर्ग'' शब्द काया की मुख्यता से कहा गया है फिर भी वास्तव में तीनों योगों का यथा संभव व्युत्सर्ग करना उसमें निहित है।

एक तप में दूसरा तप- किसी भी तप के साथ अन्य कोई भी तप किया जाना निषिद्ध नहीं है। यथा-स्वाध्याय करते-करते आत्म ध्यान में लीन हो सकते हैं अथवा कायोत्सर्ग में स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण या आत्मलक्षी ध्यान भी हो सकता है किन्तु एक का अस्तित्व दूसरे में एक मेक नहीं कर देना और एक के अभाव में दूसरे का निषेध भी नहीं कर देना। यथा उपवास के साथ पोषध हो सकता है किन्तु बिना पोषध के उपवास नहीं होता है, यह निषेध भी अनुचित है और बिना उपवास के पौषध नहीं होता, यह निषेध भी आगम विरूद्ध है।

आहार त्याग रूप उपवास भी एक व्रत प्रत्याख्यान या तप है। तो सावद्ययोग त्याग भी एक व्रत है। दोनों साथ में हो सकते हैं उसका महत्व और नाम भिन्न होता है। किन्तु अलग-अलग होने का निषेघ करना, एकान्त आग्रह रखना, जिन मार्ग के प्रतिकूल है। जिस साधक को जो रूचि, योग्यता एवं अवसर हो वह एक अथवा अनेक धर्म क्रिया या तप आदि साथ में या अलग-अलग कर सकता है कोई ऊंचे दर्जे की साधना करता है, कोई अन्य दर्जे की। किन्तु श्रद्धान ज्ञान शुद्ध है, तो उसकी कोई भी दर्जे वाली आगम सम्मत क्रिया को एकान्त दृष्टि पकड़ कर खराब या खोटी कह देना या समझ लेना, सही और अनेकांतिक दृष्टि नहीं है। किन्तु संकीर्ण एकांतिक, आगम निरपेक्ष, दुराग्रह वृत्ति वाली दृष्टि है। समन्वय विचारक दृष्टि से, आगम के विशाल अनुप्रेक्षण से, किसी भी व्यक्ति की सही कसौटी तटस्थता मध्यस्थता के साथ करनी चाहिए।

परम्परा या एकांगी दृष्टि से किसी की कसौटी करना स्वयं का मान, परम्परा-आग्रह या संकीर्ण दृष्टिकोण है जो आत्मा में या अन्य में रागद्वेष की वृद्धि करने वाला होता है, उससे समभाव और परमशान्ति में क्षति ही होती है किन्तु वृद्धि नहीं।

अन्य की अपेक्षा करना उपेक्षा नहीं:- दृढ़योग या योगाभ्यास आदि अन्य मत का जो भी है जैन मत में वह व्युत्सर्जन रुप कायोत्सर्ग है। उसी में उन सब का समावेश होता है। सम्यग् ज्ञान, श्रद्धान यदि सुरक्षित है ता तप रूप या अनाश्रव रुप कोई भी क्रिया साधक के लिए हितकर सिद्ध हो सकती है। उसमें किसी हो हीन समझना अविवेक होता है। आचारांग श्रुत2, अ. 1 में विभिन्न प्रकार की सात पिंडेषणाएं (अभिग्रह) कहे हैं उनमें अन्त में कहा है ''जिसको जिसमें समाधि हो वह करे किन्तु यह नहीं सोचे कि ''मैं ही बढ़िया कर रहा हूं दूसरों की अच्छी नहीं है''। किन्तु यह सोचे कि ''जिसकी जिसमें समाधि रूचि है, वह वही करता है, सभी जिनाज्ञा में उपस्थित हैं।''

अतः जिनाज्ञा से बाहर हो उसकी साधना असम्यग् कही जा सकती है किन्तु जिनाज्ञा में रहते हुए कोई किसी भी एक या अनेक साधना को करे उसे गलत दृष्टि से देखना अच्छा नहीं है।

अपने स्थान पर आयम्बिल का महत्व है तो उपवास का महत्व भी अपने स्थान पर ही है।

अपने स्थान पर स्वाध्याय का महत्व है तो सेवा का महत्व भी कम नहीं है।

अपने स्थान पर एकल विहार का भी दूसरा श्रमण मनोरथ है तो समूह की सारणा एवं संरक्षण करने वाले आचार्य के लिए शीघ्र मोक्ष का फल भी कहा गया है।

आगम में जिनकल्प और अचेलचर्या भी बतायी गयी है तो वस्त्र युक्त रहते हुए भी संयम की आराधना कही गई है। अतः स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग सभी तपों का अपना अलग-ललग महत्व एवं अस्तित्व है उसे झुठलाना नहीं चाहिए, चाहे दूसरों का हो या अपना।

अनिमेष दृष्टि विचारणा- कायोत्सर्ग के लिए जो ''अनिमेष दृष्टि'' या ''एग पोग्गल दिट्ठी'' शब्द का प्रयोग आगम में है। वह भावात्मक है, उसे चक्षु की अपेक्षा समझना स्थूल और अपूर्ण दृष्टि है। क्योंकि काया का व्युत्सर्ग करना है तो आंख को खुली रखने से कोई तात्पर्य नहीं है। आंखों का खुला रहना अनेक दृश्यों एवं विकल्पों में उलझने का स्थान है।

अंधेरी रात में श्मशान या कहीं भी गुफा आदि में कायोर्त्ग करने का और उसमें नाक पांव या पुद्गल पर दृष्टि रखने का कोई मतलब या अस्तित्व भी नहीं हो सकता है। अतः उक्त अनिमेष दृष्टि शब्द से आत्म दृष्टि को एक वस्तु या एक क्रिया पर केन्द्रित कर शेष का व्युत्सर्जन कर देना ऐसा अर्थ समझना चाहिए। आंखों का बंद किया जाना सम्भव है और काया का व्युसर्ग करना ही है तो खुली रखने में लाभ क्या है कुछ भी देखने से दृष्टिजा क्रिया लगेगी ही। अतः यह ''एक पुद्गल दुष्टि और अनिमेष दृष्टि'' का कथन आत्म आभ्यन्तर भाव से या अंतरमन से निरीक्षण करने की अपेक्षा समझना चाहिए। कायोत्सर्ग तो महिनों तक भी किया जा सकता है किन्तु आंखों को अनिमेष खुली रखना अधिक समय तक सम्भव नहीं हो सकता है।

रिसर्च, क्या ध्यान है ?- रिसर्च रूप अध्ययन प्रणाली को स्वाध्याय के अनुप्रेक्षण रूप चौथे विभाग के समकक्ष ही समझना चाहिए, न कि ग्यारहवें तप के भेद रूप ध्यान में।

पांचवां आवश्यक- प्रतिक्रमण का पांचवां आवश्यक काय व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग है। उसका मौलिक स्पष्टीकरण श्वासोश्वास में ही कहा गया है। अर्थात्-

देवसिक प्रतिक्रमण में	-	100 श्वासोच्छवास
रात्रिक प्रतिक्रमण में	-	50 श्वासोच्छवास
पाक्षिक प्रतिक्रमण में	-	300 श्वासोच्छवास
चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में	-	500 श्वासोच्छवास
सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में	-	1008 श्वासोच्छवास

लोगस्स का पाठ आगमों में अनेक जगह कायोत्सर्ग के बाद बोलने का स्पष्ट रूप से कहा गया है। यह स्तुति-कीर्त्तन का पाठ है और कीर्त्तन को प्रकट में बोलकर के ही उससे भक्ति प्रदर्शित की जाती है। कायोत्सर्ग में लोगस्स बोलने का आगम प्रमाण न होने से एवं तर्क संगत भी न होने से श्वासोच्छवास के स्थान पर प्राथमिक स्टेज रुप मे बनाई गई यह परम्परा मात्र है।, ऐसा समझना चाहिये। इसी कारण क्रान्तिकारी धर्मसिंह जी म.सा. ने उस परम्परा को परिवर्तित किया था। वह परम्परा आज भी अनेक संप्रदायों में प्रचलित है वहां लोगस्स का कायोत्सर्ग नहीं किया जाता है और वे मौलिक श्वसोश्वास प्रणाली को भी नहीं समझते हैं।

सार- सारांश यह है कि समिति अलग है, गुप्ति और व्युत्सर्ग तप में भी कुछ भिन्नता है तो स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण और ध्यान का अनुप्रेक्षण भी भिन्न है और स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग तीनों अलग-अलग दसवां ग्यारहवां बारहवां तप है। जाप और लोगस्स आदि के रटन भी एक प्राथमिक स्टेज के लिए चलाई गई परम्परा है। इन्हें उदार दृष्टि से समझने का प्रयत्न रखना चाहिए।

राजप्रश्नीय सूत्र सारांश

प्रथम खण्ड-सूर्याभदेव

श्वेत राजा भगवान की सेवा में-

श्रमण भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए आमलकप्पा नामक नगरी में पधारे। वहां आम्रशालवन नामक चैत्य में अधिष्ठायक व्यक्ति की आज्ञा लेकर शिष्य मण्डली सहित ठहरे।

वहां का श्वेत राजा अपनी धारणी रानी सहित विशाल जनमेदिनी के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने एवं धर्मोपदेश सुनने के लिए उपस्थित हुआ। भगवान की सेवा में पहुंचने पर उसने सर्व प्रथम पांच अभिगम किये अर्थात् श्रावक के योग्य आवश्यक नियमों का आचरण किया एवं भगवान को विधियुक्त वंदन नमस्कार करके बैठ गया। उसके साथ आई हुई जनमेदिनी भी धर्म सभा के रूप में परिवर्तित हो गई। अलग-अलग समूहों से आने वाले लोग भी परिषद् में एकत्रित हो गये।

सूर्याभदेव की धार्मिकता- प्रथम देवलोक के सूर्याभ नामक विमान का मालिक सूर्याभ देव चार हजार सामानिक देव, सपरिवार चार अग्रमहिषियां, तीन प्रकार की परिषद, सौलह हजार आत्मरक्षक देव इत्यादि अपनी विशाल ऋद्धि के साथ दैविक सुखों का अनुभव कर रहा था। उसी समय संयोग वश उसने अवधिज्ञान में उपयोग लग जाने से श्रमण भगवान महावीर स्वामी को आमलकप्पा नगरी में विराजमान देखा। देखते ही परम आनंदित एवं हर्षित हुआ। तत्काल सिंहासन से उतरकर पावों में से पादुका निकाली, मुंह पर उत्तरासंग दुपट्टा लगाया, दाहिना घुटना दबाकर बायां घुटना ऊंचा करके बैठकर मस्तक को तीन बार भूमि पर लगाया फिर जोड़े हुए दोनों हाथ मस्तक के पास रखते हुए प्रथम णमोत्थुण के पाठ से सिद्ध भगवंतों को एवं दूसरे णमोत्थुणं के पाठ से श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदन किया एवं गुण कीर्तन किया। फिर सिंहासन पर आसीन हो गया। उसे मनुष्य लोक में आकर भगवान के दर्शन सेवा का लाभ लेने की भावना उत्पन्न हुई। अपने अधीनस्थ आभियोगिक देवों को समवसरण के आस-पास के एक योजन प्रमाण क्षेत्र की शुद्धि करने का आदेश दिया।

आभियोगिक देवों का आचार- आज्ञानुसार आभियोगिक देवों ने आमलकप्पा नगरी में आकर प्रथम श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया, अपना नाम गौत्र आदि बताकर परिचय दिया। भगवान ने समुचित शब्दों के उच्चारण के साथ उनका वंदन स्वीकार किया एवं कहा हे देवानुप्रियों! यह आप लोगों का जीताचार-आचार परंपरा है कि चारों जाति के देव प्रसंग प्रसंग पर अधिपति देवों की आज्ञा से आकर अरिहंत भगवंतों को वंदन नमस्कार कर अपना नाम गौत्र बताते हुए परिचय देते हैं। वे आभियोगिक देव इस प्रकार भगवान के वचनामृत सुनकर पुनः हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाकर वहां से निकल कर बाहर आये और भगवान के चारों तरफ एक-एक योजन जितने क्षेत्र की संवर्तक वायु से सफाई की, जल से छिड़काव किया एवं सुगंधित द्रव्यों से उस क्षेत्र को सुवासित कर दिया। फिर वे पुनः भगवान को वंदन कर देवलोक में चले गये। सूर्याभ देव को निवेदन कर दिया कि आपकी आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न कर दिया है।

सूर्याभदेव का आगमन– सूर्याभ देव की आज्ञा से सेनापति देव ने सुस्वरा नामक घंटा को तीन बार बजा कर सभी देवों को सावधान किया। फिर सभी को संदेश सुनाया कि सूर्याभ देव भगवान के दर्शन करने जा रहा है, आप लोग भी अपने अपने विमानों से शीघ्र यहां पहुंच जावें। घोषणा सुनकर देव सुसज्जित होकर यथासमय वहां सुधर्मा सभा में पहुंच गये। सूर्याभ देव की आज्ञा से एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा गोलाकार यान विमान विकुर्वित किया गया। जिसके मध्य में सिंहासन पर सूर्याभ देव आसीन हुआ। फिर यथा क्रम से भी देव चढ़कर अपने अपने भद्रासनों पर बैठ गये। शीघ्र गति से विमान पहले देवलोक के उत्तरी निर्याण मार्ग से निकला एवं हजारों (असंख्य) योजन की गति से अल्प समय में ही नंदीश्वर द्वीप के रतिकर पर्वत पर पहुंच गया। वहां पर उस विमान का संकोच कर लिया गया अर्थात् आमलकप्पा नगरीके बाहर रखा जा सके, वैसा छोटा बना लिया, फिर आमलकप्पा नगरी में आकर विमान से भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा की एवं भूमि से चार अंगुल ऊपर उसे रोक दिया। सूर्याभ देव अपने समस्त देव परिवार सहित भगवान की सेवा में पहुंचा एवं वंदना नमस्कार करके अपना परिचय दिया। तब भगवान ने सूर्याभ देव को संबोधित कर यथोचित शब्दों से उसकी वंदना स्वीकार करते हुए कहा कि यह तुम्हारा कर्तव्य है, धर्म है, आचार है, जीताचार है, करणीय है इत्यादि। सूर्याभ देव भगवान के वचनों को सुनकर अत्यन्त हर्षित होता हुआ हाथ जोड़ कर बैठ गया।

मनुष्य एवं देवों की उस विशाल परिषद में भगवान ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश एवं परिषद विसर्जन का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना।

सूर्याभदेव की भक्ति एवं ऋद्धि प्रदर्शन– सूर्याभ देव ने भगवान से प्रश्न किया कि हे भगवन्! मैं भवी हूं या अभवी हूं, सम्यग् दृष्टि हूं या मिथ्या दृष्टि, परित्त संसारी हूं या अपरित्त संसारी, चरम शरीरी हूं या अचरम शरीरी हूं।

उत्तर में भगवान ने कहा कि तुम भवी हो सम्यग् दृष्टि हो और एक भव करके मोक्ष जाने वाले हो।

सूर्याभ देव अत्यंत आनंदित हुआ और भगवान से निवेदन किया कि हे भंते! आप तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी है सब कुछ जानते देखते हैं मेरी दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य देव प्रभाव भी जानते देखते हैं किन्तु भक्तिवश होकर मैं गौतमादि अणगारों को अपनी ऋद्धि एवं बत्तीस प्रकार के नाटक दिखाना चाहता हूं। इस प्रकार तीन बार निवेदन करने पर भी भगवान ने उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, मौन अवस्था में रहे। फिर सूर्याभ देव ने भगवान को तीन बार विधियुक्त वंदन नमस्कार किया और मौन स्वीकृति मान कर भगवान के सामने विधियुक्त वंदन नमस्कार किया और मौन स्वीकृति मान कर भगवान के सामने अपनी इच्छानुसार वैक्रिय शक्ति से सुन्दर नाट्य मंडप की रचना की एवं स्वतः भगवान की आज्ञा लेकर प्रणाम करके अपने सिंहासन पर भगवान के सामने मुख रखकर बैठ गया।

नाट्य विधि– फिर नाट्य विधि का प्रारम्भ करते हुए अपनी एक भुजा में से 108 देवकुमार और दूसरी भुजा से 108 देवकुमारियां निकाली जो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थीं। 49 प्रकार के 108.वादकों की विकुर्वणा की। फिर उन देव कुमारों को आदेश दिया कि तुम भगवान को वंदन नमस्कार करके गौतमादि अणगारों को 32 प्रकार के नाटक दिखाओ। देव कुमारों ने आज्ञानुसार नृत्यगान युक्त नाट्य विधियों का क्रमशः प्रदर्शन किया।

नाट्य विषय- उन नाट्य विधियों के मुख्य विषय इस प्रकार थे- 1. आठ प्रकार के मंगल द्रव्यों सम्बन्धी, 2. पत्र पुष्पलता सम्बन्धी, 3. विविध चित्रों सम्बन्धी, 4. पंक्तियों आवलिकाओं सम्बन्धी, 5. चंद्रोदय सूर्योदय की रचना सम्बन्धी, 6. उनके आगमन सम्बन्धी, 7. उनके अस्त होने सम्बन्धी, 8. इनके मंडल या विमान सम्बन्धी, 9. हाथी घोड़ा आदि के गति सम्बन्धी, 10. समुद्र और नगर सम्बन्धी, 11. पुष्करणी सम्बन्धी, 12. ककार खकार गकार इत्यादि आद्य अक्षर सम्बन्धी, 13. उछलने, कूदने, हर्ष, भय, संभ्रांत, संकोच, विस्तारमय होने सम्बन्धी। अंत में भगवान महावीर स्वामी के पूर्व का देव भव, वहां से च्यवन, संहरण, जन्म, बाल्यकाल, यौवनकाल, भोगमय, जीवन, वैराग्य, दीक्षा, तप-संयममय छद्मस्थ जीवन, केवल्य-प्राप्ति, तीर्थं प्रवर्तन और निर्वाण-प्राप्ति सम्बन्धी समस्त वर्णन युक्त नाट्य विधि का प्रदर्शन किया।

उपसंहार- नाट्य विधि का उपसंहार करते हुए मौलिक चार प्रकार के वादिंत्र बजाये, चार प्रकार के गीत गाये, चार प्रकार के नृत्य दिखाये और चार प्रकार के अभिनय- नाटक दिखाए। फिर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को विधि युक्त वंदन नमस्कार करके सूर्याभ देव के पास में आये सूर्याभ देव ने अपनी समस्त विकुर्वणा को समेट लिया एवं भगवान को वंदन नमस्कार करते हुए अपने विमान में आरूढ होकर देवलोक में चला गया।

सूर्याभ विमान का वर्णन-

सौधर्म नामक प्रथम देवलोक समभूमि से असंख्य योजन ऊपर है। उस देवलोक में 32 लाख विमान है उनके बीच में पांच अवतंसक (मुख्य) विमान है। 1. अशोक अवतंसक, 2. सप्तपर्ण अवतंसक, 3. चंपक अवतंसक, 4. आम्र-अवतंसक ये चार चारों दिशाओं में हैं और इनके मध्य में प्रथम देवलोक के इन्द्र का, 5.सौधर्मावतंसक विमान है। इस सौधर्मावतंसक विमान के पूर्व में असंख्य योजन दूर सूर्याभ नामक विमान है। जो साढे बारह लाख योजन का लम्बा एवं चौड़ा तथा 39 लाख 52 हजार 8 सौ 48 योजन की परिधि में गोलाकार है एवं परकोटे से घिरा हुआ है।

द्वारों का वर्णन- इस विमान के चार दिशाओं में चार हजार दरवाजे (द्वार) हैं। जो 500 योजन ऊंचे और 250 योजन चौड़े हैं। इन दरवाजों के दोनों तरफ निशीधिका-बैठकें हैं जिनके सोलह सोलह विभाग हैं, जिनमें चंदन कलश हैं, मालाओं और घंटिका युक्त खूंटियां, खूंटियां पर 16-16 लघु खूटियां हैं उनमें चांदी के छींके लटक रहे हैं जिनमें धूप घटिकायें हैं । उन निशीधिकाओं में पुतलियां, जाल घर, घंटा एवं वनमालाओं की पंक्तिएं हैं। उन दोनों निशीधिकाओं में सोलह सोलह प्रासादावंतसंक (श्रेष्ठ महल) हैं। जो 250 योजन ऊंचे 125 योजन विस्तार वाले गोलाकार हैं। वे 250 योजन लम्बे चौड़े एवं 125 लाख योजन ऊंचे चबूतरे पर स्थित है।

तोरणों का वर्णन- उन सोलह सोलह विभागों के सामने तोरण-मंडप है जो मणियों से निर्मित स्तंभों पर अच्छी तरह बंधे हुए है। प्रत्येक तोरणों के आगे दो-दो पुतलियां, नागदंत, हस्तीयुगल, अश्व-युगल, नर-किन्नर- किंपुरुष, युगल, महोरग गंधर्व एवं ऋषभ (बैल) युगल हैं। इसी प्रकार अनेक मंगल रूप दर्शनीय रूप दो दो पदार्थ हैं । दो-दो सिंहासन, छत्र, चामर आदि है।

द्वार पर ध्वजाएं एवं भवन- एक एक दरवाजे पर दस प्रकार की 108 ध्वजाएं अर्थात् 1080 एक हजार अस्सी ध्वजाएं हैं। प्रत्येक दरवाजे के उपर 65-65 भवन हैं।

वनखंड- सूर्याभ विमान से 500 योजन दूर चारों दिशाओं में एक-एक वनखंड (बगीचा) है जो 500 योजन चौड़े एवं सूर्याभ विमान जितने लम्बे हैं। उनके नाम- अशोक वन, सप्त-पर्णवन, चंपक वन, एवं आम्रवन है। वनखंड में जगह-जगह बावडियां, पुष्करणियां, दीर्धिकाएं, कुएं तालाब आदि हैं जो वेदिका एवं वनखंड से घिरे हुए हैं। इनमें उतरने के लिए सीढ़िया (पंगतिये) चारों दिशाओं में बने हैं। इनके बीच में जगह-जगह छोटे बड़े पर्वत एवं मंडप है जहां पर बैठने सोने आदि के आसन भद्रासन है। वनखंडों में जगह-जगह कदलीगृह, विश्रामगृह, प्रेक्षागृह, स्नानगृह, श्रृंगार गृह, मोहन गृह, जल गृह, चित्र गृह, आदर्श (दर्पण) गृह आदि सुशोभित हो रहे हैं। एवं जगह-जगह विविध लताओं के मंडप है जिनमें अनेक प्रकार के आसन शयन के आकार की पृथ्वी शिलाएं हैं। चारों वन खंड में बीचोबीच एक एक प्रासादावतंसक (श्रेष्ठ महल) है जिसमें पल्योपम की स्थिति वाले एक एक देव रहते हैं उनके नाम-1. अशोक देव, 2. सप्तपर्ण देव, 3. चंपक देव, 4. आम्र देव।

वन खंड का अवशेष भूमि भाग समतल, सुंदर एवं सुखद स्पर्श वाला है। अनेक प्रकार की पंचरंगी मणी तृणों एवं उनकी मधुर ध्वनियों से रमणीय है। पुण्य फल के उपभोग करने वाले देव देवियां यहां आमोद-प्रमोद करते हैं।

उपकारिकालयन- सुधर्म सभा एवं अन्य प्रमुख स्थानों से युक्त राजधानी के समान प्रासाद मय घिरे हुए क्षेत्र को यहां उपकारिकालयन कहा है।

यह क्षेत्र जम्बूद्वीप जितना है। इसके मध्य में एक मुख्य प्रासाद है जो पांच सौ योजन ऊंचा 250 योजन विस्तार वाला है। उसके चौतरफ चार भवन आधे प्रमाण के हैं ये चारों भी अन्य अर्द्ध परिमाण के चार-चार भवनों से घिरे हुए हैं। वे भवन भी अन्य अर्द्ध परिमाण के चार भवनों से घिरे हुए हैं अर्थात् 1+4+16+64=85 प्रासाद है।

यह उपकारिकालयन सूर्याभ विमान के बीच मध्य में है समभूमि से कुछ ऊंचा है। इसमें प्रवेश करने के लिए चारों दिशाओं में प गथिए सोपान है। उसके चौतरफ पद्मवर वेदिका रूप परकोटा है और उसके चौतरफ कुछ कम दो योजन चौड़ा वनखंड है।

सुधर्मासभा का बाह्य वर्णन- मुख्य प्रासादावतंसक के ईशान कोण में अनेक स्तंभों पर बनी हुई सुधर्मा सभा है। उसके तीन दिशा में तीन द्वार एवं तीन दिशाओं में सोपान पगथिए हैं। पश्चिम में नहीं है। ये द्वार सौलह योजन ऊंचे आठ योजन चैड़े हैं। द्वार के सामने मंडप है, मंडप के आगे प्रेक्षागृह है। प्रेक्षागृह के बीच में मंच है, मंच के बीच चबूतरा (मणि पीठिका) है, उस पर एक-एक सिहांसन है उसके आसपास में अनेक भद्रासन है।

प्रेक्षागृह के सामने आगे भी मणि पीठिका (चबूतरा) है उन पर स्तूप है। स्तूप के सामने चबूतरे पर चैत्य वृक्ष है, चैत्य वृक्ष के सामने चबूतरे पर माहेन्द्र ध्वज है और उसके सामने नंदा नामक पुष्करिणी है।

सुधर्मा सभा का आभ्यंतर वर्णन-

सुधर्मा सभा में चौतरफ किनारों में 48 हजार कमरे सरीखे खुले विभाग है। उनमें 48 हजार लम्बी कुर्सियों के समान आसन है।

सुधर्मा सभा के बीच में 60 योजन ऊंचा माणवक चैत्य स्तंभ है जिसके 48 तल एवं 48 कोरे हैं अर्थात् 48 मोड़ में गोलाकार है। इसके मध्य भाग में अनेक खूंटियां हैं जिनमें छींके लटक रहे हैं और छींकों में गोल डिब्बियां है, डिब्बियों में '' जिनदाढाए '' है। जो देव देवियों के लिए अर्चनीय एवं पूजनीय है।

माणवक चैत्य स्तंभ के पूर्व में ''**सिहासन**'' और पश्चिम में ''**देव-शय्या**'' है। देव शय्या के ईशानकोण में ''**माहेन्द्र ध्वज**'' है। माहेन्द्र ध्वज के पश्चिम में ''**आयुधशाला**'' है।

आयुधशाला के ईशान कोण में सिद्धायतन है। सिद्धायतन का बाह्य वर्णन सुधर्मा सभा के बाह्य वर्णन के समान है। सिद्धायतन के अंदर 108 जिन प्रतिमाएं है। जिसके पीछे एक छत्र धारक और बाजू में दो चामर धारक की प्रतिमा है। आगे दो-दो यक्ष भूत नाग आदि की प्रतिमाएं हैं। वहां पर 108 घटिकाएं, चंदन कलश, थाल, पुष्प चंगेरी, धूप कुडुच्छक आदि है।

सिद्धायतन के ईशान कोण में ''**उपपात सभा**'' है, उसके ईशान कोण में ''**सरोवर**'' है। उसके ईशान कोण में ''**अभिषेक सभा**'' है। इसके ईशानकोण में ''**अलंकार सभा**'' है इसके उत्तर पूर्व (ईशान कोण) में ''**व्यवसाय सभा**'' है। उसमें ''**पुस्तकरत्न**'' है, जिसमें देवों के जीताचार कर्तव्य कलापों का वर्णनं है एवं धार्मिक लेख है।

व्यवसाय सभा के ईशान कोण में ''**नंदा नामक पुष्करणी**'' है एवं उसके ईशान कोण में विशाल ''**बलि पीठ**'' चबूतरा है।

सूर्याभ का जन्माभिषेक एवं क्रिया कलाप-

सूर्याभ देव उपपात सभा में जन्म लेता है। सामानिक देवों के निवेदन अनुसार प्रवृत्ति करने के लिए पूर्वी दरवाजे से निकलकर ''**सरोवर**'' पर आता है। वहां स्नान क्रिया से निवृत्त होकर अभिषेक सभा में आकर सिहासन पर पूर्व दिशा में मुख करके बैठ जाता है। वहां उसका सभी देव मिल कर जन्माभिषेक एवं इन्द्राभिषेक करते हैं। कलशों से स्नान कराते हैं, अभिषेक करते हैं एवं विविध प्रकार से हर्ष मनाते हैं। मंगल शब्दोच्चारण करते हैं।

फिर पूर्वी दरवाजे से निकलकर सूर्याभ देव अलंकार शाला में आकर सिहासन पर बैठता है। शरीर को पोंछ कर गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है। वस्त्र युगल धारण करता है एवं अनेक आभूषण पांव से मस्तक पर्यन्त धारण करता है। कल्प वृक्ष के समान सुसज्जित हो जाता है।

फिर वहां से उठ कर व्यवसाय सभा में आकर सिहासन पर बैठ कर पुस्तक रत्न का अध्ययन करता है। वहां से उठकर नंदा पुष्करणी में आता है। हाथ पांव का प्रक्षालन कर पानी की झारी एवं कमल फूल लेकर वहां से निकलता है। फिर सिद्धायतन में आता है। विनय भक्ति एवं पूजा विधि करके एक सौ आठ मंगल श्लोको से स्तुति गुण कीर्तन करता है।

सभी स्थानों की पूजा अर्चना- फिर वंदन नमस्कार करके मोरपिच्छि,से अनेक स्थानों का प्रमार्जन, पानी से प्रक्षालन एवं चंदन के हाथ से छापे लगाता है तथा धूप करता है, फूल चढ़ाता है। वे स्थान इस प्रकार है- सिद्धायतन का मध्य भाग, दक्षिण द्वार, द्वारशाखा, पुतलियां, व्यालरूप मुख मंडप का मध्य भाग, मुख मंडप का पश्चिमि द्वार, द्वार शाखा, पुतलियां आदि यों मुख मंडप के चारों दिशाओं में, फिर इसी प्रकार प्रेक्षाधर मंडप के सभी उक्त स्थान, चैत्य स्तूप के सभी स्थान, चैत्य वृक्ष के सभी स्थान माहेन्द्र ध्वज के सभी स्थान, नंदा-पुष्करणी के सभी स्थान।

फिर इसी प्रकार उत्तरी द्वार के सभी स्थान एवं पूर्वी द्वार के सभी स्थान की पूजा विधि करता है। उसके बाद सुधर्मा सभा में प्रवेश करता है। वहां भी जिन दाढ़ाओं, सिहासन, देव शय्या, महेन्द्र ध्वज, आयुध शाला,उपपात सभा, अभिषेक सभा, अलंकार सभा, व्यवसाय सभा, पुस्तक रत्न, चबूतरा, सिहासन, नंदा-पुष्करणी,सरोवर आदि इन सभी स्थानों के जगह जगह मोरपिच्छि से प्रमार्जन, पानी से सिंचन,फूल, धूप आदि क्रियाएं करता है। अंत में बलि पीठ के पास आकर बलि विसर्जन करता है। फिर नौकर देवों से सूर्याभ विमान से सभी मार्ग, द्वार, वन, उपवन में, इसी प्रकार सर्वत्र अर्चा पूजा विधि करवाता है। फिर नंदा पुष्करिणी में हाथ पांव प्रक्षालन कर सुधर्मा सभा में पूर्वी दरवाजे से प्रवेश करता है। पूर्व दिशा में मुख करके सिहासन पर बैठ जाता है।

सूर्याभ की सभा व्यवस्था- उसके पूर्व दिशा में चार अग्रमहिषियां, उत्तर पूर्व और उत्तर पश्चिम में चार हजार सामानिक देव, दक्षिणपूर्व में आभ्यंतर परिषद के आठ हजार देव, दक्षिण में मध्यम परिषद के दस हजार देव, दक्षिणपश्चिम में बाह्य परिषद के बारह हजार देव, पश्चिम दिशा में सात अनिकाधिपति देव, इसके अनंतर पीछे चारों दिशा में 16 हजार आत्म रक्षक देव, ये सभी अपने-अपने नियुक्त भद्रासनों पर बैठते हैं।

सूर्याभ वर्णन उपसंहार- सूर्याभ देव की चार पल्योपम की उम्र है। उसके सामानिक देवों की भी चार-चार पल्योपम की उम्र है। इस प्रकार सूर्याभ देव महा ऋद्धि, महाद्युति महाबल महायश, महासौख्य और महाप्रभाव वाला है।

द्वितीय खंड-प्रदेशी राजा-

सूर्याभ देव की महाऋद्धि का ज्ञान होने पर स्वाभाविक ही यह जिज्ञासा होती है कि ऐसी संपदा उसे कैसे प्राप्त हुई? पूर्व भव में वह कौन था? क्या तपश्चरण, संयम, धर्म आदि का पालन किया ? इसी के समाधान हेतु सूर्याभ का पूर्व भव अर्थात् प्रदेशी राजा के जीवन वृत्तांत का वर्णन किया गया है।

प्रदेशी राजा का जीवन परिचय- तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पारसनाथ स्वामी का शासन प्रवर्त्त (चल) रहा था। उस समय केकयार्द्ध देश में श्वेतांबिका नामक नगरी में प्रदेशी राजा राज्य करता था। उसके सूर्यकांता नामक राणी थी उसके सूर्यकांत कुमार नामक पुत्र था। जिसे युवराज पद पर आसीन कर दिया गया था। वह राज्य के अनेक व्यवस्थाओं की देख-रेख किया करता था।

प्रदेशी राजा के भातृ वंशीय चित्त नामक सारथी (प्रधान) था। जो चारों प्रकार की बुद्धियों का स्वामी, कार्य कुशल, दक्ष सलाहकार, राजा के प्रमाणभूत, आलंबनभूत, चक्षुभूत, मेढ़ीभूत था। राज्यकार्य में सक्रिय भाग लेने वाला था।

चित्त सारथी श्रावस्ती में- प्रदेशी राजा के अंतेवासी अर्थात् आज्ञाधीन अधीनस्थ जितशत्रु नामक राजा था। कुणाल देश की श्रावस्ती नगरी उसकी राजधानी थी, वहां वह निवास करता था।

एक बार प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी को श्रावस्ती नगरी में जाकर राज्य व्यवस्था की देख-रेख करने की आज्ञा दी एवं कुछ सूचनाएं भेजी। उसे राजा के योग्य महान् भेंटणा लेकर भेजा। चित्त सारथी वहां गया और प्रदेशी राजा की आज्ञानुसार महान् भेंट अर्पण करते हुए संदेश निवेदन किया। जितशत्रु राजा ने भेंट स्वीकार कर चित्त सारथी का महान् सत्कार किया एवं उसे ठहरने के लिए राज मार्ग में सुन्दर भवन दिया। चित्त सारथी वहां सुख पूर्वक रहने लगा। समय समय पर राज्य व्यवस्था की देख रेख भी करने लगा।

श्रावस्ती में केशी श्रमण– एक समय विचरण करते हुए भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के शिष्य श्रमण प्रायोग्य अनेक गुणों से सम्पन्न केशिकुमार श्रमण श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक नामक उद्यान में ठहरे। नगर के लोगों को जानकारी मिली। यथा समय लोगों के झुंड के झुंड दर्शन करने चले। विशाल जनमेदिनी के गमनागमन से राजमार्ग में जन कोलाहल गूंजने लगा। चित्त सारथी की का भी उधर ध्यान गया। अनुचर को भेज कर पता लगवाया कि आज नगर में कोई महोत्सव है, किस विषय का जन कोलाहल हो रहा है? अनुचर ने जानकारी करके सूचना दी कि नगर में कोई भी महोत्सव नहीं है किन्तु केशिकुमार श्रमण नगरी के बाहर बगीचे में पधार रहे हैं। वहां लोग दर्शन करने एवं उनकी वाणी श्रवण करने हेतु जा रहे हैं।

चित्त सारथी भी अपने रथ पर आरूढ़ होकर उद्यान में पहुंचा, रथ से उतकर केशीकुमार क्षमण के पास गया। विधिवत् वंदन नमस्कार किया और परिषद् में बेठ गया। केशकुमार श्रमण ने चित्त सारथी सहित उस विशाल परिषद् को धर्मोषदेश दिया। उपदेश सुनकर यथयोग्य व्रत पच्च्क्खाण धारण कर परिषद् चली गई।

चित्त श्रमणोपासक बना– चित्त सारथी धर्म श्रवण कर बड़ा ही आनंदित हुआ, हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला हुआ, वह उठा और उठकर तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोला हे भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूं। प्रतीति करता हूं, रूचि करता हूं एवं तदनुरूप आचरण करने के लिए तत्पर होता हूं। उसने निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा भक्ति प्रकट करते हुए निर्ग्रन्थ प्रवचन को धारण करने वाले श्रमणों का गुण कीर्तन किया एवं उन्हें धन्यवाद कहा। खुद को अधन्य कहते हुए श्रमण धर्म स्वीकार करने में असमर्थ कहा एवं निवेदन किया कि हे भंते! मैं आप श्री के पास श्रावक के 12 व्रत स्वीकार करना चाहता हूं।

केशि श्रमण ने यथा क्रम से एक-एक करके उसे बारह व्रत धारण करवाये। अब चित्त सारथी बारह व्रतधारी श्रावक बन गया। क्रमशः विकास करते हुए वह श्रमणोपासक योग्य अनेक गुणों से सम्पन्न हो गया।

श्वेतांबिका पधारने की विनंति– किसी समय जितशत्रु राजा ने उसे विदाई दी। अमूल्य भेंटणा देकर उसे प्रदेशी राजा के पास भेजा और निवेदन करवाया कि मैं आपकी सूचनानुसार पूर्ण रूप से ध्यान रखते हुए राज्य का संचालन करूंगा।

विदाई लेकर चित्त सारथी अपने भवन में आया और पैदल चलकर ही केशिश्रमण की सेवा में पहुंचा। वंदन नमस्कार कर धर्मोपदेश सुना। फिर निवेदन किया कि हे भंते! मैं श्वेतांबिका नगरी जा रहा हूं आप श्री से करबद्ध निवदेन करता हूं कि आप वहां पर पधारने की कृपा करना।

चित्त की विनंति की उपेक्षा करते हुए केशी श्रमण ने कोई उत्तर नहीं दिया। चित्त ने अपनी भाव भरी विनंति की दुबारा तिबारा पुनः पुनः निवेदन किया तब केशी श्रमण ने दृष्टान्त देकर उत्तर स्पष्ट किया।

प्रदेशी के अधार्मिकता की चर्चा– जिस प्रकार किसी सुंदर मनोहर वन खंड में पशुओं को दुःख देने वाले पापीष्ट लोग रहते हों तो वनचर पशु वहां रहने में आनंद नहीं मानते हैं। उसी प्रकार हे चित्त! श्वेतांबिका नगरी भले ही सुंदर रमणीय है किन्तु वहां तुम्हारा राजा प्रदेशी जो रहता है वह अधार्मिक अधर्मिष्ठ, अधर्म समाचरण वाला एवं अधर्म से ही वृत्ति करने

वाला है। वह आत्मा, धर्म आदि कुछ भी नहीं मानता है। सदा हिंसा में आसक्त, क्रूर, पापकारी, चंड, रूद्र, क्षुद्र बना रहता है। कूड़ कपट बहुल, निर्गुण, मर्यादा रहित, पच्चक्खाण, व्रत आदि से रहित यावत् अधर्म का ही सरदार बना है। अपनी प्रजा का भी अच्छी तरह रक्षण नहीं करता है एवं गुरुओं का आदर सत्कार विनय भक्ति कुछ भी नहीं करता है। अतएव ऐसी तुम्हारी श्वेतांबिका नगरी में कैसे आवें। अर्थात् आने की इच्छा नहीं होती है।

चित्त के पुनः निवेदन पर स्वीकृति- चित्त ने सारी स्थिति को स्वीकार करते हुए पुनः निवेदन किया हे भंते! आपको राजा प्रदेशी से क्या करना है अर्थात् क्या लेना देना है ? भगवन्! वहां अन्य बहुत से राजा, कर्मचारी, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, प्रजाजन आदि हैं जो धार्मिक एवं धर्म प्रिय है। वे आप देवानुप्रिय की श्रद्धा भक्ति विनय आदर सत्कार करेंगे, धर्मोपदेश श्रवण करेंगे एवं श्रद्धा रूचि त्याग प्रत्याख्यान धारण करेंगे। आहार पानी से प्रतिलाभित करेंगे। अतः आप जरूर श्वेतांबिका नगरी पधारिये। इस प्रकार हार्दिक भावना से युक्त निवेदन ने केशी श्रमण के भावों में परिवर्तन ला दिया। उन्होंने आश्वासन युक्त वचन कहे कि अच्छा जैसा अवसर होगा ध्यान में रखेगें। अर्थात् तुम्हारा आमंत्रण ध्यान में है।

आश्वासन प्राप्त कर चित्त पुनः वंदन नमस्कार कर अपने डेरे पर आया और श्वेतांबिका के लिए प्रस्थान कर दिया।

श्वेतांबिका में पहुंच कर चित्त ने बागवान को भलावण दे दी। फिर प्रदेशी राजा के पास पहुंच कर जितशत्रु राजा का भेंटणा निवदेन प्रस्तुत किया। फिर अपने महल में चला गया।

विचरण करते हुए केशिकुमार श्रमण श्वेतांबिका नगरी के मृगवन उद्यान में पधारे। बागवान ने चित्त सारथी को खबर पहुंचाई चित्त ने वहां पर ही उत्तरासंग करके विनय भक्ति पूर्वक वंदन किया। सिद्धों को नमोत्थुणं देकर फिर केशी कुमार श्रमण को णमोत्थुणं शब्द के उच्चारण पूर्वक नमस्कार विधि का पालन किया। फिर उद्यान पालक को जीविका योग्य प्रीतिदान दिया। यथाशीघ्र तैयार होकर चित्त सारथी गुरु सेवा में उपस्थित हुआ। गुरु वंदन करके परिषद के साथ उपदेश श्रवण किया। तदनंतर उसने केशी श्रमण से प्रदेशी राजा को प्रतिबोधित करने का निवेदन किया।

केशी स्वामी ने कहा कि- 1. जो व्यक्ति संत मुनिराजों के पास बगीचे में पहुंचता है, श्रद्धा भक्ति से वाणी श्रवण करता है। 2. गांव में या उपाश्रय में निकट में जहां भी संत हो तो उनकी सेवा में पहुंचता है, 3. घर में आने पर सुपात्रदान आदर सत्कार देता है, 4. मार्ग में मिलने पर सामने देखकर कर बद्ध अभिवादन नमस्कार करता है, संक्षिप्त वंदन भी करता है, तो ऐसा व्यक्ति कभी बोध प्राप्त कर सकता है किन्तु जो बगीचे में भी नहीं आवे, नजदीक ठहरने पर भी नहीं आवे, घर में भी दान देने के भाव उत्साह नहीं रखे, सामने मिलने पर मुंह छिपावे। शिष्टाचार मात्र भी न करे तो ऐसा व्यक्ति बोध प्राप्त नहीं कर सकता।

हे चित्त! तुम्हारा राजा भी इसी तरह किंचित भी विनय सत्संग करने को तैयार नहीं है तो उसे कैसे बोध दिया जा सकता है? तब चित्त ने उपाय पूर्वक राजा को लाने का निर्णय लिया।

दूसरे दिन चित्त ने प्रदेशी राजा से कंबोज देश के आये एवं शिक्षित किये गये चार घोड़ों का परीक्षण करने का निवेदन किया। राजा ने स्वीकृति दे दी। चारों घोड़ों को रथ में जोत कर वे दोनों भ्रमणार्थ निकले। अल्प समय में ही शीघ्र गति से बहुत दूर निकल गये राजा गर्मी एवं प्यास से घबराने लगा, विश्रांति की भावना व्यक्त की। चित्त ने अवसर देख कर

रथ घुमाया और शीघ्र गति से उसी बगीचे के पास लाकर ठहरा दिया जहां केशी श्रमण का प्रवचन चल रहा था। राजा वहां ठंडी छाया में थकान मिटाने के लिए विश्राम करने लगा। वहां से उसे केशिकुमार श्रमण एवं उनकी परिषद दिखाई दी एवं व्याख्यान की आवाज भी सुनाई देने लगी।

प्रदेशी राजा मन में विचार करने लगा कि ये जड़ मुंड एवं मूर्ख लोग ही जड़ मंड एवं मूर्खों की उपासना करते हैं। यह इतना जोर जोर से कौन बोलता है जो मैं यहां मेरे उद्यान में भी शांति से विश्राम नहीं कर सक रहा हूं। यह विचार उसने चित्त के समक्ष रखा।

चित्त ने मुनि का परिचय बताते हुए कहा कि ये चार ज्ञान के धारण करने वाले पार्श्वनाथ भगवान के शासन के श्रमण है। इन्हें आधोवधिज्ञान है मनःपर्यवज्ञान है। प्रासुक एषणीय आहार खाने वाले हैं।

केशी श्रमण एवं राजा प्रदेशी का संवाद-

राजा चित्त के साथ केशी श्रमण के पास आया और खड़े रहकर पूछने लगा। आप आधोवधिज्ञानी हैं क्या, आप प्रासुक अन्न भोजी है क्या?

केशीश्रमणः हे राजन्! जिस प्रकार वणिक लोग दाण (कर) की चोरी करने के विचार से सीधा मार्ग नहीं पूछते। उसी तरह तुम भी विनय व्यवहार नहीं करने की भावना से अयोग्य रीति से प्रश्न कर रहे हो। हे राजन्! मुझे देखकर तुम्हारे मन में ये संकल्प उत्पन्न हुए कि जड़ मुंड मूर्ख लोग जडमूंड मूख की उपासना करते हैं इत्यादि।

राजा प्रदेशी- हां ऐसे विचार आए पर आपने कैसे जान लिए?

श्रमणः शास्त्र में पांच ज्ञान कहे हैं। उसमें से चार ज्ञान मुझे है जिसमें चौथे मनः पर्यव ज्ञान द्वारा मैं जानता हूं कि तुमने ये संकल्प किये।

राजा- मैं यहां बैठ सकता हूं ?

केशी- यह तुम्हारा बगीचा है तुम ही जानो। तब प्रदेशी राजा चित्त सारथी के साथ बैठ गया।

राजा- भंते! आत्मा शरीर से अलग है या शरीर ही आत्मा है ?

केशी- राजन्! शरीर ही आत्मा नहीं है किन्तु आत्म द्रव्य शरीर से भिन्न है। आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान एवं श्रद्धा स्वसंवेदन से हो सकता है। संसार में जितने भी प्राणी हैं उन्हें सुख और दुःख का, धनवान और निर्धन होने का, मान और अपमान का, जो संवेदन होता है या अनुभूति होती है वह आत्मा को ही होती है शरीर को नहीं। शरीर तो जड़ है।

चेतन नो शंका करे, चेतन पोते आप ।
शंका नो करण हार, जड़ नहीं है यह साफ।।

आत्मा है या नहीं यह संशय भी जड़ (शरीर) को नहीं होता है ऐसा संशय भी चेतन तत्त्व को होता है। '**यह मेरा शरीर है**'। इस कथन में जो ''**मेरा**'' शब्द है वह सिद्ध करता है कि ''**मैं**'' कोई शरीर से अलग वस्तु है और वही आत्म

तत्त्व है, आत्मा है, जीव है, चैतन्य है। शरीर के नष्ट होने के बाद भी रहतां है, परलोक में जाता है, गमनागमन एवं जन्म मरण करता रहता है। अतः संशय करने वाला, दुख सुख का अनुभव करने वाला, आत्मा का निषेध करने वाला और **''मैं''** **''मेरा शरीर''** यह सब अनुभव करने वाला **''आत्मा''** ही है और वह शरीर से भिन्न तत्त्व है।

आंख देखने का काम करती है, कान सुनता है पर उसका अनुभव करके भविष्य में याद कौन रखता है वह याद रखने वाला तत्त्व इन्द्रियों और शरीर से भिन्न है और वह आत्म तत्त्व है उसे किसी भी नाम से कहो परन्तु वह शरीर से भिन्न दूसरा तत्त्व।

राजा– भंते! मेरा दादा मुझ पर अत्यंत स्नेह रखता था, मैं उसे बहुत प्रिय था। वह मेरे समान ही अधर्मिष्ठ था एवं आत्मा को शरीर से अलग नहीं मानता था। इसलिए वह निःसंकोच पाप कर्म करता हुआ जीवन यापन करता था। आपके मान्यतानुसार वह नरक में गया होगा। वहां उसे भंयकर दारूण दुःख ही दुःख मिलता होगा तो मेरे ऊपर अपार स्नेह के कारण मुझे सावधान करने आना चाहिये था कि हे प्रिय पौत्र! मैं पाप कार्यों के फल स्वरूप नरक में गया हूं महान् दुःखों में पड़ गया हूं। अतः तूं ऐसे पाप कार्य मत कर, धर्माचरण कर, प्रजा का अच्छी तरह संरक्षण, पालन कर। किन्तु उसके आज तक भी कभी आने का प्रश्न ही नहीं है। अतः हे भंते! आत्मा कोई अलग चीज नहीं है, शरीर ही आत्मा है और शरीर के नष्ट होने के बाद कोई भी अलग चीज रूप आत्मा की कल्पना करना गलत है।

केशी– राजन्! तेरा दादा नरक में गया होगा फिर भी नहीं आ सकता है। इसका कारण यह है कि- यदि तेरी राणी सूर्यकांता के साथ कोई पुरुष इच्छित कामभोगों का सेवन करे और उसे तूं देख ले तो क्या दंड देगा?

राजा– उस दुष्ट पापी को मैं तत्काल दंड देकर अर्थात् तलवार से टुकड़े टुकड़े करके परलोक पहुंचा दूंगा?

केशी– यदि वह कहे राजन्! मुझे एक दो घंटा का समय दो घर वालों से मिलकर तो आ जाऊं, उन्हें अच्छी शिक्षा तो दे दूं, तो तुम उसे छोड़ोगे?

राजा– नहीं ! उसे इतना बोलने का समय भी नहीं दूंगा अथवा वह ऐसा बोलने की हिम्मत भी नहीं कर सकेगा और कह भी देगा तो मैं उस दुष्ट को एक क्षण मात्र की भी छुट्टी नहीं दूंगा।

केशी– राजन्! यही अवस्था नरक के जीवों की एंव तुम्हारे दादा की होगी कि वे अपने दुःख के आगे यहां आने का सोच भी नहीं सकते और यदि आना चाहे तो भी नहीं आ सकते। इसलिये तुम्हारा दादा तुम्हें कहने नहीं आ सकता। अतः तुम्हारी आशा रखना और उसी के बल पर जीव शरीर को एक मानना ठीक नहीं है।

राजा– भंते! मेरी दादी तो बहुत ही धर्मात्मा थी वह आपके हिसाब से अवश्य स्वर्ग में गई होगी। उसे तो पाप फल का कोई प्रतिबंध नहीं है। वह तो आकर मुझे कह सकती कि हे पौत्र! देख मैं धर्म करके स्वर्ग में गई हूं। तू पाप मत कर, आत्मा और शरीर अलग-अलग है ऐसा मान कर धर्म कार्य कर, प्रजा का सही विधि से पालन कर, इत्यादि। किन्तु उसके द्वारा भी कभी सावधान करने का प्रसंग नहीं आया, जब कि मुझ पर तो उसका भी अत्यंत स्नेह था। अतः परलोक देवलोक और आत्मा कुछ भी नहीं है, ऐसी मेरी मान्यता है।

केशी– राजन्! जब तुम स्नान आदि कर के पूजा की सामग्री एवं झारी आदि लेकर मंदिर में जा रहे हो और मार्ग में कोई पुरुष अशुचि (मल) से भरे शौचगृह के पास बैठ कर तुम्हें बुलावे कि इधर आओ, थोड़ी देर बैठो, तो तुम वहां क्षण मात्र के लिए भी नहीं जाओगे। उसी प्रकार हे राजन्!

मनुष्य लोक में 500 योजन ऊपर तक अशुचि आदि की दुर्गन्ध जाती रहती है इस कारण देव देवी यहां नहीं आ सकते। इसलिये तुम्हारी दादी भी तुम्हें संबोधन करने नहीं आ सकती।

देवलोक से नहीं आने में अशुचि एंव दुर्गन्ध के अतिरिक्त भी कई कारण है यथा- वहां जाने के बाद यहां का प्रेम समाप्त हो जाता है, देवलोक के प्रेम में लग जाते हैं। अथवा अभी जाऊं, अभी जाऊं ऐसा सोच कर किसी नाटक, ऐशो-आराम में लग जाय तो इतने समय में तो यहां कई पीढियां बीत जाती हैं अतः दादी के आने के भरोसे तुम्हारा ऐसा मानना उपयुक्त नहीं है।

राजा– भंते! इसके अतिरिक्त भी मेरा अनुभव है कि शरीर से भिन्न कोई जीव तत्व नहीं है। एक बार मैंने एक अपराधी पुरुष को लोहे की कुंभी में बंद करवा कर ढक्कन बंद उसके उपर गर्म लोहे तांबे से लेप करवा कर विश्वस्त व्यक्ति को वहां पहरेदार नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों बाद उस कुंभी को खोला गया तो वह व्यक्ति मर गया था। किन्तु उस कुंभी के कहीं भी सूई की नोक जितना भी छिद्र नहीं हुआ था। यदि आत्मा कोई अलग वस्तु होती और उसमें से निकल कर कहीं जाती तो उस कुंभी में कहीं बारीक छिद्र भी होना चाहिए था, किन्तु बहुत ध्यान से देखने पर भी उसमें किसी प्रकार का छिद्र नहीं मिला। अतः मेरी मान्यता पुष्ट हुई कि शरीर से अलग जीव कोई तत्त्व नहीं है।

केशी– राजन्! कोई चौतरफ से बंद एक दरवाजे वाला कमरा है। दिवालें उसकी ठोस बनी हो, उसमें से कुछ व्यक्ति बैंड बाजा ढोल आदि लेकर अंदर घुस जाय। फिर दरवाजा बंद करके उस पर लेप आदि लगाकर पूर्ण रूप से निश्छिद्र कर दे फिर अंदर रहे पुरुष जोर -जोर से ढोल भेरी बाजे आदि बजावे तो बाहर आवाज आएगी ? उसकी दिवालों आदि के कोई छिद्र होंगे?

राजा– उसके कोई छिद्र नहीं होगा तो भी आवाज तो बाहर आ जाएगी।

केशी– राजन्! जैसे बिना छिद्र किये भी आवाज बाहर आ जाती है तो आवाज से भी आत्म तत्त्व अतिसूक्ष्म है, उसकी अप्रतिहत गति है अर्थात् दिवाल या लोहे आदि की चट्टानों से जीव की गति नहीं रूकती है। अतः तुम यह श्रद्धा करो कि जीव शरीर से भिन्न तत्त्व है।

राजा– भंते! एक बार मैंने एक अपराधी को मार कर तत्काल लोहकुंभी में बंद कर ढ़क्कन के लेप कर निश्छिद्र कर दिया। कुछ दिन बाद देखा तो उसमें हजारों जीव (कीड़े) पैदा हो गये थे। एक बंद कुंभी में उन जीवों ने प्रवेश कहां से किया? अंदर तो कोई भी जीव था ही नहीं।

केशी– कोई सघन लोहे का गोला है। उसे अग्नि में रख दिया जाय तो थोड़ी देर बाद वह पूर्ण तपकर लाल हो जाय तो समझना कि उसमें अग्नि ने प्रवेश किया। फिर उस लोहे को देखा जाय तो उसमें कोई भी छिद्र नहीं दिखेगा तो भी अग्नि ने उसमें प्रवेश तो किया ही है। उसी प्रकार जीव भी बंद कुंभी में प्रवेश कर सकते हैं। उनका अस्तित्व स्वरूप अग्नि से भी

अत्यन्त सूक्ष्म है। उसके लिए लोहे आदि से बाहर निकलने या भीतर प्रवेश करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती है। अतः हे राजन्! तुम श्रद्धा करो कि शरीर से भिन्न आत्म तत्त्व है, अतः जन्म-मरण और परलोक भी है।

राजा– एक सशक्त व्यक्ति पांच मण वजन उठाकर रख सकता है और दूसरा अशक्त व्यक्ति उस वजन को नहीं उठा सकता, इसलिए मैं यह मानता हूं कि शरीर है वही आत्मा है यदि आत्मा अलग होता तो एक आत्मा वह वजन उठा सकता है तो दूसरा भी उठा लेता। क्योंकि शरीर से सशक्त अशक्त कैसा भी हो तो आत्मा तो सब का एक सरीखा और अलग-अलग है। किन्तु सभी आत्मा सरीखी होते हुए भी एक सरीखा वजन नहीं उठा सकते। अतः मेरा मानना सही है कि शरीर है वही आत्मा है जैसा शरीर है वैसा ही कार्य होता है। अतः अलग से आत्मा को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

केशी– समान शक्ति वाले पुरुषों के भी साधन के अंतर के कारण कार्य में अंतर होना स्वाभाविक है। यथा- एक सरीखी शक्ति वाले दो पुरुषों को लकड़ी काटने का कार्य दिया गया किन्तु एक को तीक्ष्ण धार वाला कुल्हाड़ा दिया गया दूसरे को भोटा (खराब हुई धार वाला) कुल्हाड़ा दिया गया। अच्छे कुल्हाड़े वाला व्यक्ति लकड़ियों को शीघ्र काटकर रख देगा और खराब कुल्हाड़े वाला नहीं काट सकेगा। इसका यह अर्थ तो नहीं होगा कि जैसा शस्त्र है वैसा कार्य होता है तो व्यक्ति कुछ भी है ही नहीं। किन्तु जैसे व्यक्ति का अस्तित्व होते हुए भी साधन के कारण कार्य में अंतर हो जाता है। उसी प्रकार आत्मतत्त्व सब में होते हुए भी साधन रूप शरीर की अपेक्षा तो कार्य में रहती ही है। भार वहन के लिए भी नयी पुरानी जैसी कावड या रस्सी मजबूत होगी उसी के अनुपात से व्यक्ति भार वहन कर सकता है। साधन की मुख्यता से ऐसा होता है। इसलिए हे राजन्! इस तर्क से भी तुम्हारा आत्मा को भिन्न नहीं मानना असंगत है।

राजा– एक बार मैंने एक व्यक्ति को जीवित तोल कर उसे तत्काल प्राण रहित कर फिर तोला तो रंच मात्र भी उसके वजन में अंतर नहीं आया। आपकी मान्यतानुसार तो शरीर से भिन्न आत्म तत्त्व वहां से निकला ही होगा तो उसके वजन में कुछ भी तो अंतर आना चाहिये था।

केशी– राजन्! कोई मशक में हवा भर कर तोल किया जाय और फिर उसकी हवा निकाल कर वजन किया जाय तो उसमें कोई अंतर नहीं आता है। आत्म तत्त्व उस हवा से भी अत्यंत सूक्ष्म (अरूपी) तत्त्व है। अतः उसके निमित्त से वजन में कोई अंतर नहीं आ सकता। इसलिए हे राजन्! तुम्हें यह श्रद्धा करनी चाहिए कि शरीर से आत्मा भिन्न तत्त्व है।

राजा– एक बार मैंने एक अपराधी को लेकर ऊपर नीचे अंदर बारीक टुकड़े टुकड़े करके देखा, तो भी कहीं जीव नहीं दिखा। अतः मैं यह मानता हूं कि शरीर के अतिरिक्त जीव कोई चीज है नहीं।

केशी– राजन्! तुम उस मूर्ख कठिययारे से भी अधिक मूढ और विवेकहीन हो।

एक बार कुछ लकड़ी काटने वाले साथी मिलकर जंगल में गये। एक नया व्यक्ति भी उस दिन साथ में हो गया। जंगल बहुत दूर था अतः खाना बनाना और भोजन करना, वे वहीं किया करते थे। साथ में थोड़ी अग्नि (अंगारे) ले जाते थे। आज उन्होंने नये व्यक्ति कठियारे से कहा कि तुम यहीं जंगल में बैठो, हम लकड़िये काट कर लाते हैं। तुम यथा समय खाना बनाकर रखना। कदाचित अपने पास की अग्नि बुझ जाय तो यह ''अरणि काष्ट'' है इससे अग्नि जलाकर खाना तैयार करके रखना। लकड़यां लेकर आते ही खाना खाकर हम सभी घर चलेंगे।

उनके जाने के बाद यथासमय उस कठियारे ने खाना बनाने की तैयारी प्रारम्भ की। किन्तु देखा कि आग तो बुझ चुकी है। उसने अरणि काष्ट को उठा कर देखा तो उसमें कहीं अग्नि दिखी नहीं। आखिर उसने उस अरणि काष्ट के खंड-खंड करके देखा तो भी कहीं अग्नि नजर नहीं आई। अग्नि बिना वह खाना नहीं बना सका और हताश होकर बैठ गया।

जब वन में से कठियारे लकड़ियां लेकर आए तब उन्होंने दूसरी अरणिकाष्ठ लेकर उन्हें आपस में घिस कर अग्नि पैदा की और खाना बनाकर खाया। उन्होंने उस नये कठियारे को कहा- रे मूर्ख! तू इस लकड़ी के टुकड़े टुकड़े करके इसमें अग्नि खोजना चाहता है ऐसे खोजने से अग्नि मिलती है क्या?

इस प्रकार हे राजन्! तुम्हारी प्रवृत्ति भी उस मूर्ख कठियारे के समान हुई।

राजा- भंते! आप सरीखे ज्ञानी बुद्धिमान विवेकशील व्यक्ति इस विशाल सभा में मुझे ऐसे तुच्छ हल्के एवं निष्ठुर शब्दों के प्रयोग से अनादर पूर्ण व्यवहार करे, क्या यह उचित है ?

केशी- राजन्! तुम यह जानते हो कि परिषद कितने प्रकार की होती है? उनमें किसके साथ क्या व्यवहार किया जाता है? किसको क्या दंड दिया जाता है ? फिर भी तुम मुझ श्रमण के साथ श्रमणोचित व्यवहार न करते हुए विपरीत तरीके से पेश आ रहे हो तो तुम्हारे साथ ऐसे ही वाक्यावलि से मेरा उत्तर देना उपयुक्त है यह तुम नहीं समझ सकते हो?

राजा- अपना आशय स्पष्ट करते हुए राजा ने कहा कि मैं प्रारम्भ के वार्तालाप से ही समझ गया था कि इस व्यक्ति (अर्थात् केशी श्रमण) के साथ जितना विपरीत तरीके से व्यवहार करूंगा उतना ही अधिक से अधिक तत्त्व ज्ञान प्राप्त होगा। इसमें लाभ होगा किन्तु नुकशान नहीं होगा। मैं तत्त्व ज्ञान, सम्यग् श्रद्धान, सम्यक् चारित्र को प्राप्त करूंगा, जीव और जीव के स्वरूप को समझूंगा। इसी कारण मैंने ऐसा विपरीत व्यवहार किया।

राजा- हे भंते! आप तो समर्थ हैं मुझे हथेली में रखे आंवले की तरह एक बार आत्मा को बाहर रख कर बता दो।

केशी- हे राजन्! जो ये वृक्ष के पत्ते आदि हिल रहे हैं, वे हवा से हिलते हैं, तो हे राजन्! तुम इस हवा को आंखों से देख नहीं सकते हो किसी को हाथ में रख कर दिखा भी नहीं सकते हो, फिर भी हवा को स्वीकार तो करते ही हो। उसी प्रकार हे राजन्! आत्मा हवा से भी सूक्ष्म है अर्थात् हवा तो रूपी पदार्थ है किन्तु आत्मा अरूपी पदार्थ है उसे हाथ में कैसे दिखाया जा सकता है? अतः तुम श्रद्धा करो कि हवा के समान आत्मा भी स्वतंत्र अचक्षु ग्राह्य तत्त्व है।

कोई व्यक्ति वकालात पास है इस प्रत्यक्ष जानने के लिए कोई डाक्टर उसके शरीर एवं मस्तक को काट छाट कर देखना चाहे कि- **''मैं प्रत्यक्ष देखूं''** तो वह सफल नहीं हो सकता है। जब ज्ञान को ऐसे नहीं देखा जा सकता तो ज्ञानी को (आत्मा को) ऐसे प्रत्यक्ष देखने का संकल्प करना भी अयोग्य ही है।

कोई व्यक्ति ''भूमि में आम, अंगूर, गन्ना, मिर्ची सभी पदार्थों के परमाणु रहे हुए हैं'' यह श्रद्धा कर बीज बोवे तो फल प्राप्त कर सकता है किन्तु यदि कोई उसी भूमि को खोद-खोदकर कण-कण में उन आम, अंगूर, गन्ना, मिर्च के परमाणुओं को प्रत्यक्ष देखने का प्रयत्न करे तो उसे कुछ भी इच्छित फल प्राप्त नहीं होगा।

ये रूपी पदार्थ भी सूक्ष्म एवं विरल होने से सामान्य ज्ञान वालों को प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर नहीं हो सकते तो आत्मा जैसे अरूपी एवं अति सूक्ष्म पदार्थों के देखने की कल्पना करना नादानता एवं बाल दशा है।

अतः आत्मा, परलोक, पुद्‌गल परमाणु, सूक्ष्म समय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव की आदि, तैजस-कार्मण शरीर, कर्म आदि कितने ही तत्त्व सामान्य ज्ञानियों के लिये श्रद्धा गम्य एवं बुद्धि गम्य हो सकते हैं, प्रत्यक्ष गम्य नहीं हो सकते।

राजा– भंते! जीव को अलग तत्त्व मानने पर उसका भी एक परिमाण (माप) मानना होगा। तब फिर वह आत्मा कभी हाथी जैसे विशाल काय में, कभी कीड़ी जैसे छोटे शरीर में किस तरह रहेगी? यदि छोटी मानेंगे तो हाथी के शरीर में (भव में) कैसे रहेगी? हाथी जैसे मानेंगे तो कीड़ी आदि में किस तरह रहेगी? अर्थात् नहीं रह सकेगी। अतः शरीर से भिन्न आत्म तत्त्व नहीं मानना चाहिए अन्यथा यह दुविधा खड़ी रहेगी।

केशी– राजन्! जिस प्रकार एक दीपक (या बल्ब अथवा ट्यूबलाईट) बड़े हाल में है तो उसका प्रकाश उतने में समाविष्ट हो जाता है, उससे छोटे कमरे में रखा जाय तो उसका प्रकाश उस कमरे में समाविष्ट हो जाता है। उसी बल्ब को एक कोठी में रख दिया जाय तो उसका प्रकाश कोठी में भी समाविष्ट हो जाता है। इसका कारण यह है कि रूपी प्रकाश मे ंयह संकोच विस्तार का गुण है। वैसे ही आत्मा के प्रदेश निश्चित परिमाण वाले एवं संकोच विस्तार हो सकने वाले हैं। वे जिस कर्म के उदय से जैसा और जितना शरीर प्राप्त करते हैं, बनाते हैं, उस शरीर में ही व्याप्त होकर के रहते हैं। इसमें कोई दिक्कत नहीं आती है। अतः हे राजन्! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है। जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं है।

राजा– भंते! आपने जो कुछ भी समझाया वह सब ठीक है किन्तु मेरे पूर्वज बाप दादों से चला आया मेरा यह धर्म है कि जीव और शरीर एक ही, है अलग से जीव कोई वस्तु नहीं है। तो अपने बाप दादों का पीढ़ियों से मिला यह धर्म अब कैसे छोड़ दूं ?

केशी– हे राजन्! तुम उस लोहवणिक के समान मूर्ख एवं हठी मत बनो, अन्यथा उसके समान तुम्हें भी पश्चाताप करना पड़ेगा।

दृष्टान्त– कुछ क्षणिक धन कमाने की इच्छा से यात्रार्थ निकले। मार्ग में बड़ी अटवी रूप जंगल में पहुंचे। वहां किसी स्थान पर उन्होंने लोहे की विशाल खान देखी। जिसमें बहुत सारा लोहा बिखरा हुआ पड़ा था। उन लोगों ने विचार विमर्श किया और लोहे का भारा सभी ने बांध लिया। आगे चले तो शीशे की खान आई। सबने विचार कर लोहा छोड़ दिया और शीशा भर लिया। एक वणिक ने अनेक विध समझाने पर भी यही कहा कि इतनी दूर से बड़ी मेहनत से जिससे उठाकर लाया हूं मैं इसे यू ही नहीं छोड़ सकता।

आगे चलने पर तांबे की, फिर चांदी की और फिर सोने की खान आई। सभी वणिक पूर्व की वस्तु को हानि लाभ का विचार कर छोड़ते गये, अगली वस्तु लेते गये। किन्तु लोह वणिक उसी बात पर अड़ा रहा कि यह बार-बार छोड़ लेना अस्थित चित्त का काम मैं नहीं कर सकता। अंत में रत्नों एवं हीरों की खान आई। सारे वणिक एक सलाह से हीरे भर कर

आनंदित हुए और पुनः अपने देश के लिए लौटने का निर्णय कर लिया। उस लोह वणिक को फिर समझाने के लिए प्रयत्न किया किन्तु वह अपने जिद्द एवं व्यर्थ के अभिमान में अड़ा रहा और हीरे भी नहीं लिये।

नगरी में आने पर सभी साथी वणिकों ने हीरे रत्नों के मूल्य से अखूट धन सामग्री प्राप्त की और विशाल संपत्ति के मालिक बन कर अपार आनंद सुख चेन में अपना समय व्यतीत करने लगे। किन्तु लोह वणिक केवल लोहे के मूल्य जितना धन प्राप्त कर मकान संपत्ति आदि से पूर्ववत् बना रहा एवं उन साथियों के विशाल बंगले और ऋद्धि देख कर पश्चाताप के दुःख से संतप्त रहने लगा। वणिक होकर भी उस लोह वणिक ने हानि लाभ सत्यासत्य का विचार नहीं किया, पूर्वाग्रह में रह कर उसने पश्चाताप को प्राप्त किया। वैसे ही हे राजन्! तू बुद्धिमान होकर एवं सब कुछ समझ लेने के बाद भी सत्यासत्य के निर्णय पूर्वक सत्य स्वीकार करना नहीं चाहता है तो उस लोह वणिक के समान होगा।

कई लोग सामान्य बुद्धि भेड़ चाल प्रकृति के होते हैं तो रूढ़ियों को अपने पूर्वजों के नाम से चलाते रहते हैं उसे में वे अपना दिखावा वृत्ति एवं अहंभाव का पोषण करते हैं। किन्तु वास्तव में वे अत्यन्त निम्न दर्जे की बुद्धि वाले एवं प्रतिष्ठा हीन व्यक्ति होते हैं।,

राजा का परिवर्तन– केशी कुमार श्रमण के निर्भीक एवं सचोट वाक्यों ने तथा तर्क संगत दृष्टांतो ने उसके आग्रह पूर्ण विचारों में परिवर्तन ला दिया। चित्त सारथी का प्रयत्न एवं सूझ-बूझ सफल रही। राजा ने वंदना नमस्कार करके मुनि से निवेदन किया कि भंते! मैं ऐसा नहीं करूंगा कि लोह वणिक की तरह मुझे पश्चाताप करना पड़े। अब मैं आप से धर्म श्रवण करना चाहता हूं।

केशी श्रमण ने समयोचित धर्मोपदेश दिया। जिससे प्रदेशी राजा व्रतधारी श्रमणोपासक बन गया। दूसरे दिन अपने परिवार एवं संपूर्ण ऐश्वर्य सहित केशी श्रमण के दर्शनार्थ आया। पांच प्रकार के अभिगम सहित उनके अवग्रह में प्रवेश किया, विधि युक्त वंदन नमस्कार किया और पूर्व दिन में अपने द्वारा किए गए अविनय आशातना के लिए पूर्ण भक्ति भाव पूर्वक हार्दिक क्षमायाचना की। एवं उपदेश सुनने के लिए विशाल परिषद के साथ वहां केशी श्रमण के समक्ष बैठ गया। केशी श्रमण ने प्रदेशी राजा को एवं उसकी सूर्यकांता प्रमुख रानियों को एक विशाल परिषद को लक्ष्य कर उपदेश दिया। उपदेश सुनकर परिषद विसर्जित हुई।

केशी श्रमण ने प्रदेशी राजा को संबोधित कर कुछ भलावण रूप शिक्षा वचन कहे।

शिक्षा संकेत– हे प्रदेशी! जिस प्रकार उद्यान, इक्षु खेत, खलिहान और नृत्यशाला आदि कभी रमणीय होती है और कभी अरमणीय भी हो जाते हैं। वैसे तुम धर्म की अपेक्षा रमणीय बनकर पुनः अरमणीय मत बन जाना। केशी श्रमण के इस संकेत शिक्षा को स्वीकार करते हुए प्रदेशी राजा ने कहा भंते! मैं श्वेतांबिका प्रमुख सात हजार ग्राम नगरों को चार विभागों में विभक्त कर दूंगा।

1. राज्य व्यवस्था में, 2. भंडार में, 3. अंतःपुर के लिए, 4. दान-शाला के लिए। दान शाला की व्यवस्था के लिए सुंदर कूटाकार मकान एवं नौकर नियुक्त कर दूंगा इसमें सदा गरीबों को या अन्य याचकों भिक्षाचरों को भोजनादि की सुंदर व्यवस्था रहेगी। इसके अतिरिक्त मैं स्वयं भी व्रत पच्चक्खाण पौषध एवं धर्म जागरण करते हुए उत्तरोत्तर धर्माराधन में वृद्धि करूंगा।

इस प्रकार प्रदेशी ने द्रव्य एवं भाव से पूर्ण रूपेण जीवन परिवर्तित कर दिया। धर्माचरणों में ही उसकी रूचि केंद्रित हो गई। राज्य व्यवस्था में लगन कम हो गई। युवराज सूर्यकांत कुमार योग्य हो चुका था। वह राजकीय कार्य संभालने लगा।

भवितव्यता वश प्रदेशी का धर्मानुरक्त जीवन सूर्यकांता राणी देख न सकी। उसकी दृष्टि में राजा वासना विमुक्त धर्मानुरागी बन गया, ऐसा लगने लगा। उसके विचार विपरीत चलने लगे। यहां तक बढ़ गये कि राजा को जहर देकर मार देना चाहिए। इतनी अधीरता में वह अपने को रोक न सकी। अंतर के विचार बाहर रखने के लिए उसे स्वयं का पुत्र सूर्यकांत कुमार ही दिखा। अपने विचार उसके समक्ष रखे। सूर्यकांत कुमार ने ऐसे विचारों का आदर नहीं किया उपेक्षा कर दी। रानी का अधैर्य और बढ़ा कि कहीं कुमार राजा को न कह दे। मेरा रहस्य प्रकट न हो जाय।

अवसर देखकर शीघ्र ही उसने राजा को भोजन का निमंत्रण देकर उसके लिए विष मय आसन शय्या वस्त्र आभूषण एवं आहार एवं पदार्थ प्रदान किए। इनका भोग उपभोग करने पर राजा को बेचेनी होने लगी, विष का प्रभाव बढ़ने लगा, राजा को समझते देर न लगी। वह वहां से उठा, पूर्ण शांति और समभाव के साथ कर्मों का उदय एवं जीवन की भवितव्यता का विचार आगे रखते हुए सूर्यकांता रानी के प्रति किसी प्रकार का संकल्प न करते हुए पौषधशाला में चला गया।

घास के संथारे पर पल्यंकासन से आसीन होकर विधिवत भक्त प्रत्याख्यान संथारा किया। प्रदेशी श्रमणोपासक ने प्रथम णमोत्थुणं सिद्धों को और दूसरा णमोत्थुणं अपने धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्री केशीश्रमण को दिया और यह उच्चारण किया कि भंते! आप वहां रहे हुए भी मुझे यहां रहे हुए तो जानते हो मैं आपको यहीं से वंदन नमस्कार करता हूं।

विनय भक्ति के अनंतर अठारह पाप, चारों आहार का त्याग किया। फिर शरीर के ममत्व का भी त्याग कर, शरीर को पूर्ण रूपेण वोसिरा दिया। विष के परिणमन की वृद्धि होने पर घोर दुस्सह प्रगाढ़ वेदना प्रदेशी राजा के शरीर में उत्पन्न हुई, किन्तु वह परीक्षा की घड़ियों में पूर्ण समभाव समाधिभाव में स्थिर रहा। सूर्यकांता रानी के प्रति भी मन को पूर्ण प्रसन्न रखा। अल्प समय में ही आयुष्य समाप्त हो गया। राजा प्रदेशी धर्म का आराधक हुआ और सूर्याभदेव बना।

इस प्रकार अमावस से पूनम जैसे जीवन में आकर अर्थात् घोर अधर्मी जीवन को आदर्श धर्मी जीवन में बदलकर ही प्रदेशी राजा ने ऐसे दिव्य देवानुभाव और महान ऐश्वर्य को प्राप्त किया। देव भव की चार पल्योपम की उम्र पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, राज्य ऋद्धि का त्याग कर के बाल ब्रह्मचारी दृढ़ प्रतिज्ञ नामक श्रमण बनेगा। बहुत वर्ष केवली अवस्था में विचरण करेगा एवं अंतिम समय अनेक दिनों के संथारे से निर्वाण को प्राप्त करेगा, सदा सदा के लिए जन्म मरण के भवचक्र से मुक्त हो जायेगा। यह प्रदेशी राजा का जीवन वर्णन पूर्ण हुआ।

शिक्षा एवं ज्ञातव्य–

(1) **घृणा पाप से हो पापी से नहीं कभी लवलेश ।**
भूल सुझा कर सत्य मार्ग पे, करो यही यत्नेश। -यही है महावीर संदेश

चित्त सारथी एवं केशी श्रमण के अनुपम आदर्श ने एक दुराग्रही पापिष्ट मानव को जिसके कि हाथ खून से सने रहने की उपमा इस सूत्र में लगाई गई है उसे, एक बार की संगति एवं संवाद रूप विशद चर्चा ने महान् दृढधर्मी बना दिया।

(2) केशी श्रमण का उपदेश सूर्यकांता महारानी ने भी सुना था और वह राजा जितनी पापिष्ठ भी नहीं थी, राजा को भी अत्यंत प्रिय एवं ईष्ट थी। इसी कारण पुत्र का नाम भी माता के नाम पर सूर्यकांतकुमार रखा था। फिर भी राजा के किसी भव के निकाचित घोर कर्मों का उदय आ पहुंचने से रानी को ऐसी कुमति हुई। जीव अज्ञान दशा में उतावलपन में ऐसे कई अकार्य कर जाते हैं जिससे उनका लाभ कुछ भी नहीं होता है। फिर भी वे केवल अपने उठे हुए संकल्पों को पूर्ण करने में दत्तचित्त बन जाते हैं। यह भी जीव की एक अज्ञानदशा का पागलपन है। ऐसे कर्तव्य करने वाले यहां भी अपयश पाकर हानि में रहते हैं और आगे के भवों को बिगाड़ कर के दुख की परंपरा बढ़ाते हैं।

(3) धर्म की सही समझ हृदय में उतर जाने के बाद राजा हो या प्रधान, श्रावक के बारह व्रत धारण करने में कहीं भी बाधा नहीं आती है। अतः धर्म प्रेमी जो भी आत्माएं संयम स्वीकार नहीं कर सकती है उन्हें श्रावक व्रत धारण करने में किंचित भी आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, उपेक्षावृति, नहीं करनी चाहिए। हमारे सामने चित्त सारथी और राजा प्रदेशी का महान आदर्श उपस्थित है। एक (चित्त) तो अन्य राज्य में राज्य व्यवस्था के लिये गया था वहीं बारहव्रत धारी बना और दूसरा (राजा) अश्व परीक्षार्थ निकला हुआ भी मुनि सत्संग से उसी दिन बारह व्रतधारी श्रावक बना। आज के हमारे वर्षों के धर्मिष्ट लोग जो बारह व्रतधारी नहीं बन रहे हैं उन्हें इस सूत्र की स्वाध्याय से प्रेरणा पाकर अवश्य बारह व्रत धारण करने चाहिये। श्रावक व्रत धारण करने में बाधा डालने वाली मानसिक जिज्ञासाओं के समाधान के लिए पढें आगम सारांश का उपासक दशा सूत्र।

(4) आध्यात्म धर्म के साथ-साथ गृहस्थ जीवन में अनुकम्पादान एवं मानव सेवा का अनुपम स्थान है, यह भी इस सूत्र के अंतिम शिक्षा वचन प्रकरण में देखने को मिलता है। प्रदेशी श्रमणोपासक ने अपने धर्मगुरु धर्माचार्य श्री केशी श्रमण के '' रमणीक रहने की प्रेरणा '' के फल स्वरूप जो संकल्प प्रकट किया था, कथनी और करणी को एक साकार रूप दिया था, वह था आध्यात्म जीवन के साथ श्रमणोपासक की अनुकम्पा और मानव सेवा या जन सेवा भावना।

अनेकान्तवाद मय यह निर्ग्रन्थ प्रवचन एक चक्षु से नहीं चलता है, उभय चक्षु प्रवर्त्तक है। कई लोग धर्म का रूप केवल मानव सेवा ही ले लेते हैं, व्रत नियम बारह व्रत पौषध आदि की उपेक्षा करते हैं, वे भी एक चक्षु की कोटि में आकर निर्ग्रन्थ धर्म से दूर होते हैं एवं कई श्रावक आध्यात्म धर्म में अग्रसर होकर सम्पन्न होते हुए भी संकीर्ण दिल या संकीर्ण दायरे के बने रहते हैं, श्रमण या श्रमणभूत नहीं होते हुए भी एवं गृहस्थ धर्म में या संसार व्यवहार में रहते हुए भी दया, दान, मानव सेवा, जनसेवा, उदारता के भावों से उपेक्षित रहते हैं, उनकी गृहस्थ जीवन की साधना एक चक्षु भूत रहती है। इस कारण से कि वे छती-शक्ति (प्राप्ति संपत्ति से) धर्म की प्रभावना में सहायभूत नहीं बन सकते हैं।

इस प्रकार इस सूत्र के अंतिम प्रकरण से श्रावकों को उभय चक्षु बनने की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। अर्थात् आध्यात्म धर्म की साधना के साथ छती शक्ति अनुकम्पादान आदि की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

(5) श्रमण वर्ग को केशी श्रमण के इस चर्चा व्यवहार और दक्षता से अनुपम प्रेरणा लेनी चाहिए कि किस तरह दुराग्रही प्रश्नकर्ताओं को भी संतुष्ट किया जा सकता है। हृदय की एवं भावों की पवित्रता रखना ही इसमें अमोघ शक्ति रूप है। ऐसे प्रकरणों के बारंबार स्वाध्याय मनन करने से बुद्धि कौशल एवं तर्क शक्ति का विकास होता है।

(6) केवली ज्ञानी भगवंत भी अंतिम समय में बहुत दिनों का संथारा पच्चक्खाण सहित करते हैं यह भी प्रदेशी के भावी भव दृढप्रतिज्ञ के वर्णन से स्पष्ट होता है।

(7) कथा ग्रन्थों एवं व्याख्या ग्रन्थों में प्रदेशी श्रमणोपासक के बेले-बेले पारणा करके 40 दिन की श्रमणोपासक पर्याय में आराधक होने का वर्णन मिलता है। यह स्पष्टीकरण सूत्र में उपलब्ध नहीं है। 13वें बेले के पारणे में जहर देने का वृत्तांत कथा ग्रंथों में मिलता है।

(8) पाप कर्मों का उदय आने पर अपना गिना जाने वाला व्यक्ति भी वैरी बन जाता है। अतः संसार में किसी के साथ मोह प्रतिबंध करना योग्य नहीं है। बिना अपराध के प्राणघात कर देने वाले के प्रति भी द्वेष भाव लाने से स्वयं के तो कर्मों का बंध ही होता है और समभाव रख लेने पर अपना कुछ भी अहित नहीं होता है। इसी आभ्यंतर प्रेरणा वाक्यों से प्रदेशी ने अपना धर्म आराधन कर देव भव पाया एवं साथ ही सदा के लिए संसार भ्रमण से मुक्त होने का सर्टिफिकेट प्राप्त कर लिया। एक कवि के शब्दों में-

जहर दिया महाराणी, राजा परदेशी पी गया।
विघटन पाप का किया, रोष को निवारा है।
विपदाओं के माध्यम से, कर्मों का किनारा है।
डरना भी क्या कष्टों से, महापुरुषों का नारा है।।

(9) आत्मा आदि अरूपी तत्त्वों को श्रद्धा से समझना एवं स्वीकार करना चाहिए। प्रत्यक्ष का आग्रह सूक्ष्मतम तत्त्वों के लिए नहीं करना चाहिए। वैसे ही तर्क अगोचर अर्थात् तर्क के अविषय भूत कई विषयों को भी श्रद्धा से ही स्वीकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही परंपरा से प्राप्त कोई भी सिद्धांत या रूढियां हों किन्तु उसके विषय में वास्तविकता का बोध होने के बाद पूर्वजों की दुहाई देकर अपनी हेय वृत्तियों का पोषण नहीं करना चाहिए। चाहे वह कोई भी परंपरा हो, सिद्धांत का रूप ले चुका हो, आचार का विषय हो या किसी भी प्रकार का इतिहास का विषय हो, तो भी यदि असत्य, कल्पित, अनागमिक, असंगत है वैसी किसी भ्रम से चली बातों, तथ्यों, आचारों या परंपराओं का दुराग्रह नहीं रखना चाहिए और उसे रखने के लिए संबल रूप में पूर्वजों की दुहाई न देकर सत्य बुद्धि से निर्णय एवं परिवर्तन करने में नहीं हिचकना चाहिये। यह प्रेरणा केशी स्वामी ने प्रदेशी राजा को लोह वणिक का दृष्टांत देकर दी थी और प्रदेशी ने स्वीकार किया कि अब मैं ऐसा करूंगा जिससे मुझे लोह वाणिये के समान पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा।

(10) प्रदेशी राजा और चित्त सारथी के धार्मिक श्रमणोपासक जीवन के वर्णन में मुनि दर्शन, सेवाभक्ति, व्याख्यान श्रवण, पांच अभिगम, वंदन विधि (तिक्खुत्तो के पाठ मय), क्षेत्र स्पर्शने की आग्रह युक्त विनंति, साधु भाषा में स्वीकृति, श्रावक के बारह व्रत धारण, पौषध स्वीकार, श्रमण निर्ग्रन्थों के साथ व्यवहार, दूर क्षेत्रवर्ती श्रमणों को वंदन विधि, बगीचे में पधारने पर भी चित्त के द्वारा पहले तत्काल घर में वंदन विधि, प्रदेशी का संथारा ग्रहण एवं उस समय भी सिद्धों को एवं गुरु को वंदन, स्वयं ही संथारा ग्रहण करना आदि धार्मिक कृत्यों का वर्णन किया गया है। यह श्रावक जीवन के श्रेष्ठ आचारों का संकलन है। साथ ही जन सेवा की भावनामय राज्य आवक का चौथा भाग दानशाला के लिए लगाने रूप आचार का वर्णन भी धार्मिक जीवन के अंग में कहा गया है।

उपांग सूत्र

निरयावलिका पंचक

सूत्र परिचय-

यह आगम बारह अंग सूत्रों से अतिरिक्त अंग बाह्य कालिक सूत्र है। इस सूत्र का नाम **''उपांग सूत्र''** है ऐसा इसकी प्रारम्भिक उत्थानिका के पाठ से स्पष्ट सिद्ध होता है। फिर भी काल के दोष से इसका नाम **''निरयावलिका''** प्रसिद्ध हो चला है, साथ ही इस एक सूत्र को पांच सूत्र भी मान लिया गया है।

वास्तव में यह **''उपांग-सूत्र''** नामक आगम है। इसकी रचना कब हुई, किसने की, यह अज्ञात है। फिर भी इसके रचनाकार पूर्वधर बहुश्रुत है, यह निःसंदेह है। क्योंकि नंदी सूत्र की आगम सूची में इसका उल्लेख हुआ है।

इस **''उपांग सूत्र''** नामक इस आगम में एक श्रुतस्कंध है। पांच इसके वर्ग हैं एवं पांचों वर्गों के कुल बावन अध्ययन है।

पांच वर्गों के नाम का स्पष्टीकरण करते हुए प्रारम्भ की उत्थानिका में उनके जो नाम कहे गये हैं उसी नाम के काल दोष से सूत्र कहे जाने और लिखे जाने लगे हैं और उसी कथन परम्परा का प्रभाव लिपिकाल में इस सूत्र के अन्तिम प्रशस्ति वाक्य में और नंदी सूत्र में भी पड़ा है।

फिर भी ये पांच वर्ग है यह आगम सम्मत और सर्वमान्य तत्त्व है। वर्ग किसी एक सूत्र के होते हैं। उन्हें स्वतंत्र सूत्र का कहना और मानना अविचारकता है।

अतः यह उपांग सूत्र नामक एक ही आगम है, निरयावलिका आदि, पांच इसके वर्ग हैं, यह ध्रुव सत्य है।

इसका दूसरा वर्ग केवल चालीस श्लोक प्रमाण लगभग ही है उसे भी स्वतंत्र एक सूत्र मानना भी कोई विवेक युक्त नहीं कहा जा सकता।

प्रामाणिक अनुभव के लिए कोई भी सूज्ञ इस सूत्र के प्रारम्भिक मूल पाठ को देख सकते हैं। इसमें अंतगड सूत्र के प्रारम्भिक पाठ के समान ही पाठ है। जिस तरह अंतगड दशा में पृच्छा करके आठ वर्ग कहे हैं उसी प्रकार यहाँ उपांग सूत्र की पृच्छा करके इसके पांच वर्ग कहे हैं। इसलिये वर्गों को ही सूत्र मानने की परम्परा काल दोष से चली है या कभी किसी के द्वारा चलाई गई है किन्तु इस परम्परा को विचार-पूर्ण और सत्य नहीं कहा जा सकता।

सार- निरयावलिका पंचक यह एक सूत्र ही है इसका वास्तविक नाम **''उपांग सूत्र''** है और अंतगड़ सूत्र के आठ वर्गों एवं नब्बे अध्ययनों के समान ही निरयावलिका आदि के इसके 5 वर्ग है तथा बावन अध्ययन है।

इस सूत्र का विषय कथा प्रधान एवं घटना प्रधान है। कथाओं के माध्यम से इहलोक-परलोक, नरक-स्वर्ग, कर्म आदि सिद्धांतों का, सांसारिक मोह दशा और दुर्गति, वैराग्य और मुक्ति, राजनीति एवं तत्कालीन ऐतिहासिक तत्त्वों का भी प्ररूपण किया गया है।

इस सूत्र सम्बन्धी विस्तृत परिचय के लिए आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित निरयावलिका सूत्र की श्रद्धेय उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री द्वारा संपादित प्रस्तावना का अध्ययन करना चाहिए।

प्रथम वर्ग- निरयावलिका (कप्पिया)-

इस वर्ग में दस अध्ययन हैं जिसमें 10 जीवों के नरक में जाने का वर्णन है। इस कारण इस वर्ग का नाम निरयावलिका है।

कथा वर्णन-

प्राचीन काल में राजगृही नाम की नगरी थी। वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा के चेलणा राणी थी तथा नन्दा आदि तेरह और काली आदि दस यों अनेक राणियां थीं।

चेलणा राणी के कोणिक, वेहल्ल कुमार आदि पुत्र थे। नन्दा राणी के अभयकुमार नामक पुत्र था और काली आदि दस राणियों के कालकुमार आदि दस पुत्र थे।

कोणिक का जन्म-

एक समय चेलना राणी ने रात्रि में सिंह का स्वप्न देखा। जागृत होकर राजा से निवेदन किया। राजा ने स्वप्न पाठकों से पूछ कर निर्णय लिया कि कोई तेजस्वी जीव गर्भ में आया है।

गर्भकाल के तीन महिने बीतने पर चेलना राणी को उस गर्भ के प्रभाव से श्रेणिक राजा के कलेजे का मांस खाने का दोहद (संकल्प) उत्पन्न हुआ। राजा श्रेणिक ने अभयकुमार के बुद्धिबल के सहयोग से राणी के दोहद को पूर्ण किया।

इस दुष्कृत्य से चिंतित होकर राणी ने गर्भ को नष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये। किन्तु वे सब निष्फल रहे। गर्भ काल के नौ महिने पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। राणी ने दासी के द्वारा उसे उकरड़ी पर फिंकवा दिया। वहां कूकड़े की चोंच लगने से बालक की एक अंगुली में घाव हो गया और उससे खून बहने लगा। राजा श्रेणिक को इस घटना की जानकारी मिली तो वह तत्काल वहां गया बालक को अपने हाथों में लेकर आया और चेलणा राणी को आक्रोश भरे शब्दों में उपालंभ देते हुए उस बालक की सार संभाल करने का आदेश दिया। बारहवें दिन उस राजकुमार का नाम कूणिक, (कोणिक) रखा गया। कालांतर से युवावस्था में कूणिककुमार का पद्मावती आदि आठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण (विवाह) हुआ।

चेलना राणी के विहल्लकुमार नामक पुत्र भी हुआ जिसे श्रेणिक राजा ने कभी प्रसन्न होकर सेंचनक हाथी और अठारह लड़ा हार दिया।

श्रेणिक के अशुभ दिन-

काली आदि राणियों के भी कालकुमार आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार कूणिक ने कालकुमार आदि दसों भाईयों के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा कि" श्रेणिक राजा को बांधकर जेल में डाल दें और राज्य के ग्यारह विभाग कर हम

स्वयं राज्य लक्ष्मी का अनुभव करें।'' कालकुमार आदि ने उसे स्वीकार किया एवं मौका देखकर कभी उन्होंने श्रेणिक राजा को बांध कर जेल में रख दिया। इस प्रकार कोणिक स्वतः राजा बन गया।

तदनन्तर कोणिक राजा चेलना माता के पास चरण स्पर्श करने के लिए आया। माता ने अप्रसन्नता दिखाई एवं कारण पूछने पर कोणिक के जन्म की विस्तृत घटना बताते हुए कहा कि पिता का तुम्हारे ऊपर अपार स्नेह था यहां तक कि उन्होंने तुम्हारी अंगुली के खून को मुंह से चूस कर तुम्हारी अपार वेदना को शांत किया था। हे पुत्र! ऐसे परम उपकारी-स्नेही पिता को बांधकर राज्य प्राप्त करना अच्छा नहीं है।

माता से पूर्व वृत्तान्त सुनकर कोणिक को अपनी गलती का खेद हुआ और स्वयं पिता को बन्धन मुक्त करने के लिए कुल्हाड़ी लेकर चला। श्रेणिक ने उसे कुल्हाड़ी लेकर आते हुए देखकर सोचा कि यह मुझे मारने के लिए आ रहा है। पुत्र के हाथ से मरने की अपेक्षा स्वयं ही मर जाना चाहिए, ऐसा सोचकर तालपुट विष मुख में रखकर प्राणांत कर लिया।

कोणिक इस घटना से बहुत शोकाकुल हुआ और अन्त में मन न लगने से उसने उस राजगृही नगरी को छोड़ दिया एवं चम्पानगरी में सपरिवार रहने लगा। उसने राज्य के ग्यारह विभाग किये। काल कुमार आदि दसों भाई और कोणिक राजा अब राज्य श्री का अनुभव करते हुए रहने लगे।

हार हाथी के लिए नर संहार– कोणिक का सगा भाई विहल्लकुमार अपनी राणियों के परिवार सहित हार और हाथी के द्वारा अनेक प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हुए चम्पा नगरी में रहता था।

एक बार कोणिक राजा की पद्मावती राणी ने कोणिक से कहा कि हार और हाथी तो आपके पास होना चाहिये। राणी के अत्यन्त आग्रह से कोणिक ने अपने सगे भाई से हार और हाथी मांगे। विहल्लकुमार ने उसके बदले में आधा राज्य मांगा। कोणिक ने उसे अस्वीकार कर दिया एवं बारम्बार हार और हाथी लेने के लिए आग्रह करता रहा।

इस स्थिति में विहल्लकुमार ने परिवार सहित अपने नाना (चेड़ा) चेटक राजा के पास वैशाली नगरी जाने का विचार किया और कभी मौका देखकर वहां से निकल पड़ा। नाना के पास पहुंच कर उनके सामने सारी स्थिति रख दी।

चेड़ा राजा चेटक अठारह गण राजाओं का प्रमुख था। उन सबसे मंत्रणा की जिसमें शरणागत की रक्षा करना सभी ने स्वीकार किया। कोणिक ने हार और हाथी का आग्रह नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई।

राजा चेटक भगवान महावीर का परम उपासक था। उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण कर रखे थे और उसका यह विशेष नियम भी था कि- मैं एक दिन में एक से अधिक बाण नहीं चलाऊंगा। उसका बाण अमोघ था, कभी भी निष्फल नहीं जाता था। कालकुमार आदि दसों भाई कोणिक के साथ युद्ध में आए। युद्ध प्रारंभ हुआ। दस दिन में कालकुमार आदि दसों भाई सेनापति बनकर युद्ध में आये और चेटक राजा के अमोघ बाण से मारे गये एवं उस युद्ध में अन्य लाखों मनुष्य मारे गये।

माताओं को मुक्ति– भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए चम्पानगरी में पधारे। कालकुमार आदि दसों की माताएं भगवान के दर्शन करने गई। उपदेश सुनने के बाद वे एक के बाद एक सभी यही प्रश्न करती हैं कि मेरा पुत्र कोणिक के साथ युद्ध करने गया है, हे भगवान ! मैं उसे जीवित देख सकूंगी?

प्रत्युत्तर में भगवान ने सभी को कहा तुम्हारा पुत्र चेड़ा राजा के हाथों से मारा गया है इसलिए अब तुम अपने पुत्र को जीवित नहीं देख सकोगी। तदनन्तर वैराग्य भावना से भावित होकर दसों रानियों ने दीक्षा अंगीकार की एवं उसी भव में सम्पूर्ण कर्म क्षय कर शिव पद को प्राप्त किया। (अंतकृत)

कालकुमारादि का भविष्य- गौतम स्वामी प्रश्न करते हैं कि भन्ते! कालकुमार युद्ध में मृत्यु को प्राप्त कर कहां उत्पन्न हुआ? उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि कालकुमार युद्ध में मरकर चैथी नरक में उत्पन्न हुआ। दस सागरोपम की स्थिति नरक में पूर्ण कर फिर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा। वहां संयम स्वीकार करके सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करेगा। इसी प्रकार दसों ही भाई युद्ध में काल करके चैथी नरक में गये और फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर संयम अंगीकार कर सम्पूर्ण कर्म क्षय करके सिद्ध होंगे।

सार- (1) मानव सोचता कुछ और है होता कुछ और है। इसलिए अनैतिक और अनावश्यक चिंतन कभी भी नहीं करना चाहिए। (2) माता के चरण स्पर्श करने जाने के निमित्त से कोणिक की चिंतन दशा में परिवर्तन आ गया। (3) अभयकुमार ने अपने बुद्धि कौशल से असम्भव जैसे कार्य को भी सम्भव कर दिखाया। (4) अतिलोभ का परिणाम शून्य में आता है- न हार मिला न हाथी और भाई मराये दस साथी। (5) स्त्रियों की तुच्छ बुद्धि का हठ मानव को महान गर्त्त में डाल देता है अतः मनुष्य को ऐसे समय में स्वयं की बुद्धि से गंभीरतापूर्वक हानि-लाभ एवं भविष्य का विचार करके स्वतन्त्र निर्णय लेना चाहिए। (6) युद्ध में या लड़ाई झगड़ों में आत्म परिणामों की क्रूरता होती है। अतः उस अवस्था में मरने वालों की अधिकतर नरक गति ही होती है। (7) चेलना राणी ने बिना मन के भी पति की आज्ञा से कोणिक का पालन पोषण किया। (8) ''पूज्य पिता से लड़ता लोभी, भाई की हत्या करता। लोभ पाप का बाप न करता परवाह अत्याचार की''कविता की इस कड़ियों को उक्त घटना में साकार रूप देखा जा सकता है। यह जानकर लोभ संज्ञा का निग्रह करना चाहिये।

यह **''उपांग सूत्र''** का निरयावलिका नामक प्रथम वर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा वर्ग- कल्पावंतसिका-

इस वर्ग में दस अध्ययन है जिसमें दस जीवों का देवलोक के विमानों में जाने का वर्णन है इसलिए इस वर्ग का नाम कल्पावतंसिका रखा गया है।

प्रथम अध्ययन पद्मकुमार- प्राचीन काल में चम्पानगरी में कोणिक राजा राज्य करता था। वहां श्रेणिक राजा की भार्या कोणिक की विमाता काली नामक राणी थी। उसके कालकुमार नामक पुत्र था जिसका पद्मावती के साथ विवाह हुआ। एक बार पद्मावती ने रात्रि में सिंह का स्वप्न देखा। कालान्तर से उसके पुत्र का जन्म हुआ उसका नाम **''पद्मकुमार''** रखा गया। तरुणावस्था में आठ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ एवं मानुषिक सुखों का उपभोग करता हुआ वह समय व्यतीत करने लगा।

एक बार उस चम्पानगरी में भगवान महावीर स्वामी पधारे। पद्मकुमार भी दर्शन वंदन करने के लिए गया। वहां धर्म देशना सुनी। भगवान की वैराग्य सिंचित वाणी से उसे मानव जीवन की क्षण भंगुरता का बोध हुआ। क्षणिक भोग-सुखों का

दारूण परिणाम, एवं मनुष्य भव का महत्व उसे समझ में आ गया। अब वह मनुष्य भव को आत्म साधना का अनुपम अवसर समझने लगा।

उपदेश सुनकर उसने भगवान के सम्मुख अपनी संयम लेने की भावना प्रकट की एवं पारिवारिक जनों से आज्ञा लेकर दीक्षित हुआ।

दीक्षा लेकर पद्ममुनि ने ग्यारह अंग सूत्रों का ज्ञान कण्ठस्थ किया। साथ ही अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा शरीर को एवं कर्मों को कृश किया। उसने पांच वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया और एक महिने के संथारे से पहले देवलोक में उत्पन्न हुआ।

वहां से वह दो सागरोपम की आयु पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा एवं यथा समय संयम ग्रहण करके संपूर्ण कर्मों का क्षय कर मुक्त हो जायेगा।

इसी प्रकार महापद्मकुमार आदि शेष नौ का वर्णन है।

पूर्व अध्ययन में वर्णित कालकुमार आदि दसों भाईयों के ये दस पुत्र थे। श्रेणिक राजा के पौत्र और कोणिक के भतीजे थे।

इन दसों ने क्रमशः (1) पांच, (2) पांच, (3) चार, (4) चार, (5) चार, (6) तीन, (7) तीन (8) तीन, (9) दो, (10) दो वर्ष की दीक्षा पाली और एक महिने का संथारा किया।

ये दसों नवें और ग्यारहवें देवलोक को छोड़कर क्रम से पहले देवलोक से लेकर बारहवें देवलोक तक उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न हुए।

इन दसों के पिता नरक में गये और इनकी दस दादियां (काली, सुकाली आदि) भगवान के पास संयम स्वीकार कर उसी भव में मोक्ष में गई।

सार- एक परिवार के जीवों की अपने-अपने कर्तव्यों के अनुसार गति होती है। यथा-पिता को नरक, पुत्रों को स्वर्ग, (अभयकुमारादि) माताओं को मोक्ष और पुत्रों को नरक। (कालकुमारादि)

वास्तव में पुण्यवान और भाग्यशाली जीव वही होते हैं, जो मिली हुई पुण्य भोग सामग्री में अन्त तक नहीं फंसे रहते हैं। किन्तु उनका स्वेच्छा से त्याग कर मनुष्य जीवन के अमूल्य क्षणों को आत्म साधना में लगा देते हैं। मोक्षप्रदायी इस मानव भव में एक दिन धन सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, परिवार और इन्द्रिय सुखों के ममत्व का स्वयं ही त्याग कर देते हैं, गुस्सा, घमण्ड, लोभ आदि कषायों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और जीवन में पूर्ण सरल नम्र और शांत बन कर संयम तप की आराधना में लग जाते हैं। उन्हें ही सच्चे बुद्धिमान समझना चाहिए।

जीवन के अन्तिम क्षणों तक जो धन परिवार और संसार के सुखों में फंसे रहते हैं, गुस्सा, घमण्ड और लोभ लालच से मुक्त होकर शांत सरल नहीं बनते हैं। वे आगम की भाषा में "**बाल**" (अज्ञानी) जीव कहे जाते हैं और सरल सामान्य भाषा में वे मूर्ख हैं। क्योंकि प्राप्त मनुष्य भव रुपी पूंजी को गंवाकर वे नरक तिर्यंच गति के दुःखों के मेहमान बन जाते हैं।

इसीलिए प्रत्येक मानव अनमोल मनुष्य जीवन को प्राप्तकर आलस्य और अन्य कारणों को हटाकर संयम, व्रत एवं त्याग, धर्म में अवश्य ही प्रयत्न कर लेना चाहिए।

तीसरा वर्ग- पुष्पिका- दो वर्गों में केवल श्रेणिक राजा के परिवार के जीवों का वर्णन है किन्तु इस तीसरे वर्ग के 10 अध्ययनों में विभिन्न दस जीवों का वर्णन है इसलिए इसका नाम पुष्पिका रखा गया है।

प्रथम अध्ययन चन्द्र-देव का पूर्व भव- श्रावस्ति नगरी में अंगजीत नामक संपन्न वणिक रहता था। अनेक लोगों का वह आलंबन भूत, आधार भूत और चक्षुभूत था अर्थात् अनेकों लोगों का वह मार्ग दर्शक अग्रसर था।

एक बार वहां पार्श्वनाथ भगवान विचरण करते हुए पधारे। अंगजीत सेठ दर्शन करने गया भगवान की देशना सुनी। संसार से विरक्त हुआ। पुत्र को कुटुम्ब का भार संभला कर स्वयं भगवान के पास दीक्षित हो गया।

उसने ग्याहर अंगों का ज्ञान कंठस्थ किया। अनेक प्रकार की तपस्याएं की। 15 दिन के संथारे में काल करके चंद्र विमान में इंद्र रूप में उत्पन्न हुआ। संयम की आराधना में कुछ कमी होने से वह संयम का विराधक हुआ।

चन्द्र-देव का मनुष्य लोक में आगमन- चन्द्र देव ने दैविक सुख भोगते हुए कभी अवधिज्ञान के उपयोग से जम्बूद्वीप के इस भरत क्षेत्र में विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी को देखा। फिर सपरिवार भगवान के दर्शन वंदन करने के लिए आया एवं जाते समय 32 प्रकार की नाट्य विधि का एवं अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन किया। उसके जाने के बाद गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसके पूर्व भव का कथन किया। वर्तमान में जो चन्द्र विमान दिखता है, उसमें अंगजीत का जीव इन्द्र रूप में देव है, उसके चार अग्रमहिषी देवियां हैं, 16000 आत्म रक्षक देव आदि विशाल परिवार है।

वैज्ञानिक भ्रम- आज के वैज्ञानिक इस चन्द्र विमान में नहीं पहुंच कर अपनी कल्पनानुसार अन्यान्य पर्वतीय स्थानों में ही भ्रमण कर रहे हैं। क्योंकि ज्योतिष-राज चन्द्र का विमान रत्नों से निर्मित एवं अनेक देवों से सुरक्षित है। जबकि वैज्ञानिकों को अपने कल्पित स्थान में मिट्टी पत्थर के सिवाय कुछ भी नहीं मिलता है।

अंगजीत मुनि ने संयम जीवन में क्या विराधना की, इसका स्पष्ट उल्लेख सूत्र में नहीं है किंतु विराधना करने का संकेत मात्र है।

दूसरा अध्ययन- सूर्य देव का पूर्व भव- श्रावस्ति नगरी के अन्दर सुप्रतिष्ठित नामक वणिक रहता था इसका पूरा वर्णन अंगजीत के समान है। अर्थात् सांसारिक ऋद्धि, संयम ग्रहण, ज्ञान, तप, संलेखना, संयम की विराधना आदि प्रथम अध्ययन के समान ही है। पार्श्वनाथ भगवान के पास दीक्षा अंगीकार की और ज्योतिषेन्द्र सूर्य देव हुआ। चन्द्र के समान यह भी एक बार भगवान महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित हुआ एवं अपनी ऋद्धि और नाट्य विधि का प्रदर्शन किया।

ये चन्द्र और सूर्य दोनों ही ज्योतिषेन्द्र महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे ओर वहां यथासमय तप सयंम का पालन कर संपूर्ण कर्म क्षय करके शिव गति को प्राप्त करेंगे।

वैज्ञानिक सूर्य के रत्नों के विमान को आग का गोला समझते हैं यह मात्र उनकी कल्पना का भ्रम है। जैन सिद्धांत में इसे रत्नों का विमान बताया है, यहां ज्योतिषेन्द्र सूर्य देव के सम्पूर्ण परिवार का निवास स्थान एवं जन्म स्थान है। इसमें हजारों देव-देवियां उत्पन्न होते हैं, निवास करते हैं। यह जम्बू द्वीप में भ्रमण करने वाला सूर्य विमान है। ऐसे दो विमान सूर्य

के और दो चन्द्र के जम्बू द्वीप में भ्रमण करते हैं। पूरे मनुष्य क्षेत्र में 132 चन्द्र विमान और 132 सूर्य विमान भ्रमण करते हैं। मनुष्य क्षेत्र के बाहर असंख्य चन्द्र और असंख्य सूर्य विमान अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं।

तीसरा अध्ययन–

शुक्र महाग्रह का पूर्व भव– वाराणसी नामक प्रसिद्ध नगरी में सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था। वह चारों वेदों का एवं अनेक शास्त्रों का ज्ञाता था एवं उसमें पूर्ण निष्णात था।

एक बार उस नगरी में पार्श्वनाथ भगवान का पधारना हुआ। सोमिल ब्राह्मण को ज्ञात होने पर वह अनेक प्रश्नों को लेकर भगवान की सेवा में पहुंचा। प्रश्नों का समाधान पाकर संतुष्ट हुआ एवं श्रावक धर्म स्वीकार किया।

साधुओं की संगति की कमी के कारण किसी समय वह सोमिल धर्म भावना में शिथिल हो गया एवं उसे अनेक प्रकार के बगीचे लगाने की भावना हुई उसने अनेक आम्र आदि फलों एवं विविध फूलों के बगीचे लगाए।

कालांतर में उसने दिशा प्रोक्षिक तापस की प्रव्रज्या अंगीकार की। उसमें वह बेले-बेले पारणा करता था और पारणे में स्नान, हवन आदि क्रियाएं करके फिर आहार करता था।

प्रथम पारणे में वह पूर्व दिशा में जाता और उस दिशा के स्वामी देव की पूजा करके आज्ञा लेकर कंदादि ग्रहण करता है। दूसरे पारणे में दक्षिण दिशा में, तीसरे पारणे में पश्चिम और चैथे पारणे में उत्तर दिशा में जाता है। इस प्रकार तापस दीक्षा का और तपस्या का आचरण करता है।

तापसी दीक्षा का पालन करते हुए उसे संलेखना करने का संकल्प हुआ। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं उत्तर दिशा में चलते-चलते जहां भी गिर जाऊंगा वहां से नहीं उठुंगा। पहले दिन उत्तर दिशा में चलता है एवं शाम को किसी भी योग्य स्थान में अपने विधि विधान करके काष्ट मुद्रा से मुख बांध कर मौन धारण कर ध्यान में बैठ जाता है।

रात्रि में एक देव वहां प्रगट होता है और कहता है कि हे सोमिल! यह तेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है। अर्थात् यह तेरा आचरण सही नहीं है गलत है। सोमिल ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। देव चला गया।

दूसरे दिन फिर वह काष्ट मुद्रा बांध कर उत्तर दिशा में चला। शाम को योग्य स्थान में ठहरा। रात्रि में फिर देव आया, उसी प्रकार बोला। सोमिल के कुछ भी ध्यान न देने पर देव चला गया।

तीसरे दिन अपने भण्डोपकरण लेकर काष्ट मुद्रा से मुंह बांधकर फिर उत्तर दिशा में चला, योग्य स्थान में ठहरा, रात्रि में देव आया, बोला एवं सोमिल के उपेक्षा करने पर चला गया। इसी प्रकार चैथा दिन भी बीत गया।

पांचवें दिन देव के पुनः आने एवं बार-बार कहने पर सोमिल ने पूछ लिया कि हे देवानुप्रिय! मेरी दीक्षा गलत क्यों है?

उत्तर में देव ने कहा कि तुमने पार्श्वनाथ भगवान के समीप श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किए थे। उन्हें छोड़ दिया और यह तापसी दीक्षा पालन कर रहे हो, यह ठीक नहीं किया है। पुनः सोमिल ने पूछा कि अब मेरा आचरण सुन्दर कैसे हो सकता है? देव ने पुनः श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करने की प्रेरणा की और चला गया।

तब सोमिल ब्राह्मण ने स्वयं पुनः बारह व्रत स्वीकार किए एवं उपवास से लेकर मासखमण तक की तपस्याएं की। अनेक वर्ष श्रावक व्रत का पालन कर पन्द्रह दिन के संथारे से काल करके शुक्रावतंसक विमान में शुक्र महाग्रह के रूप में देव हुआ।

किसी समय यह शुक्र महाग्रह देव भी भगवान महावीर की सेवा में आया। दर्शन वंदन करके अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन करके चला गया।

व्रत भंग एवं तापसी दीक्षा स्वीकार करने की आलोचना प्रतिक्रमण न करने से वह विराधक हुआ। देव भव की आयु पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर आत्म कल्याण करेगा।

चौथा अध्ययन-बहु पुत्रिका देवी- वाराणसी नाम की नगरी में भद्र नामक सार्थवाह रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। वह वन्ध्या थी। पुत्र नहीं होने के दुःख से वह अत्यन्त चिंतित एवं दुःखी थी।

एक बार सुव्रता आर्या की शिष्याएं उसके घर गोचरी के लिए पहुंची। उन्हें आहार पानी बहरा कर सुभद्रा ने साध्वियों से संतानोत्पति के लिए विद्या, मंत्र, औषधि आदि के लिए निवेदन किया। साध्वियों ने कहा कि इस सम्बन्ध में कुछ भी बताना हमारे नियम के विपरीत है। तदनंतर साध्वियों ने योग्य अवसर जानकर उसे संक्षेप में निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दिया। उपेदश सुनकर वह श्रमणोपासिका बनी।

कुछ समय बाद उसने संयम भी स्वीकार किया। किन्तु पुत्र न होने के कारण बालक-बालिकाओं पर उसका स्नेह बढ़ने लगा और संयम मर्यादा का उल्लंघन कर वह बालक-बालिकाओं के साथ स्नेह, क्रीड़ा, श्रृंगार, सुश्रुषा आदि प्रवृत्तियां करने लगी।

गुरुणी के द्वारा एवं अन्य आर्याओं के द्वारा निषेध करने या समझाने पर भी उपेक्षा करके वह अन्य स्थान (उपाश्रय) में जाकर रहने लगी और स्वच्छंदता पूर्वक स्नेह प्रवृत्तियां करने लगी। संयम तप का पालन करते हुए पन्द्रह दिन का संथारा करके उक्त दूषित प्रवृत्तियों की आलोचना शुद्धि किये बिना विराधक होकर वह प्रथम देवलोक में देवी रूप में उत्पन्न हुई।

वहां वह जब भी इन्द्र सभा में जाती है तब बहुत से बालक-बालिकाओं की विकुर्वणा करके सभा का मनोरंजन करती है। इसलिए वहां वह बहु पुत्रिका देवी के नाम से पुकारी जाती हैं। एक बार वह राजगृह नगर में भगवान महावीर के समवसरण में आकर अपनी दोनों भुजाओं में से क्रमशः एक सौ आठ बालक एक सौ आठ बालिकाएं निकालती है और भी अनेक बालक वैक्रिय शक्ति से निकाल कर नाटक दिखाते हुए अपनी शक्ति और ऋद्धि का प्रदर्शन कर पुनः अपनी माया को समेट कर चली जाती है।

गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान उसका पूर्व भव फरमाते हैं और दृष्टांत देकर समझाते हैं कि जैसे एक विशाल भवन में से हजारों व्यक्ति बाहर निकलते हैं और पुनः उसमें प्रवेश कर जाते उसी प्रकार सारे रूप उसके शरीर में समाविष्ट हो जाते हैं।

वह देवी वहां से आयु पूर्ण होने पर एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न होगी। उसका नाम **''सोमा''** रखा जायेगा। योवन अवस्था में माता-पिता अपने भाणेज राष्ट्रकूट के साथ उसका विवाह करेंगे। वहां उसके एक एक वर्ष में एक युगल पुत्र

जन्मेंगे। यों सोलह वर्ष में 32 बालकों को जन्म देगी। इतने बालकों की सेवा परिचर्या करते हुए वह परेशान होगी तथा उनमें से कई नाचेंगे, कूदेंगे, रोएंगे, हसेंगे, एक दूसरे को मारेंगे, पीटेंगे, भोजन के लिए एक दूसरे पर झपटेंगे, उस सोमा के शरीर पर कोई वमन करेगा, कोई मलमूत्र करेगा, इस प्रकार पुत्रों से दुखी होकर वह सोचेगी कि इससे वंध्या होना ही श्रेष्ठ है। मैं तो इन बच्चों से परेशान हूं।

किसी एक समय गोचरी के लिए आई हुई साध्वियों से अपना दुख निवेदन करेगी एवं धर्म श्रवण कर दीक्षित होना चाहेगी किन्तु पति की अत्यधिक प्रेरणा होने से वह साध्वियों के पास जाकर श्रमणोपासिका बनेगी एवं कालांतर से संयम ग्रहण कर ग्यारह अंगों का ज्ञान कण्ठस्थ करेगी और शुद्ध आराधना करके मास खमण के संथारे से काल करके प्रथम देव लोक में इन्द्र के सामानिक देव रूप में उत्पन्न होगी। वहां की आयु पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर संयम तप की आराधना करेगी तथा सम्पूर्ण कर्मो को नष्ट कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगी।

सार– मानव अप्राप्त भौतिक चीजों की चाहना करके दुखी होता रहता है। इन भौतिक चीजों में कहीं भी वास्तविक सुख नहीं है। संसार में कोइ बहु परिवार से दुखी होता है, कोई बिना परिवार के दुखी होता है, कोई सम्पत्ति के अभाव में दुखी है तो कोई विशाल सम्पत्ति के कारण शान्ति से नहीं रह सकता है।

सहज प्राप्त स्थिति में संतोष रख कर प्रसन्न रहने पर ही शांति सुख एवं आत्म आनंद की प्राप्ति होती है। अंत में त्याग और धर्म ही आत्मा को संसार प्रपंच से मुक्त कर सकता है। यह जानकर प्रत्येक मानव को धर्म, संयम, त्यागमार्ग में अग्रसर होने का संकल्प रखना चाहिए। साथ ही प्रयत्न पूर्वक शीघ्र ही अपनी परिस्थितियों को पार कर इच्छाओं पर काबू रखकर आत्म कल्याण के श्रेष्ठ मार्ग को पूर्ण रूपेण स्वीकार कर लेना चाहिए। यही आगम ज्ञान एवं श्रद्धान का सार है।

जो श्रद्धालु जन साधु साध्वियों से अपनी सांसारिक उलझनों को मिटाने की आशा से यंत्र, मंत्र, औषध-भेषज की आशा रखते हैं उन्हें उक्त अध्ययन के वर्णन से शिक्षा लेनी चाहिए कि ऐसी प्रवृत्तियां साधु के आचार से विपरीत है। वीतराग भगवान के शासन के साधु-साध्वियां केवल आत्म कल्याण के मार्ग का, श्रमण धर्म एवं गृहस्थ धर्म का तथा त्याग तप का उपदेश ही दे सकते हैं। अन्य लौकिक कृत्यों में वे भाग नहीं ले सकते।

पांचवां अध्ययन– पूर्णभद्र– इस जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में मणिपदिका नामक नगरी थी। वहां पूर्णभद्र नामक सेठ रहता था। उसने बहुश्रुत स्थविर भगवन्तों से धर्मोपदेश सुनकर संयम अंगीकार किया। ग्यारह अंगों का ज्ञान कण्ठस्थ किया। उपवास से लेकर मासखमण तक की तपस्याओं से कर्मों की निर्जरा करते हुए अनेक वर्षों तक संयम पर्याय का पालन किया।

एक मासखमण के संथारे से आराधक होकर सौधर्म (प्रथम) देवलोक में पूर्णभद्र नामक देव हुआ। किसी समय उस देव ने भगवान महावीर के समीप दर्शन वंदन के लिए आकर बत्तीस प्रकार के नाटक के द्वारा अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन किया। गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसके पूर्व भव का कथन किया। और यह भी बताया कि देवलोक से दो सागरोपम की आयु पूर्ण होने पर वह पूर्णभद्र देव महाविदेह क्षेत्र में सर्व कर्म क्षय कर मुक्त होगा।

यह पांचवां अध्ययन सम्पूर्ण हुआ।

छठ अध्ययन में पूर्णभद्र के समान ही सम्पूर्ण वर्णन मणिभद्र का है। दोनों की नगरी भी एक ही थी। दीक्षा, अध्ययन, तप, देवलोक की स्थिति, महाविदेह में दीक्षा और मोक्ष तक सभी वर्णन सरीखा है।

इसी प्रकार 7.दत्त, 8.शिव, 9-बल, 10-अनादृत का वर्णन पांचवें अध्ययन के समान है। ये सभी दो सागरोपम की स्थिति में प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुए। फिर महाविदेह में जन्म लेकर तप संयम का आचरण कर सभी शिव गति को प्राप्त करेंगे।

इस वर्ग के 4 जीव संयम के विराधक होकर एवं शेष छः आराधक होकर देवगति में गये और दसों ही एकाभवतारी है अर्थात् उन्हें अब एक महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य का भव ही करना शेष है।

सार- संयम व्रतों की विराधना करने वाले के भी यदि श्रद्धा प्ररूपणा एवं तप रूचि बराबर है तो वह विराधक होते हुए भी संसार भ्रमण और जन्म मरण नहीं बढ़ाता है। किन्तु वह निम्न स्तर का देव बनता है अथवा तो देवी रूप में उत्पन्न होता है।

इसलिए संयम में पूर्ण शुद्ध आराधन न करने वाले साधकों को चाहिए कि वे अपनी श्रद्धा प्ररूपणा आगमानुसार पूर्ण शुद्ध रखें एवं यथासंभव 12 भेदे तप में लीन रहें एवं कषाय भावों से मुक्त रहे तो वे संयम में कमजोर होते हुए भी अपनी आत्मा की अधोगति से सुरक्षा कर सकेंगे एवं भव परम्परा की वृद्धि नहीं करेंगे।

चौथा वर्ग-पुष्प चूलिका-

इस वर्ग में दस स्त्रियों का वर्णन है जिन्होंने पार्श्वनाथ भगवान के शासन में ''**पुष्पचूला**'' साध्वी प्रमुखा के पास अध्ययन कर तप संयम का पालन किया, इसलिए इस वर्ग का ''**पुष्पचूला**'' यह नाम रखा गया है।

वे दसो स्त्रियां संयम पालन कर क्रमशः निम्न देवियां बनी- (1) श्री देवी, (2) ह्री देवी, (3) धृति देवी, (4) कीर्ति देवी, (5) बुद्धि देवी, (6) लक्ष्मीदेवी, (7) ईला देवी, (8) सुरा देवी (9) रस देवी, (10) गंध देवी।

श्री देवी- राजगृही नगरी में सुदर्शन नामक सम्पन्न सद्गृहस्थ रहता था। उसके ''**प्रिया**'' नाम की भार्या थी एवं भूता नाम की एक पुत्री थी। जो वृद्ध एवं जीर्ण शरीर वाली दिखती थी। उनके सभी अंगोपांग शिथिल थे। अतः उसको कोई भी वर नहीं मिला।

एक बार पार्श्वनाथ भगवान उस नगरी में पधारे। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह ''**भूता**'' लड़की भी अपने धार्मिक रथ में बैठकर दर्शन वंदन के लिए गई। उपदेश सुनकर बहुत खुश हुई। उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन पर अत्यन्त श्रद्धा रूचि हुई। माता पिता से आज्ञा लेकर दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गई।

माता-पिता ने उसका दीक्षा महोत्सव किया एवं हजार पुरुष उठाने वाली शिविका में बिठाकर भगवान की सेवा में ले गये और भगवान को शिष्यणी रूप भिक्षा स्वीकार करने का निवेदन किया भगवान ने उसे दीक्षा देकर पुष्पचूला आर्या को सुपुर्द किया। पुष्पचूला आर्या के पास शिक्षा प्राप्त कर वह तप संयम में आत्मा को भावित करने लगी।

कालांतर से भूता आर्या शरीर की सेवा सुश्रुषा में लग गई और शूर्ची धर्मी प्रवृत्तियों का आचरण करने लगी। अर्थात् वह बारंबार हाथ, पांव, मुंह, सिर, काखें, स्तन, गुप्तांग को धोती थी और बैठने, सोने, खड़े रहने की जगह को पहले पानी

छिड़कती फिर बैठना आदि करती। गुरुणी के द्वारा इन सब प्रवृत्तियों के लिए निषेध करने पर एक दिन वह अलग जाकर किसी स्थान में अकेली रहने लगी और अपनी इच्छानुसार प्रवृत्तियां करने लगी। अनेक प्रकार की तपस्याएं करते हुए आलोचना प्रायश्चित नहीं करने से वह विराधक होकर, पहले देवलोक के ''**श्री अवतंसक**'' विमान में ''**श्री देवी**'' रुप में उत्पन्न हुई। किसी समय भगवान महावीर के समीप में आकर उस देवी ने अनेक प्रकार की नाट्य विधि के द्वारा अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन किया। वहां से एक पल्योपम की स्थिति पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में जाकर मुक्ति प्राप्त करेगी।

भूता के समान ही नौ स्त्रियों का वर्णन है केवल नाम का अन्तर है। सभी शरीर बकुशा होकर प्रथम देवलोक में गई और एक पल्योपम की स्थिति पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष जावेंगी।

इस वर्ग के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि लोक में जो भी लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों की पूजा उनसे कुछ प्राप्त करने को आशा रखी जाती है तीसरे वर्ग में मणिभद्र, पूर्णभद्र देव का वर्णन है, उनकी भी पूजा प्रतिष्ठा की जाती है वह प्रथम देव लोक की देवियों की पूजा प्रतिष्ठा की जाती है वह प्रथम देव लोक देवियों के प्रति एक प्रकार की भक्ति का प्रदर्शन हैं। उसके साथ ही उन्हें प्रसन्न कर उनसे कुछ प्राप्त की आशा रखी जाती है। तीसरे वर्ग में मणिभद्र, पूर्णभद्र देव का वर्णन है, उनकी भी जिन मन्दिरों में पूजा प्रतिष्ठा की जाती है। ये सब प्रवृत्तियां लौकिक देवों की भक्ति रूप में लौकिक आशा चाहनाओं से की जाती है।

वीतराग धर्म तो लौकिक चाहनाओं से परे होकर आत्म-साधना करने का है। इसकी साधना करने वाला साधक पांच पदों में स्थित आत्माओं को ही आध्यात्म की अपेक्षा नमस्करणीय समझता है। एवं वंदन नमस्कार करता है। शेष किसी को भी वंदन नमस्कार करना वह अपना लौकीक, व्यवहारिक एवं परंपरागत आचार मात्र मानता है। उस वंदन या भक्ति में वह धर्म की कल्पना को नहीं जोड़ता है।

कई भद्रिक परिणामी साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविकाएं ऐसे लौकिक आशा युक्त विनय भक्ति के आचारों को धर्म का वाना दे बैठते हैं यह उनकी व्यक्तिगत अज्ञान दशा की भूल है।

पांचवां वर्ग- वृष्णिक दशा-

इस वर्ग में अंधक वृष्णि के कुल के यदुवंशीय पुरुषों का वर्णन है इसलिए इस वर्ग का नाम वृष्णि दशा रखा गया है। इस वर्ग में बारह अध्ययन हैं।

निषध कुमार- कृष्ण वासुदेव के भाई बलदेव राजा की रेवती नाम की राणी थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका निषध कुमार रखा गया। कालांतर में यौवन वय के प्राप्त होने पर पचास कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। वह श्रेष्ठ प्रासाद में मानुषिक सुख भोगते हुए विचरण करने लगा।

एक बार अर्हन्त अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। कृष्ण की आज्ञा से सामुदानिक भेरी बजाई गई। कृष्ण राजा एवं उसकी प्रजा भी भगवान की सेवा में गई। निषध कुमार भी दर्शनार्थ गया। उपदेश श्रवण कर श्रद्धारूचि व्यक्त करते हुए उसने भगवान के पास श्रावक धर्म स्वीकार किया।

उसके चले जाने के बाद भगवान अरिष्ट नेमि के प्रथम गणधर वरदत्त अणगार द्वारा निषध कुमार के पूर्व भव जानने की जिज्ञासा प्रकट करने पर भगवान ने उसके पूर्व भव का कथन किया।

निषध कुमार का पूर्व भव– इस भरत क्षेत्र में रोहतक नाम का नगर था। वहां महाबल नाम का राजा था। उसके वीरांगद नामक पुत्र हुआ। उसका यौवन अवस्था में बत्तीस श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया गया। वह उत्तम प्रासाद में मानुषिक सुख भोगता हुआ रहने लगा।

किसी समय सिद्धार्थ नाम के आचार्य उस नगरी में पधारे। वीरांगद ने उपदेश सुनकर उनके पास संयम अंगीकार किया।

ग्यारह अंगों का ज्ञान कण्ठस्थ कर अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा आत्म शुद्धि करने लगा। उसने वहां पेंतालीस वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन कर दो महिने का संथारा प्राप्त किया एवं काल करके आराधक होकर पांचवें देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहां दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके यहां यह निषधकुमार बना है और आज इसने श्रावक व्रत स्वीकार किये हैं।

निषधकुमार श्रावक के गुणों से संपन्न होकर श्रमणोपासक पर्याय व्यतीत करने लगा। एक बार पौषध में धर्म जागरण अर्थात् आत्मोन्नति विचारणा करते हुए उसे अपनी नगरी में भगवान की वंदना पर्युपासना करने का संकल्प हुआ।

भगवान अरिष्टनेमि उसके मनोगत भावों को जानकर विचरण करते हुए वहां पधारे। निषध कुमार उपदेश सुनकर दीक्षित हुआ। ग्यारह अंगों का कण्ठस्थ ज्ञान किया। अनेक विचित्र तप साधना के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए नव वर्ष संयम का पालन किया एवं इक्कीस दिन के संथारे से काल करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ। वहां से तेतीस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। यौवनवस्था में संयम ग्रहण कर, सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त करेगा।

शेष ग्यारह अध्ययन में ग्यारह राजकुमार का वर्णन भी इसी प्रकार है। यहां भलावण पाठ अति संक्षिप्त होने से उनके माता पिता का नाम भी सूचित नहीं किया गया है। संयम ग्रहण एवं अणुत्तर विमान में उत्पत्ति आदि निषध कुमार के समान समझना चाहिए।

उपांग सूत्र के पांच वर्गों और बावन अध्ययनों में प्रथम वर्ग से दस जीवों के नरक में जाने का वर्णन है शेष चार वर्ग के सभी (42) ही जीवों के स्वर्ग में जाने का वर्णन है, नरक में जाने का नहीं।

अतः प्रथम वर्ग का ही नाम निरयावलिका होना संगत है। पूरे सूत्र का निरयावलिका नाम तो लिपी दोष आदि से ही प्रचलित हो सकता है।

इसलिए पूरे सत्र का नाम तो **'उपांग सूत्र'** ही समझना चाहिए। और सूचित पांच नाम वर्गों के ही समझने चाहिए।

नोट– विस्तृत एवं अन्य जानकारियों के लिए आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से प्रकाशित निरयावलिका सूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

।। उपांग सूत्र सारांश समाप्त ।।

आगम सारांश ग्रंथों के लेखक

परिचय

लेखक

वरिष्ठ स्वाध्यायी तत्त्व चिंतक

"जिन शासन रत्न"

श्री विमल कुमार नवलखा

प्रस्तुत 'जैनागम सारांश' (आगम बत्तीसी) को 4 भागों में विभक्त कर अपने आगम कौशल्य से ग्रंथ के रचनाकर तत्त्वचिन्तक आगमों के अध्येता श्री विमल कुमारजी नवलखा का जन्म वि.सं. २०११ के कार्तिक सुदी ५ ज्ञान पंचमी दि. १-११-१९५४ को भीलवाड़ा जिलान्तर्गत आसीन्द तहसील के जगपुरा ग्राम में हुआ।

पुण्योदय से आप अनेकों आचार्य एवं विद्वानों संत मुनिराजों एवं विदुषी साध्वी रत्नों के सम्पर्क में आये। गुरुदेवों के शुभाशीर्वाद से अपनी प्रामाणिकता के बल पर व्यावसायिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होकर परिवार व समाज की सेवा में अग्रसर बनें। आपकी धार्मिक-भावना एवं श्रुत-सेवा की रूचि प्रबल से प्रबलत्तर होती गई।

सन् १९७५ में आप श्री स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा के सक्रिय एवं कर्मठ सदस्य बनें तथा पूरे भारतवर्ष में प्रत्येक राज्य के प्रमुख नगरों में पधारकर पर्युषण पर्वाराधनार्थ सेवाएं प्रदान की। जैन-समाज के लिए अति उपयोगी जैनागमों के हिन्दी सारांश तथा जैन तत्त्व दर्शन के दो खण्ड (भगवती, प्रज्ञापना एवं विविध सुत्तागमों के थोकड़े) तथा अन्तर्मन के मोती (पयुर्षण प्रवचनोपयोगी) जैनागमों में मध्यलोक एवं जैन धर्म में उत्कृष्ट तप संलेखना संथारा, जैनागमों में लोकस्वरूप आदि जैन-धर्म-दर्शन के लिए अप्रतिम देन है। आपकी इस श्रुत-सेवा से सम्पूर्ण जैन समाज गौरवान्वित हुआ है। श्रुत सेवा से प्रभावित होकर दिनांक 7 जनवरी 2024 को जोधपुर में विधायक श्री अतुल जी भंसाली द्वारा ''जिनशासन रत्न'' की उपाधि से अलंकृत किया है।

श्री विमल कुमारजी नवलखा के पुज्यनीय पिताजी श्रीमान् फतेहलालजी सा. नवलखा एवं मातृश्री श्रीमती उगमदेवीजी नवलखा भी अत्यन्त धर्म परायण, महान् व्यक्तित्व के धनी है। धर्मपत्नि श्रीमती सुशीलादेवीजी नवलखा की सेवा तो अतुल्य है। इन्होंने दो-दो मासखण की तपस्याएं भी की हैं। आज भी कीम पीपोदरा में जैन संतमुनिराजों एवं महासतियांजी की सेवा में अनवरत लगे रहते हैं। समाज की सेवा तो इस परिवार का प्रमुख गुण है। श्री विमलजी नवलखा कई वर्षो से दक्षिण गुजरात राजस्थान स्थानकवासी जैन महासंघ के मंत्री के रूप में समाज सेवा में अग्रसर हैं।

इनके पाँच पुत्र रत्न हैं। श्री विनय कुमार, तरूण कुमार, चेतन प्रकाश, विकास एवं लोकेश ये पाँचों ही सुपुत्र अत्यन्त धर्मानुरागी, निर्व्यसनी, सदाचारी और समस्त सद्गुणों से युक्त चरित्रनिष्ठ सुश्रावक युवा रत्न हैं। साधुसंतों की सेवा, समाज की सेवा तो मानों विरासत से मिले सद्गुण हैं। समाज सेवा में हमेशा अग्रसर रहता यह सम्पूर्ण परिवार वास्तव में समाज के लिए एक उदाहरण है, दृष्टान्त है। श्री विमलजी की दो बहिनें श्रद्धेया शीलप्रभाजी म.सा. एवं श्रद्धेया सत्यप्रभाजी म.सा. आचार्य श्री विजयराजजी म.सा. के सानिध्य में संयम-साधना में निरंतर अग्रसर है।

जिन शासन की सेवा में अग्रसर इस परिवार की पारिवारिक और सामाजिक समृद्धि हमेशा बनी रहे।

इसी आशा के साथ...